ग्रहलाघवम्

केदारदत्त जोशी

त्रिस्कन्ध ज्योतिष में गणित का स्थान सर्वोपरि है। दैवज्ञ श्रीगणेश विरचित ग्रहलाघव ग्रहगणित ज्योतिष की एक अद्भुत रचना है। इसमें वर्तमान कल्प से लेकर अहर्गण (दिनसमूह) साधन कर उसके तीन खण्डों के तीसरे लघुखण्डीय दिनसमूह से ग्रहों की आकाशीय वस्तुस्थिति का जो चमत्कारिक सिद्धान्त स्थापित किया गया है वह आज सभी ग्रहगणितज्ञों से मान्य हो रहा है। पञ्चाङ्ग गणित साधन की ऐसी सरल शुद्ध उपलब्धि आचार्य श्रीगणेशजी तक ही सीमित रही है।

बड़े लम्बे अरबों की संख्याओं के गणित की गुणन-भाजन की लम्बी और परिश्रम-साध्य ग्रहगणित की असुविधा को समझ कर श्रीगणेश दैवज्ञ ने लघु आंकड़ों से ग्रह साधन की जो चमत्कारिक गवेषणा की है वह शुद्ध एवं सूक्ष्म है, इसी अभिप्राय से आचार्य ने इस ग्रन्थ का सही नामकरण 'ग्रहलाघव' किया है जो सरस एवं समीचीन है।

मूल एवं दो प्राचीन टीकाओं के साथ इस मूल ग्रन्थ को ज्योतिष शिरोमणि केदारदत्त जोशी ने हिन्दी भाषा के माध्यम से सरल करते हुए उदाहरणों के साथ सरल एवं स्पष्ट कर दिया है। आशा है विद्वज्जन इस प्रयास का स्वागत करेंगे।

इस ग्रन्थ के रचयिता श्री केदारदत्त जोशी हैं जिन्होंने उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा जिले की पण्डित परम्परा के ज्योतिर्विदों की वंशावली से सेवित 'जुनायल' ग्राम में जन्म लेकर अपने पूज्य पिता पण्डित हरिदत्त ज्योतिर्विद् से ज्योतिष एवं शाक्त तन्त्र शास्त्रों का अध्ययन किया। तदनन्तर काशी हिन्दु विश्वविद्यालय से ग्रह गणित ज्योतिष शास्त्राचार्य परीक्षा उत्तीर्ण कर ब्रह्मर्षि महामना पूज्य पं० मदनमोहन मालवीयजी के सम्पर्क में रहते हुये प्राच्य विद्यासंकाय काशी हिन्दु विश्वविद्यालय में सन् १९३८ से १९७५ तक अध्यापन कार्य किया। वर्तमान में नगवा (नलगांव) वाराणसी में अपने आवास में श्री केदारेश्वर मन्दिर में अपनी दैनिक पूजा वेद पुराण पाठ व शाक्त तन्त्र उपासना के साथ ज्योतिर्विद्या से जनता की यथोचित सेवा कर रहे हैं। सेवा निवृत्त होने पर भी आप ग्रह गणित शोध कार्य, ग्रन्थ लेखन और धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में संलग्न हैं।

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली • मुम्बई • चेन्नई • कोलकाता
बंगलौर • वाराणसी • पुणे • पटना

E-mail: mlbd@vsnl.com
Website: www.mlbd.com

ISBN 81-208-2286-2



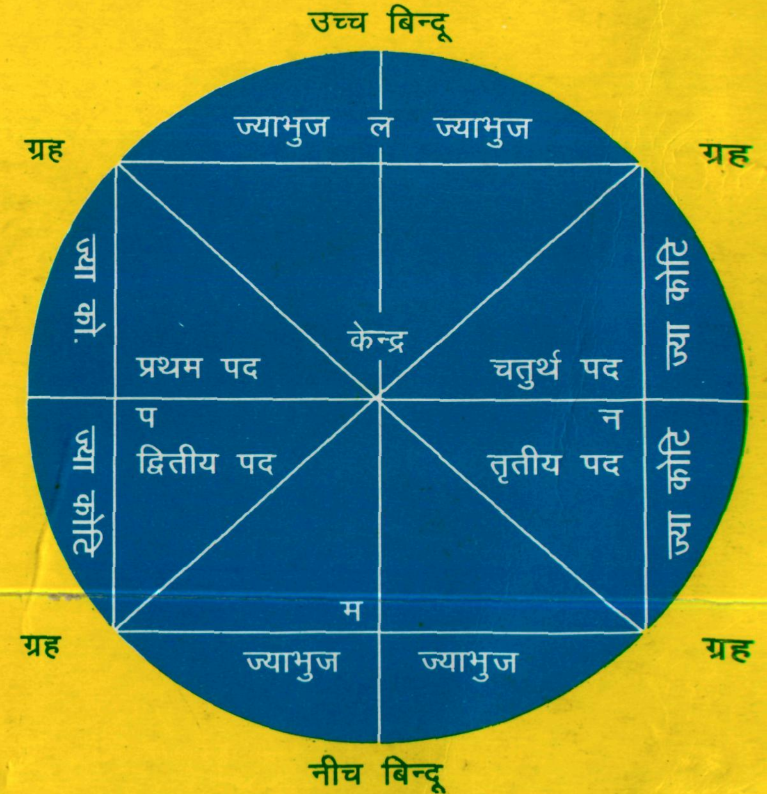
मूल्य: रु० 395 (सजिल्द) ISBN: 81-208-2285-4

मूल्य: रु० 275 कोड : 22862

श्री गणेशदैवज्ञ विरचितं ग्रहलाघवम्
व्याख्याकार श्री केदारदत्त जोशी

श्री गणेशदैवज्ञ विरचितं
ग्रहलाघवम्

व्याख्याकार
श्री केदारदत्त जोशी



गणेशदैवज्ञकृतं

ग्रहलाघवम्

मल्लारि-विश्वनाथयोः संस्कृतव्याख्याभ्याम्
केदारदत्तजोशी-कृत-हिन्दी-सोदाहरणोपपत्त्या च सहितम्

हिन्दी व्याख्याकारः
पं० केदारदत्त जोशी
अवकाशप्राप्त प्राध्यापक (रीडर इन ज्योतिष गणित + फलित)
प्राच्य एवं धर्मविज्ञान संकाय
काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई, कोलकाता, बंगलौर,
वाराणसी, पुणे, पटना

पुनर्मुद्रण: दिल्ली, १९९४, १९९८, २००१, २००६
प्रथम संस्करण: वाराणसी, १९८१

ISBN: 81-208-2285-4 (सजिल्द)
ISBN: 81-208-2286-2 (अजिल्द)

मोतीलाल बनारसीदास
४१ यू०ए० बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली ११० ००७
८ महालक्ष्मी चैम्बर, २२ भुलाभाई देसाई रोड, मुम्बई ४०० ०२६
२३६ नाइंथ मेन III ब्लाक, जयनगर, बंगलौर ५६० ०११
सनाज प्लाजा, १३०२ बाजीराव रोड, पुणे ४११ ००२
२०३ रायपेट्टा हाई रोड, मैलापुर, चेन्नई ६०० ००४
८ केमेक स्ट्रीट, कोलकाता ७०० ०१७
अशोक राजपथ, पटना ८०० ००४
चौक, वाराणसी २२१ ००१

नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली ११० ००७
द्वारा प्रकाशित तथा जैनेन्द्रप्रकाश जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस,
ए-४५ नारायणा, फेज-१, नई दिल्ली ११० ०२८ द्वारा मुद्रित

श्रीः

सौरमण्डल एवं ग्रहलाघव गणित

असीमित से सीमित का एक अध्ययन

अनेक भेद युक्त ज्योतिषशास्त्र एक अगाध सागर है। ब्रह्माण्ड के अनन्त-तत्त्व और सौर-मण्डल के ग्रह-नक्षत्रों की गतिविधियों का सम्यक् ज्ञान ज्योतिषशास्त्र से होता आया है। सौर-सृष्टि के आरम्भ और उसके अन्त का जो अत्यन्त दीर्घ काल है, वह अङ्कों या आंकड़ों से व्यक्त नहीं किया जा सकता।

यह विचारणीय विषय है कि पृथ्वी का प्राक्-रूप क्या था, जो निरन्तर परिवर्तित होते-होते आज हमारे सामने वर्त्तमान भौतिक-भूगोल रूप में प्रत्यक्ष है। अतीत के दीर्घ काल में यह पृथ्वी गैस रूप में थी। परिवर्तन की शृंखला के साथ पृथ्वी का स्वरूप भी परिवर्त्तित हुआ। जीव-तत्त्व का प्रादुर्भाव हुआ। अनेक जीवों, जन्तुओं और जातियों के साथ-साथ मानव-शरीर की भी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार मानव-सृष्टि की निरन्तर वृद्धि होने लगी। शीतलता, उष्णता और शारीरिक सुख दुखादि की अनुभूति क्रमशः मानव-जाति की मूल प्रवृत्ति हुई। मानव-सृष्टि में मूलभूत प्राकृतिक पञ्चतत्त्व को उपयोग में लाने की चेष्टा तीव्रतर होने लगी। पृथ्वी के बहुत बड़े भाग में वन्य सृष्टि का आधिक्य हुआ; इसके साथ ही वन्य-जन्तुओं में परस्पर राग-द्वेष, हिंसादि की भावना भी गतिशील हुई। भयानक वन्य जन्तुओं से अपनी रक्षा करने के लिए मानव जाति ने प्रकृति का सहारा लिया। इस प्रकार प्रकृति प्रदत्त विवेक-विशेष के माध्यम से मानव-जाति उत्तरोत्तर प्रगति की ओर अग्रसर हुई। निःसन्देह आज का वनमानुष संज्ञा से अभिहित आदि-मानव का अवशेष हमारी सृष्टि का-पूर्वज सिद्ध होता है।

आदिम कालीन मानव जाति, वन्य-जाति थी। उस समय उसे वर्त्तमान समय की भाँति भूमि, वाहनादि, ऐश्वर्य, उपभोग जैसी कोई भी सुविधा उपलब्ध नहीं थी। यहाँ तक की शीत और उष्णता का बचाव भी वह प्रकृति पर निर्भर होकर करता था। वृक्षों के नीचे, प्राकृतिक—जलाशयों के समीप आवास की व्यवस्था रहती थी। आदि मानव अपनी क्षुधा-पिपासा की तृप्ति वृक्षों के फल, फूल और पत्तों से करता था। तत्युगीन मानव में शृंगार की भी मनोवृत्ति थी, जिसकी पूर्ति वह प्राकृतिक सम्पदा के विभिन्न रंगीन पुष्पों से करता था— वस्त्राणि आभरणानि चैत'' ''वृक्षास्ते कल्प संज्ञकाः'' पुराणों में इसी से वृक्षों को कल्प-वृक्ष की संज्ञा प्राप्त हुई है। परिवर्त्तित समय के साथ-साथ प्राकृत मानव ने एक सूर्योदय से दूसरा, तीसरा····अनेक सूर्योदय एवं अनेक चन्द्रोदय देखे, जिससे मानव में प्राकृत रूप से मूर्त ज्ञान का भाव जागृत हुआ। ग्रीष्म, वृष्टि शरद हेमन्त शिशिर आदि के रूप में वार्षिक अवयवों का ज्ञान होने लगा। इसी प्रकार सूर्य के द्वादश-विभाग और चन्द्रमा के सञ्चार स्थलीय २७ नक्षत्रों का ज्ञान हुआ। तथैव गमनशील ताराओं में मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, और शनि इन—पाँच तारा ग्रहों का ज्ञान हुआ। इसीप्रकार अनवरत अनादि काल से-आज तक

और भी ग्रह हैं, जिनकी गमनशीलता व पृथ्वी से उनकी दूरी का यथेष्ट हिसाब लगाया जा रहा है। इसप्रकार मानव में विवेक की वृद्धि हुई। अपने जीवन को सुखी रखने की कामना से मानव ने अपने विकास में अलौकिक ही नहीं अपितु चमत्कारिक भूमिका भी प्रस्तुत की है। प्रत्यक्ष में यह सत्य भी है कि आधुनिक मानव प्राकृतिक-मानव से ज्यादा सुखी है।

मानव ने अपने व्यवहार के विभिन्न साधनों से ज्ञानवर्द्धन किया। वेद-शास्त्र, पुराण स्वतः इस सत्य के प्रमाण हैं। प्रकृतिसे प्राप्त वन्य-सम्पदा से प्रभावित होकर प्रत्येक वन्य-मानव जो व्यष्टि और समष्टि रूप से जीवन यापन करता था,—अपने भौतिक सुख को सफल एवं सपुष्ट करने के लिए वृक्षों पर स्वाधिकार स्थापित करने लगा। इसप्रकार अपने वृक्षों की गणना या गिनती अंगुलियों के माध्यम से करते हुए अनन्त गणना के गणित-सागर में प्रवेश कर गया। इसी का परिणाम है कि आज के मानव को इस महान गणित-सागर का छोर मिल सका है।

शब्द सृष्टि के पूर्व ही एक, दो, तीन, चार, पाँच समझने के लिए अङ्कों के ही शब्द बने होंगे। नाद के साथ सात स्वरों के बोलने से सात ७ का अंक और वेदचतुष्टयी से चार वेदों का बोधक चार (४) अंक बन गया होगा।

वैयाकरण विद्वान् श्री महादेव जी के डमरू से अ इ उ ण्....इसप्रकार चौदह (१४) सूत्रों की उत्पत्ति सिद्ध करते हैं। "इति चतुर्दश माहेश्वराणि सूत्राणि।" व्याकरण के अष्टाध्यायी से आठ शब्द का अंक, निरुक्त के "इमानि पृथिव्या नामानि एकविंशतिः" से इक्कीस शब्द और तज्जातक २१ अंक बन गया। "उत्तरे धातवोऽष्टादश", "गति कर्मणि उत्तरो धातवो द्वाविंशशतम्" १२२। 'षडक्षरो गायत्री चरणः', 'पञ्चभूतानि'—५ दशेन्द्रियाणि—१०, षट रन्ध्राणि—६, द्वयणुक, त्र्यणुक—२, ३, "पञ्चपाण्डवाः"—५, "विष्णोः सहस्रनामानि"—१०००, "शतनाम-प्रवक्ष्यामि"—इसप्रकार शास्त्रों में यत्र-तत्र, सर्वत्र अंक ही अंक भरे हैं। शयन-कक्ष की चारपाई तभी बन सकती है, जब चार ४ अंक का ज्ञान हो। यहाँ तक कि 'अद्वितीय पुत्र' कहते ही १ और २ का बोध होने लगता है।

मानव रचना के जो स्वाभाविक हाथ-पैर हैं उनमें—उँगलियों के माध्यम से मनुष्य को १ से १० तक का ज्ञान तो हुआ, किन्तु संकेत (लिपि) के अभाव में एक ही हाथ की उँगलियों से ५ (४) का अंक संकेत बना। दो बार ५ गिनने से १० बना। मुट्ठी बाँधकर एक उँगली उठाने से १ >3 ८ ५ तक का अंक संकेत मिलता गया। १ को थोड़ा टेढ़ा करने से ७, >को उलटने से ८, ३ को उलटने से ६, ४ को उलटने से ৪....इत्यादि के लिपि रूप में अंक संकेत बनते गये। आकाश की ओर दृष्टि जाने पर ऊर्ध्वगत दृष्टि ब्रह्माण्ड अर्थात् शून्य ० की कल्पना से शून्य (०) अंक का प्रादुर्भाव हुआ।

अब प्रश्न यह उठता है कि उँगली आदि की गणना से मात्र (१०) दश संख्या तक के ही अंक बन सके तो दश से आगे अनन्त तक की गणना समस्या किस तरह हल हुई होगी?

इस सन्दर्भ में विद्वानों का मत है कि पुराण-काल की ग्रहशान्ति पद्धतियों में नव (९) ग्रहों के पूजन का विधान है । उनमें "मध्ये, वर्त्तुलाकार: सूर्य:"—अर्थात् मध्य में वृत्ताकार सूर्यकी स्थापना करनी चाहिए । इसी प्रकार पूर्व अग्नि... ....दक्षिण........वायु ईशान दिशा में । मण्डप की ईशान दिशा में ग्रहवेदी पर ग्रहों की जो ९ आकृतियाँ बनाई जाती हैं उन्हीं आकृतियों का ही परिवर्त्तित रूप इस प्रकार होता रहा है—१....२....३....४ ...५....६.... ७....८....९ ।

कुछ लोग कुबेर की नौ निधियों को ९ तक की संख्या का स्रोत मानते हैं—कुन्द, मुकुन्द, नील, कच्छप, मकर, खर्व (छोटा कमल) पद्म (कुछ बड़ा कमल), महापद्म (सबसे बड़ा कमल), और शंख हैं । इन नौ निधियों का स्वरूप या आकृति इस प्रकार है—

कुन्द	= १
मुकुन्द	= २
नील	= ३
कच्छप (कछुआ)	= ४
मकर का रूप	= ५
खर्व [छोटा कमल]	= ६
पद्म [कुछ बड़ा कमल]	= ७
महापद्म [सबसे बड़ा कमल]	= ८
शंख	= ९

बालक स्वभावत: ज्ञान रहित अवस्था में लेखनी पकड़ते ही रेखाएँ खींच देता है । बालक की यही लेखा = रेखा हो जाती है । अत: यह स्पष्टतया कहा जा सकता है कि जिस प्रकार प्रारम्भ में रेखाओं लेखाओं; लकीरों की रचना अबोध बालक कर देता है, उसी तरह गणना के प्रादुर्भाव की बुद्धि ने रेखाओं के आधार पर ही (०) शून्य से लेकर (९) तक की गिनती को कुछेक संकेत रेखा के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया होगा—

रेखाओं के माध्यम से अंक संकेत—

१— ।

२= ٦

३— ५

४— ४

५— ५

६= ६

७— ७

८= ८

९= ९

सर्वप्रथम जब कागज़ निर्माण की विधि ज्ञात न थी, तो उसके विकल्प में प्राचीन मानव ताड़-पत्तों का उपयोग करता था। नोकदार लेखनी से ताड़ पत्तों पर अंक या शब्द या तत्सम्बन्धी संकेतों जो खोद कर उसे करखी (काला पाउडर) से लीप देते थे, जिससे कि खोदे हुए वर्ण, अक्षर, संख्या-संकेत स्पष्ट परिलक्षित होने लगते थे। इसी लीपने की वास्तविक प्रक्रिया के आधार पर ही लिखे हुए अक्षरों या वर्णों को लिपि का नाम दिया गया है। वार्तिककार कात्यायन के समय से पूर्व ही लिपि के माध्यम से अक्षरों के अर्थ का स्पष्ट बोध हो गया था। महर्षि पाणिनि के सूत्र पर "इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृड‥मातुलाचर्याणा-मानुक्" महर्षि कात्यायन का "यवनाल्लिप्याम्" वार्तिक बना। 'यवनानां लिपिः' अर्थात् यवनों की लिपि ऐसा उल्लिखित है। यहाँ पर 'यवन' शब्द का तात्पर्य ग्रीक देश के ग्रीक लोगों से है।

स्पष्ट है कि प्राचीन काल में भारत का ग्रीक देश से व्यापारिक सम्बन्ध तो अच्छा था ही; साथ ही साथ शिक्षा का आदान-प्रदान भी होता था। यहाँ तक कि ज्योतिष धरातल के प्रकाशमान नक्षत्र आचार्य वराह ने यवनों की भारतीय ऋषियों से तुलना भी की है। बृहत्संहिता में—

"म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक्शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद्द्विजः।" या "ब्रह्मविद्द्विजः।"

भारतवर्षीय ग्रह गणितज्ञों ने प्राचीन समय से आज तक 'सूर्य सिद्धान्त' ग्रन्थ को ग्रह गणित का अत्यन्त प्राचीन एवं सर्व प्रामाणिक ग्रन्थ माना है। वेद, पुराण, आगम की भाँति इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता सिद्ध है। आचार्य मिहिराचार्य ने "पञ्चसिद्धान्तिका" में "स्पष्टतरः सावित्रः परिशेषौ, दूरविभ्रष्टौ" से ग्रह गणित के और सिद्धान्तों की अपेक्षा 'सूर्य सिद्धान्त' ग्रन्थ को स्पष्टतर कहा है। अर्थात् और ग्रन्थों का ग्रह गणित स्थूल है; किन्तु सूर्य सिद्धान्त' का ग्रह गणित स्पष्ट होते हुए सूक्ष्म भी है। 'सूर्य सिद्धान्त' के प्रारम्भ का द्वितीय श्लोक इस सन्दर्भ में विचारणीय है—

अल्पावशिष्टे तु कृते मयो नाम महासुरः।
रहस्यं परमं पुण्यं जिज्ञासुर्ज्ञानमुत्तमम्॥
वेदाङ्गमग्र्यमखिलं ज्योतिषाम् गति कारणम्।
आराधयन् विवस्वन्तं तपस्तेपे सुदुश्चरम्॥२॥

उपरोक्त श्लोक में आये हुए अल्पावशिष्टे का विद्वान् लोग निम्न अर्थ लगाते हैं—

अ = १
ल = २
प = १

सम्पूर्ण श्लोक का सरल भावार्थ इस प्रकार है—

कृतयुग अर्थात् सत्ययुग की अत्यल्प शेष वर्ष संख्या के समय मय नामक महा असुर परम पुण्य रहस्यमय उत्तम ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा से आकाशस्थ ज्योतिष्मान ग्रह पिण्डों की गति का कारण जानने के लिए अत्यन्त कठोर तप पूर्वक भगवान सूर्य की आराधना करने लगा।

अर्थात् जब सत्ययुग के १२१ वर्ष शेष थे तब मय नामक असुर को सूर्य ने ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान दिया था।—

"तोषितस्तपसा तेन प्रीतस्तस्मै वरार्थिने।
ग्रहाणां चरितं प्रादात्-मयाय सविता स्वयम्॥२॥

पौराणिक आख्यानों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि मय नामक महा असुर लङ्काधीश रावण का श्वसुर और मन्दोदरी का पिता था। अतएव सूर्य सिद्धान्त के अनुसार (अर्द्धरात्रि से दूसरी अर्द्धरात्रि तक की संज्ञा 'अहोरात्र' है)। राक्षस राजधानी लङ्का में ही अर्द्धरात्रिकालिक ग्रह सिद्ध किये गये हैं। यद्यपि आज की जो लङ्का है वह विषुवत् या भूमध्य रेखा के धरातल में नहीं है। "सदा समत्वं द्युनिशोः निरक्षे"—जहाँ सदा दिनमान ३० घटी = १२ घण्टा एवं रात्रिमान भी = १२ घण्टा होता है, भूपृष्ठीय उस विषुवत धरातल के किसी बिन्दुनिष्ठ भू-प्रदेश का नाम लङ्का कहना समीचीन होगा।

उसी मय नामक महा असुर के कठिन तप से प्रसन्न होकर स्वयं भगवान भास्कर ने 'मय' को ज्योतिष-विद्या का ज्ञान दिया। उक्त श्लोक में ग्रहाणां चरित" का अर्थ है—

ग्रह गोल खगोल गणित का ज्ञान। यवन शब्द को हिन्दू समाज असुर अर्थ से बोधित करता रहा है। चूँकि यवन शब्द का तात्पर्य ग्रीक देश से है इसलिए अध्ययन-मनन से यह ज्ञात होता है कि 'मय' नाम का असुर, ग्रीक देश का ही खगोलवेत्ता था।

हाइपसिक्लेसस (HYPSICLES), टॉलमी (TLOLMY) और ब्याविलोनियाँ (Balylonia) आदि के माध्यम से अंक, कला-विकला की पद्धतियाँ भारत वर्ष को प्राप्त हुई हैं। इतिहासकारों के इस कथन में सत्यता हो सकती है किन्तु भारत देश के ऋग्वेद में तो अङ्कों और उनकी गणना का प्रादुर्भाव हो चुका था।

"द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि कउतच्चिकेत।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः॥"
(ऋ० सं० १, १६४, ४८)

उक्त ऋग्वेद तथा यजुर्वेद रुद्राष्टाध्याय के अष्टम अध्याय में एकाच में त्रिस्रश्चमे, पञ्चचमे, सप्त च मे, नव च मे,"....तथा चतस्रश्चमे अष्टौ च मे, द्वादश च मे, षोडश्चमे.... से वेदों में ज्योतिष की गणना से अंकों के वर्ग घन : द्वि त्रि गुणनफल आदि का प्रादुर्भाव हो चुका था।

यथा $(१)^२ = १$, $(२)^२ = ४$, $(३)^२ = ९$, $(४)^२ = १६$ क्रमशः ३,५ अन्तर = ७ दोनों का वर्गान्तर = ३ $(२)^२ = ४$, $(३)^२ = ९$, अन्तर = ५, $(४)^२ = १६$, $(५)^२ = २५$ अन्तर = ७. इस प्रकार से एका च मे, तिस्रश्च में, पञ्च च में, सप्त च में....आदि मन्त्र में आसन्न दो संख्याओं का वर्गान्तर विदित हो रहा है। वर्तमान समय में अंकों का पहाड़ा पढ़ाते समय जैसे बच्चे ४ एके ४, ४ दूने ८, ४ तिगुने १२, ४ चौगुने १६ पढ़ते हैं, उसी प्रकार वेद में मन्त्र चतस्रश्चमे, अष्टौ च मे, द्वादश (१२) च में....आदि इसी रूप में हैं।

यहाँ पर १, ३, ५, ७, ९......आदि से अन्त नहीं अनन्त तक की क्रमशः जो विषम राशियाँ हैं, वही आसन क्रमिक दो अंकों की वर्ग राशियों के अन्तर को द्योतित कर रही हैं। प्रथम राशि के वर्ग एक द्वि त्रि आदि अंक वृद्धि से जो अन्तिम राशि का वर्ग है वह परमान्तर पूर्ण विषम राशि से सम्बन्धित हो रहा है। प्रथम राशि की पूर्णता के अनन्तर द्वितीय राशि की पूर्णता के मध्य में यदि द्वितीय राशि के अनेक अवयव हों और उन सभी अवयवों के योग तुल्य द्वितीय राशि हैं तो सभी अवयवों के वर्गों का योग = सम्पूर्ण द्वितीय राशि के वर्ग तुल्य होगा। अतः प्रथम या द्वितीय राशि की तात्कालिक गति (वेग) वर्गानुसार के सम्पूर्ण अवयव वर्गों का योग द्वितीय राशि के वर्ग तुल्य होता है। यह गतिवेग आधुनिक गणित का चमत्कारिक गतिवेग है। इसी को वेग की तात्कालिक गति (Kelocity of that Point) कही गयी है। जैसे य र रेखा पर किसी पदार्थ की गति है तो उस गमनशील पदार्थ के च बिन्दु पर की गति का ज्ञान अपेक्षित है।

य ———————————— र

च

यहाँ य र रेखा के प्रत्येक बिन्दु पर गति वैलक्षण से च बिन्दु की जो गति है, उसी की साधनिका से आज का गणित-विज्ञान चरम सीमा पर पहुँचता है। अथवा,

$$\text{यदि}\ \left.\begin{array}{l}(८)^२ = ६४\\(९)^२ = ८१\end{array}\right\}\ \text{अन्तर} = १७$$

तथा $(१०)^२ = १००$, ९ के वर्ग से अन्तर = १९

एवं ११, १२, १३·······वर्गों के क्रमशः अन्तर अंक = २३, २५·····अनन्त होते हैं। तो इस प्रकार वेदमन्त्र के आधार पर सप्तदश च मे, एकोनविंशतिश्च मे, एकविंशतिश्च में····· इत्यादि स्पष्ट हैं। क्रमिक वर्गान्तरों की गति क्रमाङ्कों का अन्तर २ दिखाई दे रहा है। तथा प्रथम वर्गाङ्क से तृतीय वर्गाङ्क का अन्तर—

$(२)^२ = ४$, $(४)^२ = १६$, अन्तर = १२

$(४)^२ = १६$, $(६)^२ = ३६$, अन्तर = २०

$(४)^२ = १६$, $(८)^२ = ६४$, अन्तर = ····४८ इत्यादि····

इस प्रकार क्रमशः अंकों की गति विद्या का एक जाल सा उत्पन्न हुआ। यहाँ पर मात्र पाठकों की जिज्ञासा हेतु यह सूचना देना आवश्यक है कि आधुनिक गणित प्रक्रिया का मूल स्रोत वेदों में सर्वथा उपलब्ध होता है।

जैसे—

$$य = लघु\ ३\ य$$

$$\therefore\ \frac{तार}{ताय} = \frac{१}{य} = य^{१}$$

$$\frac{तार^{२}}{ताय^{२}} = (-१)य^{२}$$

$$\frac{तार^{3}}{ताय^{3}} = २\ य^{3}$$

$$\frac{तार^{४}}{ताय^{४}} = ३\ य^{४}$$

$$\frac{तार^{न}}{ताय^{न}} = \frac{न - १\ (-१)\ न - १}{य^{न}}$$

अतएव न − १ = १, २, ३, ४·········(न − १)

इसप्रकार वेद मन्त्रों के आधार पर चल संचालन ज्ञात हो चुका था।

ईसवी १११४ ग्रह गोल गणक आचार्य भास्कर की बुद्धि में उक्त तात्कालिक वेग का सिद्धान्त स्पष्ट हो गया था। (इसके लिए सिद्धान्त शिरोमणि स्पष्टाधिकार देखिये।)

इसप्रकार अंक विद्या के माध्यम से आकाशीय ग्रह-पिण्डों की गतिविधियों को जान कर ग्रह गणित खगोल ज्ञान के धरातल में प्राचीन भारतीय महर्षि मानव रूप से अवतरित

हो चुके हैं। वेदों में वर्णित ज्योतिष के अनन्तर वेदाङ्ग ज्योतिष नामक ग्रन्थ की रचना हो चुकी है।

वैदिक साहित्य एक गहन ज्ञान-विज्ञान का भण्डार है। वैदिक-साहित्य के प्रादुर्भाव की परम्परा भी स्वयम् में किसी काल-विशेष की अपेक्षा रखती है। इसलिए काल की भी वैदिक पद्धति प्रचलित हुई।

"कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मन:"

कालज्ञान बोधक ज्योतिषशास्त्र का वर्त्तमान विकसित स्वरूप आचार्य लगध मुनि की देन है। कालान्तर में समस्त ब्रह्मर्षि वेदव्यास ने जिसप्रकार श्रुति, स्मृति-पुराणों की रचना से ज्ञान संरक्षण एवं संवर्धन किया उसी प्रकार महात्मा लगध ने वेदाङ्ग ज्योतिष की रचना से ज्योतिष शास्त्र की प्रतिष्ठा अक्षुण्य की है। वेदाङ्ग ज्योतिष (याजुष ज्योतिष) जो आचार्य लगध प्रणीत कहा जाता है तथा शास्त्रों में 'कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मन:" से ऐसा सिद्ध होता है कि आचार्य लगध तपोनिष्ठ महात्मा थे। शब्दशास्त्र (व्याकरण) के विमल शब्द रूप जल धारा से अज्ञान अन्धकार को मिटाने वाले आचार्य पाणिनी की तरह प्रकाश स्वरूप ज्योतिष-ज्ञान द्वारा अन्धकार को धोने वाले महात्मा लगध कहे जाते हैं।

लगधाचार्य ने परमाधिक दिनमान ३६ घटी = १४ घण्टा, २४ मिनट के तुल्य जो उल्लेख किया है, तदनुसार यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि लगधाचार्य उत्तर भारत के उत्तर हिमालय की किसी चोटी के समीपस्थ गुफा में तपोनिष्ठ थे। लगधाचार्य ग्रह वेध करने में भी कुशल खगोलज्ञ थे। उन्हीं के कथन से पुष्टि होती है।

याजुष ज्योतिष में उल्लिखित है—

"प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्
दक्षिणार्कस्तु माघश्रावणयो: सदा।
॥श्लोक ७॥

तात्पर्य यह है कि सूर्य और चन्द्रमा जब धनिष्ठा नक्षत्र के आदि में होते हैं तब उत्तरायण और चित्रा नक्षत्र के आधे में होने से दक्षिणायन होता है अर्थात् सदा सूर्य चान्द्र मासों के सम्बन्ध में चान्द्र मास में उत्तरायण एवं श्रावण मास में दक्षिणायन होना कहा गया है।

तथा,

पञ्चसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचि: ॥१॥
ज्यौतिषामयनं पुण्यं प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वश:।
सम्मतं ब्राह्मणेन्द्राणां यज्ञकालासिद्धये ॥२॥

[याजुष ज्यो०]

अर्थात्—

समीचीन यज्ञकाल की सिद्धि के लिए ब्रह्मा को प्रणाम कर पंञ्चसंवत्सरात्मक युगाध्यक्ष शरीर के अवयव युक्त दिन, मास, ऋतु अयन और पुण्य पवित्र वेद नेत्र ब्राह्मणों से सम्मत शास्त्र का वर्णन करता हूं। आचार्य के कथनानुसार ५ वर्ष का एक युग मानने से—

एक युग में सौर वर्ष = ५ = रविभगण।

एक युग में, ५ × १२ = ६० सौर मास

६० × ३० = १८०० दिन।

एक युग में चान्द्रमास = सौर मास + २ चान्द्रमास = ६२ चान्द्रमास। अतः १८६०। से एक युग में क्षय दिन = ३०

तथा इस प्रकार एक युग में सावन दिन = १८६०–३० = १८३० दिन।

एक युग में नक्षत्रोदय = १८३० + ५ = १८३५।

,, ,, ,, चन्द्रभगण = ६०

,, ,, ,, चान्द्र सावन दिन = १८३५–६७ = १७६८।

एक सौर वर्ष के सावन दिन = ३६६

एक सौर वर्ष के चान्द्र दिन = ३७२

एक सौर वर्ष के नक्षत्र दिन = ३६७

तथा एक अयन से द्वितीय अयन तक के सौर दिन = ३६० ÷ २ = १८० एक अयन सम्बन्धी १८० सौर दिन या सौर अंशों में नक्षत्र योग १३°।२०'

$$१३\frac{१}{३} = \frac{४०}{३} \text{ का भाग देने से } \frac{३ \times १८०}{४०} = \frac{२७}{२} = १३।३०$$

$१३\frac{1}{2}$ धनिष्ठादि गणना से द्वितीय अयनारम्भ

अथवा मकर माघादि में उत्तर अयन से ६ महीने कर्कादिश्रावण में दक्षिणायन होना सोपपत्तिक सिद्ध होता है।

"धर्मवृद्धिरपां प्रस्थः अपाह्लास उदगतो·······

अर्थात् उत्तरायण सूर्य में प्रतिदिन एक प्रस्थ के तुल्य दिन वृद्धि तथा तत्तुल्य रात्रि में ह्लास होता है।

१८० × १ = १८० प्रस्थ तुल्य दिन रात्रि का ६ महीनों में क्रमशः वृद्धि-ह्लास हो सकेगा।

सूर्य सञ्चार स्थिति में एक अयन से द्वितीय अयन पर्यन्त दिन और रात्रि मान ३०, ३० घटी होगा।

अर्थात् ६ मुहूर्त्त = ६ × २ = १२ घटी (१ मुहूर्त्त = २ घटी) १ मुहूर्त्त के अनुसार दिन रात्रि के मान में ह्लास और वृद्धि होती है।

जैसे यदि दिन मान = ३६ घटी, तो रात्रि मान = ६०–३६ = २४ तथा रात्रिमान = ३६ तो दिन मान = ६०–३६ = २४।

अर्थात् ३६–२४ = १२ घटी = ६ मुहूर्त्त के तुल्य दिन और रात्रि की क्रमिक वृद्धि उत्तर दक्षिण अयनगत रवि में होगी।

इस प्रकार १५ घटी में ३ घटी तुल्य चर मान मानने से १५ + ३ = १८, १२ को द्विगुणित करने से ३६ घटी परम दिन मान एवं २४ घटी परमाल्प दिन का मान होता है।

भूमण्डल के किस अक्षांश पर उक्त स्थिति घटित हो सकती है, गणित के आधार पर इसका ज्ञान आवश्यक है।

जहाँ पर तीनों चर खण्डों का योग ३ घटी = १ घण्टा १२ मि० उस देश की पलभा से चर साधन क्रिया से यदि पलभा = ८ अंगुल २६ व्यंगुल तो ग्रहलाघव करण ग्रन्थ की चर साधन प्रक्रिया से सायन मेषादि सूर्य (प्रायः आजकल २३ मार्च) की पलभा से ८।२६ × १०, ८।२६ × ८, ८।२६ × $\frac{१०}{३}$ = स्वल्पान्तर से ८४, ६७, २८ अतः ८४ + ६८ + २८ = १८० पल ÷ ६० = ३ घटी चरमान होता है। उज्जयिनी की पलभा = ५।८, उक्त पलभा = ८।२६ दोनों का अन्तर = ३।१८ अर्थात् उज्जैन के अक्षांश २३।१० से भूपृष्ठीय किसी भव्य तपोभूमि में उक्त वेदांग ज्योतिष प्रणेता आचार्य लगध ने जन्म लिया था या वहाँ तपस्या की थी।

$$\text{चापीय त्रिभुज गणित से चरज्या} = \frac{\text{अक्षांश स्पर्श} \times \text{क्रान्तिस्पर्श रेखा}}{\text{त्रिज्या} = \text{व्यासार्ध}}$$

चूँकि चर = ३ और परमक्रान्ति तुल्य दिन में परम क्रान्ति प्राचीन गणितज्ञों के मत से = २४° अतः सूक्ष्म गणित साधन प्रक्रिया से अक्षांश मान = ३४.४५ सिद्ध होते हैं।

वेदाङ्ग ज्योतिष में मुहूर्त्त आदि ज्ञान के लिए वेध से समय ज्ञान का प्रकार ४२वें श्लोक में स्पष्ट है। "कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः" कथन से यह तो ज्ञात होता ही है कि आचार्य लगध हिमालय की गुफा में तप करते थे; साथ ही यह सम्भव है कि महात्मा लगध अमरनाथ काश्मीर या बद्रिकाश्रम के ज्योतिषपीठ में तप करते हुए ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान भी प्रसारित करते रहे होंगे ?

अर्थात् इस प्रकार से वर्त्तमान भारत का शिरोभाग सुदूर कश्मीर से भी उत्तर में वेदाङ्ग ज्योतिष की रचना का स्थान सिद्ध होता है। इससे यह भी फलित होता है कि प्राचीन भारतवर्ष की सीमा वर्त्तमान भारत की सीमा से और आगे उत्तर पश्चिम तक व्याप्त थी।

वेदाङ्ग ज्योतिष प्रणेता के अनुसार ५ वर्ष के एक युग की मान्यता से ५ युग में उत्तरायण + दक्षिणायन = १० होती है। एक अयन से दूसरे अयन तक की दिन संख्या एक चान्द्रवर्ष सम्बन्धी दिन संख्याओं का अर्द्ध भाग होता है। अर्थात् एक चान्द्रवर्षीय चान्द्रदिन संख्या = ३७२ का आधा = ३७२ ÷ २ = १८६, तिथियाँ होगी। १८६ ÷ ३० = ६ चान्द्र

महीने + ६ चान्द्र तिथियाँ होती हैं । प्रथमायन की तिथि में ६ जोड़ देने से द्वितीयापन तिथि का मान = ६ + १ + ६……… = १।७।१३।१९।२५।१।७।१३।१९।२५ तिथियों में दूसरी अयन तिथि होगी, यह स्पष्ट है ।

माघशुक्ल प्रतिपद को प्रथम अयनारम्भ होने से १८६ + १ = १८७ ÷ ३० = ७ अर्थात् श्रावण शुक्ल सप्तमी को द्वितीय अयनारम्भ होना स्पष्ट है ।

इसी प्रकार तीसरा अयनारम्भ माघ शुक्ल त्रयोदशी को हो तो १८६ + १३ = १९९ ÷ ३० = शेष १९।१९-१५ = ४ अतः श्रावणकृष्ण चतुर्थी को द्वितीय अयन होना सिद्ध होता है ।

प्रथमं सप्तमं चाहुरयनाद्यं त्रयोदश ।
चतुर्थं दशमं चैव द्वियुग्माद्यं बहुलेऽप्यृतौ….

इस प्रकार वेदाङ्ग सम्मत वर्तमान पञ्चाङ्ग प्रणाली पर उक्त युक्ति कितनी घटित हो रही है ?—इसपर पाठक स्वयं विचार करेंगे ।

आर्यभट्ट—वेदाङ्ग ज्योतिष के बाद "आर्यभट्ट" की ग्रहगणित का "आर्यभट्टीय"—पौरुषेय ग्रन्थ उपलब्ध है । २३ वर्ष की अवस्था में अर्थात् शक् वर्ष ४२१ (ईसवी सन् ४९९) में आर्यभट्ट ने ज्योतिष सिद्धान्त के 'आर्यभट्टीय' ग्रंथ की रचना कर ली थी ।

आर्यभट्ट में वर्गमूल व घनमूल आदि अंकगणित की प्रक्रिया सर्वांश सूक्ष्म मिलती है । पृथ्वी अपने अक्ष पर भ्रमण करती है—यह बात सर्वप्रथम आर्यभट्ट ने ही कही । आर्यभट्ट के परवर्त्ती गणित आचार्यों में 'लल्ल', 'ब्रह्मगुप्त', वराहमिहिर' आदि आचार्य प्रमुख हैं । इन परवर्त्ती आचार्यों ने आर्यभट्ट के उक्त भू-भ्रमण मत का खण्डन तो नहीं किया, किन्तु स्पष्टतया समर्थन वाक्य भी उपलब्ध नहीं होते हैं । हाँ, "ग्रह का क्रम सूर्य केन्द्राभिप्रायिक है—" यह बात प्राचीन आचार्यों की बुद्धि में भी स्थिर थी ।

आर्यभट्ट के खगोलज्ञ वैशिष्ट्य सूचक स्मारक रूप में आज भी पटना के अति समीप या पटना से लगा हुआ एक गाँव है, जिसका नाम 'खगोल' ग्राम है । पुष्पपुर पटना के नालन्दा जैसे शिक्षा केन्द्र में रहते हुए आर्यभट्ट का इकाई से अरबों खरबों तक की अंक लेखन प्रणाली अपने आप में—अद्भुत कल्पना वैचित्र्य की द्योतक है ।

"क वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गाक्षराणि कात् ङ मौ यः
ख द्विनवके स्वरा नव वर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा ॥"

संक्षेप रूप में आर्यभट्टीय अंक संकेत निम्न प्रकार हैं—

क् + अ = क = १, ख = २, ग = ३, घ = ४, ङ = ५, च = ६, ञ = १०, ट = ११, ण = १५, त = १६, न = २०, प=२१, म=२५, ङ और म ङमौ ५ + २५ = ३०, इसी प्रकार य=३०, र=४०, ल = ५०, व = ६०, श = ७०, ष = ८०, स = ९०, ह=१००

(९) नौ स्वरों अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ को, वर्ग और अवर्गाक्षर में संयुक्त करके इकाई, दहाई आदि १८ स्थान द्योतक अंकों की स्थितियों का परिचायक बताया है ।

जैसे—क् + अ=क=१, क् + इ=कि=१०० कु=१०००

एवम् क् + औ = कौ=१,०००००००००००००००

इसी प्रकार, ख् + अ=ख=२, खि=२०, एवं य=३०, यि=३०००, यु = ३००००० ।

इन अंक संकेतों से पृथ्वी द्वारा सूर्य चतुर्दिक भ्रमण करने से एक युग सम्बन्धी रवि भगण संख्या स्पष्ट होती हैं—"युगरविभगणाः ख्युघृ:" ।

खु = २००००, यु=३०००००, घृ=४०००००० इनका योग=

खु २००००

यु ३०००००

घृ ४००००००

४३२००००

इस प्रकार आर्यभट्ट के, सूर्य सिद्धान्तानुसार 'युगे सूर्यज्ञशुक्राणां खचतुष्करदार्णवाः'—अर्थात् आर्यभट्ट के ४३२०००० के तुल्य हो जाते हैं। आर्यभट्ट के तन्त्र ग्रंथानुसार बने पञ्चाङ्ग दाक्षिणात्य प्रदेश में आज भी प्रचलित एवम् सूक्ष्म माने जाते हैं ।

यद्यपि परवर्त्ती आचार्यों में ब्रह्मगुप्त प्रभृतियों से भले ही सहमति न हो किन्तु नक्षत्र-भ्रमणवत् पृथ्वी की सूर्य के चारों ओर भ्रमणशीलता की दैनन्दिनीय गति का ज्ञान में आर्य-भट्ट ही प्रथम खगोलज्ञ हुए हैं ।

अनुलोभगतिनौंस्थः पश्यत्यचलं विलोमगः यद्वत् ।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम् ।।

आर्यभट्ट ने ग्रहों के भगण मानों में नक्षत्रभ्रम न लिखकर भूभ्रम ही लिखा भी है । "प्राणेनैति कला भूः" अर्थात् ('षड्भिः प्राणै पलम्') १ पल के षष्ठांश में एक विकला चलती है स्पष्ट कहा भी है । अहोरात्र में ६० × ६० × ६=२१६०० 'एक विंशति सहस्राणि' षट् शतानि च' पुराणोक्त प्रमाण सञ्चार भी इसी अभिप्राय से समीचीन हो जाता है ।

उक्त प्रकार के अङ्क संकेतों से अनुमान होता है कि आर्यभट्ट ने किसी यवन ज्योतिविद पण्डित के माध्यम से सूर्यादि ग्रहों के भगण प्राप्त किये होंगे । किन्तु इतना तो निश्चित है कि आर्यभट्ट की अंक कल्पना अपूर्व होने के साथ-साथ विचारणीय है ।

लल्लाचार्य

शके ४२१ (ईसवी सन् ४९९) शाम्ब पौत्र भट्टत्रिविक्रम पुत्र लल्लाचार्य ने शिष्यधीवृद्धिद ग्रहगणित तन्त्र ग्रन्थ की रचना की है । (आचार्यभट्टीय तन्त्र टीका भट्ट दीपिकाकार परमेश्वर के मतानुसार)—

"....आचार्य भटोदितं सुविषमं व्योमोकसां कर्म—
यच्छिष्याणामभिधीयते तदधुना लल्लेन धीवृद्धिदम् ।

विज्ञाय शास्त्रमलमार्यभटप्रणीतं
तन्त्राणि यद्यपि कृतानि तदीयशिष्यैः
कर्मक्रमो न खलु सम्यगुदीरितस्तै
कर्म ब्रवीम्यहमतः क्रमशस्तु सूक्तम् ।"

लल्लाचार्य ने 'शिष्यधीवृद्धि' ग्रन्थ रचना का कारण बताते हुए लल्ल ने स्वयम् को आर्यभट्ट का शिष्य कहा है। किन्तु शके १०३६ (ई० १११४) के ग्रहगणक सार्वभौम आचार्य भास्कराचार्य ने आर्यभटस्य शिष्याः प्रभाकरादयः···कहा है। इससे ज्ञात होता है कि आर्यभट्ट के और भी शिष्य रहे होंगे। विजय, नन्दि, प्रद्युम्न, श्री सेन, लाट आदि को भी आर्यभट्ट का शिष्य कहा जाता है।

लल्लाचार्य की भूपरिधि क्षेत्रफलादि गणित साधन की स्थूलता पर श्री भास्कराचार्य ने स्पष्ट शब्दों में आपत्ति की है। साथ ही गोलफल साधन की सूक्ष्म प्रक्रिया बतलाई है।

चन्द्रश्रृङ्गोन्तत्ति साधन में लल्लाचार्य ने चमत्कारिक गणित किया है, जो प्रत्यक्ष रूप से ठीक दीखता है। किन्तु श्रृङ्गोन्नत्ति गणित साधन प्रक्रियानिश्चय ही त्रुटिपूर्ण है, जिसपर भास्कराचार्य ने बहुत कुछ कह दिया है।

वराह या वराहमिहिर या वराहमिहर

अलविरूनी [Albiruni] के अनुसार शके ४२७ [ईसवी सन् ५०५] काम्पिल्लक, वर्त्तमान काल्पी नगर में सूर्य देवता के परम उपासक श्री आदित्यदास के सुपुत्र श्री वराह ने जन्म लिया था। अपने पिता से ज्योतिष विद्या प्राप्तकर ज्योतिष सिद्धान्त ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन किया। इस गहन अध्ययन और मनन चिन्तन के फलस्वरूप अवन्ती सम्राट से समादरित होकर वराहमिहिर ने लघुजातक, बृहज्जातक, विवाह पटल, बृहत्संहिता, योग यात्रा और पञ्चसिद्धान्तिका ग्रन्थों की रचना की।

कुछ ऐतिहासिकों के मतानुसार वराह मगध द्विज थे। इस सन्दर्भ में विद्वानों का मत है कि अपने पिता से आर्यभट्टीय प्रभृति ग्रन्थों का अध्यन करने के बाद आजीविका प्राप्ति के लिए वराह मगध से अवन्ती आये जहाँ राज्याभूषित वीर विक्रम की राजधानी में वराह समादरित हुए।

यवन देशीय विद्वानों से वराह का सम्पर्क हो चुका था। वराहाचार्य ने यवनों की विशेष संस्तुति भी की है। जैसा कि पहले भी कह आए हैं—"म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम् ।"

"बृहज्जातक" में मेषादि द्वादश राशियों तथा अन्य स्थलों के योगादिकों में क्रिय, तावुरि, जितुम, लेय, प्राचोन, यूक या जूक, कौर्प्य, तौक्षिक, आकोकेर, हृद्रोग, इत्थम्, हेलि, हिमन, कोण, आस्फुजित् होरा, अनफा, सुनफा, दुरुधरा, केमद्रुम, वेशि, पणकर, हिवुक, द्यूनम्, द्यूतम्, कुलीर और त्रिकोण इत्यादि अनेक यवनों अर्थात् ग्रीक भाषा के शब्दाचार्यों के नाम क्रम वराह ने प्रस्तुत किये हैं। इस सन्दर्भ में विशेष जानकारी हेतु वेबर [weber] के

ग्रन्थ—Gmdische Leteratur Glschichte, Page No. २२७ को सम्यक् रूप के देखा जा सकता है।

अनुमान के आधार पर कहा जा सकता है कि वराह की अन्तिम ग्रंथ-रचना "बृहत्संहिता" है। 'बृहज्जातक' ग्रन्थ पर भट्टोत्पल महादेव, महीधर, केरली टीका के उपरान्त अनेक आचार्यों ने तत्समय में टीका रची है। 'बृहज्जातक' में मय, यवन मणित्थ, शक्ति, विष्णुगुप्त, देवस्वामी, सिद्धसेन, जीवशर्म, सत्याचार्य आदि आचार्यों के नाम वराहाचार्य ने स्वयं दिये हैं।

वराहाचार्य के 'पञ्चसिद्धान्तिका' के पन्द्रहवें अध्याय के बीसवें श्लोक में लङ्का की अर्द्धरात्रि तथा लङ्का के सूर्योदय समय में दिनप्रवृत्ति का उल्लेख आर्यभट्ट के अनुसार किया है।

"लङ्कार्धरात्रसमये दिनप्रवृत्तिं जगाद च आर्यभट्टः
भूयः स एव सूर्योदयात् प्रभृत्याह लङ्कायाम्।"

इस प्रकार वाराहाचार्य ने दिन प्रवृत्ति के दोमत व्यक्त किये हैं। किन्तु आर्यभट्टीत्र तन्त्र में सूर्योदय से ही दिन प्रवृत्ति का सयय कहा गया है। वराहचार्य की 'पञ्चसिद्धान्तिका' अवश्य ही ग्रहगणितज्ञों के लिए विशेष समादरणीय है। किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि वराह का स्थान ज्योतिष के तीनों स्कन्धों (सिद्धान्त, संहिता, होर) में अप्रतिम पाण्डित्य आजतक अपने स्थान की इकाई पर ही है।

ब्रह्मगुप्त

शक ५२० (ई० सन् ५९८) बघेलवंशीय व्याघ्रमुख राजा के शासन काल में विष्णु-धर्मोत्तर पुराणान्तर्गत् ब्रह्मसिद्धान्त के अनुसार चापवंशीय जिष्णुगुप्त के पुत्र ने ३० वर्ष की अवस्था में अर्थात् शक् ५५० (ई० सन् ६२८) में ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, एवं खण्डखाद्य नामक करण ग्रन्थ की रचना की थी। ब्रह्मगुप्त विष्णुगुप्त के पौत्र एवं जिष्णुगुप्त के पुत्र होने के कारण वैश्य जाति के समझे जाते हैं।

भास्कराचार्य के 'ब्रह्माह्वयश्रीधरपद्मनाभ बीजानि यस्मादति विस्मृतानि' इस उल्लेख से ज्ञात होता हैं कि ब्रह्मगुप्त का भी कोई बीजगणित नाम का ग्रन्थ था। जिसका इङ्गलिश अनुवाद ईसवी १८१७ में कोलब्रुक साहब ने किया है। इसी प्रकार ब्रह्मगुप्त के ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त के १२ वें अध्याय, ब्रह्मगुप्त के व्यक्त अंकगणित और भास्कराचार्य की पाटी अंकगणित एवं बीजगणित का अंग्रेजी अनुवाद भी उपलब्ध हैं। भास्कराचार्य ने अपने सिद्धान्त शिरोमणि के प्रारम्भ में लिखा है—

"कृती जयति जिष्णुजो गणकचक्रचूडामणि—
र्जयन्ति ललितोक्तयः प्रथिततन्त्रसद्युक्तयः।
वराहमिहिरादयः समवलोक्य एषां कृतीः
कृती भवति मादृशोऽप्यतनु तन्त्रबन्धेऽल्पधीः॥"

इस प्रकार भास्कराचार्य ने गणकचक्रचूड़ामणि शब्द से ब्रह्मगुप्त के साथ आचार्य वराह की भी स्तुति की है। ब्रह्मगुप्त के ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त पर चतुर्वेदाचार्य पृथूदक स्वामी की वासनाभाष्य नाम की टीका प्रसिद्ध है। ब्रह्मगुप्त स्वयम् नलिकावेध से ग्रहगणित को प्रामणिक मानते हैं। उदाहृणार्थ निम्नश्लोक इस बात का स्पष्टोकरण है—

"ब्रह्मोक्तं ग्रहगणितं महता कालेन यत्खिलीभूतम्,
अभिधीयते स्फुटं तज्जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन।
संसाध्य स्पष्टतरं वीजं नलिकादियन्त्रेण,
तत्संस्कृतग्रहेभ्यः कर्त्तव्यौ निर्णयादेशौ॥"

निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि अपने समय से आजतक के गणिताचार्यों में आचाय ब्रह्मगुप्त गणित गोल धरातल में ऐतिहासिक खगोलज्ञ हुए हैं।

मुञ्जाल का लघुमानस करण

श्री मुञ्जाल ने शक ५८४ (ई० सन् ६६२) में 'लघुमानस' नामक करण ग्रन्थ की रचना की। प्रस्तुत ग्रन्थ में ग्रहों के ध्रुवक साधन कर वहाँ से इष्ट समय तक का अहर्गण से साधित ग्रह में ध्रुवक संस्कार से इष्टदिन के ग्रहों का संसाधन किया है। भास्कराचार्य ने अपने "सिद्धान्तशिरोमणि" में अयन चलन के सन्दर्भ में 'मुञ्जाल' का उल्लेख किया है—

"अयन चलनं यदुक्तं मुञ्जालाद्यैः स एवाऽयम्।"

मुञ्जाल के मत से ४३४ शक में, अयनांश का अभाव ज्ञात होता है।

श्रीपति या "श्रीपतिभट्ट"

श्रीपति भट्ट का समय शके ९२१ (ई० सन् ९९९) में रहा है। श्रीपति भट्ट ने वर्त्तमान समय में अनुपलब्ध पाटी गणित, बीजगणित और सिद्धान्त शेखर नामक ग्रन्थों की रचना की है। इनका ज्योतिष के तीनों स्कन्धों में अप्रतिम पाण्डित्य है। फलित ज्योतिष में भी श्रीपति पद्धति, रत्नावलि, रत्नसार, रत्नमाला, धीकोटि नामक ग्रन्थ रहे हैं। ज्योतिष-फलित रत्नमाला ग्रन्थ की शैली सर्वोत्तम है। व्यापक पाण्डित्य के साथ-साथ श्रीपति भट्ट की कृतियों से उनके शील सौजन्य का परिचय प्राप्त होता है।

ब्रह्मदेव—ब्रह्मदेव का शके १०१४ (ई० सन् १०९२) में "करण प्रकाश" नामक ग्रन्थ मिलता हैं—ऐसा आर्यभटानुसार उल्लिखित है। उक्त ग्रन्थ के आधार पर निर्मित पञ्चाङ्गों की तिथि आदि, का उपयोग माध्वसम्प्रदाय के वैष्णवों में बहुतायत से प्रचलित है।

शतानन्द—आचार्य वराहमिहिर से स्वीकृत 'सूर्यसिद्धान्त' के अनुसार शके १०२१ (ई० सन् १०९९) में शतानन्द से 'भास्वती' नामक कारण ग्रन्थ लिखा गया, ऐसा ज्ञात होता है। शतानन्द के मत से ४५० शके में अयनांश का अभाव है।

भूमण्डल की भारतभूमि में भास्करावतार "भास्कराचार्य"

शके १०३६ (ई० सन् १११४) में सह्य पर्वत के समीप शाण्डित्य गोत्र में बिज्जडविड

(आधुनिक बीजापुर) में श्रीमान् १०८ श्री महेश्वर उपाध्याय के पुत्र भास्कराचार्य का जन्म हुआ।

भास्कर रचित सिद्धान्त शिरोमणि ग्रन्थ, में स्वयं श्री भास्कराचार्य ने विष्णुधर्मोत्तर पुराण को आगम कहा है। बासुदेव सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरूद्ध नाम की मूर्ति भेदों की चर्चा से अनुमान होता है कि श्रीमद्भास्कराचार्य वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इन्होंने अंकगणित में लीलावती, बीजगणित में बीजगणित, सिद्धान्त शिरोमणि ग्रहगोलाध्याय, सिद्धान्त शिरोमणि ग्रहगणिताध्याय एवं करण ग्रन्थों में करण कुतूहल नामक ग्रन्थ की रचना की है। सभी ग्रन्थ उपलब्ध हैं। सिद्धान्त शिरोमणि के ग्रहों को ब्रह्मासिद्धान्त के तुल्य मानते हुए स्वयम् भास्कराचार्य ने स्पष्ट कहा है—

"यथात्र ग्रन्थे ब्रह्मगुप्तागमः स्वीकृतः।" ग्रहगणित ज्योतिष में भास्कराचार्य एक अप्रतिम, अनुपम चमत्कारिक खगोल वेत्ता होते हुए सर्वशास्त्रज्ञ ऐतिहासिक विद्वान हुए हैं।

भास्कर के गणिताध्याय के प्रथम श्लोक के वार्तिककार नृसिंह दैवज्ञ ने स्वयं लिखा है, जिसका अनुवाद रूप प्रस्तुत है—

"मुनिश्रेष्ठ शाण्डिल्य गोत्रावतंस, कुम्भोदभवालङ्कृत, दिगङ्गनाओं का भूषणसर्वस्व, सह्यकुलाचलाश्रित विज्जडविड नगर निवासी पवित्रितदण्डकारण्य, अनेक यज्ञार्जित पुण्य श्लोक, याज्ञिकों का अग्रणी, यजुः शाखियों का उपाध्याय, सांवत्सरिकों का आचार्य, काव्यनाटकालंकार वेत्ताओंका अध्यापयिता, श्रीवृद्धिद का उपायकारक, ब्रह्मवसिष्ठ गणित तुल्य सर्वतोभद्रादि यन्त्र निर्माता, महाराष्ट्रियों का आश्रयदाता, श्री महेश्वराचार्य का नन्दन (पुत्र) परमकारुणिक, श्रीधर, ब्रह्मगुप्त, लल्ल, चतुर्वेदाचार्य निर्मित अपार गणितसागर-सार विचार से परिपूर्ण श्री भास्कराचार्य सिद्धान्त शिरोमणि ग्रन्थारम्भ कर रहे हैं।" इत्यादि से आचार्य भास्कर की स्तुति की गई है।

वस्तुतः लीलावती में चतुर्भुज क्षेत्र गणित का नियतत्व, वृत्त पृष्ठ घनफल साधन, श्रेढ़ी गणित में गुणोत्तर श्रेढ़ी का सर्वफल साधन, एकाद्वित्र्यादि मूषावहन, अंकपाश गणित, बीजगणित में अवगङ्कि का मूल्यज्ञापन, योगान्तरादि साधन, कुट्टक वर्गप्रकृति जैसे अलौकिक गणितज्ञान, एकवर्ण समीकरण में प्रश्नसाधन की अभूत कल्पना, अनेक वर्ण समीकरण में कल्पना लाघव, वर्ग समीकरण में दो प्रकार का मान साधन, पद्मनाभादि बीजगणित में दोष दर्शन, भावित गणित में चमत्कार दर्शन, ग्रहगणित में भगणोपपत्ति दर्शन, युगचतुष्टय सहस्र में ब्रह्मादिक की उपपत्ति, ग्रहों में उदयान्तर गणित संस्कार का आविष्कार, लघुज्या प्रकार से ज्या साधन, तात्कालिक भोग्यखण्ड साधन, तात्कालिक ग्रहगति साधन, कोणशङ्कु का एक ही प्रकार के एक वार से कोणशंकु का साधन, एक ही सिद्धान्त से सर्वदिक् छाया साधन, प्रश्नाध्याय और उनके स्पष्टीकरण की युक्ति, सूर्य-चन्द्र ग्रहण में भूमा लम्बन, इष्टकालिक ग्रास साधन, स्पष्टशरज्ञान, अयनाक्षवकर्म साधन, स्पष्टक्रान्तिज्ञान, नित्योदित नक्षत्र स्वरूप वर्णन, पाताधिकार में चन्द्रगोल अयन सन्धि गणित साधन, गोलाध्याय में भूपृष्ठ साधन की उपपत्ति,

लल्ल खण्डन, ६६ अंश अक्षांश से अधिक अक्षांश देशीय भूपृष्ठ देशों का विशेष विचार लल्लाचार्य के उत्क्रम ज्या से वलन साधन का त्रुटि प्रदर्शन, यन्त्राध्याय में अनेक यन्त्रों का निर्माण, ग्रहवेध वर्णन, महाप्रश्न करण के साथ प्रश्नाध्याय में जटिल प्रश्नों की समाधान युक्ति इत्यादि गणितज्ञों के लिए भास्कराचार्य का अद्भुत गणित कौशल चिरस्मरणीय ही नहीं अपितु मार्गदर्शक है और रहेगा ।

१. लीलावती ग्रन्थ के सम्बन्ध में अनेक किवदन्तियाँ हैं कि ग्रन्थ का नामकरण लीलावती क्यों और कैसे हुआ ? जिस प्रकार इसके दूसरे भाग का नाम बीजगणित है, उसी प्रकार ग्रन्थ का नाम अंकगणित पर्याप्त था । लीलावती नामकरण क्यों हुआ ?

२. अनभिज्ञ जन ही यह कहने का साहस करेंगे कि लीलावती नाम की भास्कराचार्य की कन्या थी, इसी से पुत्री के नामपर ग्रन्थ का नाम लीलावती रखा । जबकि सम्पूर्ण ग्रन्थ का अध्ययन करने पर मन में उक्त कल्पना आ ही नहीं सकती ।

३. हाँ, यह सम्भव है कि लीलावती उनकी पत्नी का नाम रहा हो । भास्कराचार्य ने अपने ग्रन्थ में 'कृती भास्करः' से अपने नाम का और अर्द्धाङ्ग के सन्दर्भ में पत्नी का नामोल्लेख किया है ।

जैसे भिन्न परिक्रमाष्टक प्रकरण के प्रारम्भ में मंगलादि गणेशस्तुति करते हुए लिखते हैं—

"लीलागलल्लुलल्लोलकालव्यालविलासिने,
गणेशाय नमो नीलकमलामलकान्तये ।"

इस प्रकार 'लीला' शब्द से ग्रन्थारम्भ हुआ है ।

योगफल के लिए प्रश्न हुआ है—

"अये बाले लीलावती मतिमति ! .. अंकों को जोड़कर योगफल बताओ ? इसप्रकार स्थान-स्थान पर लीला या 'लीलावती' शब्द प्रयुक्त है । जैसे गुणनफल के प्रश्न में सम्बोधन पूर्वक, अंकों के घन और घनमूल के प्रश्न में, विलोम गणित में, विश्लेषणात्युदाहरण में, मूलोन दृष्ट गणित आदि में यत्र-तत्र उक्त 'लीला' या 'लीलावती' शब्द का प्रयोग निम्न प्रकार हुआ है—

"बाले ! बालकुरङ्गलोलनयने लीलावति ! प्रोच्यताम् ।"
"नवघनं त्रिघनस्य घनं....तथा कथय पञ्चघनस्य घनं च मे,
घनपदं च ततोऽपि घनात् सखे ! यदि घनास्ति घने भवतो मतिः ।"
"राशि वेत्सि हि चञ्चलाक्षि ! विमलां बाले ! विलोमक्रियाम् ।"
"कान्ते ! केतकमालतो परिमल प्राप्तैक कालक्रिया"
"बाले बालमृणालशालिनि जले केलिक्रियालालसम् ।" तथा
"अलिकुलदलमूलमालतीयातमष्टौ निखिल नवम् भागाश्चालिनीभृङ्गमेकम् ।"

"निशि परिमल लुब्धं पद्ममध्ये निरूद्धम्।
प्रति रणति रणन्तं ब्रूहि कान्तेऽलि संख्याम्॥"

इत्यादि उक्त संबोधनों से कोई भी बुद्धिजीवी निःसंकोच कह सकता है कि लीलावती भास्कराचार्य की पुत्री नहीं पत्नी हो सकती है। लीलावती ग्रन्थ का अन्तिम श्लोक इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि भास्कराचार्य की पत्नी का नाम लीलावती था।

"येषां सुजातिगुणवर्गविभूषिताङ्गी शुद्धाऽखिल व्यवहृतिः खलु कण्ठसक्ता।
लीलावतीह सरसोक्तिमुदाहरन्ती तेषां सदैव सुखसम्पदुपैति वृद्धिम्॥"

उक्त श्लोक के स्पष्टतः दो अभिप्राय हैं—

(१) **भावार्थ**—"जिन शिष्यों को जोड़ घटाना, गुणन, भाग, वर्गघन आदि व्यवहारों, गणित के अवयवों निर्दोषगणित आदि से विभूषित लीलावती ग्रन्थ कण्ठस्थ होता है उनकी गणित सम्पत्ति सदा वर्द्धमान होती है।"

(२) **भावार्थ**—"उच्चकुल परम्परा में उत्पन्न, सुन्दर सुशील, गुणसम्पत्तिसम्पन्न, स्वच्छ व्यवहारप्रिया, सुकोमल एवं मधुर भाषिणी पत्नी जिनके कण्ठसक्ता हो अर्थात् अर्द्धाङ्गिनी हो उनकी सुख सम्पत्ति इस जगत् में सदा सुखद, शुभद एवं वर्धमान होती है।"

अतएव उक्त सद्गुण सम्पन्ना आर्या लीलावती नाम की श्रीमती को आचार्य भास्कर की अर्द्धाङ्गिनी होने का ऐतिहासिक गौरव प्राप्त है।

यहाँ भास्कराचार्य की बीजगणित कल्पना कौशल का उदाहरण देना आवश्यक समझता हूँ। जैसे—

"त्रिभिः पारावता पञ्च, पञ्चभिः सप्त सारसाः
सप्तभिर्नवहंसाश्च नवभिर्वर्हिणां त्रयम्।
द्रमैरवाप्यते द्रमशतेन शतमानय।
एषां पारावतादीनां विनोदार्थं महीपतेः॥"

अर्थात् श्रीमान् राजा के विनोदार्थ १०० द्रम ['वराटकानां दशकद्वयम् सत्साकाकिणीति]' [२० कौडी = १ काकिणी, ४ काकिणी = १ पण, तथा १६ पण = १ द्रम लगभग आज का २५ पैसा] ले जाओ और पारावत, सारस, हंसा और मोर इन चार पक्षियों का योग भी जैसे १०० संख्या हो वैसे ले आओ, जब कि ३ द्रम में ५ पारावत ५ द्रम में ७ सारस, ७ द्रम में ९ हंस और ९ द्रम में ३ मोर मिलते हैं।

आचार्य ने ऐसे स्थल पर पारावतादिकों के मूल्य गुणित अव्यक्त कल्पनाकर समीकरण बनाया है। जैसे आजकल की कल्पना—अ, क, ग, ल....की जगह प्राक्कालीन बीजगणितीय कल्पना—समरंग सम्बन्धेन, कालक, पीतक, लोहित, अभ्रक, श्वेतक....आदि थी। मूल्य अव्यक्त एवं पक्षी अव्यक्त कल्पना से—

$$३ \text{ या} + ५ \text{ का} + ७ \text{ नी} + ९ \text{ पी} = १००$$

$$\therefore \text{ या} = \frac{१०० - ५ \text{ का} - ७ \text{ नी} - ९ \text{ पी}}{३} = \text{अ}$$

$$\text{तथा या} = \frac{१०० - ७ \text{ का} - ९ \text{ नी} - ३ \text{ पी}}{७} = \text{क}$$

या = या = अ = अ से

का ५० − २ नी − ९ पी

$$\text{यदि पी} = ४ \text{ कल्पना करें तो का} = \frac{१४ - २ \text{ नी}}{१}$$

ऐसे स्थान पर भास्कर का विश्व प्रसिद्ध कुट्टक गणित उपयोगी सिद्ध होता है। देखिये, भास्कराचार्य का कुट्टक गणित—

लब्धि = १४ − २ लोहितक

गुण = १ + ० लोहितक

अपने अपने मानों में उत्थापन देने से—या = १ लो − २

यदि लोहितक का मान इष्ट = ३

तो या = १, का = ८, नी = ३, पी = ४

इस प्रकार मूल्य और जीव पक्षियों के समीकरण में उत्थापन देने से

पक्षी = ५ पारावत + ५६ सारस + २७ हंस + १२ मोर = १००

मूल्य = ३ द्रम + ४० द्रम + २१ द्रम + ३६ द्रम = १००

यदि लो = ४

तो या = २, ६, ४, ४

पक्षी = १० + ४२ + ३६ + १२ = १००

मूल्य = ६ + ३० + २८ + ३६ = १००

तथा लो = ५ तो या = ३, ४, ५, ४

पक्षी = १५ + २८ + ४५ + १२ = १००

मूल्य = ९ + २० + ३५ + ३६ = १००

इस प्रकार भास्कराचार्य ने इष्टकल्पनावश अनेक प्रकार के उत्तरों का संकेत किया है। यहाँ पर शतान्तर्वर्त्ती द्रव्य एवं पक्षी होने से १६ प्रकार के ही उत्तर होंगे।

अंकगणित (लीलावती) के अनेक गणित चमत्कारों में से यहाँ मात्र एक ही उदाहरण देना पर्याप्त एवं प्रासंगिक होगा।

तथा और एक दृष्टव्य उदाहरण—

प्रश्न है, २ और ८ तथा ३, ९ और ८ एवं २ से लेकर ९ पर्यन्त अङ्कों से बनने वाली कितनी संख्यायें होंगी और उनका योग क्या होगा ?

जितने स्थानों में अङ्क हैं उतने स्थान तक १ × २ × ३....से जो गुणनफल होंगे, उतने ही भेद होंगे। अङ्क भेदोपभेद संख्या का उन अङ्कों के योग से गुणाकर, स्थान संख्या तुल्य

संख्या से भाग देकर लब्धफल को एक-एक स्थान से दाहिनी तरफ बढ़ाते हुए लिखकर जोड़ करने से उस अंक के भेदों का योग हो जाता है। जैसे—२, ८ में अङ्क स्थान = २ है। अतः १ × २ = भेद होते हैं।

(१) $\frac{\text{भेद} \times \text{अङ्कयोग}}{\text{स्थान मिति}} = \frac{२ \times १०}{२}$ = १० को दहाई की तरफ एक-एक स्थान बढ़ाने और जोड़ने से—१०

$\frac{१०}{११०}$ होता है।

छोटा अङ्क है, अतः पड़ताल से = २८, या ८२ का योग = ११०

(२) ३, ९, ८ के भेद = १ × २ × ३ = ६

तथा ३ + ९ + ८ = २० अङ्क योग, अङ्क स्थान = ३

अतः $\frac{२० \times ६}{३}$ = ४० को दाहिनी तरफ एक-एक स्थान हटाकर स्थान भेदों की तुल्य पंक्ति में लिखकर जोड़ने से = ४०

```
  ४०
   ४०
४४४०
```

छोटा अङ्क है, अतः प्रमाण प्रतीति के लिए—

```
 ३९८
 ३८९
 ३८३
 ९३८
 ८९३
 ८३९
────
४८४०
```

४८४० पूर्व योगफल के समान अंक योग होता है।

(३) २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ का स्थान = ८

भेद = १ × २ × ३ × ४ × ५ × ६ × ७ × ८ = ४०३२०

$\frac{४०३२० \times ४४}{८}$ = २२१७६० को एक-एक स्थान दाहिने हटाकर लिखने और जोड़ने से योग = २४६३९९९९७५३६०। यह है भास्कराचार्य का अद्भुत चमत्कारिक गणित। यदि कहीं एक ही समान अंक होंगे तो उनके लिए भी पृथक् नियम बने हैं।

महादेव—शके १२३८ [ई० सन् १३१६] में पितामह आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य की सिद्धान्त शिरोमणि के आधार पर महादेव ने लाघव प्रकार से ग्रहसाधन 'महादेवी सारणी' निर्मित की है।

इसी सारणी की आकृति रूप 'महादेवी' नाम की अन्य सारणी मदनसूरि शिष्य, मलयेन्दुसूरि का गुरू, फिरोज़शाह तुग़लक़ नामक यवन बादशाह के प्रधान सभा पण्डित नृसिंह दैवज्ञ ने १४८० [ई० सन् १५५८] में उत्तर-दक्षिण ध्रुव द्वय दृष्टि से विषुवद्वृत्त के धरातलीय भू पृष्ठ पर सभी वृत्तों को परिणामित कर 'यन्त्रराज' नामक यन्त्र और ग्रन्थ की रचना की है। इन्हीं के शिष्य मलयेन्दुसूरि ने उदाहरण स्वरूप टीका लिखी है। इस ग्रन्थ में ५४ विकला अयनांश गति मानी गई हैं, जो प्रायः सूर्य सिद्धान्त से मिलती है। यह ग्रन्थ पारसीक भाषा के ग्रन्थ का संस्कृत अनुवाद प्रतीत होता है।

श्री महादेव—श्री महादेव गोदातीर त्र्यम्बक नामक राजा की राजसभा के प्रधान पण्डित थे। ब्रह्मसिद्धान्त और आर्यभट्ट के अनुसार शक १२७९ [ई० सन्–१३५७] में 'कामधेनु' नामक ग्रन्थ की रचना की है।

श्री गङ्गाधर—विन्ध्याचल के दक्षिण सगर नगर निवासी चन्द्रभट्ट के पुत्र श्री गङ्गाधर ने ४५३५ वर्ष गत कलि में शके १३५६ [ई० सन् १४३४] में वर्त्तमान प्रचलित सूर्य सिद्धान्त के अनुसार 'चान्द्रमानाभिधान' नामक ग्रन्थ रचना की है।

श्री मकरन्द—शके १४०० [ई० सन् १४७८] में सूर्य सिद्धान्त गणित के अनुसार पञ्चाङ्ग साधनोपयोग ग्रन्थ की रचना अपने ही नाम 'श्री मकरन्द सारणी' की रचना की है। मकरन्द सारणी प्रायः उत्तर भारत में सर्वत्र प्रसिद्धि को प्राप्त हुई है।

श्री केशव—शके १३७८ [ई० सन् १४५६] में कौशिक गोत्रीय श्री कमलाकर के पुत्र, श्री वैद्यनाथ के शिष्य और प्रसिद्ध गणेश दैवज्ञ के पिता का नाम श्री केशव दैवज्ञ हैं। पश्चिम समुद्र तटवर्ती नन्दिग्राम में इनका जन्म हुआ था। इनकी अनेक ग्रन्थ रचनाओं में—ग्रहकौतुक, वर्षग्रहसिद्धि, तिथिसिद्धि, जातक पद्धति, जातक पद्धति विवृत्ति, ताजक पद्धति, सिद्धान्त वासना पाठ, मुहूर्त्त तत्व, कुण्डाष्टक लक्षण, गणित दीपिका और कायस्थादि धर्म पद्धति विशेष प्रसिद्ध हैं।

लक्ष्मीदास—उपमन्यु गोत्रीय श्री केशव पौत्र लक्ष्मीदास शके १४४२ [ई० सन् १५२०] में श्री भास्कराचार्य सिद्धांत शिरोमणि ग्रन्थ की उदाहरण सहिता टीकाकार हुए हैं।

ज्ञान राज—ज्ञानराज ने शके १४२५ [ई० सन् १५०३] में 'सिद्धांत सुन्दर' नामक ग्रहगणितीय ज्योतिष ग्रन्थ की रचना की है। इनमें स्थल विशेष पर पुराणमत समर्थन के साथ भास्कराचार्य-मत का खण्डन भी मिलता है।

ज्ञानराज ने भास्कराचार्य के शिरोमणि ग्रन्थ का खण्डन, "चन्द्रविम्ब सूर्य किरण सम्बन्ध से दृष्य नहीं होता"—इस तरह किया है। इस प्रकार ज्ञानराज भास्कराचार्य के शुक्लाङ्गुल साधन के अवसर पर "तरणि किरणसङ्गादेषपीयूषपिण्डो" सूर्याभिमुख चन्द्रविम्ब उज्जवल एवं विपरीत में कृष्ण से शुक्लाशुक्ल चन्द्रबिम्ब को दृश्यादृश्य बिम्ब सम्मात जन्य शृङ्गाकृति जैसे सूक्ष्म गणित सिद्धान्त इत्यादि का खण्डन किया है।

श्री गणेश—

उक्त खगोल गणितज्ञ आचार्यों की परम्परा में प्रकृत श्री गणेश के पिता व गुरु केशव माता लक्ष्मी के गर्भ में श्री भगवान गणेश के अवतार स्वरूप गणेश दैवज्ञ का जन्म शके १४२९ [ई० सन् १५०७] में हुआ। गणेश ने अपनी तेरह वर्ष की छोटी अवस्था में ही ग्रहलाघव करण ग्रन्थ की रचना कर ली थी। वह चिरात जनश्रुति प्रसिद्ध है। ग्रहलाघव करण ग्रन्थ के आरम्भ में शक १४४२ से अहर्गण साधन किया है, जिससे १४४२-१४२९ = १३ वर्ष ज्ञात होता है।

ग्रहलाघव ग्रन्थ के अध्ययन से यह ज्ञात होता हैं कि लम्बे-चौड़े अरबों सख्या के अङ्कों का अपवर्त्तनाङ्क समझ कर उनके स्थान पर छोटे अपवर्त्तित अंकों के माध्यम से, तथा ज्याचाप की क्लिष्ट गणित पद्धति के स्थान पर सर्वसुलभ लघु प्रणाली का प्रचलन के कारण से इस ग्रहसाधन ग्रन्थ की 'ग्रहलाघव' संज्ञा हुई है।

आचार्य गणेश ने—ग्रहलाघव, लघुतिथि चिन्तामणि, वृहत्तिथि चिन्तामणि, सिद्धान्त शिरोमणि टीका, लीलावती टीका, विवाह वृन्दावन टीका, मुहूर्त्त तत्त्व टीका, श्राद्धादिनिर्णय, छन्दोऽर्णव टीका, सुधीरञ्जनी, तर्जनीयन्त्रम्, कृष्ण जन्माष्टमी निर्णय, होलिका निर्णय, इत्यादि अनेककान्थ रचना से ज्योतिष-शास्त्र का भण्डार भरा है। ज्योतिष शास्त्र के प्रगल्भ पाण्डित्य विशेष के साथ-साथ आचार्य गणेश की अन्य रचनाओं से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि श्री गणेश में काव्य साहित्यादि का पूर्ण एवं व्यापक पाण्डित्य है।

बृहत्तिथ्यादि में स्वयं आचार्य गणेश का कथन उल्लेख्य है—

ब्रह्माचार्यवसिष्ठकश्यपमुखैर्यत्खेटकर्मोदितं
तत् तत्कालजमेव तत्थ्यमथ तद्भूरिक्षणेऽभूच्छलथम्,
प्रपातोऽथ मयासुर कृतयुगान्तेऽर्कात् स्फुटं तोषितात्।
तच्चास्ति स्म कलौ तु सान्तरमथाऽभूच्चारु पाराशरम्,
तजज्ञात्वार्यभट्टः खिलं बहुतिथे कालेऽकरोत्स्फुटम्।
तत् स्रस्तं किल दुर्गसिहमिहिराद्यैस्तान्निबद्धं स्फुटम्॥
तच्चाभूच्छिथिलं वु जिष्णुतनयनाऽकारि वेधात्स्फुटम्,
ब्रह्मोक्त्याश्रितमेतदाप्यथ बहौ कालेऽभवत् सान्तरम्॥
श्री केशवः स्फुटतरं कृतवान् हि सौरार्या—
सन्नमेतदपि पष्टिमिते गतेऽव्दे—
दृष्ट्वा श्लथं किमपितत्तनयो गणेशः।
स्पष्टं यथा ह्यकृत् दृग्गणितैक्यमत्र,
कथमपि यदिदं भूरिकाले श्लथं स्यात्।
मुहुरपि परिलक्षेन्दुग्ग्रहाद्यृक्षयोग्यम्,
सदमलगुरुतुल्यप्राप्तबुद्धिप्रकाशैः ।
कथितसदुपपत्त्या शुद्धि केन्द्रे प्रचाल्ये॥

इस प्रकार वाराहाचार्य ने अपनी पञ्चसिद्धान्तिका में १—पौलिश, २—रोमक, ३—वासिष्ठ, ४—सौर, एवं ५—पैतामह इन पाँचों में सूर्य सिद्धान्त का गणित "स्पष्टतर सविता" से सूक्ष्म कहा है। तदुपरि के आचर्यों ने सौर सिद्धान्त की अपेक्षा आर्यभट्ट का गणित अधिक सूक्ष्म माना। कालान्तर में आर्यभट्ट का ग्रहगणित स्थूल हो जाने से ब्रह्मगुप्त का वेधसिद्ध ग्रहगणित सूक्ष्म हुआ। किन्तु बहुकालान्तर में ब्रह्मगुप्त गणित की स्थूलता को समझ कर श्री केशवाचार्य ने सौर एवं आर्य-सिद्धान्त के समीप का वेधसिद्ध ग्रहगणित स्वीकार किया है। इस उत्तरोत्तर गणित-सूक्ष्मता प्राप्ति के लिए आचार्य गणेश ने स्पष्ट दृग्गणितैक्य सिद्ध ग्रहगणित साधन पद्धति से भारतीय ज्योतिष को समुज्वल किया है। इस सन्दर्भ में आचार्य गणेश का मत स्पष्ट है—"इस प्रकार के गणित के स्थूल भय को दूर करने के लिये सूर्यचन्द्रग्रहणादि प्रत्यक्ष दृग्योग्यता संपादनार्थ समय-समय पर वेधादि विचार से उत्पन्न त्रुटियाँ दूर करते हुए प्रश्न का समाधान करते रहना चाहिए। अर्थात् सूक्ष्मता प्राप्ति हेतु ग्रहों में संस्कारान्तर स्वीकृत करने चाहिए।

सम्प्रति यह आशा की जा सकती है कि वर्त्तमान दृश्य एवम् अदृश्य पञ्चाङ्गों का भयंकर विवाद उक्त प्रमाणों से समाप्त हो जा सकेगा।

श्री विष्णु दैवज्ञ—शक १४७८ (ई० सन् १५५६) में दिवाकर दैवज्ञ के पुत्र, कृष्ण दैवज्ञ के अनुज श्री विष्णु दैवज्ञ ने सौरपक्षीय करण ग्रन्थ की रचना शके १५३० में की है, जिस पर उन्हीं के भाई श्री विश्वनाथ दैवज्ञ ने शके १५४५ में उदाहरण द्वारा गणित किया है।

श्री सूर्य—शके १४६३ (ई० सन् १५४१) में आचार्य भास्कर की लीलावती की टीका श्री सूर्य ने गणितामृत भूमिका नाम से की है।

कृष्ण दैवज्ञ—कृष्ण दैवज्ञ यवन बादशाह जहाँगीर के प्रधान सभापण्डित थे। इनके पिता का नाम श्री वल्लभ तथा माता का नाम गोजि था। इन्होंने "नवाङ्कुर" नाम की श्रीमद्भास्कराचार्य की बीजगणित पर टीका रची है।

रघुनाथ शर्मा—ओमभटात्मज श्री रघुनाथ शर्मा ने शके १४८७ (ई० स० १५६५) में भास्कराचार्य सूर्यसिद्धान्त मत से 'मणिप्रदीप' नामक करण ग्रन्थ की रचना की है।

श्री मल्लारि—शके १४९३ [ई० सन् १५७१] में श्री दिवाकर दैवज्ञ के पुत्रों में श्री कृष्ण एवं विष्णु दैवज्ञ से मल्लारि छोटे थे। अपने पिता दिवाकर दैवज्ञ, से ज्योतिषशास्त्र का सम्यक् अध्ययन किया था। श्री गणेश दैवज्ञ कृत 'ग्रहलाघव' करण ग्रन्थ की टीका श्री मल्लारि ने अत्यन्त शुद्ध एवं सूक्ष्म गणित साधिका उपपत्ति के साथ की है। श्री गणेश दैवज्ञ के समान ही गणित गोल वैदुष्य की असाधारण प्रतिभा के साथ श्री मल्लारि में भी काव्य-साहित्य का प्रौढ़ पाण्डित्य और गणित की सूक्ष्मता स्पष्ट परिलक्षित है।

मल्लारि ने ग्रहलाघव की उपपत्ति में यत्र-तत्र-सर्वत्र अन्य सिद्धान्त ग्रन्थों के उदाहरण की अपेक्षा श्री भास्कराचार्य की सिद्धान्त शिरोमणि के उद्धरणों का विशेष रूप से उल्लेख किया है।

श्री रङ्गनाथ—श्री रङ्गनाथ का शके १४९५ (१५७३) में श्री काशी में जन्म हुआ। इनके पिता का नाम श्री दैवज्ञ तथा माता का नाम गोजि था। कृष्ण दैवज्ञ के अनुज तथा सिद्धान्त शिरोमणि के मरीचि भाष्य रचयिता श्री मुनीश्वर के पिता श्री रङ्गनाथ हैं। इन्होंने शके १५२५ में सूर्यसिद्धान्त का सौरभाष्य 'गूढार्थप्रकाशिका' नाम से रचा है। रङ्गनाथ के समय यूरोपीय लोगों का भारत के साथ व्यापार वृद्धिगत हो चुका था। जैसा कि श्री रङ्गनाथ ने सूर्यसिद्धान्त के गोलाध्याय के यन्त्राधिकार के एवं २२वें श्लोक की टीका में स्पष्ट लिखा है—

"पारदाम्बुसूत्रात्रि शुल्बतैलजलानि च।
बीजानि वांसवस्तेषु प्रयोगास्तेऽपि दुर्लभा ॥" एवं

२२ श्लोक की टीका में—"इयं स्वयंवहविद्या समुद्रान्तरनिवासिजनैः फिरंगाख्यैः सम्यगभ्यस्तेति।"

श्री रङ्गनाथ के उक्त स्पष्टीकरण से यह प्रतीत होता है कि तत्कालीन समय यूरोपीय लोगों का भारत में गमनागमन बाहुल्य हो चुका था। सूर्य सिद्धान्त की रङ्गनाथकृत उपपत्तियों में प्रायः श्री भास्कराचार्य की सिद्धान्त शिरोमणि के सिद्धान्त ही बहुलता से उद्धृत हैं।

शके १५२५ चैत्र शुक्ल पक्ष चतुर्दशी, बुधवार की रात्रि में श्री सूर्योदयादिष्ट घटिका ४२।३० में प्रसव दुःख की असह्य वेदना से पीड़ित पत्नी के दुःख से उद्विग्नमना श्री रंगनाथ दैवज्ञ ने "दुःख निवृत्त हो" सूर्य-सिद्धान्त की व्याख्या मैं ही लिखूँगा।........ऐसी प्रतिज्ञा की ही थी कि उसी क्षण ग्रहगणित गोलज्ञ, सिद्धान्त शिरोमणि के मरीचि भाष्यकार श्री मुनीश्वर, अपर नाम विश्वरूप ने जन्म लिया था। अतएव श्री रंगनाथ दैवज्ञ ने अपने ग्रन्थ गूढ़ार्थप्रकाशिका को मुनीश्वर का सहज (भाई) भी कहा है।

रंगनाथ कृत सौरभाष्य की टिप्पणी में उल्लिखित है—

"यत्स्मृत्याभीष्टकार्यस्य निर्विघ्नाः सिद्धिमेष्यति–
नरस्तं बुद्धिदं वन्दे वक्रतुण्डं शिवोदभवम्।
पितरौ गोजिवल्लालौ जयतोऽम्बाशिवात्मकौ
याभ्यां पञ्चसुता जाता ज्योतिःसंसार हेतवः।
सार्वभौमजहाँगीरविश्वास्पदस्पद भाषणम्
यस्य त भ्रातरं कृष्णं बुधं वन्दे जगद्गुरुम्
नाना ग्रन्थान् समालोक्य सूर्यसिद्धान्तटिप्पणम्
करोमि रङ्गनाथोऽहम् तद्गूढ़ार्थ प्रकाशकम्।"

और ग्रन्थ समाप्ति पर—

"भागीरथी तीर संस्थे शम्भोवाराणसी पुरे,
बल्लालगणको रूद्रजपासक्तोऽभवद्बुधः।
तस्यात्मजापञ्चगुणाभिरामा ज्येष्ठः स रामः सकलागमज्ञः।
येनोपपत्तिः स्वधिया नितान्तं प्रकाशिताऽनन्त सुधाकरस्य ॥

ततः स कृष्णो जहंगीरसार्वभौमस्य सर्वाधिगतप्रतिष्ठः ।
श्रीभास्करीयं विवृत्तं तु येन बीजं तथाश्रीपतिपद्धतिः सा ।।
गोविन्दसंज्ञस्ततस्तृतीयः तस्यानुजोऽहं गुरुलब्धविद्यः,
विश्वेशपत्पदनिविष्टचेताः काशी निवासी सकलाभिमान्य-
श्रीरङ्गनाथोऽर्कमुखोत्थ शास्त्रे गूढ़प्रकाशाभिधटिप्पणं सः
कृत्वा महादेवबुधाग्रजोऽथ विश्वेश्वरायार्पितवान् सुवृद्धयै
शके तत्त्वतित्थ्युन्मिते चैत्रमासे सिते शम्भुतिथ्यां बुधेऽर्कोदयान्मे
दलाढ्यद्विनाराद्वनाडीषुजातो मुनीश्वरार्क सिद्धान्तगूढ़प्रकाशौ
गूढ़प्रकाशकं दृष्ट्वा रङ्गनाथभवं भुवि ।
मुनीश्वरस्य सहजं लभन्तां गणकाः सुखम् ।।"

श्री विश्वनाथ—शके १५०० (ई० १५७८) दिवाकर पुत्र, विष्णु कृष्ण मल्लारि से सर्व कनिष्ठ हैं ।

सूर्य सिद्धान्त, सिद्धान्त शिरोमणि, नीलकण्ठी, विष्णुकरण **ग्रहलाघव** मकरन्द **और** अनन्तसुधार आदिक ग्रन्थों के प्रसिद्ध टीकाकार ज्योतिर्विद् हुए हैं जिन्होंने गणित क्रमदर्शन पूर्वक उदाहरणों के द्वारा उक्त ग्रन्थों को समलंकृत किया ।

सभी उदाहरणों से इनका प्रखर वैदुष्य स्पष्ट प्रतीत होता हैं । ग्रहलाघव ग्रन्थ के उदाहरणों से तो इनमें असाधारण गोल गणित का पाण्डित्य झलकता है ।

नृसिह दैवज्ञ—१५०८ (ईसवी १५८६) कृष्ण दैवज्ञ पुत्र दिवाकर दैवज्ञ का पिता, विष्णु दैवज्ञ और मल्लारि पिता के अनुजों से ज्योविद्या के अध्ययन, २५ वर्ष आयु में सूर्य सिद्धान्त की सौरभाष्य नाम को, ३५ वर्ष में भास्करीय शिरोमणि टीका वासना वार्तिक नाम की सविशेष टीका रची है ।

ग्रह वेध करने में प्रवीण थे यन्त्रों में, मयूर यन्त्रब्रह्मचारियन्त्र शंख में, यन्त्र वधूरयोग यन्त्र, मेषाज युद्धयन्त्र, शंखवादन यन्त्र, घण्टापटहादिवादन यन्त्र, बानर यन्त्र, घटी यन्त्र और अनेक यन्त्रों में हंसादि यन्त्र, स्वयंवह गोल यन्त्र आदि बहुत यन्त्रों का उल्लेख किया है ।

शिव दैवज्ञ—शके १५१३ (ईस० १५९१) कृष्ण दैवज्ञ पुत्र, नृसिह के अनुज ने सारी आयु ज्योतिषाध्ययन में व्यतीत की है ।

अन्त सुधारस नामक ग्रन्थ की विज्ञप्ति के साथ-साथ तथा मुहूर्त्त चूडामणि नामक ग्रन्थ रचयिता हुए हैं ।

श्री सोमदेवज्ञ—शके १५२४ (ई० १६०२) पञ्चाङ्गोपयोगी, वर्ष राट्, वर्ष मन्त्री शस्येश-मेघेश आदि शुभाशुभ फल कथन को ५०० श्लोकों की कल्पलता नामक ग्रन्थ रचना की है ।

श्री मुनीश्वर—शके १५२५ ई० (१६०३) में सौरभाष्य रचयिता प्रसिद्ध रंगनाथ दैवज्ञ पुत्र जिनका उपनाम विश्वरूप भी है, उत्पन्न हुए हैं । सौर सिद्धान्त के भगणों के

आधार से १५६८ शक के भाद्रपद शुक्ल पञ्चमी सोमवार, पुष्य नक्षत्र में **सिद्धान्त सार्वभौम** नामक ज्योतिष सिद्धान्त ग्रन्थ की रचना की है। आचार्य मुनीश्वर ने ही सिद्धान्त सार्वभौम की स्वयं टीका भी लिखी है।

लीलावती की "निसृष्टार्थदूता" तथा सिद्धान्त शिरोमणि की सुप्रसिद्ध मरीचि नाम टीका मुनीश्वर रचित प्रसिद्ध है।

मुनीश्वर के

"गूढं स्थलं स्वसिद्धान्तं मत्वा यस्तच्छिरोमणिम्।
कृतवान्मनुजव्याजादसौ जयति भास्करः॥"

कथन से श्रीमद्भास्कराचार्य की सूर्य से उपमा देने से उनकी श्री भास्कराचार्य में पूर्ण भक्ति व्यक्त होती है।

सिद्धान्त शिरोमणि की मुनीश्वर कृत मरीचि टीका को सभी ज्यतिर्वेत्ता विद्वानों ने सहर्ष श्रेष्ठ टीका कहा है।

दिवाकर—शके १५२८ (ई० १६०६) सिद्धान्त तत्व विवेक रचयिता प्रसिद्ध ग्रह-गोलज्ञ कमलाकर भट्ट के गुरु दिवाकर ने फलित ज्योतिष में जातकमार्गपद्म नामक ग्रन्थ रचना की है। काव्यन्यायव्याकरण शास्त्रों में प्रगल्भ पाण्डित्य प्रतीत होता है।

श्री कमलाकर भट्ट—से, शके १५३८ (ई० १६१६) नृसिंह दैवज्ञात्मक श्री दिवाकर दैवज्ञ के अनुज और शिष्य, शके १५८० में श्री काशी में प्रचलित वर्त्तमान सूर्य सिद्धान्त के आधार से **सिद्धान्त तत्व विवेक** नामक ग्रह गोल गणित के प्रसिद्ध वृहद् ग्रन्थ की रचना हुई है। ज्योतिष के सिद्धान्त विभाग में उक्त ग्रन्थ बड़े महत्व का आजतक माना जा रहा है। मुनीश्वर व कमलाकर के पारस्परिक मतभेदों से, भास्कर भक्त मुनीश्वर से शास्त्रार्थ में भास्कराचार्य की शिरोमणि ग्रन्थ के पदे-पदे वैदुष्य प्रदर्शन से असन्तुष्ट श्री कमलाकर भट्ट ने उक्त ग्रन्थ में श्री भास्कराचार्य से आविष्कृत गूढ़ गहन उदयान्तर जैसे गणित का जिसका खण्डन संभव नहीं है, खण्डन किया है जिससे आजतक पराकाष्ठा की ग्रहगोल वैदुष्य सूचक कमलाकर भट्ट पर दैवज्ञ समाज की आस्था कम मानी जाती है।

यतः सही माने में कमलाकर के सिद्धान्त तत्त्व विवेक में अपूर्व कल्पना, अपूर्व खोज और अपूर्व नूतन युक्तियों का यत्र-तत्र सर्वत्र समावेश हुआ है।

रङ्गनाथ ने १५६२ (ई० १६४०) ने अपने सहोदर दिवाकर एवं कमलाकर से ज्योतिर्विद्याध्ययन कर सिद्धान्त चूडामणि नामक करणाकार ग्रन्थ की रचना की है।

नित्यानन्द शके १५६१ (१५३९) कुरु क्षेत्र निवासी देवदत्तात्मज गौड़ ब्राह्मण ने सिद्धान्त राज नामक ग्रन्थ में "सायन गणना मुख्य है" ऐसा अपना मत व्यक्त किया है। सम्प्रति का प्रचलित सूर्यसिद्धान्त वास्तव नहीं है और देवर्षियों से समस्त सायन गणना ही सही गणना है। ऐसा स्पष्ट स्वमत प्रकट किया है।

जगन्नाथ जगन्नाथसम्राट् (१५७४ (ई० १६५२) ये दाक्षिणात्य तैलङ्ग प्रतिभा-

शाली ब्राह्मण थे। जयपुर राजा श्री जयसिंह की सभा के प्रधान सभापण्डित थे। महाराज जयसिंह जी की आज्ञा से अरबीय भाषा के "**मिजास्ती**" नामक ज्योतिष सिद्धान्त ग्रन्थ का संस्कृत का अनुवाद—"सिद्धान्त सम्राज" नाम से प्रसिद्ध है।

इस ग्रन्थ में अरबदेशीय गणितज्ञों में "मिर्जा-उलूक वेग" नाम विद्वान के ज्योत्पत्ति, तथा वेधादि ज्ञान की अनेक प्रणालियाँ उपलब्ध होती हैं।

"इति मिर्जा उलूकवगोऽपि सम्यगाह" से कमलाकर भट्ट ने अपने सिद्धान्त तत्व विवेक के ज्योत्पत्ति गणित साधन प्रक्रिया में मिर्जा उलूक वेग का उल्लेख किया है।

अरबी भाषा से संस्कृत में उक्त जगन्नाथ कृत युक्लेद ग्रन्थ का अनुवाद रेखागणित नाम से प्रसिद्ध है। जयपुर प्रान्त में जगन्नाथ कृत युक्लेद ग्रन्थ का अनुवाद रेखागणित नाम से सर्वत्र सुलभ प्राप्य है।

उक्त सिद्धान्त सम्राज एवं रेखागणित ग्रन्थ निर्माण से अत्यन्त संतुष्ट राजा जयसिंह ने जगन्नाथ तैलङ्ग को उपहार में अनेक ग्राम दिये हैं। आज भी जयपुर में जो तैलङ्ग ब्राह्मण हैं, वह इन्हीं पण्डितराज जगन्नाथ के वंशज हैं।

सिद्धान्त सम्राट् में जयपुराधीश जयसिंह से ग्रहवेध के लिए काशी में मानमन्दिर, जयपुर में तथा उज्जयिनी में जो वेधशाला स्थापित हुई हैं जो आज भी दृष्टव्य हैं उनका वर्णन भी है। इस प्रकार के पण्डितराज जगन्नाथ कृत ग्रह वेध के अनेक प्रकार सिद्धान्त-सम्राट् ग्रन्थ में समुपलब्ध होते हैं।

मुगल बादशाह "औरङ्गजेब" के आदेश से ससैन्य राजा जयसिंह १६७२ ई० के समीप जब दक्षिण देश में शिवाजी पर विजय प्राप्ति के लिए गए थे, वहाँ से वापस जयपुर लौटते समय २० वर्ष के होनहार युवक, वेद वेदांग शास्त्र पारङ्गत उक्त श्री जगन्नाथ की प्रतिभा से परिचित होकर राजा जयसिंह इन्हें अपने साथ जयपुर ले आए थे।

अल्प समय में पं० जगन्नाथ ने, पारसी एवं अरबी भाषाओं का ज्ञान उपार्जन कर लिया था। श्री पं० जगन्नाथ की वैदुष्य प्रतिभा से प्रभावित होकर बादशाह औरङ्गजेब ने इनकी दिल्ली में अपने विद्वत्सभा का विशेष पाण्डित्य पद में नियुक्ति कर दी थी। औरङ्गजेब के सभा पण्डितत्व पद प्राप्ति से जगन्नाथ विशेष सन्तुष्ट हुए।

पुनः राजा जयसिंह ने जगन्नाथ से जयपुर पण्डित सभा का सभापतित्व स्वीकार करने के लिए कएक बार अनुरोध किया भी तो जगन्नाथ को औरङ्गजेब की ही समादरणीय सभापतित्व पद से विराग नहीं हुआ और नृपति जयसिंह के अनुरोध पत्र का प्रत्युत्तर पत्र श्लोक से जयपुर राजा को भेज दिया, जो निम्न है—

दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा मनोरथान् पूरयितुं समर्थः।
अन्यैर्वराकैः खलु दीयमानं शाकाय वा स्याल्लवणाय वा स्यात्॥

अर्थात्—राजधानी दिल्ली की राजगद्दी का अधिपति राजा ही मेरे मनोरथ को पूर्ण करने में समर्थ है।

और जो वराक (दीन) उपराज्याधीश हैं, उनसे प्राप्त सम्पत्ति से मनोरथ सफल नहीं होता है उनसे प्राप्त द्रव्य राशि से शाक, भाजी, मात्र नमक हो चल सकता है ।

गणक सम्राट जगन्नाथ कृत, नाडी यन्त्र, गोल यन्त्र, दिगंश यन्त्र, दक्षिणोत्तरभित्ति संत्रक यन्त्र, वृत्तषष्ठांशक यन्त्र, सम्राट् यन्त्र और सर्वयन्त्रशिखामणि, जयप्रकाश नामक वेध यन्त्र प्रसिद्ध हैं ।

श्री शङ्कर—वैष्णव करण ग्रन्थ रचयिता **श्री शङ्कर** शके १६४८ (ई० १७२६) रैवतिकाचल वासी वशिष्ठ गोत्रीय श्री शुक भट्ट के पुत्र हुए हैं ।

श्री शिवलाल पाठक—शके १६५६ (ई० १७३४) त्रिस्कन्धज्ञ ज्योतिर्विद होते हुए पुराण इतिहास और तन्त्र शास्त्रज्ञ भी थे ।

इनके सुपुत्र श्री रामानन्द पाठक की नियुक्ति तत्कालीन काशिक राजकीय संस्कृत पाठशाला (क्वीन्स कालेज = संस्कृत कौलेज) में जब हुई तो पुत्र से सञ्चित आङ्गलराज्य (अंग्रेजी राज)धन से भोजन-भजन (आजीविका) के भय से सीतारामचरणार्पित चित्त होकर घर को छोड़ दिए थे । वास्तुविद्या (गृह-निर्माण) में विशेष निपुण थे । बाल्मीकी रामायण की सुन्दरी टीका, तुलसीदास कृत विनय पत्रिका का शोधनादि इनसे किया गया है ।

परमानन्द पाठक—सारस्वत ब्राह्मण शके १६७० (ई० १७५८) फलित में **प्रश्नमाणिक्यमाला** प्रसिद्धि के साथ तत्काली पञ्चाङ्ग निर्माता भी थें ।

लक्ष्मीपति—पर्वतीय ब्राह्मण थे । काशी में सिद्धान्त ज्योतिष प्रचारक थे । बीज-गणित के अवर्गाङ्क मूलानयन का—

आदौ करण्येऽपवर्तनीया स्तथायथास्युः कृतय क्रमेण
तन्मूलयुत्यन्तरवर्गनिघ्नो युत्यन्तरे स्तोऽप्यपवर्त्तनाङ्कः ।

उक्त चमत्कारिक प्रकार है और अलौकिक गणित प्रतिभा का सूचक भी है । लक्ष्मीपति के समय से काशी में फलित विद्या का ह्रास एवं गणित विद्या की प्रगति हुई है । इनका जन्म समय प्रायः शके १६७० (ई० १७४८)

परम्परा से श्रुति प्रसिद्ध है कि जब जानथन डंक्यान (Jonathan Doncan the Resident of Benaras) ने १७९१ ईसवी के अक्टोबर महीने की २८ तारीख अपने सुप्रबन्ध से जब काशो में राजकोय पाठशाला का स्थापना की थी तो उस समय उक्त लक्ष्मी-पति वहाँ गणित के अध्यापक थे । (See P. 12 of skitch of the Rise and Progress of the Benaras Pathasala.)

बबुआ ज्योतिषी—शके १६७८ (ईसवीं सन् १७५६) त्रिस्कन्धज्ञ ज्योतिर्विद होते हुए भी महाराष्ट्र ब्राह्मण फलित ज्योतिष में विशेष प्रसिद्ध हुए हैं । फलित ज्योतिष के यात्रा-मुहूर्त्त बताने में ऐतिहासिक हुए हैं । जिनके यात्रा-मुहूर्त्तों की चमत्कारिता सटीक सही होने के कएक प्रत्यक्ष इतिहास रूप में मिलते हैं ।

मथुरानाथ शुक्ल—मालवीय ब्राह्मण शके १६७८ (ई० १७७६) ने पारसीक भाषा प्रवीण, यन्त्रराजघटनादि ग्रन्थों के रचयिता हुए हैं।

ईसवी १८१३ में काशिक राजकीय पाठशाला में पुस्तकालयाध्यक्ष पद में हुए हैं। इनसे रचित यन्त्रराजघटना ग्रन्थ में पाण्डित्य विशेष दृष्टव्य है।

दिसम्बर महीने के १८१८ ई० में निधन हुआ है। इनकी जगह पर इनके पुत्र यदुनाथ शर्मा की पुस्तकालयाध्यक्ष पद नियुक्ति हुई है। इसके अनन्तर श्री बेचन राम त्रिपाठी, पुनः यदुनाथ शर्मा पुत्र रमानाथ शर्मा, तत्पश्चात् श्री ढुण्डिराज शास्त्री के अनन्तर गुरूणां गुरु श्रीमान् श्री **पं० सुधाकर द्विवेदी** जी की नियुक्ति पुस्तकालयाध्यक्ष पद पर हुई है। जो आज सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी का प्रसिद्ध ग्रंथ भण्डार "सरस्वती भवन" नाम से प्रसिद्ध है।

सुधाकर जी के अनन्तर श्री विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी ने पुस्तकालयाध्यक्ष पद भार ग्रहण किया था।

परमसुखोपाध्याय शके १६९० (ई० १७६८)

इटावा जिला के सनाढ्य ब्राह्मण श्री सीताराम उपाध्याय के पुत्र को पति के दिवंगत होने पर, इनकी माता इनको १७ वर्ष अवस्था में इन्हें श्री काशी में ले आईं थीं। काशी में ज्योतिष अध्ययन से, स्वल्प समय में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके। प्रसिद्धि सुनकर, रीवां नरेश श्री विश्वनाथ के पिता ने, सन्तान प्राप्ति के लिए उचित पूजानुष्ठान के लिए इन्हें अपने पास बुलाया। त्रिधिविधान से अनुष्ठान की सम्पन्नता से भी विश्वनाथ सिंह का जन्म हुआ था। प्रसन्न होकर श्री विश्वनाथ सिंह के पिता ने इन्हें हाथी घोड़े के साथ एक लक्ष मुद्रा से पुरस्कृत किया था। उक्त प्राप्त धन का श्री परमसुखोपाध्याय ने प्रयाग में दीन दुखी साधु महात्माओं की सेवा में अर्पण कर पुनः काशी आगमन किया। बड़े उदार एवं यशस्वी थे फलितज्योतिष में कुशल हुए हैं।

श्री बालकृष्ण ज्योतिषी शके १६९२ (ई० १७७०)

बबुआ ज्योतिर्विद के सहोदर और सेवाराम ज्योतिर्विद के गुरू व्याकरण और तीनों स्कन्ध ज्योतिष के पण्डित हुए हैं। बबुआ ज्योतिषी जी के सभी कार्य सम्पादन का श्रेय इन्हें हैं।

श्रीकृष्णदेव श० १६९७ (ई० १७७५) श्री लक्ष्मीपति के काशिक राजकीय पाठशाला में ज्योतिष के प्रधानाध्यापक थे। गणित गोल में अत्यन्त प्रौढ़ मतिक ज्योतिर्विद हुए हैं। इसी समय श्री वीरेश्वर शर्मा की द्वितीय गणिताध्यापक पद पर नियुक्ति हुई थी।

शिवदैवज्ञ शके १७०० (ई० १७७८) ने गणेश दैवज्ञ कृत ग्रहलाघवानुसार १७३७ शक में तिथि साधन रूप तिथिपारिजात ग्रंथ की रचना की है। तिथि सहायिनी नाम की एक सारणी भी इन्हीं की है।

श्री दुर्गाशङ्कर पाठक—शिवलाल पाठक के अनुज, लक्ष्मीपति एवं अपने भाई से अधीत ज्योतिष औदीच्य ब्राह्मण अपने समय में विशेष गौरव सम्पन्न थे।

श्री गोविन्दचारी—शके १७१६ (ई० १७९४) गोवर्द्धनाचारि पुत्र, सरयूपारीण ब्राह्मण, दारा नगर काशी में त्रिस्कन्ध ज्योतिर्विद् होते हुए तन्त्रशास्त्र के मर्मज्ञ भी थे।

श्री जयराम ज्यौतिषी—शके १७१७ (ई० १८९५) बबुआ ज्योतिषी के पुत्र, पिता से अधीत ज्यौतिष के साथ व्याकरण, न्याय, काव्य साहित्य के भी पण्डित हुए हैं।

श्री सेवाराम शर्मा—शक १७१७ ई० (१८९५) दृश्य पञ्चाङ्ग के निर्माता प्रसिद्ध श्री बापूदेव शास्त्री के गुरु थे। इनकी विधवा माता इन्हें मूल स्थान छोड़ कर श्री काशी ले आई थी। ये सनाढ्य ब्राह्मण थे। बालकृष्ण और परम सुखोपाध्य से क्रमशः सिद्धान्त और फलित ज्यौतिष का अध्ययन किया है। सिहोर संस्कृत पाठशाला प्रधान ज्यौतिषी पद पर नियुक्त होकर प्रसिद्ध श्री बापूदेव प्रभृति अनेक शिष्यों को पढ़ाया है। वार्धक्य में काशी वास करने लगे। जम्बू कश्मीर, अयोध्याधिपति, बलरामपुराधीशों के अनुरोध पर भी उन राजधानियों में नहीं गए, केवल थोड़े दिनों के लिए बलरामपुर गए थे।

लज्जाशङ्कर शर्मा शके १७२६ (ईसवी १८०४)

मोर ब्राह्मण—गुजराती ब्राह्मण लक्ष्मीपति और श्री दुर्गाप्रसाद से ज्यौतिष अध्ययन के अनन्तर श्री कृष्णदेव के निधन से रिक्त पद पर काशी राजकीय पाठशाला में नियुक्त हुए। इनके शिष्य श्री देवकृष्ण शर्मा थे। भारत के आजतक के खगोलज्ञ में मूर्धन्य श्री पं० सुधाकर द्विवेदी इन्हीं श्री पं० देवकृष्ण शर्मा के शिष्य हुए हैं।

त्रिस्कन्धज्ञ ज्यौतिषी थे। देश देशान्तर के छात्रों को सुयोग्य बना कर दिगदिगन्त यशस्वी थे।

शक १७८१ में (ई० १८५९) में काश्मीराधीश श्री रणवीर सिंह वीर पुङ्गवने, काशी राज-प्रधान श्री डाक्टर बालण्टैन साहिब से एक सुयोग्य ज्योतिपाध्यापक की मांग की थी तो उक्त सेवाराम जी को कश्मीर को भेजा गया था और ९ वर्ष तक वहाँ पढ़ाकर पुनः नन्दराम शर्मा के निधन के अनन्तर काशीराजकीय पाठशाला के प्रधान ज्यौ-पद पर कार्य किया है।

श्री पं० देवकृष्ण शर्मा (ईसवी १८१८ के ९ नवम्बर का जन्म)

भारत वर्ष की सबसे प्राचीन प्राच्य विद्याओं की सर्वोत्कृष्ट संस्था गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस थी, जो इस समय सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व-विद्यालय के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पर गणित ज्योतिषशास्त्र के प्रधानाध्यापक पं० लज्जाशंकर गौड़ के सुयोग्य शिष्य और श्री सुधाकर द्विवेदी के गुरु पं देवकृष्ण शर्मा अपने जीवन के २२ वें वर्ष में ही अपने गुरु से ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन पूरा करके अपने ही घर में मिथिलादि देशों से आये हुये बहु

संख्यक छात्रों को ज्यौतिषशास्त्र की शिक्षा दिया करते थे। सन् १८५९ ई० में कश्मीराधिपति महाराज श्री रणवीर सिंह पुंगव ने ज्योतिशास्त्राध्यापन के लिए एक सुयोग्य गणितज्ञ को भेजने की प्रार्थना संस्कृत कालेज के प्रधान वालण्टैन साहब से की थी। वालण्टैन साहब ने इन्हीं पं० देवकृष्ण शर्मा को काश्मीर भेज दिया। शर्मा जी ने ९ वर्ष तक काश्मीर में गणित ज्यौतिष पढ़ाते हुए महाराज काश्मीर से बहुत पारितोषिक प्राप्त किया। किन्तु इन्हें काशी का अत्यधिक मोह होने लगा, तथा यहाँ के छात्रों ने उनसे अनेक प्रार्थनाएँ भी की कि अब आप यहाँ आ जाइये। द्रवणशील सरल हृदय वाले तत्कालीन प्रिंसिपल डा० 'ग्रिफिथ' महाशय ने गवर्नमेण्ट कालेज में प्राचीन परम्परागत गणित फलित ग्रन्थों के तत्त्वार्थ वेत्तात्व के कारण सन् १८६८ ई० में की गई इनकी नियुक्ति को सादर स्वीकार कर लिया। अनेक छात्रों को योग्य बनाने के पश्चात् सन् १८८९ ई० में शरीर की शिथिलता से तृतीयांश वेतन [पेंशन] लेकर अपने ही घर पर बहुत दिनों तक अध्ययनाध्यापन करते रहे।

महामहोपाध्याय पुं० बापूदेव शास्त्री

शताब्दियों से प्रायः विशेष कर कमलाकर भट्ट के समय से (ई० १६५८ ई० से) क्षीणता की ओर जाते हुए गणित सिद्धान्त ज्यौतिष की जो स्थिति थी वह अत्यन्त शोचनीय थी। यत्र-तत्र ज्यौतिष फलित मात्र के साधारण जानकारों का बोल बाला था। ज्यौतिष की मूलभूत भित्ति गणित ज्यौतिष की नींव हिल चुकी थी, किन्तु इन शताब्दियों में गणित खगोल का गौरव बढ़ रहा था और अपने तीव्र वेग से वर्धमान पश्चिम गणित सागर की कुछ लहरें ब्रिटिश शासन के सम्बन्ध से भारत में भी पहुँच चुकी थीं। लगभग सन् १८३१ से सन् १८३५ तक के बीच नागपुर पाठशाला में यूरोप देशीय बीजगणित के साथ साथ-कान्यकुब्ज ढुण्ढिराज मिश्र से भास्करीय लीलावती और बीजगणित पढ़ाते हुए—ज्योतिष के गणित धरातल में पूनानगर के महाराष्ट्र ब्राह्मण श्री सीताराम देव के पुत्र पं० नृसिंहदेव शास्त्री या पं० बापूदेव शास्त्री का प्रादुर्भाव हुआ। सन् १८३८ में एजेण्ट लान्सटिन विलकिन्सन् (Mr. Wilkinson) साहब ने इन्हें गणित में निपुण देखकर, सिहोर नगर के सेवाराम ज्योतिषी के पास अध्ययन के लिए भेजा। वहाँ दो वर्ष तक रेखा गणित आदि पढ़कर एजेण्ट विल्किन्सन साहब की अनुकम्पा से ता० १५ फरवरी सन् १८४२ में गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस में इनकी नियुक्ति ज्योतिषाध्यापक पद पर हो गई। श्री पं० लज्जाशंकर के निधन के बाद ये प्रधान ज्यौतिश्शास्त्राध्यापक नियुक्त किये गये। इन्होंने [मुद्रित] (१) रेखा गणित प्रथम अध्याय, (२) त्रिभुज गणित, (३) त्रिकोणमिति, (४) सायनवाद, (५) प्राचीन ज्यौतिषशास्त्राचार्यों का आशय वर्णन, (६) १८ प्रकार के विचित्र प्रश्नों का सोत्तरसंग्रह, (७) तत्वविवेक परीक्षा, [अमुद्रित] (८) काशी के मान मन्दिर यन्त्र का वर्णन, (९) दशमलवादि गणित, (१०) चलन कलन के सिद्धान्त मात्र ज्ञान के २० सिद्धान्त, चापीय त्रिकोण के कुछ सिद्धान्त, (११) ग्रन्थोपयोगी कुछ क्रोड पत्र, (१२) यन्त्र राजोपयोगी परिलेखादि, (१३) हिन्दी भाषा में पाठशालीय छात्रोपकार के लिए, बीजगणित, (१४) फलित विचार, (१५) सायनवाद का अनुवाद, (१६)

पञ्चाङ्गोपपादन, (१७) अंग्रेजी में सूर्य सिद्धान्त का अनुवाद, (१८) भास्करीय सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्याय का अनुवाद, (१९) गणित गोलाध्याय की केवल टिप्पणी, (२०) [सन् १८७५-१८८७ तक] यूरोप देशीय नाटिकल अल्मनाक [Nautical almanack] पञ्चाङ्गों के अनुसार काशी में संस्कृत भाषा में पञ्चाङ्ग निर्माण भी किया। सन् १८६४ में ग्रेटब्रिटेन व आयरलैण्ड के रायल एशियाटिक सोसाइटी (Royal Asiatic Society of Great Britain and Irelaud) का आदरणीय सुसभा सदस्य, तथा सन् १८६८ ई० में बंगाल एशियाटिक सोसायटी का सदस्य, सन् १८६९ में कलकत्ता विश्वविद्यालय के सिनेट सदस्य, (Calcutta University fellow) तथा सन् १८७८ ई० में सी० आई ई० (Compenian of the order of the Iudian Empire) नामक पदवियों से ये विभूषित हुये। जुविली के अवसर पर महा महोपाध्याय की पदवी भी इन्हें प्राप्त हुई। आप इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के भी सभा सदस्य थे। शरीर की शिथिलता के कारण १ अप्रैल सन् १८८९ ई० को आधे वेतन पर प्रधान गणित ज्यौतिष के पद का त्याग कर दिया तथा विश्राम की स्थिति में होकर काल यापन करने लगे। अन्ततः सन् १८९० ई० में शरीर परित्याग कर परलोकवासी हुये। पाश्चात्य गणित के साधारण ज्ञान से ही भारत वर्ष में इनकी विशेष ख्याति हो गई थी। इस लिए ये बड़े भाग्यवान् समझे जाते थे। यूरपदेशीय गणित की पद्धति से इन्होंने चन्द्र ग्रहण का परिलेख बनाया जिसका अवलोकनकर जम्मू काश्मीर नरेश श्री रणवीर सिंह वीरपुंगव ते इन्हें एक्स हजार १०००) मुद्रा से पुरस्कृत कर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। तब से पञ्चाङ्गों में प्रायः इसी पद्धति के परिलेख लिखे जाते हैं। बालबोध के लिई बीजगणित के वर्ग समीकरण को देखकर पश्चिमोत्तर देश के गवर्नर (Governer of N. W. P.) ने इन्हें २०००) दो सहस्र मुद्रा पुरस्कार स्वरूप प्रदान किया था। शक सम्बत ८८८ सन् ईसवी ९६६ चैत्र शुक्ल पञ्चमी गुरुवार के दिन इन्होंने (सृष्टि से सन् ९६५ तक के दिनों को संख्या) अहर्गग बनाया। इसी अहर्गण पर डा० श्री कर्न महाशय ने इन्हें 'भारतभूषण' की पदवो दिला दी थी। इन कारणों से इस बीच गणितज्यौतिष पर विद्वानों की आस्था स्थिर एक्वं सुदृढ़ हो रही थी।

नीलाम्बर शर्मा—शक १७४५ (ई० १८२३) पाटलिपुत्र पटना निवासी मैथिल ब्राह्मण थे, अपने ज्येष्ठ भाई जीवनाथ एवं लज्जाशङ्कर शर्मा के ज्यौतिष के विद्यार्थी थे। अलवर राजा के प्रधान गणितज्ञ रहे हैं। यूरोपदेशीय गणित के अनुसार गोलप्रकाश नामक ग्रन्थ की रचना की है।

गोविन्द शास्त्री—शक १७५६ (इ० १८३४)

महाराष्ट्रीय चित्पावन ब्राह्मण श्री बापूदेव शास्त्री के भ्रातुष्पुत्र थे। श्री बापूदेव जी से ज्योतिर्विद्याध्ययन कर श्री लज्जाशंकर गणक की मृत्यु के बाद ई० १८५९ में काशिक राजपाठशाला तृतीय गणिताध्यापक नियुक्त हुए।

पं० श्री सुधाकर द्विवेदी

जन्म सन् १८५५ में बरुणा नदी के तट पर श्री काशी (खजुरी) में हुआ था। बाल्यावस्था में पं० दुर्गादत्त जी से पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन के बाद त्रिस्कन्ध ज्योतिर्वेत्ता श्री देवकृष्ण जी से लीलावती (ज्यौतिष) पढ़ने लगे। तथा महामहोपाध्याय श्री बापूदेव जी से गणित ज्यौतिष का अध्ययन हुआ है।

इस प्रकार सन् १८५५ से १९१० ई० तक निरन्तर अध्ययन अध्यापन और गणित गोल के अनेक ग्रन्थों पर शोध पूर्ण व्याख्या, उपपत्ति के साथ साथ संहिता होरा स्कन्धों पर भी सविशेष शोधात्मक सुव्याख्यान के साथ स्वरचित स्वतन्त्र ग्रन्थों से स्कन्ध त्रयात्मक ज्यौतिष धरातल में तब से आज तक सुधाकर द्विवेदी का स्थान इकाई पर ही है।

पं० बापूदेव शास्त्री जैसे विख्यात गणितज्ञ के सान्निध्य से, तथा सरस्वती भवन् के पुस्तकालय के कर्मचारी होने से भी, अनेक ग्रन्थों के अवलोकन मनन पठन आदि की गणित शास्त्र की विलक्षण प्रतिभा से विद्वानों को आकृष्ट करने वाली सुधाकर की असाधारण प्रतिभा भी उन्हीं दिनों शास्त्रीय विवादों के गहन शास्त्रार्थों में यत्र तत्र सुनाई दे रही थी। एक अध्यापक के रूप में और दूसरे छात्र के रूप में। शास्त्रीय संघर्ष उत्तरोत्तर वृद्धिगत था। श्री सुधाकर जी ने, संस्कृत वाङ्मय के ज्योषिशास्त्र का संस्कृत भाषा के माध्यम साथ ही साथ, हिन्दी भाषा की भी सराहनीय पाण्डित्यपूर्ण योग्यता प्राप्त करते हुये आंग्ल भाषा पर भी अपना पर्याप्त अधिकार कर लिया था।

गुरु शिष्य शास्त्रार्थ

कुछ दिन अंग्रेजी के गणित को पढ़ने के बाद इन्होंने पं० बापूदेव शास्त्री जी से कहा कि, आपने अपने सिद्धान्त शिरोमणि के महाप्रश्नाधिकार की टिप्पणी में दो बार सूर्य को वेधकर उसकी क्रान्ति, दोनों काल के उन्नतांश और वेधकालांतर को जानकर अक्षांश जानने की जो विधि लिखी है वह "डलहोस साहब" की विधि है। आपने ठीक उसी का अनुवाद संस्कृत में कर दिया है। परन्तु उन्होंने परमाकान्ति से अधिक अक्षांश के लिये यह विधि लिखी है और आपने भूल से वही विधि भूमण्डल में सर्वत्र के लिये लिख दी है, जो सदोष है। क्योंकि जब प्रथम दृङ्मंडल और पूर्वापरवृत्त के भीतर दूसरा दृङ्मंडल होगा तब ऐसी गोलीय स्थिति में आपका प्रकार स्थूल हो जायगा इत्यादि। इनकी इस गवेषणा से पं० बापूदेव शास्त्री जी इनके इस तर्क से इनसे कुछ विकृत से हो गये और उसी समय से गुरु शिष्यों दोनों का मनोमालिन्य भी होने लगा।[१]

---

१. उक्त विवरण मुझे पं० सुधाकर जी के शिष्य राय बहादुर पं० गुरुसेवक उपाध्याय रिटा० डिप्टीकलेक्टर जी तथा राय साहब पं० चन्द्रबलीराय डिप्टीकलेक्टर जिला गोरखपुर तथा सुधाकर द्विवेदी के अन्तरङ्ग शिष्य, मेरे परम पूज्य श्री १००८ गुरु श्री पं० बलदेव पाठक (प्रधानाध्यापक ज्योतिष विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय सन १९३८-४३) के सुपुत्र श्री भाई पं० गणेशदत्त पाठक जी जो वर्तमान काशी के सर्वोपरि गणित खगोल वेत्ता हैं, अवकाश प्राप्त गोयन्का सं० म० वि० काशी तथा केन्द्रीय अनुदान अयोग प्राध्यापक सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय से विदित हुए हैं।

गणित ज्योतिष के सिद्धान्त ग्रन्थों के एक से एक नवीन परिष्कारों से इनके मस्तिष्क में एक अभेद्य गढ़-सा बन गया था। गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज के अध्यापक ज्योतिषियों से पढ़ने के बाद सभी छात्र इनके पास आने लग गए थे और इन्होंने सबको निःशुल्क पढ़ाने का कार्य आरम्भ कर दिया था।

सुदूर, बंगाल, मिथिला, गुजरात, काश्मीर, नैपाल, कूर्माचल, प्रभृति देश देशान्त के शिष्यों में सुधाकर जी की शास्त्रीय गुरुगरिमा व्याप्त हो गयी थी। समग्र फलित शास्त्र के साधारण ज्ञाता और लोक प्रसिद्धि में विशेष ख्याति प्राप्त ज्यौतिषियों का ठीक उसी प्रकार पलायन होने लगा, जिस प्रकार केशरी मृगराज को देखकर भयंकर शोरगुल करने वाले सियार अपसरित हो जाते हैं। निशाकरमौलि की विद्या राजधानी इस काशी में सुधाकर द्विवेदी का पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति पूर्ण उदय हो गया। अन्धकाराछिन्न जगत् ने शीत-कर की किरणों से सरस ज्ञान मय प्रकाश पाकर अपने को धन्य समझा।

ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों के अध्ययनाध्यापन के साथ उनका प्रकाशन भी प्रारम्भ हुआ। इस समय गवर्नमेण्ट क्वीन्स कालेज बनारस के गणित तथा अंग्रेजी के योग्य विद्वान् डा० जी थीबो महोदयजी थे। श्री सुधाकर ने अपने अदम्य उत्साह एवं अथक परिश्रम के परिणाम स्वरूप इंगलिश भाषा का भी अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त कर लिया था और तत्कालीन प्रौढ़ इंगलिश गणितज्ञों में से श्री सुधाकर जी का परस्पर पौर्वात्य और पाश्चात्य गणितों की विवेचना भी हो जाया करती थी।

राजकीय सेवा और सम्मान

इसी बीच ई० सन् १८८३ के राजकीय संस्कृत कालेज बनारस की ऐशिया की हस्त लिखित पुस्तकों की सबसे बड़ी लाइबरेरी (पुस्तकालय) सरस्वती भवन् में पं० सुधाकर जी की नियुक्ति पुस्तकालयाध्यक्ष पद पर हुई थी। ता० १६-२-१८८७ को महारानी विक्टोरिया जुबुली महोत्सव के अवसर पर इस महान् खगोल शास्त्री को महामहोपाध्याय पदवी से विभूषित किया गया था।

सन् १८८९ में पं० बापूदेव शास्त्री के अवकाश ग्रहण के पश्चात् इनकी उत्तम वैदुष्य पूर्ण शास्त्र सेवा पुरस्कार में इन्हें उनके स्थान पर गणित का प्राध्यापक नियुक्त किया गया।

बनारस क्वीन्स कालेज के गणित के प्राध्यापक मिस्टर एम० एन० दत्त की नियुक्ति जिला स्कूल इन्सपेक्टर पद पर हो जाने से इनका कार्य मैथमेटिक और इन्डियन ऐस्ट्रानामी (Indian Astronomey) के कक्षाओं को शिक्षण देनेका गुरुतम कार्य (एम० ए० क्लासों को गणित पढ़ाना) पं० सुधाकर जी को सौंपा गया था।

पहिले इनके वेष भूषा से छात्रों को कुछ अश्रद्धा सी हुई, किन्तु पहिले ही दिन के पढ़ाने से सर्व साधारण आश्चर्य चकित हो गये, और तदनुसार छात्र समुदाय बड़ी सावधानी

से दत्त चित्त होकर बड़ी श्रद्धा से इनकी कक्षाओं में जाकर एम. ए. का (मैथ) गणित पढ़ने लगे ।

बगलबन्दी, धोती और पगड़ी के वेश में गणित की ऊँची कक्षाओं में ऊँचे स्तर के परिष्कारों के साथ पाठ पढ़ाने वाला यही एक भारतीय था, जो ग्रहगोल गणित का विद्वान् ज्योतिषी और काशी का एक प्रसिद्ध पण्डित था ।

इनसे गणित पढ़ कर छात्रों का गणित में परिश्रम करने में मन लगता था और प्रायः सभी छात्र अच्छी श्रेणियों में उत्तीर्ण होते थे । संभवतः इस समय ये सब परीक्षाएं कलकत्ता यूनीवर्सिटी से सम्बद्ध थीं ।

संस्कृत तथा हिन्दी वाङ्मय में रचित ग्रन्थ (गणित ज्यौतिष)

सर्व प्रथम श्री सुधाकर जी के रचित व शोधित ग्रन्थों की एक सूची का पाठकों के समक्ष उपस्थित करना उचित होगा ।

(१) वास्तव विचित्र प्रश्नानि । (२) वास्तव चन्द्र शृङ्गोन्नतिः । (३) दीर्घवृत्त-लक्षणम् । (४) भाभ्रमरेखा निरूपणम् । (५) ग्रहणे छादकनिर्णयः । (६) यन्त्रराजः । (७) प्रतिभाबोधकः । (८) धराभ्रमे प्राचीन नवीनयोर्विचारः । (९) पिण्ड प्रभाकरः । (१०) सशल्यवाणनिर्णयः । (११) वृत्तान्तर्गत सप्तदश भुज रचना । (१२) गणक तरङ्गिणी । (१३) दिङ्मीमांसा । (१४) द्युचरचारः ।[१] (१५) फ्रैंच भाषा से संस्कृत में बनाई हुई चन्द्र-सारिणी तथा भौमादि ग्रहों की सारणी ७ खण्डों में ।[१] (१६) १.१००००० की लघुरिक्थ की सारिणी । तथा एक एक कला की ज्यादिसारिणी । (१७) समीकरण मीमांसा (Theorey of Equetions) दो भागों में । (१८) गणित कौमुदी ।

प्राचीन आचार्यों के—

सूधाकर द्विवेदी कृत भाष्य, टीका, उपपत्ति, और अनेक मतों की मीमांसा के साथ परिष्कृत तथा तथ्य मत प्रदर्शन पूर्वक मुद्रित ग्रन्थ । (गणित ज्यौतिष)

(१७) वराहमिहिरकृत पञ्चसिद्धान्तिका । (१८) कमलाकर भट्ट विरचितः सिद्धान्त तत्वविवेकः । (१९) लल्लाचार्यकृतशिष्यधीवृद्धिदतन्त्रम् । (२०) करणकुतूहलः वासना विभूषण सहितः । (२१) भास्करीय लीलावती टिप्पणी सहिता । (२२) भास्करीय बीजगणितं टिप्पणी सहितम् । (२३) बृहत्संहिता भट्टोत्पल टीका सहिता । (२४) ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तः स्वकृततिलक (भाष्य) सहितः । (२५) ग्रहलाघवः, स्वकृतटीका सहितः । (२६) याजुष ज्यौतिषं सोमाकर भाष्य सहितम् । (२७) श्रीधराचार्यकृत स्वकृतटीका सहिता च त्रिशतिका । (२८) करण प्रकाशः सुधाकर कृत-उपपत्ति सहितः । (२९) सूर्यसिद्धान्तः

१. (नं १५ और नं० १६ ये ग्रन्थ संभवतः एशियाटिक सोसाइटी [illegible]
ग्रन्थ इस समय कठिनता से [illegible] रहे [illegible]

सुधाकरकृत सुधावर्षिणीसहितः। (३०) सूर्यसिद्धान्तस्य-एका वृहत्सारिणी तिथिनक्षत्रयोगकरणानां घटीज्ञापिका। उक्त ये ग्रन्थ सर्वत्र सुलभ होते हुये भी अब कठिनता से उपलब्ध हैं।

हिन्दी भाषा में मुद्रित (गणित ज्यौतिष) ग्रन्थ

(३१) चलन कलन। (Defininition Calculus) (३२) चलराशिकलन। (Integral Calculus) (३३) ग्रहण। (३४) गणित का इतिहास। (३५) पञ्चाङ्ग विचार। (३६) पञ्चाङ्ग प्रपञ्च तथा काशी की समय समय पर की अनेक शास्त्रीय व्यवस्था।

आज भारत की राष्ट्र भाषा हिन्दी हो गई है। भारतेन्दु कविवर्य्य बाबू हरिश्चन्द्र के साथ-साथ म. म. पं. सुधाकर द्विवेदी ने अपने समय में हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने की उच्च शब्दों में उद्घोषणा कर दी थी। तदनुसार द्विवेदी जी ने अपनी लेखनी को हृदय से हिन्दी की दिशा में भी घुमा कर निम्न लिखित कुछ ग्रन्थों को (अपने विशेष विचारों के साथ) मुद्रित किया था और अपनी मौलिक रचना से भी हिन्दी में ग्रन्थों को लिखा था। जैसे—(३७) भाषा बोधक प्रथम। (३८) भाषा बोधक द्वितीय भाग। (३९) हिन्दी भाषा का व्याकरण (पूर्वार्द्ध) (४०) तुलसी सुधाकर (तुलसी सतसई पर कुण्डलियाँ) (४१) महाराज "माणाधीश" श्री रुद्रसिंह कृत रामायण का मुद्रण। (४२) "पद्मावत १–३ खण्ड। (४३) माधव पञ्चक। (४४) राधाकृष्ण रामलीका। (४५) तुलसीदास जी की विनय पत्रिका का संस्कृत में अनुवाद। (४६) श्री "भारतेन्दु" हरिश्चन्द्र की जन्म पत्री (नागरी प्रचारिणी में है। मुद्रित है।)

क्वीन्स कालेज बनारस में इस समय उसमें गणित की स्पेशल कक्षायें चलती थीं। मैथमेटिक्स और इण्डियन ऐष्ट्रानामी (Indian Astromy) की कक्षाओं की शिक्षण देने का गुरुतम कार्य श्री सुधाकर जी को ही सौंपा गया। वैदुष्य के गाम्भीर्य एवं उच्चस्तर के लेक्चरों से प्रभावित होकर बड़े बड़े अंग्रेज भी द्विवेदी जी की गुण गरिमा पर भक्ति प्रदर्शित करने लगे। यद्यपि यह आश्चर्यजनक सा मालूम पड़ता है, क्योंकि सुधाकर जी न तो एम० ए० थे और न ज्योतिषाचार्य ही थे। इसी लिए इस विद्वत् धुरीण के प्रति सहसा सबकी पूज्य बुद्धि उदित होती है।

सुधाकर द्विवेदी की गणक तरङ्गिणी और गणित का इतिहास, इनदोनों ग्रन्थों में प्राक्काल से ई० १८०० तक के विश्व के महान् गणितज्ञों एवं शास्त्राज्ञों एवं ज्योतिर्विद विद्वानों की कृतियों के साथ उन सभो के जो अनुभव शोधपूर्ण इतिहास सुधाकर कृत है, उसी आधार से संक्षेप से इस **वक्तव्य में** ज्यौतिष के जिज्ञासु विद्वानों एवं सर्व साधारण पाठकों की ज्ञान वृद्धि के लिए लुप्तप्राय श्री सुधाकर परम्परा की पुनः जागृति के लिए वह यहाँ पर दे देना आवश्यक समझा है।

शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित

"भारतीय ज्योतिष" नामक एक बड़ा ग्रन्थ मराठी भाषा में महाराष्ट्र ब्राह्मण श्री शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित ने लिखा है।

जिसका मराठी भाषा का अनुवाद हिन्दी भाषा में श्री शिवनाथ झारखण्डी ने किया है और जिसे उत्तर प्रदेश शासन, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, हिन्दी भवन महात्मा गांधी रोड लखनऊ ने प्रकाशित किया है, यह प्रकाशन भी बड़े महत्त्व का है पूरा ग्रन्थ देखने की सुविधा इस संस्करण की भूमिका समाप्ति लिखते समय उपलब्ध हो सकी है। मराठी का यह प्रकाशन ३१ अक्टोबर १८९६ ई० सायन अमान्त कार्तिक कृष्ण १० शनौ शब्द १८१८, स्वयं लेखक ने लिखा है। अर्थात् ज्योतिष विद्या के महान् मनीषी विद्वान् दीक्षित ने प्रस्तावना में अपना थोड़ा सा वृत्तान्त स्वयं लिखा है जिसे पाठक लोग देख सकेंगे।

दीक्षित जी सुधाकर के परवर्ती कुछ ही वर्षों या समकालीन विद्वान् हैं। उन्होंने अपनी इस कृति में यत्र तत्र सर्वत्र श्री सुधाकर का उल्लेख करते हुए सुधाकर द्विवेदी का भी जीवन और कृतियाँ अपने ग्रन्थ में दे रखी हैं।

निःसन्देह श्री उक्त दीक्षितजी की कृति भारतीय ज्योतिष भण्डार के लिए एक आवश्यक महती उपलब्धि कही जानी चाहिए।

वेदाङ्ग ज्योतिष से लेकर अपने वर्तमान समय तक के स्कन्धत्रय ज्योतिष शास्त्र के सुसेवक महामनीषी ऋषिकल्प अनेक आचार्यों से रचित ग्रहगणित ग्रन्थों व उन आचार्यों के सम्बन्ध में जो शोध पूर्ण इतिहास, उनकी कृतियाँ उन उन ग्रहगणितज्ञों का संक्षिप्त जो गणक तरङ्गिणी में आचार्य सुधाकर ने लिखी हैं उसी आधार से उन उन गणितज्ञों संक्षिप्त परिचय मैंने इस ग्रहलाघव ग्रन्थ की भूमिका में हिन्दी भाषा के माध्यम से यहाँ पर दे देना उचित समझ कर दिया है।

आचार्य सुधाकर ने उक्त अनेकों ग्रन्थों को स्वयं देखा ही नहीं हैं अपि च उन आचार्यों के उन ग्रन्थों पर अपनी व्याख्या उपपत्ति शोध, स्थूल सूक्ष्म विवेचन से अपनी लेखनी को अजर, अमर और चिरस्थायिनी किया है जिससे पूर्वापर आचार्यों की ग्रहगणित सम्बन्धी काल व उन पर की स्थूल सूक्ष्मता से पाठकों के समय समय पर सुविधा हो सकेगी।

प्रकृत इस ग्रन्थ के आमूल चूड़ अध्ययन से ज्ञात होगा कि आचार्य सुधाकर इस प्रकृत ग्रन्थ के आमूल चूड़ अध्ययन अध्यापन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि आचार्य सुधाकर ग्रह गणित खगोल विज्ञान-सागर की गहनता एवं तत्सम्बन्धीं गंभीरता को समझने में पूर्णरूपेण सक्षम रहे हैं। प्रासंगिक सन्दर्भ में ही आचार्य सुधाकर के इस ग्रह-गणित को पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ पर दृष्टक दिया जा रहा है।

गणक तरङ्गिणी के उपान्तिम पेज १३३ में—सुधाकर द्विवेदी ने लिखा है।

"आधुनिका ज्योतिर्विदः फलमात्रैकवेदिनः" शीर्षक से लिखा है, जिसका हिन्दी अनुवाद निम्न है।

आजकल के ज्यौतिषी व्याकरणादि शास्त्रज्ञानरहित, लघुपाराशरी बालबोध शीघ्रबोध-मुहूर्त्तचिन्तामणि नीलकण्ठी बृहज्जातकजैमिनिसूत्र प्रभृति फलित ग्रन्थों के अवयव मात्र ज्ञान से मत्त अपने को कृतकृत्य और ज्योतिष शास्त्र पारङ्गत मानते हैं।

ऐसे कुछ साहसी मकरन्दरचित सारणी से पञ्चाङ्ग रचना करते हैं जो तिथि नक्षत्रा-दिक की उपपत्ति भी नहीं समझते हैं कि तिथि गणित शुद्ध या अशुद्ध कैसा है? इत्यादि से स्पष्ट है कि सुधाकर समय से ही ज्यौतिष का दुरुपयोग होने लग गया था जो आज चिन्तनीय स्थिति पर पहुंच चुका है। यह सब लिखते हुए भी वर्तमान काशी में करणागतग्रहज्ञानशील फलित ज्योतिषी सिद्धेश्वर श्यामाचरण प्रभृति विद्यमान हैं। जिनमें श्यामचरण अनेक रईस अमीरों से पूजित अनेक छात्रों को फलित ज्यौतिषाध्यायनशील छात्रों की भोजन वस्त्रादि की व्यवस्था में उदार हैं। इनके पुत्र इन्हीं से फलित पढ़ कर मुझसे (सुधाकर जी से) गणित विद्या पढ़ कर अनेक छात्रों को अध्ययन कराते हुए अपनी विद्या से अपने पिता को आमोदित करते हुए ३० वर्षासन्न आयु के श्री अयोध्यानाथ शर्मा नाम से प्रसिद्ध हैं। इत्यादि उल्लेख सुधाकर जी ने स्पष्ट किया है।

तथा **प्रकृत विषय** जो गणेश दैवज्ञ के रचना समय से आज तक ग्रहलाघव करण ग्रन्थ की समग्र भारत में जो अक्षुण्ण व्यापकता आज तक बनी है उस ग्रन्थ के मध्यमा-धिकार श्लोक १६ की व्याख्या के वाद का जो भूरि वैदुष्य पूर्ण गणित श्रम श्री सुधाकर ने किया है उसे भी इस सन्दर्भ में प्रकाशित कर देना अत्यन्त आवश्यक समझता हूं। आशा करता हूं कि इस ग्रन्थ के भविष्य के अन्य प्रकाशनों में गूढ़ और गहन यह शोध गणित लुप्त न होगा। जैसा ग्रहलाघव ग्रन्थ के आजकल के अनेक टीकाकारों में सुधाकर का उच्चतम गणित गोल वैदुष्य के उदाहरणों और उपपत्तियों का आधुनिक संस्करणों में उल्लेख तक नहीं किया जा रहा है। यह शोध प्रकाशन आवश्यक समझ कर इस संस्करण में दिया जा रहा है। आशा है सुधाकर की गणित गोल की उक्त देने लुप्त न होगी।

सुधाकरः—अत्र गणकानां विनोदाय गणितक्रियालाघवाय च सूर्यसिद्धान्ताद्युपयुक्तत-या ग्रहलाघवनिर्माणशकादेवाहर्गणादिसाधनं सप्रपञ्चं दर्शये ।

तत्र तावद्भास्करकृतकरणेन ब्रह्मतुल्येन करणकुतूहलाभिधेनाहर्गणसाधनं तदीयेन शकः, पञ्चदिक्चन्द्रहीन' इत्यादिविधिना (द्रष्टव्यं मद्वासनाविभूषणसहितं मुद्रितंकरणकुतूहलम् ।)

शकः	=	१४४२
	=	११०५
शेषम्	=	३३७
		१२
		६७४
"		३३७
सौरमासाः	=	४०४४
अधिमासाः	=	१२५
चान्द्रमासः	=	४१६९
चान्द्रदिनानि	=	१२५०७०
क्षयाहाः	=	१९५७
अहर्गणः	=	१२३११३

एकस्मिन् चक्रे च भूपखाब्धि-४०१६ समोऽहर्गणः प्रागेव दर्शितः । एतेन गुणेशस्य 'विश्वेन्द्वग्न्यरुणै-१२३११३ र्युक्तो ग्रहलाघवजो गणः चक्रघ्न-नृपखाब्ध्याढ्यो ब्रह्मतुल्यगणो भवे-दिति पद्यमुपद्यते । (द्रष्टव्याऽत्र विश्वनाथोदाहरणरूपव्याख्या ।)

अधिमासार्थम् ।

पृथक्स्थाः	=	४०४४
		२
द्विगुणाः	=	८०८८
		६६
क्षेपयुताः	=	८१५४॥९००)८१५४(९
		९
शेषम्	=	८१४५॥८१४५÷६५—१२५

अधिशेषं च=२०

अवमार्थम् ।

चान्द्रदिनानि	=	१२५०७०
क्षेपः	=	३
योग	:=	१२५०७३॥१२५०७३÷७०३=१७७
		१७७
योगाः	=	१२५२५०॥१२५२५०÷६४=१९५७

अवमशेषं च = २ ।

* द्रष्टव्यो मन्मुद्रितवासनाविभूषणसहितकरणकुतूहलस्य मध्यमाधिकारे १४ श्लो० ।

अथ ब्रह्मसिद्धान्तमूलकसिद्धान्तशिरोमण्यनुसारेण कल्पादितोऽहर्गणासाधनम् । तत्र तावद्गणितलाघवाय एकद्वित्र्यादिगुणिता अधिमासादयो विलिख्यन्ते

कल्पाधिमासाः ।	
१५९३३००००००	१
३१८६६००००००	२
४७७९९००००००	३
६३७३२००००००	४
७९६६५००००००	५
९५५९८००००००	६
१११५३१००००००	७
१२७४६४००००००	८
१४३३९७००००००	९
१५९३३०००००००	१०

कल्पसौरमासाः ।	
५१८४००००००००	१
१०३६८००००००००	२
१५५५२००००००००	३
२०७३६००००००००	४
२५९२००००००००	५
३११०४००००००००	६
३६२८८००००००००	७
४१४७२००००००००	८
४६६५६००००००००	९
५१८४००००००००००	१०

कल्पक्षयांहा ।	
२५०८२५५००००	१
५०१६५१०००००	२
७५२४७६५००००	३
१००३३०२०००००	४
१२५४१२७५००००	५
१५०४९५३०००००	६
१७५५५७८५००००	७
२००६६०४०००००	८
२२५७४२९५००००	९
२५०८२५५०००००	१०

कल्पचान्द्रदिनानि ।	
१६०२९९९००००००	१
३२०५९९८००००००	२
४८०८९९७००००००	३
६४११९९६००००००	४
८०१४९९५००००००	५
९६१७९९४००००००	६
११२२०९९३००००००	७
१२८२३९९२००००००	८
१४४२६९९१००००००	९
१६०२९९९०००००००	१०

शकादौ सौरवर्षगणः	=	१९७२९४७१७९
शकः	=	१४४२
कल्पगतसौरवर्षगणः	=	१९७२९४८६२१
सौरमासाः	=	२३६७५३८३४५२
अधिमासाः	=	७२७६६१८१४
चान्द्रमासाः	=	२४४०३०४५२६६
चान्द्राहाः	=	७३२०९११३५७९८०
क्षयाहाः	=	११४५५२२७४१५
अहर्गणः	=	७२०६३६१३०५६५

कल्पाधिमासाः = १५९३३०००००
सौरमासः = २३६७५३८३४५२

३१८६६
७९६६५
६३७३२
४७७९९
१२७४६४
४७७९९
७९६६५
१११५३१
९५५९८
४७७९९
३१८६६

३७७२१९८८)४५४०७१६००००० = [अधि×सौ.मा.

३६२८८
१४३३९
१०३६८
३९७१८
३६२८८
३४३०८
३११०४
३२०४४
३११०४
९४०५
५१८४
४२२१४
४१४७२
७४२०
५१८४
२२३६७
२०७३६

अधिशेषम्=१६३११६०००००
लब्धयोऽधिमासाःसौरमासगणाधो लिखिताः।

कल्पक्षयाहाः = २५०८२५५००००
चान्द्राहाः = ७३२०९१३५७९८०

२००६६०४०
२२५७४२९५
१७५५७७८५
१२५४१२७५
७५२४७६५
२५०८२५५
२२५७४२९५
५०१६५१०
७५२४७६५
१७५५७५८५

१८३६२७१८०९११०१२४९००००००
१६०२९९९
२३३२७२८
१५०२९९९
७२९७२९०
६४११९९६
८८५२९४९
८०१४९९५
८३७९५४१
८०१४९९५
३६४५४६१
३२०५९९८
४३९४६३०
३२०५९९८
११८८६३२१
११२२०९९३
६६५३२८२
६४११९९६
२४१२८६४
१६०२९९९
८०९८६५९
८०१४९९५

अवमशेषम् = ८३६६४००००००
लब्धयोऽवमानि चान्द्राहाधः स्थापितानि।

अहर्गणः ७२०६३६१३०५६५

करणकुतूहलार्गणः = १२३११३

अन्तरेण = ७२०६३६००७४५२=करणकुतूहलादौ कल्पगताहर्गणः। एतेन करशरयुगसप्ताभ्राभ्रषड्वन्हिषट्खद्वितुरग-७२०६३६००७४५२

सहितश्चेद्ब्रह्मतुल्यद्युपिण्डः। इह स भवति कल्पात् तावदङ्काद्रि—

भूमीनगयुगखगपक्षाद्रयङ्कभू-१९७२९४७१७९युक्शकाब्दः।इत्युपपद्यते कृष्णदैवज्ञोक्तम्।

एकद्यादिगुणानि कल्पकुदिनानि।		एकद्यादिगुणोऽहर्गणश्च।	
१५७७९१६४५००००	१	७२०६३६१३०५६५	१
३१५५८३२९०००००	२	१४४१२७२२६११३०	२
४७३३७४९३५००००	३	२१६१९०८३९१६९५	३
६३११६६५८०००००	४	२८८२५४४५२२२६०	४
७८८९५८२२५००००	५	३६०३१८०६५२८२५	५
९४६७४९८७०००००	६	४३२३८१६७८३३९०	६
११०४५४१५१५००००	७	५०४४४५२९१३९५५	७
१२६२३३३१६०००००	८	५७६५०८९०४५२०	८
१४२०१२४८०५००००	९	६४८५७२५१७५०८५	९
१५७७९१६४५०००००	१०	७२०६३६१३०५६५०	१०

अथ संप्रति प्रसिद्धसूर्यसिद्धान्तानुसारेण एकद्यादिगुणा अधिमासादयः।

युगाधिमासाः।		युगसौरमासाः।		युगावमानि।		युगचान्द्राहाः।	
१५९३३३६	१	५१८४००००	१	२५०८२५५२	१	१६०३००००८०	१
३१८६६७२	२	१०३६८००००	२	५०१६५०४	२	३२०६०००१६०	२
४७८०००७	३	१५५५२००००	३	७५२४६७५६	३	४८०९०००२४०	३
६३७३३४४	४	२०७३६००००	४	१००३२९००८	४	६४१२०००३२०	४
७९६६६८०	५	२५९२०००००	५	१२५४११२६०	५	८०१५०००४००	५
८५६००१६	६	३११०४००००	६	१५०४९३५१२	६	९६१८०००४८०	६
१११५३३५२	७	३६२८८००००	७	१७५५७५७६४	७	११२२१०००५६०	७
१२७४६६८८	८	४१४७२००००	८	२००६५८०१६	८	१२८२४०००६४०	८
१४३४००२४	९	४६६५६००००	९	२२५७४०२६८	९	१४४२७०००७२०	९
१५९३३३६०	१०	५१८४०००००	१०	२५०८२५५२०	१०	१६०३००००८००	१०

कल्पगतसौरवर्षगणः = १९७२९४८६२१

सृष्टिवर्षगणः = १७०६४०००

सृष्टिगतवर्षगणः = १९५५८८४६२१

सौरमासाः = २३४७०६१५४५२

अधिमासाः = ७२१३८४५७८

चान्द्रमासाः = २४१९२०००३०

चान्द्रदिनानि = ७२५७६००००९००

क्षयाहाः = ११३५६०१६४२२

निरेकेणाहर्गणः =७१४४०३९८४४७७। अय रविवारे निशीथसमये जातः। एतदुत्पन्ना ग्रहाः पञ्चदशघटीभवचालनेनाधिका लंकोदये सोमवारे भवन्तीति चिन्त्यम्।

सैकेन सोमवारे निशीथेऽहर्गणः=७१४४०३९८४४७८

करणकुतूहलाहर्गणः = १२३११३

अन्तरम् =७१४४०३८६१३६५=करणकुतूहलादौ सृष्टितोऽहर्गणः। एतेन "शरसगुणभूषड्नागरामाभ्रवेदाम्बुधिशशिनग-७१४४०३८६१३६५ युक्तो ब्रह्म" बुल्यद्युपिण्डः। इह स भवति सृष्टेस्तावदङ्काद्रिभूमीगुणवसुवसुपञ्चाक्षाङ्कभूयुक् शकाब्दः॥'-इति कृष्णदैवज्ञोक्तमुपपद्यते ।

युगाधिमासाः= १५९३३३६

सृष्टिगतसौरमासाः= २३४७०६१५४५२

३१८६६७२
७९६६६७०
६०७३३४४
७९६६६८०
१५९३३३६
९५६००१९
१११५३३५२
६३७३३४४
४७८०००८
३१८६६७२

३७३९६५७६५४१८२७८७२
३६२८८

११९८५
१०३६८

६१७७
५१८४

१९९३६
१५५५२

४३८४५
४१४७२

२३७३४
२०७३६

२९९८१
२५९२०

४०६१८
३६२८८

४३३०२
३१४७२

अधिशेषम्= १८३०७८७२

लब्धयोऽधिमासाः सृष्टिगतसौरमासगणाधः स्थापिताः ।

युगक्षयाहाः = २५०८२२५२

चान्द्राहाः =७२५७६००००९००

२२५७४०२६८००
१५०४९३५१२
१७५५७५७६४
१२५४११२६०
५०१६४५०४
१७५५७५७६४

१८२०३६९५२३४०९४०२६८००
१६०३००००८

२१७३६९४४३
१६०३००००८

५७०६९४३५४
४८०९०००२४

८९७९४३३००
८०१५०००४०

९६४४३२६०९
९६१८०००४८

२६३२५६१४०
१६०३००००८

१०२९५६१३२२
९६१८०००२४

६७७६१२९८६
६४१२०००३२

३६४१२९५४८
३६४१२९५४८
३२०६०००१६

४३५२९५३२०
३२०६०००१६

अवमशेषम् = ११४६९५३०४०

लब्धयोऽवमानि चान्द्राहाधःस्थापितानि

एकद्व्यादिगुणितानि

१५७७९१७८२८	१
६१५५८३५६५६	२
४७६३७५३४८४	३
६३५१६७१३१२	४
७८८९५८९१४०	५
९४६७५०६९६८	६
११०४५४२४७९६	७
१२३२३३४२६२४	८
१४२०१२६०४४२	९
१५७७९१७८२८०	१०

एकद्व्यादिगुणोऽहर्गणः ।

७१४४०३९८४७७	१
१४२८८०७९६८९५४	२
२१४३२११९५३४३१	३
२८५७६१५९३७९०८	४
३५७२०१९९२२३८५	५
४२८६४२३९०६८६२	६
५०००८२७८९१३३९	७
५७१५२३१८७५८१६	८
६४२९६३५८६०२९३	९
७१४४०३९८४७७०	१०

आर्यभटमतेन युगसौरमासा अधिमासाश्चान्द्रमासाश्च सूर्यसिद्धान्तोक्ता एव। तन्मते दिनक्षयाः=२५०८२५८० । युगकुदिनानि=१५७७९१७५०० ।

रविभगणाः=४३२०००० । चन्द्रभगणाः=५७७५३३३६ चन्द्रोच्चभगणाः= ४८८२१९ । चन्द्रपातभगणाः= २३२२२६ । कुजभगणाः=२२९६८२४ । बुधोच्च-भगणाः=१७९३७०२० । गुरुभगणाः=३६४२२४ । शुक्रोच्चभगणाः=७०२२३८८ शनिभगणाः=१४६५६४ । कुजादीनां मन्दोच्चपातभगणा न लिखिताः । आर्यभटमते गुरुवारे कल्पारम्भः । युगपादाः कृतादयश्च सर्वे युगपादसमाः समाः । अन्तिममहायुगा-रम्भश्च लङ्कायां सूर्योदये बुधवारे चासीत् । इति सर्वं तदीयतज्ज्ञतः स्पष्टम् । प्रत्येक-महायुगारम्भे सर्वे ग्रहा मेषादाविति च तन्मतम् ।

एकद्व्यादिगुणान्यवमासि ।

२५०८२५८०	१
५०१६५१६०	२
७५२४७७४०	३
१००३३०३२०	४
१२५४१२९००	५
१५०४९५४८०	६
१७५५७८०६०	७
२००६६०६४०	८
२२५७४३२२०	९
२५०८२५८००	१०

एकाद्व्यादिगुणानि कुदिनानि ।

१५७७९१७५००	१
३१५५८३५०००	२
४७३३७५२५००	३
६३११६७००००	४
७८८९५८७५००	५
९४६७५०५०००	६
११०४५४२५००	७
११६२३३४००००	८
१४२०१२५७५००	९
१५७७९१७५०००	१०

महायुगारम्भात् शकादौ सौरवर्षगणः = ३२४३१७९

शकः = १४४२

महायुगगतवर्षगणः = ३२४४६२१

सौरमासा: = ३८९३५४५२

अधिमासा: = ११९६७०६

चान्द्रमासा: = ४०१३२१५८

चान्द्राहा: = १२०३९६४७४०

क्षयाहा: = १८८३८७६५

अहर्गण: = ११८५१२५९७५

युगावमनि = २५०८२५८०

चान्द्राहा: = १२०३९६४७४०

१००३३०३२

१७५५७८०६

१००३३०३२

१५०४९५४८

२२५७४३२२

७५२४७७४

५०१६५१६

२५०८२५८

३०१९८५४१९०८२२९२००

१६०३००००८

१४१६८५४११०

१२८२४०००६४

१३४४५४०४६८

१२८२४०००६४

६२१४०४०४२

४८०९०००२४

१४०५०४०१८२

१२८२४०००६४

१२२६४०११८९

११२२१०००५६

१०४३०११३३२

९६१८०००४८

८१२११२८४०

८०१५०००४०

अवमशेषम् = १०६१२८०००

लब्धयोऽवमानि चान्द्राहाध: स्थापितानि।

युगाधिमासा: = १५९३३३६

सौरमासा: = ३८९३५४५२

३१८६६७२

७९६६६८०

६३७३३४४

७९६६६८८

४७८०००८

१४३४००२०

१२७४६६८८

४७८०००८

६२०३७२५७३४७८७२

५१८४

१०१९७

५१८४

५०१३२

४६६५६

३४७६५

३११०४

३६६१७

३६२८८

३२९३४

३११०४

अधिशेषम् = १८३०७८२

लब्धयोऽधिमासा:सौरमासगणाध: स्थापिता:।

एकद्वयादिगुणोऽहर्गण: ।

११८५१२५९७५	१
२३७०२५१९५०	२
३५५५३७७९२५	३
४७४०५०३९००	४
५९२५६२९८७५	५
७११०७५५८५०	६
८२९५८८१८२५	७
९४८१००७८००	८
१०६६६१३३७७५	९
११८५१२५९७५०	१०

अथैतदार्यभटमतेन कलिमुखादहर्गणसाधनम्

शकादौ कलिगतवर्षाणि = ३१७९

शकः = १४४२

कलिगतवर्षाणि = ४६२१

सौरमासाः = ५५४५२

अधिमासाः = १७०४

चान्द्रमासाः = ५७१५६

चान्द्राहाः = १७१४६८०

क्षयाहाः = २६८३०

अहर्गणः = १६८७८५०

अयमेवाहर्गणः सैको निशीथे सूर्यसिद्धान्त-मतेनाहर्गणः

$=\begin{matrix}१६८७८५१\\१२३११३\end{matrix}$ अयं करणकुतूहलाहर्गणेन हीनो जातःकरणकुतूहलादौ सूर्यसिद्धान्तमते-नाहर्गणः=१५६४७३८ ।

एतेन न्नागरामनगवेदषट्शरक्ष्मायुतो दिन-गणः कुतूहले । स्यादयं कलिमुखोऽथ गोद्रिभू-रामसंयुतशकोऽत्र वत्सराः ।।'

इत्युपपद्यते कृष्णदैवज्ञोक्तम् ।

युगाधिमासाः = १५९३३३६

सौरमासाः = ५५४५२

३१८६६७२

७९६६६८०

६३७३३४४

७९६६६८०

७९६६६८०

८८३५३६६६'७८७२

५१८४

३६५१३

३६२८८

२२५६६

२०७३६

अधिशेषम् = १८३०७८७२

लब्धयोऽधिमासाः सौरमासाधःस्थापिताः।

युगावमानि = २५०८२५८०

चान्द्राहाः = १७१४६८०

२००६६०६४

१५०४९५४८

१००३३०३२

२५०८२५८

१७५५७८०६

२५०८२५८

४३००८५९८२७४४००

३२०६०००१६

१०९४८५९६६७

९६१८०००४८

१३३०५९६११९४

१२८२४०००६४

४८१९६१३०४

४८०९०००२४

अवमशेषम् = १०६१२८००

लब्धयोऽवमानि चांद्राहाधः स्थापितानि ।

एव ग्रहलाघवोपयोगिनः सिद्धान्तत्रयेणाहर्गणान् प्रसाध्याधुना क्षेपादिसाधनं क्रियते तत्र तावत् 'सौरोऽर्कोऽपि विधूच्चमंककलिकोनाब्ज' इत्याचार्योक्तेनसूर्यः, चन्द्रोच्चं चन्द्रश्च सूर्यसिद्धान्ताहर्गणेन पूर्वसाधितेन साध्यते। युगकुदिनैः युगग्रहभगणा लभ्यते तदाहर्गणेन किमित्यनुपातेन।

अह × रभ = ३०८६२२५२१२९४०६४००००

अह × रभ ÷ युकुदि = ३०८६२२५२१२९४०६४०००० (१९५५८८४६२०।११।१९।२६।२६

१५७७९१७८२८ — १५ घटीचालनं धनम् = १४।४७

१५०८३०७३८४९ — जातो रविक्षेपको भाद्यः = ११।१९।४१।१३

१४२०१२६०४५२

८८१८१३३९७४ — = ११।१९।४१ स्वल्पान्तरात्।

७८८९५८९११४०

९२८५४४८३४०
७८८९५८९१४०

१३९५८५९२००६
१२६२३३४२६२४

१३३५२४९३८२४
१२६३३४२२४२४

७२९१५१२०००
६३११६७१३१२

९७९८४०६८८०
९४६७५०६९६८

३३०८९९९१२०
३१५५८३५६५६

१५३१६३४६४०
× १२

१८३७९६१५६८०
१५७७९१७८२८

२६००४३७४००
१५७७९१७८२८

१०२२५१९५७२
× ३०

३०६७५५८७१६०
१५७७९१७८२८

१४८९६४०८८८०
१४२०१२६०४५२

६९५१४८४२८
× ६०

४१७०८९०५६८०
३१५५८३५६५६

१०१५०५४९१२०
९४६७५०६९६८

६८३०४२१५२
४०९८२५२९१२०
३१५५८३५६५६
९४२४१७२५६०
७८८९०८९१४०

१०३४०८३४२०

अह × चभ ÷ युकुदि=४१२५९२१३३५५२३८९६५२७२(२६१४७८८४६५०।११।११५।५८।१

३१५५८३५६५६ १५ घटीचालनं घनम् = ३।१७।३९

९७००८५६७९५

९४६७५०६९६८ जातो भादिचन्द्रक्षेपः = ११।१९।१५।५२

२३३३४९८२७२ नवकलाहीनः = ११।१९। ६।५२

१५७७९१७८२८ अत्राचार्योक्तस्य क्षेपस्यास्य च

७५५५८०४४४३ द्विपञ्चाशद्विकलान्तरम् ।

६३११६७१३१२

१२४४१३३१३१८

११०४५४२४७९६

१३९५९०६५२२९

१२६२२३४२६२४

१३३५७२२६०५६

१२६२३३४४६२४

७३३८८३४३२५

६३११६५१३१२

१०२७१६३०१३२

९४६७५०६९६८

८०४१२३१६४७

७८८९५८९१४०

१५१६४२५०७२

१८१९७१००८६४

१५७७९१७८२८

२४१७९२२५८४

१५७७९१७८२८

८४०००४७५६

२५२०००१४२६८०

१५७७९१७८२८

९४२०९६४४००

७८८९५८९१४०

१५३१३७५२६०

९१८८२५१५६००

७८८९५८९१४०

१२९८६६२४२००

१२६२३३४२६२४

३६३२८१५७६

२१७९६८९४५६०

१५७७९१७८२८

६०१७७१६२८०

४७३३७५३४८४

१२८३९६२७९६

चन्द्रोच्चक्षेपायनम् ।

अह × उभ ÷ युकुदि = ३४८७७४१६८४३३६२४८३१ (२२१०३४४३०।५।१७।३८।४३
३१५५८३५६५६
३३१९०६०२८३
३१५५८३५६५६
१६३२२४६२७३
१५७७९१७८२८
५४३२८४४५६२
४७३३७५३४८४
६९९०९१०७८४
६३११६७१३१२
६७९२३९४७२८
६३११६७१३१२
४८०७२३४१६३
४७३३७५३४८४
७३४८०६७९१
८८१७६८१४९२
७८८९५८९१४०
९२८०९२३५२
२७८४२७७०५६०
१५७७९१७८२८
१२०६३५९२२८०
११०४५४२४७९६
१०१८१६७४८४
६१०९००४९०४०
४७३३७५३४८४
१३७५२५१४२००
१२६२३३४२६२४
११२९१७१५७६
६७७५०२९४५६०
६३११६७१३१२
४६३३५८१४४०
३१५५८३५६५६
१४७७७४५७८४

१५ घटीचालन धनन् १।४०
भादिचन्द्रोच्चक्षेपकः = ५।१७।४०।२३

अत्र गणितेन चन्द्रोच्चक्षेपः ५।५७।४० इति सिध्यति । अत एव गोकुलनाथेन स्वकृतमकरन्दटीकायां प्रसङ्गादत्र 'तुङ्गेऽक्षाब्दाभ्रवेदाः' इति पाठः साधीयान् स्वीकृतः । केनापि ग्रहकौतुकाद्यन्यतमसौरपक्षीयकरणेन गणेशेन स्थूलमिदमिन्दूच्चं साधितम् । तेनैवात्र समकला स्थूलता जातेति प्रतीयते ।

अथार्यभटानुसारेण गुरुकुजराहुसाधनार्थं तावल्लल्लोक्तेन

'शाके नखाब्धिरहिते शशिनोऽक्षदस्रै-२५ स्तत्तुङ्गतः कृतशिवै-११४ स्तमसः षडङ्कैः ९६ शैलाब्धिभिः ४७ सुरगुरोर्गुणिते सितोच्चाच्छोध्यं त्रिपञ्चकु १५३ हतेऽभ्रशराश्वि २५० भक्ते ।। स्तम्बेरमाम्बुधि-४८ हते क्षितिनन्दनस्य सूर्यात्मजस्य गुणितेऽम्बरलोचनैश्च २०। व्योमाक्षिसागर–४२० हृते विदधीत लब्धं शीतांशुसूनुचलतुङ्गकलासु बृद्धिम् ।। अनेन ग्रहलाघवारम्भकाले ह्यब्धीन्द्रशके ग्रहाणां बीजं साध्यते ।

शकः= १४४२
४२०
१०२२।
२५
५११०
२०४४
२५०)२५५५'०(१०२'।१२''
२५ =चन्द्रबीजम्
५५
५०
५

१०२२
११४
४०८८
१०२२
१०२२
२५०)११६५०'८(४६६'।२'' =३९२'।२७'' =राहुबी·
१०० =चन्द्रोच्चबीजम्
१६५
१५०
१५०
१५०
८
४८०

१०२२
९६
६१३२
९१९८
९८११'२÷२५०=३९२

३०००

१०२२
४७
७१५४
४०८८
२५०)४८०३'४(१९२'८''
२३०
२२५ =गुरुबीजम्
५३
५०
३४
२०४०

१०२२
१५३
३०६६
५११०
१०२२
१५६३६'६÷२५०
=६२५'।२८'' =शुक्रोच्च-बीजम्

१०२२
४८
८१७६
४०८८
२५०)४९०५६(१९६'।१३''
२५ =कुजबीज
२४०
२२५
१५५
१५०
५६
३३६'०
८६

१०२२
२०
२५०)२०४४'०(८१'।४६''
४४
२५ =शनिबीजम्
१९०
११४०

१०२२
४२
२०४४
४०८८
२५)४२९२४(१७१६'।५८''=
१७९ बुधोच्चबीजम्
४२
१७४
२४
१४४०

अथार्यभटानुसारेण अन्तिमयुगारम्भादहर्गणः = ११८५१२५९७५
गुरुयुगभगणाः = ३६४२२४

४७४०५०३९००
२३७०२५१९५०
२३७०२५१९५०
४७४०५०३९००
७११०७५५८५०
३५५५३७७९२५

अह × गुभ = ४३१६५१३२३११८४००

अह × गुभ ÷ युकुदि = ४३१६५१३२३११८४०० (२७३५५७।७।५।४३।५१

३१५५८३५०

११६०६७८२३
११०४५४२२५

५६१३५९८१
४७३३७५२५

७८८९५८७५
८७९८४५६१

९०८८६८६८
७८८९५८७५

११९९०९९३४
११०४५४२२५

९४५५७०९००
११३४६८५०८००
११०४५४२२५

३०१४२८३
९०४२८४९०
७८८९५८७५

११५३२६१५
६९१९५६९००
६३११६७००

६०७८९९००
४७३३७५२५

१३४५२३७५
८०७१४२५००
७८८९५८७५

१८१८३७५०

एवमार्यभटमतेन भादिको गुरुः = ७ । ५ । ४३ । ५१
लल्लोक्तं बीजं भागादिकम् = ३ । १२ । ८
अन्तरेण गुरुक्षेपः = ७ । २ । ३१ । ४३ = ७।२ । ३२ स्वल्पान्तरात् ।
अत्राचार्योक्तेन गुरुक्षेपेण षोडशकालान्तरम्

अन्तिमयुगारम्भादहर्गणः = ११८५११२५९७५
कुजभगणा=: = १२९६८२४

४७४०५०३९००
२३७०२६११५०
९४८१००७८००
७११०७५५८५०
१०६६६१३३७७५
२३७०२५११५०
२३७०२५११५०

अह × कुभ = २७२२०२५७८२४०३४००
अह × कुभ ÷ कुदि= २७२२०२५७८२४०३४०० (१७२५०७४।१०।३।१२।५२
१५७७९११७५
११४४१०८२८
११०४५४२२५
३९५६६०३२
३११५५८३५०
८००७६१२४
७८८९५८७५
११८०९४९०३
११०४५४२२५
७६४०६७८४
६३१११६७००
१३२९००८४ × १२
१५९४८१००८
१५७७७९११७५
१६८९२५८ × ३०
५०६७७७७४०
४७३३७५२५
३३४०२१५ × ६०
२००४१२९००
१५७७९११७५
३२६०१०००
३१५५८३५०
११०६२८०० × ६०
६६३७६८०००
६३१११६७००
४२६२११५०
३१५५८३५०
१०४२६५०

लल्लोक्तबीजं धनम् = ३।११६।१३
भादिकुजक्षेपः = १०।६।२९।५

अत्राचार्योक्तेनक्षेपेणैकोन चत्वारिंशत्कलान्तरम्

अन्तिमयुगारम्भादहर्गणः = ११८५१२५९७५
चंद्रपातभगणाः = २३२२२६

७११०७५५८५०
२३७०२५१९५०
२३७०२५१९५०
२३७०२५१९२०
३५५५३७७९२५
२३७०२५१९५०

अह × च पा भ =२७५२१७०६४६७०३५०

अह × च पा भ ÷ कुदि=२७५२१७०६४६७०३५०(१७४४१७। १०। २५।४८।४७

१५७७९१७५ चक्रशोधनेन भादिको

११७४२५३१४
११०४५४२२५ राहुः =१।४।११।१३

६९७१०८९६ लल्लोक्तराहुबीजमृणम्=६।३२।२७
६३११६७००

६५९४१९६७
६३११६७०० अन्तरेण राहुक्षेपः=०।२७।३′८।४६″

२८२५२६७०
१५७७९१७५

१२४७३४९५३
११०४५४२२५

१४२८०७२८५०
१७१३६८७४२००
१५७७९१७५

१३५७६९९२
४०७३०९७६०
३१५५८३५०

९१७२६२६०
७८८९५८७५

१२८३०३८५
७६९८२३१००
६३११६७००

१३८६५६१००
१२६२३३४००

१२४२२७००
७४५३६२०००
६३११६७००

११४१९५०००
११०४५४२२५

३७४०७७५

अत्राचार्योक्तेन क्षेपेण षट्चत्वारिंशद्विकलान्तरम् ।

अन्तिमयुगारम्भादहर्गणः = ११८५१२५९७५

शनिभगणाः = १४६५६४

४७४०५०३९००

७११०७५५८५०

५९२५६२९८७५

७११०७५५८५०

४७४०५०३९००

११८५१२५९७५

अह × शभ = १७३६९६८०३३९९९००

अह × शभ ÷ कुदि = १७३६९६८०३३९९९०० (११००७९।९।९।०।२५

१५७७९१७५ शनिबीजं घनम् = १।२१।४६

१५९०५०५३ भादिशनिः = ९।१°।०।२′।२।१″।१

१५७७९१७५

१२५८७८३९९

११०४५४२२५

१५४२४१७४९

१४२०१२५७५

१२२२९१७४

१४६७५००८८

१४२०१२५७५

४७३७५१३

१४२१२५३९०

१४२०१२५७५

११२८१५

६७६८९००

४०६१३४००५

३१५५८३५०

९०५५०५००

७८८९५८७५

११६५४६२५

अत्रार्षे'सेषुभागः शनि' रित्याचार्य्योक्तत्वात् शनिक्षेपः = ९। १५°। २२′। ११″ =९। १५। २२ स्वल्पान्तरात्। अस्याचार्योक्तक्षेपस्य चान्तरमेका कला भवति।

अथ ब्रह्मासिद्धान्तमूलकेन सिद्धान्तशिरोमणिना बुधकेन्द्रानयनम् ।

कल्पादहर्गणः=७२०६३६१३०५६५

बुधकेन्द्रभगणाः= १३६१६९९८९८४

२८८२५४४५२२२६०
५७६५०८९०४४५२०
६४८५७२५१७५०८५
५७६५०८९०४४५२०
६४८५७२५१७५०८५
४८५७२५१७५०८५
४३२३८१६७८३३९०
७२०६३६१३०५६५
८३२३८५६७८३३९०
२१६१९०८३९१६९५
७२०६३६१३०५६५

अह × बुकभ ÷ ककुदि=९८१२९०१४५७७३७२९६३४५९६०(६२१८८९८००१।८।८।३।४२
९४६७४९८७०
३४५४०२७५७
३१५५८३२९०
२९२१९४६७७
१५७७०१६४५
१४०४०३०३२३
१२६२३३३१६०
१४१६९७१६३७
१२६२३३३१६०
१५४६३८४७७२
१४२०१२४८०५
१२६२५९९६७२
१२६२३३३१६०
२६६५९९६३४
१५७७९१६४५

१०८७२७९८९५९६०
१३०४७३५८७५१५२०
१२६२३३३१६०

४२४०२७१५५५२०
१२७२०८१४५४५६००
१२६२३३३१६०

९७४८२९४५६००
५८४८९७६७३६०००
४७३३७४९३५

१११५२२७३८६०००
६६९१३६४३१६००००
६३९१६६५८०

३७९६९८५९६
३१५५८३२९०

६४११५२२६००००

कल्पगतवर्षाणि = १९७२९४८६२१। 'खाभ्रखार्कैर्हृता कल्पयाताः समा' इत्यादिना
बीजोपयोगि शेषम् = ४६२१ तत 'स्त्रिभिः सायकै' रित्यादिना भास्करोक्तेन।

रविबीजम् = ३×४६२१/२०० = १३८६३/२०० = ६९' । १९" ऋणम् ।
चन्द्रगुरुबीजम् = ५×४६२१/२०० = २३१०५/२०० = ११५' । ३१" ऋणम् ।
शुक्रोच्चबीजम् = १५×४६२१/२०० = ६९३१५/२०० = ३४६' । ३५" ऋणम् ।
चन्द्रोच्चबीजम् = २×४६२१/२०० = ४६२१/१०० = ४६' । ३५" ऋणम् ।
भौमबीजम् = २×४६२१/२०० = ४६२१/२०० = २३' । ६" धनम् ।
बुधोच्चबीजम् = ५२×४६२१/२०० = २४०२९२/२०० = १२०'१। २७" धनम् ।
चन्द्रपातबीजम् = २×४६२१/२०० = ९२४२/२०० = ४६' । १३" धनम् ।

बुधकेन्द्रबीजम्=बुधोच्चबी. —रविबी. =+ १२०१' । २७"—(—६९' ।१९")
=+१२०१ । २७"+६९' । १९"=१२७०' । ४६"=+२१° । १०' । ४६"

प्राक्साधितं बुधकेन्द्रं भादिकम् = ८ । ८ । ३ । ४२
बुधकेन्द्रक्षेपः = ८ । २९ । १४। २८

अत्राचार्योक्तेन क्षेपेणैकोनविंशतिकलान्तरम् ।

अत्रैव करणकुपूहलाहर्गणेन १२३११३ 'वेदंघ्नो द्युचयो द्विधेत्यादिविधिना बुधचमानयतम्

```
   १२३११३¾ ।                              |१४२१ )१२३११३( ८६ । ३८ । १८
४३ )४९२४५२(   ४९२४५२ ।
              ११४५२ । २२ । २०
             ५०३९०४ । २२ । २०
                  ८६ । ३८ । १८
             ५०३८१७ । ४४ । २ = ५ । २७ । ४४ । २
                                 २ । २५ । १४ । ३०
```

भादिकं बुधचलम् = ८ । १८ । ५८ । ३२

'अब्दा गजाश्चैस्त्रिरसै' रित्यादि भास्करविधिना बुधचलवीजं
धनम्=१५" तेन संस्कृतं जाते बुधचलम् = ८ । १८° । ५८' । ४७"

करणंकुतूहलेमैव रविः = ११। १९ । ४४ । १७
बुधकेन्द्रक्षेपः = ८। २९ । १४ । ३०

```
      १२३११३ |     १२३११३
          १३ | ल=  १७७२।२३।२७
      ३६९३३९ |  १२१३४० ३६ ३३
      १२३११३ | =०१२०°।३६'।३३"
९०३)१६००४६९(ल |          ५ ।३३
श=१४४२       |    ०।२०।३१ ।१७
   ११०५      |   १०।२९।१३ । ०
६४)३३७(५'।१६" | म=११।१९।४४ ।१७
```

प्रकारद्वयेनाप्याचार्योक्तक्षेपेणैकोनविंशतिकलान्तरम् ।

पूर्वसाधिताहर्गणेन कल्पादित आगतेन सिद्धान्तशिरोमणिविधिनाऽनुपातजो

मध्यमरविर्मांदिकः	= ११ । २० । ५३ । ३६
पूर्वागतं रविबीजमृणम्	= १ । ९ । १९
मध्यमरविः	= ११ । १९ । ४४ । १७

अयं करणकुतूहलागतरविसम एवेति ।

अथ ब्रह्मसिद्धान्तानुसारेण शुक्रकेन्द्रानयनम् ।

कल्पादहर्गणः = ७२०६३६१३०५६५

शुक्रकेन्द्रभगणाः = २७ २३८९४९२

१४४१२७२२६११३०
६४८५७२५१७५०८५
२८८२५४४५२२२६०
६४८५७२५१७५०८५
५७६५०८९०४४५२०
२१६१९०८३९१६९५
१४४१२७२२६११३०
५०४४४५२९१३९५५
१४४१२७२२६११३३०

अह × श भ÷कку=१९४७४३९५०६७९४३९६०२'२९८०(१२३४१२४१७१।७२८।९।३९

१५७७९११६४५
३६९५२३०५६
३१५५८२२९०
५३९३९७६६७
४७३३७४ ३५
६६०२२७३२९
६३११६६५८०
२९०६०७४९४
१५७७९१६४५
१३२८१५८४९३
१२६२३३३१६०
६५८२५३३३९
६३११६६५८०
२७०८६७५९६
१५७७९१६४५
११३०७५९५१०
११०४५४१५१५
२६२१७०९५२
१५७७९१६४५
१०४३८८३०७२९८०
१२
२०८७७६६१४५९६०
१०४३८८३०७२९८
१२५२६५९६८७/५७६०
११०४५४१५१५
१४८११८१७२५७६०
४४४३५४५१७७/२८००
३१५५८३२९०
१२८७७१२२७७
१२६२३३३१६०
२५३७९११७२८००
१५२२७४७०३६/८०००
१४२०१२४८०५
१०२६२२२३१८०००
६१५७३३३९०८/००००
४७३३७४९३५
१४२३५८४५५८
१४२०१२४८०५
३४५९७५३०००० = विकलाशेषम् ।

शुक्रोच्चबीजम्=५°।४६'।३'''
रविबीजम् =-१ ।९ ।१९
शुक्रकेन्द्रबीजम् =-४।३७ ।१६
शुक्रकेन्द्रम्=७।२८। । ९ ३९
वास्तवकेंद्रम्=७।२३।३२।२३

अथाऽऽर्यभटानुसारेण शुक्रकेन्द्रानयनम् ।

अन्तिममहायुगारम्भादहर्गणः = ११८५१२५९७५

शुक्रकेन्द्रभगणाः = २७५२३८८

९४८१००७८००
९४८१००७८००
३५५५३७७९२५
२३७२२५१९५०
८२९५८८१८२५
२३७०२५१९५०

अह ×शु भ ÷ ककु = ३२०२६७०२१३३२८३'०० (२०२९६८१।७।२८।११।२३

३१५५८३५०

४६८३५२१३
३१५५८३५०

१५२७६८६३३
१४२०१२५७५

१०७५६०५८२
९४६७५०५०

१२८८५५३२८
१२६२३३४००

२६२१९२८३
१५७७९१७५

भादिक शुककेन्द्रम् = ७।२८°।११'।२३" १०४४०१०८

शुक्रबीजम् = १० ।२५ ।२८ १२५२८१२९६

वास्तवशुक्रकेन्द्रम् = ७।१७ ।४५ । ५५ ११०४५४२२५

ब्रह्मसिद्धान्तकेन्द्रम् = ७।२३ ।३२ । २३ १४८२७०७१

यो = १५।११ ।१८ । १८ ४४४८१२११३०

३१५५८३५०

$\frac{\text{यो}}{२}$ = ७ । २० । ३९ । ९ १२९२२८६३०

१२६२३३४००

२९९५२३०

आचार्योक्तक्षेपेण त्रिंशत्कलान्तरम् । १७९७१३८००

१५७७९१७५

२१९२२०५०

१५७७९१७५

६१४२८७५

३६८५७२५००

३१५५८३५०

५२९८९०००

४७३३७५२५

५६५१४७५ = वि शे

अथ करणप्रकाशमतेनाहर्गणसाधनम् ।

'शाकःशक्रदशोनित' इत्यादिना ।

शकः = १४४२
ग्रन्थशकः = १०१४
शे = ४२८
१२
सौरमासाः = ५१३६
अधिमासाः = १५८
चान्द्रमासाः = ५२९४
चन्द्राहाः = १५८८२०
क्षयाहाः = २४८६
अहर्गणः = १५६३३४

अधिमासानयनम् ।

५१३६
२
१०२७२
३२
१०३०४।१०३०४ ÷ ९१६ = ११
११
१०२९३ ÷ ६५ = १५८ = अमा
अधिशेषम् = २३

क्षयाहानयनम् ।

१५८८२०
६२
१५८८८२। १५८८८२
२
३१७७६४
३१७७६४ ÷ १४०३ = २२६
१५८८८२
२२६
१५९१०८ ÷ ६४ = २४८६ = क्ष
क्षयशेषम् = ४।

अथ कुजसाधनम् ।

'अह्नां चयो दशगुण' इत्यादिना

१० अह = १५६३३४०
१० अह ÷ २३० = ६७९७।७।४९
१० अह = १५६३३४०।
अन्तरम् = १५५६५४२।५२।११
अन्तरम् ÷ १९ = ८१९२३ ।१८।३२
अह ÷ १६०८० = ९।४३
कुजः = ८१९२३°।८'।४९"
= २७३० । २३ । ८ ।४९
= ६ । २३ । ८ ।४९
क्षें = ३ । १३ ।२०। ६
मध्यमभौमः = १० । ६ ।२८ । ५५

गुर्वानयनम् ।

'अहर्गणोऽधः कुयुगाग्निभाजित' इत्यादिना

अह	=	१५६३३४
अह ÷ ३४१	=	४५८ । २७ । २७
अन्तरम्	=	१५५८७५ । ३२ । ३३
अन्तरम् ÷ १२	=	१२९८९ । ३७ । ४३
अह ÷ ६४०३९	=	२ । २६
अन्तरम्	=	१२९८९° । ३५′ । १७″
=	४३२ ।	२९° । ३५′ । १७″
=	० ।	२९° । ३५′ । १७″
क्षे =	६ ।	२ । ५६ । २७
मध्यमगुरुः =	७ ।	२ । ३१ । ४४

राह्वानयनम् ।

'अहर्गणो नागहतो विभक्तो रूपेषुचन्द्रै' रित्यादिना

८ अह ÷ १५१	=		८२८२° । ३५′ । ४५″
अह ÷ ५१३४८	=		३ । २ । ४१
यो	=		८२८५ । ३८ । २६
	=	२७६ ।	५ । ३८ । २६
	=	० ।	५ । ३८ । २६
चक्रशुद्धः =		११ ।	२४ । २१ । ३४
क्षेपः =		१ ।	३ । १७ । १२
राहुः =		० ।	२७° । ३८′ । ४६″

शन्यानयनम् ।

'दिवागणोऽधः खखरामभाजित' इत्यादिना

अह	=		१५६३३४
अह ÷ ३००	=		५२१ । ६ । ४८
यो	=		१५६८५५ । ६ । ४८
यो ÷ ३०	=		५२२८ । ३० । १३
अह ÷ ६९६८	=		२२ । २६
अन्तरम्	=		५२२८° । ७′ । ४७″
	=	१७४	। ८ । ७ । ४७
	=	६	। ८ । ७ । ४७
क्षे	=	३	। २ । १४ । २३
मध्यमशनिः =		९	। १० । २२ । १०

रव्यानयनम् ।

'दस्रघ्नो द्युगणोऽङ्कविश्वविहृता' इत्यादिना

अह	=		१५६३३४
२अ ÷ १३९	=		२२४९ । २४ । ३६
अन्तरम्	=		१५४०८४ । ३५ । २४
अह ÷ ११५५८९	=		१ । २१ । ९
अन्तरम्	=		१५४०८३° । १४′ । १५″
	=	५१३६	। ३ । १४ । १५
	=	०	। ३ । १४ । १५
क्षे	=	११	। १६ । ३२ । ५७
मध्यमरवि	=	११	। १९ । ४७ । १२

शुक्रशीघ्रोच्चानयनम् ।

'व्योमाभ्रचन्द्रगुणितो द्युगणो द्विधाऽसा' वित्यादिना

१०० अह	=	१५६३३४००
१००अह ÷ १०७	=	१४६१०६ । ३२ । ३१
यो	=	१५७७९५०६ । ३२ । ३१
यो ÷ ६३	=	२४०४६८ । २१ । २८
अह ÷ ६८२०१	=	२ । १७ । २०
अन्तरम्	=	२५०४।६६° । ४′ । ८″
	=	८३४८।१६° । ४′ । ८″
	=	८।२६ । ४ । ८
क्षे	=	१०।११ । २८ । २८
शुक्रशीघ्रोच्चम्	=	७। ७ । ३२ । ३६
मध्यमरविः	=	११। १९ । ४७ । १२
शुक्रकेन्द्रम्	=	७। १७ । ४५ । २४

एवं करणप्रकाशरीत्या त एव भौमादयः स्वल्पान्तरतः सिध्यन्ति ये चार्यभटानुसारतः प्राक्साधिताः । इति सर्वं धीमद्भिर्विचिन्त्यम् । केन हेतुना 'सौरोऽर्कोऽपि विधूच्चमंक-कलिकोनाब्ज' इत्यादि वदता गणेशदैवज्ञेन तदनुसारतः क्षेपा न पठिता इति मध्यस्थ-बुद्धया निपुणैः प्राज्ञैर्विचिन्त्यमिति किं शपथपरिहारेण ।

अथ रविध्रुवकसाधनम् ।

सूर्यसिद्धान्तीयरविभगणाः = ४३२००००

एकचक्राहर्गणः = ४०१६

२५९२
४३२

१७२८

युकु = १५७७९१७८२८) १७३४९१२०००० (१०।११।२८।१०।४८
१५७७९१७८२८

१५६९९४१७२०
१२

३१३९८३४४०
१५६९९२४१७२

१८८३९३००६४०
१५७७९१७८२८

३०६०१२२३६०
१५७७९१७८२८

१४८२२०४५३२
४४४६६१३५९६०

३१५५८३५६५६

अर्धाधिके रूपं ग्राह्यमिति

१२९०७७७९४००
१२६२३३४२६२४

२८४४३६७७६

नियमेन भादिको रविः=११।२८।१०।४९

१७०६६२०६५६०
१५७७९१७८२८

१२८७०२८२८०

चक्रशुद्धः = ० । १ । ४९ । ११

७७२२१६९६८००
६३११६७१३१२

१४१०४९८३६८०

= रविध्रुवः ।

१२६२३३४२६२४

अयमाचार्योक्त एव ।

१४८१६४१०५६

अत्र करणकुतूहलेन 'अहर्गणो विश्वगुण' इत्यादिना

४०१६
१३

५२०४८
४०१६

१०३) ५२२०८ (ल
४५९५

७०५८
६३२१

अब्दाः=११ ७३७
४४२२०

११/४=०' १०" ३६१२

८१००
७२२४

८७६

५२५६०
४५९५

४०१६
ल=५७ । ४८ । ५८

३९५८ । ११ । २
— ० । १०

३९५८°।१०'।५२"=१३१रा, २८°।१०'।५२"=११।२८°।१०' ५२"

चक्रशुद्धः = ० । १°।४९'।८"। एतेन विकलात्रयमन्तरं पततिमल्लारिणाकरणकुतूहलाद्रविभ्रान्त्या ११।२८°।१०'।४९" एतावानानीत इति चिन्त्यम् ।

अथ चन्द्रध्रुवसाधनम् ।

शौरचन्द्रभगणाः = ५७७५३३३६

एकचक्राहर्गणः = ४०१६

३४६५२००१६
५७७५३३३६
२३१०१३३४४

युकु=१५७७९१७८२८) २३१९३७३९७३७६(१४६।११।२६।१३।४८

१५७७९१७८२८

७४१४५६१४५७
६३११६७१३१२

११०२८९०१४५६
९४६७५०६९६८

१५६१३९४४८८
१२

३१२२७८८९७६
१५६१३९४४८८

१८७३६७३३८५६
१५७७९१७८२८

$\frac{२९५७५५५५७६}{१५७७९१७८३८}$

१३७९६३७७४८
४१३८९११३२४०
३१५५८३५६५६

९८३०७७५८८०
९४६७५०६९६८

३६३२६८९१२
२१७९६१३४७२०
१५७७९१७८२८

$\frac{६०१६९५६४४०}{४७३३७५३४८४}$

१२८३२०२९५६
७६९९२१७७३६०
६३११६७१३१२

१३८७५४६४२४०
१२६२३३४२६२४

१२५२१२१६१६

अर्धाधिके रूपं ग्राह्यमिति

नियमेन भादिको विधुः=११।२६।१३।४९

चक्रशुद्धः= ० । ३ ।४६। ११

=चन्द्रध्रुव आचार्योक्त एव ।

अथ चन्द्रोच्चध्रुवसाधनम् ।

सौरा उच्चभगणाः	=	४८८२०२
एकचक्राहर्गणः	=	४०१६
		२९२९२१८
		४८८२०३
		१९५२८१२
युकु=१५७७९१७८२८		) १९६०६२३२४८ (१।२।२७।१८।४९
		१५७७९१७८२८
		३८२७०५४२०
		१२
		४५९२४६५०४०
		३१५५८३५६५६
		१४३६६२९३८४
		३०
		४३०९८८८१५२०
		३१५५८३५६५६
उच्चं भादिकम्=२ । २७° ।१८′ ।४९″		११५४०५२४९६०
		११०४५४२४७९६
चक्रशुद्धः =९ । २ ।४१। ११		४९५१००१६४
		२९७०६००९८४०
आचार्यध्रुवः=९ । २ । ४५ ।०		१५७७९१७८२८
		१३९२६८३१५६०
ध्रुवान्तरम्= ३ ।४९		१२६२३३४२६२४
एतद्भवति । एतेन सूर्यसिद्धान्तीया		१३०३४८८९३६
		७८२०९३३६१६०
उच्चभगणा आचार्येण न गृहीता इति प्रतीयते ।		६३११६७१३१२
		१५०९२६२३०४०
		१४२०१२६०४५२
		८९१३६२५८८

अथ राहुध्रुवसाधनम् ।

अत्रिभटतेन चन्द्रपातभगणाः	=	२३२२२६
एकचक्राहर्गण :	=	४०१६
		१३९३३५६
		२३२२२६
		९२८९०४

युकु=१५७७९१७५००) ९३२६१९६'१६ (०।७।२।४६।३३

१२

१११९१४३५३'९२

११०४५४२२५

१४६०१२८९२

३०

४३८०३८६७'६०

३१५५८३५०

भादिकः पातः=७ । २°।४६'।३३" | १२२४५५१७'६०

६०

७३४७३१०५६'००

अयं चक्रशुद्धो राहुस्ततः स चक्र— | ६३११६७००

१०३५६४०५६

९४६७१०५०

शुद्धो राहुध्रुवः। एवं पातसम एव | ८८८९००६

६०

५३३३४०३६०

राहुध्रुवः = ७ ।२°।४६'।३३' | ४७३३७५२५

आचार्योक्तध्रुवः= ७। २ । ५० । ० | ५९९६५११०

४७३३७५२५

अन्तरम् = ३ । २७ | १२६२७५८५

अथ कुजध्रुवसाधनम् ।

आर्यभटीयाः कुजभगणाः = २२९६८२४

एकचक्राहर्गणः = ४०१६

१३७८०९४४

२२९६८२४

९१८७२९६

युकु=१५७७९१७५०००) ९२२४०४५१'८४ (५।१०।४।३२।४६

७८८९५८७५

१३३४८५७६८४

१२

१६०१८२९२२"०८

१५७७९१७५

२३९११७२०८
३०

७१७३५१६२″४०
६३११६७००

८६१८४६२४०
६०

५१७१०७७४′००
भादिकः कुजः = १० । ४° । ३२′ । ४६″ ४७३३७५२५

४३७३२४९४
चक्रशुद्धः = १ । २५ । २७ । १४ ३१५५८३५०

आचार्यध्रुवः = १ । २५ । ३२ । ० १२१७४१४४

६०
७३०४४८६४०
अन्तरम् = ४ । ४६ ६३११६७००

९९२८१६४०
९४६७५०५०

४६०६५९०

अथ बुधकेन्द्रध्रुवसाधनम् ।

ब्रह्मसिद्धान्तीया बुधकेन्द्रभगणाः = १३६१६९९८९८४
एकचक्राहर्गणः = ४०१६

८१७०१९९३९०४
१३६१६९९८९८४
५४४६७९९५९३६

युकु = १५७७९११६४५′००००)५४६८५८६७९१′९७४४(३४।७।२६।३१।२६
४७३३७४९३५

७३४८३७४४१
६३११६६५८०

१०३६७०८६१९७४४
१२

१२४४०५०३४३′६९२८

भादिकं बुधकेन्द्रम्
= ७ । २६° । ३१′ । २६″

११०४५४१५१५
१३९५०८८२८६९२८
३०
४१८५२६४८६०′७८४०
३१५५८३२९०
१०२९४३११६०
९४६७४९८७०
८२६८२०९०७८८०
६०
४९६०९२५४४७′०४००
४७३३७४९३५
२२७१७६०९७
१५७७९११६४५
६९३८४४५२०४००
६०
४१६३०६०१२२४०००
३१५५८३२९०
१००७२३४२२२
९४६७४९८७०
६०४८४३५२

चक्रशुद्धः= ४ । ३ । २८ । ३४
आचार्यध्रुवः= ४ । ३ । २७ । ०
अन्तरम्= १ । ३४

अथ गुरुध्रुवसाधनम् ।

आर्यभटीया गुरुभगणाः = ३६४२२४
एकचक्राहर्गणः = ४०१६

२१८५३४४
३६४२२४
१४५६८९६

युकुदि=१५७७९१७५००) १४६२७२३५′८४(११ । ३ । ४३ । ७
१२
१७५५२६८३०′०८
१५७७९१७५
१७७३५०८०
१५७७९१७५
१९′५५९०५०८

भादिको गुरुः=
११ । ३° । ४३′ । ७″

चक्रशुद्धः=० ।२६°। १६′ । ५३″
आचार्यध्रुवः=० । २६ । १८ । ०

अन्तरम् = १ । ७

३०
५८६७७१५२′४०
४७३३७५२५
११३३९६२७४०
६०
६८०३७७६४४′००
६३११६७००
४९२१०६४४
४७३३७५२५
१८७३११९
६०
११२३८७१४०
११०४५४२२५
१९३२९१५

अथ शुक्रकेन्द्रध्रुवसाधनम् ।

आर्यभटीयाः शुक्रकेन्द्रभगणाः = २७०२३८८
एकचक्राहर्गणः = ४०१६

१६२१४३२८
२७०२३८८
१०८०९५५२

युकु = १५७७९१७५००

)१०८५२७९०२′०८(६।१०।१६।३।४
९४६७५०५०
१३८५२८५२०८
१६६२३४२२४९′६
१५७७९१७५
८४४२४७४९६
२५३२७४२४८′८०
१५७७९१७५
९५४८२४९८
९४६७५०५०
८०७४४८८०
४८४४६९२८००
४७३३७५२५

११०९४०३००
६६५६४१८०'००
६३११६७००

३४४७४८०

ब्रह्मसिद्धान्तीयाः शुक्रकेन्द्रभगणाः= २७०२३८९४९२
एकचक्राहर्गणः= ४०१६

१६२१४३३६९५२
२७०२३८९४९२
१०८०९५५७९६८

क कु दि=१५७७९११६४५००००)१०८५२७९६११'९८७२(६।१०।१६।३।१५
९४६७४९८७०

१३८५२९७४९९८७२१२
१६६२३५६९९९८४६४
१५७७९११६४५

आर्यभटशुक्रकेन्द्रम्=१०।१६°।३'।४"
ब्रह्मसिद्धान्तकेन्द्रम=१०।१६।३।१५

योगः =२१। २।६।१९

८४४४०५४९८४६४
२५३३२१६४९५'३९२०
१५७७९११६४५

९५५३०००४५
९४६७४९८७०

योगदलम् = १०।१६।३।१०

८५५०१७५३९२०
५१३०१०५२३'५२००
४७३३७४९३५

चक्रशुद्धम् = १।१३।५६।५०
आचार्यध्रुवः = १।१४। २।

३९६३५५८८५२००
२३७८१३५३११'२०००
१५७७९११६४५

अन्तरम् = ५।१०

८००२१८८६१
७८८९५८२२५

११२६०६३६२०००

अथ शनिध्रुवसाधनम् ।

आर्यभटीया: शनिभगणा: =	१४६५६४
एकचक्राहर्गण: =	४०१६
	८७९३८४
	१४६५२४
	५८६२५६
गु कु दि:=१५७७९१७५००	)५८८६०१०'२४(०।४।१४।१७।१९
	७०६३२१२२'८८
	६३११६७००
	७५१५४२२८'८
	२२५४६२६८६'४०
	१५७७९१७५
	६७६७०९३६
	६३११६७००
	४५५४२३६४०
भादिक: शनि:=४।१४°।१७'।१९''	२७३२५४१८४°००
	१५७७९१७५
	११५४६२४३४
चक्रशुद्ध: =७।१५ ।४२ ।४१	११०४५४२२५
आचार्यध्रुव: =७।१५ ।४२। ०	५००८२०९
	३००४९२५४०
अन्तरम् = ४१	१५७७९१७५
	१४२७००७९०
	१४२०१२५७५
	६८८२१५

एवं विचक्षण विलक्षणलक्षणज्ञ सर्वा मयाऽत्र गदिता गणनाऽऽत्मबुद्धया ।
शोध्या भवद्भिरखिलागमतो हि नूनं सत्पक्षरक्षणविधाविह मे प्रयासः ।। ६-७-८ ।।

१९ वीं शताब्दी के विश्वविख्यात खगोलग्रहगणितज्ञ सुधाकर का, यहाँ मात्र ग्रहलाघव ग्रन्थ का उक्त शोध गणित दिखाते हुए विचारणीय अपने कुछ और आवश्यक वक्तव्यों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर रहा हूँ।

समीप से दूर तक के भूतकाल के वेदाङ्ग ज्यौतिष काल से सुसमीप के वर्तमान सुधाकर काल तक के त्रिस्कन्धज्ञ ज्योतिर्वेत्ता आचार्यों का जो संक्षिप्त परिचय दिया गया है उनमें जातक मुहूर्त्त एवं संहिता स्कन्ध के अर्थात् फलित ज्यौतिष के ग्रन्थ प्रणेता आचार्यों में, कल्याण वर्मा शक ५००, उत्पल ८८८, पद्मनाभ भोजराज, ९६४, वल्लालसेन शक १०८०, दुण्ढिराज १४६३, नील कण्ठ १४७९, रामदैवज्ञ १४८७, गोविन्द दैवज्ञ १४९१, नारायण (१) १४९३, गणेश १५००, विट्ठल दीक्षित १५०९, नारायण (२) १५१०, शिवदैवज्ञ, १५१३, बलभद्र मिश्र १५१४, और सोमदैवज्ञ शक १५२४, (यहाँ पर मूल ग्रन्थ ग्रहगणित से सम्बन्धित होने से) प्रभृति आचार्यों का इस स्थल पर विशेष परिचय नहीं दिया गया है।

आमूलचूड़ ग्रन्थ, ग्रहगणित खगोल से सम्बम्बिन्धित है अतः विद्यार्थियों के लाभाय संक्षेप से खगोल परिभाषा परिचय के साथ प्रथमतः **मेरु पर्वत** सम्बन्धी समाधान आवश्यक होने से वह यहाँ दिया जा रहा है।

"मेरु पर्वत कहाँ है ? किसे मेरु पर्वत माना जाय ?" श्लो० २३ में भी—

एवं ग्रहादयः सर्वे भगणाद्या यथाक्रमम्।
अन्तर्वहिर्विभागेन कालचक्रे नियोजिताः॥

देवी भागवत स्क० ८ अध्या० १७

केतुमालाख्यभद्राश्वपार्श्वयोः प्रथितौ च तौ।
मन्दरश्च तथा मेरुः मन्दरश्च सुपार्श्वकः॥

स्क० ८ अ० ६ श्लोक १६,१७,

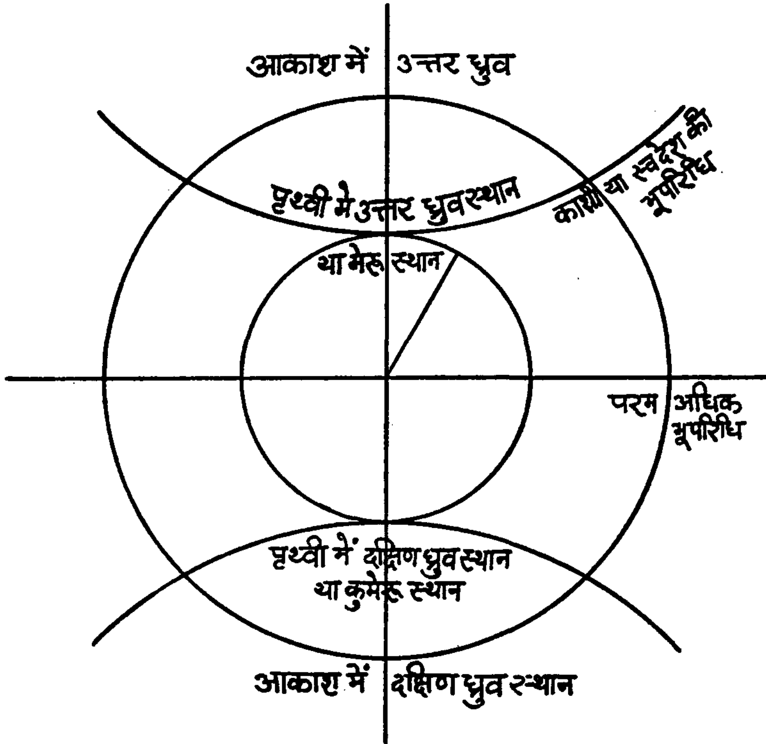
कुमुदश्चेति विख्याता गिरिणः मेरुपादकाः।
योजनायुतविस्तारोन्नाहा मेरोश्चतुर्दिशम्॥

तथा गीता के अध्या० १० में

'वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्"

अर्थात् भगवान् ने पर्वतों में अपने को मेरु अर्थात् ध्रुव कहा है। भगवान् के श्री मुख से मेरु का उच्चारण से सर्वोपरि पृथ्वी में मेरु स्थान वही है जिसके ठीक शिर या खमध्य में ध्रुव तारा हो। वही सूर्यसिद्धान्त के अनुसार "सर्वेषामुत्तरतो मेरुः" इस वचन से सुमेरु शीर्षगत ध्रुव वेध से दिक्साधन में वास्तव उत्तर दिशा का ज्ञान समीचीन कहा गया है। मध्याह्न कालिक सबसे छोटी छाया को वर्द्धित कर उसके केन्द्र के ऊपर लम्ब रूप रेखा से (पूरब पश्चिम) सूक्ष्म पूर्वापर दिशा का ज्ञान होता है। उत्तर विन्दु मेरु या सुमेरु एवं दक्षिण विन्दु दक्षिण ध्रुव या कुमेरु या राक्षस स्थान कहा गया है। इस प्रकार आए दिन मेरु पर्वत पर

मुझे अनेक शोध लेख पढ़ने व सुनने में मिले जिन्हें पढ़कर मेरी बुद्धि संशय रहित नहीं हो सकी क्योंकि विषुववृत्त भूमध्य रेखात्मक वृत्त का पृष्ठीय केन्द्र विन्दु ध्रुव है। पृथ्वी की गोलाई सर्वाधिक परिधि भूमध्य धरातल पर होती है। यदि हम अपने स्थान, जैसे काशी पृष्ठीय धरातलीय भूपरिधि का मान जानना चाहेंगे तो नीचे के क्षेत्र दर्शन से—



९० – अक्षांश=लम्बांश। अर्थात् ९० – काशी के अक्षांश = ९०° – २५/१८ = ६४/४२ इसको ज्या का नाम अपने देशीय परिधि की त्रिज्या = स्पष्ट भूपरिधि व्यासार्द्ध होता है। जिसे लम्बांशज्या या लम्बज्या कहते हैं, या अपने देश की स्पष्ट भूपरिधि व्यासार्द्ध भी कहते हैं।

अतः अनुपात से $\frac{\text{भू० प० × ज्यालं}}{\text{भूव्या}\frac{1}{2}}$ = स्पष्ट भूपरिधि

$\frac{\text{परम भूपरिधि × ज्यालं}}{\text{परमाधिक भूव्यासार्ध = त्रि}}$ = अपने देशीय भूपरिधि व्यास

उत्थापन देने से

$\frac{\text{भूपरिधि × भूव्या}\frac{1}{2}\text{ × ज्यालं}}{\text{त्रि × भूव्या}\frac{1}{2}} = \frac{\text{भूपरिधि × ज्यालं}}{\text{त्रि}}$

गणित से ही स्पष्ट भूपरिधि, मेरु = ध्रुव कहने से सही है।
इसी लिए सूर्य सिद्धान्त में

राक्षसालयदेवोकः शैलयोर्मध्यसूत्रगाः ।
रोहीतकमवन्तीच यथा सन्निहितं सरः ॥

देवानामोको वासस्थानरूपः शैलः, पर्वतः मेरुः····ध्रुव=इति स्पष्ट है।

भाष्कराचार्य ने भी—"भूर्लोकारव्यो दक्षिणे व्यक्षदेशात्, तस्मात् सौम्योऽयं भुवः स्वश्च मेरुः"

तथा—"यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरिकुरुक्षेत्रादिदेशान्स्पृशत् ।
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः ॥"··से स्पष्ट किया है कि ध्रुव स्थान का हीअपर नाम मेरु है।

६६° अंश से अधिक अक्षांशीय देशों में लम्बांशाधिक सूर्य क्रान्ति समय तक सदा दिन ही होगा, तथा एवं उत्तर ध्रुव में ६ महीने के दिन २३ मार्च से २३ सेप्टेम्बर तक तथा इस बीच दक्षिण ध्रुव में ६ महीने की रात्रि होती है। (आधुनिक अयनांश से।)

"मेरौ रवि र्भ्रमति भू जगतः समन्तादाशा न काचिदपि तत्र विचारणीया" इत्यादि मेरु स्थानमें क्षितिज के जिस विन्दु पर सूर्योदय होता है हमारे मान के ६ महीने की दिन माप से उसी सूर्य के उदित विन्दु पर सूर्य का अस्त भी देवता लोग देखते हैं।

अर्थात् मेरु स्थान में पूर्व पश्चिम दिशा पृथक् नहीं एक ही होती है। दिशा ज्ञान मेरु अर्थात् ध्रुव में नहीं होता है इसलिए भू पृष्ठ पर मेरु का अपर नाम ध्रुव विन्दु स्पष्ट है।

इसी प्रसंग में इसी प्रकार सर्व साधारण के समझने के लिए ग्रह गणित गोल की कुछ परिभाषाएं तथा संक्षेप से आवश्यक परिभाषिक शब्दों का परिचय निम्न भांति दे देना आवश्यक है।

१. किसी भी खगोलीय वृत के तीन केन्द्र होते हैं। एक गर्भीय केन्द्र और दो पृष्ठीय केन्द्र होते हैं।

२. पृष्ठीय केन्द्रों से ९० अंश के तुल्य चाप से वृहद्वृत्त बनते हैं। नब्बे अंश से कम दूरी के चाप से बनाये गये वृत्तों को लघुवृत कहते हैं। बृहद्वृत्त और लघुवृत्त परस्पर समानान्तर भी होते हैं। जैसे नाडीवृत्त (Eqator) का समानान्तर (Parallal of Latitude) वृत्त अहोरात्र वृत्त (Diurnal Circle) है।

३. पृथ्वी के गोल केन्द्र से ध्रुव की तरफ वर्द्धित रेखा जहाँ पृथ्वी पृष्ठ में लगती समझी जाती है वहीं पर पृथ्वी में ध्रुव बिन्दु है। उत्तर की ओर उत्तर ध्रुव अर्थात् ध्रुव निष्ठ देवताओं के लिए वास्तविक ध्रुव तारा उनके शिर पर आकाश में खमध्य में होती है। इसी प्रकार दक्षिण ध्रुव पृष्ठ में बसने वालों के लिए दक्षिण ध्रुव, आकाश में उनके शिर के ऊपर दीखेगा। इसी ध्रुव की मेरु पर्वत संज्ञा शास्त्रकारों ने की है।

४. अपने स्थान से आकाश में अपने शिर के ऊपर खमध्य आकाश मध्य = (Zenith) बिन्दु है। ठीक अपने खमध्य से १८०° की दूरी पर अधः खमध्य (Nadir) है। अपने दोनों खमध्यों और दोनों ध्रुवों पर गये हुये वृत्त का नाम याम्योत्तर वृत्त (Meridian Circla) है।

५. ध्रुव से (Pole Star) नब्बे अंश की दूरी पर नाडीवृत्त (Eqatar Circle) होता है। यहाँ पर अक्षांश (Latitude) शून्य होता है।

६. नाडीवृत (Eqator) और याम्योत्तर वृत्त (Meridian Circle) के सम्पात (Node) बिन्दु का नाम निरक्ष खमध्य होता हैं।

७. निरक्ष खमध्य से नब्बे अंश चाप की दूरी पर से बनाये गये वृत्त (Circle) को उन्मण्डल (Six O' Clock Circle) वृत्त कहते हैं।

८. अपने खमध्य (Zenith) से नब्बे अंश चाप की दूरी से जो वृत्त बनता है उसे क्षितिज (Horizon) वृत्त कहते हैं।

९. अपने क्षितिज (Horizon) वृत्त और याम्योत्तर वृत्त (Meridian Cirde) के सम्पात बिन्दु का नाम समस्थान (Connecting Point) है। यह समस्थान बिन्दु पूर्वापर (Prime Vertical Circle) वृत्त का पृष्ठीय केन्द्र है।

१०. समस्थान और ध्रुवस्थान (Pole Star Pace) का याम्योत्तर वृत्तीय (Meridion Circle) अन्तर चाप का नाम अपना स्वमध्य (Zenith) और निरक्ष खमध्य का याम्योत्तर वृत्तीय अन्तर चाप का नाम अक्षांश (Latitude, Terrestrial Axis) है।

११. ध्रुव स्थान (Pole Star) और स्वखमध्य (Zerith) का याम्योत्तर वृत्तीय अन्तर चाप का नाम लम्बांश (९०°–अक्षांश) है।

१२. दोनों समस्थान चिह्नों से ४५° पैंतालिस अंश पूरब और पश्चिम की तरफ की दूरी पर अपने क्षितिज (Horizon) वृत्तीय बिन्दु पर और दोनों खस्वस्तिक और अधः स्वस्तिक (Zerith and Nadir) बिन्दुओं पर गये हुए वृत्तों के नाम कोणवृत्त हैं। (१) ईशान (North East) से नैऋत्य (Soerth West) तक कोण वृत्त है। (२) वायव्य से (North West) अग्नि कोण (South East) तक गया हुआ होता हैं। इन्हें विदिग्वृत्त भी कहते हैं।

१३. नाडीवृत्त (Eqator Circle) अपना पूर्वापर वृत्त (Prine Vertical Circle) उन्मण्डल (Six O' Glock Circle) और क्षितिज (Horizon) वृत्तों के पृठीय केन्द्र (Center) याम्योत्तर वृत्त में (Careridian Circle) में होते हैं। इसलिए याम्योत्तर वृत्त के पृष्ठीय केन्द्र पूर्व स्वस्तिक बिन्दु पर उक्त चारों वृत्त का सम्पात (Connecfing Point) बिन्दु का गोल में, पूर्वस्वस्तिक नाम है।

१४. आकाशस्थ ग्रह बिम्ब के गर्भ केन्द्र और दोनों खमध्यों (Zenith and Nadir) पर गये हुए वृत्त का नाम दृग्वृत्त (Verticalcircle) है। इस दृग्वृत में खमध्य (Zerith) से ग्रह बिम्ब तक नतांश (Zerithdistarce) तथा क्षितिज से (Horizon) ग्रह (Planet) बिम्ब तक उन्नतांश (Altitude) तथा नतांश को ज्या दृग्ज्या एवं उन्नतांश की ज्या शंकु होती है।

१५. ध्रुव स्थान से २४° चौबीस अंश चाप की दूरी पर कदम्ब भ्रमवृत्त में कदम्ब तारा (Pole of the Ecliptic) रहती है। कदम्ब को केन्द्र मानकर नब्बे अंश की दूरी के चाप से जो वृत्त बनेगा उसे क्रान्ति वृत्त (Ecliptic or Orbit) कहते हैं।

१६. इसी प्रकार कदम्ब से शर चाप की दूरी पर (चन्द्रमा आदिक ग्रह जिस वृत्त में अपनी गतियों से चलकर राशि चक्र को परिक्रमा करते हैं उस मार्ग का नाम विमण्डल है।) विमण्डल वृत्त का पृष्ठीय केन्द्र विकदम्ब होता है। यथा चन्द्र भ्रमण मार्ग का नाम चन्द्र विमण्डल होता है। इसी प्रकार और ग्रहों का भी विमण्डल होता है।

१७. नाडी (Eqator) वृत्त और क्रान्ति वृत्त (Ecli ptic or Orbit) के सम्पात बिन्दु का नाम गोल संधि (Node of an orbit) या क्रान्ति पात है। इन दो बड़े वृत्तों के इन दो सम्पातों में एक सम्पात का नाम सायन मेषादि (वसन्त-सम्पात) Asccnding node of the equator) (First Point of Aples, Vernal Equinox) और दूसरे सम्पात का नाम सायन तुलादि (Descending node of the Equator first Point of Libra, Autumnal Equirox) है।

१८. इन सम्पातों में किसी एक केन्द्र से (Centre of a circle) नब्बे चाप की दूरी पर बने हुए वृत्त का नाम अयन प्रोतवृत्त (Solstitial Colour Circle) है।

१९. मेष से कन्या तक ६ राशि उत्तर गोलार्द्ध (Northarn HemisPhere) में, तुला से मीन तक ६ राशियाँ दक्षिण गोलार्द्ध (Socthern Hemis Phere) में होती है।

२०. उक्त उसी प्रकार कर्क से धनु राशि तक उत्तर अयन एवं मकर से ६ राशि मिथुन तक दक्षिण अयन सन्धि (Soisfitial Poirt) होती है।

२१. क्रान्ति वृत्त और विवृत्त के योग बिन्दु का नाम क्रान्तिपात (Equinoetial Point) है। इसी को सूर्य चन्द्र ग्रहण का कारणीभूत राहू (Ascerding Node of the Moon's Orbit) कहते हैं।

२२. किसी भी अभीष्ट समय में क्रान्ति वृत्त का जो प्रदेश बिन्दु उदय क्षितिज (Horizon) में लगा रहता है उसे उदय लग्न अस्तक्षितिजीय बिन्दु को अस्त लग्न कहते हैं।

२३. जिन-जिन बिन्दुओं में कोई महद्वृत् किया जाता है उन्हीं बिन्दुओं के नाम से उस महदवृत्त को वही बिन्दुप्रोत नाम दिया जाता है। जैसे—दोनों ध्रुवों से इष्ट स्थान पर किये गये वृत्त का नाम ध्रुवप्रोत वृत्त एवं दोनों समस्थानों और ग्रह बिम्ब पर गये वृत्त का नाम समप्रोतवृत कहा जाता है।

२४. नाडीवृत्त से ग्रह बिम्ब तक ध्रुवप्रोत वृत्त में क्रान्ति (Declination) चाप होता है। क्रान्ति चाप को ९० नब्बे में घटाने से शेष का नाम द्युज्या चाप होता है। ध्रुव बिन्दु को केन्द्र (Centre of Cirele) मान कर द्युज्या चाप तुल्य व्यासार्ध से रचित वृत्त (Cirele) का नाम अहोरात्र वृत्त (Diurral Circle) है।

२५. ग्रह बिम्ब के केन्द्र में होते हुए कदम्बप्रोतवृत जहाँ पर क्रान्तिवृत्त के साथ सम्पात करता है, उस सम्पात बिन्दु से ग्रह बिम्ब तक कदम्ब प्रोत वृत्त में ग्रह का शर (Celestia Latitude) होता है। यह बिम्बीय और स्थानीय अहोरात्र वृत्तों का अन्तर हैं, जिसमें ग्रह की स्पस्ट क्रान्ति ज्ञात होती है।

२६. क्षितिज और अहोरात्र वृत्त के सम्पात के ऊपर किया गया ध्रुव प्रोत वृत्त जहाँ पर नाडी वृत्त के साथ सम्पात करता है उस सम्पात बिन्दु से पूर्व स्वस्तिक बिन्दु तक चर काल होता है। इसके अहोरात्र वृत्तीय लघु स्वरूप का नाम कुज्या है।

२७. ग्रह बिंब से पूर्वापर वृत्त तक समप्रतोदृत में भुजांश चाप है। भुजांश चाप को नब्बे में कम करने से शेष का नाम उपवृत्त व्यास होता है। भुजांश चाप की ज्या नलिका वेध के समय भुज संज्ञक है।

२८. गोल सन्धि से ग्रह बिम्बीय स्थान तक क्राति वृत्तीय चाप का नाम भुजांश चाप है, जो चापीय क्षेत्र का कर्ण है। तथा गोल सन्धि से ग्रह बिम्ब के ऊपर गये हुए ध्रुव प्रोत वृत का क्रान्तिवृत्तीय स्थान तक भुजांश कर्ण एवं नाड़ीवृत्तीय स्थान तक विषुवांश कोटि, एवं ध्रुव प्रोतवृत्त में ग्रह की क्रान्ति-भुज, यह एक प्रसिद्ध चापीय क्षेत्र है।

२९. क्षितिज और अहोरात्र वृत्त के सम्पात बिन्दु से पूर्व स्वस्तिक तक क्षितिज वृत्तीय चाप का नाम अग्रा चाप है।

३०. इसी प्रकार क्षितिज और दृग्वृत्त के सम्पात से पूर्व स्वस्तिक तक क्षितिज वृत्तीय चाप का नाम दिगंश चाप है।

३१. भूगोल केन्द्र से अपने खमध्य तक गए हुए सूत्र को ऊर्ध्वाधर सूत्र कहते हैं। एवं भूगर्भ से निरक्ष खमध्य तक गये सूत्र को निरक्षोर्ध्वाधर सूत्र कहते हैं।

३२. इसी प्रकार भूगर्भ से, पूर्व स्वस्तिक तक गत वायु रूप सूत्र का नाम पूर्वापर सूत्र, ध्रुव स्थान गत सूत्र का नाम ध्रुव सूत्र या ध्रुव यष्टि (Polar Axis) समस्थान गत सूत्र का नाम सम सूत्र, कोणवृत्त क्षितिज सम्पात गत सूत्र का नाम कोण सूत्र, दृग्मण्डल क्षितिज सम्पातगत सूत्र का नाम दृक्कुज सूत्र, भूगर्भ से क्षितिज अहोरात्र वृत्त सम्पात गत सूत्र का नाम स्वोदयास्तसूत्र, उन्मण्डल अहोरात्र सम्पात गतसूत्र का नाम निरक्षोदयास्त सूत्र और भूगर्भ से इष्ट स्थान तक गये सूत्र का नाम इष्ट सूत्र है।

३३. याम्योत्तर अहोरात्रवृत्त सम्पातस्थ ग्रह बिंब केन्द्र से उदयास्त सूत्र के ऊपर लम्ब रूप सूत्र का नाम हृति है। तथा पूर्वापर अहोरात्र वृत्त सम्पात से स्वोदयास्त सूत्र पर

लम्ब सूत्र का नाम उदघृति है। एवं किसी भी इष्ट स्थानीय ग्रहबिम्ब से स्वोदयास्त सूत्र पर लम्बरूप सूत्र को इष्ट हृति कहते हैं।

३४. निरक्षोदयास्त सूत्र तक उक्त इष्टहृति आदि के खण्डों का नाम कला है यह सब द्युज्या वृत्तीय लघुवृत्तीय होते है। अतः ग्रहगणित के उपयोग के लिए इनका मान त्रिज्यावृत्त बृहद्वत्त में परिणत कर बृहद्वृत्तीय किया जाता है।

३५. द्युज्यावृत्तीय हृति का त्रिज्यावृत्तीय परिणत स्वरूप अन्त्या होता है।

३६. सर्वत्र पूर्वापर और स्वोदयास्त सूत्रों का अन्तर अग्रा होती है। पूर्वापर और निरक्षोदयास्त सूत्रों का अन्तर क्रान्ति ज्या होती है। निरक्षोदयास्त और स्वोदयास्त सूत्रों का अन्तर कुज्या होती है।

३७. इष्ट स्थानीय ग्रह बिंब से स्वोदयास्त सूत्र तक गये हुए सूत्र को इष्ट शंकु कहते हैं।

यह शंकु अनेक स्थानों से अनेक प्रकार के होते हैं। मुख्यतः पूर्वापराहोरात्र-वृत्त सम्पात से क्षितिज धरातलगत सूत्र को पूर्वापर शंकु (समशंकु) एवं याम्योत्तराहोत्र-वृत्त सम्पात से क्षितिज धरातलगत सूत्र को मध्याह्न शंकु, कोणवृत्ताहोरात्रवृत्तसम्पात से क्षितिज धरातलगत शंकु का नामकोण शंकु होता है!

३८. शंकुमूल से स्वोदयास्त सूत्र तक लम्ब रूप याम्योत्तर अन्तर को शंकुतल कहते हैं। इस प्रकार इष्टशंकु कोटि, इष्टहृति कर्ण एवं इष्टशंकुतल भुज ऐसे बहुविध सरल समकोणक त्रिभुजों की खगोलीय बहुविध रचनाओं से तत्तत्स्थलों की छाया आदि ज्ञात करते हुये ग्रहगोलगणित की पृष्टभूमि सुदृढ़ होती है।

इस प्रकार संक्षेप से खगोल का परिचय करते हुये तथा पौर्वात्य पाश्चात्य खगोलीय ऊपर लिखित शब्द संकेतों की सूची से मेरा विश्वास है कि ग्रंथ में वर्णित ग्रहगणित के विशेष परिष्कारों से सर्वसाधारण को अवश्य लाभ होगा, जिसे मैं अपना सफल प्रयास समझूंगा।

वस्तुतः प्राचीन परम्परा से ही भारतीय ग्रन्थ भण्डार की ज्ञानप्राप्ति के लिए गुरूमुख होना तो अनिवार्य है। बिना गुरूमुख हुये ग्रन्थ की विशेष फक्किकाएँ समझ में नहीं आ सकती हैं। ग्रन्थ का हृदय तो गुरु का हृदय हैं और उस हृदय को, विनीत जिज्ञासु परम गुरु भक्त सुयोग्य शिष्य ही प्राप्त कर सकता है। इसीलिए आचार्यों ने बड़े श्रम साध्य ग्रन्थ के क्लिष्ट स्थलों को समझ कर सरल बनाते हुये शिष्य परम्परा से अनुरोध किया है कि ("नैतद्देयं दुर्विनीताय शिष्याय" तथा दिव्यं ज्ञानमतीन्द्रियमित्यादि) इस पवित्र ज्ञान को शिष्यत्व समझकर सुविनीत शिष्य को ही देना चाहिये।

प्रकृत ग्रन्थ के रचयिता

गणेश दैवज्ञ ने जहाँ पर सूर्यसिद्धान्त के सूर्यग्रह का गणित सूक्ष्म कहा है तो वहीं पर सूर्य सिद्धान्त की अयनांश की गति से अधिक स्थूल अयनांश गति भी क्यों स्वीकार की होगी?

सूर्यसिद्धान्त से ४३२०००० सौर वर्षों में अयनांश भगण = ६०० होते हैं। अतः

$\frac{४३२००००}{६००}$ = ७२०० सौर वर्ष में अयनांश का १ भगण पूरा होगा।

अयनांश का एक भगणांश = २७ × २ + २७ × २ = १०८ होने से, नाड़ी क्रान्तिवृत्त का सृष्टयादि सम्पात रूप मेष बिन्दु का परम पश्चिम चलन पुनः पूर्वगति से सृष्टि आरम्भ बिन्दु पर, पुनः पूर्वगति से २७ अंश परम चलन ततः पश्चिम २७ अंश चलन से प्रारम्भिक सृष्टि सम्पात पर सम्पाद विन्दु हो जाने से ७२०० ÷ ४ = १८०० वर्षों में २७ अंश पर चलन होगा। सृष्टि के आरम्भ से कलियुगारम्भ या द्वापर युग के अन्त में सौर वर्ष संख्या १९५५८८०००० में ७२०० का भाग देने से सृष्टि से द्वापरान्त तक अयन भगण २७१६५० होगा। सं० २०३८ शके १९०३, १३ अप्रैल ई० सन् १९८१ में गतकलि वर्ष (कलियुग के गत वर्षों) ५०८२ को ९० से गुणा कर १८०० से भाग देने से

$\frac{५०८२ \times ९०}{१८००}$ = २५४/६ इसमें ९० से भाग देने से अयनांश गत पद = २ शेष = ७४।६ = २/१४/६ तृतीय पदगत अयनांश का यही भुज होता है।

तद्दोस्त्रिघ्ना दशाप्तांशाः विज्ञेया अयनाभिधाः (सू. सिद्धा. त्रिप्र. श्लो. १०) के अनुसार

$$\frac{७४/६ \times ३}{१०} \times \frac{२२२/१८}{१०} = २२/१३/४८ \text{ होता है।}$$

ग्रहलाघव से शके १९०३ − ४४४ = १४५९ ÷ ६० = २४।१९ होता है। अर्थात् $२४^{\circ}/१९'''' - २२/१३'$ = अंश २ कला ६ का महदन्तर है। स्पष्ट है कि ४४४ शक में ग्रहलाघव ने अयनांशाभाव मान कर अयनांश की वार्षिक गति १° मानी है जिसकी समीचीनता में संशय होता है।

ग्रह स्पष्ट और पञ्चाङ्ग

सभी ग्रह सौर मण्डल में अपनी-अपनी कक्षाओं में विभिन्न ८ प्रकार की अपनी गतियों से भगण पूर्ति करते हैं—

> वक्रातिवक्रा कुटिला मन्दा मन्दतरा समा
> तथा शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहणामष्टधगतिः। (सूर्यसि. स्प. अ. १२)

ग्रहों के भ्रमण मार्ग की दूरी भूगर्भ केन्द्र से एक माप की नहीं है। पृथ्वी के निकटतम चन्द्र और पृथ्वी से अत्यन्त दूर शनि ग्रह की स्थिति से ग्रह के कर्णों का मान भी एक रूप का नहीं होना स्पष्ट है।

अतः

> तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथादृक्तुल्यतां ग्रहाः
> प्रयान्ति तत् प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात्।
> (सू. सि. स्प. अ. १४)

सृष्टि आरम्भ दिन से इष्ट युग के इष्ट दिन तक की या युगादि से अहर्गण संख्या ज्ञात कर तदनुसार ग्रहों के कल्प दिन सम्बन्धी या युग दिन सम्बन्धी भगणों से एकरूपता के अनुपात से इष्ट दिन के मध्यमग्रहों की राश्यादि का ज्ञान किया गया है। चूंकि प्रतिदिन प्रतिक्षण की ग्रहों की विभिन्न गतियां होने से उक्त मध्यम ग्रह, आकाश में दृष्टि योग्य या प्रत्यक्ष दृग्योग्य नहीं होता है।

इसलिए मध्यम ग्रह में स्पष्टाधिकार में वर्णित स्पष्ट गतियों के माध्यम से मन्द शीघ्र फलादिक साधन प्रक्रियाओं द्वारा ग्रह को स्पष्ट किया जाता है और स्पष्ट ग्रह की जो आकाश में जहाँ पर राश्यादिक स्थिति है, नलिकावेधोक्त ग्रह वेध विधान से वह ग्रह आकाश में दिखाई ही देना चाहिए।

यदि आकाश में वह ग्रह नहीं दिखाई दे या गणितागत विन्दु से पूर्व या पर या उत्तर या दक्षिण जहाँ कहीं दिखाई देता है उसे समझ कर उक्त गणित में अन्य संस्कार ऐसे करने चाहिए जिससे वह दृष्टिपथ में अवश्य हो जाय इसी का नाम **दृग्गणितैक्य** कहा है। अर्थात् वेधोपलब्ध ग्रह का गणितागत ग्रह से जैसे साम्य हो वह संकार समय-समय पर करते रहने चाहिए। श्री भास्कराचार्य के साथ अन्य आचार्यों ने दृग्गणितैक्य की स्पष्ट क्रिया को ही स्पष्ट किया है।

इस ग्रन्थ के आचार्य ने तो ग्रन्थ के मूल (मध्यमाधिकार अन्त) या स्पष्टाधिकार के आदि में "इतीमेंयान्ति दृक्तुल्यताम्। सिद्धैस्तैरिह धर्मकर्मनयसत्कार्यादिकं त्वादिशेत्" से और भी दृक्प्रत्यय सिद्ध गणित की ही पुष्टि की है।

वर्त्तमान भारतीय पञ्चाङ्गों की समस्या विचारणीय हो गई है।

(१) सौर सिद्धान्तीय (जिन्हें आर्ष मतीय) पञ्चाङ्ग।

(२) वेध से सिद्ध ग्रहों द्वारा निर्मित दृश्य पञ्चाङ्ग।

यह एक हवा सी चल गई है। मूल में तो निर्विवाद सत्य है कि भारतीय सिद्धान्त परम्परा के गणितों से सुसाधित पञ्चाङ्गों के द्वारा आज तक धर्म-कर्म तिथि निर्णय आदि के मुख्य कालों का सही समय धर्मशास्त्र के द्वारा ही होता आया है।

किन्तु इस बात में भी प्रायः सभी आचार्यों की सहमति है कि गणित में सूक्ष्मता ही सर्वोपरि है। यद्यपि ग्रह गणित के दृश्य और अदृश्य भेद हमारे पूर्वाचार्य इतना अधिक समझते थे, कि उनके असीमित ज्ञान के लिए शब्दों का अभाव ही कहा जावेगा इसमें सन्देह की गुञ्जाइश भी नहीं है। जैसे—जहाँ पर आचार्यों ने क्रान्तिवृत्तस्थ रवि केन्द्र चिह्न की की राश्यादिक संख्या के साथ अपने विमण्डल गत चन्द्रबिम्ब के ऊपरगत कदम्ब प्रोत वृत्त का क्रान्तिवृत्त के साथ जो सम्पातहुआ है उस जगह पर चन्द्रमा को राश्यादिक ज्ञात कर ऐसे रवि चन्द्रमा के अन्तरांशों से १२, १२ अंशों की दूरी पर ३० तिथियों और अनुपात से उनका उनका पूरा समय ज्ञात किया है। तिथियों का यह काल, सूर्योदय, प्रातः, सङ्गव, मध्याह्न, अपराह्न सायम्, रात्रि, अर्द्धरात्रि, उषःकाल में किसी भी समय समाप्त हो ही जाता है। इसी

काल के आधार से धर्मशास्त्रों ने उन-उन तिथियों में जो धर्मकृत्य कहे हैं, उन्हें या उनका पर्वकाल, पूर्व दिन, पर दिन, या उसी दिन मनाने की शास्त्राज्ञा कही है !

दुर्भाग्य है सहस्रों नहीं तो सैंकड़ों की संख्या के पंचांग इस प्रकार उक्त तिथियों का एक ही स्थान पर जो नियत मान होना चाहिए था उसमें एक मत के हों पञ्चाङ्गों में भी एक वाक्यता नहीं देखी जा रही हैं।

तथा

उक्त चन्द्रविम्बोपरिगत कदम्ब प्रोत वृत्तीय क्रान्ति वृत्तीय चन्द्र स्थान जब क्षितिज में उदित होगा तब तो चन्द्रविम्ब जो क्रान्ति वृत्तीय मार्ग से शरतुलान्तरित भिन्न मार्ग में है, वह नहीं दिखाई देगा। इससे यह भी स्पष्ट है कि तिथि संभवतः अदृश्य है।

वर्त्तमान अदृश्य पञ्चाङ्गों में

प्राचीन परम्परा के पञ्चाङ्ग निर्माता उच्चै रुद्घोषित भी करते हैं कि "वाणवृद्धि रसक्षयः" अर्थात् तिथि का परमाधिक मान ६० से ऊपर ५ घटी अर्थात् ६५ घटी एवं परम अल्पमान ६० से कम ६ घटी अर्थात् ५४ घटी तक कहते हैं।

मैंने प्रायः अनेक पंचागों को टटोल कर देखा है कि "वदतो व्याघातः" वाणवृद्धि-रसक्षयः कथन का उनके ही पञ्चाङ्गों में यत्र-तत्र सर्वत्र चरितार्थता नहीं देखी जा रही है इसे क्या कहा जाय ? तिथिमान के परमाधिकाल्प यह विषय तिथि का परमाधिक ६५ घटी और परमाल्पमान ५४ घटी ही यदि सही है तो इस प्रकार के कथन का मूल कहाँ से प्रारम्भ हुआ होगा समझने की बात है।

उत्तरोत्तर के ग्रहगणित में आचार्यों ने पूर्वकालीन गणितज्ञों के गणित को जहाँ-जहाँ स्थूलता समझी है उसकी स्वकालीन ग्रन्थों में सूक्ष्मता गणित से ही सिद्ध की है। इस प्रगति ने ग्रह गणित की दिशा में एक अनुकरणीय ऐतिहासिक सही मोड़ मिला है। इस गणित से "वाणवृद्धिः रसक्षयः" की जगह सप्तवृद्धिः ७ दश १० क्षयः का सिद्धान्त सोपपत्तिक सही है। किन्तु प्राचीनवादी शास्त्रज्ञ विद्वान् तिथिमान में वाणवृद्धिः रसक्षयः सम्बन्धी गणित को ही प्रामाणिक या आर्ष मानते हैं और तदनुसार ही भारतीय धर्मशास्त्र द्वारा तिथिपर्वादि निर्णय समीचीन कहते हुये अपने उक्त कथन को पुष्टि के साथ नवीन शोध गणित के पंचांगों की तिथि गणित में धर्मशास्त्र के तिथि नक्षत्रादि से सम्बन्धित पर्व निर्णयों का समादर ही नहीं करते। अपि च वह दृढ़ता से कहते हैं कि शोधगणित सिद्ध दृग्गणितीय पंचांगों की तिथियों का भारतीय धर्मशास्त्र के तिथिजन्य पर्वकाल निर्णय में समन्वय तो नहीं ही होता अपि च कभी-कभी एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी प्रभृति तिथियों तक का कर्म काल का लोप भय तो होता है। इत्यादि।

तथा—"सार्धवाणसपादाङ्ग घटीवृद्धिक्षयान्विताः। गृहीता धर्मशास्त्रे हि तिथयो नित्य-कर्मसु" इस वाक्य से घटी ५ पल ३० तक परमवृद्धि एवं घटी ५३ पल ४५ तक तिथियों का परमाल्प मान भी प्राचीनों ने माना है।

चूँकि धर्मशास्त्र स्वयं स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं हैं, भारतीय ब्रह्मर्षियों ने श्रुति-स्मृति-पुराण प्रसिद्ध पुराने आर्ष ग्रंथों में विलिखित विखरी वस्तु को एकत्रित कर उनका धर्मसिन्धु-निर्णय-सिन्धु, पुरुषार्थ चिन्तामणि, वीर मित्रोदय, हेमाद्रि आदि आदिक नामकरण हुआ है।

उक्त विवाद जैसा और जो भी हो, मेरा निजी विचार है कि धर्मशास्त्र के अनुसार नवीन दृग्गणितैक्य सिद्ध पंचांगों, से भी सिद्ध तिथ्यादिकों का निर्णय हमारे भारतीय धर्मशास्त्र यथास्थान यथावसर समीचीन सही बताने में अति समर्थ तो हैं। नवीन गणित सिद्ध तिथ्यादि मान में किसी भी बुद्धिजीवी को संशय नहीं होना चाहिए।

परमाल्प रवि एवं परमाल्प चन्द्र गति के अन्तर से अनुपात द्वारा उत्पन्न तिथि का मान परमाधिक ६६····होगा ही तथा परमाधिक चन्द्र सूर्य गतियों के अन्तरतुल्य समय में तिथि का मान ६० से कम रस क्षयः या दश क्षय ही होगा। स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म ही मान्य होता है इसमें विवाद की गुञ्जाइश नहीं होनी चाहिए। मैंने तो सूर्य सिद्धान्तीय पंचांगों में ही वाणवृद्धिः रसक्षयः पक्ष को भी सदोष पाया है। मुझे वाणवृद्धिः तथा रसक्षयः शब्द अनुकूल भी ठीक नहीं लगते। इसकी जगह कहना है तो "पञ्चवृद्धि स्तथाषट्क्षयः" क्यों न कहा जाय?

ग्रहलाघव में १६ अधिकार हैं

(१) मध्यमाधिकार (२) रवि-चन्द्र स्पष्टाधिकार (३) पञ्चतारा स्पष्टीकरणाधिकार (४) त्रिप्रश्नाधिकार (५) चन्द्रग्रहणा···· (६) सूर्यग्रहणा···· (७) मासगणा···· (८) ग्रहणद्वय साधनाधिकार (९) उदयास्ता···· (१०) छायाधिकार (११) नक्षत्रच्छायाधिकार (१२) शृङ्गोन्नत्ति···· (१३) ग्रहयुति और (१४) महापातधिकार तथा (१५) पञ्चाङ्गचन्द्रग्रहणाधिकार और (१६) उपसंहाराधिकार।

समग्र ग्रन्थ के इन १६ अधिकारों में ग्रह गणित करने की विधियों के १९२ श्लोक मिलते हैं।

किस सिद्धान्त से कौन ग्रह दृग्गणितैक्य होता है, इसे बताने के लिए मध्यमाधिकार का श्लोक १६ बड़े महत्त्व का है।

उपलब्ध वर्त्तमान सूर्य सिद्धान्त के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा ठीक मिलते हैं। चन्द्रमा में ९ कला कम करने से सूर्य सिद्धान्त के तुल्य हो जाता है इत्यादि····(ग्रन्थ देखिये)

११ वर्षों का १ चक्र मान कर, उससे अहर्गण साधन कर ११ वर्षों के ४०१६ दिन स्वल्पान्तर से स्वीकृत हुए हैं।

इससे स्पष्ट है कि श्री गणेश ने सम्भवतः वेधसिद्ध वर्षमान माना होगा।

अपनी बुद्धि प्रतिभा का ज्याचाप गणित सम्बन्ध रहित ग्रहलाघव करण किसी भी पूर्ववर्ती गणिताचार्यों के गणित की अपेक्षा अपने में सही सफल देखा गया है।

ग्रहलाघव के ग्रह—आधुनिक वेध सिद्ध ग्रहों के साथ कुछ ग्रह प्रायः मेल खाते हैं। प्राचीन आचार्यों की स्थूलताएँ समझ कर इस ग्रंथकार ने सम्भवतः वेध गणित का विशेष आश्रय लिया होगा।

इनके पिता श्री "केशव ने तो प्राचीन ग्रंथों के उसी गणित को ठीक समझा जो वेध से मिलता रहा हैं। तदनुसार ग्रह कौतुक ग्रन्थ माना था। इसी प्रकार श्री गणेश दैवज्ञ भी वेध सिद्ध ग्रह को अधिक प्रामाणिक कह गये हैं। उदयास्ताधिकार के श्लोक २० "पूर्वोक्ता भृगुचन्द्रमसोः"··· से स्पष्ट होता है कि प्राचीन आचार्यों से वर्णित शुक्र के कालांश में २ अंश कम कर देने से उदयास्त ठीक होते हैं" स्पष्ट है कि ये ग्रह वेध क्रिया में निपुण थे और निरन्तर भी वेधरत रहते थे। इस सम्बन्ध की कुछ किंवदन्तियाँ उल्लेखनीय हैं जैसे—

काशीस्थ महाराष्ट्रीय विद्वानों के मुख से जैसा सुना गया है तदनुसार—

(१) श्री गणेश के पैरों में भी आँखें थीं जिन्हें चलते समय भूमि देखने की आवश्य-नहीं होती थी। इससे यही सिद्ध होता हैं ये सदा आकाश की तरफ अधिक देखा करते थे।

(२) उन्हीं कुछ लोगों से मालूम हुआ कि ये नन्दग्राम के पास के समुद्र तट की ऊँची शिला पर बैठ कर आकाश की ओर ही देखते रहते थे।

"पश्चिमसमुद्रस्य पूर्वतीरस्थितो नन्दिग्रामः प्रसिद्धस्तत्र गतः निवासीत्यर्थः" से यह "उक्ति" ठीक है, और निश्चय हैं कि श्री गणेश ग्रहवेधज्ञान में अधिक सक्रिय थे।

(३) श्री गणेश के पूज्य वृद्ध पिता श्री केशव दैवज्ञ से किसी समय के ग्रहण गणित में जो त्रुटि हो गई थी उससे तत्कालीन राजा एवं जनता में उनका उपहास होने लगा, जिससे श्री केशव दुःखी एवं सन्तप्त होकर ग्राम के समीपस्थ गणेश मन्दिर में प्रायश्चित रूप जप कर्म में कर्मनिष्ठ देख कर स्वप्न में श्री केशव से श्री गणेश ने कहा "अब वार्द्धक्य में ग्रहगणित जैसा कठिन कर्म तुमसे नहीं हो पा रहा है। अतः मैं पुत्र रूप में अवतरित होकर आपकी शेष कृति की पूर्ति करूँगा" इत्यादि के अनन्तर ही उक्त गणेशावतार गणेशदैवज्ञ ग्रहगणितगोलज्ञ का प्रादुर्भाव हुआ था। इत्यादि आज भी प्रत्यक्ष है कि पूर्व के अनेक ग्रहकरण ग्रन्थों की उपलब्धि के बावजूद गणेश दैवज्ञ का ग्रहकरण आज भी सारे भारत में प्रचलित प्रसिद्ध एवं सूक्ष्म है। तथापि

"उपपत्तियुतं बीजं गणितं गणकाः जगुः"

सिद्धान्त ग्रन्थों की उपपत्ति की अपेक्षा करण ग्रन्थों की उपपत्ति और क्लिष्ट होती है तथापि दैवज्ञ मल्लारि ने इस ग्रन्थ की जो उपपत्ति लिखी है वह अत्यन्त सरल एवं सूक्ष्म और आज तक मान्य है। ग्रहलाघव की उपपत्ति में मल्लारि ने यत्र-तत्र सर्वत्र श्री मद्भास्कराचार्य की लीलावती बीजगणित, सिद्धान्त शिरोमणि के ग्रहगणिताध्याय और गोलाध्याय के सिद्धान्तों का समादर के शब्दों में आश्रय लिया है।

शके १५३४···· श्री विश्वनाथ ने ग्रहलाघव करण ग्रन्थ को अपने रचित गणित उदाहरणों से विभूषित किया है। उदाहरण गणित में पर्याप्त श्रम है, आज तक मात्र उन्हीं विश्वनाथ के उदाहरणों को हिन्दी माध्यम मे प्रकाशित ग्रहलाघव की प्रतियाँ सुलभ हैं।

मूलग्रन्थ, मल्लारि कृत ग्रहलाघव की सोपपत्तिक व्याख्या, एवं तथा विश्वनाथ दैवज्ञ कृत उदाहरणों के साथ वर्त्तमान युग के महान् खगोलवेत्ता श्री सुधाकर की पूर्वापर आचार्यों

के गणितों से समन्वयित लुप्त प्राय सुधाकर की उत्पत्ति को ध्यान में रख कर मैंने इस रोगग्रस्त वार्धक्य वय में प्रकाशन करते हुए मल्लारि और सुधाकरीय उपपत्ति को पथप्रदर्शिका की जगह और सरल तथा कुछ नवीनता के साथ हिन्दी भाषा माध्यम से "श्री केदारदत्त:" व्याख्या व उपपत्ति को प्रकाशित करने का साहस किया है। ग्रन्थ के गणित में यथाशक्ति अपने परिश्रम से वर्त्तमान संवत् २०३६ शके १९०१ ईसवी १ मार्च १९८१ के सूर्योदय कालिक अहर्गण द्वारा मध्यमाधिकार से सूर्य ग्रहणाधिकार तक के गणित उदाहरण के साथ उपपत्तियाँ भी स्पष्ट कर दी हैं।

गणित करने में मुझे अत्यन्त क्लेश, श्रम और बुद्धिभ्रम भी होने से गणितोदाहरणों में त्रुटियों का सन्देह बना ही है। श्लोकों की व्याख्या, गणित करने की पद्धति एवं उपपत्तियाँ समीचीन होंगी।

जह्नुतनया जान्हवी के तीर बसी हुई अनादिकाल की यह मोक्षप्रदा काशी नगरी का माहात्म्य वर्णन जो आज तक की भारतीय ऋषि परम्परा अविच्छिन्न रूप से करती आ रही है कि—

"काशी निर्विघ्नजननी, काशी मोक्षस्य सत्खनिः।
विष्णुविश्रामभूमिश्च शिवविश्रामभूमिका" ॥

"विघ्नबाधा (भवबाधा) रहित शिव और विष्णु की आराम करने की पवित्र भूमि ज्ञानराशि यह श्री काशी ज्ञान देकर ही मोक्ष भी देती है।"

भारत राष्ट्र के सुदूर दक्षिण महाराष्ट्र से वैदिक संस्कृति के साथ उत्तर हिमालय के कूर्माञ्चल में (कुमायूँ) के "चन्द्र" वंशीय राजाओं से ससम्मनित समीप के पूर्व शताब्दी (१७०० ई० के लगभग) कुमायूं में पहुँच चुकी थी। जो अल्मोड़ा मण्डल के वागीश्वर तीर्थ समीपस्थ कर्मसाक्ष्म या कर्मसार प्रदेश के धुरपटा, रेखाड़ी और कोटचूड़ा नामके मूल ग्रामों में क्रमशः गर्ग गोत्रीय ज्योतिर्विद् जोशी एवं भारद्वाज और पाराशर गोत्रीय पन्त सदाचार सम्पन्नता पूर्वक बसाये गये थे। आज दिन भी उक्त तीनों बहुविकसित वंश परम्परा का ब्राह्मण समाज कुमायूँ में यत्र-तत्र सर्वत्र अभ्युदयोन्मुखी होते हुए आज भी भारत के सभी प्रान्तों में और विशेषतः सारे उत्तर प्रदेश में भी बस गई है इसी भाँति—

जन्मजन्मान्तर के शुभ संस्कारों से काशीवास प्राप्त होता है। सुदूर हिमालय के उत्तर प्रदेशीय पर्वतीय क्षेत्र अल्मोड़ा मण्डल के वागीश्वर तीर्थ समीप के जुनायल ग्राम के गर्गगोत्रीय पञ्चप्रवर के ब्राह्मणकुल की पण्डित परम्परा के तपोमूर्ति ज्योतिर्विद् पिता पू० श्री पं० हरिदत्त जोशी तथा माता पूज्या कौशल्या से आशीर्वाद प्राप्त कर ई० सन् १९२६ में विश्वेश्वर राजधानी श्री काशी प्राप्त हुई। उस समय मेरे पूज्य-ज्येष्ठ भ्राता स्वर्गीय पूज्य पं० हरिशङ्कर जोशी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्र थे, मेरे अग्रज और जिन्होंने अपने अथक परिश्रम से अनेकों ग्रन्थों की रचना के साथ "विश्ववैदिकदर्शन" ग्रन्थ की मौलिक रचना से मरणोपरान्त **मङ्गला प्रसाद** राष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त किया है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राच्य विद्या विभाग में १२ वर्षों तक निरन्तर स्कन्ध-त्रय के ज्योतिष ग्रंथों के अध्ययन के अनन्तर ब्रह्मर्षिमहामना पं० मदनमोहन मालवीयजी ने १३ सितम्बर १९३८ में ज्योतिष विभाग में अध्यापन पद में मेरीनियुक्ति कर दी थी। १३ सितम्बर १९७५ में अवकाश ग्रहण कर, अब भगवती अन्नपूर्णा की चरण कृपा से अपने निजी आवास में (स्व० पू० पिताजी नग्नपाद से जो सन् १९२२ में बदरी केदार तथा कैलाश दर्शनार्थ पैदल गये थे लौट कर आने पर उन पवित्र देवस्थलों में उन्हें जो कुछ अनुभूति हुई थी रहस्य जैसा वह बता गये थे उन्हीं की प्रेरणा एवं उनके पुण्यबल से इसी आवास में) श्री काशी के दक्षिण के केदारखण्ड के श्री केदारेश्वर से भी और दक्षिण नगवा (नलगाँव) में श्री केदारेश्वर लिङ्ग की स्थापना कर उन्हीं की चरण पूजा में तथा अध्ययनाध्यापन, ग्रन्थलेखनादि दिनचर्या का शुभ अवसर (अति समीप गंगाधारा दर्शन) प्राप्त होकर दीर्घकाल से बुद्धिगत इस ग्रन्थ पर जो श्रद्धा थी वह कार्य रूप में किसी प्रकार सम्पन्न हो पाई है। यह सब अपना अहोभाग्य समझते हुए और प्रतिक्षण उच्चारण करता हूँ—

"स्नातव्यं जान्हवीतोये दृष्टव्यः पार्वतीपतिः।
स्मर्तव्यः कमलाकान्तो वस्तव्यं काशिकास्थले ॥"

तथा यह भी लोकोक्ति काशी के सन्त विद्वान् एवं सर्वसाधारण समाज में प्रसिद्ध है कि—

"चना चबेना गङ्गजल जो देवै करतार।
काशी कबहूं न छाड़िये विश्वनाथ दरबार" ॥

की लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है।

अतः **ग्रहलाघव** करणग्रन्थ की सोदाहरण गणित के साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी में "केदारदत्तः" व्याख्या भी भगवान् आशुतोष (शङ्कर) के अनुग्रह से इसी काशी क्षेत्र में पूर्ण सुसम्पन्न होने से विशेष मनस्तुष्टि होती है जिसे अपना अहोभाग्य ही समझता हूँ।

ग्रहलाघव की केदारदत्तः व्याख्या लिखने में अपने तृतीय पुत्र श्री दिनेश जोशी के सहयोग के लिए उसे आशीर्वाद देकर विश्राम करते हुए विनम्र निवेदन है कि इस वार्धक्य अवस्था की विस्मृति और भ्रान्ति से ग्रन्थ में जो त्रुटियाँ रह गई होंगी उन्हें विज्ञ पाठक स्वयं सुधार देंगे या प्रकाशक को सूचित कर देंगे जिससे भविष्य के संस्करणों में विशेष स्वच्छता आती रहेगी।

हरि हर्ष निकेतन १/२८
नगवा (नलगाँव), वाराणसी
सं० २०३८, बृहस्पतिवार
विजयादशमी
८–१०–१९८१

—केदारदत्त जोशी

विषयानुक्रमणिका



श्रीगणेशाय नमः

गणेशदैवज्ञकृतं

ग्रहलाघवं करणम्

मल्लारि-विश्वनाथयोः संस्कृतव्याख्याभ्याम्
केदारदत्तजोशी-कृत-हिन्दी-सोदाहरणोपपत्त्या च सहितम्

मध्यमाधिकारः

ज्योतिःप्रबोधजननी परिशोध्य चित्तं
तत्सूक्तकर्मचरणैर्गहनाऽर्थपूर्णा ।
स्वल्पाक्षराऽपि च तदंशकृतैरुपायै-
र्व्यक्तीकृता जयति केशववाक् श्रुतिश्च ॥१॥

मल्लारि

नाके नाकेशमुख्याः सुरवरनिवहाः सन्ति येऽनन्तसंख्या
नाख्यामाख्यात्यमीषां कथमपि च मनःपूर्वकं वाङ् मदीया ।
एकं हित्वैकदन्तं सकलसुरशिरःसङ्घसङ्घर्षिताङ्घ्रिं
शीघ्रं भक्तेष्टसिद्धिप्रदमिह हि सुरं सादरं तं नमामि ॥ १ ॥

मल्लारिं कुलनायकं रविमुखान् खेटांश्च नत्वा गुरोः
स्मृत्वा पादयुगं ह्यवाप्य च ततः कञ्चित् सुबोधांशकम् ।
मल्लारिर्ग्रहलाघवस्य कुरुते टीकां ससद्वासनां
यस्मादल्पमतिश्च कुण्ठितमतिः स्यात् पूर्ववैचित्र्यवाक् ॥ २ ॥

मध्यस्फुटास्तोदयवक्रपूर्वं कर्माखिलं यद् गणिते खगोत्थम् ।
जीवाधनुः संश्रयकं विना तन्न स्यादयं निश्चय एव गोले ॥ ३ ॥

कथमत्र कृतं विना धनुर्ज्ये खगकर्माखिलमल्पकर्मणा ।
उपपत्तिविचारणाविधौ गणका मन्दधियो विमोहिताः ॥ ४ ॥

तस्माद्वच्म्युपपत्तिमस्य विमलां तन्मोहनाशाय तां
ज्ञात्वा मन्मतिकौशलं च गणकाः पश्यन्तु तुष्यन्तु ते ।
हे वर्या गणका विलोक्य यदिहाशुद्धं च संशोध्यतां
किं वा प्रार्थनया परोपकृतिषु स्वाभाविकस्तद्गुणः ॥ ५ ॥

अथ हारबन्धश्लोकेन गणाधीशः स्तूयते—

त्रैकालं कालकालं भज-भज रजनीनायको यत्प्रियस्तं
जन्तो सन्तोषतो हि त्रिनयनजनकं नाकलोकप्रकर्षम् ।
गेयज्ञं यज्वयज्ञं वरसुरशिरसा सेवितं वित्तविद्या-
दातारं ताम्रताभं भवभवनवशो नो नरो नम्रनत्या ॥ ६ ॥

अस्य श्लोकस्यार्थः सुगमस्तथापि बालावबोधार्थं संक्षेपतो मयैवोच्यते—

हे जन्तो प्राणिन् तं ताम्रताभं सिन्दूरवर्णं गणाधीशं हीति निश्चयेन सन्तोषतो भज-भज सेवस्व-सेवस्वेति । स कः । यस्य नम्रनत्या नम्रनमस्कारेण नरः पुरुषो भवः संसारः स एव यद्भवनं तस्य वशो वश्यो नो स्यात् । मुक्त एव स्यादित्यभिप्रायः । तमेव विशेषणद्वारा स्तौति । त्रिषूत्पत्तिस्थितिनाशकालेषु वर्त्तते स तथा त्रिकालावस्थायिनमविनाशिनमित्यर्थः । कालमपि कलयत्याकलयति स तथा । पुनः स कः । रजनीनायको रात्रिनाथश्चन्द्रमा यस्य प्रियः सुहृत् तत्सुहृत्त्वं तु चतुर्थीव्रतादौ प्रसिद्धम् । त्रिनयनो जनको यस्य तं शिवतनयमित्यर्थः । यद्वा त्रिनयनस्य जनकं पितरं गणेशम् । तत्सृष्टिकथनम् । "गणेशाच्छङ्करोऽभूदिति" गणेशकल्पादौ प्रसिद्धम् । नाकलोके स्वर्गलोके प्रकर्ष उत्कर्षो यस्य तम् । गेयज्ञं गेयं गानं जानातीति तथा गानाद्यसङ्गीतशास्त्रप्रवर्त्तकम् । यज्वयज्ञं यज्वनां यागकर्तॄणां यज्ञं यज्ञरूपं यज्ञांशभोक्तारमित्यर्थः । वरसुरशिरसा वराः सुराः श्रेष्ठा इन्द्रादयो देवास्तेषां शिरसा मस्तकेन सेवितम् । वित्तविद्यादातारं वित्तं द्रव्यं विद्याश्च चतुर्दश ।

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥

इति तद्दातारमभीष्टफलप्रदायकमित्यर्थः । अथ श्रीमज्जलधितटनिकटस्थितनानोपवनविराजितनन्दिग्रामाभिधाननगरनिवासिसकलभूपतिसेवितचरणयुगलकमलगणिताटवीविघटनपटुतराखिलदैवविन्मातंगकुम्भपीठलुण्ठनोत्कण्ठकण्ठीरवश्रीमदुमारमणचरणद्वयपङ्कजावाप्तमहामतिवैभवदैववित्केशवदैवज्ञात्मजा गणेशदैवज्ञवर्या ग्रहलाघवाख्यं ग्रहकरणं चिकीर्षवस्तत्रादौ निर्विघ्नेन ग्रन्थसमाप्तिप्रचयगमनाभ्यां शिष्टाचारपरिपालनायाशीर्नमस्कारवस्तुनिर्देशात्मकानां मंगलादीनि मंगलमध्यानि मंगलान्तानि शास्त्राणि प्रथन्त इति शिष्टनियमाच्चात्र वस्तुनिर्देशरूपमंगलसहितं ग्रन्थारम्भं वसन्ततिलकवृत्तेनाहुः ।

श्रुतिर्वेदो जयति सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते । तामेव विशेषणद्वारा स्तौति । किंविशिष्टा केशवस्य विष्णोर्वाक् "यस्य निःश्वसितं वेदाः" इत्याद्युक्तत्वात् । ज्योतिषस्तेजसः प्रकाशकस्य गुणत्रयातीतस्य तेजोरूपस्य परब्रह्मणः प्रबोधो ज्ञानं तं जनयत्युत्पादयतीति तथा । मायावेष्टितस्य जन्तोर्देहात्ममानिनोऽसौ देहो नश्वरः आत्मा नित्यो व्यापको

निराकार इत्यादि ज्ञानं वैदिककर्मद्वारा श्रवणमननिदिध्यासनसाक्षात्कारैर्भवतीत्यर्थः। किं कृत्वा। तत्सूक्तकर्मचरणैः। तस्यां श्रुतौ सुष्ठु उक्तानि यानि सन्ध्यास्नानदानजपहोमयज्ञादीनि कर्माणि तेषां चरणैराचरणैरनुष्ठानैश्चित्तं मनः संशोध्य शुद्धं कृत्वा। यतः मनःशुद्धौ जातायामेवात्मज्ञानं भवति। गहनार्थेन गम्भीरार्थेन पूर्णा। अर्थपूर्णा चेत् तर्हि बह्वक्षरा स्यात् तदपि न। यतः स्वल्पाक्षरा। स्वल्पान्यक्षराणि यस्यां सा। नन्वर्थपूर्णा स्वल्पाक्षरा या श्रुतिस्तस्या अर्थावबोधः कस्यापि न स्यात्। अर्थावबोधं विना श्रुत्युक्तकर्माचरणं कथं स्यात् अत एवाह। तदंशकृतैस्तस्य परमेश्वरस्य येंऽशा रावणाद्यास्तैः कृता ये उपाया भाष्यादयस्तैर्व्यक्तीकृता प्रकटीकृता रावणभाष्याद्यवलोकनेन तदुक्तकर्माचरणं सम्यगेव स्यादिति विष्णुपक्षे। अथ पितृपक्षे। केशवस्य पितुर्वाक् ग्रहकौतुकादिग्रन्थरूपा जयतीति। तामेव विशेषणद्वारा स्तौति। श्रुतिः श्रुतिसमाना। यथा वेदोक्तं कर्म कार्यमेव सत्यत्वात् तथेयं केशववागपि। ज्योतिषां ग्रहनक्षत्रादीनां प्रबोधं ज्ञानं जनयतीति तथा। किं कृत्वा। तस्यां केशववाचि सूक्तानि यानि ग्रहसाधनादीनि कर्माणि तैश्चित्तं मनः संशोध्य। गहनार्थेन। पूर्णा स्वल्पाक्षरा च तदंशास्तच्छिष्यास्तैः कृताः ये उपायाष्टीकाद्यास्तैः प्रकटीकृता ॥१॥

विश्वनाथ

ज्योतिर्विद्गुरुणा गणेशगुरुणा निर्मथ्य शास्त्राम्बुधिं
यच्चक्रे ग्रहलाघवं विवरणं कुर्वेऽस्य सत्प्रीतये।
स्मृत्वा शम्भुसुतं दिवाकरसुतस्तद्विश्वनाथः कृती
जाग्रज्ज्योतिषवर्यगोकुलपरित्राणाय नारायणः ॥१॥

श्रीमद् रुणा गणेशदैवज्ञेन ये ग्रंथाः कृतास्ते तद्भ्रातृपुत्रेण नृसिंहज्योतिर्विदा स्वकृतग्रहलाघवटीकायां श्लोकद्वयेन निबद्धाः।

तद्यथा—कृत्वाऽऽदौ ग्रहलाघवं लघुबृहत्तिथ्यादिचिन्तामणिं
सत्सिद्धान्तशिरोमणेश्च विवृतिं लीलावतीव्याकृतिम्।
श्रीवृन्दावनटीकिकां च विवृतिं मौहूर्त्ततत्त्वस्य वै
सच्छ्राद्धादिविनिर्णयं सुविवृतिं छन्दोऽर्णवाख्यस्य वै ॥१॥

सुधीरञ्जनं तर्जनयन्त्रकं च सुकृष्णाष्टमीनिर्णयं होलिकायाः।
लघूपाययातस्तथाऽन्यानपूर्वान् गणेशो गुरुर्ब्रह्मनिर्वाणमागात् ॥२॥

श्रीमत्कौशिकमुनिश्रेष्ठवंशोद्भवजलधितीरनिकटवर्त्तिनन्दिग्रामनिवासी सकलभूमण्डलपतिपूजितचरणयुगलाम्भोरुहनिखिलशास्त्रार्थप्रवीणाष्टादशसिद्धान्तोपपत्तिकोविदसमस्तवैयाकरणाग्रणिर्गणितशास्त्रविचारसारचतुरो ज्योतिर्वित्कुलावतंसः श्रीमत्केशवदैवज्ञात्मजश्रीमद्गणेशदैवज्ञवर्यो ग्रहलाघवाख्यं करणं चिकीर्षुस्तत्रादौ निर्विघ्नेन ग्रन्थसमाप्त्यर्थं तत्प्रचयार्थं चाशीर्नमस्कारतया वस्तुनिर्देशात्मकानां मंगलानां श्रुतिदेवतागुरुवाङ्निर्देशात्मकं मंगलं वसन्ततिलकया कथयति।

ज्योतिरिति । सा केशवस्य ग्रन्थकर्तृपितुर्वाक् वाणी जयति सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते । सा श्रुतिर्वेदोऽपि जयति–कीदृशीति श्लोकेनाह् । **ज्योतिःप्रबोधजननी ।** ज्योतिषां ग्रहनक्षत्रतारादीनां प्रबोधं ज्ञानं जनयतीति सा । अन्यत्र ज्योतिषस्तेजसः परब्रह्माख्यस्य प्रबोधो ज्ञानं तज्जनयतीति सा । **किं कृत्वा ।** चित्तं मानसं परिशोध्य निश्चलीकृत्य । अन्यत्र चित्तं परिशोध्य मनो निर्मलीकृत्य । **कैस्तत्सूक्तकर्मचरणैः ।** तेन केशवेन सुष्ठु उक्तानि कर्माणि ग्रहकरणानि तेषां चरणानि सदाभ्यासास्तैः तदुक्तग्रहकरणानि ग्रहकौतुकादीनि सदभ्यस्य मनो निश्चलीकृत्य ग्रहादीनां प्रबोधो भवतीत्यर्थः । अन्यत्र तस्यां श्रुतौ सुष्ठु उक्तानि यानि विष्णुसूक्तादीनि तेषु कर्माणि धर्मकर्मानुष्ठानादीनि तेषामाचरणानि तैस्तदनुष्ठानैश्चित्तं निर्मलीकृत्य परब्रह्मज्ञानं भवतीत्यर्थः । पुनः किंलक्षणा । **गहनार्थपूर्णा ।** गहनश्चासावर्थश्च गहनार्थो दुर्बोध्यार्थस्तेन पूर्णा युक्ता सममेवोभयत्र । **स्वल्पाक्षराऽपि** स्वल्पान्यक्षराणि यस्यां सा परिमिताक्षराऽपि । ननु स्वल्पाक्षराया बह्वर्थायाः कस्याप्यर्थबोधो न स्यादत आह् । **तदंशकृतैरुपायैर्व्यक्तीकृता ।** तदंशकृतैस्तस्यांशास्तत्पुत्रादयस्तच्छिष्याश्च तैः कृतैरुपायैष्टीकादिभिर्व्यक्तीकृता । अन्यत्र तदंशास्तस्याः श्रुतेरंशा रावणादयस्तै कृतैरुपायैर्भाष्यादिभिर्व्यक्तीकृता प्रकटीकृता ॥१॥

केदारदत्तः—मनोदोषादि दूरत्वात्-हेतुवादादिवर्जनात् ।
श्वादिप्राणिषु सादृश्यात् रम्यत्वाच्च महेश्वरः ॥२॥
—कुलार्णवतन्त्रे, १९ उल्लासे ।

॥ श्री जगद्‌गुरवे महेश्वराय नमः ॥

महामहिम सरस्वती के वरद पुत्र गणित गोल के मर्मज्ञ ग्रहलाघव ग्रन्थ प्रणेता, स्वनाम धन्य आचार्य गणेश जी के पूज्य पिता जी का नाम श्री केशव था ।

भगवान् विष्णु के सहस्रों नाम हैं, जिनमें एक नाम केशव भी है । ग्रन्थारम्भ के समय मंगल श्लोक से अपने अभीष्ट देव विशेष का स्मरण इस लिए किया जाता है कि ग्रन्थ का समारम्भ से लेकर समापन समय तक कोई विघ्न उपस्थित न हो और ग्रन्थ का सम्पूर्ण निर्माण सम्पन्न हो जाय ।

ग्रन्थारम्भ में वयोवार्धक्य से समीप समय में शरीर त्याग का भय होना स्वाभाविक है तो भी आचार्यों की परम्परा में ग्रन्थ समापन समय तक आयु वृद्धि होती देखी गई है, यह दैवदत्त शक्ति है, जो अवर्णनीय है । अतः ग्रन्थकर्त्ता आचार्य गणेश ने भगवान् श्री 'केशव' का स्मरण एवं स्तुति करते हुए अपने पूज्य पिता श्री 'केशव' दैवज्ञ को भी स्तुति उक्त श्लोक से की है । स्पष्टतया उक्त एक ही श्लोक में दो प्रकार के सुन्दर भावाथ स्पष्ट होते हैं ।

प्रथमतः विष्णु पक्ष में श्लोक का भाव है कि भगवान् श्री विष्णु की वाणी का नाम श्रुति अर्थात् वेद नाम है जो समग्र ज्ञान का सागर होने से सर्वोत्कृष्ट है । वेद में वर्णित सदाचारादि उत्तम मानव धर्म के आचरण से चित्त की शुद्धि होती है । चित्तशुद्धि के अनन्तर,

वैदिक कर्म द्वारा श्रवणमननिदिध्यासन साक्षात्कार अर्थात् आत्म ज्ञान होता है। गहन अर्थ से पूर्णता में बहुत अक्षर समावेश संभव होता है किन्तु स्वल्पाक्षर समावेश में गहनार्थ पूर्णता सिद्ध हो जाती हैं क्योंकि श्रुति के अंशावतार से सुसम्पन्न सुयुक्त (श्रुति, नाम वेद भगवान् के अवतार रूप) या श्रुति शिष्य परम्परा के रावण कात्यायन कृत श्रुति भाष्यों से भी उक्त श्रुति की स्पष्टार्थता सुस्पष्ट हो जाती है। श्रुति सदा जय के लिए ही होती रही है। श्री रावण जैसे महापण्डित से श्रुतियों का भाष्य लिखा गया है। अतः टीकाकारों ने 'तच्छिष्याः रावणादयः'' श्रुति के शिष्यों में रावण का उल्लेख किया है।

ग्रन्थकार के पितृ चरण श्री केशव दैवज्ञ के पक्ष में—

पूज्य पिता जी की वाणी सर्वोत्कृष्ट है। अर्थात् सर्वतो जयप्रदा है। पितृचरणों के सुकृत ग्रन्थों का कण्ठीकरण से मन की शुद्धि कर, ज्योतिश्शास्त्र की ज्ञानप्रदा, अनेक शुद्ध अर्थों (भावों) से युक्त लघु होती हुई भी विकार रहित और विशद, तथा पितृ चरणों के शिष्य परम्परा से कृत गणित उदाहरणादि स्पष्टाशय कृत टीकाओं से भी पितृ वाक् = वाणी सुस्पष्ट हुई है। यहाँ पर श्री केशवाचार्य कृत अनेकों ग्रन्थों में 'ग्रह कौतुकादि' ग्रन्थ से आचार्य का अभिप्राय है कि शिष्य परम्परा से स्पष्ट की गई पितृवाणी अर्थात् ग्रह कौतुकादि ग्रन्थ हैं ।।१।।

परिभग्नसमौर्विकेशचापं दृढगुणहारलसत् सुवृत्तबाहु ।
सुफलप्रदमात्तनृप्रभं तत् स्मर रामं करणं च विष्णुरूपम् ।।२।।

मल्लारिः—अथ यथार्थभक्त्या भक्तै रामस्मरणं कर्त्तव्यं गणकैरपि करणस्मरणं कर्त्तव्यमित्यादि विषमवृत्तेनाह ।। हे शिष्य विष्णुरूपं स्मर। व्यापनशीलो विष्णुः। तस्य भगवतो रूपमागमोक्तं चतुर्भुजादि स्मर मनसि धेहि। ननु व्यापकस्य निराकारस्य परब्रह्मणो रूपमेव नास्ति कस्य स्मरणं कर्त्तव्यमिति। यदुक्तं श्रीमद्भागवते (दशमस्कन्ध–द्वितीयाध्याये)—

न नामरूपे गुणजन्मकर्मभिर्निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः–इत्यादि।

एवं सन्देहं केचिदापादयन्ति। अत्रोच्यते। प्रकृतेः परेण निराकारेणेदं विश्वं स्वमायायां सृष्टम्। माया सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका। ते गुणाः परब्रह्मणि न गुणातीतत्वात्। अत इयं सृष्ट्यादिमाया केवलं भगवत्प्रयुक्तैव परे भगवति नास्त्येव। अत इद आब्रह्मादि पिपीलिकान्तं केवलं त्वसत्यं सगुणत्वात्। अत इदं वेदोक्तमखिलं कर्मकाण्डमसत्यम्। यतो यद्यत् कर्म तत् तत् प्राणिसाध्यं प्राणिनस्तु मायारूपिणोऽसत्याः। ननु एकेन वेदेन यदुक्तं कर्मकाण्डं तदसत्यम्। ज्ञानकाण्डमुपनिषद्भागाख्यं सत्यम्। एवं कथं स्यात्। उभयोः सत्यत्वमसत्यत्वं वा वक्तव्यम्। सत्यम्। असत्येनैव कर्मकाण्डेन कल्पितभगवद्रूपादिसेवनेन सत्यस्य व्यापकस्य परब्रह्मणो ज्ञानं भवति यथा

मिथ्याभूते प्रतिबिम्बे सत्यबिम्बानुमापकत्वम् । एवं भगवद्रूपमसत्यमपि सत्यमेव कल्पितम् । यथा बालानां प्रथममाक्षरज्ञानार्थमोङ्कारशिक्षायां वर्त्तुलपाषाणादि स्थाप्यते। तद्वन्मायावेष्टितलोकानां सत्यप्राप्त्यर्थं भगवद्रूपं दारुपाषाणमृदादिजनितं चतुर्भुज-द्विभुजैकदन्तादि कल्प्यते तदपि युक्तम् । उक्तं च योगवासिष्ठे—

अक्षरावगमलब्धये यथा स्थूलवर्त्तुलदृषत्परिग्रहः ।
शुद्धबुद्धपरिलब्धये तथा दारुमृन्मयशिलामयार्चनम्–इति ॥

तदेव विशेषणद्वारेणविशिनष्टि । परिभग्नं कृतशकलं मौर्विकया जीवया सह ईशस्य शङ्करस्य चापं धनुर्येन तत् तथा । जनकेन राज्ञा स्वगृहे शङ्करधनुरानीयैवं प्रतिज्ञा कृता य एतद्धनुः सज्यं करिष्यति तस्मै जानकीं कन्यां दास्यामीति । एवं भगवता रामेण तत् सज्जीकृत्य शकलीकृतमिति रामायणादौ प्रसिद्धम् । दृढा गुणा रज्जवो यस्मिन् स चासौ हारश्च तेन लसत् शोभमानम् । सुतरां वृत्तौ वर्त्तुलौ बाहू यस्य तत् तथा । सुष्ठु फलं मोक्षादि तत् प्रकर्षेण ददातीति तथा । आत्ताऽङ्गीकृता नुर्मनुष्यस्य प्रभा येन तत् तथा । मनुष्यदेहधारीत्यर्थः ॥

अथ करणपक्षे । हे गणक करणं स्मर । तदेव विशेषणद्वारा स्तौति । ईशं ग्रहकर्त्तव्यतायां समर्थं यच्चापं मौर्विकया सह परिभग्नं यस्मिन् तत् । अस्मिन् करणे धनुर्ज्ये न कृते इत्यर्थः । दृढा अपवर्त्तिता गुणा हाराश्च तैर्लसत् । सुष्ठु वृत्तबाहू यस्मिन् तत् । अत्र ग्रन्थे वृत्तं साधितमस्ति तत् तु चन्द्रमन्दकेन्द्रं बाहुर्भुजः प्रसिद्धः । सुफलं ग्रहणादिज्ञानरूपं फलं प्रददाति तथा । आत्ता नुः शंकोः प्रभा छाया यस्मिन् तत् तथा । शंकुच्छायासाधनमपि कृतमस्तीत्यर्थः । रामं मनोरमं नानाच्छन्दोभिः ॥२॥

विश्वनाथः—अथ निजकृतकरणस्य रामस्वरूपस्य विष्णोश्च साम्यं द्योतयन् तत्स्मरणात्मकं मंगलमौपच्छन्दसिकेनाह ॥ **परिभग्नसमौर्विकेशचापमिति ।** हे गणक त्वं विष्णुरूपं रामं स्मर तत्स्मरणं कुरु । तत्करणं वक्ष्यमाणग्रहकरणं च स्मर । उभयोः स्मरणान्निःश्रेयसाधिगमो न भवति । कथंभूतं विष्णुरूपं **परिभग्नसमौर्विकेश-चापम् ।** परिभग्नं द्विधाकृतं समौर्विकं जीवया ज्यया सह ईशस्य शिवस्य चापं धनुर्येन तत् । तत् तु सीतास्वयम्वरे सम्यगुक्तम् । अन्यत्र परिभग्नं त्यक्तं समौर्विकं जीवया सहितमीशं बृहच्चापं यस्मिन् तत् । अस्मिन् करणे जीवाधनुषी न कृते इत्यर्थः । पुनः कीदृशम् । **दृढगुणहारलसत् ।** दृढाः संबद्धा गुणा रज्जवो यस्मिन् स चासौ हारश्च तेन लसत् शोभायमानम् । अन्यत्र दृढा अपवर्त्तिता ये गुणका हाराश्च तैर्लसत् । पुनः कथंभूतम् । **सुवृत्तबाहु** वर्त्तुलौ सुवृत्तौ बाहू भुजौ यस्य तत् । अन्यत्र सुष्ठु वृत्तानि परिलेखादीनि छन्दांसि बाहवो भुजकोट्यादयो यस्मिन् तत् । पुनः कथंभूतम् । **सुफलप्रदं** सुष्ठु फलं मोक्षप्राप्तिं प्रकर्षेण ददाति तत् । अन्यत्र सुफलानि मन्दफलशीघ्र-फलादीनि प्रददाति तत् । पुनः कथंभूतम् । आत्तनृप्रभमात्ता स्वीकृता नुर्मनुष्यस्य

प्रभा आकृतिर्येन तत् मनुष्यरूपमित्यर्थः । अन्यत्रात्ताऽङ्गीकृता नुः शंकोः प्रभा छाया यस्मिन् तत् ।।२।।

केदारदत्तः—यह श्लोक भी दो अर्थों का द्योतक है।

प्रथम, ब्रह्म पक्ष में—हे गणित गोलज्ञ ! भगवान् शङ्कर के विशाल धनुष को स्पर्श मात्र से खण्डित करनेवाले, सुन्दर दृढ़ सूत्र से बने हार (माला) से सुशोभित, रम्य सुवृत्ताकार सुभुजाओं से सुशोभित, जन्मबन्धन से मुक्त कर परम मोक्ष पद प्रदान करने में समर्थ, मानवरूप धारी, संसार के रचयिता सुन्दर शुभ नाम श्री राम नामक तारक ब्रह्म का आप स्मरण करिये ।

द्वितीय अर्थ—अनुपम अद्वितीय ग्रहगतिज्ञापक ग्रह लाघव करण ग्रन्थ के पक्ष में—

वृत्त की जीवाओं का उनके चापों से विचित्र कठिन गतिपरम्पराओं से सम्बन्धित कठिन गणित साधनों से प्राप्त जो फल उसे कठिन गणित परम्पराओं से रहित होते हुए भी (सरल गति परम्पराओं से साधित ज्याचाप रहित के तुल्य ग्रह साधन फल) लम्बे आंकड़ों को गुणनभजन प्रक्रिया का गणित गौरव की जगह पर अपवर्तित गुणनभजनों की लाघव प्रक्रिया को अपनाते हुए सुन्दर पद्यों (सुवृत्त खण्ड परिधि का चतुर्थांश रूप वृत्तपाद के भुज कोटि गणित साधनिका) से सुशोभित लग्नादि के सही ज्ञान से जातक के जीवन पर्यन्त का शुभाशुभ भविष्य फल ज्ञापक अथवा मन्द शीघ्रादि ग्रह फल प्रद और कल्पना से १२ अंगुल शंकु की छाया स्वीकृत ग्रह गणित सिद्धान्त के करण विभाग के ग्रह लाघव नामक करण ग्रन्थ का स्मरण करिए । अर्थात् ग्रहलाघव नामक ग्रन्थ को कण्ठगत करते हुए उससे ग्रह गणित साधन कर अभीष्ट पञ्चाङ्ग तिथि-वार-नक्षत्र-योग-करणात्मक पञ्चाङ्ग का स्मरण करते हुए अपनी मनस्तुष्टि के साथ लोक विश्रुत या ख्यातनाम ग्रहगणितज्ञ पदवी से स्वयं सुशोभित और सुप्रसिद्ध बनिए ।।२।।

यद्यप्यकार्षुरुरवः करणानि धीरा-
स्तेषु ज्यकाधनुरपास्य न सिद्धिरस्मात् ।
ज्याचापकर्मरहितं सुलघुप्रकारं
कर्तुं ग्रहप्रकरणं स्फुटमुद्यतोऽस्मि ।।३।।

मल्लारिः

अथ पूर्वकृतग्रन्थेभ्योऽस्य वैशिष्ट्यं द्योतयन् तदारम्भप्रयोजनं च दर्शयन्नाह । यतः प्रयोजनादिकथनं विना ग्रन्थपठनादौ प्रवृत्तिर्न स्यात् ।। उक्तं च ।

सिद्धिः श्रोतृप्रवृत्तीनां संबन्धकथनाद्यतः ।
तस्मात् सर्वेषु शास्त्रेषु संबन्धः पूर्वमुच्यते ।।
किमेवात्राभिधेयं स्यादिति पृष्ठस्तु केनचित् ।
यदि न प्रोच्यते तस्मै फलशून्यं तु तद्भवेत् ।।
सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित् ।
यावत् प्रयोजनं नोक्तं तावत् तत् केन गृह्यत इति ।।

इति वृद्धोपदेशं मत्वा वदति ।।

अहं गणेशस्तथाऽपि ग्रहप्रकरणं ग्रहा ग्रहसंबन्धीनि ग्रहणोदयास्तादीनि कर्माणि प्रक्रियन्ते साध्यन्ते यस्मिन्निति तत् कर्त्तुमुद्यत उदयं प्राप्तोऽस्मि । यत्र कल्पादेर्ग्रहानयनं स सिद्धान्तः । यत्र युगादेर्ग्रहानयनं तत् तन्त्रम् । यत्र शकाद्ग्रहानयनं तत् करणम् । ग्रहप्रकरणमित्यनेन शकाद्ग्रहानयनं करोमीति सूचितम् । तथापि कथं यद्यपि उरवो महान्तो धीरा गर्गाद्या ऋषयो भास्कराचार्याद्याचार्याश्च करणानि अकार्षुश्चक्रुः परं तेषु ज्यकाधनुरपास्य जीवाधनुषी त्यक्त्वा ग्रहादिसिद्धिर्यस्मान्न भवति अस्माद्धेतोरिदं मया क्रियते । किंविशिष्टम् । ज्या जीवा । चापं धनुः एतत्कर्मभ्यां रहितं सुतरां लघुप्रकारं स्फुटं स्पष्टार्थम् ।।३।।

विश्वनाथः

अथ पूर्वाचार्यैः कृतेषु ग्रहकरणेषु सत्सु किमर्थं करणमकार्षीत् तत्कारणं वसन्तितिलकयाऽऽह । यद्यप्यकार्षुरुरव इति । अहं गणेशस्तस्मात् कारणात् ग्रहप्रकरणं स्फुटं दृग्गणितैक्यकारि कर्तुमुद्यत उदयं प्राप्तोऽस्मि । तस्मात् कुत इत्यत आह । यद्यपि धीरा धृष्टा उरवो महान्तो गणकाः करणान्यकार्षुस्तेषु करणेषु ज्यकाधनुरपास्य जीवाधनुषी त्यक्त्वा सिद्धिर्ग्रहादिसिद्धिर्यस्मान्न भवति । इदं तु ज्याचापकर्मरहितं जीवाधनुष्कर्मरहितं सुलघुप्रकारं सुतरां स्वल्पक्रियायुक्तम् । यत्र कल्पादेर्ग्रहानयनं स सिद्धान्तः । यत्र युगादेर्ग्रहानयनं तत् तन्त्रम् । यत्र शकाद्ग्रहानयनं तत् करणमत एव एवंविधं शकाद्ग्रहानयनं करोमीति सूचितम् ।।३।।

केदारदत्तः—१. सृष्टि के आरम्भ दिन से वर्त्तमान अभीष्ट दिन के नियत इष्ट समय में ग्रहों की गति जिस प्रणाली या जिन गणित सिद्धान्तों से ज्ञात की जाती है उन सिद्धान्तों का सम्यक् ज्ञान जिन ग्रन्थों से जाना जाता है उन्हें 'सिद्धान्त ग्रन्थ' कहते हैं ।

२ किसी अभीष्ट युग से वर्त्तमान अभीष्ट इष्ट समय में ग्रहों की गति ज्ञान कराने वाले ग्रन्थों को ग्रहगणित 'तन्त्र' ग्रन्थ कहा जाता है ।

३. तथा किसी अभीष्ट इष्ट शक सम्वंत या ईसवी सन् से वर्त्तमान अभीष्ट समय में ज्ञात करनेवाली ग्रहगणित पद्धति जिन ग्रन्थों से ज्ञात होती है उन्हें 'करण' ग्रन्थ कहा जाता है ।

सिद्धान्त ग्रन्थों से ग्रहगणित करने से गणित गौरव भय होता है । सिद्धान्त वही हैं, किन्तु गुणनभजनादि अनुपात के लम्बे अंकों को अपवर्तित कर उन अपवर्तित अंकों से गणित कर ग्रह ज्ञान करने से गणित लाघव होता है । ऐसे भी अनेकों करण ग्रन्थों के होते हुए भी जो बात या जो बौद्धिक चमत्कार इस ग्रहलाघव ग्रन्थ में दर्शाया गया है, वह अभी तक अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं हुआ है । आचार्यों ने अपने बुद्धि वैशद्य से सिद्धान्त ग्रन्थों के आधार से बहुत बड़ी सारणियों का जो स्तुत्य निर्माण किया है वह भी अभूतपूर्व प्रक्रिया कही जानी चाहिए । किन्तु दीर्घ समय में गणित गोलीय सौरमण्डल की प्राकृतिक उपस्थितियों से उन सारिणियों से साधित ग्रहों में भी स्थूलता देखी जाने से सिद्धान्त या करण

ग्रन्थों की ही शरण में आना पड़ेगा। इत्यादि विचार विमर्श से कहना पड़ेगा कि शके १४४२ या ईसवी सन् १५२० के गणेश दैवज्ञ कृत इस 'ग्रहलाघव नामक करण' ग्रन्थ का आजतक उत्तरोत्तर समादर होते आया है कि—यद्यपि उत्कृष्ट खगोलज्ञों ने अनेक ग्रन्थों (करण) की रचना की है। किन्तु कठिन ज्या-चाप सम्बन्धी गणित क्रिया से ही उनसे अभीष्ट ग्रह साधित होते हैं। उनसे गणित गौरव से ही ग्रहसिद्धि होती है। ज्या चाप के गणित क्रिया के बिना उन ग्रन्थों से ग्रह गणित नहीं किया जा सकता है।

अतः ज्या चाप गणित प्रपञ्च से रहित, लाघव गणित प्रक्रिया से युक्त अत्यन्त शुद्ध ग्रह-गणित साधन प्रक्रिया लिखने के लिए मैं (आचार्य गणेशदैवज्ञ) उद्यत हुआ हूँ। शकादि ग्रहगणित साधन किए जाने से यह ग्रन्थ ज्योतिष गणित का करण ग्रन्थ, एवं लघु प्रक्रिया को अपनाने से 'लाघव' करण, ग्रहों की साधनिका से इस ग्रन्थ का 'ग्रहलाघव' करण नाम प्रसिद्ध हुआ है ॥३॥

द्व्यब्धीन्द्रोनितशक ईशहृत् फलं स्या-
च्चक्राख्यं रविहतशेषकं तु युक्तम्।
चैत्राद्यैः पृथगमुतः सदृग्घ्नचक्राद्-
दिग्युक्तादमरफलाधिमासयुक्तम् ॥४॥
खत्रिघ्नं गततिथियुङ्निरग्रचक्रा-
ङ्गांशाढ्यं पृथगमुतोऽब्धिषट्कलब्धैः।
ऊनाहैर्वियुतमहर्गणो भवेद्वै
वारः स्याच्छरहतचक्रयुग्गणोऽब्जात् ॥५॥

मल्लारिः

अथ प्रकृतं ग्रहाणां साधनं तदर्थमहर्गणं वृत्तद्वयेन साधयति। द्व्यब्धीन्द्रोनितेति। शको वर्त्तमानः शालिवाहनशकयातवर्षगणः। द्व्यब्धीन्द्रोनितः। द्वौ अब्धयश्चत्वार इन्द्राश्चतुर्दश तैर्द्विचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतै—१४४२ रूनितो वर्जितः सन् ग्रन्थारम्भमारभ्येष्टकालपर्यन्तं वर्षसमूहः स्यात्। स ईशैरेकादशभिर्हृद्भक्तः एकस्थं यत् फलं तच्चक्राख्यं चक्रसंज्ञम्। रविहतशेषकं रविभिर्द्वादशभि—१२ र्गुणितं यच्छेषकं तच्चैत्राद्यैश्चैत्रमारभ्येष्टकालपर्यन्तं गतमासैर्युक्तं तत् पृथक् स्थाप्यम्। अमुतः पृथक्स्थात् सदृग्घ्नचक्रात् दृग्भ्यां हन्यते तत् दृग्घ्नम्। एवं भूतं यच्चक्रं तेन सहितादिति। ततो दिग्भि—१० र्युतात्। अमरैस्त्रयस्त्रिंशद्भिर्भक्तात् यत् फलं तेऽधिमासास्तैस्तत्पृथक्स्थं युक्तं स मासगणः स्यात् ततस्तत् खत्रिघ्न त्रिंशद्—३० गुणं सत् शुद्धप्रतिपदमारभ्य यावत्य इष्टकालपर्यन्तं तिथयो गतास्ताभिर्युक् युक्तं कार्यं ततस्तदेव निरग्रचक्रांगांशाढ्यम्। निरग्रो निःशेषो नामैकस्थो यश्चक्रस्यांगांशः षडंशस्तेनाढ्यं युक्तं तत्पृथक् स्थाप्यम्। अमुतः पृथक्स्थात् अब्धिषट्कलब्धैः। अब्धयश्चत्वारः। षट्कं षट्। एभिश्चतुष्षष्टिमितैर्भक्तात् ये

लब्धा ऊनाहाः क्षयदिवसास्तैः पृथक्स्थं वियुतं हीनमहर्गणोऽह्नां दिवसानां सावनानां गणः समूहो भवेत्। सोऽहर्गणः शरैः पञ्चभिर्हृतं गुणित यच्चक्रं तेन युक् युक्तः सप्ततष्टो यच्छेषं तन्मितोऽब्जात् चंद्रमारभ्य गतस्तद्दिनजो वारः स्यात् चेन्न तर्हि सोऽहर्गणो वारार्थं सैको निरेको वा कर्त्तव्यः।

उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ।

'अभीष्टवारार्थमहर्गणश्चेत् सैको निरेकस्तिथयोऽपि तद्व'दिति।

अत्रोपपत्तिः। अत्र ग्रन्थारम्भे द्विचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतशमितः १४४२ शक आसीत् तच्छकमारभ्य ग्रहानयनार्थमनेन शकेनेष्टशक ऊनीकृतो गतवर्षगणः सौरो जातः।

यत तक्तं—

वर्षायनर्त्तु युगपूर्वकमत्र सौरादिति।

अतस्तेषां वर्षाणां मासीकरणार्थमनुपातः। यद्येकस्मिन् वर्षे द्वादश सौरमासा भवन्ति तदेष्टसौरवर्षैः किमिति वर्षाणां द्वादशगुणो रूपं हरः तस्याविकृतत्वान्नाशः। अत्र केचिन्मासानां चान्द्रत्वभ्रममारोप्य 'द्वादशमासाः संवत्सर' इति श्रुतेर्वैयधिकरण्यमापादयन्ते तदसत्। अत्र मासाः सौरा एव श्चान्द्रमासानां वर्षमध्ये सावयवत्वमस्त्यतस्ते न पठिताः सौरास्तु सूर्यद्वादशराशिभोगेन द्वादशैव भवन्ति। अतः श्रुतिरियं समीचीना। एवं सत्याचार्येण बहुषु वर्षेष्वहर्गणबाहुल्यं स्यादतो लाघवार्थं शिष्यक्लेशभयार्थं च प्रथमं वर्षाणि यानि तान्येवैकादशतष्टानि कृतानि यल्लब्धं तस्य चक्रसंज्ञा कृता यच्छेषं तद्द्वादशगुणितं सन्मासाः कृतास्ते सौरमासाः। चक्रादिमारभ्येष्टशकचैत्रादिपर्यन्तं जाताः। ततो यन्मासीयोऽहर्गणः साध्यते चैत्रादिमारभ्य तन्मासावधि ये यातमासास्तद्युक्तास्तन्मासावधि स्युरिति। अत्र क्रियावैषम्यं गणितदुष्टत्वं च दृश्यते। यतो वर्षाणि द्वादशगुणितानि सौरमासाश्चैत्रादियातमासाश्चान्द्राः। अन्यजात्योर्योगसम्भवः। अत्र प्रथमं सौरमासेभ्योऽधिमासानानीय सौरेषु संयोज्या चान्द्राः कार्याश्चैत्रादिचान्द्रा योज्याः। अत्राचार्येण पूर्वभिन्नजात्योर्योगः कृतः। तत्राधिशेषकमधिकं जातमतोऽधिमासानयने शेषं त्यक्तमधिकत्वात्। तद्यथा चैत्रादिचान्द्राणां सौरीकरणार्थमधिशेषं न्यूनोकर्त्तव्यं यत एकस्मिन् वर्षे सौरदिनेभ्यश्चान्द्रदिनानि एकादशाधिकानि दृश्यन्ते। एवमधिमासाः सावयवा योज्याः अनुपातस्य सावयवत्वात् तत्राधिशेषं योज्यमत्रोनं तुल्ययोर्धनर्णयोर्नाशोऽतः सौरमासेभ्योऽधिमासानयनम्। यदि कल्पसौरमासैः ५१८४०००००० कल्पाधिमासा १५९३३००००० लभ्यन्ते तदेष्टसौरमासैः किमिति। अत्र कल्पाधिमासैः कल्पसौरमासेषु भक्तेषु लब्धम् ३२।१६।४ एभिर्मासैरेकोऽधिमासः॥ उक्तं च ब्रह्मसिद्धान्ते।

'द्वात्रिंशद्भिर्गतैर्मासैर्दिनैः षोडशभिस्तथा।
घटिकानां चतुष्केण पतति ह्यधिमासक' इति।

ततोऽनुपातः। यद्यभिर्मासै-३२।१६।४ रेकोधिमासस्तदेष्टैः किम्। अत्राचार्येणसुखार्थं हरस्थाने त्रयस्त्रिंशदेव गृहीता। एवं मासेभ्योऽमरफलाधिमासयुक्तमित्युक्तम्।

अत्र ग्रन्थारम्भे दशभिर्मासैरधिमासोऽभूदतो दिग्युक्तादिति। इदं स्थूलं हरस्य स्थूलत्वात्। तदन्तरं साध्यते। एकं चक्रमेकादशवर्षात्मकं तद्द्वादशगुणितं जाता मासाः १३२। तेभ्यः कल्पाद्यनुपातेन जाताः ४।२ त्रयस्त्रिंशद्भक्तेषु जाताः ४। अत्रान्तरमेकचक्रे द्विमासतुल्यं ततोऽनुपातः। यद्येकस्मिन् चक्रे द्विमास तुल्यमन्तरं तदेष्टचक्रैः किमतः सद्ग्घ्नचक्रादिति। एवमधिमासयुक्ताः सौराश्चान्द्रमासगणो जातः। ततो दिनीकरणार्थमनुपातः। यद्येकमासस्य त्रिंशद्दिनानि तदेष्टमासैः किमतो मासास्त्रिंशद्गुणाः। अत्र रूपहरस्याविकृतत्वान्नाशः। एवं जाताश्चान्द्रदिवसास्ते तन्मासशुल्कप्रतिपदादिपर्यन्तमिष्टतिथिकरणार्थं गततिथियुता इति। ततोऽनुपातः। यदि कल्पचान्द्रैः १६०२९९९०००००० कल्पदिनक्षया २५०८२५४०००० लभ्यन्ते तदेष्टचान्द्रैः किमिति। कल्पदिनक्षयैः कल्पचान्द्रेषु भक्तेषु लब्धम् ६३।५४।३२। यद्येभिर्दिनैरेको दिनक्षयस्तदेष्टैः किमिति। अत्राचार्येण हरस्थाने चतुष्षष्टिरेव धृता। एवं चतुष्षष्टिभक्ताश्चान्द्रा दिनक्षयाः स्युरिति। अत्रान्तारज्ञाने चक्रषट्के वर्षाणि ६६ एषां दिनानि २४४८६ एकत्र ६३।५४।३२ एभिरेकत्र च ६४ एभिर्भक्तं लब्धे फले ३८३।३८२ अवयवस्य त्यागः। फलान्तरम् १। तेनानुपातः। यदि षड्भिश्चक्रैरेकदिनतुल्यमन्तरं तदेष्टचक्रैः किमित्यतो निरग्रचक्राङ्गांशयुक् कार्यमित्युपपन्नम्। एवं दिनक्षयाश्चान्द्रेषु ऊना कार्या यतो वर्षमध्ये चान्द्रदिवसेभ्यः सावनदिनानि पञ्चादिनाल्पकानि दृश्यन्तेऽत उक्तमूनाहैर्वियुतमिति। अत्र दिनक्षयाः सावयवा ग्राह्यास्ते न गृहीताः। यतः सावयवदिनक्षयोनचान्द्रेषु कृतेष्वहर्गणस्तिथ्यन्तकालीनः स्यात् गततिथियुक्तत्वात् ग्रहाः सूर्योदयिकाः कर्त्तव्याः एवं तिथ्यन्तसूर्योदययोर्मध्ये दिनक्षयशेषमेव तत् तेषु योज्यं यतस्तिथ्यन्तादग्रे सूर्योदय। पूर्वं वियोज्यमधुना याज्यं तुल्यत्वात् तयोर्नाशः।

उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ—

'तिथ्यन्तसूर्योदययोस्तु मध्ये सदैव तिष्ठत्यवमावशेषम्।
त्यक्तेन तेनोदयकालिकः स्यात् तिथ्यन्तकाले द्युगणोऽन्यथाऽतः' इति।

एवं सावनोऽहर्गणो जातः सप्ततष्टः सप्तब्जाद्वारः स्यात् यतो ग्रन्थादौ सोमवार आसीत्। अत्र चक्रदिनानि ४०१६ सप्ततष्टानि शेषम् ५। तत्रानुपातः। यद्येकचक्रे पञ्च वारा अन्तरं तदेष्टचक्रैः किमित्यतः शरहतचक्रयुगिति ॥ ४-५॥

विश्वनाथः

अथ तावदहर्गणानयनं श्लोकद्वयेनाह। द्व्यब्धीन्द्रोनितशक इति॥ तत्रादावुदाहरणक्रमो लिख्यते। श्रीमन्नृपविक्रमादित्यराज्यात् गतसंवत्सरेषु १६६९ तथा शालिवाहननृपशकवत्सरेषु १५३४ वैशाखशुक्लपूर्णिमासोमे घटद्यः

५४।१० विशाखानक्षत्रे घट्यादि ३९।५५ वरीयसि योगे घट्यादि ०।५९ तद्दिने चन्द्रपर्वविलोकनार्थमहर्गणः साध्यते। तत्र शकः १५३४ द्व्यब्धीन्द्रैर्द्विचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशते १४४२ रूनो जातो वर्षसमूहः ९२। अयमेकादशभिर्भक्तः। एकस्थं फलं ८ चक्रसंज्ञम्। शेषं ४ द्वादशभि–१२ र्गुणितं ४८ चैत्रमारभ्येष्टकालपर्य्यन्तमेको गतमासः १। तेन युतम् ४९। इदं द्विष्ठं चक्रं द्विगुणम् १६। एतत्सहितं ६५ दशयुक्तं ७५ त्रयस्त्रिंशता भक्तं फलमधिमासौ २। अनेन द्विष्ठं ४९ युक्तं जातो मासगणः ५१। अयं त्रिंशद्गुणो जातः १५३०। गततिथयः १४। एताभिर्युक्तः १५४४। निरग्रोऽवयवरहितो यश्चक्रस्य षडंशः १। तेन युक्तः १५४५। इदं द्विष्ठं चतुष्षष्टिभक्तं फलं क्षयदिवसाः २४। एतैरूनं पृथक्स्थं जातः सावनोऽहर्गणः १५२१। अथ वारानयनम्। चक्रं ८ शरहतम् ४०। अनेन युक्तोऽहर्गणः १५६१। सप्तभक्तोऽब्जाच्चन्द्रमारभ्य तत्र गतवासरो ज्ञेयः। तत्रागतः सोमवारः। अथान्यो विशेषः। अहर्गणे यद्यभीष्टवारो नायाति तदाभीष्टवारार्थं सैको निरेको वाऽहर्गणः कार्यः। अन्यच्च यदा ईशहृत्क्रियमाणे लब्धं चक्रं शेषस्थाने चेच्छून्यं तदाऽहर्गणोत्पन्नवारेषु वारद्वयस्यान्तरं पतति।

अस्योदाहरणम्—

शके १५७४ चैत्रशुक्लप्रतिपदि रवावहर्गणः साध्यते। तत्र चक्रम् १२ शेषम्। अहर्गणः ३२। अत्रागतो भौमवारोऽपेक्षितस्तु रविवासरः। एतादृशस्थलेऽहर्गणो द्वाभ्यां रहितः सहितः कार्यः। किञ्च यस्मिन् वर्षेऽधिमासः पतति तत्रान्यो विशेषः। अधिमासात् पूर्वमासेष्वहर्गणानयने पूर्ववर्षाधिमासापेक्षया यद्यधिको मास आगच्छेत् तर्हि स न ग्राह्यः किन्तु पूर्ववर्षजतुल्या एवाधिमासा ग्राह्याः। यथा शके १५५५ चैत्रशुक्लप्रतिपदि भृगौ। अस्मिन् वर्षे वैशाखोऽधिकोऽस्ति। चैत्रशुक्लप्रतिपद्यहर्गणः साध्यते। तत्र शकः १५५५ द्व्यब्धीन्द्रैः—१४४२ रूनितः ११३। एकादशभि–११ र्भक्तो लब्धं चक्रं १० शेषं ३ रविहतम् ३६। चैत्रतो गतमासयुक्तम् ३६। द्विष्ठं द्विगुणचक्र २० युतं ५६ दशयुतं ६६ अमरैर्भक्तं लब्धावधिमासौ २। अत्र वैशाखात् प्रागेवाधिको मासो लभ्यते स न ग्राह्यः किन्तु निरेक एव ग्राह्यः। तदाऽधिमासः १। अनेन युत द्विष्ठं ३७ त्रिंशद्गुणितं ११११० गततिथियुतम् १११० चक्रस्य १० षडंशेन १ युतम् ११११ द्विष्ठं चतुष्षष्टि ६४ भक्तं फलं क्षयाहाः १७। एतैरूनं द्विष्ठ जातोऽहर्गणः १०९४। अभीष्टवारार्थं सैकः कृतो भृगुवारेऽहर्गणोऽयम् १०९५। यदि तु यथागताधिमासैरहर्गणः क्रियते तदाऽयं ११२४ संपद्यते। अभीष्टावारार्थं निरेकः कृतोऽप्यहर्गणोऽय–११२३ मशुद्धः। एतदुत्पन्नग्रहाणां विसंवादात्। तस्मात् स्पष्टाधिमासात् प्रागधिकोऽधिमासो लब्धोऽपि न ग्राह्यः। एवं स्पष्टाधिमासोत्तरमासेष्वहर्गणानयने यद्यधिको मासो न लभ्यते तथापि स ग्राह्यः। यथा संवत् १६६५ शाके १५३० भाद्रपदोऽधिमासोऽस्ति तत्र कार्त्तिकशुक्लप्रतिपदि शनावहर्गणः साध्यते। शकः १५३० द्व्यब्धीन्द्रैः १४४२ ऊनः ८८। एकादशभिर्भक्तो लब्धं चक्रं ८ शेषं० द्वादशगुणितं चैत्रतो गतमासै ७ र्युतं ७ द्विष्ठं द्विगुणचक्र–१६ युक्तं २३ दशयुतम् ३३। अमरैर्भक्तं लब्धोऽधिमासः

१। अत्राप्यधिमासोऽधिको न लभ्यते तथाऽपि ग्राह्यः। तथा कृतेऽधिमासौ २। आभ्यां युतं द्विष्ठं ९ त्रिंशद्गुणितं २७० गततिथियुतं २७० चक्रस्य ८ षडंशेन १ युतं २७१ द्विष्ठं चतुष्षष्टिभक्तं फलम् ४। अनेन हीनं द्विष्ठं जातोऽहर्गणः २६७। अभीष्टवारार्थं निरेकः कृतः शनिवासरे जातोऽहर्गणः २६६। यदि तु यथागतेनाधिमासेनाहर्गणः क्रियते तदायं २३८ तस्मादयमशुद्धः। एतदुत्पन्नरवेरन्येषां च विसंवादात्। तस्मात् स्पष्टाधिमासोत्तरमहर्गणेऽलब्धोऽप्यधिमासो ग्राह्यः।

एतदुक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ श्रीभास्कराचार्येण।

'स्पष्टोऽधिमासः पतितोऽप्यलब्धो यदा यदा वाऽपतितोऽपि लब्धः।
सैकैर्निरेकैः क्रमशोऽधिमासैस्तदा दिनौघः सुधिया प्रसाध्य' इति।

अन्यश्चायं विशेषः। अधिमासोत्तरमहर्गणे गतचैत्रादिमासग्रहणेऽधिमासो न गणनीयः। मध्ये त्वहर्गणानयने गततिथिग्रहणेऽधिमासस्य तिथयो ग्राह्या इति।

अथ ग्रहलाघवाहर्गणाद्ब्रह्मतुल्याहर्गणानयनप्रकारः श्रीमद्गणेशदैवज्ञैरभिहितः। स यथा—

विश्वेन्दुयग्न्यरुणै-१२३११३ र्युक्तो ग्रहलाघवजो गणः।
चक्रघ्ननृपखाब्ध्याढ्यो ४०१६ ब्रह्मतुल्यगणो भवेत् ॥ ४-५ ॥

केदारदत्तः—ग्रन्थकार के समय में शालिवाहनीय राज्यारम्भ का शक वर्ष विशेषण प्रचलित था। शके १४४२ में ग्रन्थ की रचना हुई थी। १४४२ शकारम्भ के चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन तक की ग्रहगोलीय ग्रहों की जो राश्यादिक थी सृष्टयादि अहर्गण से उन्हें ज्ञात कर आचार्य ने उन ग्रहों के राश्यादिक अंकों का नाम क्षेपक (अर्थात् १४४२ शकादि के आगे साधित ग्रहों में जोड़ने के लिए) कहा है।

अतः वर्त्तमान शक में १४४२ शक को घटाकर शेष में ११ का भाग देने से लब्ध तुल्य अंक का नाम चक्र कहा है। तात्पर्य कि वर्ष संख्याओं में ११,११ वर्ष के एक खण्ड का नाम एक चक्र होता है। शेष वर्ष संख्या को १२ से गुणा करते हुये उसमें अभीष्ट मास के चैत्रादिक चान्द्र मास संख्या को जोड़ देने से जो संख्या है उसे दो जगह रखना चाहिए। जिसे प्र, प्रं संकेत से समझिए। प्रथम स्थानीय उक्त अंक में द्विगुणचक + १० माप की जो संख्या होती है उस संख्या में ३३ का भाग देने से लब्ध अधिमास (चक्र) तुल्य संख्या को पूर्व स्थापित द्वितीय प्रं अंक में जोड़कर जो मास संख्या होती है उसे ३० से गुणा करने से वह अभीष्ट समय का तिथि पुञ्ज होता है। इस इष्टतिथि संख्या में अभीष्ट तिथि अर्थात् जिस तिथि का अहर्गण ज्ञात करना है उससे गत तिथि संख्या, शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ कर जो हो वह गत तिथि संख्या जोड़नी चाहिये। इस तिथि संख्या में चक्र का षष्ठांश=चक्र/६ = शेष रहित लब्धि को जोड़ने से यह इष्ट समय की अभीष्ट चान्द्र तिथियाँ होती हैं। इसे भी प्र प्रं मान-कर (यह एक प्रकार से अभीष्ट चान्द्र अहर्गण होता है) दो जगह रखकर प्रथम स्थानीय

तिथि संख्या में ६४ का भाग देने से शेष रहित लब्ध संख्या को उक्त प्रं चान्द्रतिथियों में कम करने से शेष संख्या तुल्य सावन अहर्गण होता हैं। इसे दिनगण या अहर्गण या दिन वृन्द या दिनसमूह इत्यादि सार्थक नाम से कहा जाता है। दो सूर्योदयों के मध्यवर्त्ती समय का नाम सावन दिन होता है। यह खगोल का पारिभाषिक प्रसिद्ध सावन दिन शब्द है। अहर्गण की शुद्धता का माप दण्ड सोमवारादिक रवि पर्यन्त की १.२.३.४, ५.६,७ या० वार संख्या होती है। चक्र संख्या ×५ को उक्त सावन अहर्गणा में जोड़कर उसमें ७ का भाग देने से १,२,३,४,५,६,७ या ० शेष से सोमवारादिक गतवार समझना चाहिये।

अथ उदाहरण द्वारा अहर्गण का स्पष्टीकरण दिखाया जाता हैं। अहर्गण से मध्यम स्पष्ट ग्रहों का साधन, तदनन्तर 'स्पष्टाधिकार' में वर्णित गणित से ग्रहों का स्पष्टीकरण पूर्वक इष्ट समय का पञ्चाङ्ग (तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण) ज्ञात करने से 'प्रत्यक्षं ज्यौतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ' की उक्तिको चरितार्थ करना चाहिए।

श्री शुभ संवत् २०३६ शकाब्द वर्ष १९०१ फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा शनिवार तदनुसार ता० १ मार्च सन् १९७९ शनिवार के काशी के सूर्योदयकाल में ग्रहलाघवीयकरण ग्रन्थ से उदाहरण के साथ अहर्गण गणित साधित किया जा रहा है। शक वर्ष १४४२, विक्रम संवत् वर्ष १४४२ + १३५ = १५७७, ईसवी सन् वर्ष १४४२ + ७८ = १५२०।अतः वर्त्तमान शक १९०१ − १४४२ = ४५९ या २०३६ − १५७७ = ४५९ या १९७९ − १५२० = ४५९ अर्थात् वर्त्तमान शक या संवत् या ईसवी सन में, ग्रन्थारम्भ कालीन शक या संवत् या ईसवी सन् वर्षों को कम करने से शेष वर्ष गण सर्वत्र तुल्य होते हैं ऐसा भी ध्यान में रखना चाहिए।

शेष सौर वर्ष ४५९ ÷ ११ = चक्र वर्ष ४१ और शेष वर्ष = ८ हुए। एक वर्ष के १२ महीने होते हैं। इसलिए शेष ८ सौर वर्षों में १२ × ८ = ९६ सौर मास होते हैं।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा तक ११ चान्द्र मासों को थोड़ी देर के लिए सौर मास तुल्य मान कर जोड़ देने से इष्ट दिन तक ९६ + ११ = १०७ संख्यक स्वल्पान्तर से सौर मास हो गए।

१०७ को प्र०, और प्रं कल्पना करते हुए। पुनः १०७ + (चक्र × २) + १० ÷ ३३ = लब्धि अधिमास कहना चाहिए। अर्थात् १०७ + (४१ × २) = ८२ + १० = १०७ + ९२ = १९९ में ३३ का भाग देने से लब्धि ६ अधिक मास होते हैं। जिन्हें प्रं में जोड़ना चाहिए।

सौरमास + अधिक मास = १०७ + ६ = ११३ मासों को ३० से गुणा करने से ३३९० यह चान्द्रतिथियाँ होती हैं। फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा से फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा तक १४ गत तिथियों को जोड़ने से ३३९० + १४ = ३४०४ अभीष्ट समय की चान्द्र तिथियाँ या चान्द्र दिन होते हैं।

निशेष या शेष रहित चक्र ÷ ६ = ४१ ÷ ६ = ६ को ३४०४ में जोड़ने से ३४१० अर्थात् ३४१० ÷ ६४ शेष रहित लब्धि = ५३ का नाम क्षयतिथियाँ होती हैं। अतः चान्द्रतिथियों—क्षयतिथियाँ, ३४१० − ५३ = ३३५७ यह ग्रहलाघवीय सावन दिन समूह

ता० १ मार्च सन् ११७९ को सिद्ध होता है। समीप काल सं० २०३७ का ज्येष्ठ अधिक समय होने जा रहा है। ऐसी स्थिति में अहर्गण में ३० दिनों का अन्तर पड़ जाता है जो गणित गोल से सही है। श्रीमद्भास्कराचार्य की सिद्धान्त शिरोमणि देखिए।

जिसका आशय यह है—स्पष्ट मान से अधिक मास हो गया किन्तु ३३ से भाग देने पर लब्धि १ कम मिली या स्पष्ट मान से अधिक मास नहीं हुआ किन्तु ३३ से भाग देने पर लब्धि १ अधिक प्राप्त हुई तो ऐसी स्थितियों में अधिकमास संख्या में एक जोड़ने और १ घटाने से अहर्गण साधन की अग्रिम क्रिया करनी चाहिए। अतः यहाँ पर १९९ ÷ ३३ से लब्धि ६ जो १ अधिक मिल रही है उसे ग्रहण न कर ५ ही लब्धि ग्रहण करनी चाहिए क्योंकि निकट भविष्य २०३७ के ज्येष्ठ में अधिक मास होने ही जा रहा है। अतः १०७ + ५ = ११२, (पुनः ११२ × ३०) + १४ = ३३७४ में चक्र ÷ ६ = ६ जोड़ने से ३३८० तथा ३३८० ÷ ६४ = लब्धि = ५२, ३३८० − ५२ = ३३२८ यह सही अहर्गण हुआ।

अहर्गण की शुद्धता का नियामक वार होता है। पञ्चगुणित चक्र + अहर्गण ÷ ७ से अभीष्ट वार होना चाहिए। यहाँ पर ४१ × ५ = २०५, २०५ + ३३२८ = ३५३३ में ७ से भाग देने से ७) ३५३३ (५०४ वारों का चक्र, और शेष = ५ अर्थात् सोमवार से पाँचवाँ शुक्रवार

```
३५
--
 ३३
 २८
 --
  ५
```

गतवार ठीक है, क्योंकि वर्त्तमान अभीष्ट शनिवार के दिन का अहर्गण अभीष्ट है।

अहर्गण साधन विषय पर सिद्धान्त ग्रन्थोंपर सपरिष्कार, सयुक्तिक, गोलगणित सिद्ध अनेक विचार हो चुके हैं। जैसे—वर्षगण ÷ ११ = लब्धि + शेष० या, चक्र ÷ ६ में, लब्धि पूर्ण तो ऐसी स्थिति में वार मिलाते समय भी कभी-कभी अहर्गण में १ या दो संख्याओं का अन्तर पड़ जाता है। ऐसी स्थिति में अहर्गण में एक जोड़ना या १ घटाना आवश्यक हो जाता हैं। तारतम्य से ग्रहगणित में वैषम्य न हो और अहर्गण में एक जोड़ने या घटाने से वार का मिलान ठीक कर लेना आवश्यक होता है। इत्यादि बुद्धिमान् छात्र उक्त विषयों को समझ कर सही अहर्गण बना सकेंगे।

उक्त प्रकार की अहर्गण साधनिका या उक्त प्रक्रिया का क्या बीज है? या क्या मूल है? यह समझना आवश्यक है। गणित का ऐसा सिद्धान्त जो उपपन्न होता है वह कैसे और क्यों? करतल स्थित आंवले की तरह सम्यक् रूप से खगोल विद्या जिनकी बुद्धिगत हो जाती है वही इस हेतु को समझ सकते हैं। अतः संक्षेप से हम यहाँ पर सिद्धान्तों की उपपत्तियाँ भी समझाने का सफल प्रयत्न कर रहे हैं।

उपपत्तिः—अक्षरत्वाद्वरेण्यत्वात् धूतसंसारबन्धनात्।
तत्त्वमस्यार्थसिद्धत्वात् अवधूतोऽभिधीयते॥

= "कुलार्णव तन्त्र"

सौर माडल में ग्रह पिण्डों की गतिविधि का ज्ञान गणित विधि से किया जा रहा है। सही माने में ग्रह वेध से ही आकाश की किसी भी एक ग्रह की सम्यक् स्थिति ज्ञात होती है। वह सर्व सुलभ नहीं हो सकती है। प्राचीन समय में 'नलिकावेध' नामक वांस के यन्त्र से भारतीय गणितज्ञ आचार्यों ने ग्रह ज्ञान के अद्‌भुत चमत्कारिक सिद्धान्त उपपन्न किए थे।

सर्व प्रथम सृष्टि के आरम्भ दिन से आज तक या अभीष्ट समय तक के दिनों की संख्या का ज्ञान करना आवश्यक है। इस ग्रन्थ प्रणेता आचार्य से ग्रहसाधन का शुद्ध लघु प्रकार अपेक्षित होने से लम्बे अंकों का गुणन भजन समय व श्रम साध्य होने से, ग्रह साधन के लिए वह प्रणाली सुविधाप्रद नहीं समझी गई है। अतः कल्प कुदिनों में कल्प सम्बन्धी ग्रह भगण संख्या उपलब्ध होती है तो इष्ट कुदिन अर्थात् अभीष्ट अहर्गण में राश्यादिक ग्रह की स्थिति क्या है? ग्रह साधन के इस मूल सिद्धान्त को लेकर लघुरूप अर्थात् हर भाज्य का अपवर्तित लघु रूप से ग्रह साधन प्रकार में आचार्य को दैवदत्त जो सफलता या सिद्धि मिली है उससे, मेरे मत से, यह आचार्य इस १५वीं शताब्दी का चमत्कारिक ग्रहगणित लाघव शोध प्रक्रिया का महान् आविष्कारक सिद्ध होता है।

यथा कल्प आरम्भ के आदिम दिन से कल्पान्त तक को दिन संख्याएँ जो भारतीय आचार्यों ने सही रूप में बता दी हैं वह यह संख्या १५७७९१७८२८८ जो सृष्टि में एक महान् प्रलय की भी सूचना देती है तथा इतने समय में सौरमण्डलीय वर्त्तमान किन्हीं ग्रहों में सूर्य की या पृथ्वी की परिक्रमाओं के भगणों की संख्या भी जो नियुत रूप में ४३२०००००० होती है तो सृष्टि से आज के वर्षों के किसी महिने के किसी दिन के सूर्योदय या मध्यान्ह या मध्य रात्रि तक के ग्रह की संस्थिति आकाश में उस समय कहाँ और कितनी है? त्रैराशिक गणित से यही ज्ञात करना है।

ऐसी स्थिति में आचार्य ने तीन खण्डों से दिन समूह या अहर्गण का विभाजन किया है। १. सृष्टि के आरम्भ दिन से इष्ट १४४२ शक के फाल्गुन कृष्ण अमावास्या तक के ग्रहों को ज्ञात कर उनका उन्हें नियत एक जगह पर रख कर उनका नाम 'क्षेपक' (जोड़ने योग्य होने से) कहा है। २. तथा १४४२ गतशकादि से वर्त्तमान शक तक के वर्षों को (अभीष्टशक वर्ष—१४४२) ÷ ११ से प्राप्त लब्धि को चक्र और ३. शेष १····२····११···· सौर वर्षों की दिन संख्या का नाम अहर्गण कहा है। ध्यान रहे कि ११ सौर वर्षों की दिन संख्या को एक सौर वर्ष दिनादि संख्या = ३६५।१५।३१।२४ × ११ = ४०१६ स्वल्पान्तर से जो होती है, बताई है।

चक्रशेष वर्षों को १२ से गुणा किया है। इसलिए कि एक सौरवर्ष में १२ महीने होते हैं। चैत्र शुक्लादि से अभीष्टमास तक की चान्द्रमास संख्या को थोड़े समय के लिए सौरमास तुल्य मान लेने से (जो सौरचान्द्र विकार है आगे स्पष्ट हो रहा है) उक्त १२ × चक्र शेष में जोड़ देने से इष्ट समय सम्बन्धी चान्द्र मासादि दिन तक की सौरमास संख्या सिद्ध होती है। (एक महीने की ३० दिन संख्या होने से उक्त संख्या को ३० से गुणा कर उसमें वर्त्तमान तिथि संख्या की गत तिथि संख्या जोड़ देने से अभीष्ट दिन तक की चान्द्र तिथियाँ

(समझने के लिए) चान्द्र हो जाती हैं। यतः चान्द्रमास संख्या—सौरमास संख्या = अधिमास संख्या होती है। अनुपात से कल्प सम्बन्धी सौर मासों ५१८४००००००० में एक कल्प के अधिक मास संख्या = १५९३३००००० मिलती है तो उक्त सौर मासों में सावयव अधिक मास संख्या क्या उपलब्ध होगी ? अनुपात से $\frac{१५९३३००००० \times \text{उक्त सौर मास}}{५१८४००००००}$ = इष्ट

अधिक मास + $\frac{\text{अधिशेष}}{\text{कल्प सौर मास}} = \frac{१५९३३०००००}{५१८४०००००००}$ = कल्प सौर मासों में कल्प अधिक मासों से भाग देने से ३२ मास १६ दिन ४ घटी····उपलब्ध होने तथा ११ वर्षात्मक एक चक्र सम्बन्धी सौर वर्ष के वास्तव और अवास्तव अधिमासों की अन्तर संख्या = २ होने से चक्र संख्या को द्विगुणित होने से तथा ग्रन्थारम्भ में १० महीनें में अधिकमास होने से चक्र × २ + १० को पूर्व महीनों में जोड़ कर उसमें स्वल्पान्तर से ३३ का भाग देकर लब्धि-तुल्य अधिमास को जोड़ा गया है। इस प्रकार चक्र शेष सम्बन्ध के सावयव सौर वर्षो की सावयव चान्द्रमास संख्या हो जाती है। अतः (सौरमास + अधिकमास) = चान्द्रमास × ३० (एक महीने के ३० दिन) इष्टगत तिथि तक की चान्द्र तिथियाँ सिद्ध हो जाती हैं।

अनन्तर में चान्द्र तिथियों से सावन दिन ज्ञान आवश्यक होने से कल्प चान्द्र दिनों में १६०२९९९०००००० में कल्प दिनक्षय (क्षय तिथियाँ) २५०८२५००००० तिथियाँ तो उक्त चक्र शेष सम्बन्ध की चान्द्र तिथियों में $\frac{१६०२९९९०००००० \times \text{इष्ट चान्द्र}}{२५०८२५०००००}$ = $\frac{\text{चान्द्रदिन}}{६३।५४।३२}$

स्वल्पान्तर से $\frac{\text{चान्द्रतिथि}}{६४}$, उक्त चान्द तिथियों में ६४ से भाग देकर लब्धि क्षय तिथियों को चान्द्रतिथियों में कम करने से अभीष्ट दिन की चक्र शेष सम्बन्ध की अहर्गण संख्या सिद्ध होती है। यहाँ पर सही मान $\frac{\text{क० चां० दि०} \times \text{इ० चां० दि०}}{\text{कल्प क्षयदिन}} = \frac{\text{इ० चां० दि०}}{६३ + \frac{९}{१०}}$ की जगह $\frac{\text{इ० चा० दि०}}{६४}$ ग्रहीत किया है।

विशेष—१ चक्र = ११ वर्ष में, $६३\frac{५}{६}$ होता है। अतः $६४ - ६३\frac{५}{६}$ एक चक्र में $\frac{१}{६}$ अधिक ग्रहण करने से, चक्र संख्या × $\frac{१}{६}$ विकृति रहती है। अतः उक्त चन्द्रतिथियों में चक्र/६, को जोड़ कर उसमें ६४ का भाग देकर लब्धितुल्य क्षय दिनों को उक्त चान्द्र तिथियों में कम करने से वास्तविक सावनदिन दिनगण सिद्ध होता है।

वार मिलाने के लिए १ चक्र = ११ वर्ष के सावनदिन = ४०१६ में सात का भाग देने से लब्धि $५७३\frac{५}{७}$ शेष ५ होने से चक्र × ५ को आगत अहर्गण में जोड़ा है। योगफल में ७ का भाग देने से शेष संख्या तुल्य ग्रन्थारम्भ समय में चन्द्रवार होने से एकादि शेष से गतवार चन्द्रवार से अभीष्ट वार का मिलान करना चाहिए। इस प्रकार ग्रहलाघवीय-अहर्गण की उपपत्ति सटीक सही होती है ॥४-५॥

खविधुतानभवास्तरणेर्ध्रुवः खमनला रसवार्धय ईश्वराः ।
सितरुचो भमुखोऽथ खगा यमौ शरकृता गदितो विधुतुङ्गजः ॥६॥
शैला द्वौ खशरा अगोः क्षितिभुवो भूतत्त्वदन्ता विदः ।
केन्द्रस्याब्धिगुणोडवः सुरगुरोः खं षडयमा वस्विलाः ॥
द्राक्केन्द्रस्य भृगोः कुशक्रयमला राश्यादिकोऽथो शनेः ।
शैलाः पञ्चभुवो यमाब्धय इमेऽथ क्षेपकः कथ्यते ॥७॥
रुद्रा गोऽब्जाः कुवेदास्तपन इह विधौ शूलिनो गोभुवः षट् ।
तुंगेऽक्षात्यष्टिदेवास्तमसि खमुडवोऽष्टाग्नयोऽथो महीजे ॥
दिक् शैलाष्टौ ज्ञकेन्द्रे विभकलनवभं पूजितेऽद्र्यश्विभूपाः ।
शौक्रे केन्द्रे गृहाद्योऽद्रिनखनव शनौ गोतिथिस्वर्गतुल्यः ॥८॥

मल्लारिः

एवमहर्गणं प्रसाध्येदानीं श्लोकद्वयेन ध्रुवानाह। खविध्विति। तरणेः सूर्यस्य भमुखः। भानि राशयो मुखे यस्य स तथा राश्याद्योऽयं ध्रुवः स्यात्। अयं कः। खविधुतानभवाः। खं शून्यम् ०। विधुरेकः १। ताना एकोनपञ्चाशत् ४९। भवा एकादश ११। सितरुचः सिता शुभ्रा रुग्दीप्तिर्यस्य तस्य चन्द्रस्य ध्रुवः॥ खं शून्यम् ०। अनलास्त्रयः ३। रसवार्द्धयो रसाः षट् वार्द्धयश्चत्वार एवं षट्चत्वारिंशत् ४६। ईश्वरा एकादश ११ अत्र सर्वत्रांकानां वामतो गतिरिति न्यायः।

विधुतुङ्गजो विधोश्चन्द्रस्य यत् तुंगं मन्दोच्चं तस्य ध्रुवो गदित उक्तः। खगा ग्रहा नव ९। यमौ द्वौ २। शरकृताः शराः पञ्च कृताश्चत्वार एवं पञ्चचत्वारिंशत् ४५॥६॥ शैला द्वाविति। अगो राहोर्ध्रुवः। शैलाः कुलाचलाः सप्त ७। दौ २ प्रसिद्धौ। खशराः खशून्यं शराः पञ्च एवं पञ्चाशत् ५०। क्षितिभुवः क्षितेर्भवतीति क्षितिभूस्तस्य मंगलस्यायं ध्रुवः। भूरेकः १। तत्त्वानि पञ्चविंशतिः २५। दन्ता द्वात्रिंशत् ३२। विदो बुधस्य केन्द्रस्यायं ध्रुवः। अब्धयश्चत्वारः ४। गुणास्त्रयः ३। उडूनि नक्षत्राणि सप्तविंशतिः २७। सुराणां देवतानां गुरोर्बृहस्पतेर्ध्रुवः। खं शून्यम् ०। षडयमाः षट् प्रसिद्धा यमौ द्वौ एवं षड्विंशतिः २६। वस्विला वसवोऽष्टौ इला पृथिवी एका एवमष्टादश १८। भृगोः शुक्रस्य यद्द्राक्केन्द्रं शीघ्रकेन्द्रं तस्य ध्रुवः। कुरेकः १। शक्राश्चतुर्दश १४। यमलौ द्वौ २। शनेरपि राश्याद्योऽयं ध्रुवः। शैलाः सप्त ७। पञ्चभुवः पञ्चदश १५। यमाब्धयो यमौ द्वौ अब्धयश्चत्वार एवं द्विचत्वारिंशत् ४२। एते ग्रहध्रुवा राश्याद्याः।

अत्रोपपत्तिः। अत्राचार्येण एकादशतष्टानि वर्षाणि कृत्वाऽहर्गणानयनं कृतम्। एवं योऽहर्गणः स एकादशवर्षमध्यस्थ एव। तदुत्पन्ना ये ग्रहास्ते एकादशवर्षमध्य एव

भवन्ति। अतो यावन्ति चक्राणि भुक्तानि तेषां ग्रहानानीय एतेषु प्रक्षिप्य ग्रन्थशकादिमारभ्यः ग्रहाः स्युरिति। एवमाचार्येण एकमितचक्रादेकादशवर्षात्मकात् ग्रहाः साधितास्ते यथा कल्पसौरवर्षैः कल्पग्रहभगणास्तदैकादशवर्षैः कतीति अत्रागतानां भगणानां प्रयोजनाभावाद्राश्याद्या एव गृहीतास्तेषां ध्रुवसंज्ञा कृता स्थिरत्वात्। अथवैकादशवर्षाणामहर्गणं प्रसाध्यपूर्वकरणोक्तरीत्या ग्रहाः साधितास्ते ग्रहेषु योज्याः। अत्राचार्येण द्वादशराशिशुद्धान् कृत्वा ध्रुवसंज्ञा कृता। अतो दिनगणागतग्रहेषु ध्रुवा वियोज्या इत्यग्रे उक्तमस्ति चक्रशुद्धत्वात्। अत्र बालावबोधार्थं धूलीकर्मणा एकादशवर्षाणामयमहर्गणः ४०१६। अतोऽयमहर्गणो 'विश्वगुणस्त्रिखाङ्कैर्भक्त' इत्यादिना जातो मध्यमो रविः ११।२८।१०।४९ अयं द्वादशशुद्धो जातो रविध्रुवः ०।१।४९।११ एवं सर्वेषां ग्रहाणामुत्पाद्याः ॥७॥

एवं ध्रुवानुक्त्वा क्षेपकमाह। ॐ अथेति। अथ शब्दोऽनन्तरवाची ध्रुव कथनानन्तरं क्षेपकः कथ्यत इत्यर्थः। रुद्रा इति। तपने सूर्ये 'तपनः सविता रवि' रित्यभिधानात्। गृहाद्यो गृहाणि राशय आदौ यस्येति राश्याद्यः क्षेपः स्यात्। रुद्रा एकादश११। गोब्जा गावो नव अब्जश्चन्द्र एक एवमेकोनविंशतिः १९। कुवेदाः कुरेकः वेदाश्चत्वार एवमेकचत्वारिंशत् ४१। इति॥ विधौ चन्द्रे शूलिन एकादश ११। गोभुव एकोनविंशतिः १९। षट् ६ प्रसिद्धाः॥ तुङ्गे चन्द्रमन्दोच्चेऽक्षाः पञ्च ५। अत्यष्टयः सप्तदश १७। देवास्त्रयस्त्रिंशत् ३३॥ तमसि राहौ खं शून्यम्०। उडवः सप्तविंशतिः २७। अष्टाग्नयोऽष्टत्रिंशत् ३८॥ अथो राहुक्षेपकथनानन्तरम्। महीजे भौमे दिशो दश १०। शैलाः सप्त ७। अष्टौ ८ प्रसिद्धाः॥ ज्ञकेन्द्रे बुधशीघ्रकेन्द्रे विभकलनवभं विगता भकलाः सप्तविंशतिकला यस्मात् एवंभूतं यन्नवभं राशिनवकं तेन राश्यष्टकम् ८ एकोनत्रिंशद्भागाः २९ त्रयस्त्रिंशत्कला-३३ श्चेति॥ पूजिते गुरौ अद्रयः सप्त ७। अश्विनौ द्वौ २। भूपाः षोडश १६॥ शौक्रे शुक्रस्येदं तस्मिन् शुक्रकेन्द्रेऽद्रिनखनव। अद्रयः सप्त ७। नखाः विंशतिः २०। नव प्रसिद्धाः ९। शनौ गोतिथिस्वर्गतुल्यः। गावो नव ९। तिथयः पञ्चदश १५। स्वर्गा एकविंशतिः २१। एभिस्तुल्यः शनिक्षेपकः स्यात्। अत्र गृहाद्यमिति सर्वत्र सम्बध्यते॥

अत्रोपपत्तिः—येऽत्र ग्रहास्ते ग्रन्थारम्भमारभ्य जाता अतो ग्रन्थारम्भग्रहा अत्र योज्यास्ते कल्पादितः स्युरिति। तत्साधनं यथा। द्वयब्धीन्द्रतुल्यं १४४२ शकं प्रकल्प्य चैत्रशुक्लप्रतिपदि सूर्योदयिका मध्यमा ग्रहा यस्माद्यस्मात् पक्षाद्ये घटन्ते तत्तत्पक्षेभ्यस्ते ते साधितास्तेषां क्षेपसंज्ञा कृता यतः क्षिप्यतेऽसौ क्षेपः। अस्य ग्रहेषु क्षेप्यत्वात् क्षेपत्वम् ॥८॥

विश्वनाथः

अथ सूर्यचन्द्रतुङ्गानां ध्रुवाण्याह। खविधुतानेति। स्पष्टोऽर्थः ॥६॥

अथ राह्वादीनां ध्रुवांकानाह। शैला द्वौ खशरा इति स्पष्टोऽर्थः ॥७॥ रुद्रा इति स्पष्टोऽर्थः ॥८॥

अत्रेदानीं चन्द्रसूर्ययोर्ग्रहणे स्पर्शमोक्षावार्यपक्षेण भवत इति दृश्यत इति कारणादार्यपक्षस्थतिथिसाधनार्थं सूर्यचन्द्रतुंगानां ध्रुवकक्षेपानाह।

यातेऽब्दे ग्रहलाघवस्य धरणीक्षोणीक्षपेशोन्मिते
संवीक्ष्य क्षणदाकरोष्णकरयोः पर्वार्यपक्षाश्रितम्।
क्षेपान् सध्रुवकान् रवीन्दुशशभृत्तुंगोद्भवान् भादिकान्
दृष्टिप्रत्ययकारकान् गणितविच्छ्रीविश्वनाथो ब्रुवे ॥१॥
खविधुतानगजास्तरणेर्ध्रुवः ०।१।४९।८
खमनला रसवारिधिसंमिताः।
नगगुणः शशिनो ०।३।४६।३७ ऽथ खगा यमौ,
शरकृतः खयमा ९।२।४५।२० विधुतुङ्गजाः ॥२॥
क्षेपोभवानन्दभुवोऽद्रिवेदा, विश्वे ११।१९।४७।१३ऽर्क इन्दौ कुभवो गजाऽब्जाः
रामेषवो बाणयमा ११।१८।५३।२५स्तदुच्चे, बाणाः षडब्जाः श्रुतयः कुवेदाः ५।१६।४।४१।३॥

अथवा सिद्धानां सूर्यचन्द्रतुङ्गानां बीजसंस्कारमाह—यद्वा ग्रहलाघवोत्थतरणौ लिप्तादि बीजं धनम् षड्विश्वेऽ६।१३।ऽथ विधावृणं यमभुव पञ्चाङ्ग्य१२।३५स्तुङ्गके। नागेभा नव भूमयः ८८।१९ स्वमनला–२ स्तर्काश्विनः २६ खाश्विन २० श्रक्रघ्ना विकला रवीन्दुशशभृत्तुङ्गे स्वमस्व त्वृणम् ॥८॥

केदारदत्तः—चक्र नामक ११ ग्यारह वर्ष समूह में ग्रहों का साधन किया है। ११ वर्ष सम्बन्धो साधित ग्रहों को ध्रुव संज्ञा से बोधित किया है। जैसे सूर्य की ध्रुवा ख से ० शून्य राशि, विधु से चन्द्रमा, १ अंश, तान से ४९ कला एवं भवाः (रुद्राः) से ११ इस प्रकार सूर्य की राश्यादिक ध्रुवा ०।१।४९।११ होती है। इसी प्रकार सभी ग्रहों की ध्रुवा श्लोक ६ और ७ में पढ़ी हुई स्पष्ट है। स्पष्टता के लिए निम्न चक्र से सभी ग्रहों की राश्यादिक ध्रुवा दी जा रही हैं।

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	चन्द्र उच्च	राहु०	मंगल	बुधकेंद्र	बृहस्पति	शुक्र केन्द्र	शनि
राशि	०	०	९	७	१	४	०	१	७
अंश	१	३	२	२	२५	३	२६	१४	१५
कला	४९	४६	४५	५०	३२	२७	१८	२	४२
विकला	११	११	०	०	०	०	०	०	०

खगोल की विचित्र गति परम्परा से गतियों में समय समय पर सैकड़ों वर्षों में कुछ अन्तर आ जाता है। गणित से साधित ग्रह की आकाशीय स्थिति वेध करने से उसी

जगह पर जब उपलब्ध नहीं होती तथा पूर्वापर, याम्योत्तर सम्बन्ध से या ध्रुव विन्दु की भी कदाचित् अध्रुवता से, या गतिमान अयन सम्पात की विचित्र गति परम्परा से पूर्वोक्त ग्रहों के राश्यादिक ध्रुवादिकों में स्वल्प अन्तर लक्षित हो जाने से तत्तत्समयों में ग्रहगणिताचार्यों ने ग्रहसाधन पद्धतियों में बीज संस्कार आवश्यक समझा है। तदनुसार यहाँ पर बीज संस्कृत ग्रह ध्रुव चक्र निम्न भाँति दिया जा रहा है।

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	चन्द्र उच्च	राहु	मंगल	बुधके०	गुरु	शुक्रकेंद्र	शनि	अ०श०	व०
राशि	०	०	९	७	१	४	०	१	७	१०	११
अंश	१	३	२	२	२५	५	२५	१५	१५	१२	५
कला	३८	३५	३५	३९	१९	०	९	४१	२८	४३	४९
विकला	२५	२९	५७	५४	४७	१	२	२४	२४	२२	४४

उपपत्ति—११ सौर वर्ष का एक चक्र माना गया है। एक चक्र की अहर्गण संख्या ४०१६ के तुल्य पूर्व में कही गई है। सूर्य ग्रह की मध्यमा गति ५९' ८" को एक चक्र सम्बन्धी दिनगण से गुणा कर लब्ध राश्यादिक फल को चक्र नाम १२ राशि में कम कर देने से रविग्रह का राश्यादिक ध्रुवक ०।१।४९।११ होता है। अतः एक चक्र सम्बन्धी प्रत्येक ग्रह के ध्रुवक को अभीष्ट चक्र से गुणा करने से आगत राश्यादिक फल को अहर्गण (११ वर्ष के चक्र शेष वर्ष साधित दिन) से उत्पन्न ग्रह में कम कर देने से १४४२ शकादि से अभीष्ट शक के अभीष्ट मासदिनादि का सूर्योदय कालिक मध्यम ग्रह हो जाता है। चक्र गुणित ध्रुवक यदि १२ में शोधित नहीं किया गया है तो ऐसे ध्रुवक गुणित चक्र में अहर्गणोत्पन्न ग्रह जोड़ देने से फल तुल्य ही होगा। जैसे अहर्गण से उत्पन्न कोई ग्रह १।२।२५।३२ है चक्र × चक्रशुद्ध ध्रुवा = ५।६।३।२८ है तो अहर्गणोत्पन्न ग्रह १।२।२५।३३ − ५।६।३।२८ = ७।२६।२२।४ होगा। चक्र × ध्रुवा = ६।२३।५६।४ है तो अहर्गणोत्पन्न ग्रह १।२।२५।३२ + में चक्रगुणित (चक्र अशुद्ध) ६।२३।५६।३२ को जोड़ देने से ७।२६।२२।४ पूर्व तुल्य हो जाता है। "**बालैरपि बुद्धयते।**" यह सामान्य बुद्धिगत विषय है।

क्षेपक—क्षेप करने या जोड़ने से क्षेपक नाम सार्थक होता है। पहिले बताया गया है कि अहर्गण के प्रथम खण्ड (विभाग) सृष्टि के आरम्भ दिन शकादि वर्ष १४४२ के सूयर्दोय (याम्योत्तर वृत्तीय भू पृष्ठ देश जिसे प्राचीन आचार्य उज्जैन अर्थात् याम्योत्तर रेखा देशीय खमध्य भी कहते हैं) काल में अनुपात सिद्ध सूर्यादिक मध्यम ग्रहों का जो राश्यादिक मान आया है उन मध्यम ग्रहों को आचार्य ने क्षेपक संज्ञा दी है। १४४२ शकादि में गणित सिद्ध मध्यम ग्रहों की राश्यादिक स्थितियों में सर्व प्रथम सूर्य ग्रह का रुद्राः ११, गो से १ अब्जाः (चन्द्र) से १ इस प्रकार १९ कु से (पृथ्वी) १ वेदाः (श्चत्वारः) से ४ एवं ४१ कला और शून्य विकला सूर्यग्रह का अनुपातीय गणित से मध्यम सिद्ध होता है इसी का नाम क्षेपक है। इसो प्रकार श्लोक ८ में सभी ग्रहों के क्षेपक बताए गए हैं। निम्न चक्र से जिनकी स्पष्टता होती है।

ग्रहाः	सूर्य	चन्द्र	चन्द्र उच्च	राहु	मंगल	बुध केन्द्र	बृहस्पति	शुक्र केन्द्र	शनि
राशियाँ	११	११	५	०	१०	८	७	७	९
अंश	१९	१९	१७	२७	७	२९	२	२०	१५
कला	४१	६	३३	३८	८	३३	१६	९	२१
विकला	०	०	०	०	०	०	०	०	०

शके १८४७ संवत् १९८२ में सबीज ध्रुवक चक्र नवीन गणित से दिया जाता है।

ग्रह	सू०	च०	च०उ०	रा०	म०	बु०के०	बृ०	शु०	श०	अति शनि	वरुण
राशि	११	०	१०	५	०	११	०	९	१०	८	३
अंश	२५	९	२५	२७	१९	२०	५	१६	१८	२१	४
कला	१०	४०	३६	४६	३१	२४	५०	११	५	१४	१६
विकला	१४	२०	५९	४	४२	१२	१८	११	१२	४	९

उपपत्ति—कल्प कुदिन में कल्प ग्रहभगण नो १४४२ शकारम्भ कालीन अहर्गण में उपलब्ध मध्यम ग्रहों का नाम क्षेपत्वात्—क्षेपक कहना समीचीन है। ॥६॥७॥८॥

नवीनों की खोज से दो और ग्रहों की यूरेनस या नेपच्यून की उपलब्धि हुई है धीरे धीरे भविष्य के दीर्घ समयों में उनके भी भगण पूर्ति समय ज्ञात हो सकेंगे। ये ग्रह शनि कक्षा से भी दूर कक्षागत होने से इनकी भी शनि ग्रह की गति से और भी अल्प गति होती है ॥६–८॥

दिनगणभवखेटश्चक्रनिघ्नध्रुवोनो
दिवसकृदुदये स्वक्षेपयुङ्मध्यमः स्यात् ।
निजनिजपुररेखान्तःस्थिताद्योजनौघ-
द्रसलवमितलिप्ताः स्वर्णमिन्दौ परे प्राक् ॥९॥

मल्लारिः

एवं क्षेपानुक्त्वा क्रमप्राप्तादहर्गणात् मध्यमग्रहानयनमाह। दिनगणेति। दिनगणादहर्गणाद्भव उत्पन्नो वक्ष्यमाणरीत्याऽहर्गणात् साधितो ग्रहश्चक्रेण निघ्नो गुणितो यो ध्रुवस्तेन ऊनः स्वस्य क्षेपो य उक्तस्तेन युक्तो दिवसकृतः सूर्यस्य उदये मध्यमः स्यात्। लंकायां मध्यमार्कोदयासन्नसमये मध्यमो ग्रहः स्यादित्यभिप्रायः। उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ—

दशशिरः पुरि मध्यमभास्करे क्षितिजसंनिधिगे सति मध्यम इति।

अयमुदयान्तरसंस्कृतः सन् लंकामध्यमार्कोदयकालिको भवति। उदयान्तरं तु स्वल्पत्वादाचार्येण त्यक्तमतो न दोषः। तस्य स्वदेशीयकरणार्थं संस्कारमाह। निजनिजेति। निजं निजं स्वीयं स्वीयं यत् पुरं ग्रहकर्त्तुर्गणकस्य यन्नगरं तच्च रेखा च अनयोरन्तर्मध्ये स्थितो वर्त्तमानो यो योजनौघो योजनानां समूहस्तस्माद्यो रसैः षड्भिर्लवैस्तेन मिता या लिप्ता यत् कलादि द्विष्ठं फलं तदिन्दौ चन्द्रे स्वं धनमृणं

हीनं च कार्यम् । कस्मिन् सति परे प्राक् रेखातः स्वदेशे सति । पश्चिमायां धनं पूर्वस्यामृणमित्यर्थः ॥

अत्र पूर्वार्धस्योपपत्तिः पूर्वमेवोक्ताऽस्ति । उत्तरार्धोपपत्तिर्यथा । यः कृतो-लंकायां मध्यमो ग्रहः स स्वदेशीयः कर्त्तव्योऽतो देशान्तरं देयम् । तद्देशान्तरं द्विविधम् । पूर्वापरं याम्योत्तरं च । याम्योत्तरं यत् तच्चरं तच्च रेखार्कोदयलंका-र्कोदययोरन्तरं तदग्रे प्रतिपादयिष्यति । पूर्वापरं रेखार्कोदयस्वपुरार्कोदययोरन्तरम् । रेखा मध्यरेखा भुव इति शेषः ।

उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ—

यल्लंकोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशत् ।
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुव-इति ।

अत्र रेखार्कोदयात् स्वार्कोदयः कदा भविष्यतीति ज्ञानार्थमुपायः । लंकाया-मुक्तः परमो भूपरिधिः सप्तारिनन्दाब्धितुल्यः ४९६७। मेरौ परिधेरभावः । मध्येऽनु-पातः । स यथा । लंकायामक्षज्याभावाल्लम्बज्या परमा त्रिज्यातुल्या । अतो यदि त्रिज्यातुल्यया लम्बज्ययाऽयमुक्तो भूपरिधिस्तदेष्टलम्बज्यया किमिति लम्बज्यायाः सर्वत्र त्रिज्यातोऽल्पत्वादुक्तात् सर्वत्रोन एव भूपरिधिः स्यात् । अतः सुखार्थमष्ट-चत्वारिंशच्छतमितो गृहीतः ४८००। ततोऽनुपातः । यद्येभिः परिधियोजनै–४८०० र्ग्रहो गतिकलाः क्रामति तदेष्टैः रेखास्वदेशान्तरयोजनैः किमिति । अत्रायं संस्कारश्चन्द्रस्यैव कृतः । अन्येषां गतेरल्पत्वान्न कृतः । स्वल्पांतरत्वात् कर्मगौरव-भयात् त्यक्तमतो न दोषाय ।

उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ—

स्वल्पान्तरत्वादबहूपयोगात् प्रसिद्धभावाच्च बहुप्रयासात् ।
ग्रन्थस्य तज्ज्ञैर्गुरुताभयेन यस्त्यज्यतेऽर्थो न स दूषणाय इति ॥

अतो रेखास्वदेशान्तरयोजनानां गति–७९० गुणः । परिधि–४८००हरः । गुणहरौ गुणेनापवर्त्तितौ जातो हरः षट् । अत उक्तं निजनिजेत्यादि ।

धनर्णोपपत्तिर्यथा । ये ग्रहास्ते मध्यरेखोदयजाः । मध्यरेखातः पूर्वदेशे रेखो-दयात् पूर्वं सूर्योदयोऽत ऋणं क्रियते रेखायाः पश्चिमदेशे स्थितानां रेखोदयानन्तरं स्वार्कोदयोऽतो धनं क्रियते इत्युपपन्नम् ॥१॥

विश्वनाथः

अथाहर्गणोत्पन्नग्रहाणां ध्रुवक्षेपकसंस्कारमाह । दिनगणेति । दिनगणादहर्ग-णात् । भव उत्पन्नो वक्ष्यमाणरीत्या साधितो ग्रहः । चक्रेण निघ्नो गुणितो यो ध्रुवस्तेन ऊनः स्वक्षेपकेण युक्तः । एवं स ग्रहो दिवसकृत उदये सूर्योदये मध्यमः स्यात् लंकानगर्यां मध्यमसूर्योदयासन्नकाले मध्यमग्रहो भवेदित्यभिप्रायः । तदुक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ "दशशिरःपुरी" त्यादि । तस्य स्वदेशीयकरणार्थं संस्कार-माह । निजनिजेति । निजं निजं स्वीयं स्वीयं यत् पुरं रेखा मध्यरेखा च तयोरन्त-

मध्ये स्थिताद्वर्त्तमानाद्योजनौघात् रसलवेन षडंशेन परिमिता लिप्ताः कला इन्दौ चन्द्रे परे प्राक् क्रमेण स्वर्णं कार्याः। तद्यथा। मध्यरेखायाः पश्चिमे स्वपुरे सति धनं कार्याः प्रागृणमित्यर्थः। मध्यरेखामानमुक्तं भास्करेण "पुरी राक्षसी" ति अत्रायं संस्कारश्चन्द्रस्यैव कृतः। अन्येषां स्वल्पान्तरत्वान्न कृतोऽतो न दोषाय। उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ "स्वल्पान्तरत्वादित्यादि" ॥९॥

केदारदत्तः—अग्रिम श्लोक १० से श्लोक १३½ तक में पहिले से आनीत अहर्गण पर से ग्रहों का मध्यममान ज्ञात करना चाहिए। उक्त श्लोकों से पृथक् सूर्य चन्द्र····शनि और राहु तक सभी ग्रहों की अहर्गण से मध्यम राश्यादिक स्थिति ज्ञात हुई है इस लिए इन ग्रहों में प्रत्येक को दिनगणभवखेट अर्थात् अहर्गण से उत्पन्न मध्यम ग्रह कहना चाहिए। क्योंकि वे ग्रह सृष्टि के आरम्भ दिन से सिद्ध न होकर ० वर्ष से ११ वर्ष तक वर्षों की अहर्गण संख्या से सिद्ध हुए हैं।

इस अहर्गणोत्पन्न ग्रह में, चक्र गुणित अपने ध्रुव से प्राप्त राश्यादिक फल को घटाना चाहिए इस प्रकार यह ग्रह १४४२ शकारम्भ से इष्ट शकारम्भ के अभीष्ट मास की अभीष्ट तिथि व वार को मध्यम ग्रह सिद्ध हो जाता है। किन्तु यह भी सृष्टि के आरम्भ दिन से नहीं सिद्ध हुआ। अतः सृष्टि के आरम्भ दिन रविवार से १४४२ शकाब्दारम्भ के सूर्योदय के समय पूर्व में जो क्षेपक पढ़ आए हैं उस उस ग्रह को राश्यादिक संख्या उक्त ग्रह में जोड़ देने से यह मध्यम ग्रह अभीष्ट समय में रेखादेशीय सूर्योदय समय का सिद्ध हो जाता है।

अपने देशीय खमध्य व रेखादेशीय खमध्यों के अन्तर योजन में ६ का भाग देने से लब्ध कलादि फल को केवल मध्यम चन्द्रमा में, स्वदेशीय खमध्य यदि रेखादेशीय खमध्य से पश्चिम में हो तो जोड़ने से यदि पूर्व में हो तो घटा देने से वह अपने देशीय सूर्योदय कालिक मध्यम चन्द्रमा सिद्ध होता है। यतः चन्द्रमा ग्रह की सर्वाधिक गति है अतः चन्द्रमा की स्थिति में देशान्तर संस्कार आवश्यक होता है और ग्रहों में भी देशान्तर संस्कार होना चाहिए था किन्तु स्वल्पान्तरदोष ग्राह्य समझ कर नहीं किया गया है।

उपपत्ति—एक चक्रोद्भव ग्रहों को १२ में अर्थात् चक्र = भगण = ३६०° में घटा दिया गया है। अतः अहर्गणोद्भव ग्रह में चक्र × ध्रु को जोड़ने की जगह घटाना ही जोड़ना सिद्ध होता है जो पहिले उदाहरण में भी दिखा दिया है। कल्पादि से अभीष्ट ग्रन्थारम्भ शक तक के ग्रहों का नाम क्षेपक है उन्हें जोड़ देने से ही कल्पादि से इष्ट समय तक का मध्यम ग्रह होगा ही।

	क्षेपक	चक्र × ११	अहर्गण	
कल्पादि	अभीष्ट शकादि	इष्ट शकादि	इष्ट तिथि	कल्पान्त जब होगा।

इस प्रकार समझिए।

एक चक्र सम्बन्धी ग्रह = १२ − एकचक्रभव ग्रह = ध्रु। इसे इष्ट चक्र से गुणा करने ध्रु × च अतः ध्रु × च = इष्ट चक्रभव ग्रह। तीनों खण्ड जनित ग्रह खण्डों का योग = दिन

गण भवग्रह + (१२ × च − ध्रु × च) + क्षेपक, १२ × च का प्रयोजनाभाव होने से दिनगण भवग्रह + ध्रु × च + क्षेप = अभीष्ट दिन में मध्यम ग्रह। इस ग्रन्थ में आचार्य ने श्रीमद्भास्कराचार्य की भूपरिधि योजन को मान्यता दी है। सिद्धान्त शिरोमणि—"प्रोक्तो योजन संख्यया कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धयः" ४९६७ योजन भूपरिधि मान है। समग्र भूपरिधि भ्रमण काल अर्थात् १ सावन दिन में चन्द्रमा की मध्यमा गति ७९०' । ३५ विकला प्राप्त होती है तो रेखादेश व अपने देश की मध्यन्तरालवर्ती भूखण्ड परिधि योजन में चन्द्रमा की क्या गति होगी ? इस प्रकार के अनुपात से ७९०'३५ × देशान्तर योजन ÷ ४९६७ = देशान्तर योजन ÷ ६ स्वल्पान्तर से आचार्य ने माना है। रेखादेश से अपना देश पश्चिम है तो उक्त देशान्तर योजन गति फल चन्द्रमा में जोड़ना चाहिए क्योंकि रेखादेशीय क्षितिज में चन्द्रोदय होने से उक्त कालान्तरित काल में पश्चिमदेशीय क्षितिज में चन्द्रोदय होगा। पूर्व में अपने क्षितिज में पहिले ही चन्द्रोदय होने से देशान्तर फल ऋण करना युक्तियुक्त है।

प्राचीन आचार्योंने, लङ्का, उज्जयिनी, कुरुक्षेत्र से ध्रुव तक की रेखा का नाम याम्योत्तररूपा रेखा कहा है। इस याम्योत्तर रेखा पर लम्बरूपा पूर्वापर रेखा उज्जयिनी के समध्य में गई हुई मानी गई है। वस्तुतः गोलपदार्थ की भूमध्य रेखा किसी भी बिन्दु से दोनों ध्रुवगत याम्योत्तर रूप भी भूमध्य रेखा, या पूर्वपर स्वस्तिक बिन्दुगत रेखा जिसे नाडीवृत्त या विषुवद्वृत्त या निरक्षवृत्त अर्थात् अक्षांश रहित पूर्वापर वृत्त को भी भूमध्य रेखा कहना युक्तियुक्त। या सर्वत्र स्वल्पान्तर से भूपरिधि योजन मान ४८०० और चन्द्रमा की मध्यमा गति ८०० कला मानने से भी ८०० × देशान्तर योजन ÷ ४८०० में देशान्तर ÷ ६ कला देशान्तर संस्कार ग्रहण किया है जो समीचन सा है। आधुनिक नवीन गणितों में देशान्तर की यह स्थूलता निरस्त हो गई है। पूर्वाचार्यों के विचार से प्रायः ५ मील = १ योजन ठीक सा है ॥९॥

स्वखनगलवहीनो द्युव्रजोऽर्कज्ञशुक्राः
खतिथिहृतगणोनो लिप्तिकास्वंशकाद्याः ।
गणमनुहृतिरिन्दुः स्वाद्रिभूभागहीनः
खमनुहृतगणोनो लिप्तिकास्वंशपूर्वः ॥१०॥

मल्लारिः

अथ सूर्यबुधशुक्रचन्द्रानेकवृत्तेन साधयति स्वखनगेति। स्वस्याहर्गणस्यैव खनगलवः सप्तत्यंशः। तेन हीनो द्युव्रजोऽहर्गणः स एवार्कज्ञशुक्राः सूर्यबुधशुक्रा भागाद्याः स्युस्तेषामयं संस्कारो लिप्तिकासु कलासु। खतिथिहृतेन गणेन सार्धशतभक्ताहर्गणेन ऊन इति। एतदुक्तं भवति। अहर्गणः सप्तत्या ७० भाज्यः फलं भागा यच्छेषं तत् षष्ट्या ६० गुण्यं पुनः सप्तत्या ७० भाज्यं फलं कलाः पुनर्यच्छेषं तत्षष्टि—६० गुणं सप्तति—७० भक्तं फलं विकलाः। ततोऽहर्गणः सार्धशतेन १५० भाज्यः फलं कलाः शेषं षष्टि—६० गुणं सार्धशत—१५० भक्तं फलं विकलाः। तेन कलादिना तत्फलं हीनं सत् भागाद्या मध्यमाः सूर्यबुधशुक्राः स्युरिति।

अत्र विकला: षष्टया भाज्या: फलमूर्ध्वं कलासु योज्यं कला अपि षष्टिभक्ता: फलं भागेषु योज्यं भागास्त्रिंशद्भक्ताः फलं राशयः स्युः। ततस्तत्र चक्रहतः स्वध्रुवको हीनः कार्यः क्षेपः संयोज्यः। ततस्तद्राशयो द्वादशभक्ता भगणाः स्युस्ते प्रयोजनाभावात् त्याज्याः। रविराह्वोर्भगणा ग्रहणे पर्वेशानयनायोपयुक्ताः सन्त्यतस्ते स्थाप्याः॥

अत्रोपपत्तिः। अत्र पूर्वगत्या ग्रहसाधनं कर्त्तव्यम्। तत्र पूर्वगतिज्ञानोपायो यथा। पूर्वं ब्रह्मणा चैत्रादौ रविवारे भचक्रं क्रान्तिमण्डलादिवृत्ताढ्यं प्रवहानिले पश्चिमगतौ क्षिप्तं तत्र ग्रहाः प्रवहानिलवशेन भचक्रं क्रामायेत्वा भिन्नभिन्नया पूर्वगत्या स्वस्थानात् किंचित् किंचिच्चलिताः। एवं प्रत्यहं विलोक्यमाने ग्रहाणां पूर्वगतिर्भिन्ना भिन्ना दृष्टा। अत्र ग्रहानयने कश्चिदुपायो न दृश्यते प्रतिदिनं विलक्षणगतित्वात्। तत्रेत्थं ब्रह्मणा विरचितं गोलं चक्रविकलाङ्कितं कृत्वा प्रत्यहं ग्रहा वेधिताः। एवमद्यतनश्वस्तनयोरन्तरं ग्रहस्य गतिः। एवं ग्रहभगणभोगपर्यन्तं ग्रहगतीरानीय तासु मध्ये या परमाधिका गतिर्या च परमाल्पा तयोर्योगार्धं मध्यगतिरेवाङ्गीकृता। सा दुःसाध्या सूक्ष्माणां विकलाकोट्यंशादीनामलक्ष्यत्वात्। सा स्थूला जाता सैवाङ्गीकृता। एवं कियत्यपि काले जाते वसिष्ठादिर्विलोक्यमाने गतेरन्तरं दृष्टम्। एवमन्यैरपि। आर्यभटब्रह्मगुप्तभास्कराद्यैस्तयैव युक्त्या गतयो भिन्ना दृष्टास्ताभ्यो भगणा अपि साधितास्ते यथा—यद्येकदिनेनैतावती गतिस्तदा कल्पकुदिनैः किमिति एवं सिद्धान्ते ग्रहभगणा भिन्नाभिन्नाः पाठपठितास्ते तत्कालमेव घटन्तेस्म। इदानीं महदन्तरिता दृश्यन्ते।

उक्तं च वराहसंहितायाम्—

उक्ताभावे विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिरिति।

वसिष्ठसिद्धान्तेऽपि—

इत्थं माण्डव्यसंक्षेपादुक्तं शास्त्रं मयोदितम्।
विस्रस्तौ रविचन्द्राद्यैर्भविष्यति युगे युगे॥

युगे युगे महति काले विस्रंसनं विस्रस्तिः शिथिलत्वमिति यावत्।

उक्तं च सूर्य्यसिद्धान्ते—

शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत् पूर्वं प्राह भास्करः।
युगानां परिवर्त्तेन कालभेदोऽत्र केवलम्॥

ब्रह्मसिद्धान्तेऽपि—

ध्यानग्रहोपदेशाद् बीजं ज्ञात्वा सुदैवज्ञः।
तत्संस्कृतग्रहेभ्यः कर्त्तव्यौ निर्णयादेशौ॥ इति॥

अमुनाऽऽचार्येण नलिकाबन्धेन ग्रहानावेध्य ग्रहान्तराणि लक्षितानि। तद्यथा—सौरपक्षीयः सूर्यश्चंद्रोच्चं च। नवकलान्यूनः सौरपक्षीयश्चन्द्रो घटते। आर्यपक्षीया भौमगुरुराहवः। बुधकेन्द्रं ब्रह्मपक्षीयम्। आर्यपक्षीयः शनिः पञ्चभागाधिको घटते। शुक्रकेन्द्रं तु ब्रह्मपक्षीयार्यपक्षीययोर्योगार्धतुल्यं घटते। अस्मिन् काले, एते दृग्गोचराः।

एवमग्रेऽपि भविष्यन्महागणकैर्नलिकाबन्धादिना ग्रहवेधं कृत्वाऽन्तराणि लक्षयित्वा ग्रहकरणानि कार्याणीत्यग्रे ग्रन्थसमाप्तावाचार्येणाप्युक्तमस्ति। अतोऽस्मिन् कालेऽत्रत्या एव ग्रहा घटन्ते। एवमनया वर्त्तमानघटनया ज्ञाता मध्यमा रविगतिर्भागाद्या ०।५९। ८।३४।१७।९ तत्रानुपातः। यद्येकदिनेनैतावती गतिस्तदाहर्गणेन किमिति अहर्गणस्य गतिर्गुणः। अत्र खण्डगुणनार्थं गतेरेकं खण्डं गत्यपेक्षयाऽधिकं गृहीतम्। रग = ०।५९। ८।३४।१७।९ अत्रैको धृतः। अन्तरम् ०।०।५१।२५।४२।५१ अनेनाहर्गणो गुण्यः रूपगुणाहर्गणाच्छोध्यः। अत्र कर्मगौरवम्। लाघवार्थमिदम्० ।०।५१।२५।४२।५१ यथैकसंख्यं स्यात् तथा केनापि गुण्यम्। एवं सप्तति ७० गुणिते ऊर्ध्वं रूपं निःशेषं भवति। अतो गणो रूपगुणः सप्ततिभक्तः फलेन रूपगुणोऽहर्गणो हीनः कार्यः यतोऽधिकं गृहीतम्। उभयत्र रूपतुल्यस्य गुणस्याविकृतत्वान्नाशः एवं स्वखनगलव-हीन इति। अथ गतेरपेक्षयाऽधिकं गृहीतं यत् खण्डम्० ।०।०।२४।०।० अनेन गणो गुण्यः फलं रवौ हीनं कार्यमधिकत्वात्। अत्रापि लाघवार्थमिदं खतिथिभिः १५० सवर्णितं जातं कलास्थाने रूपम्। अतः कलासु खतिथिहृतगणोन इति। या मध्य-मार्कगतिः सैव बुधशुक्रयोर्दृष्टा। अतो रविबुधशुक्रा मध्यमास्त एव।

अथ चन्द्रं साधयति। गणमनुहृतिरिति। गणोऽहर्गणः। मनवश्चतुर्दश १४। अनयोर्हृतिर्नाम चतुर्दशगुणोऽहर्गणांशपूर्वोऽभागाद्य इन्दुश्चन्द्रः स्यात्। किंविशिष्टः स्वाद्रिभूभागेन स्वसप्तदशां १७ शेन हीनः। पुनर्लिप्तिकासु कलासु खमनुभिश्चत्वा-रिंशदधिकशतेन १४० हृतो यो गणस्तेनोनः स कार्य इत्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। अत्र चन्द्रस्य मध्यमा गतिः १३।१०।३४।५१।५६।० अनया गणो गुण्यः। तत्र गतेरधिकं खण्डं गृहीतम् १३।१०।३५।१७।३८।५१ अत्रापि लाघवार्थं पूर्णाश्चतुर्दश गृहीता अत उक्तं गणमनुहृतिरिति। इदं चतुर्दशभ्यः कियदल्पमस्तीति चतुर्दशशुद्धम् ०।४९।२४।४२। ११९ इदं सप्तदशगुणितं जातमूर्ध्वस्थाने १४। अत्रोभयत्र चतुर्दशतुल्यगुणोऽतः स्वाद्रिभूभागहीन इत्युक्तम्। ततो गतेरपेक्षया यद् गृहीतमधिकं खण्डं तदिदम्। ०।०।०।२५।४२।५१ खमनुभिः सवर्णितं जातं कलास्थाने रूपं स गुणः खमनवो हरः। रूपगुणस्याविकृतत्वात् खमनुहृतगणोनो लिप्तिकास्विति स्वस्वध्रुव-स्वस्वक्षेपसंस्कारः सर्वेषां ग्रहाणां कार्य एव ॥१०॥

विश्वनाथः

अथ मध्यमरविबुधशुक्रचन्द्रसाधनमाह। स्वखनगेति। द्युव्रजोऽहर्गणः १५२१। अयं द्विधा स्थापितः १५२१ खनग—७० भक्तः फलं भागाः २१ शेषं ५१ षष्टि—६० गुणितं ३०६० सप्तति—७० भक्तं फलं भागाधः कलाः ४३ पुनः शेषं ५० षष्टि—गुणितं ३००० सप्तति—७० भक्तं फलं कलाधो विकलाः ४२। एवमंशाद्येन २१।४३।४२ ऊर्ध्वस्थोऽहर्गणः १५२१ हीनः कार्यः स यथा। अहर्गणेऽशा हीनास्तस्मादेको भागो ग्राह्यस्तस्य षष्टि—६० कलाः। ताभ्यः प्राक्कलाः शोध्या एवं कलाः। ताभ्य एका कला ग्राह्या। तस्याः षष्टि—६० विकलाः। ताभ्यः प्राग्विकलाः शोध्या एवं विकलाः ॥१०॥

केदारदत्त:—अहर्गण में ७० का भाग देने से लब्ध अंश कलादि को अहर्गण का मान अंशात्मक समझकर अहर्गण में घटाकर जो शेष बचे उसमें, तथा पुनः अहर्गण में १५० का भाग देकर लब्धकला विकला को घटाकर उसे राशि अंश कला मान में रख देने से अहर्गण से उत्पन्न मध्यम सूर्य-बुध केन्द्र और मध्यम शुक्र हो जाते हैं।

उदाहरण द्वारा जैसे—पूर्व साधित अहर्गण = ३३२८ है। ३३२८ ÷ ७० = अंश-कला-विकला ७०)३३२८(४७ लब्धि = अंश

२८०
———
५२८
४९०
———
३८ × ६०
= ७०)२२८०(३२ = कला
२१०
———
१८०
१४०
———
४० × ६० = ७०)२४००(३४ विकला
२१०
———
३००

अहर्गण में ७० का भाग देने से अंशात्मक फल ४७°।३२।३४″ को अंशात्मक अहर्गण में घटाने से ३३२८। ०। ०
४७।३२।३४
———
३२८०।२७।२६ होता है।

पुनः, अहर्गण ÷ १५० = १५०)३३२८(२२
३००
———
३२८
३००
———
२८ × ६ = १५०)१६८०(११
१६५०
———
३०

प्राप्त कलादि फल २२′।११ को ३२८०।२७।२६ में घटाने से ३२८०°।२७′।२६″
२२′।११″
———
३२८०। ५।१५ अहर्गणोत्पन्न अंशादि मध्यम सूर्य० बुध और शुक्र होते हैं।

अंशात्मक को राश्यात्मक बनाने से, अंशों ३२८० में ३० का भाग देने से राशियाँ = १०९ शेष अंश = १० यतः १२ राशियाँ = १ भगण। अतः राशि समूह १०९ में १२ का भाग देने से ९ भगण, १ राशि, १० अंश ५ कला और १५ विकला अर्थात् अहर्गणोत्पन्न मध्यम सूर्य-बुध-शुक्र = १।१०।५।१५ होते हैं।

पूर्वोक्त प्रकार से चक्र × ध्रुव घटाने से सूर्य ध्रुव = ०।१।४९।११ तथा चक्र = ४१

अतः ०।१।४९।११
४१

लब्धि = २

०	४१	४९	४५१ ÷ ६०
२	ल	१९६	
लब्धि =	= ३३	लब्धि = ७	३१ शेष
	÷ ७४	२०१६	
	३०	÷ ६०	
शेष = १४		शेष = ३६	चक्र × ध्रुव २।१४।३६।३१

दिनगण भवग्रह में कम करने से १।१०। ५।१५
− २।१४।३६।३१
१०।२५।२८।४४ हुआ। इसमें रवि का क्षेपक

जोड़ देने से १०।२५।२८।४४
+ ११।१९।४१। ०
२२।१५। ९।४४

२२ राशियों में १२ का भाग देने से भगण=१ त्याज्य एवं राश्यादि १०।१५।९।४४

यह ता० १ मार्च १९८० के सूर्योदय समय या फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा शनिवार के सूर्योदय समय उज्जैन के क्षितिज के मध्यम सूर्य-बुध और शुक्र सिद्ध हो जाते हैं।

अब यदि अहर्गण को सूर्य-बुध-शुक्र की मध्यमा गति से गुणा भी करें तो भी अहर्गणोत्पन्न ग्रह सिद्ध हो जाते हैं।

३३२८ × ५९।८ = ३३२८
५९।८

२९९५२	२६६२४ ÷ ६०
१६६४०	
१९६३५२	लब्धि = ४४३, शेष ४४
४४३	
कला १९६७९५	
÷ ६०	

लब्धि अंश = ३२७९, शेष = ५५ कला। अंशों में ३० का भाग देने से ३२७९ ÷ ३०=लब्धि १०९=राशियाँ। शेष=१९ अंश। राशियों १०९ में १२ का भाग देने से भगण=९ राशियाँ =१, अंश=९, कला ५५, वि० ४४ इस प्रकार भगणादिक मध्यम सूर्य=९।१।९।५५।४४। सूर्य-बुध और शुक्र की भगण संख्या तुल्य होने से मध्यम सूर्य=मध्यम बुध=मध्य शुक्र समझिए। भगण=१ के त्याग से म० सू० = १।९।५५।४४।

१ दिन की मूर्य की और सूक्ष्म गति ग्रहण करने से—

३३२८
५९।८।१०

		२९९५२	२६६२४	३३२८०
		१६६४०	५५४	÷ ६०
		४५२	२७१७८	शेष=४० प्रति विकला
९ = भगण				÷ ६०
१०९	३२८०	१९६८०४		शेष=५८=विकला
१२	÷ ३०	÷ ६०		
११ शेष	शेष	शेष=४		
राशि	१० अंश	कला		

सूर्य की मध्यमा गति ५९।८ मानने से अहर्गण से उत्पन्न भगणादिक मध्यम सूर्य-बुध और शुक्र=९।११।९।५५।४४ और प्रतिविकलात्मक सूर्य ग्रह की एक दिन की गति ५९।८।१० विकला मानने से अहर्गणोत्पन्न भगणादिक मध्यम सूर्य-बुध और शुक्र ९।११।१०।४।५८।४० होते हैं।

आचार्य ने सूर्य की सूक्ष्मात् सूक्ष्म मध्यमा गति ५९।८।१०।१० ग्रहण की है। जिससे अहर्गणोत्पन्न मध्यम बुध-शुक्र और मध्यम सूर्य ११।१०।५।१५ सिद्ध होते हैं ॥११॥

मध्यम चन्द्रमा का साधनः—१४ गुणित अहर्गण को अंशात्मक समझ कर उस चतुर्दश गुणित अहर्गण में १७ का भाग देने से प्राप्त अंशात्मक फल को कम करने से जो हो, उसमें अहर्गण में १५० का भाग देने से लब्ध कलाविकलादि को कम करने से अंशात्मक अहर्गणोत्पन्न मध्यम चन्द्रमा हो जाता है।

उदाहरणतः—अहर्गण = ३३२८ को १४ से गुणा करने से ४६५९२ होता है ४६५९२ में १७ का भाग देने से २७४०।४२।२१ अंशात्मक लब्धि हुई। घटाने से ४३८५२।१७।२१ अंशात्मक हुआ। पुनः अहर्गण में १४० का भाग देने से कलात्मक फल २३।४५ हुआ। इसे पूर्वागत ४३८५२°।१७'।२१" – २३।४५ में कम करने से ४३८५१।५३।३६ होता है। अंशों में ३० का भाग देने से राशियां १४६१ अंश २१, कला ५३ विकला ३६ या राशियों में १२ से भाग देने से चन्द्रभगणात्मक अहर्गणोत्पन्न चन्द्रमा १२१।९।२१।५३।३६ भगणों का प्रयोजनाभाव होने से अह० उत्प० म० चन्द्र = ९।२१।५३।३६ होता है। चन्द्र ध्रुव × चक्र = ०।३।४६।११ × ४१ = ५।४।३३।३१ को अह० उत्प० चन्द्र में ९।२१।५३।३६ – ५।४।३३।३१ कम करने से ४।१७।२०।५ होता है। इसमें चन्द्रक्षेप जोड़ने से ४।१७।२०।५ + ११।१९।६।० = ४।६°।२६'।५" यह इष्ट समय में मध्यम चन्द्र होता है।

देशान्तर संस्कार—प्राचीनों के मत से उज्जयिनी और काशी के बीच का अन्तर ६४ योजन में ६ का भाग देने से लब्धकला, १०'।४०" विकला को उज्जैन से काशी पूर्व होने से उक्त उज्जैन के मध्यम चन्द्रमा में ४।६।२६।५ में कम करने से ४।६।१५।२५ यह काशी के सूर्योदय समय का मध्यम चन्द्रमा होता है।

सही माने में आजकल की सूक्ष्म गणित प्रणालियों से काशी व उज्जैन का देशान्तर (अति स्वल्पान्तर) काल ७० पल या आसन्न २८ मिनिट तक स्वीकार किया गया है। अतः चन्द्रमा की मध्यमा गति जो ७९०'।३५'' है उसे देशान्तर काल १ घटी १० पल (७० पल) = २८ मिनिट से गुणा कर देने से ७९०।३५

१।१०

	७९०	३५	३५० ÷ ६०
	लब्धि=१३२	७९००	शेष = ५०
लब्धि=१५कला	९२२	लब्धि=५	
	÷ ६०	७९४०	
	=शेष=२२	÷ ६०	
	विकला	शेष = २०	

लब्ध गुणनफल में ६० का भाग देना आवश्यक है इसलिये कि अनुपात से ६० घटी में चन्द्रमध्यमा गति प्राप्त होती है तो देशान्तर घटी काल में क्या ? इससे एक और ६० का भाग देना गणित सिद्ध होता है। अतः अहर्गणोत्पन्न उज्जैन के मध्यमा ४।६।२६'।५' – १५'।२०'' कम कर देने से देशान्तर काल संस्कृत सूक्ष्म मध्यम चन्द्रमा = ४।६।१०।४५ होता है।

प्राचीनों के देशान्तर संस्कार १०'।४० से म० च० = ४।६।१५।२५ होगा।

उपपत्तिः—अहर्गण संख्या = १ मान कर त्रैराशिकानुपात से कल्प कुदिनों में सूर्य के भगण तो १ अहर्गण में जो मध्यम सूर्य का मान सिद्ध होता है, उसे सूर्य की मध्यमा गति एवं सभी ग्रहों की मध्यमा गति साधित कर उसे आचार्य ने इसी अधिकार के श्लोक १४ में पढ़ दी हैं।

जैसे सूर्य-बुध-शुक्र की तथा अन्य ग्रहों की भी १ दिन की ग्रह गति का साधन निम्न भाँति समझिए। १ कल्प के सावन दिन = १५७७९१७८२८ तथा एक कल्प के सूर्य की भ्रमण संख्या = ४३२०००० अतः अनुपात से—

$$\frac{\text{भगण } ४३२०००० \times १२ = \text{राशि} \times ३० = \text{अंश} \times ६० = \text{कला} \times \text{अहर्गण} = १}{१५७७९१७८२८}$$

$$\frac{९३३०१२०००००}{१५७७९१७८२८}$$

='५९ कला ८ विकला और १० प्रतिविकला इत्यादि एक दिन की सूर्य की मध्यमा गति सिद्ध होती है। (स्पष्टतया समझने के लिए ताजिक नीलकण्ठी की भूमिका पेज ३७ श्री केदारदत्त जोशी व्याख्या देखिए) यदि एक दिन में सूर्य की गति ५९।८ तो अहर्गण तुल्य दिन संख्या में अहर्गण × मध्यमा रवि गति=अहर्गणोत्पन्न म० सू०। हर भाज्य में ७० से गुणा भाग देने से—

$$\frac{७० \times \text{अह} \,(५९'।८''।१०''')}{७०} = \frac{(४१३०'।५६।७००'') \times \text{अह}}{७०}$$

$= \frac{४१३९'।३१''।४०'''}{७०} = \frac{अह\ (६८^\circ।५९'।३२'')}{७०}$ (साठ से सवर्णित कर से)

तुल्य अंक २८ को जोड़ने व घटाने से विकार नहीं होगा।

अत: $\frac{अह\ (६८।५९।३२) + २८ - २८}{७०} = \frac{अह\ (६९ - २८)}{७०} = \frac{अह \times ६९^\circ}{७०} - \frac{२८}{७०}$

$= अह \frac{(६९^\circ + १ - १)}{७०} - \frac{२८\ अह}{७०} = \frac{अह \times ७०^\circ}{७०} - \frac{अह\ १^\circ}{७०} - \frac{२८\ अह}{७०}$

$= अह\ १^\circ - \frac{अह\ १^\circ}{७०} - \frac{अह}{\frac{७० \times ६०}{२८}}$

$= अह\ १^\circ - \frac{अह\ १^\circ}{७०} - \frac{अह}{\frac{४२००}{२८}} = अह\ १^\circ - \frac{अह\ १^\circ}{७०} - \frac{अह}{१५०}$

=मध्यम सूर्य-बुध और मध्यम शुक्र की सोपपत्तिक सरल व लाघव प्रकार से आचार्य ने गवेषणात्मक ज्ञान का उपाय बताया है।

चन्द्रमध्यमोपपत्ति:—इसी प्रकार चन्द्रमा की एक दिन सम्बन्धिनी मध्यमा गति को अहर्गण से गुणा कर देने से अहर्गणोत्पन्न चन्द्रमा होता है। जैसे—अह० $\times$ (७९०'।३४''।५४'') अथवा अह० (१३°।१०'।३४''।५४''')

$\frac{अह० \times १७(१३^\circ।१०'।३४''।५४''')}{१७}$ = तुल्याङ्क १७ से गुणा भाग से।

$= \frac{अह०\ (२२१।१७०।५७८।९१८)}{१७} = \frac{अह०\ (२२३^\circ।५९'।३३'')}{१७}$

(अल्पान्तर से) समानाङ्क ७ को जोड़ने व घटाने से—

$= \frac{(अह० \times २२३^\circ।५९'।५३'') + ७'' - ७''}{१७} = \frac{अह०\ (२२४^\circ - ७'')}{१७} = \frac{अह० २२४^\circ}{१७} - \frac{अह\ ७''}{१७} = \frac{अह० \times २२४^\circ + १४^\circ - १४^\circ}{१७} - \frac{अह०\ ७''}{१७} = \frac{अह० \times २३८^\circ}{१७} - \frac{अह०\ १४^\circ}{१७} - \frac{अह० \times ७''}{१७} = अह० \times १४ - \frac{अह०\ १४^\circ}{१७} - \frac{अह० \times ७''}{१७ \times ६०}$

$अह०\ १४^\circ - \frac{अह०\ १४^\circ}{१७} - \frac{अह०}{\frac{१०२०}{१७}} = अहर्गण \times १४^\circ - \frac{अह०\ १४^\circ}{१७}$

$- \frac{अहर्गण:}{१४०}$ स्वल्पान्तर से आचार्य का चन्द्र मध्यमानयन सिद्धान्त उपपन्न हो जाता है ॥१०॥

नवहृतदिनसंघश्चन्द्रतुङ्गं लवाद्यं
भवति खनगभक्तद्युव्रजोपेतलिप्तम् ।
नवकुभिरिषुवेदैर्घस्रसंघाद्द्विधाऽऽप्तात्
फललवकलिकैक्यं स्यादगुश्चक्रशुद्धः ॥११॥

मल्लारिः—अथ चन्द्रं प्रसाध्येदानीं चन्द्रोच्चराह्वोः साधनमेकवृत्तेनाह नवहृतेति । नवभि-९र्हृतो भक्तो यो दिनसङ्घोऽहर्गणः स एव लवाद्यं चन्द्रतुङ्गं चन्द्रमन्दोच्चंभवति । किंविशिष्टं खनगैःसप्तत्या ७० भक्तो यो द्युव्रजोऽहर्गणस्तेनोपेता युक्ता लिप्ताः कला यस्य तत् । तथा गणस्य सप्तत्यंशेन कलाविकलारूपेण युक्तमित्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः । मन्दोच्चशीघ्रोच्चादिगतिज्ञानं तत्स्थानं चाग्रे स्पष्टीकरणोपपत्तौ सविस्तरं वक्ष्यामः । अत्र तु केवलामुच्चगतिमङ्गीकृत्योपपत्तिरुच्यते । तत्र चन्द्रोच्चगतिः ०।६।४०।५१।२५।।४३ अत्रैकं खण्डं गतेर्न्यूनं गृहीतम् ।०।६।४०। अनेन गणो गुण्यः । तत्र लाघवार्थमिदं नव ९ सवर्णितं जातमूर्ध्वस्थाने रूपं १ स गुणोऽविकृतत्वात् । अतो नवहृत इत्युक्तम् । अवशिष्टं खण्डम् ०।०।५१।२५।४३। इदं सप्तत्या ७० सवर्णितं जातमूर्ध्वं कलास्थाने रूपम् । अतः खनगभक्तद्युव्रजोपेतलिप्तमिति । यतः पूर्वखण्डं न्यूनं गृहीतमतो युक्तम् ।

एवं चन्द्रोच्चं प्रसाध्येदानीं राहुं प्रसाधयति । नवकुभिरिषुवेदैरिति । नवकुभिरेकोनविंशत्या १९। इषुवेदैश्च इषवः पञ्च वेदाश्चत्वार ऋग्वेदाद्याः प्रसिद्धा अनया पञ्चचत्वारिंशता ४५ द्विधा गणादाप्तात् । गण एकत्रैकोनविंशतिभक्तमंशादि फलं ग्राह्यम् अन्यत्र च पञ्चचत्वारिंशद्भक्तः फलं कलाद्यम् । एवं फललवकलिकैक्यम् । उभयोर्भागादिककलादिकफलयोर्योगश्चक्रशुद्धो द्वादश—१२ शुद्धस्ततो ध्रुवक्षेपसंस्कृतोऽगू राहुः स्यादित्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः । राहुर्नाम पातः । पातो नाम क्रान्तिमण्डलविमण्डलयोःसम्पातः । सूर्यो यस्मिन् वृत्ते भ्रमति तत् क्रान्तिवृत्तम् । क्रान्तिमण्डलात् ग्रहो यावताऽन्तरेण दृश्यते तस्यान्तरस्य शरसंज्ञा कृता । एवं रविव्यतिरिक्ताः सर्वे ग्रहाः क्रान्तिमण्डले न भ्रमन्ति । शरतुल्यान्तरेण ग्रहा यत्र भ्रमन्ति तद्वृत्तस्य विमण्डलसंज्ञा । एवं क्रान्तिवृत्तशरवृत्तसम्पातस्य विलोमगतिर्दृष्टा । तज्ज्ञानं यथा । गोले पूर्वसम्पातादन्यसम्पातः कियद्भिर्भागैः पृष्ठतो दृष्टस्ते भागाः षष्टि—६० गुणाः कलाः । ततोऽनुपातः । यद्येभिः सम्पातद्वयान्तरदिनैरेता अन्तरकलाः लभ्यन्ते तदैकदिनेन कतीति लब्धा पातस्य विलोमगतिः । एवं चन्द्रपातगतिः । अन्येषां ग्रहाणां पातसाधनं नोक्तम् । यतस्तेषां गतिर्वर्षेणापि विकला न लभ्यतेऽतश्चन्द्रपात एव साध्यते । तद्गतिः ०।३। १०।४८।२५।१५ अतोऽनुपातादनया गणो गुण्यः । अत्र गतेरपेक्षया ऊनं खण्डं धृतम्

०।३।९।२८।२५।१५ अनेन सावयवेन खण्डेन गणो गुण्य इति कर्मगौरवम्। अतो लाघवार्थमिदमेकोनविंशत्या १९ सवर्णितं जातमूर्ध्वस्थाने रूपम्। एवं नवकुभिर्गणो भाज्यःफलं भागा इति। अवशिष्टं गतिखण्डम् ०।०।१।२०।०।० इदं पञ्चचत्वारिंशता सवर्णितं जातं कलास्थाने रूपम्। अत इषुवेदैर्भक्त इति फलैक्यं कार्यं यतः पूर्वखण्डं गतेरूनं धृतम्। एवं जातःपातः स चक्रशुद्धो राहुर्भवतीत्यागमः ॥११॥

विश्वनाथः—अथ चन्द्रतुङ्गपातानयनमाह। नवहृतदिनसंघ इति। गणः १५२१ नवभक्तो लब्धमंशादि १६९।०।०। गणः १५२१ खनग—७० भक्तो लब्धं कलादि २१।४४ इदं कलासु युतं १६९।२१।४३ राश्यादि ५।१९।२१।४३ चन्द्रोच्चस्य ध्रुवः ९।२।४५।० चक्र-८ गुणितः ०।२२।०।० अनेन ०।२२।०।० हीनः ४।२७।२१।४३ क्षेपकेण ५।१७।३३।० युक्तः। जातं चन्द्रोच्चम् १०।१४।५४।४३। अथ राहोरानयनम्। गणः १५२१ द्विधा एकत्र नवकुभि–१९ भक्तो लब्धमंशाद्यम् ८०।३।९। अपरत्र–इषुवेदै–४५ भक्ता लब्धं कलादि ३३।४८। अनयोरैक्यम् ८०।३६।५७ राश्यादि २।२०।३६।५७। अयं द्वादश–१२राशिभ्यः शुद्धो जातो राहुः ९।९।२३।३ राहोर्ध्रुवः ७।२।५०।० चक्र–८ घ्नः ८।२२।४०।० अनेन हीनः ०।१६।४३।३। क्षेपकेण २७।३८।० युतो जातो राहुः १।१४।२१।३ ॥११॥

केदारदत्तः—९ से विभक्त अहर्गण से प्राप्त अंशादिक और ७० से विभक्त अहर्गण से प्राप्त कलादिकों का योग करने से अहर्गणोत्पन्न मध्यम चन्द्रोच्च होता है।

तथा अहर्गण में एक जगह १९ से और दूसरी जगह ४५ से भाग देने से लब्ध अंशादिक फलों के योग की राश्यादिक को १२ में घटा देने से चक्र शुद्ध या १२ राशि में घटाया हुआ स्पष्ट राहु हो जाता है।

चन्द्रोच्च साधन का उदाहरण—अहर्गण = ३३२८ में ९ का भाग देने अंशात्मक फल में = ३६९°।४६′।४०″ तथा अहर्गण ÷ ७० से प्राप्त कलादिक फल ४७′।३२ को जोड़ने से = ३७०°।३४।१२ अंशात्मक अहर्गणोत्पन्न मध्यम चन्द्रोच्च होता है। ३७०′।३४′।१२″ राश्यात्मक = राशि = १२ = ० राशि, १० अंश०, ३४ कला और १२ विकला=अहर्गणोत्पन्न म० चन्द्र उ०। चन्द्र ध्रुवा × चक्र = ९।२।४५।० × ४१ = भगणादि = ३१।०।२२।४५।० भगणों का प्रयोजनाभाव से राशि = ०, अंश = २२, कला = ४५ विकला=० होता है। अहर्गणोत्पन्न म० चन्द्र उच्च ०।१०।३४।१२ में ०।२२।४५।० कम करने से ११।१७।४९।१२ में चन्द्रक्षेप ५।१७।३३।० जोड़ने से=५।५।२२।१२ गणित से चन्द्र का उच्च सिद्ध होता है।

राहु साधन—अहगण ३३२८ ÷ १९, अंशादिक = १७५।९।२८ तथा ३३२८ ÷ ४५ = ७३।५७ कलादिक, अंशादिक = १।१३।५७ को जोड़ देने से १७६।२३।२५ होता है। ३० से भाग देकर ५।२६°।२३′।२५″ को १२ में घटा देने से चक्र शुद्ध अहर्गणोत्पन्न राहु = ६।३।३६।३५ होता है। राहु का ध्रुवक ७।२।५०।० × चक्र=४१ = २।२६।१०।० को अहर्गणोत्पन्न राहु में कम करने से ६।३।३६।३५ – २।२६।१०।०=३।७।२६।३५ हुआ। इसमें राहु क्षेप ०।२७।३८।० जोड़ने से ४।५।४।३५ मध्यम राहु होता है।

उपपत्तिः—पूर्व की तरह चन्द्रउच्च की एक दिन सम्बन्धिनी गति =

$$\frac{\text{कल्प में चन्द्रोच्च भगण} = ४८८२०३ \times \text{अहर्गण} = १ \text{ दिन}}{\text{कल्प कुदिन}=१५७७९१७८२८}$$ गुणन भजनादि से चन्द्र-उच्च की एक दिन की गति=६'।४०''।५१ होती हैं। इष्ट अहर्गण से १ दिन की गति को गुणा करने से अहर्गण से उत्पन्न मध्यम चन्द्र उच्च होगा। यथा—९ से, हर भाज्य दोनों को गुणा करने से गणित में विकार नहीं होता हैं।

$$= \frac{(६'।४०''।५१) \times ९ \times \text{अह०}}{९} = \frac{(१^{\circ}।०'।७''।४८''') \times \text{अह०}}{९} = \frac{\text{अह० } १^{\circ}}{९} + \frac{\text{अह० } ७''}{९}$$

$$+ \frac{\text{अह०} \times ४८'''}{९} = \frac{\text{अह०}}{९} + \frac{\text{अह०} \times ७'}{९ \times ६०} + \frac{\text{अह०} \times ४८'''}{९ \times ६० \times ६०} = \frac{\text{अह०} \times १}{९} + \frac{\text{अह०} \times ७}{५४०}$$

$$+ \frac{\text{अह०}}{३२४००}$$ स्वल्पान्तर से $\frac{\text{अह०}^{\circ}}{९} + \frac{\text{अह०}'}{७०}$ उपपन्न हुआ।

इसी प्रकार राहु=चन्द्र-पात की १ दिन की गति,

$$= \frac{२३२२२२६ \times १२ \times ३० \times ६० \times (\text{अह०}=१ \text{ दिन}}{\text{कल्प कुदिन}=१५७७९१७८२८} = (३'।१०''।४८''')=१ \text{ दिन की राहु}$$

की गति। इसे इष्टाहर्गण से गुणा करने से वह अहर्गणोत्पन्न राहु होगा। तुल्य गुणन भजन से

$$\frac{३'।१०''।४८''' \times १९ \times \text{अह०}}{१९} = \frac{\text{अह०}१^{\circ}}{१९} + \frac{\text{अह०} \times २५'}{१९ \times ६०} + \frac{\text{अह०} \times ४८''}{१९ \times ३६०}$$

$$= \frac{\text{अह०} \times १^{\circ}}{१९} + \frac{\text{अह०} \times २५'}{११४०} + \frac{\text{अह०} \times ४८'}{६८४००} = \frac{\text{अह०}^{\circ}}{१९} + \frac{\text{अह०}'}{४५}$$

राहु की विलोम गति होने से आगत उक्त राहु को १२ में घटाने से अनुलोम से मेषादिक अहर्गणोत्पन्न राहु हो जाता है ।।११।।

दिग्घ्नो द्विधा दिनगणोऽङ्ककुभिस्त्रिशैलै-
र्भक्तः फलांशककलाविवरं कुजः स्यात् ।।
त्रिघ्नो गणः स्ववसुदृग्लवयुग्ज्ञशीघ्र-
केन्द्रं लवाद्यद्विगुणाप्तगणोनलिप्तम् ।।१२।।

मल्लारिः

एवं पातं प्रसाध्येदानीं भौमं बुधशीघ्रोच्चं चैकवृत्तेन साधयति दिग्घ्न इति। दिनगणो दिग्घ्नो दिग्भिर्दशभि—१० र्हन्यते गुण्यते स तथा एवंभूतो द्विधा स्थानद्वये स्थाप्यः। एकत्रांककुभिरंका नव कुरेक एवमेकोनविंशत्या १९ भक्तः। अन्यत्र च त्रिशैलैस्त्रयः प्रसिद्धाः शैलाः सप्त एवं त्रिसप्तत्या ७३ भक्तः फलांशककलाविवरं पूर्वफलमत्रांशा भागाद्यं द्वितीयं कलाद्यं तयोर्विवरमन्तरं कुजो भौमः स्यात् ।।

अत्रोपपत्तिः। भौमगतिः ०।३१।२६।३१।३।३६ अत्राधिकं खण्डं गृहीतम् ०।३१।३४।४४।१२।३६ अनेन गणो गुण्यः। अत्र लाघवार्थमिदमेकोनविंशत्या सवर्णितं जाता भागस्थाने दश अत उक्तं दिग्घ्नो गणोऽङ्ककुभिर्भाज्य इति। अस्मात् खण्डाद्गतिमपास्य शेषम् ०।०।८।१३।९ इदं त्रिसप्तत्या सवर्णितं जाता कलास्थाने दश १० उभयत्र दशतुल्यो गुणोऽतो दिग्घ्नो द्विधेत्युक्तं फलयोरन्तरं कार्यं यतः पूर्वखण्डं गतेरधिकं धृतम्

एवं भौमसाधनं कृत्वेदानीं बुधशीघ्रकेन्द्रसाधनमाह त्रिघ्न इति। त्रिभिर्गुण्यते हन्यते स तथा एवंभूतो यो गणः स स्ववसुदृग्लवयुक् स्वस्य त्रिगुणिताहर्गणस्य यो वसुदृग्भिरष्टाविंशत्या २८ लवो भागस्तेन स एव त्रिगुणितो गणो युग्युक्तः सन् लवादि ज्ञस्य बुधस्य शीघ्रकेन्द्रं स्यात्। किंविशिष्टम्। अहिगुणाप्तगणोनलिप्तम्। अहयोऽष्टौ गुणास्त्रय एवमष्टत्रिंशद्भि ३८ राप्तो भक्तो यो गणस्तेन ऊना लिप्ताः कला यस्येति तत् तथा गणस्याष्टत्रिंशद्भागो द्विष्ठः कलादिस्तेन तदूनं कार्यमित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। बुधशीघ्रकेन्द्रगतिः ३।६।२४।८।७।१३ अनया गणो गुण्य इत्येकं खण्डं त्रय-३ स्त्रिभिर्गुण्योऽतस्त्रिघ्नो गण इति। अवशिष्टं खण्डं किञ्चिदधिकं गृहीतम् ०।६।२५।४२।५१।२५ अनेन गणो गुण्य इत्यत्रेदमष्टाविंशत्या २८ सवर्णितं भागस्थाने त्रयः ३। उभयत्रापि गुणस्त्रितुल्योऽतः स्ववसुदृग्लवयुगिति। अत्राधिकमेव तत् खण्डम् ०।०।१।३४।४४।१२ इदमष्टत्रिंशद्भिः ३८ सवर्णितं जातं कलास्थाने रूपं १ तस्याविकृतत्वादहिगुणाप्तगणोनलिप्तमिति पूर्वखण्डमधिकं गृहीतमत इदं हीनं कृतम् ॥१२॥

विश्वनाथः

अथ भौमबुधकेन्द्रसाधनमाह—दिग्घ्नो द्विधा दिनगण इति। गणः १५२१ दिग्घ्नः द्विधा १५२१० एकत्रांककुभि-१९ र्भक्तो लब्धमंशाद्यम् ८००।३१।३४। अपरत्र त्रिशैलै—७३र्भक्तो लब्धं कलादि २०८।२१। अनयोरन्तरं ७९७।३।१३ राश्यादि २।१७।३।१३। भौमध्रुवः १।२५।३२ चक्र—८ निघ्नः २।२४।१६। अनेन रहितः ११।२२।४७।१३ क्षेपकेण १०।७।८ युतो जातो भौमः ९।२९।५५।१३। अथ बुधस्य केन्द्रसाधनम्। गणः १५२१ त्रिघ्नः ४५६३ अयं द्विधा ४५६३ अष्टाविंशतिभि—२८र्भक्तो लब्धमंशादि १६२।५७।५१। अनेन युक्तस्त्रिघ्नोऽहर्गणः ४७२५।५७।५१। गणः १५२१ अहिगुणै—३८ र्भक्तो लब्धं कलादि ४०।१ अनेन कलासु हीनः ४७२५।१७।५० राश्यादिः ११।१५।१७।५०। बुधकेन्द्रध्रुवः ४।३।२७ चक्र—८ निघ्नः ८।२७।३६ अनेन हीनः ४।१७।४१।५० क्षेपकेण ८।२९।३३।० युक्तो जातं बुधशीघ्रकेन्द्रम् १।१७।१४।५०। ॥१२॥

केदारदत्तः—१० गुणित अहर्गण को दो जगह रख कर एक जगह में १० और दूसरी जगह में ७३ का भाग देकर क्रमशः अंशादि कलादिकों का अन्तर करने से अहर्गणोत्पन्न मध्यम मंगल होगा। तथा ३ गुणित अहर्गण में ३ गुणित अहर्गण का २८ वाँ अंश जोड़ने से जो फल हो उसमें अहर्गण का ३८ वाँ भाग कलादिक को घटाने से शेष तुल्य अंशादिक अहर्गणोत्पन्न मध्यम बुध का केन्द्र होता है।

उदाहरण से—अहर्गण = ३३२८ चक्र=४१। दश गुणित अहर्गण = ३३२८० ३३२८० ÷ १९ = १७५१°।३४'।४४" तथा ३३२८० ÷ ७३ = ४५५।५३" ÷ ६० अंशादि = ७°।३५।५३, अतः १७५१°।३४'।४४" – ७°।३५'।५३" = १७४३°।५८'।५१" = अहर्गणोत्पन्न अंशात्मक मंगल। भगणादिक = ५८।३।५८।५१ राश्यादिक = १०।३।५८।३१ मंगल ध्रुवा × चक्र=१।२५।३२।० × ४१=३।२६।२२।० को १०।३।५८।३१ में घटाने से =६।७।३६।३१ में मंगल क्षेप=१०।७।८।० को जोड़ने से=४।१४।४४।३१ = मध्यम मंगल।

बुध शीघ्र केन्द्र साधन गणित का उदाहरण—अहर्गण = ३३२८ × ३ = ९९८४ ÷ २८ = ३५६।३४।७ अतः ९९८४ + (३५६।३४।७) = १०३४०°।३४'।७" । अहर्गण में ३८ का भाग देने से कलादिक = ८७।३६ अंशादिक = १°।२७।३६ अतः १०३४०।३४।७ – १।२७।३६ = १०३३९।६।३१ अहर्गणोत्पन्न बुध केन्द्र। राश्यादिक करने से ३४४।१९।६।३१ = ८।१९।६।३१ अहर्गणोत्पन्न मध्यम बुध केन्द्र हुआ।

चक्र × बुध ध्रुवा = ४१ × ४।३।२७।० = ०।२१।२७।० को अहर्गणोत्पन्न बुध केन्द्र में घटा देने से ७।२८।९।३१ में बुध केन्द्र क्षेप ८।२९।३३।० जोड़ने ८।१९।४२।३१ बुध केन्द्र मध्यम सिद्ध होता है।

उपपत्तिः—पूर्व विधि से आर्यभट्ट तन्त्र के मत से बुध केन्द्र की १ दिन की गति $\frac{२२९६८२४ \times १ \text{ अह०}}{१५७७९१७८२८} = ३१'।२६''।३१'''$.......... इष्ट अहर्गण से गुणा करने तथा तुल्याङ्क गुणन भजन से और घटाने

$$\frac{(३१।२६।३१)\text{ अह०} \times १९}{१९} = \frac{(५८९।४९४।५८९)\text{ अह०}}{१९} = \frac{\text{अह० } (५९७।२३।४९)}{१९}$$

$२'।३६''।३१'''$ को जोड़ने से $=\left(\frac{६००}{१९} - \frac{२।३६।१०}{१९}\right)$ अह० $= \frac{६००'}{१९} - \frac{(२।३६।११)१०}{१९ \times १०}$

$$=\left(\frac{१०^\circ}{१९} - \frac{१०'}{७३}\right) \times \text{अहर्गण} = \frac{\text{अह०}^\circ \times १०}{१९} - \frac{\text{अह०} \times १०'}{७३}$$ उपपन्न होता है।

इसी प्रकार ब्रह्म सिद्धान्त से १ दिन की बुध केन्द्र गति $= \frac{१३६१६९९८९८ \times १ \text{ अह०}}{१५७७९१६४५००००}$

$= (३^\circ।६'।२४''।८''') \times$ अहर्गणा तुल्य गुणन भजन से $\frac{\text{अह०} \times ३।६।२४।८)२८}{२८}$

$$= \frac{(८६^\circ।५९'।१५''।४४'')\text{ अह०}}{२८} = \frac{\text{अह०} \times ८७^\circ}{२८} - \frac{\text{अह० } (४४'।१६'')}{२८}$$

$$= \text{अह} \times ३^\circ + \frac{३^\circ \text{ अह०}}{२८} - \frac{\text{अह० } १'}{\frac{२८ \times ६०}{(४४।१६)}}$$

$= \text{अह०} \times ३^\circ + \frac{३^\circ \times \text{अह०}}{२८} - \frac{\text{अह० } १'}{३८}$ स्वल्पान्तर से उपपन्न हुआ ॥१२॥

द्युपिण्डोऽर्कभक्तो लवाद्यो गुरुः स्यात्
द्युपिण्डात् खशैलाप्तलिप्ताविहीनः ।
त्रिनिघ्नाद्द्युपिण्डाद्द्विधाऽक्षैः क्विभाब्जै-
रवाप्तांशयोगो भृगोराशुकेन्द्रम् ॥१३॥

मल्लारिः

एवं बुधशीघ्रकेन्द्रं प्रसाध्येदानीं गुरुं शुक्रशीघ्रकेन्द्रं चैकवृत्तेन साधयति द्युपिण्ड इति । द्युपिण्डोऽहर्गणोऽर्कैर्द्वादशभि-१२ र्भक्तः सन् लवाद्यो भागाद्यो गुरुर्बृहस्पतिः स्यात् किंविशिष्टः द्यु पिण्ड इति । अहर्गणात् खशैलैः सप्तत्या ७० आप्ता लब्धा या लिप्ताः कलादि फलं तेन फलेन विहीनो विवर्जितः कार्य इत्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः । गुरोर्गतिः ०।४।५९।८।३४।१७ अनया गणो गुण्य इति । अत्रैक-खण्डम् ०।५ इदं द्वादशभिः १२ सवर्णितं जातं भागस्थाने रूपं १ हरस्थाने द्वादश १२। अत उक्तं द्युपिण्डोऽर्क भक्त इति । अस्माद्गतिमपास्य शेषम् ।०।०।०।५९।२५।४३ इदं सप्ततिसवर्णितं जातं कलस्थाने रूपं १ हरस्थाने सप्ततिः ७० पूर्वखण्डमधिकं गृहीतमत उक्तं खशैलाप्तलिप्ताविहीन इति ।

अथ शुक्रकेन्द्रं साधयति । त्रिनिघ्नाद्द्यु पिण्डाद्द्विधेति । त्रिभि—३र्हन्यते गुण्यते एवम्भूतो यो द्युपिण्डोऽहर्गणस्मात् द्विधा स्थानद्वये स्थापितात् एकत्र अक्षैः पञ्चभि-५ रन्यत्र च क्विभाब्जैः कुरेक इभा अष्टौ अब्ज एक एभिरेकाशीत्यधिक-शतमितैरङ्कै—१८१ रवाप्तांशयोग अवाप्ता लब्धा ये अंशास्तेषां योगो भृगोः शुक्रस्य शीघ्रकेन्द्रं भवति ।

अत्रोपपत्तिः । शुक्रशीघ्रकेन्द्रस्य गतिः ।०।३६।५९।४०।६।३ अनया गणो गुण्यः । अत्रैकं खण्डम् ।०।३६ इदं पञ्चभिः सवर्णितं जातं भागस्थाने त्रयं ३ हरस्थाने पञ्च ५। अत उक्तं त्रिनिघ्नाद्द्युपिण्डात् अक्षभक्तात् अवाप्तांशा ग्राह्या इति । अवशिष्टखण्डम् ०।०।५९।४०।६।३७ इदमेकाशीत्याधिकशतेन १८१ सवर्णितम् । अत्रापि जातं भागस्थाने त्रयम् । उभयत्रापि गणस्त्रिभिर्गुण्यः । एकत्र पञ्चभि—५ र्भाज्यः । अपरत्र चैकाशीत्यधिकशतेन १८१ भाज्यः फलैक्यं कार्यमेव यतः पूर्वखण्डं न्यूनं गृहीतमस्ति । अत एवोक्तं त्रिनिघ्नाद्द्युपिण्डादित्यादि ॥१३॥

विश्वनाथः

अथ गुरुशुक्रकेन्द्रसाधनमाह द्युपिण्ड इति । गणः १५२१ द्वादश—१२ भक्तः लब्धमंशादि १२६।४५।०। गणः १५२१ सप्तत्या ७० भक्तो लब्धं कलादि २१।४३ अनेन कलासु हीनं १२६।२३।१७। राश्यादि ४।६।२३।१७। गुरोर्ध्रुवः ।०।२६।१८।० चक्र—८ घ्नः ७।०।२४।० अनेन हीनः ९।४।५९।१७ गुरुक्षेपकेणा-७।२।१६।० नेन युक्तो जातो गुरुः ४।८।१५।१७।

अथ शुक्रकेन्द्रानयनम् । गणः १५२१ त्रिघ्नः ४५६३। द्विधा ४५६३ एकत्र पञ्चभि—५ र्भक्तो लब्धमंशादि ९१२।३६।०। अपरत्र क्विभाब्जै—१८१ र्भक्तः

लब्धमंशादि २५।१२।३५। उभयोर्योगः ९३७।४८।३५। राश्यादि ७।७।४८।३५। भृगुकेन्द्रध्रुवः १।१४।२।० चक्र—८ घ्नः ११।२२।१६।० अनेन रहितः ७।१५।३२।३५ क्षेपकेणा ७।२०।६।० नेन युतो जातं शुक्रकेन्द्रम् ३।२।४१।३५ ॥१३॥

केदारदत्तः—अहर्गण में १२ और ७० का भाग देकर क्रमशः प्राप्त अंशादि व कलादि लब्धियों का अन्तर करने से, अहर्गणो तथा त्रिगुणित अहर्गण में ५ और १८१ का भाग देकर प्राप्त अंशादिक लब्धियों का योग करने से क्रमशः अहर्गणोत्पन्न मध्यम गुरु व मध्यम शुक्र केन्द्र होते हैं। उदाहरण से, अहर्गण=३३२८, चक्र = ४१ गुरु की ध्रुवा ०।२६।१८।० क्षेप ७।२।१६।० । ३३२८ ÷ १२ = २७७°।२०'।०" में तथा ३३२८ ÷ ७० = ०।४७।३३ को कम करने से २७६°।३२'।२७" = ९।६।३३।२७ अहर्गणोत्पन्न मध्यमा गुरु हुआ। ततः ०।२६।१८।० × ४१ = ११।२८।१८।० गुणनफल को अहर्गणोत्पन्न गुरु में कम ९।६।३२।२७ − ११।२८।१८।० = ९।८।१४।२७ में + क्षेप = ७।२।१६।० = ४।१०।३०।२७ अहर्गणोत्पन्न मध्यम गुरु हुआ।

उपपत्ति—आर्य भट्ट के अनुसार गुरु की एक दिन की मध्यमा गति = ५ कला को अहर्गण से गुणा करने से ३३२८ × ५ = १६६४० कलात्मक की राश्यादि=२७७°।२०' = ९।७°।२०"।० अति अवयवों का स्वल्पान्तर से अधिक ग्रहण करने से ५८ कला का अन्तर पड़ रहा है।

शुक्र केन्द्र साधन—अहर्गण × ३ = ३३२८ × ३ = ९९८४ ÷ ५=१९९६।४८'।०" तथा ९९८४ ÷ १८१ = ५५°।९'।२६" दोनों फलों का योग २०५१°।५७'।५५" राश्यादि करने से भगणादि ६।८।११।५७।५५ अतः राश्यादि अह० उत्पन्न शुक्र केन्द्र = ८।११।५७।५५ चक्र = ४१ × शुक्र केन्द्र ध्रु=४१ × १।१४।२।० ०।५।२२।० अतः = ८।११।५७।५५ − ०।५।२२।० = ८।६।३५।५५ में + शुक्र क्षेप = ७।२०।९।०=३।२६।४४।५५ यह अहर्गणोत्पन्न मध्यम शुक्र केन्द्र हो गया।

उपपत्ति—१ दिन की गुरु ग्रह की मध्यमा गति (आचार्य ने आर्यभट्ट के भगण व कल्प कुदिन स्वीकार किए हैं।)

$= \frac{३६४२२४ \times १}{१५७७९१७५००} = (४'।५९"।८")$ । अतः अभीष्ट अहर्गण में अह० उ० म० गु०

$= \frac{(४।५९।८) \times अह० \times १२}{१२} = \frac{५९'।३९"।३६।अह०}{१२}$, तुल्य योग वियोग से $\frac{६०' \times अह०}{१२}$

$- \frac{(१०"।२४"') अह०}{१२} = \frac{१^\circ \times अह०}{१२} - \frac{(१०।२४) अह०}{१२ \times ६०} = \frac{१^\circ \times अह०}{१२} - \frac{अह० १'}{७०}$

स्वल्पान्तर से मध्यम बृहस्पति उपपन्न होता है।

आर्यभट्ट की कल्प कुदिन व कल्प भगण के आधार से शुक्र केन्द्र की १ दिन की मध्यमा गति $\frac{७०२३८८ \times १ \text{ दिन में}}{१५७७९१७५००} = (३६'।५९"।४०"')$ इस लिए अभीष्ट अहर्गण

में अहर्गणोत्पन्न शुक्र केन्द्र $= \frac{(\text{३६}'|\text{५९}''|\text{४०}''')\ \text{अह०} \times \text{५}}{\text{५}}$ तुल्य गुणन भजन से ।

$$= \frac{\text{अह०}\ (\text{१८४}'|\text{५७}''|\text{२}''')}{\text{५}} = \frac{\text{अह०}\ (\text{३}^\circ|\text{४}'|\text{५७}''|\text{२})}{\text{५}} = \frac{\text{अह०} \times \text{३}^\circ}{\text{५}}$$

$$+ \frac{\text{अह०}\ (\text{४।५७।२})}{\text{५} \times \text{६०} \times \text{६०}} = \frac{\text{अह०}\ \text{३}^\circ}{\text{५}} + \frac{\text{अह०}\ (\text{३} + \text{१।५७।२})^\circ}{\text{५} \times \text{३६००}} = \frac{\text{अह०}\ \text{३}^\circ}{\text{५}} + \frac{\text{अह०} \times \text{३}^\circ}{\frac{\text{५} \times \text{३६००}}{\text{१।५७।२}}}$$

$= \frac{\text{अह०} \times \text{३}^\circ}{\text{५}} + \frac{\text{अह०} \times \text{३}^\circ}{\text{१८१}}$ स्वल्पान्तर से उपपन्न होता है ॥१३॥

खाग्न्युद्धृतो दिनगणोऽशमुखः शनिः स्यात्
षट्पञ्चभूहृतगणात् फललिप्तिकाढ्यः ।
गोऽक्षा गजा रविगतिः शशिनोऽभ्रगोऽश्वाः
पञ्चाग्नयोऽथ षडिलाब्धय उच्चभुक्तिः ॥१४॥

मल्लारिः

अथेदानीं श्लोकार्धेन शनिं साधयति खाग्न्युद्धृत इति । दिनगणोऽहर्गणः खाग्निभिस्त्रिशद्भि-३० रुद्धृतो भक्तः सन् अंशमुखो भागाद्यः शनिः स्यात् । किंविशिष्टः षट्पञ्चभूहृतगणात् षट्पञ्चाशदधिकशत—१५६ भक्तादहर्गणात् याः फललिप्तिका यत् कलादि द्विष्ठं फलं तेन आढ्यो युक्तः शनिः स्यादित्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः । शनेर्मध्यमागतिः ।०।२।०।२३।४।०।३७ अनया गत्या अहर्गणो गुण्य इति । अत्रैकं खण्डं धृतम् ०।२ इदं त्रिंशता सवर्णितं भागस्थाने रूपं १ जातं तस्याविकृतत्वात् खाग्न्युद्धृतो दिनगण इत्युपपन्नम् । एतत् खण्डं गतेरपास्य शेषम् ०।०।०।२३।४।३७। इदं षट्पञ्चाशदधिकशतसवर्णितं जातं कलास्थाने रूपं तस्याप्यविकृतत्वात् षट्पञ्चभूहृतगणादित्युक्तम् । फलयोर्योगः कार्यो यतः पूर्वखण्डं गतेरूनं धृतमत उक्तं फललिप्तिकाढ्य इति ॥१४॥

विश्वनाथः

अथ शनेरानयनं रविचन्द्रोच्चगतीश्चाह । खाग्न्युद्धृत इति । गणः १५२१ खाग्न्युद्-३० धृतो लब्धमंशादि ५०।४२।०। गणः १५२१ अयं षट्पञ्चभू १५६—हृतः । लब्धं कलादि ९।४५। अनेन युक्तः ५०।५१।४५ राश्यादि १।२०।५१।४५। शनिध्रुवः ७।१५।४२।०। चक्रघ्नः ०।५।३६।०। अनेन हीनः १।१५।१५।४५। क्षेपकेणानेन ९।१५।२१।० युतो जातः शनिः ११।०।३६।४५। गोऽक्षा इति स्पष्टोऽर्थः ॥१४॥

केदारदत्तः—३० से विभक्त अहर्गण के अंशादि फल में अहर्गण का १५६ वाँ विभाग कलादि फल को जोड़ने से दिन गण भव शनि होता है ।

जैसे—अहर्गण = ३३२८ चक्र = ४१ शनि ध्रुवा ७।१५।४२।० क्षेप = ९।१५।२१।०। ३३२८ ÷ ३० = ११०।५६।०' तथा ३३२८ ÷ १५६ = २१'।२०" दोनों का योग

१११।१७।२० राश्यादिक = ३।२१।१७।२० = अहर्गणोत्पन्न शनि। शनि ध्रु० × चक्र= ७।१५।४२।० × ४१ =८।१३।४२।० को अहर्गणोत्पन्न शनि में घटाने से ७।७।३५।२० इसमें शनि क्षेप ९।१५।२१।० जोड़ने ४।२२।५६।२० अभीष्ट अहर्गणोत्पन्न मध्यम शनि हो गया।

शनि की मध्यमा गति प्रायः २' होने से ३३२८ × २ = ६६५६ कला = ११०।५६" = ३।२०।५६" तुल्य अहर्गणोपन्न शनि गति अवयव त्याग से स्वल्पान्तर से होता है। २१" कम लिया हैं।

उपपत्तिः—आर्य भटीय १ दिन सम्बन्धी शनि गति

$$= \frac{१४६५६४ \times अहर्गण = १ \times १२ \times ३० \times ६०}{१५७७९१७५००} = २'।०''।२२''' \text{ अतः अभीष्ट अहर्गण}$$

में $\frac{(अह० \times २।०।२२) \times ३०}{३०}$ तुल्य गुणन भजन से। $= \frac{६०'।१''।३०'''}{३०}$

$$= \frac{अह० १}{३०} + \frac{११''।३०'''अह०}{३० \times ६०} = \frac{अह०१}{३} + \frac{अह०'}{\frac{३० \times ६०}{११।३०}} = \frac{अह० १}{३०} + \frac{अह० १'}{१५६}$$

उपपन्न होता हैं ॥१४॥

राहोस्त्रयं कुशशिनोऽसृजइन्दुरामा-
स्तर्काश्विनो ज्ञचलकेन्द्रजवोऽर्यहिक्ष्माः।
लिप्ता जिना विकलिकाश्च गुरोः शराः खं
शुक्राशुकेन्द्रगतिरद्रिगुणाः शनेर्द्वे ॥१५॥

मल्लारिः

एवं रेखार्कोदयकालीनान् मध्यमान् ग्रहान् प्रसाध्येदानीं सार्धश्लोकेन मध्यमग्रहाणां दिनगतीः कलाद्या वदति गोऽक्षा इति। राहोरिति। इयं कलाद्या रविगतिः। गोऽक्षाः। गावो नव अक्षाः पञ्च एवमेकोनषष्टिः ५९ कलाः। अष्टौ ८ विकलाः। शशिनश्चन्द्रस्येयं गतिः। अभ्रगोश्वाः। अभ्रं शून्यं गावो नव अश्वाः सप्तः। एवं नवत्यधिकशतसप्तकमिताः ७९० कलाः। पञ्चाग्नयः पञ्चत्रिंशत् ३५ विकलाः। अथ शब्दोऽनन्तरवाची। चन्द्रगतिकथनानन्तरमियमुच्चभुक्तिश्चन्द्र-मन्दोच्चगतिः षट् ६ कलाः। इला एकः अब्धयश्चत्वार एवमेकचत्वारिंशत् ४१ विकलाः ॥१५॥

राहोरियं गतिः। त्रयं ३ कलाः। कुशशिन एकादश ११ विकलाः। असृजो भौमस्य इन्दुरामा एकत्रिंशत् ३१ कलास्तर्काश्विनस्तर्काः षट् अश्विनौ द्वौ एवं षड्विंशति—२६ विकलाः। ज्ञस्य बुधस्य यच्चलकेन्द्रं शीघ्रकेन्द्रं तस्य जवो गतिरि-यमर्यहिक्ष्माः अरयः षट् कामक्रोधादयः। अहयोऽष्टौ। क्ष्मा एक एवं षडशीत्यधिक-

शतमिताः १८६ कलाः। जिनाश्चतुर्विंशति—२४ विकला। गुरोर्बृहस्पतेः शराः पञ्च ५ कलाः। खं शून्यं० विकला। शुक्रस्य यदाशुक्रेन्द्रं शीघ्रकेन्द्रं तस्य गतिरद्रिगुणाः। अद्रयः सप्त गुणास्त्रय एवं सप्तत्रिंशत् ३७ कलाः। विकलाभावः। शनेर्द्वे २ कले तस्यापि विकलाभावः। एता ग्रहाणां मध्यमगतयः। प्रत्यहं मध्यमा ग्रहा एताः कलाः पूर्वगत्या क्रामन्तीति भावः। आसां गतिकलानां ज्ञानोपायवासना पूर्वमेव प्रतिपादिताऽस्ति तथापि बालावबोधार्थं विस्तार्योच्यते। रूपमहर्गणं प्रकल्प्य सर्वे ग्रहाः पूर्वोक्तवन्मध्यमाः साधितास्ता एव गतिकलाः। राशिवृत्तस्य एतावतीः कलाः प्रत्यहं प्राच्यां ग्रहा पृथक् पृथक् स्वस्वकक्षायां क्रामन्तीति भावः। तत्कथं राशिमण्डलं प्रवहानिले क्षिप्तमतिवेगेन नियतं पश्चिमाभिमुखं भ्रमति शीघ्रमन्द-भेदेन भिन्नगत्या ग्रहा विचरन्तीति यद्येवं तर्हि तेषां ग्रहाणामेकमार्गस्थानां मध्यमगतेः शीघ्रत्वमन्दत्वमित्यन्यथात्वं कथं संभवतीति। अतः पृथक् पृथक्मार्गगता भ्रमन्तीति भावः। गतेर्विसदशत्वं कस्मादित्युच्यते। यो हि भूमेरासन्नः स स्वल्पेन कालेन भगणं भुङ्क्ते तस्य शीघ्रगतित्वं सम्भवति यो हि दूरगः स महता कालेनेति तस्मात्तस्य मन्दगतित्वमिति। एकस्मादेकस्मादन्योऽन्यो मन्दगतिः सम्भवति। तथा चोक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ।

"कक्षाः सर्वा अपि दिविषदां चक्रलिप्ताङ्किताः स्ता
वृत्ते लघ्व्यो लघुनि महति स्युर्महत्यश्च लिप्ताः।
तस्मादेते शशिजभृगुजादित्यभौमेज्यमन्दा
मन्दाक्रान्ता इव शशधराद्भान्ति यान्तः क्रमेणेति"।

एवं ग्रहाणां कक्षाः सप्त। ग्रहकक्षोपरि अष्टमं नक्षत्रमण्डलं तदेव राशिमण्डलं तत्र समा द्वादश राशयः। तदंशास्ते क्षेत्रांशास्तस्य पूर्वाभिमुखनियतगतेरभावः प्रवाहानिलाक्षिप्तं पश्चिमाभिमुखमेव परिभ्रमतीति तदा राश्यंशकलाद्यवयवभोग-वशात् ग्रहाणां शीघ्रमन्दत्वमुक्तं ननु यो हि योजनात्मको दिनगतिमार्गः स सर्वेषां ग्रहाणां समान एव। अत एवाह भास्करः।

'समा गतिस्तु योजनैर्नभःसदां सदा भवेत्।
कलादिकल्पनावशान्मृदुर्द्रुता च सा स्मृते'ति।

अत्र भचक्रमेकत्र स्थिरत्वेन स्थातुं न शक्नोति अतः किञ्चित् प्राक् पश्चादपि चलतीत्यवगम्यते। कस्मात्। विषुवायनचिन्होदयस्थानानां नैकत्रावस्थितत्वात्। विषुवायनचिन्हानि स्वदेशस्थानादतिक्रान्तानि दृश्यन्ते तदा चक्रं प्रत्यक्चलितं भवति। अनागतप्राप्तानि तदा प्राक्चलितमिति ज्ञेयम्। अत उक्तं सूर्यसिद्धान्ते।

'प्राक्चक्रं चलितं हीने छायार्कात् करणागते।
अन्तरांशैः समावर्त्य पश्चाच्छेषैस्तथाधिक' इति।

कस्मात्स्थानात्प्राक्पश्चाच्चलितं दृश्यते तथा यत्र विषये दक्षिणोत्तरध्रुवौ क्षितिजस्थौ भवतः स निरक्षदेशस्तस्मिन् समं यत्पूर्वापरवृत्तं तद्विषुवद्वृत्तसंज्ञं ततो

यस्मिन् मार्गे रविः पूर्वगत्या द्वादश राशीन् भुङ्क्ते तद्वृत्तस्य क्रान्तिमण्डलसंज्ञा कृता। एवमुभयोः क्रान्तिवृत्तविषुवद्वृत्तयोः षड्भान्तरे पातद्वयं वर्त्तते तौ सम्पातौ राशिमण्डले मेषादितुलादिसंज्ञौ ज्ञेयौ। तयोर्विषुवत्सम्पातयोः प्रागपरत्र क्षितिजस्थयोस्त्रिभे तद्विषुवद्वृत्ताद्दक्षिणोत्तरतश्चतुर्विंशत्यंशान्तरे क्रान्तिस्तद्दक्षिणोत्तरवृत्तयोः सम्पातद्वयं तन्मकरकर्क्यादिसंज्ञम्। अनयोरयनचिन्हसंज्ञा कृता। एवं विषुवायनचिन्हचतुष्टयं राशिमण्डलस्थं प्रत्यग्भ्रमणवशात् क्षितिजे यत्रोदेति तत्र तत्र क्षितिजेऽपि तेषां ता एव संज्ञाः कृताः। तस्माद्भचक्रं चलितमित्यवगम्यते। यथा-सर्वोपरि राशिमण्डलं तत्र द्वादश राशीन् समानान् सावयवान् परिकल्प्य भूमध्यात्तदवयवप्राप्तानि सूत्राणि सलक्ष्याणि यस्मिन् सूत्रे स्वकक्षास्थितो ग्रहस्तिष्ठति स तस्मिन् राशौ तदंशाद्यवयवस्थो ज्ञेयः। एवं श्रीब्रह्मणा राशिचक्रं सनक्षत्रं तदधिष्ठितग्रहकक्षासहितं दक्षिणोत्तरध्रुवयोर्बद्ध्वा तत्र सर्वान् ग्रहान् मेषादिचिन्हसूत्रगान् संस्थाप्य एवं भचक्रं सृष्ट्वा प्रवहानिलस्य पश्चिमाभिमुखभ्रमत्वे नियुक्तं ग्रहास्तु पूर्वाभिमुखभ्रमत्वे नियुक्ताः। ततः सर्वे ग्रहाः स्वस्वमार्गे प्रत्यग्भ्रमन्तोऽपि पूर्वाभिमुखमेकादशसहस्राणि अष्टशतानि च पादोनैकोनषष्टिसहितानि योजनानि प्रत्यहं गन्तुं प्रवृत्ताः। उक्तञ्च। सृष्ट्वा भचक्रमित्यादि। तत्र स्वस्वकक्षास्थितलिप्तानां लघुमहत्त्वात् लिप्तावशेन शीघ्रमन्दत्वमुच्चवशेन च गतीनामुपपन्नम्। तत्र भचक्रस्य प्राक् पश्चाच्चलनं तेऽयनांशा एव तद्वशेन तत्र स्थितराशीनां विषुवद्वृताद् दक्षिणोत्तरदूरासन्नत्वं यावद्भिरंशैर्भवति तेषामंशानां क्रान्तिसंज्ञा। तत्र क्रान्तिवशेन यत्कर्म क्रियते तत्सायनग्रहादेव कर्तुं प्रयुज्यते तेषामवस्थितिरयनांशाः। येषां मते राशिचक्रं भचक्रादन्यत्र स्थितं तेषां साधनमेव प्रमाणम्। स्वस्वगतिकलानामुपपत्तिरेवमपि संक्षिप्तोक्ता पूर्वं प्रतिपादितप्रमेयाच्च ॥१५॥

विश्वनाथः

अथ राहुभौमादीनां गतिकला आह, राहोरिति स्पष्टोऽर्थः ॥१५॥

केदारदत्तः—सूर्य की एक दिन की मध्यमा गति ५९'।८" विकला होती है। इसी प्रकार सभी ग्रहों की एक दिन की मध्यम गतियाँ आचार्य ने बताई हैं। जो नीचे के चक्र से सुस्पष्ट हैं।

उपपत्ति—आचार्य ने सूर्यसिद्धान्त, आर्यभट्टीय सिद्धान्त, ब्रह्म सिद्धान्त प्रभृति अनेक ग्रहगणित सिद्धान्तों के भगणों को आधार माना है। इसलिए कि वध और गणित दोनों की समन्वयात्मक एकरूपता उक्त सिद्धान्तों से उपलब्ध हुई हैं। ग्रहगणितज्ञ उन आचार्यों के भगणों को मान्यता देकर आचार्य ने ग्रहों का साधन किया है।

प्रत्येक ग्रह के कल्प कुदिन और कल्प भगणों से अनुपात द्वारा ग्रहों की १ दिन की गति ज्ञात होती है जिसका विशद विचार पूर्व श्लोकों की उपपत्ति के अवसर पर हो चुका है तथापि यहाँ पर संक्षिप्त दिग्दर्शन आवश्यक है।

सूर्यसिद्धान्त के अनुसार सूर्य की एक दिन की मध्यमा गति=

$$\frac{४३२०००० \times १ \text{ दिन में}}{१५७७९१७८२८} = \frac{४३२०००० \times १२ \times ३० \times ६०}{१५७७९१७८२८} = \frac{२३३२८००००००}{३९४४७९४५७}$$

= ५९ कला, ८ विकला, १०····प्रति विकला इत्यादि प्रकार से जैसे सूर्य की मध्यमा गति उपपन्न हुई। इसी प्रकार सभी ग्रहों की मध्यम वेग की गतियाँ उपपन्न होती हैं।

ग्रहों की गति बोधक चक्र

ग्रह	सू०	चं०	चं०उ०	रा०	मं०	बु०के०	वृ०	शु०के०	श०
कला	५९	७९०	६	३	३१	१८६	५	३७	२
विकला	८	३५	४१	११	२६	२४	०	०	०

प्रति विकलादि अवयवों का स्वल्पान्तर होने से आचार्य ने त्याग किया है।

संवत् २०३६ फाल्गुन शुक्ल पक्ष पूर्णिमा तिथि शनिवार तदनुसार ता० १ मार्च १९८२ के सूर्योदय समय के अहर्गण ३३२८ संख्या तथा चक्र संख्या ४१ के आधार से सूर्यादिक मध्यम ग्रहों की साधनिका जो पूर्व श्लोकों की व्याख्या पर उदाहरण पूर्वक दी गई है उन सभी की एक तालिका निम्न चक्र से सर्व सुविधा के लिए दी जा रही है ॥१५॥

चक्र ४१ अहर्गण ३३२८ उदयकालिक मध्यम ग्रह

सूर्य	चन्द्र	चन्द्र उच्च	राहु	मंगल	बुध केन्द्र	बृहस्पति	शुक्र केन्द्र	शनि०
१०	४	५	४	४	८	४	३	४
१५	६	१७	५	१४	१९	१०	२६	२२
९	२६	५५	४	४४	४२	३०	४४	५६
४४	५	५२	३५	३१	३१	२७	५५	२५

सौरोऽर्कोऽपि विधूच्चमङ्ककलिको नाब्जो गुरुस्त्वार्य-
जोऽसृग्राहू च कजं ज्ञकेन्द्रकमथार्ये सेषुभागः शनिः।
शौक्रं केन्द्रमजार्यमध्यगमितीमे यान्ति दृक्तुल्यतां
सिद्धैस्तैरिह पर्वधर्मनयसत्कार्यादिकं त्वादिशेत् ॥१६॥

मल्लारिः

अथ कस्मिन् पक्षे को ग्रहो घटत इत्येकवृत्तेनाह सौर इति। अर्कः सूर्यः सौरपक्षीयो घटत इति सर्वत्र। विधूच्चमपि सौरपक्षीयम्। अंककलाभिर्नव ९ कलाभिरूनोऽब्जश्चन्द्रः सौरपक्षीयः। गुरुरार्यज आर्यपक्षीयो गुरुरित्यर्थः। असृग्राहू मङ्गलराहू चार्यपक्षीयौ। के ब्रह्मपक्षे जायते तत्तथा एवंभूतं ज्ञस्य बुधस्य केन्द्रम्। अथ शब्दोऽनन्तरवाची। आर्यं आर्यपक्षे शनिः सेषुभागः पञ्च ५ भागयुक्तो घटते। शुक्रस्येदं शौक्रम्। एवंभूतं यत्केन्द्रं तदजार्यमध्यगम्। अजो ब्राह्माऽऽर्यः

प्रसिद्धः। अनयोः पक्षौ तयोर्मध्ये गच्छतीति तथा। उभयोः प्रसाध्यैतद्योगार्द्धं तुल्यं घटत इत्यर्थः। इति तेभ्यः पक्षेभ्यः साधिता इमे ग्रहाः दृशि तुल्यतां दृग्गणितैक्यं यान्ति प्राप्नुवन्तीति। एवं ग्रहणोदयास्तजातकादौ ग्रहाणां साधनं बहुभ्यो ग्रन्थेभ्यः कर्त्तव्यमिति जडकर्म दृष्ट्वा आचार्यो लाघवार्थममुं ग्रन्थं कृतवान्। इहास्मिन् ग्रन्थे सिद्धैस्तैर्ग्रहैः पर्वधर्मनयसत्कार्यादिकमादिशेत्। पर्व ग्रहणं धर्म्मो यज्ञानुष्ठानैकादशीव्रतादिकम्। नयो नीतिः। राजनीतिः दण्डनीत्यादिकः। सत्कार्यं शुभं कार्यं व्रतबन्धविवाहादि। एभ्यो ग्रन्थेभ्य एतदुत्पन्नतिथ्यादेरेवादिशेत् अयं भावः। एकादश्यादिनिर्णयोऽस्मादेव तिथेः कार्यः। जातकादिषु सर्वत्र ग्रहा अत्रत्या एव ग्राह्याः। यतो यस्मिन् यस्मिन् काले यद्यद् दृग्गणितैक्यकृत्तदेव ग्राह्यं घटमानत्वात्। अत्र युक्तिर्ग्रहान्तरलक्षणोपायश्च पूर्वमेव प्रतिपादितोऽस्ति ॥१६॥

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्य जातं खगानामिति मध्यकर्म ॥

इति श्रीगणेशदैवज्ञकृतग्रहलाघवस्य टीकायां मल्लारिदैवज्ञविरचितायां मध्यमग्रहसाधनाधिकारः प्रथमः ॥१॥

विश्वनाथः

अथ पक्षान्तरग्रहान् दृग्गणितैक्यसंस्थापनमाह सौरोऽर्क इति। अत्र दृग्गणितैक्ये अर्कः सौरपक्षीयो घटत इति सर्वत्र। विधूच्चमपि सौरपक्षीयम्। अङ्क ९ कलाभिरूनश्चन्द्रः सौरपक्षीयो गृहीतः। गुरुरार्यपक्षे गृहीतः असृग्राहू आर्यपक्षजौ। कजं ब्रह्मपक्षजं बुधस्य केन्द्रम्। आर्यपक्षे शनिः पञ्च भागयुक्तो गृहीतः। शौक्रं केन्द्रमजार्यमध्यगं ब्रह्मार्यपक्षयोः प्रसाध्य तद्योगार्द्धतुल्यं घटत इत्यर्थः। इति अमुना प्रकारेण साधिता इमे ग्रहा दृक्तुल्यतां दृग्गणितैक्यं यान्ति। एवं बहुभ्यो ग्रन्थेभ्यो ग्रहाणां साधनं कर्त्तव्यमिति जडकर्म दृष्ट्वा आचार्यो लाघवार्थमिमं ग्रन्थं कृतवान्। इहास्मिन् ग्रन्थे सिद्धैस्तैर्ग्रहैः पर्वधर्मनयसत्कार्यादिकं आदिशेत्। पर्व ग्रहणं धर्मो धर्मकृत्यं नयो नीतिः सत्कार्यादिकं विवाहव्रतबन्धादिकमादिशेत्। यतो यस्मिन् काले यद्दृग्गणितैक्यकृत्तदेव ग्राह्यं घटमानत्वात् ॥१६॥

इति श्रीदिवाकरदैवज्ञात्मजाविश्वनाथदैवज्ञविरचिता।
ग्रहलाघवमध्यमाधिकारस्योदाहृतिः समाप्ता ॥१॥

केदारदत्तः—सूर्य और चन्द्रमा का उच्च वर्तमान सूर्यसिद्धान्त के गणित के तुल्य होते हैं। ग्रहलाघवीय चन्द्रमा में ९ कला कम करने से वह सूर्यसिद्धान्त से साधित चन्द्रमा के तुल्य होता है। ग्रहलाघवीय मंगल-गुरु-राहु के गणित, आर्य सिद्धान्त के गणित के तुल्य होते हैं। बुध केन्द्र का गणित ब्रह्मसिद्धान्त से मिलता है। ग्रहलाघव गणित के शनि में ५ पाँच अंश जोड़ने से वह आर्य सिद्धान्त के तुल्य होता है। आर्य तथा ब्रह्म सिद्धान्त से साधित शुक्र केन्द्रों के योग का आधा करनेसे उपलब्ध योगार्ध के तुल्य ग्रहलाघवीय शुक्र का केन्द्र मिलता है।

इस प्रकार उक्त ग्रहों की वेध और गणित से तुल्यता होती है। अर्थात् दृक्तुल्यता होती है अर्थात् आकाश में नलिकावेध से ग्रह प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। उक्त सिद्धान्त मतों को सम्यक् समझ कर अभीष्ट दृक्तुल्यता के लिए उक्त विधि से ग्रहों का गणित साधन किया गया है। अतः एतादृश साधन साधित उक्त सिद्ध ग्रहों के आधार से, पर्व (पूर्णिमा अमा आदि) धर्म (यज्ञ-अनुष्ठान एकादशी व्रतादि) नीति– राजनीति दण्डनीति आदिक) सत्कार्य (व्रतबन्ध विवाहादि) अनेक शुभ कार्यों का लोक में आदेश करना चाहिए ॥१६॥

उपपत्तिः—सति संभव हो तो परिशिष्ट में देखिए ॥१६॥

गर्गगोत्रीय स्वनामधन्य कूर्माञ्चलीय ज्योतिर्विद्वर्य श्रीपण्डित हरिदत्तजी के आत्मज अल्मोड़ामण्डलीय जुनायल ग्रामज पर्वतीय श्री केदारदत्तजोशीकृत ग्रहलाघव– मध्यमाधिकार की उपपत्ति सहित सोदाहरण "केदारदत्तः" व्याख्या सम्पूर्ण ॥१॥

अथ रविचन्द्रस्पष्टीकरणम्

दोस्त्रिभोनं त्रिभोर्ध्वे विशेष्यं रसै-
श्चक्रतोऽङ्काधिकं स्याद् भुजोनं त्रिभम् ।
कोटिरेकैककं त्रित्रिभैः स्यात् पदं
सूर्य्यमन्दोच्चमष्टाद्रयोंऽशा भवेत् ॥१॥

मल्लारिः

अथ रविचन्द्रस्पष्टीकरणपञ्चाङ्गानयनाधिकारः । तत्रादौ भुजकोटिपदार्कमन्दोच्चानां साधनमेकवृत्तेनाह दोरिति । त्रिभाद्राशित्रया-३ दूनं यत् केन्द्रं ग्रहादि वा स एव दोर्भुजः स्यात् । त्रिभाद्राशित्रयादूर्ध्वमधिकं चेत्तर्हि रसैः षड्भि—६ विश्लेष्यान्तरितं कार्यम् । चेत् त्रिभाधिकं षड्भोनं षड्भाच्छोध्यम् । षड्भाधिकं नवपर्यन्तं षड्भोनं भुजः स्यात् । अङ्कतो नव ९ राशिभ्योऽधिकं चेत्तदा चक्रतो द्वादशराशिभ्यः शोध्यं भुजः स्यात् । भुजोनं भुजेन ऊनं त्रिभं राशित्रयं कोटिः स्यात् । त्रित्रिभैस्त्रिभिस्त्रिभी राशिभिरेकैकं पदं स्यात् । तद्यथा । प्रथमं राशित्रयं विषमंपदं स्यात् ततो द्वितीयं समपदं ततस्तृतीयं विषमं पदं चतुर्थं समपदमित्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः । तत्रादौ दोर्ज्याकोटिज्यास्वरूपमुच्यते । समायां भूमौ इष्टत्रिज्याव्यासार्धेन वृत्तं दिगङ्कितं कृत्वा षष्ट्यधिकशतत्रयमितान् ३६० भागानङ्कयेत् । तत्र तिर्य्यगूर्ध्वरेखे च । एवं चतुर्भागाः स्युस्तेषां पदसंज्ञा । एवं चक्रे चत्वारिपदानि तत्रैकैकस्मिन् पदे नवतिर्नवतिर्भागाः । प्रथमपदे यद्गतं स एव दोः । द्वितीये एष्यं दोः । एष्यत्वार्थं षड्भशुद्धम् । उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ ।

'अयुग्मे पदे यातमेष्यं तु युग्मे भुजो बाहुहीनं त्रिभं कोटिरुक्ते'ति ।

अत्र दोर्ज्याकोटिज्ये एकपदमध्ये अतो दोस्त्रिभात् शुद्धः कोटिर्भवतीति युक्तमुक्तम् । एवं भुजकोटिपदान् प्रसाध्येदानीं सूर्य्यमन्दोच्चं वदति । सूर्य्यमन्दोच्चमिति । सूर्यस्य मन्दोच्चमष्टाद्रयोऽष्टसप्तति ७८—मिता भागा भवेत् । राशिद्वयमष्टादश भागाः ।

अत्रोपपत्तिः । अहर्गणात् साधितो यो ग्रहः स मध्यमो यतो यन्त्रवेधेनाकाश विलोक्यमाने तावान् ग्रहो न दृष्टः किञ्चिदन्तरं दृष्टं प्रत्यहं गतेर्विसदृशत्वात् । एवं प्रत्यहं ग्रहान् गोलेन चक्रयन्त्रेण वा विद्ध्वा अहर्गणोत्पन्नमध्यमग्रहवेधितस्पष्टग्रहयोरन्तराणि साधितानि । एवं प्रत्यहं ग्रहाणां याम्योत्तरगमनानि क्रान्तिमण्डलाद्यावद्भागमितानि दृष्टानि तानि शरसंज्ञानि ज्ञातानि । एवं परमशरपरमाल्पशरयोर्योगार्धं मध्यमः शरो ज्ञातः । त एवं ग्रहाणां शरा अग्रे आचार्येणोदयास्ताधि-

कारे पठिताः सन्ति। ततोऽनुपातेनेष्टशरः प्रसाधितोऽस्ति। स यथा। यदि त्रिज्या-तुल्यसपातग्रहदोर्ज्यया एते शरास्तदेष्टदोर्ज्ययाक इति। एवं दोर्ज्या त्रिज्याभक्ता पठित शरगुणा इष्ट शरः स्यात्। सोऽपि ग्रहस्थानीयः। ग्रहस्थानानि त्रीणि तद्-वृत्तानि च। मध्यमो ग्रहो मन्दप्रतिमण्डलेऽस्तीति कल्पना। मन्दस्पष्टो ग्रहः शीघ्र-प्रतिमण्डले भ्रमतीति। स्पष्टो ग्रहः स्वस्वविमण्डलेऽस्तीति कल्प्यते। शरः साधितो मन्दस्पष्टग्रहात् यतः .पाताः प्रतिमण्डलस्था वेधिताः सन्ति। अतः शराः शीघ्रप्रतिम-डलस्था ग्रहस्थानीयास्तत्र शीघ्रकर्णे व्यासार्धे तदग्रे शराः साधितास्ते तु त्रिज्या-प्रस्थानीयाः कार्या ज्यारूपत्वात्। अतो द्वितीयोऽनुपातो यदि शीघ्रकर्णाग्रेऽयं शरस्तदा त्रिज्याग्रे कः पूर्वं त्रिज्या हर इदानीं गुणस्तुल्यत्वात् तयोर्नाशः। एवं दोर्ज्या पठितशरगुणा शीघ्रकर्णभक्ता शरः स्यात्। शीघ्रकर्णो नाम किं तदुच्यते। दोर्ज्या भुजः कोटिज्यान्त्यफलज्योर्मृगकर्क्यादिकेन्द्रे यद्योगान्तरं सा कोटिः। तद्वर्गैक्यपदं कर्णः। तस्य कर्णस्य त्रिज्यातः परमन्यूनाधिकं यदन्तरं साऽन्त्यफलज्यैव तद्धनुः परमं फलमित्यर्थः। अत्र शराद्विलोमविधिना कर्णः साधितः। स यथादोर्ज्या पठितशरगुणा शीघ्रकर्णेन परमाधिकेन यावद्भज्यते तावत् परमाल्पशरो भवति परमाल्पशीघ्रकर्णेन यावद्भज्यते तावत् परमाधिकशरो भवति। अतो वैपरीत्याद्दोर्ज्या त्रिज्या तुल्या पठितशरगुणा परमाधिकशरेण परमाल्पशरेण च भक्ता सती क्रमेण परमाल्पपरमाधिकौ शीघ्रकर्णौ लभ्येते। उभयत्र त्रिज्यया सहान्तरे कृते जाता परमशीघ्रफलज्या तुल्यैव। तस्या धनुः परमं शीघ्रफलम्। एवं यद्दिनजाच्छरादेवं शीघ्रफलं साधितं तद्दिनजं मध्यग्रहस्पष्टग्रहान्तरमपि ज्ञात्वेदमन्तरं परमफलं शीघ्रफलतुल्यं नासीत्। अतोऽन्यत् फलं कल्प्यम्। मध्यस्पष्टान्तरं फलयोगः। अस्मात् परमं शीघ्रफलं विशोध्य जातं द्वितीयं फलं तस्य मन्दफलसंज्ञा कृता। एवं प्रत्यहं विलोक्यमाने यस्मिन् दिने परमं मन्दफलं तस्य ग्रहस्य दोर्ज्या त्रिज्या-ऽभूत्। पुनर्दृष्टिप्रतीत्यर्थं विलोक्यमाने परमफलस्थाने दोर्ज्या ग्रहस्य त्रिज्यातुल्या नाभूत्। परमफलदिने दोर्ज्यया त्रिज्यातुल्यया भवितव्यम्। परमत्वात् सा न जाता। अतस्तस्मिन् ग्रहे तथोनं कार्यं यथा राशित्रयं भुजः स्यात्। यन्न्यूनं कार्यं तस्योच्चसंज्ञा। मन्दफलशीघ्रफलानयने मन्दोच्चशीघ्रोच्चसंज्ञे कृते। पुनर्विलोक्यमाने तावतोच्चेन परमत्वं न भवति। अतस्तस्योच्चस्य गतिर्ज्ञाता। तत्रोपायो यथा। अद्यतनश्वस्तनमन्दस्पष्टग्रहयोरन्तरालं मन्दस्पष्टा गतिः। स्पष्टयोरन्तरालं स्पष्टा गतिः एवमुभयोरुच्चयोरन्तरं कृत्वाऽनुपातः कृतः। स यथा। यद्येभिः परमफलान्तर-दिनैरेतावत्य उच्चान्तरकला लभ्यन्ते तदैकेन दिनेन केति ज्ञाते मन्दोच्चशीघ्रोच्च-गती। एवं मन्दोच्चगतिश्चन्द्रस्यैव। अन्येषां वर्षेणापि विकला नोत्पद्यते। अस्या गतेः कल्पे उच्चभगणाः पठितास्ते यथा। यद्येकदिनेनैतावती गतिस्तदा कल्पकुदिनैः किमिति एवं प्रसाध्योच्चभगणाः कल्पसौरवर्षैरेते ४८० लभ्यन्ते तदा कल्पगताब्दैः किमिति। अनुपाताद्ग्रन्थादौ रवेर्मन्दोच्चं २।१७।५६।४१ सप्तभिर्वर्षैं रवेर्मन्दोच्च-गतिरेका १ विकला लभ्यते। अत आचार्येण स्थिरं निबद्धम्। बहुकाले ये गण-

कतिलका उपस्थास्यन्ते ते अनेनैवानुपातेन रचयिष्यन्ति। एवं मन्दोच्चशीघ्रोच्चवासना सर्वेषां ग्रहाणां संक्षिप्तोक्ता ग्रन्थविस्तरभयात् ॥१॥

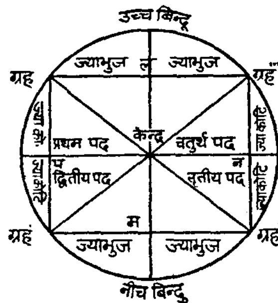
विश्वनाथः

अथ रविचन्द्रस्पष्टीकरणपञ्चांगानयनाधिकारो व्याख्यावते। तत्र तावद्ग्रह-स्पष्टीकरणाय भुजज्ञानं पदसंज्ञां सूर्यमन्दोच्चं चाह्। दोस्त्रिभोनमिति। त्रिभात् राशित्रयात् ऊने यत् केन्द्रं ग्रहादि वा स एव दोर्भुजः स्यात्। त्रिभाद्राशित्रयात् ऊर्ध्वमधिकं यत् नवपर्यन्तं तत् रसैः राशिषड्भिर्विशोध्यमन्तरितं कार्यमवशेषं भुजः स्यात्। अंकतो नवराशिभ्योऽधिकं चेत् तदा चक्रतो द्वाद्वदशराशिभ्यः शोध्यं भुजः स्यात्। भुजोनं भुजेन ऊनं त्रिभं राशित्रयं कोटिः स्यात्। त्रिभिस्त्रिभी राशिभिरेरिकै पदं स्यात्। तद्यथा। प्रथमं राशित्रयं विषमपदं स्यात्। द्वितीयं समं तृतीयं विषमं चतुर्थं समपदं स्यादित्यर्थः। सूर्यमन्दोच्चमष्टाद्रयोंशा अष्टसप्तति ७८ भागाः स्युः। राशिद्वयमष्टादश भागा इत्यर्थः ॥१॥

केदारदत्तः

उच्च और मध्य ग्रह का अन्तर रूप केन्द्र यदि ३ राशि=९० से कम हो तो वही भुज होता है। ग्रह केन्द्र यदि तीन राशि से अधिक ९० से १८० के भीतर हो तो ६ राशि में कम करने से और यदि ६ राशि=१८० से ९ राशि=२७० के भीतर हो तो उसी में ६ राशि कम करने से तथा यदि ९ राशि=२७०° से अधिक और १२ राशि=३६०° से कम हो तो १२ राशि में घटा देने से जो शेष हो उसी का सार्थक नाम भुज होता है।

भुज को तीन राशि में घटाने से शेष का नाम कोटि होता है। एक वृत्त में १२ राशियाँ या एक वृत्त के ३६० अंशों में ४ वृत्त पाद होते हैं। प्रत्येक वृत्त पाद में ९०° होते हैं। प्रत्येक वृत्त पाद का नाम पद है जो नीचे के क्षेत्र को देखने से स्पष्ट होगा।



प्रथम पद में ग्रह से उच्च तक ग्रह उच्च चाप की ज्या ग्र ल=भुज ज्या। ग्र प=प के=कोटि ज्या। द्वितीय पद में ग्र' म=भुज ज्या' ग्र' प=कोटि ज्या तृतीय पद में म ग्र''=भुज ज्या एवं ग्र'' न=कोटि ज्या एवं ४ पद में ग्र''' ल=भुज ज्या तथा ग्र''' न कोटि ज्या। भुज चाप को तीन में घटाने से शेष चाप का नाम कोटि चाप है जिसकी ज्या के नाम को ग्रह गणितज्ञ कोटि ज्या शब्द से व्यवहार करते हैं।

सूर्य का मन्दोच्च ७८ अर्थात् २ राशि १८ अंश के तुल्य आचार्य ने पढ़ा है। सूर्य मन्दोच्च का एक स्थिर रूप स्थान कदापि नहीं है क्योंकि उच्च बिन्दु भी चल बिन्दु है। जैसे ग्रहों की अपनी अपनी गतियाँ हैं वैसे ही उनके आकर्षक बिन्दु उच्च की भी गतियाँ होती हैं। उच्च बिन्दु अत्यल्प गतिक होने से सैकड़ों वर्षों में भी उच्च गति का ज्ञान वेध से नहीं हो सका है। कल्प कुदिन में सूर्य उच्च के भगण ४८० स्वीकार किये गये हैं।

कल्प सौर वर्षों में सूर्य मन्दोच्च के भगण ४८० होते हैं तो ग्रन्थारम्भकालीन सौर गताब्द में राश्यादिक सूर्य का मन्दोच्च २।१७।५६'।४१" के तुल्य उपलब्ध होने से आचार्य ने ५६।४१ स्वल्पान्तर से १ अंश के तुल्य मान कर २।१८=७८ अंश माना है। मन्दोच्च गति अति अल्प होने से कुछ समय या सैकड़ों वर्षों के लिए एक रूप मन्दोच्च का ७८ कहा गया है।

आधुनिक ग्रह गणितज्ञों ने करणाब्द अर्थात् १४४२ शक में रवि के मन्दोच्च का मान ३।११ ।१६'।३२" के तुल्य कहा है। (सर्वानन्द करण देखिए) शके १८२६ में सर्वानन्द ग्रह करण ग्रन्थ की रचना आधुनिक सूक्ष्म गणित के अनुसार गोविन्द गणक ने की है। शके १८४७ में उन्होंने ग्रहों का साधन किया है। और १८२६ शक में सूर्य के मन्दोच्च का मान ३।११।१६।३२ कहा है। अभीष्ट शक १८४७ में सूर्य मन्दोच्च साधन के लिए २१ × ६२ कला = १३०२ कला=२१'।४० विकला को शके १८२६ के सूर्य मन्दोच्च ३।११।१६'।३२" + २१'।४२=३।११।३८'।१४" सूर्य मन्दोच्च माना है। गणित की इस परम्परा से वर्तमान शक १९०१—सर्वानन्द ग्रह करण शक १८२६=७५ वर्ष गण × ६२= ७५ × ६२=४६५० कला=७७'।३०=१° ।१७'।३०" को १८२६ शकीय सूर्य मन्दोच्च में जोड़ने से ३१।१२।३४।२ वर्तमान में सूर्य मन्दोच्च होना चाहिए ? मल्लारि ने सात वर्ष में रवि मन्दोच्च गति का मान १ विकला कहा है। इस प्रकार १ वर्ष में सूर्य मन्दोच्च गति $\frac{१ \times १}{७} = \frac{६०}{७} = ८'''$ । ३४''''''के तुल्य, सूर्य की मन्दोच्च गति होनी चाहिए अत्यल्प मान के त्याग से गणित में अन्तर नहीं पड़ता ॥१॥

अथरविमन्दकेन्द्रं रविमन्दफलसाधनञ्चाह—

मन्दोच्चं ग्रहवर्जितं निगदितं केन्द्रं तदाख्यं बुधैः
केन्द्रे स्यात् स्वमृणं फलं क्रियातुलाद्येऽथो विधेयं रवेः
केन्द्रं तद्भुजभागखेचरलवोनघ्ना नखास्ते पृथक्
तद्गोंशोननगेषुभिः परिहृतास्तेंऽशादिकं स्यात् फलम् ॥२॥

मल्लारिः

एवं सूर्यमन्दोच्चमुक्त्वेदानीं केन्द्रं सूर्यमन्दफलसाधनं चैकवृत्तेनाह मन्दोच्च मिति। ग्रहेण वर्जितं हीनं यन्मन्दोच्चं तत् तदाख्यं मन्दमेवाख्या नाम यस्येति

मन्दकेन्द्रं बुधैरतीन्द्रियदृग्भिराचार्यैर्निगदितं प्रोक्तम्। क्रियतुलाद्ये केन्द्र मेषस्तुला प्रसिद्धा एतदाद्ये फलं मन्दफलं शीघ्रफलं वा वक्ष्यमाणं स्वमृणं स्यात्। एतदुक्तं भवति। केन्द्रे मेषादिषड्राशिस्थे फलं धनं तुलादिषड्राशिस्थे फलमृणम्। अत्र केन्द्रवासना। मन्दोच्चस्याल्पगतित्वात् ग्रहगतिबाहुल्याच्च मन्दोच्चरहितो ग्रहः कृतस्तस्य केन्द्रसंज्ञा। अत्र मुहुर्व्यावृत्तितः केन्द्रशब्दस्यार्थो न ज्ञायते केन्द्रशब्देन वृत्तस्य मध्यमुच्यते। अथ ग्रहस्फुटस्थानं ज्ञातुं बुद्धिमद्भिराद्यैरतीन्द्रियज्ञैर्यन्त्रादिवेधेन वृत्तत्रयं कल्पितं तेषां यानि मध्यचिह्नानि तानि केन्द्रसंज्ञानि वृत्तस्य मध्यं किल केन्द्रमुक्तमिति भास्कराचार्यवचनात्। प्रथमं कक्षावृत्तं तत्परिधौ द्वितीयं मन्दनीचोच्चवृत्तं तत्परिधौ तृतीयं शीघ्रनीचोच्चवृत्तं तत्परिधौ ग्रहः स भूमध्याद्राशिमण्डलगामिसूत्रस्थो यस्मिन् राश्यवयवे दृश्यते तत्रस्थः स्फुटो ज्ञेयः कक्षापरिधिस्थितमन्दनीचोच्चवृत्तपरिधौ शीघ्रनीचोच्चवृत्तमध्यपरिधिज्ञानाय मन्दकेन्द्रकल्पितम्। भूमध्याद् दूरे नीचोच्चवृत्तस्य यः प्रदेशस्तस्योच्चसंज्ञा तदुच्चं यावद्ग्रहाद्विशोध्यते तावन्मन्दनीचोच्चवृत्तयोरन्तरज्ञानं भवति। तस्मादपि शीघ्रनीचोच्चवृत्तपरिधाववस्थितस्फुटज्ञानाय शीघ्रकेन्द्रं कल्पितं तस्मिन् केन्द्रचिह्ने ग्रहस्तिष्ठतीति भावः। यद्यप्यत्र ग्रहभगणापेक्षया मन्दोच्चभगणा अल्पा इति मन्दोच्चेन हीनो ग्रहो मन्दकेन्द्रमिति वक्तुमुचितं तथापि ग्रहवर्जितमुच्चं केन्द्रमिति यदुक्तं तदपि भगणानां प्रयोजनाभावाद्दोर्ज्यादिसाम्येन फलेऽपि वैलक्षण्याभावादेकोक्त्या मन्दचलफलयोर्धनर्णताकथनलाघवाच्च युक्तमेवेति ध्येयम्। एवं केन्द्रवासना॥

अथ केन्द्रकथनानन्तरं रविमन्दफलं साधयति। तद्भुजभागखेचरलवोनघ्ना नखा इति। तस्य रविमन्दकेन्द्रस्य ये भुजभागास्तेषां यः खेचरलवो नवमांशस्तेन ऊना ये नखा विंशति—२० मितास्ते तेनैव नवमांशेन गुण्यास्ततस्ते पृथक् अन्यत्रैकान्ते स्थाप्यास्तेषां गोंऽशेन नवमांशेनोना ये नगेषवः सप्तपञ्चाशत् ५७ तैर्लब्धांशैः परिह्वता भक्तास्ते पृथक्स्था अंशादिकं भागादिकं रवेर्मन्दफलं स्यात्॥

अत्रोपपत्तिः। समायां भूमावभीष्टत्रिज्यामितेन कर्कटेन वृत्तमालिख्य दिगङ्कितं कुर्यात् पूर्वात् प्रभृति मेषादीन् राशीन् परिकल्प्य राशौ च त्रिंशद्भागानङ्कयेत् ततो ग्रहमन्दोच्चं यत्र राशौ भागे लिप्तायां वर्त्तते तत्र चिह्नं कृत्वा ततो भूमध्यं यावद्रेखां कुर्यात् तत्र मध्यात् ग्रहपरममन्दफलज्यापरिमितं सूत्रं प्रतीपं निःसार्य चिह्नं कार्यं ततश्चिह्नात् पूर्वकर्कटे यद्वृत्तमुत्पद्यते तन्मन्दप्रतिमण्डलं तस्य यत्रात्युच्चता तत्रोच्चव्यपदेशः। एतदपि पूर्ववदत्युच्चतायां राश्यादिभिरंकयेत्। एवं स्थिते कक्षायां ग्रहो यत्र वर्त्तते मध्यमस्तत्र चिह्नं कारयेत् ततो हि परममन्दफलज्याव्यासार्धेन यद्वृत्तमुत्पद्यते तन्मन्दनीचोच्चवृत्तं तद्भागांकित च। ततः प्रतिमण्डलोच्चप्रदेशात् तद्वृत्तमनुलोमं ग्रहप्रदेशमानीय ग्रहचिह्नं तस्य मध्यं कारयेत्। एवं स्थितेः परिधेः प्रतिमण्डलपरिधेश्च सम्पातो यस्तत्र पारमार्थिको ग्रहः। ननु सम्पातत्रयं तिष्ठति तेषां मध्ये कतमनेनैव भवितव्यम्। अत्रोच्यते। उच्चरेखायाः कक्षामण्डलपरिधेश्च यः

सम्पातस्तस्माद्यावति दूरे मध्यमो ग्रहः स्थितस्तावत्येव दूरे प्रतिमण्डलगतोच्चतो भुजज्या गहीता कक्षामण्डलप्रतिमण्डलयोस्तुल्या भवति। सा भुजज्या स्वमन्दपरिधिवृत्ते तच्चापं मन्दफलम्। रवेर्मन्दपरिध्यंशाः १३।४३।४२। अस्मादनुपातः। यदि भांशपरिधेः ३६० स्त्रिज्यामितं १२० व्यासार्धं लभ्यते तदा एषां परिधिभागानां किमिति तेषां त्रिज्या १२० गुणो भगणांशाः ३६० भागहारः। अत्र गुणहारौ गुणेनापवर्त्य हरस्थाने त्रयो लब्धास्तस्मात् त्रिभक्ताः परिधयः परिधीनां व्यासार्धानि स्युस्ताः परमफलज्या एवं रवेः परमफलज्या ४।३४।३४ अस्या धनुः सूर्यस्य परमं मन्दफलम् २।१०।४५। एवं चन्द्रादीनामपि परममन्दफलानि साध्यानि। इयं फलोपपत्तिः पूर्वोक्तफलयुक्तिमूला। अथेष्टफलं साध्यते। तत्र त्रिज्यातुल्यया दोर्ज्यया यदेदं परममन्दफलं तदेष्टकेन्द्रोर्ज्यया किमिति एवमिष्टफलानि साध्यानि। तत्राचार्येणास्मिन् ग्रन्थे धनुर्ज्ये न साधिते जीवां विना फलादिसिद्धिर्न स्यात् भागेभ्यस्त्रैराशिकासम्भवात् वृतक्षेत्रे यत् परिध्याश्रितं तत् त्रैराशिकेन न सिध्यति वर्गात्मकत्वात्। अत एवाह भास्करः। 'वर्गं वर्गपदं घनं घनपदं सन्त्यज्य यद्गण्यते' तत् त्रैराशिक मिति। अतो जीवां विना फलसिद्धिर्न। अत्र धनुर्ज्ये न क्रियेते इत्याचार्येण ग्रन्थादौ प्रतिज्ञा कृताऽस्ति फलसिद्धिरपि कृताऽस्ति तत्र का युक्तिरिति केचिदल्पमतिन्नोऽत्र मुह्यन्ति। अत्रोच्यते। तत्राचार्येण जीवाप्रतिफलं खण्डैर्विना फलमध्ये साधितमस्ति॥

कोटय्ंशवर्गेण तदङ्घ्रिणा च द्विधानयुक्ताः खखभूगजाश्च ८१००।
आद्यो गुणस्तेन गुणाः खसूर्या–१२० स्त्वन्यो हरस्तेन हृता क्रमज्या॥

अथ वा भुजभागानां नवांशेन ऊना हता द्वाविंशतिः २२ खार्क–१२० मिते व्यासार्धे क्रमज्या भवति। अत्राचार्येण रविमन्दफलानयने त्रिज्या शत–१०० मिता घृता तत इष्टजीवा साधिता। सा यथा। परमभुजांशा नवतिः ९०। एषां नवांशेन १० विंशति-२० रूना ततस्तेनैव हता जाता त्रिज्या १००। एवमिष्टभागेभ्योऽपि इष्टा जीवा स्यात्। अत एवोक्तं तद्भुजभागखेचरलवोनघ्ना नखा इति। इयं त्रिध्या केन भक्ता परमं मन्दफलं स्यात्। अत इयमेव परमफलक्तो जातो हारः सावयवः ४५।५३।२०। अत्र लाघवार्य नगेषवो गृहीताः अत्र हारान्तर-११।६।४० मिदं नवभिः सवर्णितं जातमूर्ध्वस्थाने निःशषं शतं १०० सैव त्रिज्या। एवं दोर्ध्यानवांशहीननगेषुभिर्भक्ता लब्धं फलं स्यादत उक्तं ते पृथगित्यादि। अथ धनर्णोपपत्तिमाह। मन्दप्रतिमण्डलपरिधेर्मन्दोच्चपरिधेश्च सम्पाताद्यत् सूत्रं भूमध्यं नीयते तस्य कक्षामण्डलपरिधेश्च मध्यमग्रहादपरेण सम्पातस्तत्र पारमार्थिको ग्रहः स च मध्यादूनोऽपरेण स्थितत्वात् मध्यग्रहस्य कक्षायाः सूत्रयोगस्य च यदन्तरं तत्फलमतस्तेनोनो मध्यमः स्फुटो भवति। प्रथमपदे भुजज्या वर्द्धते फलमपि वर्द्धते द्वितीयपदे प्रथमानीतं फलमपचीयते तच्चाल्पं भवति पदादर्वाक् पदान्ते च तुल्यं तुल्यत्वात् ऋणधनयोर्नाशे सति फलाभावस्तृतीयपदे भुक्तस्य भुजज्या भवति तत्र मध्यग्रहप्रदेशे प्रतिमण्डलोच्चप्रदेशान्नीचोच्चवृत्तं यावदानीयते। तस्य कक्षापरिधेश्च यः सम्पातः स मध्यग्रहात्

पूर्वेणैव भवति तस्यमध्यग्रहस्य चान्तरं फलं तेन मध्यमोऽधिकः सन् स्फुटो भवति स्फुटग्रहात् मध्यस्योनत्वात् तृतीयपदे भुजज्या वर्द्धते चतुर्थपदे फलमपचीयते पदान्ते फलाभावो ऽतो मेषादिकेन्द्रे ऋणं तुलादिकेन्द्रे धनमित्युपपन्नम्। परमिदं मृदूच्चेन हीनो ग्रहो मन्दकेन्द्रमिति पक्षे च कल्प्यते। इह तु केन्द्रस्यैव व्यत्यस्तत्वाद्धनर्णत्वयोरपि व्यत्यासेन भाव्यमत उक्तं केन्द्रे स्यात् स्वमृणं फलं क्रियतुलाद्य इति ॥२॥

विश्वनाथः

मन्दोच्चं ग्रहेण रहितं कार्यं तदाख्यं बुधैः केन्द्रं निगदितम्। तद्यथा। यदा मन्दोच्चाद्ग्रहः शोध्यते तदा मन्दकेन्द्रं भवति यदा शीघ्रोच्चाद्ग्रहः शोध्यते तदा शीघ्रकेन्द्रं भवति क्रियाद्ये मेषादिषट्के केन्द्रे स्वं धनं फलं स्यात् तुलादिषट्के ऋणमित्यर्थः। अथो रवेर्मन्दकेन्द्रमुक्तवद्विधेयम्। तद्यथा। रवेर्मन्दोच्चं २।१८ रविणा १।४।१३।४२ रहितं जातं रवेर्मन्दकेन्द्रम् १।१३।४६।१८ अस्य भुजः १।१३।४८।१८ अस्य भागाः कार्याः। तद्यथा। राशयस्त्रिंशद्–३० गुणा अधःस्थभागयुक्ता एवं भागाः स्युरिति सर्वत्र ज्ञातव्यम्। तथाकृते जाता भागाः ४३।४६।१८ अस्य नवमांशः ४।५१।४८ अनेन नखा २० ऊनाः १५।८।१२ तदैते खेचरलवेनैव गुणिताः ७३।३६।५२ द्विधा ७३।३६।५२ अस्य नवमांशः ८।१०।४३ अनेन रहिता नगेषवः ५७ जाताः ४८।४९।१५ अनेन पृथक्स्था भक्ताः। सवर्णितौ भाज्य–२६५०१२ भाजकौ १७५७५५ भजनाल्लब्धमंशाद्यं फलम् १।३०।२८। इदं मेषादिकेन्द्रत्वाज्जातं धनं रवेर्मन्दफलम्। अनेन संस्कृतो रविः १।५।४४।१० ॥२॥

केदारदत्तः

ग्रहों का केन्द्र एवं मन्दफल साधन। जिस किसी ग्रह के मन्दोच्च में उस ग्रह का मध्यम कम करने से उस ग्रह का मन्दकेन्द्र होता है। मेषादिक ६ राशि के तुल्य केन्द्र से मन्दफल धन एवं तुलादिक ६ राशियों में मन्दफल ऋण समझना चाहिए। पूर्व श्लोक से रविकेन्द्र का भुज बनाना चाहिए। भुज के अंशों अर्थात् भुजांश में ९ का भाग देकर लब्ध फल अर्थात् नवमांश को २० में घटाकर जो शेष बचै उसे पूर्व नवमांश से गुणा कर गुणनफल दो जगहों में रखते हुए, प्रथम स्थानीय गुणनफल के नवमांश को ५७ में घटाते हुए जो प्राप्त हो इसे भाजक समझ कर इस भाजक का पूर्व गुणन फल में भाग देने से लब्ध अंशादिक फल, रवि ग्रह का मन्दफल होता है। मेषतुलादि केन्द्र क्रम से, मध्यम रवि में मन्दफल को धन या ऋण जैसा हो करने से वह मन्दस्पष्ट रवि होता।

आचार्य ने मन्दोच्च २।१८° माना है इससे तथा अहर्गण ३३२८ तथा चक्र ४१ से मध्यम रवि १०।१५।९।४४ को घटाने से रविमन्द केन्द्र मेषादिक होने से ४।२।५०।१६ होता है। अतः मन्दफल धन होगा। केन्द्र ३ राशि से अधिक होने से ६ राशि में घटाने से भुज= १।२७।९।४४ हुआ। अंशादिक ५७।९।४४ होता है। ५७।९।४४ ÷ ९=६।२१।५ इस नवमांश को २० में घटाने से १३।३८।५५ होता है। (२० – नवांश भुजांश(÷ ९) दोनों का गुणन-

फल १३।३८।५५ × ६।२१।५=८६।४१।१७ कैसे होगा ? गोमूत्रिका गणित क्रिया जो नीचे दी है देखिए—

१३।३८।५५
६।२१। ५

७८	२२८	३३०	११५५	
९	२७३	७९८	१९०	२७५
८७	६९	६५	४	३५
		ल० २२		
	५७०	४१८५	१३४९	
	÷ ६०	÷ ६०	÷ ६०	
	शेष=३०	शेष=४५	शेष=२९	

= ८७।३०।४५।२९ होता है ।

इस गुणनफल ८७।३०।४५ का नवमांश=९।४३।२५ स्वल्पान्तर से होता है। इसे ५७ में घटानेसे ४७।१६।३५ होता है। अतः ८७।३०।४५ ÷ ४७।१६।३५ दोनों को सजातीय कर भाग देने से—३१५०४५ ÷ १७०१६० भाग देने से—

१७०१६०) ३१५०४५ (१ अंश
१७०१६०
———
१४४८८५
× ६०
———
८६९३१००(५१ कला
८५०८०००
———
१८५१००
१७०१६०
———
१४९४०
६०
———
८९६४००

इस प्रकार सूर्य का धन मन्द फल = 1°।५१'।५''

मध्यम सूर्य १०।१५।९।४४
\+ १।५१।५
= मन्दस्पष्ट सूर्य १०।१७।०।४९

उपपत्तिः—त्रिज्या = ग्रह कक्षा का व्यासार्ध का मान=१२०। रवि का परम मन्द फल $\frac{१२५}{५७}$ सूर्यकेन्द्र=के। नवीं शताब्दी की समाप्ति १० वीं इसवी के प्रारम्भ श्रीपति भट्ट नाम के बड़े उदार और बड़े खगोल कुशल गणितज्ञ हुए हैं। उन्होंने गौरवसाध्य गणित क्रिया के बिना

भुज कोटि जीवा साधन का एक चमत्कारिक सिद्धान्त उत्पन्न किया है—

वह है—दोः कोटिभागरहिताऽभिहताः खनागचन्दास्तदीयचरणोनशरार्कदिग्भिः ।
ते व्यासखण्डगुणिता विहृताः फलन्तु ज्याभिर्विनाऽपि भवतो भुजकोटिजीवे ।।

उक्त सूत्र से—

$$\text{के० ज्या}\frac{(\text{१८०} - \text{के०})\ \text{के०} \times \text{१२०}}{\text{१०१२५} - \frac{(\text{१८०} - \text{के०})\text{के०}}{\text{४}}} = \frac{\text{१८०} - \text{के०}\ \text{के०} \times \text{४८०}}{\text{४०५००} - (\text{१८०} - \text{के०})\text{के०}}$$

$$= \frac{\left(\frac{\text{१८०} - \text{के०}}{\text{९}}\right)\frac{\text{के०}}{\text{९}} \times \text{४८०}}{\frac{\text{४०५००}}{\text{९} \times \text{९}} - \frac{(\text{१८०} - \text{के०})\text{के}}{\text{९} \times \text{९}}} = \frac{\text{२०} - \frac{\text{के०}}{\text{९}} \times \frac{\text{के०}}{\text{९}}\text{४८०}}{\text{५००} - \left(\text{२०} - \frac{\text{के०}}{\text{९}}\right)\frac{\text{के०}}{\text{९}} \times \text{४८०}}$$

अनुपात से १२० में रविपरमन्दफल $= \left(\frac{\text{१२५}}{\text{५७}}\right)$ तो इष्ट केन्द्र ज्या में

$\frac{\frac{\text{१२५}}{\text{५७}} \times \text{के० ज्या}}{\text{१२०}}$, केन्द्र ज्या की जगह उक्त समीकरण में उत्थापन दिया जाय तो

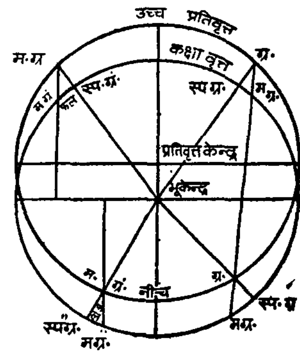
$$\frac{\frac{\text{१२५}}{\text{५७}} \times \left(\text{२०} - \frac{\text{के०}}{\text{९}}\right)\frac{\text{के०}}{\text{९}} \times \text{४८०}}{\text{१२०} \times \text{५००} - \left(\text{२०} - \frac{\text{के०}}{\text{९}}\right)\frac{\text{के०}}{\text{९}}}$$

$$= \frac{\frac{\text{१२५}}{\text{५७}} \times \left(\text{२०} - \frac{\text{के०}}{\text{९}}\right)\frac{\text{के०}}{\text{९}} \times \text{४}}{\text{५००} - \left(\text{२०} - \frac{\text{के०}}{\text{९}}\right)\frac{\text{के०}}{\text{९}}} = \frac{\frac{\text{५००}}{\text{५७}} \times \left(\text{२०} - \frac{\text{के०}}{\text{९}}\right)\frac{\text{के०}}{\text{९}}}{\text{५००} - \left(\text{२०} - \frac{\text{के०}}{\text{९}}\right)\frac{\text{के०}}{\text{९}}}$$

$$= \frac{\left(\text{२०} - \frac{\text{के०}}{\text{९}}\right)\frac{\text{के०}}{\text{९}}}{\frac{\text{५००}}{\frac{\text{५००}}{\text{५७}}} - \frac{\left(\text{२०} - \frac{\text{के०}}{\text{९}}\right)\frac{\text{के०}}{\text{९}}}{\frac{\text{५००}}{\text{५७}}}} = \frac{\left(\text{२०} - \frac{\text{के०}}{\text{९}}\right)\frac{\text{के०}}{\text{९}}}{\text{५७} - \frac{\left(\text{२०} - \frac{\text{के०}}{\text{९}}\right)\frac{\text{के०}}{\text{९}}}{\text{९}}}$$

आचार्य का प्रकार उपपन्न होता है । मन्दफल के धन और ऋण की युक्ति , नीचे के क्षेत्र देखने से स्पष्टतया समझ में आवेगा—

कक्षावृत्त में कोटि संसक्त मध्यम ग्रह और कर्ण संसक्त स्फुट ग्रह होता है। उच्च और मध्यम ग्रह का अन्दर केन्द्र होता है। मेषादि केन्द्र में कक्षावृत्त में मध्यम ग्रह से स्पष्ट ग्रह आगे होने से मध्यम ग्रह + मन्दफल एवं तुलादि केन्द्र में मध्यम ग्रह के पीछे स्पष्ट ग्रह प्रत्यक्ष दिखाई देने से मन्दफल ऋण होता है इति दिक्। ध्यान देने की बात है कि राशि वृत्त में ३०° की मेष राशि की सीमान्त से ३०° पूर्व की सीमान्त तक वृष एवं मिथुनादि मीनान्त राशियाँ पूर्व पूर्व में हैं।



मेषादि केन्द्र में मग्र से स्पग्र पूर्व की तरफ से फल धन तुलादि केन्द्र में मग्र से स्पग्र पीछे होने से फल ऋण प्रत्यक्ष है। क्षेत्र देखने से स्पष्ट है ॥२॥

विधोः केन्द्रदोर्भागषष्ठोननिघ्नाः
खरामाः पृथक् तन्नखांशोनितैश्च।
रसाक्षैर्हृतास्ते लवाद्यं फलं स्या-
द्रवीन्दू स्फुटौ संस्कृतौ स्तश्च ताभ्याम् ॥३॥

मल्लारिः

एवं रविमन्दफलं प्रसाध्येदानीमेकवृत्तेन चन्द्रफलं साधयति विधोरिति। विधोश्चन्द्रस्य यत्केन्द्रं तस्य दोष्णो भुजस्य भागास्तेषां षष्ठेन षडंशेन ऊना रहिता निघ्ना गुणिताश्च खरामास्त्रिंशत् ३० ते पृथक् भिन्नस्थाने स्थाप्यास्तेषां पृथक्स्थानां यो नखांशो विंशत्यंशस्तेनोनितो रसाक्षैः षट्पञ्चाशद्भि–५६ स्तैः पृथक्स्था हृता भक्ताः सन्तो लवाद्यं भागाद्यं त्रिष्ठं चन्द्रमन्दफलं स्यात्। ताभ्यां स्वस्वमन्दफलाभ्यां संस्कृतौ सूर्यचन्द्रौ धनं चेत् तदा युक्तावृणं चेत्तदा हीनौ तौ स्फुटौ स्पष्टौ स्तः॥

अत्रोपपत्तिः। परमं चन्द्रफलं भागाद्यम् ५।१।४० अत्र चन्द्रमन्दफलानयने त्रिज्या पञ्चविंशत्यधिकशतद्वयमिता धृता यावद्यावदधिका तावत्तावत् फलस्य सूक्ष्मत्वमतः सूक्ष्मत्वार्थमेतावती त्रिज्या २२५। परमभागा नवतिः ९०। अत्रैषां भुजभागानां षडंशेन १५ ऊनास्त्रिंशत् १५ ततस्तेनैव हृता परमदोर्ज्या भवति २२५। एवमिष्टभागेभ्योऽपीष्टजीवा भवन्ति। अत उक्तं केन्द्रदोर्भागषष्ठोननिघ्नाः खरामा इति। सा त्रिज्या केन भक्ता जातो हरः सावयवः ४४।४५।० असौ सावयवोऽतो लाघवार्थं रसाक्षा गृहीताः। अनयोरन्तरं ११।१५।० असौ सावयवोऽतो लाघवार्थ रसाक्षा गृहीताः। अनयोरन्तरं ११।१५।० एतद्विंशत्या २० सवर्णितं त्रिज्या भवति २२५। अत एवोक्तं तन्नखांशोनितै रसाक्षैस्ते हृता इति स्वस्वमन्दफल संस्कृतावेव सूर्येन्द स्फुटौ भवतस्तयोः शीघ्रफलाभावात्।

विश्वनाथः

—(आदितः) अथैकोनविंशतित (श्लोक) समारभ्य विंशतितमपर्यन्तमुदाहरणमत्र न लिखितम्। यतस्त्रयोविंशत्यग्रे लिखितमस्ति। आचार्येण तथैव कृतत्वात् गणितस्य तथैवोपस्थितेश्च ॥३॥

केदारदत्तः

चन्द्रमा के केन्द्र के भुजांश के षष्ठांश को ३० में घटाने से जो शेष उससे उक्त षष्ठांश को गुणा कर दो जगह स्थापित करने से, प्रथम स्थानीय गुणनफल में २० का का भाग देकर उपलब्ध फल को ५६ में घटा देने से जो शेष बचे उसका द्वियीय स्थानीय गुणनफल में भाग देने से लब्ध अंश कलादिक मान चन्द्रमा का मन्द फल होता है। मध्यम रवि चन्द्रमा में क्रमशः अपने मन्दफलों के धनर्ण संस्कार से रवि-चन्द्रमा स्पष्ट होते हैं। उदाहरण इसी अधिकार के ७वें श्लोक में देखिए—

उपपत्तिः—चन्द्रमा का परम मन्दफल=५°, केन्द्र ज्या=के ज्या सूर्यमन्दफल साधन की तरह इष्टचन्द्र मन्दफल=$\frac{५ \times इ० \text{ के० ज्या}}{१२०}$ आचार्य श्रीपति के प्रकार से—

$$\text{के० ज्या}=\frac{(१८० - \text{के०})\text{के०} \times १२०}{१०१२५ - \frac{(१८० - \text{के०})\text{के०}}{४}}$$

$$=\frac{(१८० - \text{के०})\text{ के० } ४८०}{४०५०० - (१८० - \text{के०})\text{के०}} = \frac{\frac{१८० - \text{के०}}{६} \times \frac{\text{के०}}{६} \times ४८०}{\frac{४०५००}{६ \times ६} - \frac{१८० - \text{के०}}{६} \times \frac{\text{के०}}{६}}$$

$$=\frac{\left(३० - \frac{\text{के०}}{६}\right)\frac{\text{के०}}{६} \times ४८०}{११२५ - \left(३० - \frac{\text{के०}}{६}\right)\frac{\text{के०}}{६}} = \text{अ}$$

उक्त केन्द्र ज्या को समीकरण उत्थापित करने से

$$\text{चन्द्रफल} = \frac{५ \times \left(३० \frac{\text{के०}}{६}\right)\frac{\text{के०}}{६} \times ४८०}{१२० \times \left[११२५ - \left(३० - \frac{\text{के०}}{६}\right)\frac{\text{के०}}{६}\right]} = \frac{\frac{२४००}{१२०}\left(३० - \frac{\text{के०}}{६}\right)\frac{\text{के०}}{६}}{११२५ - \left(३० - \frac{\text{के०}}{६}\right)\frac{\text{के०}}{६}}$$

$$\frac{\left(३० - \frac{\text{के०}}{६}\right)\frac{\text{के०}}{६} \times २०}{११२५ - \left(३० - \frac{\text{के०}}{६}\right)\frac{\text{के०}}{६}} = \frac{\left(३० - \frac{\text{के०}}{६}\right)\frac{\text{के०}}{६}}{\frac{११२५}{२०} - \frac{\left(३० - \frac{\text{के०}}{६}\right)\frac{\text{के०}}{६}}{२०}}$$

$$=\frac{\left(३० - \frac{के०}{६}\right)\frac{के०}{६}}{\left(३० - \frac{के०}{६}\right)\frac{के०}{के०}}$$

$$५६ - \frac{\qquad}{२०}$$ स्वल्पान्तर से उपपन्न होता है ।।३।।

केन्द्रस्य कोटिलवखाश्विलवोननिघ्ना
रुद्रा रवेस्त्रिकुहृताः शशिनो द्विनिघ्नाः ।
स्वाङ्गांशकेन सहिताश्च गतौ धनर्णं
केन्द्रे कुलीरमृगषट्गते स्फुटा सा ।।४।।

मल्लारिः

एवं सूर्यचन्द्रयोः स्फुटत्वमुक्त्वेदानीं तयोर्गतिस्पष्टीकरणमेकवृत्तेनाह केन्द्रस्येति । केन्द्रस्य रवेर्वा चन्द्रस्य यन्मन्दकेन्द्रं तस्य कोटिलवा भुजोनं त्रिभं कोटिस्तस्या लवा भागास्तेषां यः खाश्विलवो विंशत्यंशस्तेन ऊना हीना निघ्ना गुणिताश्च रुद्रा एकादश ११ कार्याः । ततस्ते चेद्रवेस्तदा त्रिकुभिस्त्रयोदश १३ भिर्हृता भक्ताः सन्तो रवेर्गतिफलं कलाद्यं स्यात् । शशिनश्चन्द्रस्य चेत् तर्हि द्विनिघ्ना द्वाभ्यां निहन्यते गुण्यते तथाभूताः सन्तः स्वाङ्गांशकेन सहिता युक्तास्तच्चन्द्रगतेः फलं तत्फलद्वयं स्वस्वमध्यमगतौ कुलीरमृगषट्कगते केन्द्रे । कुलीरः कर्कः । मृगो मकरः । तता षट्के धनर्णं कार्यं कर्कादिषड्राशिस्थे केन्द्रे धनं मकरादिषड्राशिस्थे केन्द्रे ऋणं कार्यं सा गतिः स्फुटा भवतीत्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः । अद्यतनश्वस्तनस्पष्टग्रहयोरन्तरं स्पष्टगतिस्तथाऽद्यतनश्वस्तनयोर्ग्रहफलयोरन्तरं गतिफलं तज्ज्ञानार्थमुपायः । प्रथमपदादौ भुजज्या शून्यं तत्र ग्रहफलमपि शून्यं तत्र कोटिज्या परमा तत्र गतिफलमति परमं यथायथा ग्रहफलस्य वृद्धिस्तथातथा गतिफलस्यापचयो दृश्यते । एवं कोटिज्यायाः परमत्वे गतिफलस्य परमत्वं कोटिज्याऽभावे गतिफलाभावः । अतः केन्द्रकोटिज्यातो गतिफलसाधनं कर्त्तुं युज्यते । तद्यता । अत्रोभयत्रापि त्रिज्या सपादैकोनत्रिंशन्मिता २९।१५ धृता । तत्साधनं यथा । कोटिभागानां परिमाणं ९० नवांशेन ४।३० ऊना रुद्रास्ततो हृता जाता त्रिज्या २९।१५ एवमिष्टांशेभ्य इष्टा स्यादेव । अत एवोक्तं कोटिलवखाश्विलवोननिघ्ना इति । ततो दोर्ज्यातः फलसाधनं रवे परमं गतिफलं २ । १५ त्रिज्या २९।१५ केन भक्ता सतीदं स्यादतस्तेनैव त्रिज्या भक्ता जातो हरस्त्रयोदश १३ । अतो रवेस्त्रिकुहृता इति । एवं चन्द्रस्य परमं गतिफलम् । ६८।१५ । अत्र दोर्ज्या केन गुणिता सतीदं फलं स्यादतस्त्रिज्याभक्तं फलं जातं गुणस्थाने २।२० अत्र द्वावेव गृहीतावत उक्तं शशिनो द्विनिघ्ना इति । एवं द्विगुणत्रिज्यायां जातं ५८।३० अस्य

परमगतिफलस्य चान्तरमिदं ९। ४५ षड्भिः सवर्णितं जातं तत्तुल्यमेव। अतः स्वाङ्गांशकेन सहिता इति। तच्चन्द्रगतेः फलम्। तत्फलद्वयं स्वस्वमध्यगतौ देयमेवं स्फुटा गतिः। अथ धनर्णोपपत्तिः। तत्र तावदुच्चोनो ग्रहः केन्द्रमित्यस्मिन् पक्षे मकरादिकेन्द्रे ग्रहस्य धनफलस्यापचयान्मृगादिकेन्द्रे गतिफलमृणं वर्धतोमेषादिकेन्द्रे ग्रहस्य ऋणफलवृद्धौ सत्यां गतिफलमृणमपचीयते। अतो मृगादिके षड्भे केन्द्रे गतिफलमृणम्। कर्क्यादिकेन्द्रे गहस्य ऋणफलह्रासे गतेधर्नफलम् वर्धते। तुलादित्रये केन्द्रे गहधनफलवृद्धौ गतेः फलमपचीयते। अतः कर्क्यादिषड्भे धनमिति युक्तम्। गहोनमुच्चं केन्द्रमित्यस्मिन्नपि पक्षे मकरादित्रिके ऋणफलवृद्धिर्मेषादित्रिके धनफलह्रासः। अतो मकरादिषड्भे गतिफलमृणमेव। एवं कर्क्यादिषट्के धनमिति। अतो युक्तियुक्तं धनर्णं केन्द्रे कुलीरमृगषट्कगत इति ॥४॥

केदारदत्तः

रवि चन्द्रमा के केन्द्रों की पृथक्-पृथक् कोटियों के अंशों में २० का भाग देकर प्राप्त भागों को ११ में घटाकर शेष और बीसवें भाग के गुणनफल में रवि का हो तो तो १३ का भाग देने से रवि का गतिफल होता है। और चन्द्रगति फल साधन करना हो तो चन्द्र सम्बन्धी गणित गुणनफल को २ से गुणा कर उसमें (गुण्न फल में) गुणन फल का छठा भाग मिलाने से चन्द्रमा का गति फल होता है।

कर्कादि केन्द में गति फल को मध्यमा गतियों में जोड़ने एवं मकरादि केन्द्र में गति फल को मध्यमा गति में घटाने से सूर्य और चन्द्रमा दोनों की स्पष्टा गतियाँ सिद्ध हो जाती है ॥४॥

रवि की स्पष्टागत्ति साधन का गणित उदाहरण—

पूर्वोक्त रवि केन्द्र = ४।२।५०।१६. भुज = १।२७।९।४४ 'भुजोनंत्रिभम् कोटिः' भुजको तीन में घटाने से कोटि होती है ३—१।२७।९।४४ = १।२।५०।१६ कोटि। ३२।५०। १६ = कोटि के अंश। अतः* ३२।५०।१६ ÷ २० = १।३८।३१ (स्वल्पान्तर से) ११— (१°।३८'।३१") = ९°।२१'।२९" अतः ९।२१।२९ × १।३८।३१ गोमूत्रिका गुणन पद्धति से—

९।२१।२९
१।३८।३१

९	२१	२९		
६	३४२	७९८	११०२	८९९ ÷ ६०
		२७९	६५१	शेष = ५९
	ल० १८	ल० २९	ल० १४	
१५	३८१	११३५	१७६७	
	÷ ६०	÷ ६०	÷ ६०	
	शे० २१	शे० ५५	शे० २७	

गुणनफल = १५।२१।५५ ÷ १३ = १'१०''५५'' केन्द्र कर्कादि है अतः इस गति फल १'।१०''।५५''' को रवि का मध्यमा गति ५९।८ में धन करने से रवि की स्पष्टा गति का मान ६०'।१९''।५'' सिद्ध होता है।

उपपत्ति-वृहज्या से त्रिज्या=३४३८ लघुज्या साधन में त्रिज्या का मान=१२०(सिद्धान्त ग्रन्थों से) दोनों का सम्बन्ध $\frac{३४३८}{१२०} = \frac{३८२ \times ९}{१२०} = \frac{१३ \times ९}{२ \times ४}$ (स्वल्पान्तर से) यदि परम केन्द्र कोट्यांश = के० को० = ९० इससे त्रिज्या = $\frac{१३ \times ९}{२ \times २} = \left(\frac{२२ - ९}{२}\right) \times \frac{९}{२} =$ $\left(११ - \frac{९}{२}\right)\frac{९}{२} = \left(११ - \frac{९०}{२०}\right)\frac{९०}{२०} = \left(११ - \frac{के०को०}{२०}\right)\frac{के०को०}{२०}$, के० को० का मान ९० मान कर इष्ट कोटि पर से भी यही प्रकार होता है।

अनुपात से यदि त्रिज्या में रवि परमगति फल = २।१५ = $\frac{९}{४}$ तो इष्ट केन्द्र कोटिज्या

में रवि गति फल $= \frac{\left(११ - \frac{के०को०}{२०}\right)\frac{के०को०}{२०}}{१३ \times \frac{९}{४}} \times \frac{९}{४} = \frac{\left(११ - \frac{के०को०}{२०}\right)२०}{१४}$

इसी प्रकार चन्द्रमा का परम गतिफल = ६८।१५ = $\frac{२७३}{४}$ से अनुपात द्वारा चन्द्र गतिफल=

$$\frac{\left(११ - \frac{के०को०}{२०}\right)\frac{के०को०}{२०} \times \frac{१७३}{४}}{१३ \times \frac{९}{४}} = \left[\left(११ - \frac{के०को०}{२०}\right)\frac{के०को०}{२०}\right]\left(२ + \frac{२}{६}\right)$$

उपपन्न हुआ।

मेषादि केन्द्र में धनफल अपचीय (उत्तरोत्तर कम) और मकरादि केन्द्र में ऋण फल का उपचय (वर्धमान) तथा कर्कादि केन्द्र में धनफल का उपचय एवं तुलादि केन्द्र में ऋण फल का अपचय (उत्तरोत्तर ह्रास या कम) से तथा आज और अग्रिम दिनों के स्पष्ट ग्रहों का अन्तर ही एक दिनज गति फल होने से कर्कादि केन्द्र में गतिफल धन एवं मकरादि केन्द्र में गतिफल ऋण होना ही चाहिए। उपपन्न होता है ।।४।।

मेषादिगे सायनभागसूर्ये
दिनार्धभा या पलभा भवेत् सा।
त्रिष्ठा हता स्युर्दशभिर्भुजङ्गै-
र्दिग्भिश्चरार्धानि गुणोद्धृताऽन्त्या ।।५।।

मल्लारिः

एवं रविचन्द्रगतिस्पष्टीकरणं कृत्वेदानीं पलभाचरखण्डकानि चैकवृत्तेनाह। मेषादिग इति। अयनस्य भागा अयनांशा अग्रे वक्ष्यमाणः। तैः सह वर्त्तमानो युक्तो

यः सूर्यस्तस्मिन् सूर्ये मेषादिगे राशिभागकलादिना शून्यमिते सति तस्मिन् दिने दिनार्धे मध्याह्ने द्वादशांगुलशंकुर्निवेश्यः।

शंकुलक्षणमुक्तं भास्करेण।

'समतलमस्तकपरिधिर्भ्रमसिद्धो दन्तिदन्तजः शंकु' रिति।

एवं तस्य शंकोर्मध्याह्ने भा छाया या भवति सा पलभा भवेदित्यर्थः। सा पलभा त्रिष्ठा त्रिषु स्थानेषु तिष्ठतीति त्रिष्ठा। दशभि—१५ भुजङ्गैरष्टभि–८ दिग्भि–१० र्हता गुणिता ततोऽन्तिमा गुणस्त्रिभि–३ रुद्धृता भक्ता सती त्रीणि चरखण्डकानि भवन्ति॥

अत्रोपपत्तिः सायनसूर्यो यद्दिने मेषादौ तद्दिने सूर्यस्य नाडिकामण्डले स्थितिः। नाडिकामण्डलं लंकापूर्वापरम्। अतस्तद्दिने मध्याह्ने लंकायां शंकुच्छाया नास्ति खमध्यस्थितत्वात्। अन्यदेशं तु पूर्वापरं सममण्डलमतस्तद्दिनेऽपि मध्याह्नेऽन्यदेशे शंकुच्छाया भवति सैव पलभा। तस्याः पलभा विषुवतीति च पर्यायः। एवमत्रैकांगुलां पलभा प्रकल्प्य 'अक्षप्रभा सङ्गुणिताऽपमज्ये" त्याद्युक्तप्र कारेण राशित्रयस्य चराणि प्रसाध्य तान्यधोऽधः शुद्धानि जातानि चरखण्डकानि १०।८।३। ततोऽनुपातः। यद्येकांगुलयाऽक्षप्रभया एतावन्मितानि चरखण्डकानि तदेष्टाक्षप्रभया कानीति। एवमक्षप्रभा त्रिष्ठा एभिः पृथग्गुणिता हरेण हृता सतीष्टचरखण्डानि भवन्तीति। अत्रैतत् त्रैराशिकं सुखार्थमङ्गीकृतम्। अप्राप्तावपि प्राप्तिः कृता वृत्तक्षेत्रे परिध्याश्रितत्वात्। अतो विरोधः प्रतिभाति स वक्तुं न शक्यते यन्महद्भिराचार्यैरङ्गीकृतं तद्दोषयुक्तमप्यदुष्टम्। यावदष्टांगुलाक्षप्रभा तावदन्तरं नास्ति तत्परतः सान्तराणि भवन्तीति बुद्धिमद्भिर्विलोक्यम्।

विश्वनाथः

अथ पलभाज्ञानं चरखण्डसाधनं चाह। मेषादिग इति। सायनभागसूर्येऽयनांशसहिते रवो मेषादिगे राशिभागकलादिना शून्यमिते सति या दिनार्धजा भा दिनार्धे मध्याह्ने जाता या द्वादशांगुलशंकोश्छाया सा पलभा भवेत्। सा पलभा त्रिष्ठा स्थानत्रये स्थाप्या क्रमेण दशभिः १० भुजंगैः ८ दिग्भिः १० हता गुणिता कार्या। अन्त्या गुणैस्त्रिभिरुद्धृता भक्ता एवं त्रीत्रि चरखण्डानि भवन्ति॥५॥

केदारदत्तः

सायन स्पष्ट सूर्य जिस दिन के जिस समय में ०''।०'।०''।०''' होता है उस समय वह सूर्य विषुवत् और क्रान्ति वृत्त के चल सम्पात मेषादिक विन्दु पर होता हैं। उस दिन के ठीक मध्यान्ह समय में जल की तरह समान भूमि–धरातल में जिस देश, नगर या ग्राम में १२ अंगुल माप की जो अंगुलात्मक आया होती है उसका नाम पलभा या अक्षभा अक्षच्छाया होता है। खगोल विद्या के गणितज्ञों से यह एक महत्त्व की देन उपलब्ध हुई हैं। इस अंगुलात्मक छाया को तीन जगह रखकर उसे क्रमशः १०, ८, और १०/३ से गुणा करने

से क्रमशः यह मेषादिक (मेष-वृषभ-मिथुन) तीन राशियों एवं व्युत्क्रम से कर्कादिक तीन राशियों (कर्क-सिंह-कन्या) का चरखण्ड होता है ।।५।।

उदाहरण से—उत्तर प्रदेशीय उत्तर सीमा के जिले अल्मोड़ा, गढ़वाल, और पिथौरागढ़ के नगरों में किसी एक के खमध्य में निरक्ष खमध्य से याम्योत्तर वृत्त में अक्षांश का मान २९ अंश ३७ कला वर्तमान भूगोलीय मान चित्रों से स्वल्पान्तर से होता है । इस प्रकार कूर्माचल अल्मोड़े की पलभा का मान ६ अंगुल ४७ व्यंगुल होता है । कुमायूं के कुछ पहाड़ों में पलभा और अक्षांश अल्पान्तर से का मान क्रमशः ६।४० २९।३५′ तथा भी दिया है ।

६।४७ × १०	६।४७ × ८	६।४७ × १०/३	
६०।४७०	४८।३७६	६०।४७०	
७	६	३	११०
= ६७।५०	५४।१६	६७।५०	
		३	= २२।३६········

स्वल्पान्तर से ६८, ५४, २३ (अल्मोड़े नगर से कुछ आगे उत्तरदिगभिमुख स्थानों में) यदि पलभा=६४० तो चर खण्ड=६७,५३,२२·१३···· होते हैं ।

अतः प्रायः कूर्माचल में मेषादिक चर खण्ड=६८, ५४, २३ तक होते हैं ।

उपपत्ति—१ अंगुल पलभा देशों में, 'अक्षप्रभा संगुणितापमज्या' सिद्धान्तशिरोमणिस्थ श्रीमद्भास्कराचार्य के अनुसार, अधोऽधः संशुद्ध चरखण्ड १०, ८, १०/३ उपलब्ध हुए हैं । अतः अनुपात से इष्टांगुल पलभा में उक्त मेषादि तीन राशियों के चर खण्डों को पलभा से तीन जगह गुणा करने से इष्ट देशीय पलभा वश इष्ट देशीय चरखण्ड हो जावेंगे ।

आचार्य मल्लारि ने ८ अंगुल पलभा (छाया) जिन देशों में होती हैं अर्थात् ३४°···· ६०° अक्षांश बगदाद रूस आदि में उक्त प्रकार से चरखण्ड समीचीन होने में सन्देह किया है । वहाँ समतल भूमि में मेषादि सूर्य में छाया का प्रत्यक्ष साधन एवं चरखण्ड साधन करना समुचित होगा ।।५।।

स्यात् सायनोष्णांशुभुजर्क्षसङ्ख्य-
चरार्धयोगो लवभोग्यघातात् ।
खाग्न्याप्तियुक्तस्तु चरं धनर्णं
तुलाजषट्के तपनेऽन्ययाऽस्ते ।।६।।

मल्लारिः

अथ चरसाधनमेकवृत्तेनाह स्यादिति । सायनोऽयनांशयुक्तो य उष्णांशुः सूर्यस्तस्य भुजस्तस्य ऋक्षाणि राशयस्तत्सङ्ख्यानि यानि चरार्धानि चरखण्डानि तेषां

योगो लवैर्भागैर्भोग्यस्य खण्डस्य यो घातो गुणनं तस्माद् या खाग्न्याप्तिस्त्रिशद्भ्रा-गाप्तिस्तया युक्तः स खण्डयोगश्चरं पलात्मक स्यात्। तच्चरं तपने सूर्ये तुलाजट्क धनर्णं स्यात्। तुलादिषट्के धनं मेषादिषट्के ऋणम्। इदमुदये। सूर्योदयकालीन-गहसाधने। अस्ते सायंकालीनगहसाधनेऽन्यथा उक्तवैपरीत्यं तुलादावृणं नेषादौ धनम्॥

अत्रोपपत्तिः। चरं नाम लंकार्कोदयरेखार्कोदययोरन्तरमतस्तद्दक्षिणोत्तरम्। तत्साधनायोपायः। अत्र प्रतिराशिखण्डानि सन्त्यतो भुजराशिमितखण्डयोगः कर्त्तव्यः। शेषात् त्रैराशिकम्। यदि त्रिशद्भि–३० भागैरेप्यखण्डतुल्यं चरं लभ्यते तदा शेषभागैः किमिति सुगमम्॥

अथ धनर्णोपपत्तिः। जाता ग्रहा लंकार्कोदयकालीन रेखार्कोदयकालीनाः कार्याः तत्र लंकायां यत् क्षितिजं तस्योन्मण्डलसंज्ञा। अन्यदेशीयस्य क्षितिजस्य क्षितिजसंज्ञैव। उत्तरमोले उन्मण्डलार्कोदयात् पूर्वं क्षितिजार्कोदयः। उन्मण्डलास्तात् पश्चात् क्षितिजास्तमयो यतः क्षितिजादुपर्युन्मण्डलम्। अत उत्तरगोले उदये चरमृण-मस्ते च धनम्। दक्षिणगोलेऽस्माद्विपरीतम्। तद्यथा। उन्मण्डलार्कोदयानन्तरं क्षितिजार्कोदयः। उन्मण्डलास्तमयात् पूर्वं क्षितिजास्तमयो यतः क्षितिजादध उन्मण्डल-मतो दक्षिणगोले उदये चरं धनमस्ते ऋणमित्युपपन्नम्।

विश्वनाथः

अथ चरसाधनमाह। स्यादिति। सायनोऽयनांशयुक्तः य उष्णांशु भुजस्तस्य ऋक्षाणि राशयस्तत्संख्यानां चरखण्डानां योगः कार्यः। कथंभूतः। राशिभ्योऽधो वर्त्तमाना लवा अंशा भोग्यं भोग्यचरखण्डं तेषां घातस्तस्मात् खाग्न्याप्तिः ३०। त्रिशद्भक्तस्तेन युक्तः कार्यश्चरं स्यात्। तच्चरं तुलादिषड्भे तपने सूर्ये धनं मेषादि-षड्भे तपने ऋणम् अस्ते सायंकालेऽन्यथा भवति तुलादौ ऋणं मेषादौ धनमिति॥६॥

केदारदत्तः

सायन सूर्य के भुजा की राशि तुल्य संख्यक चरखण्डों के योग में चरखण्ड का जो भोग्य खंड है उससे गुणित शेषांश में ३० से भाग देकर लब्ध फल को उक्त चरखण्डों के योग से जोड़ने से अभीष्ट समय में चर हो जाता है। तुलादि और मेषादि ६ राशियों में स्थित सूर्य में उदयकाल में चर को क्रमशः धन और ऋण करना चाहिए किन्तु सायंकाल में इसके विपरीत अर्थात् तुलादि और मेषादि के सूर्य में चर को क्रमशः ऋण और धन करना चाहिए।

आचार्य ने अयनांश की गति १ कला प्रति वर्ष मानी है। आचार्य के मत से १ मार्च सन् १९७९ को अनयांश का मान २४°।१७' होना चाहिए। यह अत्यन्त स्थूल है इसे स्थूल मानते हुए आधुनिक युग के ग्रहलाघवीय पञ्चाङ्गों तक ने भी आचार्य के स्थूल अयनांश को त्याग कर वर्तमान शोधपूर्ण सही अयनांश का आश्रय लिया है।

आधुनिक विभिन्न पञ्चाङ्गों में सही और सही के समीप का अयनांश २३।३४।३९, २३।३३।५३ तथा २३।२६।३८····(कहीं-कहीं वर्षादी) तक दिया है।

पूर्व साधित मन्दफल संस्कृत मन्द स्प० सू० १०।१७।०।४९ में अयनांश २३।३४।३९ जोड़ने से सायन सूर्य = ११।१०।३५।२८ होता है। सायन सूर्य का भुज = ०।१९।२४।३२। अल्मोड़े का चरखण्ड क्रमशः ६८।४४।२३ हैं। यहाँ भुज की राशि स्थान में ० होने से, भोग्यखण्ड = ६८ से भुजांश १९।२४।३२ को गुणा करने से १९।२४।३२ × ६८ ÷ ३० = ४४ ··· स्वल्पान्तर से चरकला होता है। सायन सूर्य तुलादिक है अतः विकलादिक चर ४४ को १०।१७।०।४९ में जोड़ने से स्पष्ट सूर्य = १०।१७।१।३३ होता है।

उपपत्तिः—ग्रहों को साधनिका का समय लङ्कोदय कालिक अर्थात् निरक्षाभिप्रायिक उदयक्षितिज से हुआ हैं। लङ्का का अर्थात् निरक्षदेशीय और स्वदेशीय क्षितिजों का अन्तर अहोरात्र वृत्त में चरखण्ड होता है। उत्तर गोल में अपने उदय क्षितिज से नीचे निरक्ष देश का क्षितिज है पहिले स्वदेश में पश्चात् निरक्ष देश में उदय होगा, अतः उदय में चर को ऋण और अस्त समय में धन करने से तथा दक्षिण गोल अर्थात् तुलादि में अपना क्षितिज निरक्ष क्षितिज से अपना क्षितिज ऊपर होने से उदय में चर को धन और अस्त में ऋण करना चाहिए। क्योंकि दक्षिण गोल में पहिले उदय और पश्चात् अस्त होता है।

तथा एक एक राशि का चरखण्ड पृथक्-पृथक् पठित होने से भुज की राशि तुल्य चरखण्डों का योग उचित है: अवशिष्ट राशि के लिए अनुपात से ३० अंश में ऐष्य खण्ड तो शेषांश में क्या ? $\frac{\text{ऐष्य खण्ड} \times \text{शेषांश}}{३०}$ = फल को गत खण्ड योग में जोड़ने से स्पष्ट चर मान ज्ञात भी होता है।।६।।

देयं तच्चरमरुणे विलिप्तिकासु
मध्येन्दौ द्विगुणनवोद्धृतं कलासु।
भाप्तं च द्युमणिफलं लवेऽथ वेदा-
ब्ध्यब्ध्यूनः खरसहृतः शकाऽयनांशाः ।।७।।

मल्लारिः

अथास्य चरस्य संस्कारं सूर्येन्द्वोश्चन्द्रे द्युमणिफलसंस्कारेमयनांनसाधनं चैकवृत्तेनाहा देयमिति। तदानीतं चरं पलात्मकरुणे सूर्ये विलिप्तिकासु विकलासु देयम्। तदेव चरं द्विगुणं सन्नवोद्धृतं नव ९ भक्तं मध्येन्दौ मध्यमचन्द्रे कलासु देयम्। भाप्तं सप्तविंशति–२७ भक्तं यद्द्युमणिफलं सूर्यस्य मन्दफलं तदपि यथागतं धनर्णं भागेषु दयं ततः स्वमन्दफलं देयं स स्फुटश्चन्द्रः स्यात्। अथ सूर्येन्दुस्फुटीकरणानन्तर-मयानांशान् साधयति। शको वर्त्तमानः शालिवाहनशकः। वेदाब्ध्यब्ध्यूनश्चतुश्चत्वारि-शदकिधचतुः शत ४४४ हीनस्ततः खरसहृतः षष्टि–६० भक्तोऽयनांशाः स्युः।।

अत्रोपपत्तिः। यदानीतं चरं पलं फलात्मकं तद्ग्रहाणां स्वस्वगतिवशाद्देयम्। तद्यथा। यदाऽहोरात्रपलै–३६०० रेभिर्गतिकला लभ्यन्ते तदेष्टचरपलैः किमिति। एवं सर्वेषां ग्रहाणां देयम्। तत्राचार्येणायं संस्कारो रवीन्द्वोरेव कृतः। अन्येषां स्वल्पगतित्वात् त्यक्तः। तत्र रविगतिः षष्टिः–६० तुल्या तयाऽपवर्त्तिते चरपलानि षष्ट्या भाज्यानीति जातम्। एवं ताः कला विकलार्थं षष्टिगुणाः षष्टितुल्योर्गुणहरयोर्नाशे कृते चरपलतुल्या एवं विकला रवौ देया इत्युपपन्नम्। एवं चरपलानां चन्द्रमध्यगति–७९० गुणो हरः स एव ३६००। अत्र गुणहरौ गुणार्धेनापवर्त्त्य जातो गुणः २। हर किञ्चिदधिका नव तत्र सुखार्थं नवैव गृहीताः। अतो द्विगुणं नव–९ भक्तं चरं चन्द्रे कलासु देयमिति युक्तमुक्तम्॥

अथ दोःफलोपपत्तिः। देशान्तफलेन स्वदेशमध्यमार्कोदयकालीना ग्रहाः कृताः। सूर्य्यस्य मन्दफलेन स्फुटार्कोदयकालीनाः क्रियन्ते। अस्माकं स्फुटार्कोदयेन भवितव्यं मध्यमार्कस्यादृश्यत्वात्। अतस्त्रैराशिकम्। यदि चक्रकलाभि–२१६०० नित्यं प्रवहानिलेन पश्चान्नीयमानाभिर्ग्रहा अहोरात्रवृत्तेन स्वीयगतितुल्याः कलाः स्वव्यापारेण प्रापयन्ति तदा रविमन्दफलकलाभिरपरेण नीयमानाभिः किमिति। फलं ग्रहेषु ऋणधनमतः क्रियते। ऋणफले स्फुटार्कस्योन्नतत्वाद्भुजफलेनोनाः सन्तः स्फुटार्कोदयकालीना भवन्ति। धनफले स्फुटार्काधिकत्वान्मध्यमार्कात् फलेनाधिकाः सन्तः स्फुटार्कोदयकालिका भवन्ति। एवमत्राचार्येणायं संस्कारश्चन्द्रस्यैव कृतो गतिबाहुल्यात्। अन्येषां स्वल्पगतित्वान्नोक्तः। एवं रविफलं लवाद्यं षष्टिगुणं कलाद्यं स्यात्। तच्चन्द्रमध्यमगत्या गुण्यम्। एवं गुणघातो गुणः ४७४३५ चक्रकला २१६०० हारो लवादिफलार्थं षष्टि–६० श्च। एवं हरघातो हरः १२९६०० गुणेनापवर्त्य जातो हरः २७। अत उक्तं भाप्तं च द्युमणिफलं लव इति।

अथायनांशोपपत्तिः इष्टदिने दिनार्धे यन्त्रादिवेधेन सावयवानुन्नतांशान् प्रसाध्य तान् नवतेर्विशोध्य शेषांशस्वाक्षांशयोरेकान्यदिशान्तरं योगं विधाय तेभ्यः क्रान्तिभागेभ्यः क्रान्तिखण्डकैश्चापं कुर्यात्। स सायनसूर्यस्य भुजः स्यात्। तात्कालिकगणितागतस्फुटार्कस्यापि भुजः कार्यस्तद्भुजप्राग्भुजयोरन्तरं तेऽयनांशाः। यदि गणितागतान्मध्याद्भुजोऽधिकस्तदा ते धनाख्याः। ऊनास्तदा ऋणाख्याः। एवमत्रोपलब्धिरेव वासना। एषां प्रतिवर्षमेकैका कला गतिरुत्पद्यते चतुश्चत्वारिंशदधिकचतुः शत-४४४ मिते शकेऽयनांशाभावोऽभूत्। प्रतिवर्षं कलावृद्धिरतो वेदाब्ध्यब्ध्यूने शाके यावन्ति वर्षाणि तावन्त्य एवायनांशकलास्ताः षष्टिभक्ता भागा अतः खरसहृत इति। चत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतवर्षैः १४४० परमायनचलनस्य व्यावृत्तिर्भवति। तत्र यस्मिन् पक्षे कलोपचयस्तस्मिन् पक्षे चतुर्विंशत्यंशाः परमायनचलनांशाः। यस्मिन् पक्षे चतुःपञ्चाश–५४ द्विकला उपचीयन्ते तत्पक्षे सप्तविंशत्यं–२७ शाः परमा उत्पद्यन्ते। अष्टादशशत–१८०० वर्षमध्ये एवमेषां चयापचयवशात् प्रागपरवशाच्च धनर्णसंभवः स्यात्।

विश्वनाथः

अथ चरसंस्कारं भुजफलसंस्कृतिमथायनांशानाह। देयं तच्चरमिति। तच्चर-मरुणे सूर्ये विलिप्तिकासु विकलासु यथागतं धनर्णं देयम्। तच्चरं द्विगुणं नवोद्धतं नव—९ भक्तं मध्येन्दौ मध्यमचन्द्रे कलासु देयम्। द्युमणिफलं सूर्यस्य मन्दफलं भाप्तं सप्त-विंशतिभक्तं भागादिफलं मध्यमचन्द्रस्यांशस्थाने सूर्यवद् धनर्णं देयम्। अथ शक इष्टः शालिवाहनाख्यो वेदाब्ध्यब्ध्यूनश्चतुश्चत्वारिंशदधिकचतुश्शतहीनः। ततः खरसहृतः षष्टिभक्तः फलमयनांशाः स्युः। काश्यां पलभा—५।४५ चरखाण्डानिः ५७।४३।१९। शकः १५३४। अनेन ४४४ हीनो जातः १०९०। षष्टिभक्ताः ५०। अयनांशा जाताः १८।१०। अथ चरानयनम्। रविः ११।५।४४।१० सायनः १।२३।५४। १० अस्य भुजः १।२३।५४।५४।१० राशिप्रमितगतखण्डयोगः ५७ योग्यखण्डकेन ४६ भागादि २३।५४।१० गुणितं १०९९। ३१।४० त्रिंशद्भक्तम् ३६। अनेन जातखण्डं ५७ युतं जातं चरं ९३ सायनसूर्यस्य मेषदिषट्के स्थितत्वादृणम्। चरसंस्कृतो जातः स्पष्टोऽर्कः ११।५।४२।३७।

अथ चन्द्रस्पष्टीकरणम्। तत्र चरमृणं ९३ द्विघ्न १८६ नवोद्धृतं फलं कलादि २०।४०। अनेन मध्यमचन्द्रः ६।२०।१०।२४ रहितः ६।१९।४९।४४। सूर्यस्य मन्दफलं धनम् १।३०।२८। सप्तविंशतिभि—२७ भक्तं लब्धं भागादि ०।३।२१। अनेन चर-संस्कृतश्चन्द्रः ६।१९।४९।४४। युक्तः ६।१९।५३।५। रेखापुरात् प्राच्यां काश्यां देशान्तरयोजनानि ऋणानि ६४। अस्य षडंशः कलादि १०।४० अनेन चरद्युमणिफल-संस्कृतचन्द्रः ६।१९।५३।५ रहितो जातः फलत्रयसंस्कृतचन्द्रः ६।१९।४२।२५।

अथ चन्द्रमन्दफलसाधनं तत्संस्कारं चाह। विधोः केद्रेति। चन्द्रोच्चं १०। १४।५४।४३ चन्द्रेण ६।१९।४२ रहितं जातं चन्द्रमन्दकेन्द्रम् ३।२५। १२।१८। अस्य भुजः २।४।४७।४२। अस्यांशाः ६४।४७।४२ एषां षष्ठांशः १०।४७।५७। खरामाः ३० षष्ठांशानाः १९।१२।३। एते षष्ठांशेनैव गुणिताः २०७। रसाक्षा ५५ ऊनिताः ४५।३७।५७। अनेन पृथक्स्था भक्ताः। सवर्णिते भाज्य-७४६४७० भाजकौ १६४२७७। भजनाल्लब्धमंशाद्यम् ४।३३।३८। मेषादिकेन्द्रत्वात् जातं चन्द्रस्य मन्दफलं धनमनेन युतो जातः स्पष्टश्चन्द्रः ६।२४।१५।३ ताभ्यां स्वस्वमन्दफलाभ्यां संस्कृतौ रवीन्दू सूर्यचन्द्रौ स्फुटौ भवतः।

अथ गतिस्पष्टीकरणमाह। केन्द्रस्येति। रवेर्मन्दकेन्द्रम् १।१३।४६।१८। अस्य भुजः १।१३।४६।१८ अनेन रहितं राशित्रयं जाता कोटिः १।१६।१३।४२। अस्य लवाः ४६। १३।४२ विंशत्या २० भक्ताः फलम् २।१८। अनेन रुद्रा ११ हीनाः ८।४२। एते खाश्विलवेन गुणिताः २०।०। रवेस्त्रिकु-१३ हृता फल-१। ३२ मिदं मकरादि-केन्द्रत्वाज्जातं सूर्यस्य गतिफलमृणमनेन रहिता मध्यमगतिः ५९। ८ जाता सूर्यगतिः स्पष्टा ५७। ३६॥

अथ चन्द्रगतिसाधनम्। तत्र चन्द्रमन्दकेन्द्रम् ३।२५।१२।१७। अस्य भुजः २।४।४७।४२। अनेन रहितं त्रिभं जाता कोटिः ०।२५।१२।१८। अस्यांशा २५।१२।१८

विंशति २० भक्ताः १।१५ । अनेन रहिता रुद्रा ११ जाताः ९।४५ । एते खाश्वि-२० लवेन गुणिताः १२।११ । द्विगुणिता २४।२२ स्वकीयेन षंडशेन ४।३ । युक्ताः २८।२५ । कर्क्यादिकेन्द्रत्वाज्जातं चन्द्रस्य गतिफलं धनम् । अनेन युक्ता मध्यमगतिः ७९०।३५ । जाता स्पष्टचन्द्रगतिः ८१९।० ।।७।।

केदारदत्तः

उक्त चर को मन्दस्पष्ट सूर्य की विकलाओं में यथोक्त धन या ऋण करनेसे चर संस्कृत स्वदेशोदय कालीन स्पट सूर्य होता है।

द्विगुणित चर में ९ का भाग देने से जो प्राप्त हो उस फल को मध्यम चन्द्रमा की कलाओं में, संस्कार करते हुए सूर्य के मन्दफल में २७ का भाग देने से प्राप्त अंशादिक फल को उसी चर संस्कृत मध्यम में संस्कार करना चाहिए।

तथा वर्तमान शक वर्ष में ४४४ कम कर उसमें ६० का भाग देने लब्ध अंशादि का नाम अयनांश होता है।

उदाहरण से—देशान्तर संस्कृत मध्यम चन्द्रमा ४।६।१०।४५। धनचर = ४३ द्विगुणित करने से ८६ में ९ का भाग देने से ९'।३३" इसे देशान्तर संस्कृत चन्द्रमा में ४।६।१०।४५ जोड़ने से ४।६।२३।२२ चर और देशान्तर एवं फलद्वय संस्कृत चन्द्रमा होता है।

सूर्य का मन्दफल + = १।५१।५ में २७ का भाग देने से ०।३।४ को फलद्वय संस्कृत चन्द्रमा ४।६।२०।१८ में जोड़ने से ४।६।२३।२२ यह त्रिफल संस्कृत (देशान्तर २ चर, ३ सूर्यमन्दफल) मध्यम चन्द्रमा होता है।

चन्द्रमा का मन्दफल साधन—च० उ० = ५।२२।१२ में त्रिफल संस्कृत म० चं० ४।६।२३।२२ को घटाने से चन्द्र केन्द्र = ०।२८।५८।५० मेषादिक धन होता है। केन्द्र ३ से कम है इस लिए स्वयं भुज है। भुज के अंश = २८।५८।५० इसका षष्ठांश ४।४९।४८ होता हैं। ३०—षष्ठांश=२५।१०।१२ होता है। शेष × षष्ठांश का मान गुणफल, १२१।३४।१५ होता है। गुणनफल में २० का भाग देने से भजनफल = ६।४।४३ होता है। गुणनफल के २० वें भाग को ५६ में कम करने से ४९।५५।१७ होता है। पूर्व गुणनफल १२१।३४।१५ ÷ ४९।५५।१७ एक जातीय बनाकर भाग देने से २°।२९।२७" यह चन्द्रमा का मन्दफल होता है। चं० केन्द्र धन होने से त्रिफल संस्कृत मध्यम चन्द्रमा + मन्दफल = मन्दस्पष्ट चन्द्रमा= ४।६°।२०'।८" + २°।२'।१४" = ४।८।५२।४९ यह स्पष्ट चन्द्रमा हुआ।

चन्द्रगति साधन गणितोदाहरण—

चन्द्र केन्द्र = ०।२८।५८।५० स्वयं भुज है। भुज को ३ राशि में घटाने से कोटि = ३ − २६°।४७।५२ = २।१।१।१० केन्द्र कोटि हुई। कोटि के अंश = ६१।१।१० का २० वाँ भाग = ३।३।३ को ११ में कम करने से शेष = ७।५६।५७ को २० वें भाग ३।३।३ से गुणा करने से २४।१५।५० को २ से गुणा करने पर ४८।३०।१० हुआ। ४८।३०।१० का षष्ठांश करने से ८।५।२ को ४९।३६।५० में जोड़ने से ५२।३४।३६ यह चन्द्रमा का गतिफल

हुआ। चन्द्रमा की मध्यमा गति ७९०'।३५'' में मकरादिक केन्द्र होने से ऋण किया ७३४।०'।१''''' यह चन्द्रमा की गति चन्द्रगति साधन की स्पष्टा गति सगणित क्रिया से सिद्ध होती है। उपपत्ति पूर्व में प्रदर्शित की गई है ॥७॥

भक्ता व्यर्कविधोर्लवा यमकुभिर्याता तिथिःस्यात् फलं
शेषं यातमिदं हरात् प्रपतितं भोग्यं विलिप्तास्तयोः।
भुक्त्योरन्तरभाजिताश्चघटिका यातैष्यकाः स्युः क्रमात्
पूर्वार्धे करणं बवादूगततिथिर्द्विघ्न्यद्रितष्टा भवेत् ॥८॥

तत् सैकं त्वपरे दलेऽथ शकुनेः स्युः कृष्णभूतोत्तरा-
दर्धाच्चाथविधोश्च सार्कसितगोर्लिप्ताः खखाष्टो ८०० द्धृताः
याते स्तो भयुती क्रमादूगगनषण्णिघ्ने गतैष्ये तयो-
रिन्दोर्भुक्तिहृते जवैक्यविहृते यातैष्यनाडयः क्रमात् ॥९॥

मल्लारिः

एवं स्पष्टार्कोदयकालीनौ स्पष्टौ सूर्यचन्द्रौ कृत्वेदानीं तिथिनक्षत्रयोगकरणसाधन वृत्तेद्वयेन करोति। भक्ता इति। विगतोऽर्कः सूर्यो यस्मादेवंभूतो यो विधुश्चन्द्रस्तस्य लवा राशींस्त्रिशता संगुण्य भागेषु संयोज्य सर्वं भागाः कार्याः। ते यमकुभिर्द्वादश-भिर्भक्ताः सन्तो यत् फलं तत्तुल्या याता तिथिः स्यात्। यच्छेषं तदपि यातं तत् हरात् द्वादशमितात् प्रपत्तितं शोधितं सत् भोग्यं स्यात् तयोर्गतगम्ययोर्विलिप्ता विकला भुक्त्योः सूर्यचन्द्रगत्योर्यदन्तरं तेन भाजिता लब्धं यातैष्यका घटिकाः क्रमाद्भवन्ति। यातकलासु हृतासु यातघटिकाः पूर्वदिने तस्या एव तिथेर्भुक्तघटिकाः स्युः। एवमेष्य-कलासु एष्याः। तस्मिन् दिने सूर्योदयमारम्य तिथेर्घटिकाः स्युरित्यर्थः। अथ करणं साधयति। गततिथिर्द्विघ्नी द्विगुणा अद्रिभिः सप्तभि-७ स्तष्टा भक्ता सती तिथेः पूर्वार्धे करणं वर्त्तमानं स्यात् 'तदेव सैकमेकयुक्तं सत् अपरे दले तिथेरुत्तरार्धे स्यात्। अथ अथ स्थिरकरणचतुष्टयस्यनिवेशमाह। कृष्णभूतोत्तरादर्धात्। कृष्णःकृष्णपक्षः। तस्य यो भूतश्चतुर्दशी तस्या उत्तरार्धात् शकुनेः प्रभृति चत्वारि करणानि स्युः। एतदुक्तं भवति। कृष्णपक्षे चतुर्दश्युत्तरार्धे चतुष्पादम्। अपरार्धे नागम्। आद्ये प्रतिपद्दले किंस्तुघ्नं नाम करणम्। एतानि स्थिराणि चत्वारि। अथ करणकथनानन्तरं विधोश्चन्द्रस्य तथा सार्कसितगोः सूर्यचन्द्रयोगस्य लिप्ताः कलाः खखाष्टोद्धृता अष्टशत-८०० भक्ताः फलं क्रमात् याते भयुती नक्षत्रयोगौ भवतः। चन्द्राज्जातं नक्षत्रं योगाद्योग इति। तयोर्नक्षत्रयोगयोर्गतं यत् सदेव हरादष्टशतमितात् शोधितमेष्यम्। ते षष्टिगुणे नक्षत्रार्थमिन्दोश्चन्द्रस्य भुक्त्या गत्या हृते भक्ते योगार्थं सूर्यचन्द्रयोर्ज-वैक्येन गतियोगेन भक्ते क्रमात् तयोर्यातैष्या नाड्यः स्युरित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। दर्शान्ते सूर्यचन्दौ समौ भवतः। 'दर्शः सूर्येन्दुसङ्गम' इति स्मरणात्। ततो दर्शान्ताच्चन्द्रो बहुगतित्वादग्रे याति। पुनरमान्ते समौ। तयोरन्तरे चान्द्रमासः। 'दर्शावधिश्चन्द्रमसो हि मास' इति स्मरणात्। तयोन्तरे त्रिंशत् तिथयः। त्रिंशत् तिथिभिर्यदि भांश-३६० तुल्यं सूर्यचन्द्रान्तरं लभ्यते तदैकतिथ्या किमिति जाता द्वादशभागा १२ एकतिथौ सूर्यचन्द्रान्तरम्। यदि द्वादशभागतुल्येन रविचन्द्रान्तरेणैका तिथिस्तदेष्टसूर्यचन्द्रान्तरभागैः कियत्य इति। अत्र सूर्यगत्यधिका चन्द्रगतिरतो व्यर्कविघोर्लवा यमकुभिर्भक्ता इति। ततो यच्छेषं तत् यातम्। ग्रहभुक्तत्वात् तो हि तद्द्वादशशुद्धं भोग्य स्यात्। एवं ततो घटिकाज्ञानार्थमनुपातः। यदि गत्यन्तरकलाभिः षष्टिघटिकास्तदा गतैष्यकलाभिः किमिति। कला षष्टिगुणा विकलाः स्युः अतो यातैष्यविकला गत्यन्तरकलाभक्तास्तिथियातैष्यघटिकाः स्युरित्युपपन्नम्।

अथ करणोपपत्तिः एकतिथौ करणद्वयमित्यागमः। ततोऽनुपातः। यद्येकतिथ्या करणद्वयं तदेष्टतिथ्या किमिति। अतस्तिथिर्द्विगुणा कदाचित् सप्ताधिका स्यात्। करणानि सप्तैवातः सप्ततष्टा शेषमितं शुक्लप्रतिपदादितो गततिथिग्रहणात् किंस्तुघ्नादिकं करणं वर्त्तमानतिथिपूर्वार्धगतं स्यात्। तद्बवादितो गणनार्थं निरेकं कार्यं वर्त्तमानत्वार्थं च सैकमिति तुल्ययोर्धनर्णक्षेप्ययोरेकयोर्नाशे शेषमितमेव वर्त्तमानतिथिपूर्वार्धे वर्त्तमानं करणमिति युक्तम्। तदेव सैकमुत्तरार्धे स्यादिति प्रत्यक्षसिद्धम्। शकुन्यादिकरणचतुष्टयसंस्थानमागप्रमाणकम्।

अथ नक्षत्रसाधनोपपत्तिः। समस्तो भपञ्जरो द्वादशराशिभिर्व्याप्तस्तथा सप्तविंशतिनक्षत्रैश्च। अतो भगणे कलानामेकनक्षत्रकरणायानुपातः। यदि सप्तविंशतिनक्षत्रैश्चक्रकलाः २१६०० भवन्ति तदैकनक्षत्रेण किमिति। अतो जाता अष्टकतकलाः ८००। अष्टशतकलाभिरेकं नक्षत्रं तदेष्टचन्द्रकलाभिः कियन्तीति लब्धानि गतनक्षत्राणि। शेषं भुक्तं हरशुद्धं भोग्यं स्यादेव। ततोऽन्योनुपातः। यदि चन्द्रगतिकलाभिः षष्टिघटिकास्तदा गतैष्यकलाभिः का इति। कलाः षष्टिगुणा विकलास्ताश्चन्द्रगतिभक्ता नक्षत्रगतैष्यघटिकाः स्युरित्युपपन्नम्॥

अथ योगवासना। रविचन्द्रयोर्मिलितयोर्यन्नक्षत्रं स योग इत्युच्यते। अतोऽत्र युक्तिर्नक्षत्रवत्। गतगम्यघटिकार्थमनुपातो गतियोगेन कर्त्तुं युज्यते योगानयनत्वादिति प्रत्यक्षोपपत्तिः॥८-९॥

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्य जातो रवीन्द्वोः स्फुटताधिकारः॥२॥
इति रविचन्द्रस्पष्टीकरणाधिकारो द्वितीयः॥२॥

विश्वनाथः

अथ तिथिनक्षत्रयोगकरणसाधनमाह। भक्ता इति। तत्रादौ तिथिसाधनम्। व्यर्कविधोर्विगतोऽर्को यस्मादसौ व्यर्कः। एवंविधश्चन्द्रो रविहीनश्चन्द्र इत्यर्थः। रविः ११७।४२।३७। चन्द्रः ६। २४।१५।३। रविरहितश्चन्द्रः ५।१८।३२।२६। अस्य भागाः

१६८। ३२।२६। यमकुभि–१२ भक्ताः फलं याता गततिथयः १४। अत्र चतुर्दश-विद्यमानत्वादागता पौर्णमासी। शेषं जातं गतसंज्ञकम् ०।३२।२६। इदं हरात् १२ शोधितं जातं भोग्यम् ११।२१।३४। गतभोग्ययोर्विकलाः। गतविलिप्ताः १९४६। भोग्यविलिप्ताः ४१२५४। रविगतिः ५७।३६। चन्द्रगतिः ८१९।० । अनयोरन्तरं ७६१।२४ षष्टिगुणं जातो भाजकः ४५६८४। भाजकस्य षष्टि गुणत्वाद्गतविलिप्तिकाः १९४६ षष्टिगुणिताः ११६७६० भाजकेन भक्ता लब्धा गतघटिकाः २ पलानि ३३।

अथैष्यघटिकानयनम्। भोग्यविकलाः ४१२५४। षष्टिगुणिताः २४७५२४० भाजकेन भक्ता लब्धा एष्यघटिकाः ५४। पलानि १०॥

अथ करणानयनम्। सा गततिथिर्द्विघ्नी द्विगुणा। अद्रिभिः ७ सप्तभिस्तष्टा शेषांकतुल्यं विद्यमानतिथेः पूर्वार्धे बवकरणादारभ्य गणनायां विद्यमानकरणं भवेत्। तत्करणं सैकमेकयुक्तामपरे दले तिथेरुत्तरार्धे स्यात्। अथ करणचतुष्टयस्य विशेष-माह। कृष्णभूतोत्तरार्धात् कृष्णपक्षे भूतं चतुर्दशी। तस्या उत्तरार्धे शकुनिः करणम्। अमावास्यापूर्वार्धे चतुष्पादम्। उत्तरार्धे नागम्। प्रतिपत्पूर्वार्धे किंस्तुघ्नम्। अत्र गततिथिः १४। द्विघ्नी २८ सप्त–७ तष्टा शेषं पौर्णिमास्यां पूर्वार्धे जातं भद्राकरणम्। सैकं जातमुत्तरार्धे बवकरणम्। करणस्य मानं तिथेर्गतैष्ययोर्गाधम्। तिथेर्गतघटिकाः २।३३। एष्यघटिकाः ५४।१०। अनयोर्योगः ५६।४३। अर्धं जातं भद्राकरणस्य मानं घटिकाद्यम् २८।२१ एता गतघटिकाभी रहिता जाता भद्राकरणस्य विद्यमानघटिकाः २५ पलानि ४८॥

अथः नक्षत्रानयनम्। चन्द्रः ६।२४।१५।३ अस्य कलाः १२२५५।३ खखाष्टोद्धृताः फलं १५ गतनक्षत्राणि। विद्यमाननक्षत्रं विशाखा। गतशेषं २५५।३ हरात् ८०० शोधितं जातमेष्यम् ५४४।५७। गतं षष्टिगुणम् १५३०३। एष्यं षष्टि-गुणम् ४७८६०। एष्यं षष्टिगुणितम् १४० गतियोगेन ८७६। ३६ क्रमाद्भक्ते गतैष्ये जाता गतैष्या घटिकाः। गतम् ५४।३५। एष्यम् ९।२५ ॥८-९॥

केदारदत्तः

स्पष्ट चन्द्रमा में स्पष्ट सूर्य को घटाने से शेष अंशात्मक मान में १२ का भाग देने से लब्धि सख्या तुल्य गत तिथि होती है। १२ से भाग देने से अंशात्मक शेष वर्त्तमान तिथि का अंशात्मक गतमान एवं इस अंशात्मक गतमान को १२ में घटाने से शेषांशादि तुल्य वर्त्तमान तिथि का भोग्यांश होता है। अंशात्मक (गत-गम्य) मानों में (एक जातीय बना कर) चन्द्र सूर्य की गतियों के अन्तर से भाग देने से वर्त्तमान तिथि का घट्यात्मक गत और ऐष्य मान होगा। दोनों घट्यात्यक मानों का योग वर्त्तमान तिथि का सम्पूर्ण मान होता है।

गत तिथि संख्या को दो से गुणाने पर और ७ का भाग देने ववादि करग होते हैं। कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्ध में शकुनि अमावास्य के पूर्वाधि में चतुष्पद उत्तरार्ध में नाग एवं शुक्लपक्षारम्भ पूर्वार्ध में नाग नामक ये ४ स्थिर करण होते हैं।

केवल स्पष्ट चन्द्रकला और सूर्यचन्द्र की योग कलाओं में क्रमशः संख्या ८०० का भाग देने गत नक्षत्र एवं गतयोग संख्या होती है। पूर्ववत् गतगम्य मान ज्ञात कर वर्त्तमान नक्षत्र—योगों का घट्यात्मक मान ज्ञात करने के लिए ६० गुणित चन्द्र गति कला और सूर्य चन्द्र की गतियोग कलाओं से भाग देने से वर्त्तमान इष्ट नक्षत्र व इष्ट योग की गत गम्य घटि- होती है। गतगम्य घटिकाओं का योग सम्पूर्ण नक्षत्र या योग की घटिकाएँ समझनी चाहिए।

गणितोदाहरण से पञ्चाङ्ग साधन—

स्पष्ट चन्द्रमा ४।८।५२।४९, चन्द्रमा की स्पष्टा गति ७३६।१ स्वल्पान्तर से ७३४ भी

स्पष्ट सूर्य १०।१७।०।४९	सूर्य की स्पष्ट गति ६०।१९
अन्तर ५।२१।५२।०	६७५।४२

अन्तरांश = १७१।५२।० ÷ १२ = गत तिथि १४ वर्त्तमान तिथि १५ = पूर्णिमा। शेषांक= ३।५२।० = पूर्णिमा का गतांश = भुक्तांश। इसे १२ में घटाने से पूर्णिमा का भोग्यांश = ८।८।०

भुक्तांश विकला = '१३९२० भोग्यांश विकला २९२८० योग = ४३२०० '' = १२°। चंग − सूर्य० ग = ६७५।४२ की विकला ४०४४२ $\frac{\text{भुक्त विकला} \times ६०\text{घ०}}{४०५४२}$ = पूर्णिमा की गत घटिका एवं $\frac{\text{भोग्य विकला} \times ६०\text{घ०}}{४०५४२}$ पूर्णिमा की ऐष्य घटिका।

$\frac{१३९२० \times ६०}{४०५२२} = \frac{८३५२००}{४०५४२}$ = पूर्णिमा का घटिकादिक गतमान = २०।३९ तथा

$\frac{२९२८० \times ६०}{४०५४२} = \frac{१७५६८००}{४०५४२}$ = पूर्णिमा का घटिकादिक ऐष्यमान = ४३।२६ होता है।

जोड़ देने से पूर्णिमा का घटिकादिक पूर्णमान = ६४।५ हुआ। ग्रहलाघव का गणित सूर्योदय कालीन होने से सूर्योदय के पूर्व तक पूर्व दिन शुक्रवार को ६० − २०।३९ = ३९ घटी २१ पल चतुर्दशी मान एवं ता० १ मार्च १९७९ शनिवार को फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा के दिन पूर्णिमा के दिन पूर्णिमा का मान सूर्योदय से ४३ घटी १९ पल होना चाहिए। इसी प्रकार सभी तिथियों का मान ज्ञात करना चाहिए।

करण साधन—गत तिथि १४ को २ से गुणा कर ७ का भाग देने से २८ ÷ ७ = शेष या ७ = विष्टि (भद्रा करण होता है। तिथि मान का आधा करण का मान होता है। अतः तिथि मान ६३।५५ ÷ २ = ३१।५७।३० को पूर्णिमा के प्रारम्भ से आधी पूर्णिमा अर्थात् 'पूर्णिमा के पूर्वार्ध में' शुक्ले पूर्वार्धेऽष्टमी पञ्चदशयोः' (मुहूर्त चिन्तामणि का पीताम्बरा व्याख्यान देखिए) अर्थात् शुक्रवार की तिथि समाप्ति ३९।२४ में ३१।५७।३० को जोड़ देने से घटी तक ११।२१ शनिवार पूर्णिमा को प्रञ्चाङ्गों में भद्रा लिखनी चाहिए।

नक्षत्र साधन गणित—

स्पष्ट चन्द्रमा ४।८।५२।४९ की विकला = ७७३५'।४९" ÷ ८०० = ९ वाँ अश्लेषा

गत नक्षत्र। वर्तमान मघा की गत विकला ४८०'।४९" ऐष्य विकला ३०९'।११" गतैष्य में चन्द्रमा की गति विकलाओं से भाग देने से, $\frac{(४८०।४९)\ ६०}{७३६।१} + \frac{(१९'।११)\ ६०}{७३६।१}$ =३९।१२ + २६।० = ६५।१२ मघा का पूरा मान होता है। ६० – ३९।१२ = २०।४८ पूर्व दिन शुक्रवार को श्लेषा का मान २०।४८ होना चाहिए। और ता० १-३-७९ पूर्णिमा को मघा का मान २४।३६ होना चाहिए।

योग साधन गणित—

स्प० सूर्य = १०।१७।०।४९ + स्पष्ट चन्द्रमा = ४।८।५२।४९=२।२५।५३।३८ =५१५३'।३८" में ८०० का भाग देने से गत योग अतिगण्ड संख्या = ६ वर्त्तमान ७ वें सुकर्मा योग की भुक्त कला = ३५३'।३८" भोग्य कला ४४६'।२२" होती है। भुक्त विकला × ६० = १२७३०८० ÷ सूर्यचन्द्र गतियोग विकला = ४७७८० = योग घटी × २६।३९ पल सुकर्मा का बीता हुआ घट्यात्मक काल होता है। १६०६९२० ÷ ४७७८० = ३४ घटी ३९ पल, सूर्योदय से सुकर्मा का घटी आदिक मान होता है। तथा ६० – २६।३९ = ३४ घटी २१ पल तक पूर्व में अति गण्ड योग का मान होना चाहिए। प्रथम सूर्योदय से द्वितीय सूर्योदय तक नाक्षत्री षष्टि ६० घटिका में ग्रह गति कला से उत्पन्न असु या पलादिक काल का नाम (सूर्य ग्रहगति से) सूर्य सावन होने से उक्त समयों में स्वल्पान्तर जन्य स्थूलता हो सकती है ॥८-९॥

॥ इति स्पष्टसूर्यचन्द्रतिथ्यानयनम् ॥

गर्गगोत्रीय स्वनामधन्य कूमाञ्चलीयज्योतिर्विदवर्य श्री पं० हरिदत्त के आत्मज
अल्मोड़ा मण्डलीय 'जुनायल' ग्रामज पर्वतीय श्री केदारदत्त जोशी
कृत ग्रहलाघव स्पष्टाधिकार की उपपत्ति सहित सोदाहरण
'केदारदत्तः' व्याख्या सम्पूर्ण।

अथ पञ्चतारास्पष्टीकरणाधिकारः

खमष्टमरुतोऽद्रिभूभुव उदध्यगोन्यर्योऽष्टदृग्-
दृशो नवनगाश्विनोऽक्षदशनाः शराङ्गाग्नयः ।
गुणांकदहनाः खखाब्धय इभाङ्ग रामाः क्रमान्-
नवाम्बुधिदृशो नभः क्षितिभुवश्चलांका इमे ॥१॥

खं भूकृताः कुवसवोऽद्रिभवाः खतिथ्यो-
ऽष्टाद्रीन्दवो नवनवक्षितयोऽर्कपक्षाः ।
अर्काश्विनः शरखगक्षितयोऽक्षतिथ्यो
गोऽष्टौ खमाशुफलजाः स्मुरिमे विदोंऽकाः ॥२॥

खं तत्त्वानि नगाब्धयोऽष्टषट्काः
पञ्चेभा गजखेचरा रसाशाः ।
नागाशा द्विदिशो नवाहयः षट
षष्टि षट्कगुणा नभो गुरोः स्युः ॥३॥

खमग्न्यङ्गैस्तुल्या रसयमभुवः षट्कधृतयो-
ऽरिसिद्धाः पक्षाभ्राग्नय उदधिनाराचदहनाः ।
द्विशून्योदन्वन्तः खजलधिकृता भूरसकृता-
स्त्रिवेदोदन्वन्तो रसयमगुणाः खं भृगुजनेः ॥४॥

खमिषुक्षितयो गजाश्विनो गो-
दहना नागकृताः पयोधिबाणाः ।
द्विरगेषुमिता हुताशबाणाः
शरवेदास्त्रिगुणाः धृतिः खमार्कैः ॥५॥

मल्लारिः

अथ पञ्चतारास्पष्टीकरणाधिकारो व्याख्यायते । तत्रादौ भौमादीनां सिद्धानि शीघ्रफलानि पंचवृत्तेन वदति । खमिति । क्षितिभुवो भौमस्य चलांकाः शीघ्रफलस्यैतेऽङ्काः स्युः । खं शून्यम् ० । अष्टमरुतोऽष्टपंचाशत् ५८ । अद्रिभूभुव सप्तदशाधिकं

शतम् ११७। उदध्यगोर्व्यश्चतुःसप्तत्यधिकं शतम् १७४। अष्टदृग्दृशोऽष्टाविंशत्यधिकं शतद्वयम् २२८। नवनगाश्विन एकोनाशीत्यधिकं शतद्वयम् २७९। अक्षदशना पञ्चविंशत्यधिकत्रिशती ३२५। शराङ्काग्नयः पञ्चषष्ट्यधिकात्रिशती ३६५। गुणाङ्कदहनास्त्रिनवत्यधिकत्रिशती ३९३। खखाब्धयश्चतुश्शती ४००। इभाङ्गरामा अष्टषष्ट्यधिकत्रिशती ३६८। नवाम्बुधिदृश एकोनपञ्चाशदधिकद्विशती २४९। नभः शून्यम् ०। एते भौमस्य ॥१॥

विदोऽथ बुधस्य एते शीघ्राङ्काः। खं शून्यम्। भूकृता एकचत्वारिंशत् ४१। कुवसव एकाशीते ८१। अद्रिभवाः सप्तदशाधिकशतम् ११७। खतिथ्यः सार्धशतम् १५०। अष्टाद्रीन्दवोऽष्टसप्तत्यधिकशतम् १७८। नवनवक्षितय एकोना द्विशती १९९। अर्कपक्षा द्वादशयुक्ता द्विशती २१२। अर्काश्विनस्त एव २१२। शरखगक्षितयः पञ्चोनद्विशती १९५। अक्षतिथ्यः पञ्चपञ्चाशशदधिकं शतम् १५५। गोऽष्टौ एकोननवतिः ८९। खं शून्यम् ०। एते बुधस्य ॥२॥

अथ गुरोबृस्पतेरेते शीघ्रांकाः। खं शून्यम् ०। तत्त्वानि पञ्चविंशतिः २५। नगाब्धयः सप्तचत्वारिंशत् ४७। अष्टषट्का अष्टषष्टिः ६८। पञ्चेभाः पञ्चाशीति ८५। गजखेचरा अष्टनवतिः ९८। रसाशाः षडधिकं शतम् १०६। नागाशा अष्टोत्तरशतम् १०८। द्विदिशो द्वयुत्तरशतम् १०२। नवाहय एकोनवतिः ८९। षट्षष्टिः ६६। षट्कगुणाः षट्त्रिंशम् ३६। नभः शून्यम् ०। एते गुरोः ॥३॥

अथ भृगुजनेः शुक्रस्येते शाघ्रांकाः। खं शून्यम् ०। अग्न्यङ्गैस्तुल्या अंकास्त्रिषष्टिः ६३। रसयमभुवः षडविंशत्यधिकशतम् १२६। षट्कधृतयः षडशात्यधिकशतम् १८६। अरिसिद्धाः षट्चत्वारिंशदधिकद्विशती २४६। पक्षाभ्राग्नयो द्व्यधिकत्रिशती ३०२। उदधिनाराचदहनाः उदधयश्चत्वारः नाराचा वाणाः पञ्च। दहना अग्नयस्त्रयः एवं चतुष्पञ्चाशदधिकत्रिशती ३५४। द्विशून्योदन्वन्तो द्व्यधिकचतुःशती ४२०। खजलधिकृताश्चत्वारिंशदधिकचतुः शती ४४०। भूरसकृता एकषष्ट्यधिकचतुःशती ४६१। त्रिवेदोदन्वन्तस्त्रिचत्वारिंशदधिकचतुःशती ४४३। रसयमगुणाः षड्विंशत्यधिकत्रिशती ३२६। खं शून्यम् ०। एते शुक्रस्य ॥४॥

अथार्के शनेरेते शीघ्रांकाः। खं शून्यम् ०। इषुक्षितयः पञ्चदश १५। गजाश्विनोऽष्टाविंशतिः २८। गोदहना एकोनचत्वारिंशत् ३९। नागकृता अष्टचत्वारिंशत् ४८। पयोधिबाणाश्चतुष्पञ्चाशत् ५४। द्विर्द्विवारमगेषुमिताः सप्तपञ्चाशत् ५७।५७। हुताशबाणास्त्रिपञ्चाशत् ५३। शरवेदाः पञ्चचत्वारिंशत् ४५। त्रिगुणास्त्रयस्त्रिंशत् ३३। धतिरष्टादश १८। खं शून्यम् ०। एते शनेः शीघ्रांकाः ॥५॥

अत्रोपपत्तिः। अत्र ग्रहस्पष्टीकरणार्थं ग्रहाणामसकृन्मन्दफलानि शीघ्रफलानि प्रसाध्य तत्संस्कृतो ग्रहः स्पष्टो भवति। तद्यथा। प्रथमं शीघ्रफलं प्रसाध्यम्। शीघ्रकेन्द्रस्य दोर्ज्याकोटिज्ये विधाय ततः कोटिज्यान्त्यफलज्ययोः कर्किमृगादिकेन्द्रेऽन्तर-

योगौ क्रमेण सा कोटिः। दोर्ज्या भुजः ततस्तत्कृत्योर्योगपदमिति शीघ्रकर्णः प्रसाध्यः। ततोऽनुपातद्वयात् फलम्। यदि त्रिज्यातुल्यया शीघ्रकेन्द्रदोर्ज्यया परमं शीघ्रफलज्यातुल्यं फलं लभ्यते तदेष्टया किमिति। तोऽन्यो ऽनुपातः यदि शीघ्रकर्णाग्रे इदं फलं तदा त्रिज्याग्रे किमिति त्रिज्यातुल्ययोर्गुणहरयोर्नाशे शीघ्रकेन्द्रदोर्ज्याऽन्त्यफलज्यागुणा शीघ्रकर्णभक्ता इष्टफलज्या भवतीति। तद्धनुः शीघ्रफलम्। अत्रेदं जडकर्म दृस्ट्वाऽऽचार्येण शीघ्रकेन्द्रं पञ्चदशभागवद्धया प्रकल्प्य शोघ्रफलानि प्रसाध्य तानि सावयवान्यतो दशगुणानि। राशिषट्कमध्ये द्वादशः सर्वेषां ग्रहाणां पृथक् पृथगुत्पादितानि। तत्र मन्दावबोधार्यं धूलीकर्मप्रतीत्योच्यते। तत्र प्रथमं भौमशीघ्रफलानयनार्थं शून्यं शीघ्रकेन्द्र प्रकल्प्य जातं शीघ्रफलमपि शून्यं भुजाभावात्। एवं द्वितीयशीघ्रांकोत्पत्तौ शीघ्रकेन्द्रं पञ्चदशभागाः १५। अस्य दोर्ज्या ३१। कोटिज्या ११५।३०। भौमस्य परमशीघ्रफलज्या ७७। अन्यैर्भास्कराद्यैः भूकुञ्जरा ८१ उक्ताः। अस्मिन् काले आचार्येण एतावती ज्ञाता। अतः, इयं कोटिज्या ११५।३० परेणानेन ७७ द्वाभ्यां च गुणिता १७७८७। अनया खाभ्राब्धिशक्रै-१४४०० र्युताः परकृति-५८२८ युक्ता कृता ३८११६। अत्र परकृतिर्युक्तैवकृता क्वचिदूनाऽपि कर्त्तव्या। एवमस्या मूलं जातो शीघ्रकर्णः १९५।७। परेण ७७ दोर्ज्यां गुणिता जाता २३८७। इयं कर्णेन भक्ता जाता १२।१३ अस्या धनुः शीघ्रफलं भागाद्यम् ५।४८ एतत् सावयवमतो दशगुणं जातमेकस्थानम् ५८। अतो भौमस्याङ्को द्वितीयोऽष्टमरुत इत्युक्तः। एवमग्रेऽपि पञ्चदशभागवद्धचा शीघ्रकेन्द्रं प्रकल्प्य सर्वेषां शीघ्राङ्काः। अत्र दोर्ज्याकोटिज्ये राशित्रयमध्येऽतो राशित्रयमध्ये षडेव शीघ्रांका वक्तव्याः। कथमत्र षड्राशिमध्ये द्वादशोक्ताः। उच्येत। इदं शीघ्रफलं कर्णाश्रितम् शीघ्रफलस्य परमाधिक्यं त्रिभे न भवति किञ्चिदधिकेनैव त्रिभेण भवति। कर्णात्यल्पतातु द्वितीय त्रिभे परमफलस्थाने एव भवति। एवं षड्राशिमध्ये कर्णह्रासवृद्धौ। अतः शीघ्रफलानयने पदं त्रिभादूनाधिकं भवति। तद्यथा। प्रथमं पदं त्रिभं शीघ्रफलांशैरधिकम्। द्वितीय शीघ्रफलांशोनम्। तृतीयं शीघ्रफलांशोनम्। चतुर्थं शीघ्रफलांशाधिकमिति ॥

अत एवोक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ।

'चापेन शीघ्रान्त्यफलज्यकायाः।

त्रिभं युतोनोनयुतं पदानि।

दोस्तेषु यातैष्यमयुग्मयुग्मे' इति ॥

अतः षड्राशिमध्ये उक्तानि। षड्राशिभागा अशीत्यधिकशतम्। अतः एते पञ्चदशभक्ता द्वादशैवांका भवन्ति ॥१-५॥

विश्वनाथः

अथ भौमादीनां स्पष्टीकरणाधिकारो व्याख्यायते। तत्र तावद्भौमस्य शीघ्रफलांकानाह। खमष्टमरुत इति। अथ बुधस्य शीघ्रांकानाह। खं भूकृता इति। अथः

गुरोरंकानाह। खं तत्वानीति। अथ शुक्रस्य शीघ्रांकानाह। खमग्न्यङ्गैरिति। अथ शनेरङ्कानाह। खमिषुक्षितय इति। अंकसंज्ञा स्पष्टार्थत्वान्नोक्ता ॥१-५॥

केदारदत्तः

पञ्चतारा ग्रहों के स्पष्टीकरण में १५ अंश शीघ्र केन्द्र से शीघ्र फल साधन कर सौकर्य के लिए उन्हें १० से गुणा कर पूर्णाङ्कों की जो उपलब्धि हुई है उन दशगुणित १२ संख्या के अंकों को आचार्य ने पढ़ा है। इस प्रकार—

(१) शीघ्रफल साधन में, मंगल के शीघ्राङ्क-०।५८।११७।१७४।२२८।२७९।३२५। ३६५।३९३।४००।३६८ और २०९ होते हैं।

(२) शीघ्रफल साधन में, बुध के शीघ्राङ्क-०।४१।८१।११७।१५०।१७८।१९९।२१२। २१२।१९५।१५५।८९ और ० होते हैं।

(३) शीघ्रफल साधन में, गुरु के शीघ्राङ्क-०।२५।४७।६८।८५।९८।१०६।१०८।१०२। ८९।६६।३६ और ० होते हैं।

(४) शीघ्रफल साधन में, शुक्र के शीघ्राङ्क-०।६३।१२६।१८६।२४६।३०२।३५४।४०२ ४४०।४६१।४४३।३२६ और ० होते हैं।

(५) शीघ्रफल साधन में, शनि के शीघ्राङ्क-०।१५।२८।३९।४८।५४।५७।५७।५३।४५ ३३।१८ और ० होते हैं।

अग्रिम श्लोक ६ के अनुसार उक्त शीघ्राङ्कों से प्रत्येक का शीघ्रफल निकलता है।१-५।

उपपत्ति—भौमादि पञ्चतारा ग्रहों के मध्यम मान पूर्व में सिद्ध किये गये हैं। रवि-चन्द्रमा की तरह केवल (मन्द) मृदुफल संस्कार से जैसे सूर्य चन्द्रमा स्पष्ट हो जाते हैं उससे यहाँ पर स्पष्टग्रह साधन प्रक्रिया कुछ गौरव की है।

प्रथमतः मध्यम ग्रह में, शीघ्रफल के आधे का विधिवत् धन ऋण संस्कार करना चाहिए जो अग्रिम श्लोक १० से स्पष्ट होता है।

शीघ्रफल साधन में 'द्राग्दोः फलात्संगुणितात् त्रिमौर्व्या—इस प्रकार शीघ्रफलज्या = $\frac{\text{शीघ्र केन्द्रज्या} \times \text{अन्त्यफलज्या}}{\text{शीघ्र कर्ण}}$ इस ज्या का जो चापांश वही शीघ्र फल ज्या होती है।

आचार्य ने यहाँ पर लाघव के लिए प्रत्येक शीघ्र केन्द्रांश* को 15° मानकर शीघ्र अङ्क पढ़े हैं। १५ अंश केन्द्रांश में आनीत सावयव फल को दश गुणित करनेसे उन्हें निरयवव देखकर पढ़ा है। इन अंकों से साधित शीघ्र फल दश गुणित होने से उनमें १० का भाग देकर लब्धफल को शीघ्रफल कहना समीचन है।

जब ग्रह पृथ्वी से अत्यन्त दूर में अपनी कक्षा के उच्च विन्दु पर रहता है उस समय भूगर्भ केन्द्र से ग्रह उच्च विन्दु तक की रेखा जिसे शीघ्रकर्ण कहते हैं वह बहुत

---

* श्रीमद्भास्कराचार्य सिद्धान्त शिरोमणि ग्रहगणिताध्याय के स्पष्टाधिकार के श्लोक ३२ की शिखाभाष्य की उपपत्ति ले० केदारदत्त जोशी देखिए।

अर्थात परम लम्बी, तथा ग्रह कक्षा के नीचे बीच विन्दुपर पृथ्वी से परम अल्प दूरी की कर्ण रेखा लघ्वी होती हैं। अर्थात् उच्च से नीच अर्थात् ६ राशि = १८०° के बीच में कर्ण की परमाधिकत्व एवं परम अल्पता प्रत्यक्षतः सही है। इस दूरी के १८० के परम केन्द्र को १५°, १५°, अंश प्रत्येक केन्द्र मानने से १८० ÷ १५ = सावयव १२ अंक उत्पन्न होते हैं। प्रथम केन्द्रांश शून्य से प्रारम्भ होकर अन्तिम केन्द्रांश का पर्यवसान भी शून्य में ही होगा स्वतः सिद्ध है।

मंगल का प्रथम शीघ्र अंक जैसे ५८ है वह कैसे? खगोल के महान् आचार्य मल्लारिः ने अपनी टीका में स्पस्ट किया है। प्रकारान्तर से यहाँ पर उसका गणित दिखाया जा रहा है। यथा--

यदि मंगल या किसी भी ग्रह का शीघ्राङ्क = ०, तो शीघ्रफल भी = ० यदि मंगल का प्रथम शीघ्र केन्द्रांश=१५° तो ज्या गणित से ज्या १५°=३१ कोटि अंश = ९०° − १५°=७५°, शीघ्र के० को० ज्या = ११५।३०, मंगल के शीघ्र फल का महत्तम अंक ४०० ÷ १० = ४०° है इसकी ज्या = ७७ ग्रह गणक 'भास्कराचार्य' के स्पष्टाधिकार के श्लोक २९ के अनुसार होती है ग्रह कर्ण = $\sqrt{(\text{त्रि०}^2 + \text{अन्त्य फल ज्या}^2) + (११५।३०)७७ \times २}\sqrt{३८११६}$ = १९५=शीघ्र कर्ण। अतः इष्ट स्थानीय शीघ्रफल ज्या= $\frac{\text{शी के०ज्या} \times \text{अन्त्यज्या}}{\text{शी० क}} = \frac{३१ \times ७७}{१९५}$

= १२।१४ १२।१४ ज्या का चाप = ५°।४८' इसे सावयव करने के लिए दश से गुणा करने से ५८°।० मंगल का द्वितीय शीघ्राङ्क जो आचार्य ने पढ़ा है सोपपत्तिक सही है। इस प्रकार मंगल तथा अन्य चारों बु० वृ० शु० श० ग्रहों के सभी शीघ्राङ्क उपपन्न होते हैं ॥१-५॥

भौमार्कीज्यविहीनमध्यमरविः स्यात् स्वाशुकेन्द्रं तु
विद्भृग्वोरुक्तमिदं रसोर्द्ध्वमिनभाच्छुद्धं तदंशा दिनैः।
भक्ता खादिफलक्रमादिह गतांकोऽसौ क्षयद्‌घर्या हता-
च्छेषाद्बाणकुलब्धिहीनयुगयं दिग्हृल्लवाद्यं फलम् ॥६॥

मल्लारिः

एवं शीघ्रफलांकानुत्वेदानीं तत्कर्त्तव्यतामेकवृत्तेनाह भौमेति। भौभो मङ्गलः आर्किः शनिः ईज्यो गुरुः एभिर्विहीनो मध्यमरविः स्वस्य आशुकेन्द्रं शीघ्रकेन्द्रं भवति। विद्भृग्वोः शीघ्रकेन्द्रमहर्गणादुक्तमस्ति। एतत् केन्द्रं चेद्रसोर्ध्वं षड्राश्याधिकं तर्हि इनभाद्द्वादशराभिभ्यः शुद्धं तस्यांशा दिनैः पञ्चदशभिर्भक्ताः सन्तः खादिफलक्रमात्। खं शून्यमादिर्यस्यति। एवं भूतो यः फलक्रमस्तस्मादसौ गतांकः अग्रांकेन सह अन्तरे क्रियमाणे यः क्षयो वा वृद्धिः स्यात् तया हताद् गुणिताच्छेषाद्बाणकुलब्धिः पञ्चदशांशस्तेन क्षये हीनः। वृद्धौ युक्तः कार्यः। असौ दिग्हृद्दशभक्तो भागाद्यं शीघ्रफलं भवति। तन्मेषादिकेन्द्रे धनं तुलादिकेद्रे ऋणं पूर्वमेवोक्तमस्ति।

अत्रोपपत्तिः। यदि पञ्चदशभागैरेकः शीघ्रांकस्तैरष्टैः केन्द्रभागैः किम्। एवं यल्लब्धं तन्मितो गतः स्यात्। ततः शेषादनुपातः। यदि पञ्चदशभागैर्गतैष्यान्तरतुल्या ह्रासवृद्धिर्लभ्यते तदा शेषांशैः किमिति। फलेन क्षये हीनो वृद्धौ युक्तो गतांकः कार्य एव। ततो दशगुणांकाः सन्त्यतो दशभिर्भक्तो भागाद्यं शीघ्रफलं भवतीत्युपपन्नम्।

विश्वनाथः

अथैभ्यः शीघ्रफलसाधनमाह। भौमार्कीज्यंति। भौमो मङ्गलः। आर्किः शनिः। ईज्यो गुरुः। एभिर्विहीनो मध्यमरविः। स्वस्य आशुकेन्द्रं शीघ्रकेन्द्रं भवति। विद्भृग्वोरहर्गणादागतं तत् तयोः शीघ्रकेन्द्रं स्यात्। इदं रसोर्ध्वं षड्भादूर्ध्वमधिकं चेत् तदा इनभाद्द्वादशराशिभ्यः शोध्यं शेषस्यांशाः कार्याः ते पञ्चदशभक्ताः शून्यादिफलगणनया गतांको भवेत्। असौ गतांकः। तदग्रिमांकः। तयोरन्तरं कार्यं तेन भागशेषं गुण्यम्। पञ्चदशभक्तं फलेन। गतांको हीनो युक्तः कार्यः। तद्यथा। एष्यांकश्चेदूनस्तदा हीनः। एष्यांकोऽधिकस्तदा युक्तः कार्यः। तदनन्तरं दश-१० भक्तो भागाद्यं शीघ्रं फलं स्यात्। मेषादिकेन्द्रे धनं तुलादिकेण्द्रे ऋणमिति पूर्वमेवोक्तमस्ति ॥९॥

केदारदत्तः

मध्यमाधिकार में अहर्गण व चक्र से साधित मध्यम मंगल, गुरु और मध्यम शनि को मध्यम सूर्य में घटा देने से इन तीनों के शीघ्र केन्द्र हो जाते हैं। मध्यम बुध और मध्यम शुक्र = मध्यम सूर्य के तुल्य होते हैं। मध्यमाधिकार से यह ज्ञात कर लिया गया है। साथ ही मध्यमाधिकार में ही बुध और शुक्र के शीघ्र केन्द्रों का भी गणितोदाहरण पूर्वक ज्ञान हो चुका है। इस उक्त प्रकार पाँचों तारा ग्रहों के शीघ्र केन्द्र ६ राशि (१८०°) से कम हों तो यथावत् रखकर यदि ६ राशि (१८०°) से अधिक होने पर उन्हें पृथक्-पृथक् १२ राशियों में कम करके जो अंश हो उनमें १५ का भाग देने से शून्य आदिक लब्धि तुल्य अंक का पठित शीघ्राङ्क और अग्रिम अंक के शीघ्राङ्कों के अन्तराङ्क से शेष अंशों को गुणा कर गुणनफल में १५ से भाग देने से उपलब्ध फल को (गताङ्क से अग्रिमाङ्क अधिक हो तो गताङ्क व शीघ्राङ्क का अन्तर चय = ऋद्धि यदि गताङ्क से अग्रिमाङ्क कम हो तो अन्तराङ्क क्षय होता है चयात्मक अन्तराङ्क में गताङ्क में जोड़ने, और क्षयात्मक अन्तराङ्क होने पर गताङ्क में घटाने से जो प्राप्त हो उसमें १० का भाग देने से पञ्चताराग्रहों का शीघ्रफल सिद्ध होता है ॥९॥ (सभी गणितोदाहरणादि आगे के श्लोक १० से समझिये।)

उपपत्तिः—मंगल, गुरु और शनि का शीघ्रोच्च मध्यम रवि होने से शीघ्र उच्च और मध्यम ग्रह का अन्तर शीघ्र केन्द्र होता है। नीच से उच्च एवं उच्च से नीच तक के ६ राशि के अन्तर में फल को ह्रास वृद्धि की तुल्यता से यहाँ पर ६ राशि तक परम केन्द्र होना समुचित होने से से केन्द्र ६ राशि से अधिक होने से इस केन्द्र को १२ राशि में घटाना भी युक्ति युक्त होता है। आचार्य ने १५°, १५° केन्द्र कल्पना कर जो शून्यादिक १२ जगह दश गुणित फल पढ़े हैं तदनुसार केन्द्रांश में १५ का भाग देकर लब्धि तुल्य सख्यक गताङ्क

व शेषाङ्क सम्बन्धी शीङ्काङ्कों के ह्रास वृद्धि रूप अंक से गुणित शेषांश में १५ का भाग देना अनुपात सिद्ध होता है। यदि १५ अंशों में गतांक ऐष्यांकों का क्षयाचयात्मक अन्तर तो शेषांश में क्या ? आगत फल को गतांक में चय, ह्रास क्रम से जोड़ना, घटाना भी युक्ति युक्त होता है। शीघ्राङ्कों को दश गुणित पढ़ा है इसलिए आगत फल में १० दश का भाग देना भी उचित है ।।६।।

खं गोऽश्विनोऽद्रिमरुतोऽक्षगजा नवाशाः
सिद्धेन्दवः खदहनक्षितयोऽसृजोऽङ्काः ।
मान्दा बुधस्य खमिनाः कुदृशोऽष्टपक्षा
देवाः शरानलमिता रसवह्नयः स्युः ।।७।।

खेन्द्रर्क्षाणि नवाग्नयोऽह्युदधयोऽक्षाक्षा नगाक्षा गुरोः
शुक्रस्याऽभ्ररसेशविश्वमनवो द्विर्बाणचन्द्राः क्रमात् ।
खं गोऽब्जाः खकृताः खषट्-नगनगा गोऽष्टौ त्रिनन्दाः शनेः
शुद्धोऽब्ध्यद्रिषडग्निनागगृहतः स्यान्मन्दकेन्द्रं कुजात् ।।८।।

मल्लरिः

एवं शीघ्रांकानुक्त्वेदानीं मान्दांकान् मन्दकेन्द्रसाधनं च वृत्तद्वयेनाह। खमिति। असृजो भौमस्यैते मान्दा मन्दफलांकाः स्युः। खं शून्यम् ०। गोऽश्विन एकोनत्रिंशत् २९। अद्रिमरुतः सप्तपञ्चाशत् ५७। अक्षगजाः पञ्चाशीतिः ८५। नवाशा नवोत्तरशतम् १०९। सिद्धेन्दवश्चतुर्विंशत्यधिकशतम् १२४। खदहनक्षितयस्त्रिंशदधिकशतम् १३० ।। बुधस्यैते। खं शून्यम् ०। इना द्वादश १२। कुदृश एकविंशतिः २१। अष्टपक्षा अष्टाविंशतिः २८। देवास्त्रयस्त्रिंशत् ३३। शरानलमिताः पञ्चत्रिंशन्मिताः ३५। रसवह्नयः षट्त्रिंशत् ३६ ।। गुरो रेते। खं शून्यम् ०। इन्द्राश्चतुर्दश १४। ऋक्षाणि सप्तविंशतिः २७। नवाग्नयः एकोनचत्वारिंशत् ३९। अहयोऽष्टौ। उदधयश्चत्वारः। एवमष्टचत्वारिंशत् ४८। अक्षाक्षाः पञ्चपञ्चाशत् ५५। नगाक्षाः सप्तपञ्चाशत् ५७ ।। अत्र शुक्रस्य। अभ्रं शून्यम् ०। रसः षट् ६। ईशा एकादश ११। विश्वे त्रयोदश १३। मनवश्चतुर्दश १४। द्विर्द्विवारम्। बाणचन्द्राः पञ्चदश १५।१५ ।। अथ शनेः। खं शून्यम् ०। गोऽब्जा एकोनविंशतिः १९। खकृताश्चत्वारिंशत् ४०। खषट् षष्टिः ६०। नगनगाः सप्तसप्ततिः ७७। गोऽष्टौ एकोननवतिः ८९। त्रिनन्दास्त्रिनवतिः ९३ ।। ग्रहः क्रमादब्ध्यद्रिषडग्निनागगृहतः शुद्धः कुजाद्भौममारभ्य मन्दकेन्द्रं स्यात्। एतदुक्तं भवति। अब्धयश्चत्वारो राशयो भौममन्दोच्चम्। अद्रयः सप्त राशयो बुधस्य। षड्गुरोः। अग्नयस्त्रयः ३ शुक्रस्य। नागा अष्टौ ८ राशयः शनेः। एवं स्वस्वमन्दोच्चाद्ग्रहः शोधितो मन्दकेद्रं भवेदिति।

अत्रोपपत्तिः। मन्दोच्चकेन्द्रवासना मन्दफलपरमत्वज्ञानवासना च पूर्वमेवोक्ता अत्र मन्दफलानयने राशित्रयमेव पदं गृहीतं तत् कथं कर्णानङ्गीकारात्। अहो अत्र शीघ्रफलार्थं कर्णो गृहीतः। मन्दफलार्थं न गृहीतः। स कथम्। कर्णो हि ग्रहकक्षा-व्यासार्धम्। एवं मन्दकर्णो मन्दप्रतिमण्डलव्यासार्धम्। शीघ्रकर्णः शीघ्रप्रतिमण्डल-व्यासार्धम्। एवं यत् साधितं मन्दफलं तन्मध्यमात्। मध्यमो मन्दप्रतिमण्डलेऽतो जातं मन्दफलं मन्दकर्णाग्रस्थानीयम्। अतो मन्दफलानयने मन्दकर्णोऽपि ग्राह्यः स सर्वैरपि नाङ्गीकृतः। तत्र ग्रहकर्णग्रहणे एकं कारणं वक्तव्यम्। शीघ्रफलान्मन्द-फलस्योनत्वात् स्वल्पान्तरत्वान्मन्दकर्मणि कर्णो न गृहीतः। एवं चेत् तर्हि स्वल्पेऽपि शीघ्रफले कर्णो गृह्यते। तदधिके मन्दफले न गृह्यते। एवं कथमिति चेन्नो। यतोऽत्र युक्त्या हेतुज्ञानं नैव भवति। फलवासना विचित्राऽस्ति। एतादृशेनैव कर्मणा आकाशे ग्रहस्पष्टत्वं दृश्यते। अतः प्रत्यक्षप्रमाणोपलब्ध्या एतत् कृतमिति कक्तव्यम् इति सर्वं निरवद्यम्॥

'स्वल्पान्तरत्वान्मृदुकर्मणीह कर्णः कृतो नेति च केचिदूचुः।
नाशंकनीयं न चले किमित्थं यतो विचित्रा फलवासनाऽत्र' इति॥

अत्र त्रिज्यातुल्यया मन्दकेन्द्रदोर्ज्यया यदि परमं मन्दफलं तदेष्टदोर्ज्यया किमिति। एवं पञ्चदशभागवृद्धया मन्दकेन्द्रं प्रकल्प्य अनया युक्त्या मन्दफलानि प्रसाध्यानि। तानि सावयवान्यतो दशगुणानि कृत्वा राशित्रयमध्ये ग्रहाणां पृथक् पृथक् षडङ्का मान्दा भवन्तीत्युपपन्नम्। अत्र धूलीकर्म। प्रथमांको भुजाभावाच्छून्यम्। ततः पञ्चदश १५ भागास्तेषां ज्या ३१। भौमपरममन्दफलेन गुणिता जाता ३४७। १२। इयं खार्क-१२० भक्ता जातं फलम् २।५४। इदं सावयवत्वाद्दशगुणं २९ जातो भौमस्य द्वितीयो मान्दांकः। एवं सर्वेषां सर्वेऽङ्का उत्पादनीया॥

विश्वनाथः

अथः मन्दफलसाधनार्थं भौमादीनां मन्दांकानाह। खंगोश्विन इति। खेन्द्र-क्ष्माणीति स्पष्टोऽर्थः। अथ मन्दकेन्द्रसाधनमाह। शीघ्रपलार्धसंस्कृतो ग्रहोऽब्ध्यद्रि-षडग्निनागमितराशिभ्यः शुद्धः क्रमेण भौममारभ्य मन्दकेन्द्रं स्यात्। एतदुक्तं भवति। अब्धयश्चत्वारो ४ राशयो भौममन्दोच्चम्। अद्रयः सप्त ७ राशयो बुधस्य। षट् ६ गुरोः। अग्नयस्त्रयः ३ शुक्रस्य अष्टौ ८ शनेः। एवं स्वस्वमन्दोच्चाद्ग्रहे शोधिते मन्दकेन्द्रं भवति॥७-८॥

केदारदत्तः

मांगलादिक पञ्चतारा ग्रहों का मन्दफल साधन के लिए शून्यादिक ६ तक मन्दांक निम्न भाँति समझिए।

मंगल के मन्दांक ०।२९।५७।८५।१०९।१२४ ओर १३०, बुध के ०।१२.२१।२८। ३३।३५।३६ गुरु के ०।१४।२७।३९।४८।५५।५७ शुक्र के ०।६।११।१३।१४।१५।१५ और

शनि के, ०।१९।४०।६०।७७।८९ और १३ मन्दांक होते हैं । तथा जिस प्रकार मध्यमाधिकार में सूर्य का मन्दोच्च स्थिर एक रूप का ७८° = (२।१८°) आचार्य ने बताया है उसी प्रकार यहाँ भौमादिक पाँचों ग्रहों की मन्दोच्च राशियाँ क्रमशः मंगल की ४, बुध की ७, गुरु की ६, शुक्र की ३ एवं शनि की मन्दोच्च राशि ८ है । अर्थात् उक्त मन्दोच्च राशियों में पृथक् मंगलादिकों को घटाने से उनका पृथक्-पृथक् मन्द केन्द्र होता है ।।७-८।।

उपपत्तिः—मन्दफल साधन में भी ३ राशि तक केन्द्र कल्पना में केन्द्रांशों में १५ का भाग देकर $\frac{९०}{१५}$ = ६ स्थानीय दश गुणित मन्दफलांक पठित किए गये हैं । शीघ्रफल साधन में शीघ्र कर्णाग्रीय भुज फल को त्रिज्या अनुपात से व्यासार्धीय वृत्त में जैसे लाया गया है तद्वत् इस मन्दफल में कर्णानुपात आवश्यक होता है, ठीक है, किन्तु अत्यन्त अल्प अन्तर जो अवश्य होता है (अनिर्वाच्य सा अन्तर) वह 'त्याज्य' है ऐसा कह सकते हैं अथवा बिना कर्णानुपात किये भी फल की सही उपलब्धि हो जाने से भी कर्णानुपात अनावश्यक समझा गया है । जैसे श्रीमद्भास्कराचार्य ने भी स्वल्पान्तरत्वात् मृदुकर्मणीह में फलसाधन वासना (उपपत्ति) विचित्र सी कही है । जैसा—भगवदवतार श्रीमान् मल्लारि ने उक्त व्याख्या में सुस्पष्ट भी कहा है ।

मल्लारि ने उदाहरण द्वारा मंगल का प्रथम मन्दांक कैसे उत्पन्न होता है वह दिखाया है । जैसे प्रथम मन्द केन्द्रांश यदि = १५° की ज्या = ३१, मंगल की प्रथम परम मन्द परिधि से ७० से अनुपात द्वारा $\frac{\text{७०} \times \text{मन्द के ज्या}}{\text{३६०}^{\circ}}$, के ज्या = ३१ अतः $\frac{\text{७०} \times \text{३१}}{\text{३६०}}$ = ६°।२'

इसका चाप = २°।५४। दश गुणित मन्दांक पढ़े गये हैं अतः २°।५४ × १० = २०।५४० = २९°।० इस प्रकार शून्य आदि मन्दांक क्रम से मंगल ग्रह का १५° केन्द्र मान में दश गुणित मन्द फलांक = २९ उपपन्न होता है ।

मन्दोच्चों की अत्यन्त अल्प गति होने से स्थिर एक रूप के भौमादि पञ्चतारा ग्रहों के स्थिर एक रूप मन्दोच्च कहे गये है ।।७-८।।

मृदुकेन्द्रभुजांशका दिनाप्ताः
फलमङ्कः प्रगतस्तदूनितैष्यः ।
परिशेषहतो दिनाप्तियुक्तो
दशभक्तः फलमंशकादि मान्दम् ।।९।।

मल्लारिः

एवं मान्दांकानभिधायेदानीं मन्दफलकर्त्तव्यताप्रकारमेकवृत्तेनाह । मृद्विति । मृदुकेन्द्रस्य ये भुजभागास्ते दिनैः पञ्चदशभि-१५ राप्ता भक्ताः सन्तो यत् फलं तन्मितः प्रगतोऽङ्क स्यात् । तेन गतांकेन ऊनितो य एष्योऽङ्कः स परिशेषेण शेष-

भार्गैर्हतो गुणितस्तस्माद्या दिनाप्तिः पञ्चदशभागस्तेन युक्तः स गताङ्कस्ततो दशभक्तोंऽशकादि भागादि मन्दफलं भवतीत्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिरनुपातद्वयेन। यदि पञ्चदशभागैरेको मान्दाङ्कस्तदेष्टैर्मंदकेन्द्रांशैः किमिति। अतो गतांशा दिनाप्ता गतांकः स्यादिति। शेषादनुपातः। यदि पञ्चदशभागैरेतावती गतैष्यान्तरतुल्या वृद्धिर्लभ्यते तदा शेषांशैः किमिति। अंका दिग्गुणिताः सन्त्यतस्तद्दशभिर्भाज्यं फलं भवतीत्युपपन्नम् ॥९॥

विश्वनाथः

अथ भौमादीनां मन्दफलसाधनमाह। मृदुकेन्द्रेति। उदाहरणमेव व्याख्या ॥९॥

केदारदत्तः

मन्द केन्द्र के भुजांशों में १५ का भाग देने से लब्धि अंक का नाम गतांक होता है। उसे गतांक सम्बन्धी फलांक को अग्रिम अंक के मान में घटाकर शेष से गुणा कर गुणनफल में १५ का भाग देकर लब्ध फल को गतांकमान में जोड़कर उसमें १० का भाग देने से अंशादिक लब्धि का मान मन्दफल होता है ॥९॥ (अग्रिम १० श्लोक में उदाहरण देखिए)।

उपपत्ति—यदि १५ अंश में एक गतांश तो केन्द्रांश में क्या? $\frac{\text{मन्द केन्द्रांश}}{१५}$ = लब्धि = गतांक। शेष = शेषांश। शेषाशों से पुनः यदि १५° केन्द्रांश में गम्य-गत अंकों का अन्तर तो शेषांश में $\frac{\text{गत० ऐ० अंकान्तर} \times \text{शेषांश}}{१५}$ = फल। गतांक फल + फल = इष्ट केन्द्रांश जनित १० दश गुणित मन्दफल = म०फ०, अतः $\frac{\text{म०फ०}}{१०}$ = अभीष्ट मन्दफल। आचार्य ने मन्दफलांक १० दश गुणित पढ़े हैं अतः १० से भाग देना उचित है। उपपन्न होता है ॥९॥

प्राङ्मध्यमे चलफलस्य दलं विदध्यात्
तस्माच्च मान्दमखिलं विदधीत मध्ये।
द्राक्केन्द्रकेऽपि च विलोममतश्च शीघ्रं
सर्वं च तत्र विदधीत भवेत् स्फुटोऽसौ ॥१०॥

मल्लारिः

एवं शीघ्रफलमन्दफलसाधनमुक्त्वेदानीं ग्रहे कथं संस्कार्यमित्येकवृत्तेनाह। प्रागिति। प्राक् आदौ अहर्गणोत्पन्नमध्यमे ग्रहे चलफलस्य शीघ्रफलस्य दलमर्धं यथागतं धनर्णं विदध्यात्। प्रदद्यात्। तस्माद्दत्तशीघ्रार्धान्मान्दं मन्दफलं साध्यम्। तदखिलमपि मन्दफलं मध्यमेऽहर्गणोत्पन्ने यथागतं विदधीत कुर्वीत। तन्मन्दफलं द्राक्केन्द्रे शीघ्रकेन्द्रे पूर्वकृते विलोमं विपरीतं धनर्णं देयम्। अतो मन्दफलसंस्कृत-

शीघ्रकेन्द्रात् शीघ्रफलं साध्यम्। तत् सर्वं तस्मिन् दत्तमन्दफले विदधीत कुर्वीत असौ ग्रहः स्फुटो भवतीत्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः प्रत्यक्षोपलब्धिरेव ॥१०॥

विश्वनाथः

अथ फलदानक्रममाह। प्रागिति। प्राक् पूर्वं मध्यमे ग्रहे चलफलस्य शीघ्रफलस्य दलमर्धं यथागतं धनर्णं विदध्यात् प्रदद्यात्। तस्मात् दत्तशीघ्रफलार्धाद्ग्रहान्मान्दं मन्दफलं साध्यम्। तदखिलं संपूर्णं मध्यमे ग्रहे विदधीत कुर्यात्। तन्मन्दफलं द्राक्केद्रे पूर्वानीतशीघ्रकेन्द्रे विलोम विपरीतं धनर्णं देयम्। धनं चेदृणमृणं चेद्धनामित्यर्थः। तद्द्वितीयं शीघ्रकेन्द्रं स्यात्। तस्माच्छीघ्रफलं साध्यम्। तत् सर्वं मन्दस्पस्टग्रहे प्राग्वद्धनभृणं विदधीत स स्पष्टः ग्रहो भवेत् ॥

अथ भौमस्पष्टीकरणम्। तत्र शीघ्रोच्चं मध्यमो रविः १।४।१३।४२। भौमेन ९।२९।५५।१३। रहितो जातं शीघ्रकेन्दम् ३।४।१८।२९। अस्यांशाः ९४।१८।२८ पञ्चदशभि-१५ र्भक्ताः फलम् ६ खादिफलक्रमाद्गतांकः ३२५। एष्याकः ३६५। अनयोरन्तरेण ४०। शेषं ४।१८।२९ गुणितं १७२।१९।२० पञ्चदश-१५ भक्तं फलम् ११।२९।१७ अनेनाग्रिमस्याधिकत्वाद्गतांको ३२५ युक्तः ३३६।२९।१७ अयं दश-१० भक्तो लब्धमंशाद्यम् ३३।३८।५५। अर्धितं मेषादिकेन्द्रत्वाज्जातं शीघ्रफलार्धं धनम् १६।४९।२७। अनेन संस्कृतो भौमः १०।१६।४४।४०। अथ मन्दफलानयनम्। भौमस्य मन्दोच्चम्-४।०।० । फलार्धसंकृत भौमेन रहितं जातं मन्दकेन्द्रम् ५।१३।५५।२०। अस्य भुजांशाः १६।४४।४०। दिना-१५ प्ता लब्धम् १। गतांकः २९। एष्यांकः ५७। अनयोरन्तरेण २८ शेषं १।४४।४०। गुणितं ४८।५०।४० पञ्चदश-१५ भक्तं फलम् ३।१५।२२। अनेन गतांको २९ युक्तो ३२।१५।२२ दशभक्तो मेषादिकेन्द्रत्वाज्जातं मन्दफलं धनम् ३।१३।३२। अनेन संस्कृतो मध्यमो भौमो जातो मन्दस्पष्टः १०। ३।८।४५। अथ पुनः शीघ्रफलानयनम्। तत्र प्रथमं शीघ्रकेन्द्रम् ३।४।१८।२९। मन्दफलं धनम् ३।१३।३२। द्राक्केन्द्रके विलोममित्युक्तत्वान्दमन्दफलेन रहितं शीघ्रकेन्द्रं जातं द्वितीयशीघ्रफलानयने शीघ्रकेन्द्रम् ३।१।४।५७ अस्यांशा-९१।४।५७। दिने-१५ भंक्ताः फलम् ६। गतांकः ३२५। एष्यांकः ३६५। अनयोरन्तरेण ४० शेषं १।४।५७ गुणितं ४३।१८।०० पञ्चदभि-१५ भंक्तं फलम् २।५३।१२। अनेन गतांको ३२५, युक्तः ३२७।५३।१२। दश-१० भक्तः फलंमशाद्यं शीघ्रफलं धनम् ३२।४७।१९। अनेन युक्तो मन्दस्पष्टो जातः स्पष्टो भौमः ११।५।५६।४॥

अथ बुधस्पष्टीकरणम्। तत्र प्रागानीतं बुधस्य शीघ्रकेन्द्रम् १।१७।१४।५०। अस्यांशाः ४७।१४।५० पञ्चदभि-१५ भंक्ता फलम् ३। गतांकः ११७। एष्यांकः १५०। अनयोरन्तरेण ३३। शेषं २।१४।५०। गुणितं ७४।९।३० पञ्चदभि-१५ भंक्तं फलम् ४।५५।३८। अनेन गतांको ११७ युक्तः १२१।५६।३८। दशभक्तः फलम् १२।११।३९। अर्धितं जातं शीघ्रफलार्धं धनम् ६।५।४९। मध्यमो रविः १।४।१३।४२। स एव बुधः

फलार्धसंस्कृतः १।१०।१९।३१। अनेन रहितं मन्दोच्चम्। ७।०।०।० जातं मन्दकेन्द्रम् ५।१९।४०।२९। अस्य भुजाशाः १०।१९।३१। पञ्चदभि-१५ भंक्ताः फलम् ०। गतांकः ०। एष्यांकः १२। अनयोरन्तरेण १२ शेषं १०।१९।३१। गुणित १२३।५४।१२। पञ्चदशि-१५ भंक्तं फलम् ८।१५।३६। अनेन गतांको० युक्तः ८।१५।३६। दश-१० भक्तः फलमंशाद्यं मान्द धनम् ०।४९।३३। अनेन युक्तो जातो मन्दस्पष्टो बुधः १।५।३।१५। मन्दफलेन ०।४९।३३ रहितं प्रागानीतं शीघ्रकेन्द्रं १।१७।१४।५० जातं शीघ्रकेन्द्रम् १।१६।२५।१७। अस्याशाः ४६।२५।१७ दिनै-१५ भंक्ताः फलम् ३। गतांकः ११७। एष्यांकः १५०। अनयोरन्तरेज ३३ शेषं १।२५।१७ गुणितं ४६।५४।२१। पञ्चदश-१५ भक्तं फलम् ३।७।३७। अनेन गतांको ११७ युक्तो १२०।७।३७। दश-भक्तो लब्धमंशाद्यम् शीघ्रफलं धनम् १२।०।४५। अनेन युक्तो मन्दस्पष्टो जातः स्पष्टो बुधः १।१७।४।० ॥

अथ गुरुस्पष्टीकरणम्। तत्र शीघ्रोच्चं मध्यमो रविः १।४।१३।४२। गुरुणा ४।८।१५।१७ रहितं जातं शीघ्रकेन्द्रम् ८।२५।५८।२५। इदं षड्राश्यधिकमतो द्वादशेभ्यः शोधितं जातम् ३।४।१।३५। अस्यांशाः ९४।१।३५। पञ्चदशभि-१५ भंक्ताः फलम् ६। गतांकः १०६। एष्यांकः १०८। अनयोरन्तरेण २। शेषं ४।१।३५। गुणितं ८।३।१० पञ्चदश-१५ भक्तं फलेन ०।३२।१२। गतांको-१०६ ऽग्रिमस्याधिकत्वाद्युक्तः १०६।३२।१२। दशभक्तः फलमंशाद्यम् १०।३९।१३। अर्धितं तुलादिकेन्द्रत्वाज्जातं शीघ्रफलार्धमणम् ५।१९।३६। अनेन रहितो गुरुः ४।२।५५।४१। अयं मन्दोच्चात् ६।०।०।०। शोधितो जातं मन्दकेन्द्रम् १।२७।४।१९। अस्य भुजांशाः ५७।४।१९ पञ्चदश-१५ भक्ताः फलम् ३। गतांकः ३९। एष्यांकः ४८। अनयोरन्तरेण ९ शेषं १२।४।१९ गुणितं १०८।३८।५१ पञ्चदश-१५ भक्तम् ७।१४।३५। अनेन गतांको ३९ युक्तः ४६।१४।३५। दशभक्तः फलमंशादि मेषादिमन्दकेन्द्रत्वाद्धनम् ४।३७।२७। अनेन युक्तो गुरुर्जातो मन्दस्पष्टा गुरुः ४।१२।५२।४४। प्रथमशीघ्रफलानयने शीघ्रकेन्द्रम् ८।२५।५८।२५ एतन्मध्ये विपरीतं मन्दफलं संस्कृतं जातं शीघ्रकेन्द्रम् ८।२१।२०।५८। इदं षड्राश्यधिकमतो द्वादशराशिभ्यः शोधितं जातम्। ३।८।३९।२। अस्यांशाः ९८।३९।२। दिनै-१५ भंक्ताः फलम् ६। गतांकः १०६। एष्याङ्कः १०८। अनयोन्तरेण २ शेषं ८।३९।२ गुणितं १७।१८।४। पञ्चदश-१५ भक्तं लब्धम् १।९।१२। अनेन गताङ्का १०६ युक्तः १०७।९।१२। दश-१० भक्तस्तुलादिकेन्द्रत्वाज्जातं शीघ्रफलमणम् १०।४२।५५। अनेन रहितो मन्दस्पष्टो जातःस्पष्टो गुरुः ४।२।९।४९ ॥

अथ शुक्रस्पष्टीकरणम्। तत्र प्रागानीतं शुक्रस्य शीघ्र केन्द्रम् ३।५।४१।३५। अस्यांशाः ९५।४१।३५। पञ्चदश-१५ भक्ताः फलम् ६। गताङ्कः ३५४। एष्याङ्कः ४०२। अनयोरन्तरेण ४८ शेषं ५।४१।३५ गुणितं २७३।१६।० पञ्चदश-१५ भक्तं फलम् १८।१३।४ अनेन गतांको ३५४ युक्तः। ३७२। १३।४। दश-१० भक्तः फलमंशाद्यम् ३७।१३।१८। अर्धितो मेषादिकेन्द्रत्वाज्जातं शीघ्रफलार्धं धनम् १८।३६।३९।

मध्यमरविः १।४।१३।४२। स एव शुक्रः। फलार्धसंस्कृतः १।२२।५०।२१। अयं मन्दोच्चात् ३।०।०।०। शोधितो जातं मन्दकेन्द्रम्। १।७।९।३९। अस्य भुजांशाः ३७।९।३९। पञ्चदश-१५ भक्ताः फलम् २। गताङ्कः ११। एष्याङ्कः १३। अनयोरन्तरेण २ शेषं ७।९।३९ गुणितं १५।१९।१८ पञ्चदश-१५ भक्तं फलम् ०।५७।१७। अनेन गताङ्को ११ युक्तः ११।४७।१७। दश-१० भक्तः फलमंशाद्य मान्दं मेषादिकेन्द्रत्वाद्धनम् १।११।४३। अनेन संस्कृतः शुक्रः १।४।१३।४२। जातो मन्दस्पष्टः शुक्रः १।५।२५।५। प्रागानीतं शीघ्रकेन्द्रम् ३।५।४१।३५। मन्दफलेन १।११।४३ रहितं जातं शीघ्रकेन्द्रम् ३।४।२९।५२। अस्यांशाः ९४।२९।५२। पञ्चदश-१५ भक्ताः फलम् ६। गतांकः ३५४। एष्यांकः ४०२। अनयोरन्तरेण ४८ शेषं ४।२९।५२ गुणितं २१५।५३।३६। पञ्चदश-१५ भक्तम् १४।२३।३४। अनेन गतांको ३५४ युक्तः ३६८। २३।३४ दश-१० भक्तो मेषादिकेन्द्रत्वाज्जातं शीघ्रफलं धनम् ३६।५०।२१। अनेन युक्तो मन्दस्टष्टो जातः स्पष्टः शुक्रः २।१२।१५।४६॥

अथ शनिस्पष्टीकरणम्। तत्र शीघ्रोच्चं मध्यमो रविः १।४।१३।४२। शनिना ११।०।३६।४५ रहितं जातं शीघ्रकेन्द्रम् २।३।३६।५७। अस्यांशाः ६३।३६।५७ पञ्चदश-१५ भक्तः फलम् ४। गतांक ४८। एष्यांकः ५४। अनयोरन्तरेण ६ शेषं ३।३६।५७ गुणितं २१।४१।४२ पञ्चदश-१५ भक्तं फलम् १।२६।४६। अनेन गतांको ४८ युक्तः ४९।२६।४६। दशभक्तः फलमंशाद्यम् ४।५६।४०। अर्धितं मेषादिकेन्द्रत्वाज्जातं शीघ्रफलार्धं धनम् २।२८।२० अनेन युक्तः शनिः ११।३।५।५। अयं मन्दोच्चात् ८।०।०।०। शोधितो जातं मन्दकेन्द्रम् ८।२६।५४।५५। अस्य भुजः २।२६।५४।५५ अस्यांशाः ८६।५४।५५। दिना-१५ प्ताः फलम् ५। गतांकः ८९। एष्यांकः ९३। अनयोरन्तरेण ४ शेषं ११।५४।५५ गुणितं ४७।३९।४०। पञ्चदश-१५ भक्तं फलम् ३।१०।३८। अनेन गतांको ८९ युक्तः ९२।१०।३८। दश-१० भक्तः फलमंशादि मान्दं तुलादिकेन्द्रत्वादृणम् ९।१३।३। अनेन रहितः शनिर्जातो मन्दस्पष्टः १०।२१।२३।२४। प्रथमशीकेन्द्रं २।३।३६।५७ विपरीतमन्दफलसंस्कृतं जातं शीघ्रकेन्द्रम् २।१२।५०।०। अस्यांशाः ७२। ५०।०। पञ्चदश-१५ भक्ताः फलम् ४। गताँकः ४८। एष्यांकः ५४। अनयोरन्तरेण ६ शेषं १२।५०।०० गुणितं ७७।०।०। पञ्चदश-१५ भक्तं फलम् ५।८।० अनेन गतांको ४८ युक्तः ५३।८।० दश-१० भक्तो मेषादिकेन्द्रत्वाज्जातं शीघ्रफलं धनम् ५।१८।४८। अनेन युक्तो मन्दस्पष्टो जातः स्पष्टः शनिः १०।२६।४२।३० ॥१०॥

केदारदत्तः

पहिले ग्रह शीघ्र केन्द्र से शीघ्र फल साधन कर उसका आधा मध्यम ग्रह में धन या ऋण जैसा प्राप्त हो संस्कार करना चाहिए। इस प्रकार संस्कृत मध्य ग्रह से मन्दफल साधन कर सम्पूर्ण मन्दफल का उक्त मध्यम ग्रह में धन या ऋण जैसा हो संस्कार करना चाहिए।

तथा पर्वोक्त शीघ्र केन्द्र में उक्त प्रकार से साधित मन्द फल का विपरीत संस्कार (अर्थात् मन्दफल धन है तो ऋण और मन्दफल ऋण हो तो धन) करने से जो शीघ्र केन्द्र

होता है उसकी संज्ञा द्वितीय शीघ्र केन्द्र होती है। पुनः इस प्रकार के द्वितीय शीघ्र केन्द्र से शीघ्र फल साधन कर सम्पूर्ण शीघ्र फल का यथोक्त संस्कार धन वा ऋण जैसा हो साधित मन्द स्पष्ट ग्रह में करने से वह सम्यक् स्पष्ट ग्रह हो जाता है ॥१०॥

उपपत्तिः—मन्द प्रतिवृत्तीय मध्यम ग्रह से शीघ्रफल साधन पूर्वक उसका आधा संस्कार मध्यम ग्रह में देते हुए इस प्रकार के शीघ्र फलार्ध संस्कृत मध्यम ग्रह को मन्दफल साधनोपयुक्त समझ कर तथा विपरीत मन्दफल संस्कृत प्रथम शीघ्र केन्द्र को द्वितीय शीघ्र केन्द्र कहकर तद्वशेन साधित सही शीघ्र फल का मन्द स्पष्ट ग्रह में संस्कार करने से वही स्पष्ट ग्रह सिद्ध समझा गया है। इस प्रकार के फल संस्कारों से ही स्पष्ट ग्रह की उपलब्धि देखी गई है।

प्रथमतः उदाहरण द्वारा मध्यम मंगल = ४।१४।४४।३१ और मंगल ग्रह का शीघ्रोच्च मध्य० सूर्य होने से मध्यम सू० १०।१५।९।४४ के आधार से स्पस्ट मंगल की साधनिका (गणित क्रिया) बताई जा रही है।

म० सू०—मं० मं० – १०।१५।९।४४ – ४।१४।४४।३१ = प्रथम शीघ्र के० = ६।०।२५।१३ शी० के० ६ राशि से अधिक है अतः १२—शी० के० = १२—६।०।२५।१३ = ५।२९।३४।४७ इसके भुजांश=१७९।३४।४७। भुजांश ÷ १५=लब्धि = गतांक = ११ शेषांश = १४।३४।४७ गतांक ११ का पाठ पठित दश गुणित फलांक = २४९ – ऐष्यांक = १२ का दश गु० फल = ०, गतांक फल—ऐष्यांक फल = २४९ ÷ ० = २४९ = फलांकों का अन्तर। शेषांश × २४९ = १४।३४।४७ × २४९ = ३६३१।४४।३ में १५ का भाग देने से २४२।७ गतांक से अग्रिमांक कम अर्थात् ० होने से अन्तर = क्षय है, अतः गतांक के फल में २४९ – २४२।७ = ६।५३ यह दश गुणित फल है, अतः इसमें १० का भाग देनें से मंगल का प्रथम शीघ्रफल = ०।४१।१८ होता है। प्रथम शीघ्रफल का आधा = ०।४१।१८ ÷ २ = ०।२०।३९ यह प्रथम शीघ्रफलार्ध होता है केन्द्र तुलादिक होने से यह ऋण फल होता है।

$$\text{अतः मध्यम मंगल} - \frac{\text{प्रथम शीघ्र फल}}{२} = ४।१४।४४।३१ - ०^{0}।२०'।२९'' =$$

४।१४।२४।२ अतः अब मंगल ग्रह का मन्दफल साधन किया जाता है—

मंगल (भौम) के मन्दोच्च = ४।०।०।० में शीघ्रफलार्ध संस्कृत मंगल = ४।१४।२४।२ को कम करने से मन्द केन्द्र = ११।१५।३५।५८ इसका भुज = ०।१४।२४।२, भुजांश = १४।२४।२ भुजांश ÷ १५ = १४।२४।२ ÷ १५ = गतांक का = ० मन्दांक फल, अग्रिमांक = १ का मन्दांक जनित फल = २९ दोनों का अन्तर = २९ से शेषांश = १४।१४।५ को गुणा कर ४१७।३७।५८ ÷ १५ = २७।५०।३२ इसे ० में जोड़ने से २७।५०।३२ यह दश गुणित फल है अतः १० से भाग देने से २।४७।३ यह मंगल का मन्दफल होता है। मध्यम मंगल ४।१४।४४।३१ में मन्दफल २°।४७'।०'' को कम करने से (इसलिए कि मन्द केन्द्र ऋण है) मन्द स्पष्ट मंगल = ४।११।५७।३१ होता है।

मंगल का द्वितीय शीघ्रफल साधन—

संगल का प्रथम शीघ्र केन्द्र = ६।०।२५।१३ में मन्द फल २।४७।३ का विपरीत संस्कार करने से (यहाँ मन्दफल विपरीत संस्कार से धन होता है) द्वितीय शीघ्र केन्द्र = ६।३।१२।१६ शी०के० ६ राशि से अधिक है अतः १२ में घटाने से ५।२६।४७।४४ भुजांश=१७६।४७।४४ में १५ से भाग देने से गतांक = ११ का शीघ्र फलांक २४९ अग्रिमांक १२ का फल = ० अन्तर = क्षय = २४९ से शेषांश ११।४४।४७ को गुणा कर १५ का भाग देने से दश गुणित शीघ्रफल = १९५।५३।५४ को गतांक सम्बन्धी दशगुणित फल २४९ में (कम करने से क्योंकि ऐष्यांक का फल अपचीय मान ह्रासोन्मुख है)। २४९ – १९५।५४।५३ = ५३।५।७ में १० का भाग देने से मंगल ग्रह का स्पष्ट शीघ्रफल = ५।१८।३० होता है। मन्द स्पष्ट भौम = ४।११।५७।२८ में द्वितीय शीघ्रफल = ५°।१८।३० को कम करने से (क्योंकि केन्द्र तुलादिक है अतः फल ऋण होता है) स्पष्ट मंगल = ४।६।३८।५८ यह स्पष्ट मंगल होता है।

इसी प्रकार बुध, गुरु और शुक्र के स्पष्टीकरण सिद्ध होते हैं। ग्रन्थ गौरव भय से, मात्र मंगल और शनि इन दो ग्रहों का स्पष्टीकरण का उदाहरण पर्याप्त है।

शनि ग्रहका स्पष्टी करण—

मध्यम सू० = १०।१९।९।४४—मध्यमशनि = ४।२२।५६।२५ = शनि का प्रथम शी०के० धन = ५।२२।१३।१९ भुजांश १७२।१३।१९ में १५ का भाग देने से लब्धि गतांक ११ का फल = १८, बारहवें का फल = ० अन्तर = १८ से शेषांश ७।१३।१९ को गुणा कर १५ का भाग देने से ८।३७।५८ को ग्यारहवें फलांक = १८ में घटाने से (क्योंकि अग्रिमांक ० (कम) है) = ९।२२।२ यह दश गुणित शीघ्रफल होता है। इसमें १० का भाग देने से ०।५६।१२ यह प्रथम शीघ्रफल होता है। मेषादिक केन्द्र है अतः शीघ्रफल धनात्मक है। शीघ्रफल का आधा = ०।२८।६ शीघ्रफलार्ध संस्कृत मध्यम शनि (४।२२।५६।२५ + ०।२८।६) = ४।२३।२४।३१ होता है। इसी प्रकार के पञ्चतारा ग्रहों से उनका मन्दफल साधन किया जाता है।

शनि के मन्दोच्च में ८।०।०।०—४।२३।२४।३१ शी०फलार्ध सं० म० शनि को घटाने से शनि का मन्द केन्द्र = ३।६।३५।२९ मेषादि केन्द्र से मन्दफल भी धन होगा।

इसके भुज के = ६।०।०।० – ३।६।३५।२९ = २।२३।२४।३१ अंश भुजांश = ८३।२४।३१ होते हैं। भुजांश में १५ का भाग देने से लब्ध मन्दांकों का अंक गतांक ५ का मन्दांक= ८९ ऐष्यांक ६ का मन्दांक=९३ दोनों का अन्तर=४ से शेषांश=८।२४।३१ को गुणा कर गुणनफल में १५ का भाग देने से २।१२।३२ को गतांक के फल ८९ में जोड़ने से ९१।१४।३२ यह दश गुणित फल है अतः १० का भाग देने से शनि का मन्दफल=९°।७'।२७'' केन्द्र मेषादि होने से यह मन्दफल धनात्मक है। मध्यम शनि मन्दफल=४।२२°।५६'।२५'' + ९°।७'।२७'' = ५।२।३।५२=मन्द स्पष्ट शनि होता होता है।

पुनः शनि के इस मन्दफल का शनि ग्रह के प्रथम शीघ्र केन्द्र में विलोम संस्कार से ५।२२।१३।१९ – ९°।८'।२''=५।१३।५।१७, यह शनि ग्रह का द्वितीय शी० के हैं। इसके भुजांश=१६३।५। १७ में १५ का भाग देने से गतांक=१० का फल ३३ अग्रिमांक ११ का मन्दांक फल=१८ होता है। दोनों का अन्तर=१५ से गुणित शेषांश १३।५।१७ में १५ का भाग देने से १३।५।१७ को अग्रिमांक कम होने से ३३ में घटाने से १९।५४।४३ यह दश गुणित मन्दफल है। अतः इसमें १० का भाग देने से १°।५९।२९ यह शनि का धन शीघ्रफल हुआ। इसे मन्दस्पष्ट शनि=५।२।३।५२ में जोड़ने से ५।४°।३।२१ इस प्रकार से यह शुद्ध स्पष्ट शनि होता है।

इसी प्रकार सभी पञ्चतारा ग्रहों के स्पष्टों का साधन किया जाता है। उदाहरण प्रक्रिया सभी की उक्तवत् एक ही है ॥१०॥

मान्दकान्तरमार्क्यसृग्गुरूणां
भक्तं बाणनगैः शरैः खरामैः।
विदुभृग्वोर्द्विहताशुगोद्धृतं तद्-
दद्यात् प्राग्वदितौ मृदुस्फुटा सा ॥११॥

मल्लारिः

एवं ग्रहस्पष्टत्वमभिधायेदानीं गतिमन्दस्पष्टतामेकवृत्तेनाह। मान्दांकान्तरमिति। आर्किः शनिः। असृक्भोमः। गुरुर्बृहस्पतिः। एषां मन्द फलनियते यत् कृतं मन्दांकान्तरं तत् क्रमेण बाणनगैः पञ्चसप्तत्या ७५ शरैः पञ्चभिः ५। खरामैस्त्रिंशद्भिः ३०। भक्तं लब्धं कलाद्यं तन्मन्गतिफलं स्यात् विद्भृगोः। बुधशुक्रयोर्मान्दांकान्तरं द्वि-२हतं सत्। आशुगैः पञ्चभिः ५। उद्धृतं फलं स्यात्। तत् प्राग्वत् इतो मध्यगतौ दद्यात् सा मृदुस्फुटा गतिर्भवतीत्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः। प्रतिपादितप्रमेया तथाऽपि किञ्चिदुच्यते। अत्र ग्रहफलाभावे गतिफलं परमं ग्रहफलपरमत्वे गतिफलाभावः। ग्रहफलाभावस्तु भुजादौ। तत्र मान्दांकान्तरमपि परमम्। तत्र गतिफलानि मान्दानि परमाणि कलादीनि लक्षितानि। भौ० ५।४८। बु० ४।४८। गु० ०।२८। शु० २।२४। श० ०।१५।१२ एभ्योऽनुपातः। यदि मान्दाङ्कान्तरेण प्रथमांकतुल्येन एतानि तदेष्टेन कानीति। एवमिष्टमान्दांकान्तरमेभिः परमफलैर्गुण्यं मरममान्दांकन्तरैराद्यांकतुल्यैर्भाज्यम्। एवं सर्वत्र गुणहरौ गुणेनापवर्त्तितौ जात भौमादीनां हारः। भौ० ५। बु० २।३०। गु० ३०। शु० २।३०। श० ७५ एवं भौमगुरुशनीनां हरा निरवयवाः। अतो मान्दाङ्कान्तरमेभिर्भाज्यमिति। बुधशुक्रयोर्हरौ सावयवावतस्तौ द्विसवर्णितो जातौ समावेव ५। अतस्तयोर्द्विहताशुगोद्धृतमिति। एवमेतन्मन्दफलं मध्यमगतौ देयम्। सा मन्दस्पष्टा गतिर्भवतीत्युपपन्नम्। अत्र गतिफलधनर्णत्ववासना पूर्वोक्तैव ज्ञातव्या ॥११॥

विश्वनाथः

अथ मन्दस्पष्टगतिसाधनमाह। मान्दांकान्तरमिति। आर्किः शनिः। असृग् भौमः। गुरुर्बृहस्पतिः। येषां मन्दफलानयने कृतं यद्गतैष्यान्तरं तत् क्रमेण बाणनगैः पञ्चसप्तत्या ७५। शरैः पञ्चभः ५। खरामैस्त्रिंशद्भिः ३०। भक्तं फलं कलाद्यं द्विष्ठं ग्राह्यं तद्गतमन्दफलं स्यात्। विद्भृग्वोर्बुधशुक्रयोर्मान्दाङ्कान्तरं द्विगुणं पञ्चभिर्भक्तम्। तत् तयोर्गतिफलं स्यात् तत् प्राग्वत् केन्द्रे कुलीरमृगषट्कगते इत्यादिना धनर्णमितौ मध्यगतौ दद्यात् सा मन्दस्पष्टा गतिः स्यात्॥११॥

केदारदत्तः

शनि, मंगल और बृहस्पति के मन्दांकान्तर में क्रमशः ७५, ५, और ३० से भाग देकर बुध और शुक्र के मन्दांकान्तर को २ से गुणा कर ५ से भाग देकर लब्ध फल को अपनी-अपनी मध्यमा गति में पूर्ववत् अर्थात् कर्कादि केन्द्र में धन एवं मकरादि केन्द्र में ऋण संस्कार करने से उस-उस ग्रह की मन्दस्पष्टा गति सिद्ध हो जाती है॥११॥

जैसे—पूर्व उदाहरण में मंगल ग्रह का मन्दांकान्तर २९, और केन्द्र मकरादि है। मंगल के मन्दांकान्तर २९ में ५ का भाग देने से, २९ ÷ ५=५'।४८" होता है। मंगल ग्रह की मध्यमा गति=३१'।२६" है। अतः ३१'।२६" − ५'।४८"=२५।३८ यह मंगल की मन्द स्पष्टा गति होती है।

अब इसी प्रकार सभी ग्रहों की मन्दष्पष्टा गति भी साधनी चाहिए। जैसे शनि का मन्दांकान्तर=४ मन्द केन्द्र कर्कादि है अतः गतिफल धन है। अतः ५ ÷ ७५=०'।३" शनि की मध्यमा गति=२'।०" + ०'।४"=२'।४" शनि की मन्द स्पस्टा गति होती है॥११॥

उपपत्ति—पञ्चताराग्रहों की उच्च गति स्थिर है अतः मं०उ०—मं०ग्रह=केन्द्र, इस प्रकार, आज का केन्द्र=मन्दोच्च—आज का मं० ग्रह एवं आनेवाले कल का केन्द=मन्दोच्च कल का मं० ग्रह। दोनों का अन्तर=केन्द्र—केन्द्र=दोनों दिनों के मध्यम ग्रहों का अन्तर=मध्यमा-गति। दोनों दिनों के मन्दफलों का अन्तर=मन्दगति फल। मन्दफल साधन के समय $१५^{०}$ केन्द्र भाग वृद्धि से १० से विभक्त मन्द फलांकान्तर के तुल्य से, अतः इष्टगति फलानयन में अनुपात से यदि १२ अंश कलाओं में दश विभक्त मान्दांकान्तर तुल्य गति फल प्राप्त होता है तो इष्ट केन्द्र कलाओं में क्या ? $= \frac{\text{मा० अं०} \times \text{के०ग०}}{१० \times १५ \times ६०}$ (अंशादि फल को ६० से भाग देने से कलादिफल होता है। अपनी-अपनी मध्यम गतियों के तुल्य केन्द्र गति है उत्थापन देने से मंगल गति फल $= \frac{\text{मा०अं०} \times ३१}{१० \times १५} = \frac{\text{मा० अं०}}{५}$ (स्वल्पान्तर से)।

तथा यतः स्वल्पान्तर से बुध शुक्र की मध्यमा गति=६०।

बुध शुक्र दोनों का गतिफल $= \frac{\text{मा०अं०} \times ६०}{१० \times १५} = \frac{\text{मा०अं०} \times २}{५}$।

गुरु का गति फल $= \frac{\text{मा०अं०} \times ५}{१० \times १५} = \frac{\text{मा०अं०}}{३०}$ ।

शनि गति फल $= \frac{\text{मा०अं०} \times २}{१० \times १५} = \frac{\text{मा०अं०} \times १}{७५}$ ।

कर्कादि केन्द्र में उत्तरोत्तर फल की वृद्धि से धन एवं मकरादि केन्द्र में उत्तरोत्तर फल के ह्रास से गतिफल ऋण होगा ही । उपपन्न होता है ॥११॥

भौमाच्चलाङ्कविवरं शरहृत् स्वबाणां-
शाढ्यं त्रिहृत् कृतहृतं द्विगुणाक्षभक्तम् ।
तद्धीनयुक् क्षयचये तु मृदुस्फुटा स्यात्
स्पष्टाऽथ चेद्बहुऋणात् पतिता तु वक्रा ॥१२॥

मल्लारिः

अथ गतेः स्पष्टत्वमेकवृत्तेन वदति । भौमादिति । भौमान्मङ्गलमारभ्य यच्चलांकानां शीघ्रांकानां विवरं द्वितीयशीघ्रफलानयनार्थं कृतमस्ति तत् क्रमात् । शरैः पञ्चभिर्हृत् भक्तं भौमस्य । स्वबाणांशेन स्वपञ्चांशेन युक्तं बुधस्य । त्रिहृत् त्रिभक्त गुरोः । कृतहृच्चतुर्भक्तं शुक्रस्य । द्विहतं द्विगुणं सत् अक्षभक्तं पञ्चभक्तं शनेः । तत् गतेः शीघ्रफलं स्यात् । सा मृदुस्फुटा गतिस्तेन फलेन क्षयचये हीनयुक् क्षये हीना चये युक्ता सती स्पष्टा भवेत् । अथ चेदृणफलं बहु गतेर्न शुद्ध्यति तदा सा गतिरेव फलात् शोध्या शेषं वक्रा गतिः स्यादित्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिर्गतिमन्दफलवत् । अत्र शीघ्रफलान्तरं गतेः शीघ्रफलं तत्रानुपातः । यदि पञ्चदशभागकलाप्रमाणेन ९०० इदं शीघ्राङ्कान्तरं तदा शीघ्रकेन्द्रगतिकला प्रमाणेन किमिति । ततः शीघ्राङ्कानां दशगुणितत्वात् तद्दशभिर्भाज्यं कलार्थं च षष्ट्या गुण्यम् । एवं शीघ्राङ्कान्तरस्य हरघातो हरः ९००० । षष्टि । ६० गुणः । गुणहरौ गुणेनापवर्त्य जातो हरः १५० । अस्य केन्द्रगतिगुणोऽस्ति । अत्र भौमगुरुशुक्राणां केन्द्रगतिभिराभिः २८।५४।३७ सार्धशते १५० हरे भक्ते जाता हराः । ५।३।४ बुधकेन्द्रगतिर्गुणः १८६ अत्र गुणहरौ त्रिंशताऽपवर्तितौ जातो गुणः ६। हरः ५। यो राशिः षड्भि-६ गुंण्यते पञ्चभि-५ भंज्यते स स्वबाणांशाढ्य एव भवति । तथा शनेः केन्द्रगतिः ५७ । अत्र गुणहरौ गुणार्धेनापवर्त्य जातो गुणः २ । हरः ५ अतो द्विहताक्षभक्तं शीघ्रांकान्तरं शनेर्गतिफलं स्यादित्युपपन्नम् । एवमेतद्गतेः शीघ्रफलं मन्दस्पष्टगतौ देयं स्पष्टा स्यादेव । तत्र धनर्णोपपत्तिः । अङ्कान्तरेऽग्रे चेत् क्षयस्तदा ग्रहे स्वल्पफलत्वाद्गतिरपि न्यूना । अग्रे चेद्वृद्धिस्तदा ग्रहे फलाधिकत्वात् स्पष्टगतिरधिका । अतः क्षयर्द्धी ऋणधनसंज्ञोक्ता । चेत् फलं मन्दस्पष्टगतेंन शुध्यति तदा विपरीतशोधनेन विपरीतगतिर्वक्रा गतिर्भवतीत्युपपन्नम् । वक्रत्ववासनामग्रे सविस्तरां वक्ष्यामः ॥१२॥

विश्वनाथः

अथ स्पष्टगतिसाधनमाह। भौमाच्चलाङ्कविवरमिति। भौमाद्द्वितीयशीघ्रफलसाधने यद्गतैष्यचलाङ्कान्तरं तत् क्रमेण एभिर्भक्तम्। भौमस्य पञ्चभक्तम्। बुधस्य स्वपञ्चमांशेन युक्तं कार्यम्। गुरोस्त्रिभिर्भक्तम्। शुक्रस्य चतुर्भक्तम्। शनेर्द्विगुणं सत् पञ्चभक्तम्। तद्गतेः शीघ्रफलं स्यात्। तेन सा मन्दस्पष्टा गतिः क्षयचये हीनयुक् कार्या। चलाङ्कस्य क्षये हीना कार्या। अधिके युक्तेत्यर्थः। सा स्पष्टा गतिः स्यात्। चेद्वहु ऋणात् पतिता तदा वक्रास्यात्। एतदुक्तं भवति। शीघ्रफलमृणमधिकं मन्दस्पष्टा गतिर्न्यूना तदा ऋणफलात् पतिता वक्रा विपरीतभार्गा स्यादित्यर्थः ॥

उदाहरणम्। भौमस्य मान्दांकान्तरम् २८। शरैर्भक्तं फलम् ५।३६। इदं कर्क्यादिकेन्द्रत्वान्मध्यगतो ३१।३६ युक्तं जाता मन्दस्पष्टा गतिः ३७।२। भौमस्य चलांकान्तरम् ४०। पञ्चभक्तं फलं ८।०। चयफलत्वादनेन युक्ता मन्दस्पष्टा जाता स्पष्टा गतिः ४५।२। ॥

अथ बुधगतिस्पष्टोकरणम्। मान्दांकान्तरम् १२। द्विगुणम् २४। शरेण पञ्चभिर्भक्तं फलम् ४।४८। कर्क्यादिकेन्द्रत्वान्मध्यगतौ ५९।८ युक्तं जाता मन्दस्पष्टा गतिः ६३।५६ चलांकान्तरं ३३ स्वपञ्चमांशेन ६।३६। युक्तं ३९।३६। चयफलत्वादनेन युक्ता मन्दस्फुष्टा जाता स्पष्टा बुधगतिः १०३।३२। ॥

अथ गुरुगतिस्पष्टीकरणम्। मान्दांकान्तरम् ९। खरामैर्भक्तम् ०।१८। इदं मकरादिकेन्द्रत्वान्मध्यगतौ ५ हीनं जाता मन्दस्पष्टा गतिः ४।४२। चलांकान्तरम् २। त्रिभक्तं फलं चयम् ०।४० अनेन युक्ता मन्दस्पष्टा जाता गुरोः स्पष्टा गतिः ५।२२ ॥

अथ शुक्रगतिस्पष्टीकरणम् मान्दांकान्तरम् २। द्विगुणम् ४। शरोद्धृतं फलम् ०।४८। मकरादिकेन्द्रत्वान्मध्यमगतौ ५९।८ हीनं जाता मन्दस्पष्टा गतिः ५८।२०। चलांकान्तरं ४८ चतुर्भक्तं फलं १२।० चयसंज्ञम्। अनेन युक्ता मन्दस्पष्टा जाता स्पष्टा गतिः ७०।२०। ॥

अथ शनिगतिस्पष्टीकरणम्। मान्दांकान्तरम् ४। बाणनगै ७५ भंक्तं फलं ०।३ कर्क्यादिकेन्द्रत्वान्मध्यगतौ २।० युक्तं जाता मन्दस्पष्टा गतिः २।३। चलांकान्तरं ६ द्विगुणम् १२। पञ्चभक्तं फलं २।२४ चयसंज्ञम्। अनेन युक्ता मन्दस्पष्टा जाता स्पष्टा गतिः ४।२७ ॥१२॥

केदारदत्तः—

द्वितीय शीघ्रफल साधन के समय, मंगल के शीघ्रांकान्तर में ५ से भाग देकर बुध के शीघ्रांकान्तर में उसी का पाचवाँ भाग जोड़ने से, गुरु के शीघ्रांक में ३ से भाग देने से, शुक्र के शी०अं० ४ से भाग देकर और शनि के शी०अ० को २ से गुणित ५ से भाग देने से लब्ध तुल्य फल का नाम शीघ्रगति फल होता है। शीघ्र अंकों में गतैष्य सम्बन्धेन अग्रिम अंक अधिक या (चय या क्षय) न्यून जैसा हो समझ कर तदनुसार मन्दस्पष्टा गति में क्रमशः धन

या ऋण देने से ग्रहों को स्पष्टा गति सिद्ध होती है। शेष के ऋणात्मक होने से वक्रगति समझनी चाहिए ॥१२॥

उदाहरण से मंगल का द्वितीय शीघ्रांकान्तर = २४९ क्षयात्मक है। मन्दस्पष्टा गति= २५।४३। अतः २४९ ÷ ५ = ४९।४८ को मन्दस्पष्टा गति २५।४३ मे कम करने से नहीं घट रहा है। अर्थात् गति फल = ४९।४८ में ही मंगल की मन्दस्पष्टा गति घट रही है जिसे ऋणात्मक फल कहेंगे अतः २५।४३ − ४९।४८ = ऋणात्मक फल=२४'।५' होने से अधिक ऋण में मन्दस्पष्टा गति के घटने से स्पष्ट है कि इस समय मंगल ग्रह वक्रगतिक या विलोम गतिक हो रहा है। विशेष संस्कार श्लोक १४ में है। एवं शनि की मन्दस्पष्टा गति=२'।३''

द्वितीय शीघ्रांकोत्तर=१५ अतः $\frac{१५ \times २}{५}$ = ६। मन्दस्पष्टा गति २'।३ में शीघ्रगति फल ६ नहीं घटने से यहाँ भी गतिफल अधिक होने से विपरीत शोधन से शनि ग्रह भी इस समय आसपास के पूर्वापर दिवसों में वक्र गतिक हो रहा है। अतः + २'।३'' — ६''= − ३'।५७'' ऋणात्मक फल होने से शनि की तत्कालीन स्पष्ट वक्रा गति=३।५७ हो रही है ॥१२॥

उपपत्तिः—आसन्न समीप के दो दिनों के शीघ्र फलों का अन्तर शीघ्रगति फल होता है। १५ अंश शीघ्र केन्द्र वृद्धि से दश गुणित शीघ्र फलांक पढ़े गये हैं। अथ यदि $१५^{0} \times ६० = ९००$ कलाओं में शीघ्रांकों का अन्तर मिलता है तो इष्ट केन्द्रगति कला में क्या ? इस अनुपात से पठितांकों का मान १० गुणित होने से फल में १० का भाग देना स्वतः सिद्ध होता है।

इस प्रकार समीकरण का स्वरूप $\frac{\text{शी०अं०}' \times \text{शी०के०ग०}}{१५ \times ६० \times १०}$ अंशों की कला बनाने के लिए ६० से गुणित करने से $\frac{\text{शी०अं०} \times \text{शी०के०ग०} \times ६०}{१५ \times ६० \times १०} = \frac{\text{शी०अं०} \times \text{शी०के०ग०}}{१५०}$

यह स्पष्टीकरण पाचों ताराग्रहों की स्पष्टगतिफल के लिए होता है। इसका नाम = ''अ''

मंगल की शी०के०ग० = म० सू०ग० − मं०मं०ग०=५९।८-३१।२७=२८ स्वल्पान्तर से।

बुध ,, ,, = १८६ मध्यमाधिकार में कही गई है।

गुरु ,, ,, = ५९।८ − ५।०=५५ स्वल्पान्तर से।

शुक्र ,, ,, = ३७ मध्यमाधिकार में कही गई है

शनि ,, ,, = ५९।८—२।०=५७' स्वल्पान्तर से।

''अं०'' समीकरण में उत्थापन देने से—

मंगल शीघ्र गति फल= = $\frac{\text{शी०अ०} \times २८}{१५०} = \frac{\text{शी०अ०}}{५}$ स्वल्पान्तर से। (१)

बुध ,, ,, = $\frac{\text{शी०अ०} \times १८६}{१५०} = \frac{\text{शी०अ०} \times ६}{५}$ स्वल्पान्तर से। (२)

गुरु शीघ्र गति फल $= \frac{\text{शी०अ०} \times ५५}{१५०} = \frac{\text{शी०अ०}}{३}$ स्वल्पान्तर से। (३)

शुक्र ,, ,, $= \frac{\text{शी०अ०} \times ३७}{१५०} = \frac{\text{शी०अ०}}{४}$ स्वल्पान्तर से। (४)

शनि ,, ,, $= \frac{\text{शी०अ०} \times ५८}{१५०} = \frac{\text{शी०अ०} \times २}{५}$ स्वल्पान्तर से। चय (वर्धमान) शीघ्रांकान्तर में गतिफल धन, अपचय में गतिफल ऋण स्वतः सिद्ध होगा। अधिक ऋण संख्या में विपरीत साधन से वक्रागति स्पष्ट है ॥१२॥

शुक्रारयोश्चलभवोऽन्त्यगतो यदाऽङ्कः
शेषांशकाश्च पतिताः पृथगक्षभूभ्यः ।
येऽल्पा भृगोस्त्रिविहृता असृजोऽक्षभक्ता
देयाः स्वशीघ्रफलवत् स्फुटयोः स्फुटौ तौ ॥१३॥

मल्लारिः

अथ भौमशुक्रयोरन्त्यशोघ्रांकागमे ग्रहेऽन्तरं भवतीत्यस्य विशेषफलमेकवृत्तेनाह शुक्रेति। शुक्रः प्रसिद्धः। आरो भौमः। एतयोरन्यतरस्य चलभवः शीघ्रफलोत्थोऽङ्को यदान्त्यगतः स्यात् तदा ये शेषांशाः पञ्चदशभक्तावशिष्टः शीघ्रकेन्द्रभागास्तेऽन्यत्र पृथक् स्थाप्याः। अक्षभूभ्यः पञ्चदशभ्य १५ एकत्र पतिताः शोधिताः। तयोः पृथक्-स्थभागशोधितभागयोर्मध्ये येऽल्पास्ते ग्राह्यः। ते भृगोः शुक्रस्य त्रिविहृतास्त्रिभक्ताः। असृजोऽक्षैः पञ्चभिर्भक्ताः। भागादि लब्धं ग्राह्यम्। तत् स्वशीघ्रफलवद् धनर्णं स्पष्टग्रहे देयं तौ भौमशुक्रौ स्फुटौ स्पष्टौ भवतः। एवं शीघ्रफलाऽन्त्याँकागमेऽन्याङ्क-तुल्यह्रासानुपातादन्तरं जातम्। तद्भौमशुक्रयारेवांकबहुत्वादुक्तम्। अन्येषामप्यन्तर-मस्ति तत् स्वल्पत्वान्नोक्तम् ॥

अत्रोपपत्तिः। अन्त्यांकः पञ्चषटयधिकशत-१६५ मितशीघ्रकेन्द्रभागान्ते। अशीत्यधिकशत-१८० भागान्ते शून्यतुल्यः। पञ्चदशभागानं मध्ये सार्धाः सप्त ७।३०। तेष्वन्तरं भौमस्य १।३०। शुक्रस्य २।३०। अतोऽनुपातार्थं सार्धसप्तभागाल्प-प्रयोजनात् पञ्चदशशुद्धा भागास्तयोरल्पा गृहीताः यदि सार्धसप्तभागैरन्तरे भौम-शुक्रयोरेते लभ्येते तदेभिर्भागैः किमुभयत्रापि सार्धसप्त हरः स्वस्वान्तरे गुणौ। गुणहरौ गुणाभ्यामपवर्त्य जातौ हरो मंगलस्य ५। शुक्रस्य ३। आभ्यां ते लब्धभागा भाज्याः। फलं शीघ्रफलसम्बन्धित्वात् स्पष्टयोः शीघ्रफलंवद्धनर्णं कार्यमित्युपपन्नम्। परन्तु अनेनापि विशेषफलेन संस्कृतौ भौमशुक्रौ महान्तरितौ दृश्येते। अन्त्यांकबाहुल्यात् अत्र सुधीभिरेकान्त्यांकमध्ये त्रींश्चतुरो वा अंकान् कृत्वा शीघ्रफलसिद्धिः कर्त्तव्या। फलसाधनार्थं सूत्रं मयोक्तम्।

कुजसितचपलांकोऽन्त्यस्तदा शेषभागस्त्रिलवमितगतांकस्तत्परांकान्तरेण ।
विनिहतनिजशेषादग्नि-३ भागेन हीनः स च दशविहृतः स्यांदशपूर्वं फलं हि ॥
शीघ्रांकाः कुसुतस्य गोजिनमिता द्व्यंकेन्दवोऽङ्गेन्द्रकाः
शून्याशा द्विशराश्च खं त्वथा भृगोस्तर्काश्विरामास्तथा ।
शून्याङ्काश्विमिता गजाम्बरदृशोऽब्धीन्द्रा नवाश्वाश्च खं
देयं तच्चपलं फलं हि सकलं मन्दस्फुटे स्यात् स्फुटः ॥१३॥

०	१	२	३	४	५	
२४९	१९२	१४६	१००	५२	०	भौमस्य
३२६	२६०	२०८	१४४	७९	०	शुक्रस्य

विश्वनाथः

अथ शुक्रभौमयोरन्त्यशीघ्रांकागमने ग्रहेऽन्तरं पततीत्यतस्तत्र स्फुटयोः पुनः स्पष्टीकरणमाह शुक्रारयोरिति। शुक्रभौमयोश्चलभवोऽङ्कोयदाऽन्त्यगत एकादशाधोऽङ्को भवति तदा शीघ्रकेन्द्रस्य पञ्चदशहृतेभ्यो भागेभ्यो ये शेषांशास्ते पृथक् स्थाप्याः। एकत्राक्षभूभ्यः १५ पतिताः शुद्धाः। तयोः पृथक्स्थभागशेधितभागयोर्मध्ये येऽल्पास्ते ग्राह्याः। ते शुक्रस्य त्रिभक्ताः। भौमस्य पञ्चभक्ताः। फलं भागाद्यं ग्राह्यम्। ततः स्वशीघ्रस्यफलवद्धनर्णं स्पष्टग्रहे देयम्। तौ शुक्रभौमौ स्पष्टौ भवतः। एवं भौमबुधगुरुशुक्रशनैश्चराणां मध्ये यस्य कस्यापि शीघ्रफलानयनेऽन्त्यांकागमनेऽन्तरं पतति तत्र भौमशुक्रयोरेवांकबहुत्वादुक्तम्। अन्येषां स्वल्पान्तरत्वान्नोक्तम् ॥१३॥

केदारदत्तः

शुक्र और मंगल के शीघ्रफल साधन के समय अन्तिम शीघ्रांक की प्राप्ति में केन्द्रांश ÷ १५ लब्धि = ११ यदि हो तो से शेषांश को १५ में घटा देने से प्राप्त शेषांश = शे' अर्थात् शे, औ शे' में जो कम हों उनमें ३ का भाग देकर प्राप्त अंशादिक शुक्र का फल, तथा मंगल के अल्प शेषांश में अर्थात् शे० और शे०' में जो कम है उसमें ५ का भाग देने से अंशादिक शी० फल होता है। इस फल का अपने शीघ्र फलानुसार क्रमशः शुक्र और मंगल स्पष्टों में धन वा ऋण संस्कार करने से स्पष्ट शुक्र और स्पष्ट मंगल सही होते हैं ॥१३॥

उताहरण से—जैसे पूर्व में मंगल ग्रह के द्वितीय शी०फल साधनिका के अवसर पर केन्द्रांशों १७६।५०।० में १५ का भाग देने से अन्त्यगत अंक ११, शेषांश=११°।१४'।०" हुये हैं। शेषांश को १५ में घटा देने से ३°।१०'।०"=शे०', यहाँ पर शे, और शे' में शे'=३।१०।० शे० ११।५०।० से कम हैं अतः ३।१०।० ÷ ५=०।३८।० उपलब्ध इस संस्कार विशेष को साधित स्पष्ट मंगल ४।५।२६।३४ में कम करने से ४।४।४८।३४ यह स्पष्ट मंगल होता है ॥१३॥

उपपत्तिः—मंगल के १६५° से १७२°।३०' तक केन्द्रांश होने से लगभग १°।३०' तक परम फल और १७२°।२०' से १८०° तक में परमाल्प फल=० शून्य देखा गया है। इसी

प्रकार शुक्र का १६५°....१७२°।३०′ तक परम गल २°।३० तथा १७२।३० से १८०° तक फलाभाव देखा गया है। अर्थात् ७°।३० के भीतर ही फलान्तर की परम वृद्धि एवं परम ह्रास देखकर ७°।३०′ से कम अंशों से ही अनुपात ठीक होना चाहिए।

अतः मंगल के लिए $\frac{३ \times \text{अल्प अन्तरांश}}{२ \quad \frac{१५}{२}} = \frac{\text{अल्पान्तरांश}}{५}$ एवं शुक्र का

$\frac{५ \times \text{अन्तरांश}}{२ \quad \frac{१५}{२}} = \frac{\text{अन्तरांश (जो अल्प)}}{३}$ का संस्कार स्वशीघ्रफलवत् स्पष्ट मंगल और शुक्र में करना ही समुचित सिद्ध होता है ॥१३॥

कुजबुधभृगुजानां चेच्चलांकोऽन्तिमः स्याद्
दशहतपरिशेषांशा नगाद्र्यग्निभक्ताः।
फलमिषुदहनैर्युक् सप्तगोभिस्त्रिबाणै-
र्भवति गतिफलं तत् स्यात् तदा नैव पूर्वम् ॥१४॥

मल्लारिः

अथ तत्रैवान्त्यांकागमने भौमबुधशुक्रगतीनामपि विशेषमेकवृत्तेनाह। कुजेति। भौमबुधशुक्राणां शीघ्रांको यद्यन्तिमः स्यात् तदा दशभिर्हता गुणिता ये परिशेषांशास्ते नगाद्र्यग्निभक्ताः। भौमस्य सप्तभक्ता। बुधस्यापि सप्तभक्ताः शुक्रस्य त्रिभक्ताः। यत् फलं कलाद्यं तद्भौमस्य इषुदहनैः पञ्चत्रिंशद्भिर्युक्तम्। बुधस्य सप्तगोभिः सप्तनवत्या युक्तम्। शुक्रस्य त्रिबाणैस्त्रिपञ्चाशता ५३ युक्तम्। तत् तेषां गतेः शीघ्रफलं भवति। तदा पूर्वं भौमाच्चलांकविवरमित्यादिप्रकारेणानीतं तन्न ग्राह्यम्। अनेनैव फलेन गतिः स्पष्टा चलांकविवरमित्यादिप्रकारेण न कर्त्तव्या। अत्र प्रत्यक्षोपलब्धिरेव वासना ॥१४॥

विश्वनाथः

अथ कुजबुधशुक्राणां गतौ विशेषमाह कुजबुधेति। भौमबुधशुक्राणां चेच्चलांकः शीघ्रांकोऽन्तिमः स्यात् तदा शीघ्रकेन्द्रस्य शेषांशा दशहताः कार्याः। ते क्रमान्नगाद्र्यग्निभक्ताः। एतदुक्तं भवति। कुजस्य शीघ्रफलसाधने शीघ्रकेन्द्रस्यांशाः पञ्चदशभक्ता ये शेषांशास्ते नग-७ भक्ताः फलमिषुदहनैर्युक्तम्। बुधस्य तेंऽशाः शेषांशा अद्रिभि-७ र्भक्ताः फलं सप्तगोभिर्युक्तम् ९७। शुक्रस्य चेत् तदाऽग्नि-३ भिर्भक्ताः फलं त्रिबाणै-५३ र्युक्तम्। तदा तेषां तद्गतिफलं स्यात्। पूर्वसाधितं भौमाच्चलांकविवरमित्यादिना गतेः शीघ्रफलं तन्न ग्राह्यम्। इदं गतिफलं मन्दस्फुगतौ ऋणं कार्यम्। अग्रिमस्यापचयत्वात् सा स्पष्टा गतिः स्यात् ॥१४॥

केदारदत्तः

मंगल बुध और शुक्र के अन्तिम शीघ्रांक की उपलब्धि के समय, शेष गुणित १० में क्रमशः ७, ७ और ३ से भाग देकर प्राप्त फल को क्रमशः ३५, ९७ और ५३ में जोड़ देने

से ही स्पष्ट गति फल सही होगा, ऐसी परिस्थिति में पूर्व साधित गति फल को प्रयोजन में नहीं लाना चाहिए ।।१४।।

उदाहरण से मंगल का अन्तिय शीघ्रांक ११, शेषांश=११।५०।० × १०=११०।५००। ०=११८।२०।० ÷ ७=१६।५४।१७ को ३५ में जोड़ने से ५१।५४।१७ गतिफल होता है ।

मंगल की मन्द स्पष्ट गति + २५।४३ − ५१।५४।१७ = − २६'११''१७ विपरीत शोधन से मंगल की वक्रा गति=२६।११ होती है । पूर्व साधित गति २४'।५'' की जगह यही गति २६'।११''ग्रहण करनी चाहिए ।।१४।।

उपपत्ति:—मंगल के अन्तिम शीघ्र केन्द्रांश यदि १६५° को भुज=१५° की कोटि= ७५° की भुज कोटि की लघुज्या से भुजज्या=३१ कोटिज्या=११५ अन्त्यफलज्या=७७ श्री भास्कराचार्य के "स्वकोटिजीवान्त्यफलज्ययोः" से शीघ्रकर्ण=शी०फल $\sqrt{(३१^२ + (३८)^२}$ =४९, घातादभुजज्यान्त्यफलज्ययोः, से शी०फ० ज्या= $\frac{३१ \times ७७}{४९}$ = ४९ (स्वल्पान्तरात्) शी०फ०को०ज्या=१०९ । भास्कराचार्य के फलांशखांकान्तरशिञ्जिनिघ्नीति से शी०उ०ग० = $\frac{१०९ \times २८}{४९}$ =५९'।८'' − ६२= − ३ स्वल्पान्तर से मध्य और स्फुट गतियों का अन्तर =गतिफल=३१'।२६ − (− ३)=३५ (स्वल्पान्तर, अथ यदि कुज (मंगल) शीघ्र केन्द्रांश= १७२° तो पूर्वरीति से साधित गतिफल=४५' जो ३५' से १०' अधिक होता है । ऐसी स्थिति में त्रैराशिक से १७२°½ − १६५°=७½ अंशों में १० की वृद्धि तो शेषांशों में $\frac{१९ \times \text{शेषांश}}{\frac{१५}{२}}$ = आगत फल को पूर्व के ३५' में जोड़ने से मंगल की गति स्पष्ट होती है ।

इसी प्रकार बुध की अन्त्य फल ज्या = ४३ से १६५° शीघ्र केन्द्रांशों में गति फल= ९७' तथा १७२½····में गतिफल=१०७,। वृद्धि =१०, अतः पूर्वभाँति ९० + $\frac{१० \times \text{शेषांश}}{७\frac{१}{२}}$ तथा शुक्रान्त्यफलज्या=८६' से १६५° केन्द्रांशों में गतिफल=५३ तथा १७२½ केन्द्रांशों में गतिफल=६३'। अतः अनुपात से $\frac{१० \times \text{शेषांश}}{७\frac{१}{२}}$ = फल ५३ + फ० = अभीष्ट शुक्र गति फल उपपन्नम् होता हैं ।।१४।।

त्रिनृपैः शरजिष्णुभिः शरार्कै-
र्नगभूपैस्त्रिभवैः क्रमात् कुजाद्याः
चलकेन्द्रलवैः प्रयान्ति वक्रं
भगणात् तैः पतितैर्व्रजन्ति मार्गम् ।।१५।।

मल्लारिः

अथ चक्रमार्गपरिज्ञानार्थं शीघ्रकेन्द्रभागान् वृत्तेकेनाह त्रिनृपैरिति। कुजाद्याः भौमाद्याः पञ्च ग्रहाः क्रमादेभिश्चलकेन्द्रभागैर्वक्रं वक्रारम्भं यान्ति। त्रिनृपैः त्रिष्टयधिकशतेन १६३। शरजिष्णुभिः पञ्चचत्वारिंशदधिकशतेन १४५। शरार्कैः सपादशतेन १२५। नगभूपैः सप्तषष्टयधिकशतेन १६७। त्रिभवैस्त्रयोदशाधिकशतेन ११३। एतैर्भगण चक्रभागभ्यः ३६० पतितैः शेषांशतुल्यस्वकेन्द्रभागैर्मार्गिं व्रजन्तीत्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। ग्रहस्य वक्रारम्भे मार्गारम्भे च गतिः शून्यम्०। तच्च यदोच्चगतिसमा केन्द्रगतिस्तदैव। अत्र ग्रहाणां शीघ्रोच्चगतिर्ज्ञातैवास्ति तया स्पष्टकेन्द्रगतितुल्यया भवितव्यम्। अत्रोदाहरणार्थं भौमस्य शीघ्रोच्चगतिः ५९।८। तथा तस्य मध्यमा गतिः ३१।२६। केन्द्रगतिः २७।४२। इयं तथा शीघ्रफलकोटिज्यया गुण्या शीघ्रकर्णेन भाज्या यथा उच्चगतेः समा स्यात्। तच्छीघ्रफलं कस्मात् केन्द्रात् सिध्यतीति विलोमेन शीघ्रकेन्द्रं जायते। अतस्ते शीघ्रकेन्द्रांशाः स्थिरा उक्ताः। त एव चक्रशुद्धाः मार्गभागाः स्युर्यतश्चक्रमध्ये द्विवारं गतेरभावः ॥१५॥

विश्वनाथः

अथ भौमादीनां वक्रस्य शीघ्रकेन्द्रभागानाह त्रिनृपैरिति। भौमादीनामेमिश्चलकेन्द्रभागैर्वक्रता स्यात्। भौमस्य त्रिनृपै–१६३ रेतत्तुल्यैरन्तिमशीघ्रकेन्द्रभागैस्तद्दिने वक्रत्वं भवति। ततो बुधस्य शरजिष्णुभिः १४५। शीघ्रकेन्द्रभागैर्वक्रत्वं भवति। गुरोः शरार्कैः १२५। शुक्रस्य नगभूपैः १६७। शनेस्त्रिभवैः ११३। एभिश्चलकेन्द्रभागैर्भगणांशात् पतितैः भगणो द्वादशराशयः तेषां भागाः ३६०। तेभ्यः शुद्धैरिति। १९७।२१५।२३५। १९३।२४७। एतत्तुल्यैरन्तिमशीघ्रकेन्द्रभागैः क्रमाद्भौमादीनां मार्गत्वं स्यादिति ॥१५॥

केदारदत्तः

ताराग्रहों में मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि के जब शीघ्र केन्द्रांश क्रमशः १६३°, १४५°, १२५°, १६७° और ११३° होते हैं अर्थात् वे वक्र विलोम गतिक हो जाते हैं। वक्रगति का तात्पर्य है कि मेषादि से वृषादि मार्ग सीधा गमन न होकर मेषादि से मीनान्त...प्रतिकूल गमन होता है। उक्त वकारम्भ शीघ्र केन्द्रांशों को ३६०° में कम करने से भौमादि ग्रह क्रमशः शेषांश तुल्य १९७°, २१५°, २३५°, १९३° और २४७° केन्द्रांशों में मार्गगतिक अर्थात् अनुलोम गतिक हो जाते हैं ॥१५॥

उपपत्ति—मल्लारि व्याख्यान में उक्त सिद्धान्त १५ की उपपत्ति के आधार से, गणकवर्य श्री बापूदेव शास्त्री ने इस श्लोक की उपपत्ति में—

"त्रिज्याकृतिः खचरमध्यभुक्तिनिघ्नी शीघ्रोच्चभुक्तिगुणितोऽन्त्यफलस्य वर्गः।
योगस्तयोः परमफलज्यकया विभक्तः शीघ्रोच्चभुक्तिखगवर्गसमासहृच्च ॥

यह सरल नवीन गवेषणात्मक उपपत्ति से ग्रह के वक्रारम्भ केन्द्रांशों की कोटि चाप ज्या का साधन किया है, कि ग्रह की मध्यमा गति को त्रिज्या वर्ग से गुणकर उसमें शीघ्रोच्च-

गति गुणित अन्त्यफल का वर्ग जोड़ देने से जो प्राप्त हो उसे भाज्य मानकर उसमें अन्त्य-फलज्या गुणित, उच्च और मध्य गति योग से भाग देने से वक्रारम्भ कालीन केन्द्र कोटि का मान स्पष्ट हो जाता है।

मंगलग्रह का उच्च=म० सूर्य। अतः मंगल की उच्च गति=५९'।८ मंगल की अन्त्य-फलज्या=७७, मंगल की मध्यमा गति=३१'।२६" त्रि=१२०। मंगल उ० ग० + मं० ग०= ५९।८ + ३१।२६=९०'।३४" मंगल की अन्त्यफलज्या^{2} = (७७^2) =५९२९ तथात्रि^{2} = (१२०)^2 = १४४०० मंगल अन्त्यफलज्या^{2} × मंगलउ०ग = ३५०६०१'।३२"। त्रिज्या^{2} × मंगल गति = ४५२६४० ।

अतः श्री बापूदेव शास्त्री के उक्त इस सूत्र के अनुसार मंगल की वक्रारम्भीय केन्द्र

$$\text{कोटिज्या} = \frac{\text{मंगलगति} \times \text{त्रि}^2 + \text{ज्या अफ}^2 \times \text{मं०उ०ग०}}{\text{ज्या अं० फ}^2\,(\text{म०उ०ग०} + \text{मंगल गति})}$$

$$= \frac{(३१'।२६'') \times १२०^2 + ७७^2 \times (५९'।८'')}{(७७)^2 \times (५९'।८'' + ३१'।२६)}$$

$$= \frac{(४५२६४०') + (४५०६०१'।३२)}{५९२९\,(५९'।८'' + ३१'।२६'')}$$

$$= \frac{८०३२४१'।३२}{५९२९(९२'।३०)} = ११५'।११$$ यह वक्रारम्भ केन्द्र कोटिज्या है, इसका चाप = ७३° (स्वल्पान्तर से) अतः ९०° + ७३°=१६३° मंगल ग्रह का वक्रारम्भ केन्दांश सिद्ध होता है। आचार्य का प्रकार उपपन्न है। इसी प्रकार बुध, गुरु, शुक्र और शनि ग्रहों के वक्र आरम्भ शीघ्र केन्द्रांशों का ज्ञान सम्यक् होता है जिसे आचार्य ने स्पष्ट किया है। तथा उच्च बिन्दु से आगे जितने अंशों में द्वितीय पद में ग्रह के वक्र होने के केन्द्रांश होते हैं उतने ही अंशों में उच्च से पृष्ठस्थित तृतीय पद में गति वक्रता का त्याग होने से वक्र केन्द्रांशों को भगणांश = ३६० अंशों में कम करने से ग्रहों के मार्गारम्भ (अनुलोमगमन) केन्द्रांश सिद्ध होते हैं ॥१५॥

क्षितिजोऽष्टयमैरुदेति पूर्वे
गुरुरिन्द्रै रविजस्तु सप्तचन्द्रैः ।
स्वस्वोदयभागसंविहीनै-
र्भगणांशै-३६० रपरत्र यान्ति चास्तम् ॥१६॥

मल्लारिः

अथोदयास्तयोः शीघ्रकेन्द्रभागानेकवृत्तेनाह क्षितिज इति। अष्टयमैरष्टाविंशत्यंशः शीघ्रकेन्द्रस्य भौमः पूर्वे पूर्वस्यां दिशि उदेति उदयं प्राप्नोति। इन्द्रैश्चतुर्दशभिर्गुरुः। रविजः शनिः सप्तचन्द्रैः सप्तदशभिः। स्वस्वोदयभागसंविहीनैर्भगणांशैः कृत्वाऽपरत्र पश्चिमायां ते क्रमेणास्तं यान्तीत्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः पूर्ववत् कक्षावृत्तनीचोच्चवृत्तप्रतिमडलानि विनिर्दिशेत्। भौमगुरुशनीनां रविः शीघ्रोच्चं बुधशुक्रयोरपि साधितमस्ति। अतो रवेः समसूत्रस्थो यदा ग्रहो भवति तदा परमास्तमयः तदाद्यन्तौ कलांशौ भवतः। अतएवास्तमये रवेरस्तमनानन्तरं ग्रहो दृश्यते शीघ्रत्वात् रविरस्तमासादयति तेन पश्चादस्तः। उदये शीघ्रत्वात् रवेरुदयात् प्रथमं दृश्यते तस्मात् प्रागुदय इत्युपन्नम्। बुधशुक्रौ तु वक्रिणौ पश्चादस्तं व्रजतः तयोर्विलोमगतित्वाद्रवेः प्राग्गतित्वाच्च। अत एव वक्रिणोः प्रागुदयः। तयोरपरगतित्वाद्रवेः प्राग्गतित्वात्। यदाधिकगती भवतस्तदा शीघ्रत्वात् रविमासादयतस्तस्मात् पूर्वास्तः। तावेव शीघ्रगतित्वात् सूर्यं त्यक्त्वाऽग्रतो गच्छतः। अत एवास्तं गतेऽर्के पश्चिमायां तयोरुदयः। उदयास्ताध्याये ये कालांशा उक्ताः स्पष्टार्कात् तदंशान्तरिते ग्रहे उदयोऽस्तो वा स्यात् स स्थूलः। इह यच्छीघ्रकेन्द्रमुक्तं तन्मन्दस्पष्टमध्यार्कान्तरं स्यात्। यथा भौमस्पष्टाविंशतिभागैरेकादशभागाः फलंतैरधिको भौमोऽर्काद्यावच्छोध्यते तावत् सप्तदशभागा भवन्ति। सप्तदशैव तस्य कालांशा अतस्तावतिकेन्द्र उदयः। एभिश्चक्रशुद्धैरस्तः स्यात्। यतोऽत्रैभिर्भागैः ३३२ फलमेकादशभागाः। तैरधिकोऽर्काद्यावच्छोध्यते तावत् सप्तदशभागान्तरं स्यात्। एवं सर्वेषाम् ॥१६॥

विश्वनाथः

अथ कुजगुरुशनीनामुदयभागानाह। क्षितिज इति। क्षितिजो भौमः। अष्टयमैः २८ शीघ्रकेन्द्रभागैः पूर्वे पूर्वस्यां दिशि उदेति उदयं प्राप्नोति। गुरुरिन्द्रैः १४ शीघ्रकेन्द्रभागैः पूर्वे उदेति। रविजः शनिः सप्तचन्द्रैः १७ शीघ्रकेन्द्रभागैः पूर्वे उदेति। एभिः स्वस्वोदयभागसंविहीनैर्भगणांशै–३६० रुर्वरितै–३३२। ३४६। ३४३। रेतत्तुल्यैरन्तिमशीघ्रकेन्द्रभागैरपरत्र पश्चिमेऽस्तं यान्ति ॥१६॥

केदारदत्तः

सूर्य सामीप्य से अस्त होने के अनन्तर २८° शीघ्र केन्द्रांश में मंगल, १४° शी०के० में बृहस्पति और १७° शी०के० में शनिग्रह पूर्व दिशा में उदय होते हैं। उदय अंशों को ३६० में घटा देने से, ३३२°, ३४६° और ३४३° तुल्य केन्द्रांशों में मंगल, गुरु, सौर शनिग्रह क्रमशः पश्चिम दिशा में अस्त होते हैं ॥१६॥

उपपत्तिः—अपनी-अपनी कक्षाओं में प्राग्गतिक ग्रह सूर्य के समीप आते-आते जब अदृश्य अर्थात् अस्त हो जाते हैं, उस समय के शीघ्र केन्द्रांशों का नाम अस्त केन्द्रांश कहा गया है। अस्त होने के अनन्तर जितने समय बाद पुनः दृक्पथ अर्थात् दृश्य हो जाते हैं उस समय के केन्द्रांशों का नाम उदय केन्द्रांश कहा जाता है। ग्रहों के दृश्यादृश्य कालीन (उदयास्ताधिकार) कालांशों में मंगल के=१७°, गुरु के=११° और शनि के=१५° है।

इन अंशों की क्रमशः ज्या = मं० ३४, गु० २२ और शनि० ३० तथा स्वल्पान्तर से अन्त्यफलज्या=मंगल=७७, गुरु की = ३३, और शनि० की = १६ "त्रिज्याविभक्तान्त्यफलज्याया—इह"''सूत्र से ज्या शी० फ० = $\frac{\text{स्प० के० ज्या०} \times \text{अं० फ० ज्या०}}{\text{त्रि} = १२०}$, अपने-

अपने मानों से उत्थापित करने से—

मंगल = $\frac{७७ \times ३४}{१२०} = \frac{२६१८}{१२०}$ = २२ (स्वल्पान्तर से) इसका चाप=११

गुरु = $\frac{३३ \times ३३}{१२०} = \frac{११ \times ३४}{६०} = \frac{३६३}{६०}$ = ६ का चाप=३^0

शनि = $\frac{३० \times १६}{१२०} = \frac{१६}{४}$ = ४ का चाप=२^0 इन चापों को क्रमशः मंगल के कालांश = ११^0 + १७ =३८^0 गुरु के कालांश=११^0 + ३=१४^0 शनि के कालांश=१५^0 + २=१७^0 सिद्ध होते हैं। इन्हें ३६०^0 में कम करने से मंगल के ३३८, गुरु के ३४६^0, और शनि के ३४३^0 पर क्रमशः पश्चिमास्तकालीन केन्द्रांश सिद्ध होते है ॥१६॥

खशरैश्च जिनैः परे ज्ञभृग्वो-
रुदयोऽस्तोऽक्षदिनैर्नगाद्रिभूभिः ।
उदयोऽक्षनखैस्त्र्यहीन्दुभि प्रा-
गस्तो दिग्दहनैश्च षट्सुरैः स्यात् ॥१७॥

मल्लारिः

अथ बुधशुक्रयोरुदयास्तकेन्द्रांशानेकवृत्तेनाह खशरैरिति । परे पश्चिमायां दिशि ज्ञभृग्वोर्बुधशुक्रयोरुदयः खशरैः ५० । जिनैः २४ । क्रमात् स्यात् । तत्रैवास्तोऽक्षदिनैः पञ्चपञ्चाशदधिकशतमितैः १५५ । नगाद्रिभूमिः सप्तसप्तत्यधिकशतमितैः १७७ । प्राक् पूर्वदिशि तयोरुदयोऽक्षनखैः पञ्चाधिकशतद्वयेन २०५ । त्र्यहीन्दुभिस्त्र्यशीत्यधिकशतेन १८३ । तत्रास्तो दिग्दहनैर्दशाधिकशतत्रयेण ३१० । षट्सुरैः षट्त्रिंशदधिकशतत्रयेण ३३६ । स्यादित्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः पूर्वमेव प्रतिपादिता ॥१७॥

विश्वनाथः

अथ बुधशुक्रयोरुदयास्तभागानाह खशरैरिति । परे पश्चिमायां दिशि बुधशुक्रयोः क्रमात् खशरैः ५० । जिनैः २४ । एतत्तुल्यैः शीघ्रकेन्द्रभागैस्तद्दिने उदयः स्यात् । अक्षदिनैः १५५ । नगाद्रिभूमिः १७७ । प्रतीच्यामस्तः । अक्षनखैः २०५ । त्र्यहीन्दुभिः १८३ । शीघ्रकेन्द्रभागैः प्राक् पूर्वदिशि तयोर्बुधशुक्रयोरुदयः स्यात् । दिग्दहनैः ३१० । षट्सुरैः ४३६ । प्रागस्तः ॥१७॥

केदारदत्तः

बुध के शीघ्रकेद्रांश ५०^0 तथा शुक्र के केन्द्रांश २४ अंश होने पर पश्चिम दिशा में उदय होता है । तथा बुध-शुक्र के क्रमशः केन्द्रांश जब १५५, और १७७ होते हैं तो दोनों का पश्चिम दिशा मे अस्त होता है ।

इसी प्रकार २०५ और २८३ शीघ्रकेन्द्रांशों की स्थितियों में बुध और शुक्र का पूर्व दिशा में उदय तथा ३१० और ३३६ शीघ्रकेन्द्रांशों की स्थितियों में बुध तथा शुक्र का शमशः पूर्व दिशा में अस्त भी होता है ।

उपपत्तिः—स्वल्पान्तर से मन्दस्पष्ट बुध और शुक्र स्फुट रवि के तुल्य होते हैं। अतः स्पष्ट रवि और स्पष्ट बुध का अन्तर = शी० फल । अतः पश्चिम में उदय के समय, घन-शीघ्रफल में सूर्य से अधिक कालांश शी० फ० तुल्य मान कर, विलोम विधि से स्फुट केन्द्रांश, मान साधन कर उनमें कालांश मान जोड़ने से पश्चिम में उदय के समय मध्यम केन्द्रांश मान हो जाता है।

जैसे बुध का पश्चिमोदय कालांश = $१३^०$, कालांशज्या = २६, = फलज्या । बुध की अन्त्यफलज्या = ४३, त्रिज्या १२०, अतः अनुपात से स्प० के० ज्या = $\frac{\text{त्रिज्या} \times \text{फलज्या}}{\text{अन्त्यफलज्या}}$

$= \frac{१२० \times २६}{४३}$ = ७३ का चाप = ३७ । आगत चाप ३७ में १३ जोड़ने ३७ + १३ = ५०

= सूर्य से आगे मार्गी बुध का जितने केन्द्रांश में पश्चिम में उदय होता है, उतने ही स्पष्ट केन्द्रांशों से तुल्य सूर्य से पीछे स्थित वक्री बुध का पूर्व में उदय होता है ।

अतः पूर्व साधित स्फुटकेन्द्रांश ३७ में भार्ध = $१८०^०$ जोड़ने से $२१७^०$ होते हैं। तथा शीघ्रफल की धन ऋण की विलोमता से वक्रस्थितिगत बुध के कालांशों को उक्त शी० के० $२१७^०$ में कम करने से २१७ − १२=२०५ शीघ्रकेन्द्रांश में बुध के पश्चिमोदय केन्द्रांश सिद्ध होते हैं। तथा ३६० − २०५ = १५५ बुध का पश्चिमास्त केन्द्रांश होता है। इस प्रकार $\frac{२२ \times १२०}{८६}$ = ३१ का चाप = $१५^०$ स्वल्पान्तर से, अतः १५ + ९=$२४^०$ = शुक्र का पश्चिमोदय केन्द्रांश । $१५^० + १८०^० = १९५^०$, अतः $१९५^० - ११^० = १८४$ की जगह आचार्य ने १८३ शुक्र का पूर्वोदय केन्द्रांश माना है । १८० − पूर्व या पश्चिमोदय केन्द्रांश= उस उस दिशा के अस्त केन्द्रांश होते हैं । इति एवं उपपन्न होता है ॥१७॥

वक्रोदयादिगदितांशकतोऽधिकाल्पाः
केन्द्रांशकाः क्षितिसुताद् द्विगुणास्त्रिभक्ताः ।
सांकांशका दशहताङ्गहताः कुभक्ता
वक्राद्यमाप्तदिवसैः क्रमशो गतैष्यम् ॥१८॥

मल्लारिः

इदानीं वक्रमार्गादिदिनज्ञानमेकवृत्तेनाह । वक्रोदयादिति । वक्रोदयास्तमार्गाणां वक्रोदयास्तमार्गाणां ये गदितांशा उक्ताः शीघ्रकेन्द्रभागास्तेभ्योऽधिका अल्पा इष्टदिने केन्द्रभागाः स्युस्तदा ते क्षितिसुतादेभिर्हरैर्भाज्याः । इष्टकेन्द्रांशोक्तकेन्द्रांशान्तरांशा

भौमस्य द्विहता बुधस्य त्रिभक्ता गुरोः सांकांशकाः सनवमांशाः शुक्रस्य दशहताः सन्तोऽङ्गैः षड्भि–६ हृता भक्ताः शनेः कुभक्ता अविकृताः। एवमाप्तैर्लब्धदिवसैर्वक्राद्यं वक्रोदयमार्गादिकं गतैष्यं स्यात्। चेदिष्टकेन्द्रांशा उक्तेभ्योऽधिकास्तदागतमल्पास्तदा गम्यमित्यर्थः॥

अत्रोपपत्तिः सुगमा तथापि किञ्चिदुच्यते। उक्तशीघ्रकेन्द्रतुल्यं यदा शीघ्रकेन्द्रं स्यात् तत्काले उदयास्ताद्यं स्यादेव। ऊनाधिकेऽनुपातः। यदि शीघ्रकेन्द्रगतिकलाभिरेकं दिने तदाऽन्तरभागकलाभिः किमतोऽन्तरभागानां कलार्थं सर्वत्र षष्टिर्गुणः। स्वकेन्द्रगतिर्हरः तत्राचार्येण लाघवार्थं स्वल्पान्तरत्वात् शीघ्रकेन्द्रगतयो मध्यमा एव गृहीताः। तत्र भौमस्य शीघ्रकेन्द्रगतिः २७।४२। अत्र गुणहरौ हरेणापवर्त्य जातो गुणः २। एवं बुधस्य शीघ्रकेन्द्रगतिः १८६। अत्र गुणहरौ गुणेनापवर्त्य जातो गुणः १। हरः ३। गुरोः शीघ्रकेन्द्रगतिः ५४। गुणहरौ षड्भिरवर्त्तितौ गुणः १०। हरः ९। यो राशिर्दशभिर्गुण्यते नवभिर्भज्यते स स्वनवमांशाधिक एव भवति। एवं शुक्रस्य शीघ्रकेन्द्रगतिः ३७। अत्र गुणहरौ षड्भिरवर्त्य गुणः १०। हरः ६। अतो दशहताङ्गहृताः। एवं शनेः शीघ्रकेन्द्रगतिः ५७।८। गुणहरयोः साम्यात् कुभक्ता इति। लब्धैर्दिनैर्वक्राद्यं स्यादित्युपपन्नम्॥१८॥

विश्वनाथः

अथैभ्यः शीघ्रकेन्द्रांशेभ्य इष्टकेन्द्रांशा न्यूनाधिकास्तदा तदन्तरदिनसाधनमाह वक्रोदयादीति। वक्रोदयादीनामवधेः प्रागुक्ता भागास्तेभ्यो ऽधिकहीना अन्त्यशोघ्रफलसाधने शीकेन्द्रभागाः। तदोक्तेष्टभागानामन्तरं कार्यम्। तेऽन्तरभागा भौमस्य द्विगुणः। बुधस्य त्रिभक्ताः। गुरोः सांकांशाकाः स्वकीयनवमभागान्विताः। शुक्रस्य दशहताः सन्त षड्भिर्हृताः। शनेः कुभक्ताः। आप्तदिवसैः क्रमेण गतैष्यो वक्रादिः स्यात्। तद्यथा उक्तशीघ्रकेन्द्रभागेभ्य इष्टकेन्द्रांशा हीनास्तदैष्या दिवसा ज्ञातव्या यदाधिकास्तदा गतदिवसा भवन्तीत्यर्थः॥१८॥

केदारदत्तः

भौमादि पञ्चतारा ग्रहों के पूर्व श्लोकों में पठित वक्र, उदय, मार्ग और अस्त के शीघ्रकेन्द्रांशों का अभीष्ट दिन सम्बन्धी इष्ट केन्द्रांशों के साथ अन्तर करने से वह अन्तरांश यदि मंगल के हों तो २ से गुणित, बुध के ३ से विभक्त गुरु के हों तो उन्हीं केन्द्रांशों का नवम भाग उन्हीं में जोड़ने से, शुक्र के हों तो उन्हें $\frac{१०}{६} = \frac{५}{३}$ से गुणा करने पर पाँच गुणित ३ से विभक्त करने और शनि के हों तो उन अभीष्ट शेषांशों में १ से भाग देने से लब्ध तुल्यगत ऐष्य दिनों में ये ग्रह वक्र अस्त या उदय हो गए हैं या भविष्य में होंगे ऐसा सगणित समझना चाहिए।

उदाहरण से—वृहस्पति ग्रह का उदय हो गया, या होने वाला है ऐसी जिज्ञासा में, यदि उदय समीप के बृहस्पति के शीघ्र केद्रांश = $१०^{०}$ हैं तो पाठपठित बृहस्पति के

उदयांश=१४ से अभीष्ट शी० के० १० = ४ शेषांश होते हैं अतः श्लोक के अनुसार $\frac{४ \times १०}{६} = ६\ \frac{२}{३}$ दिनों और आगे अर्थात् प्रश्न समय से ६ दिन १३ घण्टे आगे के समय में उस तिथि के इष्ट समय में बृहस्पति का उदय होगा ही।

यदि अभीष्ट शीकेन्द्रांश=२० हैं तो २० − १४=६ अतः ६ × १०/६=१० दिनों पहिले ही प्रश्न समय के पूर्व १० दिन गुरु का उदय सिद्ध होता है।

उपपत्तिः—केन्द्र गति = के० ग०। शेषभागांश = शे०। मंगल के० ग०=उ च ग − म० ग० = ५९।८ − ३१ = १८, गुरु के० ग = ५९ − ५ = ५४, शनि के० ग = ५९ − २ = ५७, बुध के० ग = १८६, शुक्र के० ग = ३७।

अनुपात से यदि केन्द्र गति में १ दिन तो उदय वक्रादि कथित शीघ्र केन्द्रांश और अभीष्ट केन्द्रांशों के अन्तर जनित इष्ट केन्द्रांशों में कितते दिनादिक तो $\frac{१ \times \text{शेषांश} \times ६०}{\text{के० ग०}}$, अपने अपने मानों में उत्थापन देने से—

मंगल ग्रह के दिनांकित = $\frac{\text{शेषांश} \times ६०}{२८} = \frac{\text{शेषांश} \times २}{१}$ स्वल्पान्तर से

बुध .... = $\frac{\text{शेषांश} \times ६०}{१८६} = \frac{\text{शेषांश}}{३}$ स्वल्पान्तर से

बृहस्पति .... = $\frac{\text{शेषांश} \times ६०}{५४} = \frac{\text{शेषांश} \times १०}{९} = \text{शेषांश} + \frac{\text{शेषांश}}{९}$

शुक्र .... = $\frac{\text{शेषांश} \times ६०}{३७} = \frac{\text{शेषांश} \times १०}{६} = \frac{\text{शेषांश} \times ५}{३}$

शनि .... = $\frac{\text{शेषांश} \times ६०}{५७} = \frac{\text{शेषांश} \times १}{१}$ स्वल्पान्तर से

उपपन्न होता है ॥१८॥

पूर्वास्तादुदयः परेऽनृजुगतिस्तोयास्तमैन्द्र्युद्गमो
मार्गोऽस्तोऽत्र च दन्तदन्तदहनाष्टयाज्याशदन्तैर्दिनैः।
चांद्रेस्तत्परतत्परं त्वथ भृगोस्तद्वद्द्विमास्यात्ततो-
ऽष्टाभिन्यङ्घ्रिभुवांघ्रिणा विचरणैकेनाष्टमासैः क्रमात् ॥१९॥

मल्लारिः

अथ बुधशुक्रयोर्मध्यमानि वक्रमार्गोदययास्तदिनानि सिद्धान्यैकवृत्तेन वदति पूर्वास्तात् परे पश्चिमायामुदयः। ततोऽनृजुगतिर्वक्रत्वम्। ततस्तोयास्तं पश्चिमास्तम्।

तत ऐन्द्रयुद्गमः पूर्वोदयः। ततो मार्गः। ततः पूर्वास्तः। चान्द्रेर्बुधस्य तत्परतत्पर-मेभिर्दिनैर्यथाक्रमं स्यात्। एतैः कैस्तानेवाह। दन्ता द्वात्रिंशत् ३२। पुनस्त एव ३२। दहनास्त्रयः ३। अष्टिः षोडश १६। आज्याशा अग्नयस्त्रयः ३। द्वात्रिंशत् ३२। एभिर्दिनैरिति। अथ भृगोः शुक्रस्य तद्वत् क्रमेणभिर्दिनैरुदयाद्यं स्यात्। द्विमास्या मासद्वयेन। ततोऽष्टाभिरष्टमासैः व्यङ्घ्रिभुवा द्वाविंशतिदिनैः अंघ्रिणा दिनाष्टकेन। विचरणैकेन द्वाविंशतिदिनैः अष्टमासैः॥

अत्रोपपत्तिः। पूर्वास्तशीघ्रकेन्द्रांशाः पश्चिमोदयशीघ्रकेन्द्रांशकेभ्यो यावदन्तरितास्तावदंशानां कलाः केन्द्रगतिभक्ता दिनानि स्युः। एवं वक्रमार्गादीनामपि तत्तत्केन्द्रान्तराद्दिनानि स्युरित्युपपन्नम् ॥१९॥

विश्वनाथः

अथ वक्रोदयास्तमार्गदिवसानुक्रममाह पूर्वास्तादिति। चान्द्रेर्बुधस्य पूर्वास्ताद्दन्तैर्दिनैः परे पश्चिमायामुदयः स्यात्। ततः परोदयाद्दन्तैरनृजुगतिर्वक्रत्वं स्यात्। ततो वक्रगतेर्दहनैस्त्रिभिस्तोयास्तम्। पश्चिमास्तादष्टिभिरैन्द्रयुद्गमः पूर्वोदयः स्यात्। ततः पूर्वोदयादाज्याशैस्त्रिभिर्मार्गः स्यात्। मार्गादूदन्तैः पूर्वास्तं स्यात्। एवं पुनः पुनर्गणनीयम्। अथ भृगोः शुक्रस्य तद्वत् तेनैव क्रमेण एभिर्दिनैरुदयाद्यं स्यात्। मासद्वयेन ततोऽष्टाभिर्मासैस्ततो व्यंङ्घ्रिभुवा॥ चरणरहितेन मासेन द्वाविंशद्दिनैरित्यर्थः। ततोऽघ्रिणा मासस्य चरणेन दिनाष्टकेन ततो विचरणैकेन चतुर्थांशोनमासेन द्वाविंशतिदिनैस्ततोऽष्टमासैः। एवमित्यादिक्रमेण शुक्रस्य पुनश्चक्रं गणनीयम् ॥१९॥

केदारदत्तः

बुध ग्रह पूर्व में अस्त होने के अनन्तर ३२ दिनों में पश्चिम में उदय होता है। पश्चिमोदय के दिन से ३२ वें दिन में वक्र होता है। वक्र होकर ३ दिन बाद पश्चिम में अस्त होता है। पश्चिमास्त से १६ दिन में पूर्व दिशा में उदित होकर पुनः ३ दिनों में मार्गी होता है। और मार्गी (अनुलामेंगामी) होकर पुनः ३२ दिन में पूर्व ही में अस्त होता है। पुनः उक्त क्रम से पूर्वास्तादुदयः परे की तरह का क्रम चालू होता रहता हैं।

एवं शुक्रग्रह पूर्वास्त के २ मास बाद पश्चिम में उदयी तदनन्तर के ८ महीनों बाद वक्री (विपरीतगामी), वक्र के $\frac{3}{4}$ मास (२२ दिन ३० घटी) के पश्चात् पश्चिम में अस्त, अस्त के दिन से $\frac{1}{4}$ मास ($७\frac{1}{2}$ साढ़े सात दिनों) के बाद पूर्व दिशा में उदय, पूर्वोदय के पश्चात् $\frac{3}{4}$ (पादोनमास) २२ दिन ३० घटी में मार्गी, मार्गी होने के ९ महीने बाद पुनः पूर्व में अस्त होता है ॥१९॥

उपपत्ति—यदि केन्द्रगति कलाओं में एक दिन मिलता है तो पूर्वास्त पश्चिमोदयान्तरांश कलाओं में कितने दिन मासादि मिलेंगे त्रैराशिकानुपात से पूर्वास्तादुदयादि दिन संख्याएँ प्राप्त होती हैं जिन्हें आचार्य ने पढ़ा है ॥१९॥

भौमस्यास्तादुदयकुटिलर्जुत्वमौढ्यं क्रमात् स्या-
न्मासैर्वेदैरथ दशमितैर्लोचनाभ्यां च दिग्भिः ।
जीवस्योर्व्या सचरणयुगैः सागरैः साङ्घ्रिवेदैः
साङ्घ्र्येकेन त्रियुगदहनैरर्धयुक्तैस्तथाऽर्केः ॥२०॥

मल्लारिः

अथ भौमगुरुशनीनामुदयास्तवक्रमार्गदिनानि वृत्तेकेनाह भौमस्येति । भौमस्य अस्तादुदयः । ततः कुटिलं वक्रत्वम् । तत ऋजुत्वं मार्गत्वम् मौढ्यमस्तम् । इदं क्रमात् स्यात् । मासैर्वेदैश्चतुर्भिः ४। अथ दश–१० मितैः । लोचनाभ्यां द्वाभ्याम् २ । दिग्भि-र्दशभिः १० इति । जीवस्य गुरोस्तदेवास्ताद्यम् । उर्व्या एकमासेन । सचरणयुगैः सपादचतुर्मासैः । सागरैश्चतुर्भिः । सांघ्रिवेदैः सपादचतुर्भिः । तथाऽर्केः शनेः सांघ्येकेन सपादैकमासेन । अर्धयुक्तैस्त्रियुगदहनैः । सार्धत्रिभिः । सार्धचतुर्भिः । सार्धत्रिभिः । क्रमात् स्यादित्यर्थः । एतानि मध्यमानि । स्पष्टानि तेभ्यः किञ्चिदूनाधिकानि भवन्ति। स्थूलत्वेन जनव्यवहारार्थमेतान्युक्तानि ॥

अत्रोपपत्तिः पूर्वमेव प्रतिपादिता ॥२०॥

देवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन ।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्य जातः कुजादिस्फुटताधिकारः ॥

इति श्रीसकलागमाचार्यवर्यगणेशदेवज्ञकृतग्रहलाघवस्य टीकायां देवज्ञवर्य-दिवाकरात्मजमल्लारिदैवज्ञविरचितायां पञ्चतारास्पष्टीकरणाधिकारस्तृतीयः ॥३॥

विश्वनाथः

अथ भौमगुरुशनीनामस्तादिदिनान्याह भौमस्येति । भौमस्यास्ताद् वेदैर्मासै-रुदयः । उदयाद्दशमासैः कुटिलत्वं वक्रत्वं स्यात् । वक्राल्लोचनाभ्यां मासाभ्यामृजुत्वं मार्गो भवति । मार्गाद् दिग्भिर्दशभिर्मासैः मौढ्यमस्तो भवति । एवं पुनर्गणनीयम् ॥

जीवस्य गुरोरस्तादुदयकुटिलर्जुत्वमौढ्यं स्यात् । उर्व्या एकेन मासेन सचरण-युगैः सपादचतुर्थमासैः ४।८। ततः सागरैर्मासैः ४ । ततः साङ्घ्रिवेदैर्मासैः ४।८ । एवं पुनर्गणनीयम् । आर्कैः-शनैश्चरस्य तद्वद्भौमवज्ज्ञेयम् । सचरणभुवा सपादेन मासेन १।७।३० ततः सार्धैस्त्रिभिर्मासैः ३।१५ । ततः सार्धैश्चतुर्भि-४ । १५ । र्मासैः । ततः सार्धैस्त्रिभिः ३।१५ मासः एवं पुनर्गणनीयम् ॥२०॥

इति श्रीदिवाकरदेवज्ञात्मजविश्वनाथदेवज्ञविरचिता ग्रहलाघवस्य भौमादीनां स्पष्टीकरणस्योदाहृतिः समाप्ता ॥३॥

केदारदत्तः

मंगल ग्रह अस्त होने के अनन्तर ४, १०, २ और १० महीनों में क्रमशः उदय, वक्र, मार्ग और अस्त होता है।

गुरू ग्रह अस्त होने के पश्चात् १, $४\frac{१}{४}$ (सवाचार) ४, और सवाचार = $४\frac{१}{४}$ महीनों में क्रमशः उदय, वक्र, मार्ग और अस्त होता है ।

एवं शनिग्रह अस्त होने के अनन्तर, $\frac{५}{४}$, $\frac{७}{२}$, $\frac{९}{२}$, और $\frac{७}{२}$ महीनों में क्रमशः उदय, वक्र, मार्ग और अस्त होता है ।।२०।।

उपपत्तिः—१९ वें श्लोकानुसार समझिए ।

इति पञ्चतारास्पष्टाधिकारः समाप्तः ।।३।।

गर्गगोत्रीय स्वनामधन्य, कूर्माञ्चलीय ज्योतिर्विद्वर्य श्री पं० हरिदत्त जी के आत्मज-अल्गोड़ामण्डलीय जुनायल ग्रामज पर्वतीय काशीस्थ श्री केदारदत्त जोशी कृत ग्रहलाघव-पञ्चतारास्पष्टीकरण की उपपत्ति सहित सोदाहरण व्याख्या सम्पूर्ण ।।३।।

अथ त्रिप्रश्नाधिकारः

लंकोदया विघटिका गजभानि गोंऽक-
दस्रास्त्रिपक्षदहनाः क्रमगोत्क्रमस्थाः ।
हीनान्विताश्चरदलैः क्रमगोत्क्रमस्थै-
र्मेषादितो घटत उत्क्रमतस्त्विमे स्युः ॥१॥

मल्लारिः

अथ त्रिप्रश्नाध्यायो व्याख्यायते। त्रयः प्रश्ना अत्राधिकारे कथ्यन्त इति त्रिप्रश्नः। ते के दिग्देशकालास्तेषां परिज्ञानमिति। दिग्देशकालादिभिरिष्टसमयादि कमवबुध्यते तदुच्यते। तत्रादौ लग्नोपयोगित्वाल्लङ्कोदयास्तेभ्यः स्वदेशीयकरणं चैक-वृत्तेनाह लंकोदया इति। एते विघटिकाः पलात्मका लंकोदयाः स्युस्तानेवाह गजभानि अष्टसप्तत्याधिकशतद्वयम् २७८। गोंकदस्राएकोनत्रिंशती २९९। त्रिपक्षदहनास्त्रयो-विंशत्यधिकत्रिशती ३२३। एते मेषादीनां त्रयाणाम्। त एवोत्क्रमस्थाः कर्कादित्रयाणाम्। एते चरदलैः स्वदेशीयचरखण्डकैः। क्रमगोत्क्रमस्थैर्हीनान्विताऽ कार्याः। क्रमस्थैस्त्रिभिः क्रमस्थास्त्रयोहीनाः। उत्क्रमस्थैस्त्रिभिरुत्क्रमस्थास्त्रयो युक्ताः सन्तो मेषादितो मेष-मारभ्य षण्णां राशीनामुदयाः स्युः। एत एवोत्क्रमतो घटतस्तुलातः। षडुदयाः स्युरित्यर्थः॥

अत्रोपपत्तिः। क्रान्तिवृत्ते क्षेत्रविभागेन द्वादशराशयस्तुल्यप्रमाणा एव भवन्ति। नाडीवृत्ते कालांशविभागेन सर्वे राशय उदयन्ति। निरक्षे तन्नाडीवृत्तं समं पूर्वापर-मण्डलवद्भ्रमति। क्रान्तिमण्डलं च दक्षिणोत्तरतस्तिरश्चीनमुदेति। क्रान्तिवृत्तस्थो मेषो यावत् तिरश्चीन उदेति तावद्विषुवद्वृत्तेऽष्टाविंशतिभागाः किञ्चिन्न्यूनाः। एवं सर्वेऽपि। साधनोपायो यथा। सिद्धान्तोक्तबृहज्ज्ययैव मेषादीनां त्रयाणां स्वक्रान्त्यग्रेषु त्रीणि स्वाहोरात्रवृत्तानि विषुवत उत्तरतो बध्नीयात्। तथा तुलादिकानां विषुवद्वृत्ततो दक्षिणतस्त्रीणि स्वाहोरात्रवृत्तानि स्वक्रान्त्यग्रेषु बध्नीयात्। तत्क्रान्तिमण्डले मेषान्ते सूत्रस्यैकमग्रं बद्ध्वा द्वितीयमग्रं मीनादौ बध्नीयात्। एवं वृषमिथुनान्तयोः सूत्राग्रे बद्ध्वा तयोर्द्वितीयाग्रके कुम्भमकरादौ बध्नीयात्। तेषां सूत्राणां यान्यर्धानि तानि क्रमेण मेषवृषमिथुनान्तानां जीवास्त एव मीनकुम्भमकराणाम्। ततस्ताभिः कर्कटसूत्राद्विषु-वत्कल्पनामध्ये त्रीणि वृत्तानि कृत्वा निष्पादयेत्। तत्र स्वजीवा कर्णः। स्वक्रांतिज्या याम्योत्तरा भुजः। कोटिरूर्ध्वाधरा न ज्ञायते। मेषवृषयोः मिथुनज्यया यद्वृत्तमुत्पद्यते तद्याम्योत्तरवृतमेव भवति। तत्रैवोर्ध्वाधरा कोटिः स्वाहोरात्रव्यासर्धतुल्या भवति। मेषवृषयोरूर्ध्वाधरा कोटिः स्वाहोरात्रे न ज्ञायते तत्परिज्ञानायानुपातद्वयम्। तद्यथा।

यदि मिथुनज्यात्रिज्याकर्णस्य मिथुनस्वाहोरात्रवृत्तव्यासार्धतुल्योर्ध्वाधरा कोटिस्तदा मेषज्याकर्णस्य केति । ततो व्यासार्धवृत्तपरिणामाय द्वितीयं त्रैराशिकम् । यदि मेषस्य स्वाहोरात्रवृत्ते एतावती कोटिस्तदा त्रिज्यावृत्ते किमिति । एवं प्रथमं त्रिज्यागुणोऽनन्तरं हरस्तुल्यवात् तयोर्नाशे कृते मिथुनस्वाहोरात्रव्यासार्धस्य मेषज्या गुणो मेषस्वाहोरात्र-वृत्तव्यासार्धं हरः । फलं मेषस्य वृत्ते व्यासार्धे ऊर्ध्वाधरा कोटिः । एवं वृषमिथुनयोः कोटी साध्ये कोटिफलानां ज्यारूपाणां धनूषि कर्त्तव्यानि । यतो वृत्तगत्या क्रान्ति-मण्डलमुदेत्यतो धनुष्करणम् । मिथुनकोट्या उदयन्त्या मेषवृषावप्युदयतः । अतो वृष-चापं मिथुनचापाद्विशोध्यते मिथुनोदयप्राणाः स्युः । मेषादयप्राणा यथागता एव । ते चेत् । मेषे । १६७० । वृषे १७९५ । मिथुने १९३५ । एते षड्भक्ताः पलानि स्युः । यतः षड्भिरसुभिरेकं पलम् । एवं जाता गजभानीत्यादयः । मेषज्या कर्णः संनिहितत्वाम्मेष-कोटया उदेति । वृषज्या कर्णः किञ्चिद्विप्रकृष्टन्वान्महत्या वृषकोट्या उदेति । मिथुनज्या कर्णो विषुवन्मण्डलादतिदूरे स्थितत्वात् तिर्यक्त्वेनातिमहत्या मिथुनकोट्या उदेति । ततो मिथुनान्तादिभ्यां कर्कटाद्यन्तौ समावतो मिथुनोदयप्राणाः कर्कटोदयः स्यात् । एवं वृषमेषान्तादिभ्यां सिंहकन्याद्यन्तौ समावतो वृषमेषसमा सिंहकन्योदयौ । द्वितीयमण्डलार्धस्य विषुवतो दक्षिणेन स्थितत्वान् मेषाद्युदयानामुत्क्रमेणोदयप्राणा-स्तुलादिषु भवन्ति । एवं निरक्षदेशे । अन्यथा यदि विषुवद्दृते राशयः स्युस्तदा पञ्च घटिका राश्युदयाः स्युः । राशयश्चापमण्डले तस्माद्भिन्नप्राणा राश्युदया निरक्षे स्युः । एतत् सर्वं यथास्थिते निरक्षगोले दर्शयेत् ॥

अथ स्वदेशोदयोपपत्तिः । अक्षवशाद्विषुववृत्तमपि तिर्यग्भवति । तद्वशान्मेषादीनां स्वाहोरात्राण्यपि तिर्यग्भवन्ति अतो मेषोदयः स्वचरार्धैर्वियुज्यते । मेषोदयस्तिर्यक्कर्ण-रूपः । कर्णाच्च कोटिरल्पा स्यात् । क्रमाच्चरदलहीनाः स्वदेशोदयाः स्युः । अतो विषुवन्मडलपादेन चरदलहीनेनायमपवृत्तपादः प्रथममुदेति । कर्कटादयोव्यस्तैश्चर-दलैर्युक्ताः क्रियन्ते यतस्तेषां विपरीतं तिर्यक्त्वम् । ते उत्क्रमचरखण्डयुक्ताः कर्कटादीनां त्रयाणामुदयाः स्युरिति । अतः क्रान्तिवृत्तपादो द्वितीयश्चरदलयुक्तेन विषुवद्वृत्तपादे-नोदेतीत्युपपन्नम् । द्वितीयपादवत् तृतीयः प्रथमवच्चतुर्थेऽपि वृत्तपाद उदेति । उक्तं च भास्करीये सिद्धान्ते ।

मेषादेर्मिथुनान्तो नाडीभिस्तिथिमिताभिरुद्वलये ।
लगति कुजे तदधःस्थे प्रथमं ताभिश्चरोनाभिः ॥
कन्यान्ताद्धनुषोऽन्तस्थितिमितनाडीभिरुद्वृत्ते ।
लगति कुजे चोर्ध्वस्थे पश्चात् ताभिश्चराढयाभिः ॥

एवमत्र संक्षिप्तोदयोपपत्तिर्विस्तरभयादुक्ता ॥१॥

विश्वनाथः

अथ त्रिप्रप्रश्नोदाहरणम् । तत्र तावन्मेषादिराश्युदयानाह । लङ्कोदया इति । एते लङ्कोदया विघटिकाः पलात्मकाः स्युः । तत्र मेषस्य गजभानि २७८ । वृषस्य

गोऽङ्कदस्राः २९९। मिथुनस्य त्रिपक्षदहनाः ३२३। एते कमस्थाः उत्कमस्था विपरीताः कांटादित्रयाणामुदया भवन्ति। एते क्रमगोत्कमस्थैश्चरदलैः स्वदेशीयचरखण्डकैर्हीनान्विताः कार्याः तद्यथा। क्रमस्थास्त्रयः क्रमस्थैस्त्रिभिश्चरखण्कैर्हीनाः। उत्क्रमस्थास्त्रय उत्क्रमस्थैस्त्रिभिश्चरखण्डकैर्युक्ताः कार्या मेषादीनां षड्राशीनामुदयाः स्युः इमे उत्क्रमतो घटतस्तुलातः षडुदयाः स्युः। तथा कृते जाताः स्वोदयाः [मे २२१ मी] [वृ २५३ कुं] [मि ३०४ म] [क ३४२ ध] [सिं ३४५ वृ] [क ३३५]॥१॥

केदारदत्तः

लङ्कोदय की जगह निरक्षोदय कहना अधिक उचित है।

निरक्ष खमध्याभिप्रायिक क्षितिज में मेष राशि का उदय मान (पलात्मक) २७८, वृष का २९९, और मिथुन का ३२३, एवं उत्क्रम से कर्क राशि का उदय पल ३२३, सिंह के २९९ एवं कन्या के उदय पल २७८ होते हैं। इस प्रकार मेषादि ६ राशियों के निरक्षोदय तुलादिक (तुलावृश्चिक-धनु-मकर-कुम्भ और मीन) मीन पर्यन्त की ६ राशियों के एवं इस प्रकार १२ बारहों राशियों के उदय पल वेध से उपलब्ध हुए हैं।

अपने देशीय पलभा से साधित (स्पष्टाधिकार श्लोक ५) मेषादि चर खण्डों को मेषादि तीन राशियों के निरक्षोदय मानों में घटाने एवं कर्कादि निरक्षोदय मान (पलों) में व्युत्क्रम से जोड़ने से अपने देश में मेषादिक ६ राशियों के उदयपल सिद्ध होते हैं। मेषादिक कन्यान्त तक ६ राशियों के जो उदय पल वही उत्क्रम से तुलादिक मीन पर्यन्त ६ राशियों के उदयमान होते हैं। ६ निरक्षोदय पलों का योग = १८०० बारहों का योग = ३६०० पल = ६० घटी=२४ घण्टा होता है।

उपपत्तिः—उदाहरण, स्पष्टाधिकार श्लोक ५ से कूर्माचल प्रायः अल्मोड़ा पिथौरागढ़ के उत्तरी भाग तक मेषादि तीनों राशियों के चरखण्ड क्रमशः ६८।५४।२३ सिद्ध किए गये हैं।

विश्वेश्वर राजधानी श्री काशी क्षेत्र की पलभा ५।४५ से श्री काशी क्षेत्र (विश्वेश्वर मन्दिर के दक्षिण विभाग में श्री केदारेश्वर लिङ्ग भूमि शूल टंकेश्वर तक) का चरखण्ड

$५।४५ \times १०, ५।४५ \times ८, \frac{५।४५ \times १०}{३}$ = ५७, ४६ और १९ होते हैं।

अतः श्री काशी केदारखन्ड के लङ्कोदय से (निरक्षोदय) चरखण्ड से काशी में उदयपल

मेष=२७८ − ५७	=	२२१	=	मीन
वृष=२९९ − ४६	=	२५३	=	कुम्भ
मिथुन=३२३ − १९	=	३०४	=	मकर
कर्क=३२३ + १९	=	३४२	=	धनु
सिंह=२९९ + ४६	=	३४५	==	वृश्चिक
कन्या=२७८ + ५७	=	३३५	==	तुला

कुमायूँ प्रायः अल्मोड़ा में निरक्षोदय पल से चरखण्ड से अल्मोड़े में उदय पल

मेष=२७८ −	६८	=	२१०	=	मीन
वृष−२९९ −	५४	=	२४५	=	कुम्भ
मिथुन=३२३ −	२३	=	३००	=	मकर
कर्क=३२३ +	२३	=	३४६	=	धनु
सिंह=२९९ +	५४	=	३५३	=	वृश्चिक
कन्या=२७८ +	६८	=	३४६	=	तुला

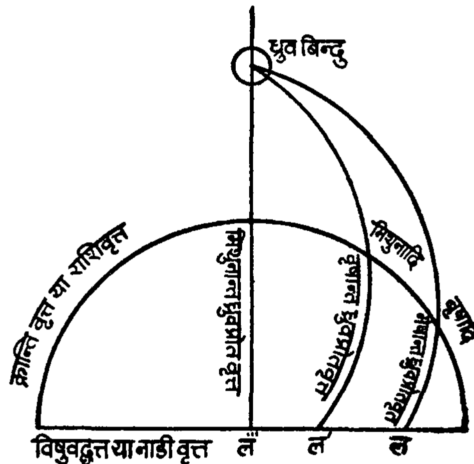
अपनी जन्मभूमि गङ्गोली के 'जुनायल' में निम्न पद्य से मेषादि उदय मानों को ज्ञात किया गया है जिसकी वहाँ की ज्योतिष परम्परा में प्रसिद्धि भी है ।

खचन्द्रपक्षाः २१०; शरवेदपक्षाः २४५, अभ्राभ्ररामाः ३००, षड्वेद रामाः ३४६, त्रिपञ्चरामाः ३५३, रसवेदरामाः ३४६, क्रमान्मेषतुलादिमानमिति कूर्माचले ।

इसी प्रकार अक्षांश पलभा ज्ञान पूर्वक चरखण्डों का ज्ञान करते हुए विश्व में यत्र-तत्र सर्वत्र सभी मेषादि द्वादश राशियों के पलात्मक उदयमान सिद्ध होते हैं ।

उपपत्तिः—सूर्य सिद्धान्त के अनुसार मेषादि राशियों के उदय असु क्रमश' १६७० + १७९५ + १९३५=५४०० असु होते हैं । ६ असु = १ पल, अतः ५४०० ÷ ६ = ९०० पल = २७८ + २९९ + ३२३ के तुल्य यह आगम सम्मत कहे गए हैं । यहाँ दिग्दर्शनमात्र से प्रयोजन है ।

विषुवद्वृत्त, काल समय बोधक वृत्त है । तथा सूर्यग्रह जिस वृत्त में भ्रमणशील है प्रकारान्तर से सूर्य की परिक्रमा करती हुई पृथ्वी की विभिन्नविध गतियों से उसे राशिवृत्त या क्रान्तिवृत्त कहने हैं । क्रान्ति वृत्त विषुवद्वृत्त से परम क्रांन्ति तुल्य अंशों में उत्तर व दक्षिण गमनशील है । एक धरातल में क्रान्तिवृत्त व नाड़ी विषुवद्वृत्त वृत्त का जो दो सम्पात होता है, उसके प्रथम सम्पात का नाम मेषादि विन्दु एवं द्वितीय सम्पात का नाम तुलादि कहा जाता है । विषुवद्वृत्त व क्रान्ति वृत्त के समान १२ विभागों का नाम मेष, वृषभ,''''मीन, द्वादश राशियाँ हैं । निरक्षदेशीय क्षितिज ही यदि सभी का क्षितिज होता है तो निरक्षदेशीय मेषादि उदय पल के तुल्य सभी देशों में राशियों का मान एक सा रहता । किन्तु प्रकृत में सौर मण्डल का निरक्ष देशीय क्षितिज से पृथ्वी के विभिन्न अक्षांशीय खमध्यों से ९०° की दूरी के क्षितिज वृत्तों की एक रूपता नहीं होने से मेषादि विन्दु से मेषान्त विन्दु तक क्षेत्रात्मक क्रान्ति वृत्तीय प्रदेश को अपने क्षितिज में जितने समय तक देखेंगे वही मेष एवं ३०



अंशात्मक प्रत्येक राशि एवं द्वादश राशियों का उदयमान होगा जिनका ज्ञान निरक्षदेशीय उदयमानों के ज्ञान से होना सुकर होता है।

एक चापीय त्रिभुज की स्थिति होती है। गोल सन्धि से क्रान्ति वृत्त में, मेषादि चाप = कर्ण, मेषान्त विन्दु गत ध्रुवप्रोत वृत्त में क्रान्त्यंश=भुज और नाड़ी वृत्त में गोल सन्धि से मेषान्त विन्दुगत ध्रुवप्रोत सम्पात तक विषुवांश कोटि रूप चापीय समकोण त्रिभुज का गोल सन्धिगत कोण का मान परम क्रान्ति तुल्य ज्ञात होने से, त्रिकोणमिति गणित से विषुवांशज्या ज्ञात कर उसका चाप ज्ञात हो जाने से एवं वृषादि मिथुनान्त विषुवांश चाप ज्ञात करने से अपने अपने देशों में मेषादि द्वादश राशियों का उदय काल ज्ञात हो जाता है।

मे वृ=मेष राशि मान=३०° मे ल=मेष राशि के उदयपल, वृ० ल=भुज, ल मे= कोटि मे वृ=कर्ण इस प्रकार के मे० वृ० ल० त्रिभुज में मे मेल', मे ल'' ल, विषुवांश ज्ञान सुकर होता है।।१।।

तत्कालार्कः सायनः स्वोदयघ्ना
भोग्यांशाः खत्र्युद्धृता भोग्यकालः ।
एवं यातांशैर्भवेद्यातकालो
भोग्यः शोध्योऽभीष्टनाडीपलेभ्यः ।।२।।
तदनु जहीहि गृहोदयांश्च शेषं
गगनगुणघ्नमशुद्धहृल्लवाद्यम् ।
सहितमजादिगृहैरशुद्धपूर्वै-
र्भवति विलग्नमदोऽयनांशहीनम् ।।३।।

मल्लारिः

अथ लग्नसाधनमाह तत्कालार्क इति। यस्मिन् काले लग्नं साध्यते तत्कालीनः सूर्यः सायनोऽयनांशयुक्तः कार्यः। अस्य सूर्यस्य राशिवशाद्यः स्वदेशीय उदयस्तेन भोग्यांशा रवेस्त्रिंशच्च्युता भुक्तभागा गुण्या। ते खत्र्युद्धृतास्त्रिंशद्भक्ताः सन्तः पलाद्यो रवेर्भोग्यकालः स्यात्। एवममुनैव प्रकारेण सायनस्य यातांशैर्भुक्तभागैर्यातकालो भुक्तकालः स्यात्। स यथा उदयगुणा भुक्तभागास्त्रिंशद्भक्ता इति लग्नभुक्तकालार्थमिदमुक्तम्। भोग्यः काल इष्टघटीनां पलेभ्यः शोध्यः। ततः किंविधेयमित्यत आह। तदनु तदनन्तरं गृहोदयान् तदग्रराश्युदयान् तस्मात् कालात् जहीहि यावन्तःशुद्धयन्ति तावन्तः शोधयेदित्यर्थः। यच्छेषं तद्गगनगुणघ्नं त्रिंशद्गुणमशुद्धेनोदयेन हृद्भक्तं लवाद्यं भागाद्यं यल्लब्धं तदजाद्यशुद्धपूर्वैः सहितम्। अशुद्धोदयतः पूर्वं यावन्तो मेषादयो राशयस्ते तस्य ऊर्ध्वस्थाने गृहे स्थाप्याः। तदयनांशहीनं सत् तात्कालिकं राश्यादिकं लग्नं भवतीति व्याख्या।।

अत्रोपपत्तिः सुगमा क्रमसिद्धा तथाऽपि किञ्चिदुच्यते। अभीष्टकाले यः क्रान्तिमण्डलप्रदेशः क्षितिजे लग्नस्तल्लग्नमित्युच्यते।

उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ।

'यत्र लग्नमपमण्डलं कुजे तद्गृहाद्यमिह लग्नमुच्यते'।

तच्च लग्नमवधेः साध्यम्। अवधिस्तु रविः। तस्य मण्डले स्थितत्वात्। सदैव रव्युदये रविरेव लग्नम्। तस्य पूर्वगतित्वेन तात्कालिकत्वं क्रियेत। प्रवहाक्षिप्तपममण्डलमिष्टघटीषु प्रत्यक् चलितं तदा क्षितिजेऽपमण्डलप्रदेशो लग्नस्तज्ज्ञानायोपायः। सायनार्केण यद्भोग्यं तत्र कालः साध्यते। यदि त्रिंशद्भागैः ३० रव्याक्रान्तोदयपलानि लभ्यन्ते तदा भोग्यभागैः किमिति। एवं सद्भोग्यपलानीष्ट घटीपलेभ्यः शोध्यानि ततो यच्छेषं तस्मादुदयाः शोध्याः। यावन्तः शुद्धयन्ति तावन्तो राशयो रवौ योज्याः। यतो रविराशितोऽग्रे लग्नस्यतावन्तो राशयो याताः। ते त्वशुद्धपूर्वा मेषादयो राशय एव भवन्ति। शेषपलेभ्योंऽशानयनवासनाऽनुपाताद्यथा। यद्यशुद्धोदयपलैस्त्रिंशद्भागा लभ्यन्ते तदा शेषपलैः किमिति। फलं भागादि तदशुद्धपूर्वमेषादिराशियुक्तं लग्नं स्यादेव। तत्रायनांशा हीनाः कार्याः। यतः पूर्वं योजिताः सन्ति। पूर्वमुदयग्रहणार्थमयनांशा योज्याः एव। यतः सर्वाणि विषुवायनचिह्नानि सायनान्येव ॥२-३॥

विश्वनाथः

अथ लग्नसाधनं श्लोकद्वयेनाह तत्कालार्क इति। तदनु जहीहीति। यत्र कुत्रापि ग्रहश्चाल्यते तत्रेष्टघटीभिः सूर्यादिमध्यग्रहे चालनं देयम्। तदनन्तरं स्पष्टीकरणं कार्यम्। यैः स्पष्टग्रहेषु चालनं दीयते तदयुक्तम्। उदाहरणम्। सूर्योदयादिष्टघट्यः १०।३०। मध्यमसूर्यः १।४।१३।४२। गतिः ५९।८। इष्टघटीभिः–१०।३० वक्ष्यमाण 'गतगम्यदिनाहतद्युभुक्ते' रित्यादिना कृतं चालनं कलाद्यम् १०।२०। अनेन युक्तो रविर्जातस्तात्कालिको मध्यमोऽर्कः १।४।२४।२। मन्दोच्चात् २।१८।०।०। शोधितो जातं मन्दकेन्द्रम् ११।१३।३५।५८। मन्दफलं धनम् १।३०।११। मन्दफलसंस्कृतो रविः १।५।५४।१३। चरमृणम् ९३। अनेन संस्कृतो जातस्तात्कालिकः स्पष्टो रविः १।५। ५२।४०। अयनांशाः १८।१०। सायनोऽर्क १।२४।२।४०। त्रिंशतः ३० शोधिता जाता सूर्यस्य भोग्यांशाः ५।५७।२०। अस्य भोग्यांशैर्वृषस्योदयो २५३ गुणितः १५०६।४५। २०। खत्र्यु-३० द्धृतो जातो भोग्यकालः पलात्मकः ५०। एवममुनैव प्रकारेण यातांशैर्भुक्तभागैर्यातकालो भुक्तकालः स्यात्। अभीष्टनाडीपलेभ्यो ६३० भोग्यकालः ५० शोधितः शेषम् ५८०। वृषभोदये २५३ मिथुनोदधे ३०४ च शेषात् शोधिते शेषम् २७६ मिथुनादग्रे कीटोदयः ३४२। अयं न शुध्यत्यतः शेषं २७६ गगनगुणघ्नम् ८२८०। अशुद्धः कर्कः। तस्योदयेन ३४२ भक्तं लब्धमंशाद्यं फलम् २४।१२।३७ : मेषादशुद्धपर्यंतं राशयः ३। अस्मिन् लब्धलवाद्ये योजिते जातम् ३।२४।१२।३७। इदमयनांशै-१८।१० र्हीनं जातं लग्नम् ३।६।२।३७ ॥२-३॥

केदारदत्तः

अयनांश युक्त स्पष्ट सूर्य को, सायन स्पष्ट सूर्य, या स्फुट सायनार्क से उच्चारित किया जाता है। सायन सूर्य के भोग्यांशों या भुक्त अंशों को उदयमान से गुणा कर उसमें ३० का भाग देने से लब्ध फल का नाम भोग्यांश से भोग्य काल एवं भुक्तांश से भुक्तकाल कहा जाता है। सूर्योदय से जो इष्ट घटी या जिसे सूर्योदयादिष्ट काल कहते हैं उनके पल बनाकर इन इष्ट घटी पलों में भोग्यकाल या भुक्त काल को घटा देना चाहिए। इस प्रकार जो शेष पल बचते हैं उनमें भोग्य प्रकार विधि में सूर्यसे अग्रिम राशियों के उदय पलों एवं भुक्त प्रकार की विधि में सूर्य राशि के पीछे की राशियों का उदयपल मान घटाना चाहिए। जिस राशि लग्न तकके उदयमान पल घटते है उसे शुद्ध राशि लग्न और उसके (भोग्य भुक्त में) आगे या पीछे की जो राशि नहीं घटती है उस का नाम अशुद्ध राशि होता है। राशियों के उदयमान घटाने से जो शेष बचेगा उसे ३० से गुणा कर उसमें उक्त अशुद्ध राशि के उदयमान से भाग देने से लब्धि अंश कलादिक जो प्राप्त हो उनमें मेष से अशुद्ध तक की राशियों को जोड़ने (भोग्य प्रकार में) भुक्त में अशुद्ध तक की राशि में घटाने से, जो राश्यादिक फल होता है वही सायन लग्न होती है। सायन लग्न में अयनांश कम करने से निरयण लग्न सिद्ध होती है। फलित ज्योतिष में भी पश्चिम के देशों में लग्न और ग्रह सभी सायन मान से ही व्यवहार में लायें जा रहे हैं।

हमारे भारत वर्ष में भी सायन लग्न व ग्रहों से फलादेश करने की प्रणाली का बहुमत से समर्थन होने जा रहा हैं। प्राचीन फलिताचार्यों ने ग्रह लग्न, उदय अस्त आदि में सायन मान स्वीकार करते हुए भी फलादेश व धर्मशास्त्र में निरयण मान को ही आज तक विशेष प्रश्रय दिया है इसलिए आचार्य ने सायन लग्न में अयनांश कम कर निरयण लग्न मान को हीं महत्त्व दिया है। अतः आचार्य के अनुसन्धान से सायन लग्न को निरयण लग्न ही करना चाहिए ॥२-३॥

उदाहरण से—सं० २०३६ शके १९०१ वैशाख शुक्ल तृतीया रविवार ता० २९-४-१९७९ को कमायूं अल्मोड़ा नगर के समीप श्री सरयूमूल सहस्रधारा मार्ग वटलागांव कपकोट में एक सभ्य ब्राह्मण परिवार में पुत्र जन्म हुआ है।

यहाँ पर इस ग्रन्थ के अनुसार जो अयनांश आता है वह स्थूल होने से, आधुनिक युग के शोध सिद्ध सही अयनांश का मान २३°।३४'।३९ लिया जा रहा है। तथा इष्ट कालीन सूर्य स्पष्ट का मान ०।१५।२४। ४९ और सूर्योदयात् इष्ट काल = ५५।७ हैं। अतः

स्पष्ट ०।१५।२४।४९ + २३।३४।० = १।८।५८।४९=सायन सूर्य। इष्टकाल रात्रि का होने से इष्टकाल में दिनमान घटाकर और सूर्य में ६ राशि जोड़कर लग्न साधन करने का नियम आगे के श्लोकों से स्पष्ट होगा। ३२।१९ अल्मोडा केन्द्र विन्दु के पञ्चाङ्गों में दिनमान का मान ३२।१९ दिया है। इष्टकाल—दिनमान = ५५।७ – ३२।१९ = २२।४८ को इष्ट मानकर तथा स्पष्ट सायन सूर्य १।८।५८।४९ + ६=७।८।५८।४९ को स्पष्ट सूर्य मानकर

लग्न साधनिका की जा रही है। भोग्य प्रकार से लग्न का मान सगणित दिखाया जा रहा है।

सायन स्पष्ट सू० ७।८।५८।४९ के वृश्चिक राशि में ८।५८।४९ भुक्त अंश होते हैं। २१।१।११ यह भोग्यांश होने हैं। २१।१।११ भोग्यांश × वृश्चिक राशि का उदयमान = ७४१९।५७।४३। अतः ७४१९।५७।४३ कैसे होता है, नीचे वह गणित देखिए।

२१।१।११
३५३

७४१३	३५३	३८८३ ÷ ६०
६	६४	शेष=४३
७४७९	४१७	
	÷ ६०	
	शे०५७	

अतः ३०) ७४१९।५७।४३ (२४७

९ × ६०=५४० + ५७

५९७ ÷ ३० = १९। शेष $\frac{२७ \times ६०}{३०}$ = ५४

अतः भोग्यकाल = २४७।१९।५४।

इष्टघटी २२।४८ के पल = १३६८ – २४७।१९।५४=११२०।४०।६ ११२०।४०।६ में धनु का उदय पल ३४६ घटाया–७७४।४०।६ पुनः मकर का मान=३०० पल घटाने से ४७४।४०।६ हुआ पुनः कुम्भ का मान २४५ पल घटाने से २२९।४०।६ यह शेष पल हैं। इन शेष पलों में मीन के पल २१० को घटाया तो १९।४०।६ यह शेष पल होते हैं। आगे मेष का उदयमान नहीं घटने से $\frac{\text{शेष} \times ३०}{\text{मे. काउ. मान}=२१०} = \frac{१९।४०।६ \times ३०}{२१०} = २^\circ।४८'।३५''$ होता है। इसे भोग्य प्रकार से बनाने से शुद्ध राशि मीन= ० या १२ है में जोड़ने से ०।०।०।० + २।४८।३५= ०।२।४८।३५ यह सायन लग्न का मान आता है। सायना लग्न में अयनांश कम करने से अर्थात् ०।२।४८।३५ – २३$^\circ$।३४।०=११।९।१४।३५ इस प्रकार यह निरयण लग्न का स्पष्ट मान होता है ॥२-२॥

उपपत्तिः—इष्ट समय में क्रान्ति वृत्त का जो प्रदेश उदयक्षितिज में लगता है उस प्रदेश का नाम 'लगतीति लग्नम्' लग्न होता है। अर्धसूर्योदयात् अभीष्ट समय ला नाम इष्टकाल होता है। अनुपात के लिए जो गोल रचना है वह राशिवृत्त नाड़ी वृत्त के चल सम्पात विन्दु के होने से सूर्य स्पष्ट में अयनांश योग करना समीचीन होता है। इस काल में, स्पष्ट लग्न और सायन सूर्य के मध्य में क्रान्ति वृत्त में, सूर्य के भोग्यांश, लग्न का भुक्तांश और मध्यगत राशियों के उदयांश सम्मिलित है। इसी प्रकार इष्टकाल में रविगत अहोरात्र वृत्त में

सूर्य से क्षितिज तक सूर्य के भोग्य असु, लग्न के भुक्त असु और दोनों लग्न और सूर्य के बीच के अन्तर असु सम्मिलित हैं।

अतः इष्ट घटीपल में प्रथमतः सूर्य के भोग्यपल कम करने चाहिए।

अनुपात से रवि भोग्य पल साधन किया गया है कि यदि रविनिष्ठ राशि के ३० अंशों में रविनिष्ठ राशि के उदय पल प्राप्त होते हैं तो रविनिष्ठ राशि के भोग्यांशों में क्या ?

$$= \frac{\text{सूर्य राशि उदय पल} \times \text{भोग्यांश}}{३०^\circ} = \text{भोग्य काल, इष्ट घटी पल} - \text{भोग्य पल} = \text{शेष पल।}$$

शेष घटी पल = अग्रिम शोधन योग्य अभीष्ट राशि पर्यन्त राश्युदय पल=शेष।

पुनः अनुपात से

$$\frac{३०^\circ \times \text{शेष}}{\text{अशुद्ध राशि शेष पल}} = \text{शेष पल सम्बन्धी राशि के अंशादिक जिन्हें लग्न का}$$

भुक्तांश कहना चाहिए। इन भुक्तांशों को शुद्ध राशि संख्या में जोड़ देने से सायन स्पष्ट लग्न का ज्ञान होता है। पूर्व में सूर्य के अयनांश जोड़ने से यह सायन लग्न होती है। जिसका प्रयोजनाभाव है अतः फलादेश के लिए सायन लग्न मान में अयनांश कम करना उचित होगा। उपपन्न हुआ ॥२-३॥

भोग्यतोऽल्पेष्टकालात् खरामाहतात्
स्वोदयाप्तांशयुग्भास्करः स्यात् तनुः।
अर्कभोग्यस्तनोर्भुक्तकालान्वितो
युक्तमध्योदयोऽभीष्टकालो भवेत् ॥४॥

मल्लारिः

अथ भोग्याल्पकाले लग्नसाधनमाह भोग्य इति। भोग्यते भोग्यकालतोऽल्पेष्ट कालात् खरामाहतात् त्रिंशद्गुणात् स्वोदयेन स्वराश्युदयेन हृतात्ऽस्माद्ये आप्तांशा लब्धभागास्तद्युक्तो भास्करस्तनुर्लग्नं स्यात् ॥

अत्रोपपत्तिः : यद्युदयपलैस्त्रिंशद्भागास्तदेष्टकालपलैः किमिति सुगमा ॥

अथ लग्नादिष्टकालसाधनमाह अर्कभोग्य इति। अर्कस्य सायनस्य यो भोग्य-कालः स तनोर्लग्नस्य सायनस्य भुक्तकालेनान्वितो युक्तः। ततो युक्तो मध्योदयो यत्र स तथा। सूर्यस्य राश्युदयादग्रे लग्नराश्युदयात् पूर्वं ये उदयास्तद्युक्तः स्वाभीष्ट-कालो भवेदित्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः। इष्टकाले सूर्यादुदयपर्यन्तमिष्टकालो वर्त्तते। रविभोग्यभागात् यः कालस्तदग्रतो राश्युदयास्ततस्तदनु भुक्तकालस्तेषां योग इष्टकालो भवतीति सुगमं प्रत्यक्षं गोले च दृश्यते ॥४॥

विश्वनाथः

अथ भोग्यकालादल्पेष्टकाले सति लग्नादिष्टकालज्ञानं चाह भोग्यतोऽल्पेष्टेति। इष्टघटी ०।४०। चालितः सूर्यः १।५।४३।१५। उक्तप्रकारेण जातो भोग्यकालः ५०। अस्मादिष्टकालः ०।४० पलात्मको न्यूनोऽतो खरामा-३० हतः १२००। सायनयसूर्यो वृषभस्थः। तेन २५३ भक्तः फलमंशाद्यम् ४।४४।३५। अनेन युक्तो रविः १।५।४३।१५। जातं लग्नम् १।१०।२७।५०।

अथ लग्नादिष्टकालानयनम्। लग्नम् ३।६।२।३७। अयनांशयुक्तम् ३।२४।१२।३७। एवं यातांशै र्भवेद्यातकाल इत्यादिना लग्नस्य गता भागाः २४।१२।३७। सायनलग्नस्य राश्युदयेन कोटाख्येन ३४२ गुणिताः ८२७९।५४।५४। खाग्न्युद्धृताः फलं तनोर्भुक्तकालः २७६। अर्कभोग्यकालः ५०। तनोर्भुक्तकालेन ३७६ युक्तः ३२६। सायनसूर्यसायनलग्नयोर्मध्ये मिथुनादेय-३०४ स्तेन युक्तः ६३० षष्टिभक्तो जातोऽयं १०।३७ लग्नादिष्टकालो भवति ॥४॥

केदारदत्तः

लग्न साधन के समय इष्टघटी पल में भोग्यकाल घटाने की बात कही गई है, यदि इष्टकाल घटी पल से ही अधिक भोग्यकाल हो तो विशेष कहा जा रहा है कि ऐसी स्थिति में इष्ट घटी पल को ही ३० से गुणा कर अपनी उदय राशि पल० से भाग० देने से लब्ध फल को सूर्य स्पष्ट में जोड़ देने से लग्न मान स्पष्ट हो जाता है।

तथा सूर्य के भोग्य पल में लग्न के भुक्त पल जोड़कर उसमें सूर्य और लग्न के मध्य की राशियों का उदय पल जोड़ देने से इष्ट काल का मान स्पष्ट हो जाता है ॥४॥

उदाहरख से सायन लग्न=०।२।४८।३५, इष्ट काल ५५।७ दिनमान=३२।१९ सायन सूर्य=१।८।५८।४९।

६ राशि युक्त सायन सू० ७।८।५८।४९ के भोग्यांश = २१।१।११ को वृश्चिक राशि के उदय पल से गुणा कर ३० से भाग देने से भोग्यकाल = २४७।१९।५४ में सायन लग्न का भुक्तकाल १९।४०।५ को जोड़ने से २६६।५९।५९ होता है। धनु + मकर + कुम्भ + मीन के कूर्माञ्चलीय राश्युदय पलों ३४६ + ३०० + २४५ + २१० = ११०१ सूर्य लग्न के बीच के राश्युदय पलों को जोड़ने से १३६७।५९।५९ = पल विपल प्रति विपलात्मक इष्ट काल होता है। १३६७ ÷ ६० = घटी २२।४७ पल की जगह (विपल ५९ को) १ पल और अधिक मानने से २२।४८ के तुल्य होता है। सूर्योदय इष्ट काल से ५५।७ घटी है। रात्रि का इष्ट है। स्प सूर्य में ६ राशि जोड़ी गयी है तथा इष्ट काल में दिनमान ३२।१९ कम किया गया है। अतः सूर्यास्त के अनन्तर का आगत इष्ट काल २२।४८ में दिनमान = ३२।१९ जोढ़ देने से २२।४८ + ३२।१९ = ५५।७ गणित अभीष्ट से यह — इष्टकाल सम्पन्न होता है ॥४॥

अथवा यदि सायन लग्न के भुक्त काल १९।४०।५ से वास्तविक सायन सूर्य = १।८।५८।४९ से वृष राशि के भोग्यांश २१।११ से वृष राशि के भोग्य पल = १७१।१९।३० के योग पल = १९०।५९।३५ में मिथुन से मीन तक मध्यगत राशियों के उदय मान जोड़ने से भी सीधे ५५।७ के तुल्य इष्ट काल आ जाना चाहिये। अनुपात की एक रूपता से और राश्युदय पलों को स्थिरता से कदाचित् कुछ ही पलों का अन्तर हो सकता है।

उपपत्ति:—सूर्य के भोग्य पल और लग्न के भुक्त पल तथा सूर्य लग्न के बीच की राशियों के उदय के योग तुल्य इष्ट काल होता है। यह सीधी बात है जो खगोलज्ञों के समझ में स्वयं आ जाती है ॥४॥

यदि तनुदिननाथावेकराशौ तदंशा-
न्तरहत उदयः स्यात् खाग्निहृत् त्विष्टकालः ।
इनत उदय ऊनश्चेत् स शोध्यो द्युरात्रान्-
निशि तु सरसभार्कात् स्यात् तनूरिष्टकाले ॥५॥

मल्लारिः

अथ सूर्यलग्ने यदैकराशिस्थे तदेष्टकालानयनमाह यदि तनुदिननाथाविति। यदि सायनौ लग्नसूर्यावेकराशिस्थौ तदा तदंशानां तद्भागानां यदन्तरं तेन हतो गुणितो यः स्वोदयः स खाग्निहृत् त्रिशद्भक्त इष्टकालः स्यात्। इनतः सूर्यादुदयो लग्नं चेदूनं तदा स कालस्तदंशान्तरहृत उदय इत्यादिना साधितः काल इत्यर्थः। स द्युरात्रात् षष्टेः शोध्यः। एतदुक्तं भवति। अर्कोदयात् पूर्वं किल लग्नमर्कादूनं भवति तत्र कालानयने सायनौ लग्नार्कौ यदि भिन्नराशिस्थौ भक्त स्तदाऽर्कभोग्यस्तनोर्भुक्तकालान्वित इत्यनेन कालं साधयेत्। यदि चैकराशिगौ तदा तदंशान्तरहृत उदय इत्यादिना कालः समायाति। रात्रिशेषेऽर्कोदयाद्‌घटिकाज्ञानार्थं स षष्टेः शोध्यः। रात्रिगतघटिकाज्ञानाय रात्रिमानाद्वा शोध्यः। अत एव 'शोध्यो द्युरात्रादथवा रजन्या' इति। निशि रात्रौ सरसभार्कात् सषड्भसूर्यादिष्टकाले तनूर्लग्नं स्यादिति ॥

अत्रोपपत्तिः। यदि त्रिशद्भागैः सूर्याधिष्ठितोदयपलानि लभ्यन्ते तदा तयोरन्तरांशैः किमिति फलमिष्टकालः स्यात्। सूर्यालग्ने ऊने सूर्योदयात् पूर्वमेवं भविष्यति। अतः स कालः षष्टिशुद्ध इत्युक्तम्। रात्रौ लग्नसाधनार्थं रविः सषड्भः कार्य एव। यतः प्रागपरत्र क्षितिजयोरन्तरे षड्राशय एव भवन्ति। अत उदयलग्नं षड्राशियुक्तमस्तलग्नं भवति।

यत उक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ।

योऽभ्युदेति समयेन येन तत्सप्तमोऽस्तमुपयाति तेन च' ॥५॥

विश्वनाथः

यदा सायनलग्नार्कविकराशौ तदेष्टकालसाधनमाह यदीति। सायनलग्नम् १।२८।३७।५०। सायनसूर्यः १।२३।५३।१५। अनयोरंशान्तरम् ४।४४।३५। अनेन वृष-भोदयः २५३ गुणितः १२००।०।३५। खाग्नि ३० भक्तो जात इष्टकालः पलात्मकः ४०। षष्टिभक्तो जातो घटिकादिरिष्टकालः ०।४०।

यदा सूर्याल्लग्नमूनं तदेष्टकालसाधनमाह इनतु इति। यदा एक राशौ इनतः सूर्यात् सायनादुदयः सायनलग्नं चेदंशादिना ऊनं तदा तदंशान्तरहत उदय इत्यादिना इष्टकालः साध्यः। स इष्टकालः सूर्योदयात् यस्मिन् समये इदं लग्नं साधितं तस्मा-दिष्टकालदग्निमकालो भवति। द्वितीयसूर्योदयपर्यन्तं शेषकालो भवतीत्यर्थः। स शेषकालो द्युरात्रात् षष्टिघटिकामध्ये शोध्यः सूर्योदयादिष्टकालो भवति। यस्मिन् समये इदं लग्नं साधितं स काले भवतीत्यर्थः। निशि तु रात्रौ लग्ने क्रियमाणे सति सरसभार्कात् रसभेन राशिषट्केन युक्तात् सूर्यादिष्टकाले तनूर्लग्नं साध्यम्॥

अस्योदाहरणम्। सूर्योदयादिष्टघटिकाः ५९। मध्यमः सूर्यः १।४।१३।४२। गतिः ५९।८। आभि–५९ घंटीभिश्चालितः सूर्यः १।५।११।५०। मन्दकेन्द्रम् १।१२।४८। १०। मन्दफलं धनम्। १।२८।५२। अनेन संस्कृतो रविः १।६।४०।४२। चरमृणम् ९५। संस्कृतो जातः स्पष्टस्तात्कालिकः सूर्यः १।६।३९।७ सायनः सषड्भञ्च। ७।२४। ४९।७। उक्तवद्भोग्यकालः ५९। इष्टघटिका ५९। एताः। दिनमानेन ३३।१० रहिता जाताः सूर्योदयादिष्टघटिकाः २५।५०। भोग्यकालः ५९। इष्टघटी–२५।५० पलेभ्यः १५५० शोधितः शेषम् १४९१। प्राग्वज्जातं लग्नम् ०।२९।३७।११॥

अथ इनत उदय इत्योदाहरणम्। सायनसूर्यः १।२४।४५।७। सायनलग्नम् १।१७।४७।११। अत्रैकराशौ लग्नं रवितो न्यूनमतस्तयोरंशान्तर–७। १।५६ हृत उदय इत्यादिना कल्पितेष्टकालादा–५९ गतः शेषकालः १। अयमहोरात्रात् ६० शोधितो जातः सूर्योदयात् कल्पितेष्टकालः ५९॥५॥

केदारदत्तः

एक राशिगत लग्न-सूर्य की स्थिति में लग्न रवि के अन्तरांश उसी राशि के उदय मान से गुणा कर ३० से भाग देने से इष्टकाल होता है॥५॥

विशेष—यदि एक राशिस्थ लग्न सूर्य में सूर्य के अंशों से लग्न के अंश कम हों तो ऐसी स्थिति में आगत इष्टकाल को ६० में घटाना चाहिए (रात्रि शेष की लग्न स्थिति)।

उपपत्ति—एक राशि गत लग्न सूर्य अन्तरांश सम्बन्ध से इष्ट काल =

$$\frac{\text{स्वादेयमान} \times \text{अन्तरांश}}{३०} = \text{इष्ट काल}।$$

सूर्य से लग्न यदि कम तो ऐसी स्थिति में सूर्य, उदय क्षितिज से नीचे की स्थिति में होगा, उक्त प्रकार से आगत इष्ट काल रात्रि शेष का इष्टकाल होगा अतः इस प्रकार से अभीष्ट काल को ६० में घटाना समीचीन होगा ही।

रात्रीष्ट के लग्न साधन में सूर्यास्त समय में सा० सूर्य स्पष्ट + ६ राशि=अस्तकालीन सूर्य तथा रात्रीष्ट समय – दिनमान=इष्टकाल स्वतः सिद्ध है ॥५॥

गोलौ स्तः सौम्ययाम्यौ क्रियधटरसभे खेचरेऽथायने ते
नक्रात् कीटाच्च षड्भेऽथ चरपलयुतोनास्तु पञ्चेन्दुनाड्यः।
घस्रार्धं गोलयोः स्यात् तदयुतखगुणाः स्यान्निशार्धं तथाऽक्ष-
च्छायेषुन्घ्यक्षभाया कृतिदशमलवोना यमाशाः पलांशाः ॥६॥

मल्लारिः

अथ गोलायनकथनं दिनरात्रिपलांशसाधनमेकवृत्तेनाह गोलाविति। खेचरे सायने ग्रहे क्रियघटरसभे सौम्ययाम्यौ गोलौ स्तः। मेषादिषड्राशिस्थे उत्तरगोलः। तुलादिषड्राशिस्थे दक्षिणगोलः। नक्रात् षड्भे मकरादिषड्भे। उत्तरायणम्। कर्कात् षड्भे दक्षिणायनम् ॥

अत्रोपपत्तिः। क्रान्त्यभावो यत्र स गोलादिः। क्रान्त्यभावः सायनभुजाभावे। भुजाभावो मेषादौ तुलादावतस्तौ गोलसन्धी। मेषादिषड्राशयो भचक्रे उरार्धे सन्त्यत उत्तरगोलः। तुलादयो दक्षिणार्धेऽतः स दक्षिणगोल इति। यत्र परमक्रान्तिः सोऽयन-सन्धिः। परमक्रान्तिस्तु भुजपरमत्वे। भुजपरमत्वं च कर्कटादो तमकरादौ च भवत्य-तस्तावयनसन्धी ॥

अथ दिनरात्री साधयति। पञ्चेंदुनाड्यः पञ्चदशघटिका गोलयोश्चरपलयु-तोना उत्तरगोले युक्ता दक्षिणगोले हीनास्तद्धस्राधं दिनार्धं स्यात्। तेनोनताः खगुणास्त्रिंशन्निशार्धं रात्रिदलं स्यात्। तद्विगुणे दिनरात्रिमाने भवत इत्यर्थत एव सिद्धम् ॥

अस्योपपत्तिः। निरक्षदेशेऽहोरात्रवृत्ते उन्मण्डलाद्याम्योत्तरवृत्तसम्पातं यावत् सदा पञ्चदशघटिका भवन्ति। क्षितिजोन्मण्डलयोरेकत्वात् तथा प्रवहाक्षिप्तचक्रस्य समपूर्वापरभ्रमणत्वात्। अन्यदेशे क्षितिजोन्मण्डलयोर्भिन्नत्वात् तदन्तरविनाडीभिरूना-धिकाः पञ्चदशघटिकाः संभवन्ति उन्मण्डलक्षितिजयोरन्तरं चरम्।

उक्तं च भास्कराचार्येण।

'उन्मण्डलक्ष्मावलयान्तराले द्युरात्रवृत्ते चरखण्डकाल' इति।

उत्तरगोले उन्मण्डलादधः क्षितिजं स्थितं तस्माच्चरेणाधिकः पञ्चदशघटिकाः क्रियन्ते तद्दिनार्धं स्यात्। याम्ये तून्माण्डलादूर्ध्वं क्षितिजं तस्मात् तदूना एवपञ्चद श घटिकादिनदलं स्यात्। ततस्तत त्रिंशच्छुद्धं रात्रिदलं स्यादेव। ते द्विगुणे दिनरात्रि-माने। उदयक्षितिजादस्तक्षितिजं यावदहोरात्रवृत्ते तत्र यावत्यो घटिकास्तावद्दिनम्। क्षितिजाधोविभागादस्तक्षितिजपर्यन्तं रात्रिमानं तत सर्वं गोलोपरि दर्शयेत्। वासनामात्रमुक्तम्।

अथेति। अक्षच्छाया पलभा इषुघ्नी पञ्चगुणा। अक्षभायाः कृतेर्वर्गस्य यो दशमलवस्तेन ऊना सती यमाशां दक्षिणदिशः पलांशा अक्षांशाः स्युः॥

अत्रोपपत्तिः। यदि पलकर्णे पलभा भुजस्तदा त्रिज्याकर्णे कः फलमक्षज्या। तद्धनुरक्षांशा जाताः धनुरानयनवासना पूर्वोक्तैव। अत्रैकांगुलां पलभां प्रकल्प्याक्षांशाः .शाधिताः ४।५४। यद्येकांगुलया पलभया एते तदेष्टया क इति। एभिः पलभा गुण्या इत्यत्रैषां पञ्चैव गृहीताः। अतः पञ्चगुणपलभा पलांशा इति। अधिकं खण्डं गृहीतमिदम् ०।६। इदं पलभावर्गस्य दशमांशेन समम्। अतस्तदूना एव कार्याः। अधिकस्य गृहीतत्वात्। ते सदा दक्षिणा एव यतो लङ्कात उत्तरे सममण्डलान्नाडिका-मण्डलं दक्षिणतं एव सदा वर्त्तते। लङ्कातो दक्षिणे मनुष्यसञ्चार एव नास्त्यतस्ते नोक्ताः॥६॥

विश्वनाथः

अथ गोलसंज्ञायनसंज्ञादिनार्धज्ञानं पलांशज्ञानं चाह गोलाविति। खेचरे ग्रहे क्रियधटरसभे सौम्ययाम्यौ गोलौ स्तः। मेषादिराशिषट्कस्थिते ग्रहे उत्तरगोलः। तुलादिराशिषट्कस्थिते दक्षिणगोलः। अथ नक्रात् मकरात् षट्के उत्तरायणम्। कर्कात् षट्के दक्षिणायनम्। अथ पञ्चेन्दुनाड्यः १५ पञ्चदशघटिकाः क्रमेण चरपलैर्युतोनाः कार्याः। एतदुक्तं भवति। उत्तरगोलस्थे सायनसूर्ये युता दक्षिणगोलस्थे रहिताः कार्याः। तद्दस्रार्धं दिनार्धं स्यात्। तेन दिनार्धेनायुता रहिताः खगुणा ३० निशार्धं रात्र्यर्धं स्यात् ते द्विगुणिते दिनरात्रिमाने स्तः॥

उदाहरणम्। पञ्चेन्दुनाड्यः १५ सायनसूर्यस्योत्तरगोलत्वाच्चरपलै–९३ युंता जातं दिनार्धम् १६। ३३ इदं द्विगुणं जातं दिनमानम् ३३। ६। घस्रार्धेन १६। ३३ रहितः खगुणा ३० जातं निशार्धम् १३। १७। द्विगुणितं जातं रात्रिमानम् २६। ५४ अथाक्षच्छाया पलभा ५। ४५ इषुघ्नी पञ्चगुणिता २८। ४५ अक्षभायाः कृतिर्वर्गः ३३। ३। अस्या दशमलवः ३।१८।१८ अनेन रहिता इषुघ्न्यक्षच्छाया जाता यमाशा दक्षिणाः पलांशाः २५। २६। ४२। एते सर्वदा दक्षिणाः॥६॥

केदारदत्तः

निरयण या सायन सूर्य की मेषादि से कन्यान्त तक की स्थिति में उत्तर गोल और

तुलादि से मीनान्त तक की स्थिति में दक्षिण गोल होता है। इसी प्रकार कर्कादि से धनु अन्त तक, एवं मकरादि से मिथुनान्त तक के सूर्य स्पष्ट से क्रमशः दक्षिणायन और उत्तरायण होते हैं।

उत्तरगोल गत सूर्य में चर पल जोड़ने एवं दक्षिण गोल गत सूर्य में चर पल को १५ में घटाने से दिनार्ध होते हैं। दिनार्ध को ३० में घटाने से रात्र्यर्ध होता है। दिनार्ध एवं रात्र्यर्ध को २ से गुणा करने से क्रमश. दिन व रात्रिमान हो जाते हैं।

अपने-अपने देश के पलभा को ५ से गुणा कर गुणनफल में पलभा के वर्ग का दशमांश घटा देने से, अपने देश के अक्षांश ज्ञात होते हैं।।६।।

यदि सायन सूर्य = १०।१७।१०।५४ + अयनांश = २३।३४।३९ अतः सायन सूर्य = ११।१०।४५।३३ चरखण्डानि = ६८।५४।२३ (स्पष्टाधिकार श्लोक ६ देखिए)।

स्पष्टाधिकार में साधित चर पल = ४३, सायन सूर्य दक्षिण गोल में है अतः १५।० − ०।४३ (= चर) १४।१७ यह दिनार्ध होता है। ३० − दिनार्व = (१४।१७) = १५।४३ यह रात्रि के अर्ध का मान होता है। द्विगुणित दिनार्ध और रात्र्यर्ध क्रमशः दिनमान = २८।३४ ३१।२६ सिद्ध होते हैं।

कुमायूं (कूर्माचल) में पलभा विषय पर पूर्व में स्पष्टाधिकार में चर्चा की जा चुकी है। तत्रत्य पञ्चाङ्गों के दिनमान आदि देखने से भी अंगुलात्मक पलभा का मान ६।४७ ही समीचीन मालूम पड़ रहा है।

पलभा = ६।४७ × ५ = ३३।५५ होता है। पलभा (६।४७)² का वर्ग =

६।३७
६।४७

३६	२८२	२२०९ ÷ ६०
	२८२	शेष = ४९
ल० = १०	ल० = २६	
४६	६००	
	÷ ६०	
	शे० = १०	० = ४६।१०।४९ होता है।

पलभा वर्ब का दशमांश = ४६।१०।४९ ÷ १० = ४।३७।४ को ५ × पलभा = ३३।५५ में कम कर देने से २९।२३ अक्षांश नैनीताल, कुमायूं में होते हैं। स्वल्पान्तर से अल्मोड़े, रानी खेत में भी गृहीत किये जा सकते हैं।।६।।

उपपत्तिः—विषुवद्वृत्त (भूमध्य रेखा) से मेषादि ६ राशियाँ उत्तर गोल में और तुलादिक ६ राशियाँ दक्षिण गोल में स्थित हैं जो गोल परिभाषा से स्पष्ट है।

सूर्य का परम उत्तर गमन कर्क विन्दु से परम दक्षिण गमन मकरादि तक होने से कर्कादि से दक्षिणायन एवं मकरादि से उत्तरायण कहना भी युक्ति युक्त है।

उत्तर गोल में, अहोरात्रनिरक्षक्षितिज वृत्तसम्पात से याम्योत्तराहोरात्र वृत्त सम्पात तक १५ घटी का निरक्ष देशों में सदा नियत दिनार्ध होता है। उत्तर गोल में अपने देशीय क्षितिजाहोरात्रवृत्त सम्पात का निरक्षदेशीय क्षितिज पर्यन्त चर पल तुल्य काल होता है जिसे १५ घटी में जोड़ने से उत्तर गोलीय दिनार्ध मान होगा ही। दक्षिण गोल में १५ घटी में चर काल तुल्य अनन्तर अपने णितिज में उदय होने से १५ घटी में चर ऋण करने से ही दिनार्ध होगा। दिनार्ध और रात्र्यार्ध का योग = ३० घटी होने से १५ + चर = रात्र्यार्ध या दिनार्ध समीचीन होगा ही। राज्यार्ध या दिनार्ध × २ = रात्रि और दिनमान भी सही है।

सिद्धान्त ग्रन्थों में अनेकों सजातीय अक्षक्षेत्रीय त्रिभुजों की चर्चा आगे के अध्ययन से प्राप्त होंगी। पलभा = भुज, १२ अंगुल शंकु = कोटि — अतः $\sqrt{(१२)^2 + पलभा^2} =$ पल कर्ण, मूल में यह एक प्रसिद्ध त्रिभुज है। वेध करने की पृथ्वी धरातलीय भूमि के खमध्य से निरक्ष खमध्य तक अक्षांश होते हैं। अनुपात से—

$$\frac{पलभा^2 \times त्रि^2}{पल\ कर्ण^2} = अक्षांश\ ज्या^2 ।\ पलकर्ण^2 = (१२)^2 + पलभा^2\ उत्थापन\ \frac{पलभा^2 \times त्रि^2}{पलभा^2 + १४४}$$

$$यदि\ पलभा = १\ त्रि = १२०\ तो\ अक्षांश\ ज्या^2 = \frac{पलभा^2 \times १४४००}{१ + १४४} = पलभा^2 \times \frac{२४००}{२४\frac{१}{६}}$$

$$स्वल्पान्तर\ से\ \frac{पलभा \times ४९}{५},\ ज्या\ साधन\ स्थूलता\ से\ इसका\ आधा = \frac{पलभा \times ४९}{५ + २}$$

$$\frac{पलभा \times ४९}{१०} = पलभा\ \left(५ - \frac{पलभा}{१०}\right) = ५\ पलभा - \frac{पलभा^2}{१०},$$ यह १ अंगुल पलभा देशों में अक्षांश ज्ञात होते हैं।

समग्र भारत देश (निरक्ष देश) विषुवद् रेखा के उत्तर में है, अतः भारतीय आचार्यो के खमध्यों से दिरक्षदेशीय खमध्य या जिसे प्राचीन आचार्य लङ्का देशीय खमध्य कहते हैं और जो भारतवर्ष के दक्षिण दिशा में होने से, अक्षांशों को, यमाशा = दक्षिण दिशा का अक्षांश कहने की आचार्यो की परिपाटी चली आ रही है ।।६।।

यातः शेषः प्राक्परत्रोन्नतः स्यात्
कालस्तेनोनं द्युखण्डं नतं स्यात् ।
अक्षच्छायावर्गतर्स्वांशयुक्ता
मार्तण्डाः स्यादंगुलाद्योऽक्ष कर्णः ।।७।।

मल्लारिः

अथ नतोन्नतसाधनमाह। प्राक् पूर्वकपाले यातः भुक्तः कालः उन्नतः स्यात्। अपरत्र पश्चिमकपाले शेष उर्वरति उन्नतकालः स्यात्। तेन ऊनं द्युखण्डं दिनार्धं नतं नतकालः स्यात् ।।

अत्रोपपत्तिः। दिनकरकरनिकरनिहततमसो नभसो वृत्ताकारतैव प्रतिभासते तस्य याम्योत्तरवृत्तमवधिं कृत्वा द्वे कपाले परिकल्पिते। तत्र यत्स्थो रविरुदयं याति तत् पूर्वकपालम्। यत्रास्तमुपयाति तत् पश्चिमकपालम्। यतो रविरेव पूर्वादिदिगभिव्यञ्जकः। ततः पूर्वक्षितिजाद्यावताऽभीष्टकालेन रविरुन्नतस्तावानुन्नतकाल इत्यभिधीयते। अपरकलालेऽस्तक्षितिजाद्यावान् शेषकालः स उन्नतकालः स्यात्। उन्नतं कालं दिनार्धादपास्य यः शेषकालस्तेन रविर्मध्याह्नतो नतो भवति। अपरकपाले रविदिनार्धयोरन्तरे यः कालः स एव नतो भवति। मध्याह्नाद्रवेस्तावता कालेन नतत्वादिति।

अथ कर्णसाधनमाह। अथ अक्षच्छायायाः पलभाया यो वर्गस्तस्य यस्तत्त्वांशः पञ्चविंशत्यंशस्तेन युक्ता मार्तण्डा द्वादशांगुलाद्योऽक्षकर्णः स्यात्।

अत्रोपपत्तिः। पलभा भुजः। द्वादशांगुलशंकुः कोटिः। पलकर्णः कर्ण एव। पलभावर्गो द्वादशवर्गयुक्तस्य मूलं पलकर्णः स्यात्। अत्रैकांगुलपलभायां जातः पलकर्णः। १२।२।२४ अस्माद्द्वादश विशोध्य शेषम् ०।२।२४। इदं पलभावर्गतत्त्वांशतुल्यम्। अतस्तद्युक्ता द्वादश पलकर्णः स्यादित्युपपन्नम् ॥७॥

विश्वनाथः

अथोन्नतनतसंज्ञामक्षकर्णज्ञानमाह यातः शेष इति। सूर्योदयाद् दिनार्धपर्यन्तं पूर्वदलं तत् प्राक् पूर्वकपालमित्युच्यते। मध्याह्नादुपरि सूर्यास्तपर्यन्तं पश्चिमदलं तदपरं पश्चिमकपालमित्युच्यते। प्राक्कपाले सूर्योदयात् यातो गतो यः कालो घटिकात्मकः स उन्नत उन्नतसंज्ञः। पश्चिमकपाले यो दिनशेषः स उन्नतः स्यात्। प्राक्कपाले नतमुन्नतं च पूर्वं भवति पश्चात्कपाले पश्चिममित्यर्थः। तेन उन्नतेन ऊनं द्युखण्डं दिनार्धं नतं स्यात् ॥

उदाहरणम्। सूर्योदयाद् गतघटिकाः १०।३०। पूर्वकपालत्वाज्जातमुन्नतं पूर्वम् १०।३०। अनेन रहितं दिनार्धम् १६।३३। जातं नतं पूर्वम् ६।३। अक्षच्छाया ५।४५। अस्या वर्गः ३३।३।४५। अस्य पञ्चविंशत्यंशः १।१९। अनेन युक्ता मार्तण्डाः १२। जातोऽङ्गुलाद्योऽक्षकर्णः १३।१९ ॥७॥

केदारदत्तः

दिन और रात्रि के पूर्व पश्चिम कापालीय इष्ट कालों में कमशः दिन गत एवं दिन शेष या रात्रिगत एवं रात्रि शेष की घटिकाओं का मान उन्नत काल होता है। उन्नत घटिका को दिनार्ध या रात्र्यार्ध में घटाने से नतकाल होता है।

पलभा के वर्ग का २५ वाँ विभाग को १२ में जोड़ने से अंगुलादिल पलकर्ण होता है ॥७॥

उदाहरण—ता० २१ अगस्त सन् १९७९ को सायन स्प० सू० ४।२७।२१।४२ का भुज = १।२।३८।१८ लग्न साधन समय स्पष्ट सायन सूर्य का = १।२।३८'१८ इसका भुज

है । चर साधन करने से चर = ७२।० = १ घटी १२ पल उत्तर गोल होने से १५ + १।१२= १६।१२ दिनार्ध को २ से गुणित करने से दिनमान=३२।२० एवं १५ − १।१२ रात्र्यार्ध = १३।४८को दो से गुणा करने से रात्रि मान=२७।३६ होता है । यदि इष्टकाल १२।० होता है तो दिन का पूर्व कपाल होने से यात् काल १२।० के तुल्य उन्नत काल हुआ । दिन खण्ड दिनार्ध १६।१२ − १२।० = ४।१२ दिन का पूर्व नत होता है ।

पलभा = ६।४७ का वर्ग ४६।१० अतः $\frac{४६।१०}{२५}$ = १।४१ अतः १२ + १।४१ = १३।४१···स्वल्पान्तर से कमायु में पलकर्ण होता है ।।७।।

उपपत्तिः—पूर्व काल में क्षितिज से अहोरात्र वत्तनिष्ठ रवि विम्ब तक उन्नत काल एवं मध्यान्ह से रवि विम्ब तक नत काल होता है । इसी प्रकार पर कपाल में याम्योन्तर से रवि विम्ब तक नत काल और रवि विम्ब से अस्त तक शेष काल = उन्नत काल स्वतः दृश्य है ।

१२ अंगुल शंकु कोटि, पल कर्ण = कर्ण और पलभा = भुज इस प्रकार के समकोण त्रिभुज में पलकर्ण^{२} = पलभा^{२} + १२^{२} = यदि पलभा = १ तो १^{२} + १४४ = १४५ = पलकर्ण^{२} ।

अतः $\sqrt{१४५} = १२\frac{१}{२४} = १२ + \frac{१ \times १}{२४} = १२ + \frac{प० भा \times प० भा}{२४} = १२ + \frac{प० भा^{२}}{२५}$ − २४ की जगह आचार्य ने स्वल्पान्तर से २५ माना है ।।७।।

वेदेशाः शरहृच्चराढ्यरहिताः सौम्यानुदग्गोलयो-
र्हारोऽथो घटिकार्धयुङ्नतकृतेर्द्व्यंशः समाख्यः स्मृतः ।
चेत् सार्धत्रिकुतो नतं यदधिकं वेदाहतं तद्वियुक्
स्पष्टौऽसौ तदयुग्घरस्त्वभिमतः स्यादक्षकर्णोद्धृतः ।।८।।

मल्लारिः

अथेष्टच्छायासाधनार्थं हारमाह । वेदेशाश्चतुर्दशाधिकशतमिताः शरहृच्चरेण पञ्चभक्तचरेण सौम्यानुदग्गोलयोः । आढ्यरहिताः । उत्तरगोले युक्ता दक्षिणे रहिताः सन्तो हारः स्यात् ।।

अथ हारकथानानन्तरं घटिकार्धयुक् त्रिंशत्पलयुग् यन्नतं तस्य या कृतिस्तस्या यो द्व्यंशोऽर्धांशः स समाख्यः स्मृतः ।।

अत्रोपपत्तिः । अत्र गोलेऽहोरात्रवृत्ते क्षितिजसम्पातयोर्बद्धं सूत्रं तदुदयास्तसूत्रम् । एवमुन्मण्डलसम्पातयोर्वद्धं तदहोरात्रव्याससूत्रम् । तदुदयास्तसूत्रयोरन्तरं कुज्यैव । अथ याम्योत्तरवृत्तसम्पातयोर्बद्धं तन्मितं तस्य व्याससूत्रं तयोर्व्याससूत्रयोर्यः सम्पातस्तस्मादुपरितनं खण्डं द्युज्या । सा उत्तरगोलेऽधस्तनया कुज्यया युता यावत् क्रियते तावद्दिनार्धेऽर्कोदयास्तसूत्रयोरन्तरं स्यात् । दक्षिणे तु कुज्जया हीना । यतस्त-

त्रोदयास्तसूत्रादधः कुज्या । यदर्कोदयास्तसूत्रयोरन्तरं साऽत्र हृतिरित्युच्यते । एवमन्त्याऽपि । चरज्यया त्रिज्या युतोना दिनार्धान्त्या स्यात् । अहोरात्रव्यासार्धं त्रिज्यातुल्यैरङ्कैर्यावदङ्क्यते तावत् त्रिज्यातुल्यं भवति । तैरङ्कैर्यावत् कुज्या गण्यते तावच्चरज्यातुल्या भवति । अतश्चरज्यया त्रिज्या युतोनाऽन्त्या संज्ञा भवति । नान्त्याहृत्योः क्षेत्रसंस्थानभेदः । किन्त्वङ्कानां गुरुलघुत्वात् केवलः संख्याकृतो भेद इत्युपपन्नम् । तत्र तावदन्त्यार्थं चरज्या साध्या । सा यथा । चरपलानि षष्टिभक्तानि नाड्यः स्युः । ताः षड्गुणाः स्युः । ते द्विगुणा जीवा । अत्र चरपलानां हरः ६० । गुणद्वयघातो गुणः १२ । गुणहरयोर्गुणेनापवर्त्तितयोर्लब्धाः पञ्च । अत उक्तं शरहृच्चरेणेति । शरहृच्चरं चरज्या जाता । तया त्रिज्या सौम्ययाम्यगोलयोः क्रमेण युतोना कार्या । अत्राचार्येण त्रिज्या वेदेशमिता धृता । अतो वेदेशा इति । एवं जाता दिनार्धान्त्या तस्या हारसंज्ञा कृता । इदं दिनार्धान्त्या नतोत्क्रमज्यया हीना सतीष्टान्त्या स्यात् । एवमत्र नतोत्क्रमज्या घटिकार्धयुक्तस्य नतस्य वर्गेण दलितेन तुल्या भवति । अत्र प्रतीत्यर्थं कल्पितम् ५ । इदं षड्गुणमंशाः ३० । एषां खार्क-१२० मिते व्यासार्धे उत्क्रमज्या १६ । यदि खार्कमिते व्यासार्धे इदं तदा वेदेशतुल्ये केति जाता १५।१२ । घटिकार्धसंयुक्तं नतम् ५।३० । अस्य वर्गः ३०।१५ । तदर्धम् १५।७ । एवं स्वल्पान्तराज्जाता नतोत्क्रमज्यैव । तस्याः समसंज्ञा कृता । चेन्नतं सार्धत्रयोदशाधिकं स्यात् तदा तत् सार्धत्रयोदशहीनं कृत्वा यदधिकं तद्वेदैश्चतुर्भिराहतं गुणितं तेन वियुक् हीनः समाख्यः स्फुटः स्यात् । तेन समाख्येनायुक् हीनो हरोऽक्षकर्णेन उद्धृतो भक्त इष्टहरः स्यादित्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः । अत्र समाभिधा या नतोत्क्रमज्या साधिता सा सार्धत्रयोदशनतपर्यन्तं भवति । ततः परं सान्तरा । अत्र कल्पितं नतम् १४।३० । अस्य नतस्य वेदेशतुल्यायां ११४ त्रिज्यायामुत्क्रमज्या १०८।३३ । घटिकार्धयुक्तनतस्य १५ वर्गो २२५ द्व्याप्तः ११२।३० । अत्रानयोरन्तरं चत्वारः ४ । तदन्तरमेकघटिकायां चतुर्मितम् । तत्रानुपातः । यद्येकघटिकायां चत्वारोऽन्तरं तदेष्टेन सार्धत्रयोदशाधिकेन नतेन किमिति फलं हीनं कार्यम् । अधिकभूतत्वात् । ततस्तेन हीनो हर इष्टहरः स्यात् । यतो नतोत्क्रमज्याहीना दिनार्धान्त्या इष्टान्त्या भवति सा इष्टहरसंज्ञा । अत्राक्षकर्णभजने युक्तिस्त्वनुपदमेव स्पष्टीकरिष्यते ॥८॥

विश्वनाथः

अथ हारानयनमाह । वेदेशा इति । चरं ९३ पञ्चभक्तं फलं १८।३६ सायनसूर्यस्योस्योत्तरगोलत्वानेन १८।३६ युक्ता वेदेशा ११४ जातो हारः १३२।३६ । नतं ६।३ घटिकार्ध-३० युक्तम् ६।३३ । अस्य वर्गः ४२।५४।९ । द्वाभ्यां भक्तो जातः समाख्यः २१।२७ । चेन्नतं सार्धत्रयोदशाधिकं स्यात् तदा तत् सार्धत्रयोदशहीनं कृत्वा यदधिकं तद्वेदैश्चतुर्भिर्गुणनीयं तेन फलेन हीनः समाख्योऽसौ स्फुटः स्यात् । यदा सार्धत्रयोदशभ्यो न्यूनं तदा समाख्यो यथास्थित एव । अस्योदाहरणमग्रे प्रदृश्यते ॥

अथभिमताहारानयनमाह। हारः १३२।३६ समाख्येन २१।२७ रहितः १११।९। अक्षकर्णेन १३।१९ भक्तः फलमभिमतो हरः ८।२० ॥८॥

केदारदत्तः

चर पल में ५ से भाग देकर लब्धि को १४४ में उत्तर गोल में जोड़ने एवं दक्षिण गोल में घटाने से शेष के तुल्य हार होता है। नत काल में आधी घटिका = ३० पल जोड़कर उसके वर्ग का $\frac{1}{2}$ के आधे का नाम सम कहा गया है।

यदि नत १३।३० पल से अधिक हो तो उक्त क्रिया में विशेष गणित कहा जाता है। १३।३० घटी से नत जितना अधिक है उस घटी पल को ४ से गुणित कर जो आता है उसे ऊपर साधित सम में कम कर देने से वास्तविक सम होता है। सम को हार में घटाकर शेष में पलकर्ण का भाग देने से अभीष्ट हर होता है ॥८॥

सायन सू० = ४।२७।२१।४२, चर = पलादिक = ७२ = घट्यादिक = १।१२ चर पल ÷ ५ = ७२ ÷ ५ = १४।२५ सा० सू० उ० गोल में हैं अतः ११४ + १४।२५ = १२८। २५ = हार मान हुआ। नतमान = ४।१२ + ०।३० = ४।४२ होता है। ४।४२ का वर्ग २२२।५ का आधा = ११।२ यहाँ नतकाल १३।३० से कम होने से विशेष संस्कार की प्राप्ति नहीं होने से सम = ११।२ होता है।

हार − सम = १२८।२५ − ११।२ = ११७।२३ होता है। इसमें पल कर्ण = १३।४१ का भाग देने से ११७।२३ ÷ १३।४१ = ८।३४ इसी का नाम अभीष्ट हर होता है ॥८॥

उपपत्तिः—उत्तर दक्षिण गोल क्रम से त्रिज्या + चरज्या = अन्त्या। आचार्य ने त्रिज्या का मान यहाँ पर ११४ माना है। अतः अन्त्या = त्रिज्या ± चरज्या = ११४ + चरज्या। स्वल्पान्तर से चर ज्या = $\frac{\text{चर पल} \times २}{१०} = \frac{\text{चर पल}}{५}$ अतः अन्त्या = ११४ ± $\frac{\text{चर पल}}{५}$। इसी अन्त्या का नाम हार कहा गया है। अन्त्या − नतोत्क्रमज्या = इष्ट अन्त्या। नतोत्क्रमज्या का नाम सम कहा है।

नतकोटिज्या = $\sqrt{\text{त्रि}^{२} - \text{नत ज्या}}$। अतः नतोत्क्रमज्या = $\sqrt{(\text{त्रि}^{२} - \text{नतज्या}^{२})}$

$$= ११४ - \sqrt{११४^{२} - \text{नत ज्या}^{२}} = ११४ - ११४ + \frac{\text{नत ज्या}^{२}}{११४ \times २} = \frac{\text{नत ज्या}^{२}}{११४ \times २}$$

$$= \frac{(\text{नत घटी} \times ६ \times २)^{२}}{११४ \times २} = \frac{\text{नत घटी}^{२} \times ३६ \times ४}{११५ \times २} = \frac{\text{नत घटी}^{२} \times ३६}{५६}$$

$$= \frac{\text{नत घटी}^{२}}{२}\left(१ + \frac{८}{२८}\right) = \frac{\text{नत घटी}^{२}}{२}\left(१ + \frac{१}{४}\right) \text{ स्वल्पान्तर से } \frac{(\text{नत घटी} + \frac{१}{२})^{२}}{२}$$

= सम होता है। उपपन्न होता है ॥८॥

आनीत सम १३½ से कम नत में ठीक होता है। १३½ से अधिक नत में प्रत्येक १ घटी अधिक नत में ४ घटी सम सम मान में विकार आ जाता है। अतः १३½ से अधिक और १३½ के अन्तर को ४ से गुणा करने पर पूर्व साधित सम में कम करने से वास्तविक सम होता है जो उपपन्न होता है ॥८॥

दिग्घ्नाक्षभाहृतचरं स्वगुणं द्विनिघ्नं
स्वेष्वंशयुग्युगभवान्तिमत्र भाज्यः।
कर्णोऽङ्गुलादिक इहेष्टहराप्तभाज्यः
कर्णार्कवर्गविवरात् पदमिष्टभा स्यात् ॥९॥

मल्लारिः

अथ भाज्यसाधनमाह। दिग्घ्नाक्षभया दशगुणपलभया हृतं चरं स्वगुणं वर्गितं ततो द्विनिघ्नं द्विगुणं सत् स्वेष्वंशकेन स्वपञ्चमांशेन युक् ततो युगभवैरन्वितं सत् भाज्यो भवति।

अत्रोपपत्तिः। अथ भाज्यस्वरूपमुच्यते। इष्टहरसंज्ञेष्टान्त्या ज्ञाताऽस्ति। तस्या हृतिकरणायानुपातः। त्रिज्यावृत्ते इयमिष्टान्त्या तदा द्युज्यावृत्ते केति जातेष्टहृतिः। पलकर्णे द्वादशकोटिस्तदेष्टहृतिकर्णे केति जातइष्टशंकुः। शंकुकोटौ त्रिज्या कर्णस्तदा द्वादशकोटौ क इति जातः इष्टकर्णः। एवमत्र त्रिज्यावर्गस्य पलकर्णो गुणः। द्युज्येष्टान्त्याघातो हरः। तेन त्रिज्यावर्गो द्युज्याभक्तः फलस्य भाज्यसंज्ञा कृता। तत्र परमाल्पद्युज्यया १०९। ४० त्रिज्यावर्गे भक्ते जातः परमो भाज्यः १३१।२०। खार्कमिते व्यासार्धेऽयं तदा वेदेशमिते क इति जातो भाज्यः १२४।४५। स भाज्यः पलकर्णगुणः इष्टान्त्याभक्त- कार्यः। तत्र पलकर्णेन गुणेन गुणहराव पवर्त्तितौ। एवं पलकर्णभक्तेष्टान्त्यैवेष्टहरसंज्ञा कृता। अत इष्टहराप्तभाज्य इष्टकर्णः स्यादित्युपपन्नम्। अस्य साधनक्रिया। द्युज्या क्रान्तिज्याभिर्विना न सिध्यति तत्प्रक्रियागौरवम्। अतोऽनुकल्पेन दिग्घ्नाक्षभेत्यादिना भाज्यो ज्ञातोऽनुकल्पः। स यथा। एकांगुलपलभायां खण्डत्रययोगः परमं चरम् २१।२०। इदं दशगुणपलभाभक्तम् २।८। वर्गितम् ४।३३ द्विगुणम् ९।६। इदं स्वपञ्चांशयुतं १०।५५ वेदेशयुतं स एव भाज्य इति प्रतीतिः। अयं भाज्यो हरहृतोऽभीष्टकर्णो भवति इति युक्तिः पूर्वमेवोक्ता। कर्णार्कवर्गविवरात् कर्णवर्गद्वादशवर्गान्तरान्मूलमिष्टभा इष्टच्छाया स्यात्। अस्योपपत्तिः। छाया भुजो द्वादशांगुलशंकुः कोटिः छायाकर्णः कर्णः। अतः कोटिकर्णयोर्वर्गान्तरमूलं छाया भवतीत्युपपन्नम् ॥९॥

विश्वनाथः

अथ भाज्यज्ञानमिष्टकर्णज्ञानमिष्टच्छायाज्ञानंचाह। दिग्घ्नेति। अक्षभा ५।४५। दशगुणिता ५७।३०। अनेन चरं ९२ भक्तं फलम्। १।३७। वर्गीकृतम् २।३६ द्विनिघ्नम्

५।१२ इदं स्वकीयेन पञ्चमांशेन १।२ युतं ६।१४ युगभवान्वितं जातो भाज्यः १२०।१४। अयमभिमतहरेण ८।२० भक्तः फलमंगुलादिक इष्टकर्णः १४।२५। अस्य वर्गः २०७।५०। अर्कवर्गः १४४। अनयोरन्तरम् ६३।५०। अस्य मूलं ग्राह्यं सा इष्टच्छाया भवेत्। तत्र सच्छेदाङ्कस्य मूलानयनप्रकारः। यत्र कुत्रापि सावयवाङ्कद्वयस्य मूलानयने ऊर्ध्वाङ्कः षष्टया गुण्योऽधःस्थाङ्केन युक्तः पुनः षटया गुण्यः। एवं वारद्वयं षष्टया सवर्णितं कार्यम्। यच्च 'त्यक्त्वान्त्याद्विषमादि' त्यादिना मूलं गाह्यं यच्छेषं तत्सैकं कार्यं तदनन्तरं षष्टिगुणं द्विगुणितेन मूलेन द्वियुक्तेन भक्तमाप्तं फलं मूलादधः स्थाप्यम्। एकवारमूर्ध्वाङ्कः षष्टिभक्तः कार्यः। तत्सावयबाङ्कस्य सूक्ष्मं मूलं भवेत्। एवं सावयवाङ्कत्रये वारचतुष्टयं षष्टया सवर्णितं कार्यम्। उक्तवद् यन्मूलं तद्वारद्वयं षष्टिभक्तं-कार्यम्। एवमग्रेऽपि बोध्यम्। अत्र समावृत्या षष्टिगुणं कार्यम्। न तु विषमावृत्या। कर्णार्कवर्गयोरन्तरम् ६३।५० इदं सूक्ष्ममूलार्थं वारद्वयं षष्टया सवर्णितं जातम् २२९८००। अस्मादुक्तवन्मूलम् ४७९। मूलावशेषकम् ३५९। सैकम् ३६०। षष्टिघ्नम् २१६००। विकला–० न्वितम्। द्विसंगुणेन मूलेन ९५८ द्वियुक्तेन ९६०। भक्तं फलम् २२। मूलादधः स्थापितं जातम् ४७९।२२। षष्टिभक्तं जातं मूलम् ७।५९।२२। इदमेवेष्टच्छाया ७।५९।२२। यत्र कुत्रापि सावयवाङ्कस्य यथास्थितमूलं चेद्गृह्यते तदाऽन्तरं पतति। मूलस्य वर्गश्चेत् क्रियते तर्हि वर्गाङ्को न भवतीति कारणात् सावयवाङ्कस्य यथास्थितं मूलं न ग्राह्यम्। अत्रोदाहरणम्। कल्पितमिष्टम् ०।२९। अस्य वर्गः ०।६ यथास्थितोर्ध्वाङ्कस्य ०। मूलम् ०। शेषम् ०।६। सैकमित्यादिना फलम् ३३। इदं कल्पितेष्टतुल्यं न जातम्। अथवा इष्टम् ०।१०। अस्य मूलम् ०।३५। अस्य वर्गः ०।२०। एवं स्वल्पाङ्के बह्वन्तरं पतति। बह्वङ्के कदाचित् संवादि भवति इति कारणादनया रीत्या मूलं न ग्राह्यम्। पूर्वोक्तप्रकारेण ग्राह्यम् ॥९॥

केदारदत्तः

दश गुणित पलभा के वर्ग में चर से भाग देकर द्विगुणित लब्धि के वर्ग में, द्विगुणित लब्धि वर्ग का पञ्चमांश जोड़कर उसे १४४ में जोड़ने से भाज्य का मान हो जाता है।

भाज्य में इष्ट हर का भाग देने से अंगुलादिक कर्ण होता है। कर्ण वर्ग में १२ का वर्ग कम कर मूल लेने से वह अभीष्ट छाया हो जाती है ॥९॥

उदाहरण—पलभा=६।४७, चर पल=७२। हार=१२८।२५ अतः ६।४७ × १० = ६०।४७० = ६७।५० स्वल्पान्तर से = ६८ इसका चर = ७२ में भाग देने से लब्धि = १।३ लब्धि के $(१।३)^2$ = १।६।९ को २ से गुण करने पर २।१२।१८ होता हैं। २।१२।१८ ÷ ५ = ०।२६। द्विगुणित लब्धि वर्ग २।१२।१८ में जोड़ने से २।३८ को ११४ में जोड़ने से ११६।५८ होता है इसका नाम भाज्य होता है। उक्त भाज्य में अभीष्ट हह ८।३४ का भाग देने से १३।३२ छाया कर्ण होता है। १८३।९ − १४४ = $\sqrt{३९।९}$ = ६।१८ कर्ण क वर्ग में १४४ को घटाने से अभीष्ट ६।१३ छाया होती है। ३९।९ का मूल लेते समय ३९ का मूल = ६ शेष = ३ में एक जोड़कर ४ को ६० से गुणा कर विकला जोड़कर

२४९ में १४ का भाग से १८ सूक्ष्म हैं। मूल शेष में एक जोड़कर ६० से गुणा कर विकला जोड़ने से जो मिलै उसमें द्वियुक्त द्विगुणित मूल से भाग देने से आसन्न मूल ठीक होता है।

"मूलावशेषकं सैकं षष्टिघ्नं विकलान्वितम्।
द्विगुणेन द्वियुक्तेन मूलेनाप्तं स्फुटं भवेत्॥"

यह सावयव मूलानयन सूत्र प्रसिद्ध है। स्थल विशेष पर न्यूनाधिक भी होता है।

उपपत्तिः—छाया = भुज, १२ = कोटि दोनों का वर्ग योग मूल = छाया कर्ण वेदेशाःशरहृत् से कर्ण $= \frac{\text{भाज्य}}{\text{अभीष्ट हर}}$ $\therefore$ अभीष्ट हर $= \frac{\text{भाज्य}}{\text{कर्ण}}$, पुनः अभीष्ट हर

$$\frac{\text{हार} - \text{सम}}{\text{पल कर्ण}} = \frac{\text{हा} - \frac{1}{2}\,(\text{नत} + \frac{1}{2})^{२}}{\text{पल कर्ण}}$$ अतः अभीष्ट हर $\times$ पलकर्ण $=$ हा $- \frac{(\text{न} + \frac{1}{2})^{२}}{२}$

$$\therefore \frac{(\text{नत} + \frac{1}{2})^{२}}{२} = \frac{\text{हार} - \frac{1}{2}\,(\text{नत} + \frac{1}{2})^{२}}{\text{पल कर्ण}} = \text{हार} - \frac{(\text{नत} + \frac{1}{2})^{२}}{२} \therefore \frac{(\text{नत} + \frac{1}{2})^{२}}{२}$$

$=$ हार $-$ अ० हर $\times$ पल कर्ण $\therefore$ न $= \sqrt{\text{हार} - \text{अ०हर} \times \text{प्रल कर्ण}} - \frac{1}{2}$ उपपन्न होता है। इसी प्रकार १३$\frac{1}{2}$ घटी से अधिक नत की उपपत्ति होती है ॥९॥

कर्णः स्यात् पदमर्कभाकृतियुतेस्तद्भक्तभाज्यो हरो-
ऽभीष्टस्तत्पलकर्णघातरहितो मध्यो हरो द्व्याहतः।
चेद्वेदांकधराधिकः पृथगतो वेदांकभूनाद्गुणा-
प्त्याढ्यस्तस्य पदं घटीमुखनतं स्यादर्धनाडीवियुक् ॥१०॥

मल्लारिः

अथेष्टच्छायातो विलोमविधिना कर्णाद्यानयनमाह। अर्कभाकृतियुतेः पदं द्वादशवर्गच्छायावर्गयोगान्मूलं कर्णः स्यात्। तेन कर्णेन भक्तो भाज्योऽभीष्टहरः स्यात्। तस्य पलकर्णेन सह यो घातो गुणनं तेन मध्यो हरो रहितः। ततो द्व्याहतो द्विगुणितः। स चेद्वेदाङ्कधराधिकः षडूनशतद्वयाधिकस्तदा पृथक् स्थाप्यः। अतोस्माद्वेदाङ्कभूनात् पृथक्स्थात् या गुणाप्तिस्तयाऽऽढ्यः कार्यः। नो चेद्यथास्थित एव। तस्य मूलं घटीमुखं घटिकादिकं नतं स्यात्। परन्तु तन्नतमर्धनाड्या त्रिंशत्पलवियुक् हीनं कार्यमित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिर्विलोमविधिना प्रसिद्धैव ॥१०॥

विश्वनाथः

अथेष्टच्छायातो विलोमविधिना नतज्ञानमाह। कर्णः स्यादिति। अर्क-१२ वर्गः १४४। इष्टच्छाया—७।५९।२२ वर्गः ६३।५०। अनयोर्योगः २०७।५०। अस्य मूलं जातः कर्णः १४।२५। अनेन भक्तो भाज्यः १२०।१४। फलमभिमतो हरः ८।२०।२३। अयमक्षकर्णेन १३।१९ गुणितः १११।३। अनेन मध्यो हरः १३२।३६। रहितः २१।३३। अयं द्विगुणः ४३।६। अयं सवर्णितः १५११।६०। अस्य मूलम् ३।३३। अर्धनाडीरहितं जातं नतम् ६।३॥

अथ सार्धत्रयोदशाधिकनतस्योदाहरणम्। कल्पितम् १५।१०। घटिकार्धयुक् १५।४०। अस्य वर्गः २४५।२६ द्वाभ्यां भक्तो जातः समाख्यतः १२२।४३। नतं सार्ध-त्रयोदशाधिकमः सार्धत्रयादेश-१३।३० हीनम् १।४०। इदं चतुर्गुणितम् ६।४०। अनेन समाख्यातः १२२।४३ हीनः। जातः स्पष्टः समाख्यः ११६।३। अनेन हारः १३२।३६ रहितः १६।३३। अक्षेकर्णेन १३।१९ भक्तः फलमभिमतो हरः १।१४। भाज्यः १२०।१४ अभिमतहरेण भक्तः फलमिष्टकर्णः ९७।२९। अस्य वर्गः ९५०३।०। अर्कवर्गः १४४। अनयोरन्तरं ९३५९।० । षष्टया सवर्णितम् ३३६९२४००। अस्य मूलं जाता इष्टच्छाया ९६।४४।३० ॥

अथ विलोमविधिना नतसाधनम्। छायावर्गः ९३५८।५७ अर्कवर्गः १४४। अनर्योगः ९५०२।५७ मूलं जातः कर्णः ९७।२९ अनेन धक्तो भाज्यः १२०।१४ फलम-भिमतो हरः १।१४। पलकर्णेन १३।१९ गुणितः १६।२५। अनेन मध्यो हरः १३२।३६ रहितः ११६।११। द्विगुणः २३२।२२। अयं वेदाङ्कराधिकः पृथक् स्थापितः २३२।२२। अयं वेदाङ्कभूभी १९४ रहितः ३८।२२। त्रिभिर्भक्तः फलेन १२।४७ पृथक्स्थः २३२।२२ युक्तः २४५।९। अस्य मूलम् १५।४०। अर्धनाडीरहितं जातं कल्पितनतम् १५।१० ॥

रसाप्त्याढ्यस्तस्यपदमित्यस्योदाहरणम्। चेद्वेदाङ्कधराधिकः पृथगतो वेदाङ्कः भूनादित्यादिना जातोऽयमङ्कः ३८।२२ अस्य षडंशेन ६।२३ पृथक्स्थः २३२।२२ रहितः २२५।५९। अस्य मूलं १५।१। अर्धनाडीरहितं जातं नतम् १४।३१। इदं कल्पितनत-१५।१० तुल्यं न जातमिति कारणात् गुणाप्त्याढ्य इति पाठो युक्तः ॥१०॥

केदारदत्तः

छाया वर्ग में द्वादश का वर्ग जोड़कर मूल लेने से कर्ण ज्ञात होता है। पूर्वोक्त भाज्य में कर्ण से भाग देने से अभीष्ट हर होता है। अभीष्ट हर और अक्षकर्ण के गुणनफल को मध्य हर में घटाकर शेष के तुल्य सम होता है। सम को २ से गुणा कर यदि वह १९४ से अधिक हो तो उसे दो जगह रखना चाहिये। एक जगह में उसमें १९४ घटा कर शेष में ३ का भाग देकर लब्धि को द्विगुणित सम में जोड़कर उसका जो मूल हो वही घटिकादिक नत होता है। उसमें आधा घटी और जोड़ने से वास्तविक नत होता है ॥१०॥

छाया = $(६।१८)^२$ = ३९।२८ में १४४ जोड़ने से १८३।२८ होता है। १८३।२८ का मूल १३।३३ होता है। यह कर्ण का मान है। भाज्य = ११७।२२ में छाया कर्ण १३।३३ का भाग देने से ८।३९ यह अभीष्ट हर होता है। पलकर्ण और अभीष्ट हर का गुणनफल ११८।२१ को मध्य हर १२८।०४ में कम कर शेष को दो से गुणा करने से २०।६ होता है जिसका आसन्न मूल ४।३५ में ३० पल कम करने से घटी पलात्मक नतकाल ४।५ स्वल्पान्तर से हो जाता है।

उपपत्तिः—पूर्व श्लोक ९ की विलोम विधि स्पष्ट है ॥१०॥

चत्वारिंशदशीतिरद्रिकुभुवः क्वक्षेन्दवो भूधृती
षट्खाक्षीणि जिनाश्विनोऽङ्गविकृती खाब्ध्यश्विनः सायनात् ।
खेटाद्दोर्लवदिग्लवप्रमगतोऽङ्कोऽसौ तदूनागता-
च्छेषघ्नाद्दशलब्धियुग्दशहृतोंऽशाद्योऽपमः स्यात्स्व दिक् ॥११॥

मल्लारिः

अथ क्रान्तिसाधनमाह । सायनादयनांशयुक्तात् खेटाद् ग्रहाद्दोर्लवा भुजभागास्तेषां दिग्लवो दशमांशः । तेन प्रमः संमितो गतोऽङ्कः स्यात् । ततस्तेन गताङ्केनोनादागतादग्राङ्कात् शेषघ्नात् शेषांशगुणितात् । या दशलब्धिस्तया गताङ्को युग्युक्तः । ततो दशभक्तोऽशांद्यो भागाद्यः स्वदिक् सायनग्रहगोलदिगपमः क्रान्तिः स्यात् । चत्वारिंशत् ४० । अशीतिः ८० । अद्रिकुभुवः सप्तदशाधिकशतम् ११७ । क्वक्षेन्दव एकपञ्चाशदधिकशतम् १५१ । भूधृती एकाशीत्यधिकशतम् १८१ । षट्खाक्षीणि षडधिकशतद्वयं २०६ । जिनाश्विनश्चतुर्विंशत्याधिकशतद्वयम् २२४ । अंगविकृती षट्त्रिंशदधिकशतद्वयम् २३६ । खाब्ध्यश्विनश्चत्वारिंशदधिकशतद्वयम् २४० । एते नवङ्काः स्युरिति ॥

अत्रोपपत्तिः । ग्रहो यैर्भागैर्विषुवद्वृताद्दणिणोत्तरगमनं करोति ते क्रान्त्यंशाः । क्रमणं क्रान्तिः । तस्य अंशा इत्यन्वर्थं नाम । विषुवद्वृत्तं यद्वर्त्तते तन्निरक्षे समं पूर्वापरमित्यर्थः । मेषतुलादिस्थो ग्रहस्तस्मिन् वृत्ते तिष्ठन् भ्रमति । मेषादयः षट् तस्योत्तरार्द्धे तुलादिका दक्षिणा एव । न तु मेषादिषड्राशय उत्तरतश्चैकत्रावतिष्ठन्तो भ्रमन्तीति । किन्तु मेषादिराशित्रयं यावत् प्रतिक्षणमुत्तरतः क्रमेण चतुर्विंशत्यंशान् यावदहोरात्रवृत्ते परिभ्रमन् गच्छति । ततः परावर्त्त्य राशित्रयं कन्यान्तं यावत्तेनैव मार्गेण पुनस्तदेवविषुवद्वृत्तमाश्रयति एवं तुलादेर्दक्षिणत एव राशित्रयं गत्वा पुनस्तेनैव पथा परावर्त्त्य तदेव विषुवद्वृतं मेषादिस्थ एवाश्रयति । एवं भगोले तद्दिक्स्थक्रान्तिरिति परिभाषा । एवं सूर्यस्य अन्येषां ग्रहनक्षत्राणां च स्वस्वविमण्डलानुगतत्वात् गोलार्द्धयोर्वैपरीत्यसम्भवः स्यादिति । तद्यथा । विषुवद्वृतात्क्रान्तिवृत्तं तिरश्चीनं वर्त्तते तयोर्मेषतुलादौ सम्पातद्वयम् । तत्र क्रान्त्यभावः । मकरकर्कटादौ परमं दक्षिणोत्तरं चतुर्विंशत्यंशान्तरं तत्र क्रान्तेः परमत्वम् । एवं तिरश्चीनात् क्रान्तिमण्डलादपि ग्रहमण्डलं तिरश्चीनं वर्त्तते । तयोः स्वक्षेपपाते सषड्भे च सम्पातौ तस्मात् त्रिभेऽन्तरे परमं विक्षेपांशतुल्यं दक्षिणोत्तरमन्तरं विक्षेपः । एवं पृथग्ग्रहनक्षत्राणां विमण्डलानि तिरश्चीनानि वर्त्तन्ते तत्क्षेपवशात् तद्गोलान्यत्वसम्भवः स्यादित्युपपन्नम् । तदुक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ ।

नाडिकामण्डलात्तिर्यगेवापमः क्रान्तिवृत्तावधिः क्रान्तिवृत्ताच्छरः ।
क्षेपवृत्तावधिस्तिर्यगेवं स्फुटो नाडिकावृत्तखेटान्तरालेऽपमः ॥

अतः शरसंस्कृतात्स्पष्टा क्रान्तिः स्यादित्यग्रे आचार्येणाप्युक्तमस्ति। अत्र गुणक-भाजकोपपत्तिर्यथा। यदि त्रिज्यातुल्यभुजज्यया परमक्रान्तिज्यातदेष्ट दोर्ज्यययाकिमिति फलं क्रान्तिज्या तद्धनुः क्रान्तिः स्यात्। अत्राचार्येण लाघवार्थं दशदशभुजभागाना-मनेनैव विधिना क्रान्त्यंशाः साधिताः। ते सावयवा जाताः अतो दशगुणान् कृत्वा पठिताः। ततोऽन्तरेऽनुपातः। यदि दशभिर्भागैरेको लभ्यते तदेष्टांशैः किमिति। फलमितो गताङ्क स्यात्। शषादप्यनुपातः। यदि दशभिर्भागैर्गतैष्यान्तरं लभ्यते तदा शेषांशैः किमिति फलं गताङ्कयुक्तं कार्यं सा क्रान्तिः स्यात्। परं दशगुणा ततो दश-भक्तेत्युपपन्नम् ॥११॥

विश्वनाथः

अथ क्रान्तिसाधनमाह। स्युः खण्डानीति। खवाधंय इत्यादीनि नवखण्डानि स्युः। यथा ४०।४०।३७।३४।३०।२५।१५।१८।१२।४। सूर्यः १।५।५२।४१। अयनांश-१८।१० युक्तः १।२४।२।४१। अस्य भुजांशः ५५।२।४१। दशभिर्भक्तः फलम् ५ गत-खण्डकानि ३०। शेषम् ४।२।४१। एष्यखण्डकेन २५ गुणितम् १०१।७।५। दशभिर्भक्तं फलम् १०।६।४२। अनेन गतखण्डयुति-१८१ युक्ता १९१।६।४२। दशभक्ता जाता लवादिक्रान्तिः १९।६।४०। सायनसूर्यस्योत्तरगोलत्वादुत्तरा। अथ प्रकारान्तरेण क्रान्ति-साधनमाह। चत्वारिंशदिति ४०।८०।११७।१५१।१८१।२०६।२२४।२३६।२४०।

अस्योदाहरणम्। सायनसूर्यस्य भुजांशाः ५४।२।४१। दशभक्ताः फलम् ५। एतत्प्रमितगताङ्कः १८१। अनेन एष्याङ्को २०६ रहितः २५। अनेन शेषं ४।२।४१ गुणितं १०१।७।५ दशभिर्भक्तं फलम्। १०।६।४२। अनेन गताङ्को १८१ युक्तः १९१। ६।४२। दशहृतोंऽशाद्योऽपमः स एव १९।६।४० ॥११॥

केदारदत्तः

क्रान्ति साधन के समय आचार्य ने ९०° अंशों के दश दश अंश पर क्रान्ति साधन कर ९ खण्ड पढ़े हैं। वे क्रमशः, ४०, ८०, ११७, १५१, १८१, २०६, २२४, २३६, और २४० होते हैं। सायन सूर्य के भुजांशों में १० का भाग देने से लब्धि के तुल्य गताङ्क होता है। गताङ्क के फल को अग्रिमाङ्क में घटाकर शेष का भुजांश शेष से गुणाकर गुणनफल में १० का भाग देकर लब्धि को गताङ्क में जोड़कर पुनः उसमें १० का भाग देने से सायन सूर्य के दिशा का अभीष्ट क्रान्ति होती है।

उदाहरणः—सायन सूर्य = ४।२७।२१।४२ तीन राशि से अधिक होने से १।२।३८। १८ भुज है। भुज के अंश = ३२।३८।१८ में १० का भाग देने से गताङ्क लब्धि = ३ शेष = २।३८।१८ अतः तीसरा गताङ्क ११७ और अग्रिमांक १५१ है। अग्रिमाङ्क १५१ − गताङ्क ११७ = ३४ हुआ। इसे भुजांश शेष २।३८।१८ से गुणित करने से गुणनफल ८९। ४२।१२ होता है। गुणनफल में १० का भाग देने से ८।५८।१३ होता है। इसे गताङ्क ११७ में जोड़ने से १२५।५८।१३ होता है। इसमें पुनः १० का भाग देते से सायन सूर्य के उत्तर गोल की स्थिति होने से उत्तरा क्रान्ति = १२।३५।४९ होती है।

उपपत्तिः—नाड़ी क्रान्ति वृत्त पूर्व सम्पात रूप सायन मेषादि विन्दु अर्थात् गोल सन्धिस्थ ग्रह होने पर क्रान्ति शून्य एवं ९०° की भुज की परम दूरी पर परम क्रान्ति होती हैं। पर क्रान्ति ज्या (४९$\frac{3}{4}$ = ४८)। आचार्य ने प्रत्येक १०, १० अंशों की दश गुणित उक्त क्रान्ति खण्ड पढ़े हैं। अतः गणितागत क्रान्ति अंशों में १० का भाग देना युक्तियुक्त है। क्रान्ति वृत्त में भुजांश = ९०°, नाड़ी वृत्त में विषुवांश = ९०° ध्रुवप्रोतवृत्त में परम क्रान्ति अंश = २४ इस चापीय जात्य (समकोण) त्रिभुज का १० अंशों के भुजांश, विषुवांश एवं क्रान्त्यंश से उत्पन्न त्रिभुज के साथ समानुपातीय सम्बन्ध होने से तथा त्रिज्या का मान = १२० मानने से परम क्रान्ति ज्या = ४८ तथा ज्या १०° = २१ के अनुसार अनुपात से $\frac{४८^{\circ} \times २१}{१२०} = \frac{८४}{१०}$ = क्रां० ज्या = ८ स्वल्पान्तर से। ज्या में दो का भाग देने से ज्या ८ = चाप = ४° को दश से गुणा करने से ४० के तुल्य प्रथम दश खण्डीय क्रान्ति सिद्ध होती है। इसी प्रकार शेष खण्ड भी उपपन्न होते हैं।

खेटदोर्लवदिग्लव की उपपत्ति बुद्धिमान् छात्र स्वयं समझ लेते हैं ॥११॥

षट्षडिषूदधिदृक्कुभिरर्धैः
खेटभुजांशदिनांशमितैक्यम्।
शेषहतैष्यदिनांशयुतं वां-
शाद्यपमः सुखसंव्यवहृत्यै ॥१२॥

मल्लारिः

अथ लाघवार्थं स्थूलक्रान्तिसाधनमाह। एभिरर्धैः खण्डैः कृत्वा खेटस्य सायनग्रहस्य ये भुजांशा भुजभागाः। तेषां यो दिनांशः पञ्चदशांशः। तन्मितं खण्डैक्यं कार्यम्। तच्छेषेण हतं यदेष्यं भोग्यखण्डं तस्य यो दिनांशः पञ्चदशांशः तेन युतं तदंशाद्यपमो भागादिः सुखेन संव्यवहृतिर्व्यवहारस्तदर्थं स्यात् ॥

अत्रोपपत्तिः। अत्र तु पञ्चदशभागानां क्रान्तयो भागादिकाः साधिताः। तत्रानुपातः। यदि पञ्चदशभागैरेकं खण्डं तदा भुजभागैः किमिति लब्धं गतखण्डानां योगमिता क्रान्तिः। शेषादनुपातः। पञ्चदशांशैर्यदि भोग्यखण्डं लभ्यते तदाशेषांशैः किमिति फलं गतखण्डयोगे योज्यं क्रान्तिः स्यात्। परं सा स्थूला खण्डभागोनाधिककलापरित्यागादित्युपपन्नम् ॥१२॥

विश्वनाथः

अथ लाघवार्थं स्थूलक्रान्तिसाधनमाह। षट्षडिति। १।२४।२।४१ सायनसूर्यस्य भुजांशाः ५४।२।४१ पञ्चदशभक्ताः फलम् ३। एतन्मितगतखण्डयोगः १७। एष्यखण्डम् ४। शेषेण ९।२।४१। गुणितम् ३६।१०।४४। पञ्चदशभिर्भक्तं फलम् २।२४।४३। अनेन गतखण्डयुति-१७ र्युक्ता। अंशाद्यपमो जातः १९।२४।४३। सुखेन संव्यवहृतिर्व्यवहारस्तदर्थं स्यादिति ॥१२॥

केदारदत्तः

लघु खण्डों ६, ६, ५, ४, २, १ से अर्थात् १५, पन्द्रह पन्द्रह अंशों में भुजांश से भी क्रान्ति सुख सुविधा के लिए साधन की जा रही है। सायन सूर्य के भुजांशों में १५ का भाग देकर लब्ध संख्या के तुल्य खण्डों के योग में, शेषांश और अग्रिमाङ्क के गुणनफल में १५ का भाग देकर जो उपलब्धि हो उसे गतखण्ड योग में जोड़ देने से जो फल प्राप्त हो वही क्रान्ति हो जाती है। यह क्रान्ति पूर्व साधित क्रान्ति से कुछ स्थूल है इसलिए कि स्वल्पान्तर और सुखद व्यवहार में ही यह प्रकार मौखिक भी सिद्ध हो जाता है।

उदाहरण:—सायन सूर्य ४।२७।२१।४२।९ है। इसका १।२।३८।१८ यह भुज है। भुजांश ३२।३८।१८ में १५ का भाग देने से लब्धि = २ के तुल्य खण्डों का योग ६ + ६ = १२ होता है। शेष २।३८।१८ और अग्रिमाङ्क ३ का क्रान्ति खण्ड = ५ का गुणनफल = १३।११।३० में १५ से भाग देने से ०।५२।४४ को गत खण्डों के योग १२ में जोड़ने से १२।५२।४६ के तुल्य पूर्व से कुछ स्थूल उत्तरा क्रान्ति सिद्ध होती है ॥१२॥

उपपत्तिः—पूर्व के क्षेत्र विचार के अनुसार यहाँ पर १५° भुजांश सम्बन्धी ज्या

$$\text{क्रान्ति} = \frac{\text{परम क्रां० ज्या} \times \text{ज्या } १५^{\circ}}{\text{त्रिज्या}} = \frac{४८ \times ३१}{१२०} = १२ \left(\text{यतः ज्या } १५^{\circ} = ३१ \right)$$

स्वल्पान्तर से। २ से भाग देने पर ज्या १२ का चाप = ६° इसी प्रकार भुजांश = ३०° ज्या = ६१ अतः क्रां० ज्या $३०^{\circ} = \frac{४८ \times ६१}{१२०} = \frac{२४४}{१०}$ = ज्या २४ का भुजांश = १२, १२ − प्रखण्ड = ६, = ६ द्वितीय खण्ड का मान होता है। इत्यादि ॥१२॥

ततो दलानि शोधयेत् तिथिघ्नशेषमैष्यहृत्।
तिथिघ्नशुद्धसंख्यया युतं भवन्ति दोर्लवाः ॥१३॥

मल्लारिः

अथानन्तरानीतक्रान्तिभागेभ्यो वैपरीत्येन भुजभागानयनमाह।

ततस्तस्मादपमाद्दलानि षडित्यादीनि यावन्ति शुध्यन्ति तावन्ति शोधयेत्। तिथिभिः पञ्चदशभिर्हन्यते गुण्यते यच्छेषं तदैष्येण भोग्यखण्डेन हृद्भक्तं त्रिष्ठं लब्धं तिथिघ्नया पञ्चदशगुणया शुद्धखण्डसंख्या युतं सद्दोर्लवा भुजभागा भवन्तीत्यर्थः ॥

अत्र विलोमविधिरेव वासना प्रत्यक्षसिद्धाऽस्ति। यद्यनेन प्रकारेण प्रागानीत-सूक्ष्मक्रान्तितो दोर्लवाः साध्यन्ते तदा किञ्चित् सान्तरा भवन्ति। अपमखण्डानां स्थूलत्वात्। अतस्तत्रत्यखण्डैर्दोर्लवार्थं व्यस्तविधिना एकस्तमातरं चिन्त्यम्।

तद्यथा।

दशाहतापमात्त्यजद्दलानि शेषमैष्यहृत्।
विशुद्धसंख्यया युतं दशाहतं भुजांशका इति ॥१३॥

विश्वनाथः

अथ क्रान्तिभागेभ्यो विलोमविधिना भुजभागानयनमाह ततो दलानीति। लघुखण्डकैः साधिता क्रान्तिः १९।२४।४३। अस्याः प्रथमखराडद्वयं ६ शोधितं शेषम् २।२४।४३। तिथिघ्नम् ३६।१०।४५। एष्यखराडकेन ४ भक्तं फलम् ९।२।४१। शुद्धखण्डसंख्या ३ तिथिघ्नी ४५। अनया लब्धं युतं जाताः सूर्यस्य भुजभागाः ५४।२।४१ ॥१३॥

केदारदत्तः

स्थूल क्रान्ति में क्रान्ति खण्डों को घटाकर, शेष और १५ के गुणनफल में अग्रिम अंक से भाग देकर लब्ध अंशादिक में १५ गुणित शुद्ध संख्या को जोड़ने से अभीष्ट भुजांश हो जाता है।

उदाहरण—क्रान्ति = १२।५२।४६ में ६ + ६=१२ को कम किया तो शेष = ०।५२।५६ को १५ से गुणा करने से गुणनफल = १३।१३।१० में अग्रिम अंक ५ का भाग देने से २°।३८'।३८'।० होता है। शुद्ध संख्या २ और १५ के गुणनफल = ३० में २।३८।३८ जोड़ने से ३२°।३८'।३९ राश्यादिक = १।२।२८ सूर्य का पूर्व तुल्य भुजांश हो जाता है। यहाँ पर भुजांश तुल्य ही स्पष्ट सूर्य है।

उपपत्ति—प्रत्येक १५ अंश में एक खण्ड का मान पढ़ा गया है। अतः भुजांशों में यथा सम्भव क्रान्ति खण्डों को घटाने से शुद्ध क्रान्ति खण्ड (घटे हुए) संख्या का ज्ञान हो जाता हैं। शेषांश से अनुपात द्वारा $\frac{१५^{\circ} \times \text{शेष में}}{\text{ऐष्य खण्ड में}}$ = शेष सम्बन्धी अंश होते हैं। खण्डों में १ संख्या के खण्ड में यदि १५° तो शुद्ध संख्यक खण्डों में शुद्ध खण्ड संख्या × १५ = अंश + शेष सम्बन्धी अंश = भुजांश होते हैं। उपपन्न है ॥१३॥

द्युदलतिथिवियोगास्तद्विनाडयश्चरं स्या-
दथ निजगजभागोपेतमक्षप्रभाप्तम्।
दिनकृदपमभागास्तत्त्वलिप्तायुताः स्यु-
र्द्युदलकृशपृथुत्वे ते क्रमाद्याम्यसौम्याः ॥१४॥

मल्लारिः

अथ रवेरज्ञाने दिनमानादेव क्रान्तिसाधनं स्थूलं स्वयुक्तिदर्शनार्थमाह। द्युदलं दिनार्थं तिथयः पञ्चदश तयोर्वियोगः षष्टिगुणश्चरपलानि स्युः। तच्चरं निजेन स्वीयेन गजभागेनाष्टांशेनोपेतं युक्तम्। ततोऽक्षप्रभयाऽऽप्तं भक्तं ते दिनकृतः सूर्यस्यापमस्य क्रान्तेर्भागाः स्युः। ते तत्त्वकलाभिः पञ्चविंशतिकलाभिर्युक्ताः कार्याः। द्युदलस्य पञ्चदशघटिकाभ्यो न्यूनाधिकत्वे क्रमाद्याम्यसौम्याः। कृशत्वे याम्याः। अधिकत्वे सौम्या इत्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः। दिनार्धपञ्चदशान्तरं पलीकृतं चरपलानि स्युः। एवं चरपलानि पञ्चभक्तानि चरज्येति युक्तिः पूर्वं प्रतिपादिताऽस्ति। ततस्त्रिज्यावृत्ते इयं चरज्या तदा द्युज्यावृत्ते का लब्धं कुज्या। अत्र द्युज्या स्थूलत्वात् सार्धद्वादशाधिकशतमिता धृता। एवं पलभाभुजे द्वादशकोटिस्तदा कुज्याभुजे का कोटिरिति जाता क्रान्तिज्या। तद्धनुः करणार्थं द्वौ हरः स्थूलत्वादङ्गीकृतः। एवं चरपलानां जातो गुणघातो गुणः १३५०। हरघातो हरः १२००। पलभा हरस्तु वर्त्तत एव। गुणहरौ स्वतिथिभि-१५० रपर्त्तितौ गुणस्थाने जाताः ९। हरस्थानेऽष्टौ ८। यो राशिर्नवभिर्गुण्यतेऽष्टभिर्भज्यते स स्वाष्टांशयुक्त एव भवति। अत उक्तं चरं निजगजभागोपेतमक्षप्रभाप्तमिति। सा स्थूला क्रान्तिरतः पञ्चविंशतिकलायुक्ता सती सूक्ष्मासन्ना दृष्टा। दक्षिणोत्तरोपपत्तिर्यथा। दिनदलं दक्षिणगोले पञ्चदशघटिकाभ्यो न्यूनमस्त्यतः कृते याम्या। उत्तरगोले दिनदलं पञ्चदशाधिकमतः पृथुत्वे सौम्या इत्युपपन्नम् ॥१४॥

विश्वनाथः

अथ सूर्यं विना स्वयुक्तिदर्शनार्थं दिनार्धात् स्थूलं क्रान्तिसाधनमाह। द्युदलेति। दिनार्धम् १६।३३। तिथयः १५। अनयोरन्तरम् १।३३। षष्टिघ्नं जातं पलात्मकं चरम् ९३। इदं स्वकीयेन गजभागेन ११।३७।३० युतम् १०४।३७।३०। अक्षयप्रभया ५।४५ भक्तं सवर्णितौ भाज्य-३७६६५० भाजकौ २०७०० भजनालब्धं भागाः १८।११। ४४। एते पञ्चविंशतिकलाभिर्युक्ता जाताः सूर्यस्य क्रान्तिभागाः १८।३६।४४। द्युदलकृशपृथुत्वे क्रमाद्याम्यसौम्या भवन्ति। तद्यथा पञ्चदशघटिकाभ्यो दिनार्धे न्यूने सति दक्षिणाः। अधिके उत्तरा ज्ञेयाः। एते क्रान्तिभागा द्युदलस्य पञ्चदशभ्योऽधिकत्वादुत्तरा जाताः ॥१४॥

केदारदत्तः

दिनार्ध और १५ घटिकाओं का अन्तर पलों का मान चर होता है। चर पलों में चर पलों का अष्टमांश जोड़कर योग में पलभा का भाग देने से अंशादिक लब्धि में २५ कला जोड़ देने से सूर्य की क्रान्ति होती है। दिनार्धमान १५ से अधिक होने पर क्रान्ति उत्तर दिशा की तथा कम होने पर दक्षिण दिशा की क्रान्ति होती है ॥१४॥

उदाहरण—पूर्व साधित दिनार्ध = १६।१२ का १५ घटी से अन्तर करने पर १ घटी १२ पल = चर = १।१२ पल होता है।

चर पल का अष्टमांश = ७२ ÷ ८ = ९।० को चर चर पलों ७२ में जोड़ देने से ८१।३० होता है। इसमें कुमायूं पलभा = ६।४७ का भाग देने से एकजातीय बनाकर भाग देने से $\frac{४८६०}{४०७}$ = ११।५५ (स्वल्पान्तर से) होता है। इसमें २५ कला और जोड़ने से १२।२० होता है। यहाँ दिनार्ध १५ से अधिक है, अतः प्रकारान्तर से सूर्य की स्थूल उत्तरा क्रान्ति सिद्ध होती है ॥१४॥

उपपत्ति—दिनार्ध = १५ ± चर पल । ∴ दिनार्ध ९१५ = चर पल । $\frac{\text{चर पल}}{१०}$ = चरांश । द्विगुणित करने से $\frac{\text{चर पल} \times २}{५} = \frac{\text{चर पल}}{५}$ = चर ज्या । अक्ष क्षेत्रीय अनुपात से क्रां ज्या = $\frac{१२ \times \text{कुज्या}}{\text{पलभा}}$ यहाँ स्वल्पान्तर से कुज्या = चर ज्या अतः $\frac{१२ \times \text{चर ज्या}}{\text{पलभा}}$ = $\frac{१२ \times \text{चर पल}}{\text{पलभा} \times ५}$ पुनः अनुपात किया कि यदि २१ तुल्या ज्या में १०° तो चर ज्या में क्या ? से क्रान्त्यंशा = $\frac{१०^\circ \times १२ \times \text{चर पल}}{२१ \times \text{पलभा} \times ५} = \frac{१२० \times \text{चर पल}}{१०५ \times \text{पलभा}}$ हर भाज्यों में १४ से अपवर्तन देने से $\frac{९ \times \text{चर पल}}{८ \times \text{पलभा}}$ (स्वल्पान्तर) $= \frac{\text{चर पल}}{\text{पलभा}}\left(१ + \frac{१}{८}\right) \frac{\text{चरपल} + \frac{\text{चरपल}}{८}}{\text{पलभा}}$

यहाँ आचार्य ने स्वल्पान्तर दोष को समझते हुए तारतम्य से २५ कला और जोड़ने की बात कही है ।

क्रांत्यक्षजसंस्कृतिर्नतांशास्तद्धीना नवतिः स्युरुन्नतांशाः ।
दिनमध्यभवास्ततोऽपि ये स्युः क्रान्त्यंशालघुखण्डकैः पराख्यः ॥१५॥

मल्लारिः

अथ दिनार्धे नतांशोन्नतांशसाधनमाह। ग्रहस्य क्रान्तिः । अक्षांशाः स्वदेशीयाः । एतदुत्पन्ना या संस्कृतिः सा नतांशाः स्युः । अत्रैकदिशोर्योगो भिन्नदिशोरन्तरमिति संस्कृतिः । तैर्नतांशैर्हीना नवतिरुन्नतांशाः स्युः । परं ते दिनमध्यभवा नहीष्टकाले क्रान्त्यक्षसंस्कारो नतांशाः । ततोऽपि तेभ्य उन्नतभागेभ्यो लघुखण्डकैः षडित्यादिभिर्ये क्रान्त्यंशाः स्युस्तेषां पर इति संज्ञा । अत्र पराख्यार्थं या क्रान्तिर्यन्त्रभागानां च क्रान्तिः सा अयनांशान् दत्त्वैव कार्या ॥

अस्योपपत्तिः—प्रत्यक्षसिद्धास्ति तथाप्युच्यते । विषुवद्वृत्ताद्दक्षिणोत्तरतः परमक्रान्त्यंशैः क्रान्तिवृत्तं भवति । रवौ क्रान्तिवृत्तं भ्रमति सति द्युरात्रवृत्तं दक्षिणोत्तरदिनार्धे यत्र लग्नं तस्मात्प्रदेशात् खस्वस्तिकपर्यन्तं नतांशाः । खस्वस्तिकात्तैर्भागैर्दिनार्धे सूर्यो वर्तत एवेत्यर्थः । दक्षिणोत्तरवृत्तक्षितिजसंयोगाद्दिनार्धे यैर्भागैरुन्नतस्त उन्नतांशाः। स्वद्युरात्रवृत्तविषुवन्मण्डलमध्ये क्रान्त्यंशाः । खस्वस्तिकात् द्युरात्रवृत्तपर्यन्तं दक्षिणा नतांशाः । उत्तरगोले क्रान्त्यक्षयोरन्तरे कृते सति उत्तरा दक्षिणा वा नतांशाः । यदोत्तरक्रान्तिरक्षांशेभ्यो न्यूना तदाऽक्षांशेभ्य क्रान्तौ शोधितायां दक्षिणतो द्युरात्रवृत्तं नतं स्यात् तदा दक्षिणा नतांशाः । यदाधिकास्तदा क्रान्त्यंशेभ्योऽक्षांशेषु शोधितेषु खस्वस्तिकादुत्तरतो द्युरात्रवृत्तं नतं स्यात् । तदोत्तरा नतांशा स्युः । अत्र उक्तं क्रान्त्यक्षजसंस्कृतिरिति । अत्रोन्नतांशजीवाया उपयोगोऽस्तीष्टकर्णसाधनार्थम् । अतोऽत्राचार्येण त्रिज्या चतुर्विंशतिमिता धृता । ततः पञ्चदशभागानां खण्डान्युत्पादितानि

तानि तु क्रान्तेर्लघुखण्डान्येव । अत उन्नतांशानां क्रान्तिः कार्येत्युक्तम् । तस्याः परसंज्ञा कृता ॥१५॥

विश्वनाथः

अथ खण्डकैर्विना क्रान्तिसाधनमाह ।

सायनखेटभुजांशदशांशोनघ्नधृतिस्तु तले द्विनगाप्ता ७२ ।

लब्धवियुक्सदलाब्धि–४ । ३० हृतोर्ध्वांशाद्यपमो निजगोलककुप्स्यात् ॥

सायनेति । सायनसूर्यस्य भुजांशाः ५४।२।४१ । एषां दशांशः ५।२४।१६ । अनेन धृतिः १८ रहिता १२।३५।४४ । इयं दशांशेन गुणिता ६८।४।१९ । इयं द्विस्था ६८।४। १९ । द्विगने–७२ भक्ता फलम् ०।५६।४३ । अनेन सदलाब्धयो ४।३० । रहिताः ३।३३। १७ । अनेन पृथवस्था भक्ताः फलं भागाद्यपम उत्तरः १९।८।५९ । यत्रकुत्रापि ग्रहस्य क्रान्तिसाधनं तत् प्रथमप्रकारेणैव कार्यम् ॥

अथ नतांशपराख्यसाधनमाह ।

क्रान्त्यक्षजसंस्कृतिर्नतांशा मध्यास्तेऽङ्गहृता पृथक् स्वनिघ्नाः ।

युक्ताः पृथगास्थितैर्यमाप्ताः शक्रक्ष्मा ११४ पतिता भवेत् पराख्यः ॥

अत्रैकदिशि योगो भिन्नदिश्यन्तरमिति संस्कृतिर्ज्ञेया । क्रान्तिरुत्तरा १९।६।४०। अक्षांशा दक्षिणाः २५।२६।४२ । अनयोर्भिन्नोदक्त्वादन्तरे जाता नतांना दक्षिणाः. ६।२०।२ । एते मध्याह्नजाः स्युस्ते नतांशा. ६।२० । षड्क्ताः फलम् १।३।२० । पृथक् १।३।२० । अस्य वर्गः १।६।५१ । अयं पृथक्स्थैर्युक्तः २।१०।११ । द्वाभ्यां भक्तः फलम् १।५।५ । अनेक शक्रक्ष्मा ११४ । रहिता जातः पराख्यः ११२।५४।५५ ॥

अथोन्नतांशपराख्यसाधनमाह । क्रान्त्यक्षजेति । क्रान्त्यक्षजसंस्कारेण जाता नतांशा दक्षिणाः ६।२०।२ । नतांशैर्हीना नवतिः ९० । जाता उन्नतांशाः ८३ । ३९।५८ । एते दिनार्धजाः स्यु । तत उन्नतांशेभ्यो ये क्रान्त्यंशालघुखण्डकैः स पराख्यो भवति । उन्नतांशाः ८३।३९।५८ । अस्मात् लघुखण्डकैः साधिता क्रान्तिः २३।२४।३९ । अस्याः पराख्या इति संज्ञा ॥

अथ नताद्यन्त्रभागानाह ।

घटीदल–३० युतं नतं तिथिगुणं दिनार्धोद्धृतं

कृतीकृतमिदं परामहतमब्धिरुद्रो–११४ द्धृतम् ।

गजाकृति–२२८ युतं यमा–२ हतपरोनितं तत्पदं

रसघ्नमनलोनितं स्युरिति यन्त्रभागा नताः ॥

नतम् ६।३ । घटीदल–३० युतम् ६।३३ । तिथि–१५ गुणम् ९८।१५ । दिनार्धेन १६।३३ । भक्तं फलम् ५।५६।११ । वर्गीकृतम् ३५।१४।२६ । पराख्येन ११२।५४।५५ । गुणितम् ३९७९।११।४९ । अब्धिरुद्रो–११४ द्धृतम् ३४।५४।१८ । गजाकृति-२२८ युतं २६३।५४।१८ । द्विगुणितपराख्येन २२५।४९।५० रहितम् ३७।४।२८ । अस्य मूलम् ६।५।२० । रस-६ घ्नम् ३६।३२।० । अनलो-३ नितं नता यन्त्रभागाः स्युः ३३।३२।० ।

यत्र गतसम्बन्धस्तत्र नतांशात्साधितो यः पराख्यः स ग्राह्यः। यत्रोन्नतसंबन्धस्तत्रोन्नतांशात्साधितो यः पराख्यः स ग्राह्यः ॥

अथ यन्त्रभागेभ्यो विलोमविधिना नतसाधनमाह।

सरामनतभागका रस-६ हृताः फलं वर्गितं
द्विनिघ्नपरयुग्गजाकृति-२२८ त्रियुग् युगेशा-११४ हृतम्।
परोद्धृतमतः पदं दिनदलघ्नमक्षेन्दु-१५ हृद्
घटीमुखनतं भवेद्विरहितं खरामैः ३०। पलैः ॥

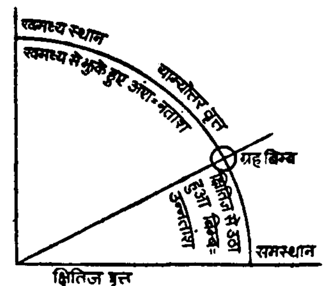
यन्त्रभागाः ३३।३२।०। त्रिभिर्युक्ताः ३६।३२।०। षड्भिर्भक्ताः फलम् ६।५।२०। अस्य वर्गं। ३७।४।२८। द्विगुणितपराख्येन २२५।४९।५०। युक्तः २६२।५४।१८। गजाकृतिमी २२८ रहितः ३४।५४।१८। युगेशै-११४ र्गुणितः ३९७९।१०।१२। पराख्येन ११२।५४।५५ भक्तः फलम् ३५।१४।२५। अस्य मूलम् ५।६।१०। दिनार्धेन १६।३३ गुणितं ९८।१५ पञ्चदशभि-१५ र्भक्तं फलम् ६।३३। खरामैः ३० पलै रहितं जातं घटिकादिनतम् ६।३ ॥१५॥

केदारदत्तः

क्रान्ति और अक्षांश का एक दिशा में योग विभिन्न दिशा में अन्तर करने से मध्यान्ह समय में नतांश होता है। नतांश को ९० में घटाने से उन्नतांश होते हैं। उन्नतांश को उन्नतांश तुल्य भुजांश मानकर लघु खण्डों से साधित क्रान्ति का नाम पर होता है ॥१५॥

उदाहरण—उत्तर क्रान्ति = १२°।२५'।२५" अक्षांश = २९।४० दक्षिण। भिन्न दिशा होने से अन्तर = १७।५२ = नतांश का मान होता है। ९०° – नतांश = ७२°।५५ – ७२°।५५ = दिनार्ध समय में उन्नतांश होते हैं। उन्नतांश से लघुखण्डों से क्रान्ति = ७२।५५ ÷ १५ = गताङ्क ४ शेष = १२।५५ गताङ्क ४ फलों का योग = ६ + ६ + ५ + ४ = २१ शेष १२।५ × ऐष्य खण्ड = २ = २५।५५ ÷ १५ = १।४४ को २१ में जोड़ने से क्रान्ति = २२।४४ पर होता है ॥१५॥

उपपत्ति—दिनार्ध समय में अपने खमध्य से सूर्य बिम्ब तक याम्योत्तर वृत्त में नतांश एवं निरक्ष खमध्य से सूर्य बिम्बतक याम्योत्तर वृत्त में क्रान्ति होती है। अतः क्रान्ति और अक्षांश के योग वियोग से नतांश ज्ञान सुगम तथा नतांश को ९० में घटा देने से क्षितिज से रवि बिम्ब तक उन्नतांश भी युक्तियुक्त है। यतः ९० – नतांश = उन्नतांश तथा नतांश + उन्नतांश = ९०°।



लघु खण्डों से उन्नतांश ज्या साधन से २४° व्यासार्ध वृत्त परिणत उन्नतांशों की ज्या होती है। आचार्य ने पूर्व में 'ज्या चाप कर्म रहितं' जो प्रतिज्ञा की है वाक्यच्छल से त्रिज्या वृत्तीय भुज वशात २४° त्रिज्या से भुज ज्या सिद्ध होने से २४° त्रिज्या वृत्तीय उन्नतांश ज्या का नाम पर किया है ॥१५॥

नवतिगुणितमिष्टमुन्नतं द्युदलहृतं फलभागतोऽपमः ।
कथितपरगुणस्तदुद्धृता रविनवषट् श्रवणोऽथवा भवेत् ॥१६॥

मल्लारिः

अथान्यथा लाघवेनेष्टकर्णं साधयति। इष्टमुन्नतं घटिकाद्यं नवतिगुणितं द्युदलेन हृतं फलम् यद्भागाद्यं ततोऽपमः क्रान्तिः। सोऽपमः कथितेन पराख्येन गुण्यस्ततस्तेन रविनवषट् उद्धृता भक्ता अथवा प्रकारान्तरेण श्रवण इष्टकर्णो भवतीत्यर्थः॥

अत्रोपपत्तिः। उन्नतघटिकानां भागकरणार्थमनुपातः। यदि द्युदलघटीभिर्नवत्यंशास्तदेष्टोन्नतघटीभिः किमिति। जाता भागास्तेषां ज्या। कार्या अतोऽपमज्या कृतेति। अत्र ज्या क्रान्तितुल्यैव धृतास्ति ततोऽन्योऽनुपातः। यदि परसंज्ञोन्नतांशज्याकोटौ त्रिज्या २४ कर्णस्तदा द्वादशकोटौ कः कर्ण एवं द्वादशसिद्धघातो भाज्यः २८८ पराख्यो हारः। एवं जातो दिनार्धकर्णः। अन्योऽप्यनुपातः। यदि त्रिज्यातुल्यया उन्नतघटीज्यया २४। अयं दिनार्धकर्णस्तदेष्टोन्नतघटीज्यया किमिति एवं लब्धमिष्टकर्णः। अत्र व्यस्तत्रैराशिकं ततः सर्वदा दिनार्धकर्णादिष्टकर्णेनाधिकेनैव भवितव्यम्। अतश्चतुर्विंशतिगुंणः। भाज्यङ्के चतुर्विंशतिगुणे जातः सिद्धो भाज्याङ्कः ६९१२। अस्य हरः पराख्य उन्नतघटीजातोऽपमश्च। जतोऽपमः परगुणः। तदुद्धृता रविनवषडित्युपपन्नम् ॥१६॥

विश्वनाथः

अथ प्रकारान्तरेणोन्नतादिष्टकर्णसाधनमाह। नवतिगुणितमिति। इष्टकाले उन्नतं १०। ३० नवत्या ९० गुणितम् ९४५। दिनार्येन १६।३३ भक्तं फलं भागाः ५६।५।५८ अस्माल्लघुखण्डकैः क्रान्तिः १०।१३।३५ कथितपरः २३।२४।३९ अनेन गुणिता क्रान्तिः ४७६।५३।१२ अनेन रविनवषट् ६९१२ भक्ताः फलमंगुलाद्यक्षकर्णः १४।२९। ॥५६॥

केदारदत्तः

९० और उन्नत काल के गुणनफल में दिनार्ध का भाग देने से लब्ध अंशादिक से जो क्रान्ति हो उसे पर से गुणा कर जो गुणनफल हो उसका ६९१२ में भाग देने से कर्ण हो जाता है।

उदाहरण—पूर्व में नतघटी और उन्नत घटिकाएँ साधित की गई हैं। उन्नतघटिका = १२।० को ९० से गुणा किया। १२ × ९० = १०८० में दिनार्ध १६।१२ का भाग देने से ६६।४० होता है। लघु खण्डा से क्रान्ति साधन की, जिसका मान २१।५३ होता है। इसका और पर = २२।८४ का गुणनफल ४८०।८८ होता है। इस गुणनफल का ६९१३ में भाग देते से १४।२१ इष्ट छाया कर्ण होता है।

उपपत्ति—त्रिज्या = २४ अनुपात से यदि $\frac{\text{९० = उन्नतांश × इष्ट उन्नत काल में}}{\text{दिनार्ध सम उन्नत काल में}}$

इष्ट उन्नत काल सम्बन्धी ग्रह लग्न के अन्तरांश । लघु खण्डों से इनकी क्रान्ति = ज्या होती है । दिनार्धकालीन वित्रिभ शंकु का नाम पर है पुनः अनुपात से $\frac{\text{पर} \times \text{अभीष्टक्रान्ति}}{२४^\circ}$

अभीष्ट शंकु । अनुपात से छाया कर्ण = $\frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{इष्ट शंकु}} = \frac{२४ \times १२}{\text{इष्ट शंकु}} = \frac{२४ \times १२}{\frac{\text{पर} \times \text{अभीष्टापम}}{२४}}$

$= \frac{२४ \times २४ \times १२}{\text{पर} \times \text{अभीष्टापम}} = \frac{६९१२}{\text{पर} \times \text{अभीष्ट अपम}}$ उपपन्न होता है ॥१६॥

तरणिनववरसाः श्रवोद्धृताः परविहृता अपमो भवेत्ततः ।
दिनदलगुणिता भुजांशका नवतिहृता अथवेष्टमुन्नतम् ॥१७॥

मल्लारिः

अथ व्यस्तविधिनेष्टकर्णादुन्नतघटिकाज्ञानमाह । तरणिनवरसाः श्रवसा इष्टकर्णेन हृताः । ततस्ते परेणापि हृता लब्धमपमः कान्तिर्भवेत् । ततस्ततो दलानि शोधयेदित्यादिना ये भुजांशास्ते दिनदलेन गुणिताः नवतिहृताः । अथ वा इष्टमुन्नतमिष्टोन्नतघटिकाः स्युरित्यर्थः । अत्र विलोमविधिरेव वासना । १७॥

विश्वनाथः

अथ विलोमविधिनेष्टकर्णादुन्नतघटीसाधनमाह । तरणीति । तरणिनवरसाः ६९१२ कर्णेन १४।२९ भक्ताः फलम् ४७७।१४।२७ पराख्येन १३।२४।३९ भक्तम् । सवर्णितो भाज्य–१७१८०५७ भाजकौ ८४८७९ । भजनाल्लब्धा कान्तिः २०।१४।२८ अस्मात्ततो दलानि शोधयेदित्यादिना जाता भुजांशाः ५७।९।१५ एते दिनार्धेन १६।३३ गुणिताः ९४५।५४ नवति–९० हृताः फलमिष्टोन्नतम् १०।३० ॥१७॥

केदारदत्तः

६९१२ में कर्ण का भाग देने से लब्ध फल में पर का भाग देने से लब्धि तुल्य इष्ट क्रान्ति होती हैं । इष्ट क्रान्ति से भुजांश वनाकर भुजांश और दिनार्ध के गुणनफल में ९० का भाग देने से लब्धफल उन्नत घटिका होती है ।

उदाहरण—६९१२ में कर्ण का १३।३५ का भाग देने से फल ५०८।५६ होता है । इसमें पर = २३।८ का भाग देने से २२।० यह क्रान्ति होती है । इस क्रान्ति पर से भुजांश $= ६७^\circ$।३० होते हैं । भुजांश को दिनार्ध १६।२२ से गुणा करने से फल १०८०।० में ९० का भाग देने से १२।० = घटिकात्मक उन्नत घटिका सिद्ध होती है ॥१७॥

उपपत्ति— कर्ण = $\frac{६९१२}{\text{पर} \times \text{अभीष्ट अपम}}$ ∴ पर × अभीष्ट अपम × कर्ण=६९१२

अतः अभीष्ट अपम = $\frac{६९१२}{\text{पर} \times \text{कर्ण}}$ पुनः इससे भुजांश=इष्टोन्नतांश से अपम साधन की तरह

$= $ भुजांश । पुनः अनुपात से $\frac{\frac{1}{2} \text{ दिनमान} \times \text{इष्ट उन्नतांश}}{९०}$ = उन्नतकाल । उपपन्न हुआ ॥१७॥

अभिमतयन्त्रलवास्ततोऽपमोऽसौ
जिननिघ्नः परहृत्ततो भुजांशाः ।
द्युदलघ्नाः खनवोद्धृताः कपाले
प्राक्पश्चाद्घटिकाः क्रमाद्गतैष्याः ॥१८॥

मल्लारिः

अथ यन्त्रवेधितोन्नतभागेभ्यः कालज्ञानं कथयति । अभिमता इष्टा ये यन्त्रभागाः स्युः । ततो योऽपमोऽसौ चतुर्विंशति गुणः । ततः परेण हृत् यल्लवाद्यं फलं तस्माद्ये भुजभागास्ते द्युदलगुणाः खनवभिर्नवत्या उद्धृता भक्ताः फलं प्राक्कपाले गताः पश्चिम एष्या दिनशेषा घटिकाः स्युरित्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः । अत्र यन्त्रांशानामपमः पराख्यव्यासार्धान्तस्थितोऽस्ति धनुःकरणार्थं त्रिज्याव्यासार्धस्थानीयः कार्यः । यदि पराख्ये व्यासार्धेऽयं यन्त्रांशापमस्तदा चतुर्विंशतिमितव्यासार्धे कः अतो जिननिघ्नः परहृदिति । ततो धनुः करणार्थं भुजांशा इति । घटीज्ञानार्थमनुपातः । यदि नवतिभागैर्द्युदलतुल्याः घटिकास्तदैभिर्भागैः किमिति । अतो द्युलघ्नाः खनवोद्धृता इति । यद्वा परपर्यायदि ार्धशंकुना जिनतुल्योन्नतघटीज्या लभ्यते तदेष्टयन्त्रापमसमेष्टशंकुना किमिति इष्टोन्नतनाडीजन्यभागज्या भवनि तच्चापमिष्टोन्नतनाडीजन्यभागाः । ततो घटीज्ञानं तु द्युदलानुपातेनेति सर्वमवदातम् ॥१८॥

विश्वनाथः

अथेष्टयन्त्रजोन्नतांशज्ञाने सति उन्नतकालमाह । अभिमतेति । अभिमतयन्त्रलवानां ५५।४५।४८ लघुखण्डकैः कान्तिः १९।५२।१३ जिन० २४ निघ्ना ४७६।५२।१२ पराख्येन २३।३४।३९ भक्ता फलम् २०।१३।२५ अस्माद्भुजांशाः ५७।५।५६ दिनार्धेन १६।३३ गुणिताः ९४५ खनवोद्धृताः फलं पूर्वकपाले जाता गतघटिकाः १०।३० ॥१८॥

केदारदत्तः

यन्त्र वेघ से उपललब्ध उन्नतांश से क्रान्ति साधन कर उस क्रान्ति को २४ से गुणा कर उसमें पर का भाग देने से लब्धि की ततो दलानि शोधयेत्……। से भुजांश को दिनार्ध गुणा कर उसमें ९० का भाग देने से पूर्व कपाल मे दिन गत, और पश्चिम कपाल में दिन शेष रूप उन्नत घटी हो जाती है ॥१८॥

ऊपर श्री विश्वनाथ टीका का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

उदाहरणः—अभिमत यन्त्र लव ६३।७ लघु खण्ड से क्रान्ति = २१।१२।३० को

२४ से गुणा करने से ५८।५६।१२ में पर २३।८ से भाग देने से फल = २२।०।३५ होता है। २०।१३।३५ से भुजांश = ६७।३०।५६ में दिनार्ध १६।० से गुणा करने से १०८० में ९० का भाग देने से पूर्वकपालीय गत घठिका = १२।० हो जाती है ॥१८॥

उपपत्तिः—त्रिज्या = २४ वेध द्वारा यन्त्र से उपलब्ध क्रान्ति द्वारा उन्नतांश ज्या = $\frac{\text{क्रान्ति} \times \text{त्रि०}}{\text{पर}} = \frac{\text{क्रान्ति} \times २४}{\text{पर}}$ का चाप = भुजांश। पुनः अनुपात से $\frac{\text{दिनदल} \times \text{भुजांश}}{९०}$ = ० पूर्वापर कपालों में दिनगत दिन शेष रूप नत घटिका होती ॥१८॥

खाङ्कघ्नोन्नतघटिका दिनार्धभक्ता
भागाः स्युस्तदपमजांशकाः परघ्नाः।
सिद्धाप्ता निगदितवत्ततो भुजांशा-
स्तत्काले स्युरिति च यन्त्रजोन्नतांशाः ॥१९॥

मल्लारिः

अथोन्नतघटीभ्यो विलोमेन यन्त्रभागान् कथयति। खाङ्कैर्नवत्या हन्यन्ते गुण्यन्त एवंभूता या उन्नतघटिकास्ता दिनार्धेन भक्ताः सत्योभागाः स्युस्तेभ्यो भागेभ्यो येऽपमजांशकाः कान्त्यंशाः स्युस्ते परेण गुण्याः। ततः सिद्धैश्चतुर्विंशत्या आप्ता भक्ता लब्धं यत् ततो निगदितवद्ये भुजांशाः स्युस्ते तस्मिम् काले यन्त्रजा उन्नता अंशा भागाः स्युरित्यर्थः॥

अत्रोपपत्तिः। पूर्वोक्तवैपरीत्येन सुगमा ॥१९॥

विश्वनाथः

अथेष्टोन्नतकालाद्यन्त्रजोन्नतांशानयनमाह। खाङ्केति। उन्नतभटिका! १०। ३० खाङ्क–९० घ्नाः ९४५।४ दिनार्धेन १६।३३ भक्ताः फलं भागाः ५७।५।५८ अस्माल्लघुखण्डकैः कान्तिभागाः २०।१३:३'५ पराख्येन २३।३४।३९ गुणिताः ४७६।५३।१२ सिद्धा–२३ प्ताः १९।५२।१३ अतोस्ततो दलानि शोधयेदित्यादिना जाता भुजांशाः ५५।४५।४८ ॥१९॥

केवारदत्तः

उन्नत घटिकाओं को ९० से गुणा कर दिनार्ध से भाग देने से उस अंशादिक फल से लघुखण्डों से साधित क्रान्ति को पर से गुणाकर २४ से भाग देकर जो लब्धि हो उससे "ततोदलानि शोधयेत्" श्लोक १३ से उत्पन्न भुजांश का नाम यन्त्रोन्नतांश होता है।

उदाहरण—कल्पना करिए उन्नत घटिका = १२ दिनार्धं = १६ तो उन्नत घटिका = १२ × ९० = १०८० में दिनार्ध = १६ का भाग देने से लब्ध ६७।३० होता है। ६७°। ३० से लघुखण्ड से क्रान्ति = २२।० होती है। क्रान्ति को पर २३।८। से गुणा करने से ५०८।५६ होता है। ६०८।५६ में २४ का भाग देने से २१।१२।३० होता है। २१।१२।३०

से लघु खण्डों से भुजांश साधन करने से ६३।७ यही यन्त्रजोन्नतांश का मान सिद्ध होता है ।।१९।।

उपपत्ति:—पूर्व के श्लोक १८ की व्यस्त विधि से स्पष्ट है :।१९।।

यन्त्रलवोत्थक्रान्तिलवाप्ता वस्विभदस्राः २८८ स्यादिह कर्णः।
कर्णहृतास्ते स्यादपमोऽतो बाहुलवाः स्युर्यन्त्रलवा वा ।।२०।।

मल्लारिः

अथ यन्त्रांशेभ्य इष्टकर्णसाधनमिष्टकर्णाद्यन्त्रांशसाधनमेकवृत्तेनाह। यन्त्रलवेभ्य उत्था उत्पन्ना ये क्रान्तिभागास्तैराप्ता भक्ता वस्विभदस्रा इहेष्टकर्णः स्यात् ।

अत्रोपपत्तिः । परमक्रान्तिभागाः २४ । परमाल्पेन द्वादशतुल्येनेष्टकर्णेन गुणिता जातो भाज्यः २८८। स भाज्यः परमकान्त्या यावद्भज्यते तावत्परमाल्पेष्टकर्णो भवति । एवमिष्टयन्त्रभागक्रान्त्या भाज्यमानं इष्टकर्णो भवत्येवेति ।।

अथ कर्णेन हृता वस्विभदस्रा अपमः कान्तिः स्यात् । अतोऽस्याः कान्तेर्बाहुभागास्ते वा प्रकारान्तरेण यन्त्रभागाः स्युरित्यर्थः अत्र व्यस्तविधिरेव वासना ।।२०।।

विश्वनाथः

अथ यन्त्रजोन्नतांशादिष्टकर्णं ततश्च यन्त्रोन्नतांशसाधनमाह। यन्त्रलवोत्थेति । यन्त्रलवानां ५५।४५।४८ लघुखण्डकैः कान्तिलवाः १९।४२।१३ अनेन वस्विभदस्रा २८८ भक्ताः फलमंगुलादीष्टकर्णः १४।२९।३८ इष्टकर्णेन १४।२९।३८ वस्विभदस्रा २८८ भक्ताः फलं जातोऽपमः १९।५२।१३ अतस्ततो दलानीत्यादिना भुजांशा जाता यन्त्रोन्नतलवाः ५५।४५।५८ ।।२०।।

केदारदत्तः

यन्त्रोपलब्ध उन्नतांश से साधित क्रान्ति में २८८ का भाग देने से लब्धि का मान अंगुलादिक कर्ण होता है। तथा २८८ में कर्ण का भाग देने से जो क्रान्ति होती है उससे साधित भुजांश का मान यन्त्रजोन्नतांश होते हैं।

उदाहरण—यन्त्रजोन्नतांश = ६३।७ से लघुखण्डों से प्राप्त क्रान्ति = २१।१२।३० का २८८ में भाग देने से कर्णमान = १३।३५ होता है। तथा कर्ण = १३।३५ से २८८ में भाग देने से क्रान्ति २१।१२।३० से लघुखण्डों से भुजांश = ६३।७ होते हैं। यही यन्त्रजोन्नतांश होते हैं ।।२०।।

उपपत्ति:—आचार्य ने यन्त्रजोन्नतांश से साधित क्रान्ति को ही २४ माप मान की त्रिज्या में उन्नतांश ज्या कहा है। शङ्कु = यन्त्रोत्थक्रांति। अनुपात से इष्ट कर्ण = $\frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{शङ्कु}} = \frac{२४ \times १२}{\text{यन्त्रजोत्थकां०}} = \frac{२८८}{\text{यन्त्रजोत्थकां०}}$ इसी के विपरीत $\frac{२८८}{\text{इष्टकर्ण}}$ = यन्त्रजोत्थ क्रान्ति उपपन्न होती है ।।२०।।

वृत्ते समभूगते तु केन्द्रस्थितशङ्कोः क्रमशो विशत्यपैति ।
छायाग्रमिहापरा च पूर्वा ताभ्यां सिद्धतिमेरुदक् च याम्या ॥२१॥

मल्लारिः

अथ सर्वत्र नलिकाबन्धादिकुण्डमण्डपादिविधौ च दिक्साधनोपयोगोऽस्त्यतो दिक्साधनं कथयति । जलवत्समीकृतायां भूमौ वृत्तेऽभीष्टकर्कटेन कृते सति केन्द्रस्थितस्य वृत्तमध्यस्थस्य शङ्कोर्द्वादशांगुलस्य छायाग्रं क्रमशो विशति इहापरा पश्चिमदिक् । यत्रापैति दिनशेषकाले वृत्ताद्यत्र बहिर्गच्छति तत्र चिह्ने पूर्वा दिक् । ताभ्यां पश्चिमपूर्वादिग्भ्यां सिद्धो गस्तिमिर्मत्स्यस्तस्मान्मत्स्यमुखपुच्छसूत्रादुदगुत्तरा याम्या दक्षिणा स्यात् । एवं यद्दिने त्रिशन्मितमेव दिनमानं तद्दिवस एवामुनाप्रकारेण दिक्साधनमन्यथा तु भुजं विना दिक्साधनं न भवति ।

अत्रोपपत्तिः । अत्र दिशस्तु प्रतिदेशं भिन्ना न तु प्रतिकालम् । तासां भिन्नत्वे हेतुरुच्यते । यस्मिन् । यस्मिन् स्थाने सूर्योऽस्ति तदृजुमार्गो हि पूर्वापरा । तत्साधनोपायो यथा । मध्यसूत्रोदयास्तसूत्रयोर्यदन्तरं ज्यारूपं माऽग्रा ततो ऽग्रातः शंकुमूलपर्यन्तं यदन्तरं तत् शंकुतलम् । एवमग्राशंकुतलयोर्योगान्तरं भुजः । स भुजो मध्यसूत्राद्यथादिशि देयः सा वै यास्योत्तरा दिक् । तस्मात् मत्स्यात्पूर्वापरेति । अत्र नाडिकामण्डलस्थो ग्रहो यद्दिने भवति तद्दिवस एव दिक्साधनं युक्तमस्ति । यतोऽत्र नाडिकामण्डलस्थे ग्रहे चरज्याक्रान्तिज्याग्राणामभावः अग्राऽभावात् शंकुतलतुल्य एव भुजः स मध्यसूत्राद्देय इत्यत्र यत्र छायाप्रवेशनिर्गमस्थानं तत्रैव भवति यतो हि लघुक्षेत्रे शंकुतलं पलभातुल्यम् । यद्यथा । द्वादशकोटौ पलभा भुजस्तदा शकुकोटौ क इति जातं शंकुतलं तन्महाशंकुस्थानीयम् । लघुनि छायाक्षेत्रे द्वादशतुल्यैव कोटिः । तत्रत्यकरणायानुपातः । महाशंकुकोटाविदं शंकुतलं तदा द्वादशकोटौ किमिति । एवं शंकुतुल्ययोर्द्वादशतुल्योर्गुणहरयोर्नाशे जाता पलभैव । अतश्छायाप्रवेशनिर्गमस्थाने पूर्वापरे तन्मत्स्यादक्षिणोत्तरे इति शोभनमुक्तम् ॥२१॥

विश्वनाथः

अथ नलिकाबन्धादि कुण्डमण्डपादिविधौ दिक्साधनमाह । वृत्ते समेति जलादिना समीकृतायां भुवि कृते वृत्ते तत्र केन्द्रस्थशङ्कोर्द्वादशांगुलस्य छायाग्रं यत्र वृत्ते प्राक् कपाले विशति प्रविशति तत्र चिह्नं कार्यं सापरा पश्चिमदिक् स्यात् । अपराह्णे यत्र वृत्तेऽपैति निर्गच्छति सा पूर्वा दिक् भवति । ताभ्यां पूर्वापरचिह्नाभ्यां सिद्धतिमेरुदक् याम्या भवति । एतदुक्तं भवति । पूर्वचिह्नात् परदिक्चिह्नपर्यन्तं वृत्तं कार्यम् । पश्चिमचिह्नात् पूर्वचिह्नपर्यन्तं वृत्तं कार्यम् । एवं कृते सति मत्स्याकारो दृश्यते मत्स्यमुखपुच्छागतारज्जुर्दक्षिणोत्तरा भवतीत्यर्थः ॥२१॥

केदारदत्तः

दिशा साधन के समय सर्वप्रथम यह ध्यान देना चाहिए कि सूक्ष्म छाया ज्ञान के लिए जो भूमि है वह बिलकुल समतल होनी चाहिए जैसे जल का धरातल समान सलतल वैसे ही भूमि 'परावटाम' आदि से समतल करनी चाहिए।

अभीष्ट छाया व्यासार्ध से समतल भूमि में निर्मित वृत्त के जिस चिन्ह में १२ अंगुल शंकु की छाया का प्रवेश और धीरे-धीरे छाया दीर्घ होती हुई जिस वृत्त के जिस विन्दु से बाहर निकले उन दोनों चिन्हों को अंकित करना चाहिए। ये दोनों विन्दु अर्थात् छाया प्रवेश विन्दु का नाम पूर्व, और निर्गम विन्दु का नाम पश्चिम होता है।

प्राचीनाचार्य पूर्व व पश्चिम विन्दु केन्द्रों से छायार्ध व्यासार्धों से निर्मित वृत्तों के ऊर्ध्व व अधोगत सम्पात विन्दुओं पर गई हुई रेखा, जिसे याम्योत्तर रेखा कहेंगे उस रेखा का नाम मत्स्य रेखा इसलिए कहते हैं कि दोनों वृत्तों के सम्पातों पर मत्स्य का आकार दिखाई देता है।

पूर्व से पश्चिम तक गई रेखा के केन्द्र विन्दु पर लम्ब रेखा करना रेखागणित से सुसरल है ॥२१॥

उपपत्तिः—एक दिन में रविगति को शून्य सम मानकर शंकु की प्रवेशनिर्गम-कालिक छायाग्रों पर बद्ध सूत्र रेखा पूर्वापर रेखा होती है। पूर्वापर रेखोपरि लम्ब रेखा याम्योत्तरदिशा होगी ही। सही माने में दिक्साधन का यह स्थूल प्रकार है।

सायन मेषादि विन्दुगत सूर्य के समय का उक्त दिक्साधन प्रकार स्वल्पान्तर से समीचीन हो सकता है ॥२१॥

वार्कक्रान्तिलवाक्षकर्णनिहतिर्भाकर्णनिघ्नी नभोऽ-
क्षाग्न्याप्ता रविदिग्भुजो यमदिशाद्विघ्नाक्षभासंस्कृतः।
केन्द्रे भोत्थवृतौ स पूर्णगुणवद्भाग्रात् प्रदेयो भवेद्
याम्योदक् स भुजार्धकेन्द्रनिहितो रज्जुस्तु पूर्वापरा ॥२२॥

मल्लारिः

अथ नाडिकामण्डलादन्यत्र यस्मिन् कस्मिंश्चिद्दिवसे दिक्साधनार्थं भुजमानयति। वा शब्दः प्रकारान्तरसूची। अर्कस्य ये क्रान्तिलवास्तेषामक्षकर्णस्य च यानि हतिः परस्परगुणनं सा भाकर्णेन छायाकर्णेन कर्णः स्यात्पदमर्कभाकृतियुते रित्ति साधितेन निघ्नी गुणिता ततो नभोऽक्षाग्निभिः ३५० पञ्चाशदधिकशतत्रयेण आप्ता भक्ता सती रविदिक् सूर्यो यस्मिन् गोले वर्त्तते तदिग् भुजः स्तात्। स भुजो मध्यमो यमदिशया दक्षिणदिशया द्विघ्नया द्विगुणयाक्षभया संस्कृतः सन् स्फुटो भवति। स भुजः केन्द्रे भोत्थवृत्तौ छायोत्पादितवृत्ते भाग्रात् छायाग्रात् प्रवेशकालीनात् वा निर्गम-

कालीनात् पूर्णगुणवत् यथाशं पूर्णज्या दीयते तद्वद्देयः। भाग्राद्दीयमानभुजमितशलाकाया अग्रं यथा वृत्तपरिधौ लगति तथा देयमित्यर्थः। सा याम्योत्तरा भवति भुजार्थं भुजमध्यः केन्द्रं वृत्तमध्यम्। अनयोर्मध्ये मिलिता या रज्जुः सा पूर्वापरा।

अत्रोपपत्तिः। अत्र भुजलणं तु पूर्वमेव प्रतिपादितं तत्साधनं यथा। तत्रादावग्रा साध्यते। कुज्या भुजः। क्रान्तिज्या कोटिः। अग्रा कर्ण इति अक्षक्षेत्रं तथा च पलभा भुजः। द्वादशकोटिः। पलकर्णः कर्ण इति अस्मात्साध्यते।

तत्रानुपातः। यदि द्वादशकोटौ पलकर्णः कर्णस्तदा क्रान्तिज्या कोटौ कः कर्ण इति अग्रा स्यात्। क्रान्तिः। किञ्चिदधिकेन द्वयेन गुणिता क्रान्तिज्या सा पलकर्णगुणा द्वादशभक्ता अग्रा सा त्रिज्याव्यासार्धे ततोऽनुपातः। यदि त्रिज्यावृत्ते इयमग्रा तदा छायाकर्णवृत्ते का। अतश्छायाकर्णो गुणः। त्रिज्या हरः। तत इयमग्रा द्विगुणा कार्या। यतः सम्पूर्ण जीवावत् वृत्तमध्ये भुजो देयोऽस्ति। एवं क्रान्तिः पलकर्णगुणा कार्या ततः सिद्धो गुणद्वयघातो गुणः ४।४। हरघातो हरः १४४०। गुणहरौ गुणेनापवर्तितौ लब्धा हरस्थाने ३५०। अत उक्तमर्कक्रान्तिलवाक्षकर्ण निहतिरिति। साग्रा शंकुतलेन संस्कार्या। तत्र लघुक्षेत्रे शंकुतलं पलभातुल्यं तदग्रायां संस्कार्यम्। अग्राया द्विगुणितत्वादिदमपि द्विगुणं कार्यम्। अत उक्तं यमदिशाद्विघ्नाक्षभासंस्कृत इति। स भुजो भाग्रादत्तो याम्योदक् स्यात्। भुजस्य द्विगुणत्वाद् भुजमध्यकेन्द्रोपरिनीयमानो रज्जुः पूर्वापरेत्यर्थत एव सिद्धम् ॥२२॥

विश्वनाथः

अथ प्रकारान्तरेण दिक्साधनं भुजसाधनं चाह। वार्केति। वेति प्रकारान्तरम्। सूर्यस्य भागादिक्रांन्तिः कार्या तस्या अक्षकर्णस्य च निहतिः परस्परगुणनम्। सा निहतिर्भाकर्णेन इष्टच्छायाकर्णेन निघ्नी गुणिता नभोक्षाऽग्निभिः ३५० आप्ता भक्ता फलं रविदिक् सायनसूर्यदिगंगुलादिको भुजः स्यात्। स भुजो यमदिशया दक्षिणया द्विगुणया पलभया संस्कृतः। एकदिशि योगो भिन्नदिशि चान्तरं कार्यमित्यर्थः। शेषदिक् भुजोऽसौ स्फुटः स्यात्। स भुजः केन्द्रे भोत्थवृत्तौ पूर्णगुणवत्सम्पूर्णज्यावद् भाग्रात् प्रदेयः। एतदुक्तं भवति। समभुवि केन्द्रे अभीष्टच्छायापरिमितेन सूत्रेण वृत्तं कार्यं तस्मिन् वृत्ते केन्द्रे शङ्कुर्निवेश्यः। तस्य शङ्कोश्छायाग्रं यत्र वृत्ते लगति तत्र छायाग्रे चिह्नं कार्यम्। तस्मात् चिह्नात् स भुजो याम्यश्चेत्तदा याम्यायां पूर्णगुणवद्देयः उत्तरश्चेत्तदा भुजपरामरैरगुलैश्छायाग्रात् पूर्णगुणवदुत्तरे देयः। एवं कृते सति यो भुजो भवति सा याम्योदक् दक्षिणोत्तरा ज्ञेया। भुजार्धकेन्द्रमिलिता रज्जुः पूर्वापरा स्यात्। तद्यथा। यो भुजो दत्तस्तस्यार्धात् केन्द्रपर्यन्तं मिलितो रज्जुः पूर्वापरा स्यादित्यर्थः। अस्योदाहरणम्। सूर्यः १।५।४२।३७। गतिः ५७।३६। सूर्योदयादिष्टकालः १०।३०। चालितः सूर्यः १।५।५२।४१। अस्मात् स्युः खण्डानीत्यादिना साधिता क्रान्तिर्भागाद्या उत्तरा १९।६।४०। अक्षकर्णः १३।१९। अनयोराहतिः २५४।२९।४६। इयं भाकर्णेन १४।२५।

गुणिता ३६६८।५९।८ नभौऽक्षाग्न्या-३५० प्ता फलं भुजः १०।२८ । सायनसूर्यस्योत्तर-गोलस्थत्वादुत्तरः । दक्षिणाक्षभया ४।४५ । द्विगुणितया ११।३० । संस्कृतो भिन्नादि-क्त्वादन्तरे जातः स्पष्टो भुजो दक्षिणः १।२ । ॥२२॥

केदारदत्तः

सूर्य की क्रान्ति और पल कर्ण के घात को छाया कर्ण से गुणा कर गुणनफल में ३५० का भाग देने से सूर्य की दिशा का (उत्तर या दक्षिण का) भुज हो जाता है । भुज में द्विगुणित पलभा का संस्कार करने से (पलभा की दिशा दक्षिणा) एक दिशा में योग भिन्न दिशा में अन्तर करने से वह स्पष्ट भुज होता है ।

छाया व्यासार्ध से निर्मित वृत्त में, वृत्त केन्द्रस्थ शंकु की छाया के अग्रविन्दु से दान देने से वह दक्षिण, उत्तर रूप रेखा होती है अर्थात् याम्योत्तर रेखा सिद्ध हो जाने से याम्यो-त्तर रेखा पर लम्ब रूप रेखा पूर्वापर रेखा हो जाती है ॥२२॥

उदाहरण—उक्त टीका का ही उदाहरण मान्य व निर्दोष है) स्प० सू०= १।५।४२।३७ गतिः=५७।३६ सूर्योदयादिष्टकाल = १०।३० धन चालन से चालित सूर्य १।५।५२।४१ इससे लघु खण्डों से साधित उत्तरा क्रान्ति १९°।६'।४०'' अक्ष कर्ण=१३।१९ दोनों का गुणनफल = २५४।२९।४६ इसे छाया कर्ण से गुणित करने से = ३६६८।५९।८ इसमें ३५० का भाग देने से फल = १०।२८ = भुज । सायन सूर्य उत्तर गोल में है भुज भी उत्तर का होता है । काशी में पलभा = ४।४५ को द्विगुणित करने से = ११।३० मे आगत उक्त उत्तर भुज = १०।२८ भिन्न दिशा होने से अन्तर=१।२ = स्पष्ट भुज ।

उपपत्ति—५७३ त्रिज्या मानने से १ अंश की ज्या = १० को १२०=त्रिज्या में परिणत करने से $\frac{१० \times १२०}{५७३} = \frac{७२}{३५}$ (स्वल्पान्तर से) अतः क्रां ज्या = $\frac{\text{क्रां} \times ७२}{३५}$, अतः

अक्ष क्षेत्रानुपात से त्रिज्या वृत्तीय अग्रा $= \frac{\text{पलकर्ण} \times \text{क्रां ज्या}}{१२} = \frac{\text{पलकर्ण} \times \text{क्रांज्या} \times ७२}{३५ \times १२}$

कर्णवृत्तीय अग्रा $= \frac{\text{अग्रा} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{त्रिज्या}} = \frac{\text{क्रान्ति} \times \text{पलकर्ण} \times ७२ \times \text{छाया कर्ण}}{१२० \times ३५ \times १२}$

$$= \frac{\text{क्रान्ति} \times \text{पलकर्ण} \times \text{छायाकर्ण} \times ७२}{५०४००} = \frac{\text{कोज्या} \times \text{पलकर्ण} \times \text{छायाकर्ण}}{\frac{५०४००}{७२}}$$

$$= \frac{\text{कांज्या} \times \text{पलकर्ण} \times \text{छायाकर्ण}}{७००} ।$$

रविगोलीय भुज=अग्रा ± पलभा $= \frac{\text{कोज्या} \times \text{पलकर्ण} \times \text{छायाकर्ण}}{७००}$ इस लिए

$$\text{द्विगुणितभुज} = \frac{\text{क्राज्या} \times \text{पलकर्ण} \times \text{छायाकर्ण} \times २}{७००} \pm २\ \text{पलभा} = \frac{\text{क्राज्या} \times \text{पलकर्ण} \times \text{छायाकर्ण}}{३५०}$$

± २ × पलभा = दक्षिणोत्तर रेखा। दक्षिणोत्तरा रेखा के ऊपर लम्बरूपा रेखा का नाम पूर्वापरा स्पष्ट है ॥२२॥

द्युमानखगुणान्तरं शिवगुणं दिनेऽल्पाधिके
ह्यपागुदगथानुदग्भवतियन्त्रभागापमः।
वसुघ्न्युभयसंस्कृतिर्नवतियन्त्रभागान्तरो-
द्भवापमहृता ततो भुजलवा दिगंशाः स्मृताः ॥२३॥

मल्लारिः

अथ तुरीययन्त्रात् दिक्साधनार्थं दिगंशान् साधयति। द्युमानं प्रसिद्धम्। खगुणाः त्रिंशत्। अनयोर्यदन्तरं तत् शिवगुणमेकादशगुणितं तत् दिने अल्पाधिके अपाक् उदक् स्यात्। त्रिंशदल्पे दिनमाने दक्षिणमधिके सति उत्तरं फलं स्यात्। अथ शब्दाऽनन्तरवाची। यन्त्रभागानामपमः क्रान्तिः सदा अनुदक् दक्षिणेति। उभयोर्द्वयोः संस्कृतिः वासुघ्नी अष्टगुणा सती ततो नवतियन्त्रभागानां च यदन्तरं तदुद्भवस्त-स्मादुत्पन्नो योऽपमः। तेन सा हृता। ततः फलाद्ये भुजलवास्ते दिशामंशा दिक्-साधनार्थमेतऽशाः स्युरित्यर्थः। एते दिगंशा यन्त्रोत्पन्ना एवेति।

अत्रोपपत्तिः। अत्र स्वक्षितिजे चक्रांशा अङ्क्याः। ततः पूर्वस्वस्तिकेष्टदिग्विवरे ये भागास्ते दिगंशास्तज्ज्या। एवं पश्चिमस्वस्तिकेऽपि तत्साधनं यथा। अग्राकर्ण-वृत्तीया कार्या सा पलभया संस्कार्या स भुजः स्यात्। ततः स त्रिज्यावृत्तीयः कार्यः सा दिग्ज्या भवति। तत्रादावग्रा साध्यते। द्युमानखगुणान्तरं दलितं चरघटिकाः। ततः षष्टिगुणाः पलानि। ततस्तच्चरं नवगुणं पलभाभक्तमष्टभक्तं क्रान्त्यंशा इति युक्तिः पूर्वमुक्तास्ति। एवं द्युमानखगुणान्तरस्य सिद्धो गुणघातो गुणः २७०। अष्टौ पला च हरः। सा क्रान्तिश्छायाकर्णगुणा खखाद्रिभक्ता भुजो भवति इत्यग्रे वक्ष्यति। स भुजस्त्रिज्यया गुण्यश्छायया भक्तो दिग्ज्या भवति। एवमत्र छायाकर्णपलकर्णावपि गुणौ खखाद्रीनामष्टानां च घातो हरः ५६००। चतुर्विंशतिमितत्रिज्या गुणघातगुणा जातो गुणः ६४८०। अत्र छायाकर्णच्छाये साध्ये। यदि शंकुकोटौ त्रिज्याकर्णस्तदा द्वादशकोटौ कः कर्ण इति। तथा च यदि शंकुकोटौ दृग्ज्या भुजो तदा द्वादशकोटौ क इति जाता छाया। एवमत्र छायया भाज्यमाने छायाकर्णेन गुण्यमाने छेदांशविपर्यासे शंकुतुल्ययोस्तथा द्वादशतुल्ययोर्गुणहरयोर्नाशे कृते पूर्वं त्रिज्या गुणो नतांशज्या हरः। अत्र पलकर्णो गुणः पलभा हरोऽस्ति। अत्र पलभा चतुर्मिता कल्पिता स्वल्पान्तरत्वात् त्रिपञ्चपलभयोरपि स्यात्। अन्यत्र ग्रन्थसञ्चारासंभवः। लाघवेन युक्तिदर्शनार्थं स्थूल-मङ्गीकृतमतो न दोषाय। एवं चतुर्मितायां पलभायां पलकर्णः १३।३९। अयं पलभया सषडंशत्रय-३।१० गुणितया तुल्या भवति। ततः पलकर्णपलभयोर्गुणहरयोर्नाशे तस्य

सषडंशत्रयं गुणः ३।१० एवं सषडंशत्रयचतुर्विंशतिमितत्रिज्याघातेन ७६ गुणितः पूर्वगुणघातो गुणः ४९२४८० । अयं हरः ५६०० । गुणहरौ हरेणापवर्त्य जातो गुणः ८८ । अतोऽत्र द्युमानखगुणान्तरं गुणेनानेन गुण्यं नतांशापमेन भाज्यम् । एवमत्र द्युमानखगुणान्तरं शिवगुणितं कृतम् । अष्टगुणस्य त्यागो यतोऽतिमफलस्य शंकुतलाख्यस्य च अष्टौ गुणाऽस्ति नतांशापम एव हरः । अतः फलसंस्कार एवाष्टगुणो नतांशापमभक्त इति वदिष्यति । तद्यथा अत्रास्यामग्रायां शंकुतलमपि त्रिज्यागुणितं छायया भक्तं संस्कार्यं दिग्ज्या स्यात् । तत्र शंकुतलं पलभा ४ छायया भाज्यमित्यत्रापि छाया साध्या । शंकुकोटी दृग्ज्या भुजो द्वादशकोटौ क इति जाता छाया । अनया भाज्यमाने छेदांशविपर्यासे दृग्ज्या द्वादश च हरः शंकुः पलभा चतुर्विंशतिमितत्रिज्या च गुणः । अतो गुणघातो गुणः ९६ । गुणहरयोर्गुणेनापवर्तितयोर्जातोगुणः ८ । नतांशापमो हरः । इदं फलं सदा दक्षिणम् । पलभाया दक्षिणत्वात् । अतोऽत्र यन्त्रांशापम एव द्युमानखगुणान्तरेण संस्कृतो यतस्तस्यापि तौ गुणहरौ वर्त्तेते अतः फलसंस्कृतिरेवाष्टभिगुण्या नतांशापमेन भाज्येत्युपपन्नं यन्त्रांशहीननवत्यंशापम एव नतांशापम इति प्रत्यक्षं सिद्धम् । अत्र पूर्वफलस्याग्रासंज्ञस्योत्तरदक्षिणोपपत्तिर्यथा । दक्षिणगोलेऽग्रा दक्षिणा तत्र दिनं त्रिंशदल्पम् । तथोत्तरगोले उत्तराग्रा तत्र दिनं त्रिंशदधिकम् । अतो दिनेऽल्पाधिके अपागुदगित्युपपन्नम् । एवमत्रोत्पन्ना दिग्ज्या तस्या धनुर्दिगंशाः स्युरतो हि ततो भुजलवा दिगंशा इत्युक्तम् ॥२३॥

विश्वनाथः

अथ प्रकारान्तरेण दिक्साधनार्थं दिगंशसाधनमाह । द्युमानेति । दिनमानम् ३३।६ । खगुणाः ३० । अनयोरन्तरम् ३।६ । शिव-११ गुणम् ३४।६ । दिनमानस्य त्रिंशतोऽधिकत्वादुत्तरम् । यन्त्रभागा उत्तराः ५५।४५।४८ । एषां यन्त्रभागानामपमः कार्यः । स अनुदक् दक्षिण इत्यर्थः । यन्त्रभागानां ५५।४५।४८ । लघुखराडकैः क्रान्तिर्दक्षिणा १९।५२।१३ । उभयोः संस्कृतिर्भिन्नदिक्त्वादन्तरम् १४।१३।४७ । अष्टभि-८ गुँणितम् ११३।५०।१६ । नवतिः ९० । यन्त्रभागाः ५५।४५।४८ । अतयोरन्तरम् ३४। १४।१२ । अस्य लघुखराडकैः क्रान्तिः १३।२४।४४ । अनेन वसुघ्नी भक्ता फलम् ८।२९।१५ । अस्मात् ततो दलानि शोधयेदित्यादिना साधिता भुजांशा जाता दिगंशाः २१।१३ ॥२३॥

केदारदत्तः

दिनमान और ३० के अन्तर को ११ से गुणा करने पर, ३० से गुणनफल यदि ३० से अल्प या अधिक जैसा हो तदनुसार उक्त गुणनफल क्रमशः दक्षिण और उत्तर दिशा का होता है। तथा यन्त्रांशोत्पन्न क्रान्ति की दिशा सदा दक्षिण की होती है। उक्त दोनों के (एक दिशा में अन्तर भिन्न दिशाओं में योग) संस्कार को ८ से गुणा कर गुणनफल में, ९० और यन्त्रांशोत्पन्न क्रान्ति के अन्तर से भाग लेने से उपलब्ध फल के भुजांशों का नाम दिगंश होता है ।

उदाहरण—दिनमान = ३३।६ लौर ३० का अन्तर = ३६ को ११ से गुणा करने से ३४।६ दिनमान से अधिक है उत्तर दिशा का हुआ। यन्त्रांश ५५°।४५'।४८" से लघुखण्डीय क्रान्ति = १९।५२।१५ दक्षिण दिशा की होती है। दोनों की भिन्न दिशा होने से संस्कार (अन्तर में) १४।१३।४७ को ८ से गुणा करने से ११३।५०।१६ होता है। तथा ९० − यन्त्राजोन्नतांश=५५।४५।४८ का अन्तर = ३४।१४।१२ से लघुखण्डीय क्रान्ति = १३।२४।४४ से उक्त गुणनफल = ११३।५०।१६ में भाग देने से ८।२९।१५ होता है। अतः ८°।२९'।१५' से ततोदलालि शोधयेत् श्लोक से भुजांश = २१।१३।३०=दिगंशमान सिद्ध होता है ॥२३॥

उपपत्तिः—प्रायः मध्य भारत के धरातलीय देशों में पलभा का मान लगभग ४ अंगुल तुल्य होने से आचार्य ने पलभामान = ४ माना है। त्रिज्या = १२०, अग्रा = अग्रा, शंकुतल = शं० त०। और स्थल विशेष पर त्रि=२४ यतः भुज=अग्रा±शं०त०, $\frac{\text{भुज}}{\text{दृग्ज्या}} = \frac{\text{दिग्ज्या}}{\text{त्रि}}$,

$\frac{\text{भु} \times २४}{\text{दृग्ज्या}}$ = दिग्ज्या = (अग्रा ±शंत) $\frac{२४}{\text{दृग्ज्या}}$ = (अ) अक्षक्षेत्रानुपात से, $\frac{\text{पलभा} \times \text{शंकु}}{१२}$

$= \frac{४ \text{ शंकु}}{१२} = \frac{\text{शंकु}}{\frac{१२}{४}} = \frac{\text{शंकु}}{३}$ = क। पलकर्ण वर्ग = १४४ + पलभा^{२} = १४४ + १६ =

$\sqrt{१६०}$ = १३ (स्वल्पान्तर से) चरघटी = दिनार्ध १५। ∴ २ चरघटी = दिनमान ३०= अन्तर ∴ चरघटी × ६० × २ = २ × चरपल = ६० × अन्तर।

∴ चरपल = ३० × अन्तर। श्लोक १४ के अनुसार—

$$\frac{\text{चरपल} + \frac{\text{चरपल}}{८}}{\text{पलभा}} = \frac{३० \times \text{अन्तर} + \frac{\text{अन्तर} \times ३०}{८}}{\text{पलभा}} = \frac{३० \left(\text{अन्तर} + \frac{\text{अन्तर}}{८}\right)}{४}$$

$= \frac{३० \times ९ \times \text{अन्तर}}{४ \times ८}$। यदि १° ज्या = $\frac{७२}{३५}$ तो क्रान्त्यंशों की ज्या, क्रां० ज्या

$= \frac{\text{अन्तर} \times ३० \times ९}{४ \times ८} \times \frac{७२}{३५} = \frac{\text{अन्तर} \times १५ \times ९ \times ९}{२ \times ३५} = \frac{२४३ \times \text{अन्तर}}{१४}$। अक्षक्षेत्रानुपात

से अग्रा = $\frac{\text{पलकर्ण} \times \text{क्रां ज्या}}{१२} = \frac{१३}{१२} \times \frac{(\text{अन्तर} \times २४३)}{१४} = \frac{१३}{४} \times \frac{\text{अन्तर} \times ८१}{१४}$

$= \frac{१०५३ \times \text{अन्तर}}{५६} = \frac{५२१ \times \text{अन्तर}}{२८}$। ∵पुनः अनुपात से १२० त्रिज्या में उक्त अग्रा तो

२४ त्रिज्या में, अग्रा = $\frac{५२१ \times \text{अन्तर} \times २४}{२८ \times १२०} = \frac{\text{अन्तर} \times ५२१}{१४०}$ = ल। समीकरण अ में

समीकरण क और ल से उत्थापन देने से $=\left(\frac{\text{अन्तर}\times ५२१}{१४०}\pm\frac{\text{शंकु}}{३}\right)\frac{२४}{\text{दृग्ज्या}}$

$=\left(\frac{\text{अन्तर}\times १५६३}{१४०}\pm\text{शंकुतल}\right)\frac{८}{\text{दृग्ज्या}}=(\text{अन्तर}\times ११\pm\text{शंकु})\ \frac{८}{\text{दृग्ज्या}}$ ।

$\because$ दृग्ज्या = (९० − यन्त्रजोन्नतांश) ज्या $\therefore$ दिग्ज्या = (अन्तर × ११ ± शंकु

$\times\ \frac{८}{(९० - \text{यन्त्रजोन्नतांश})\ \text{ज्या}}$ इसका चाप = दिगंशा उपपन्न होते हैं ।।२३।।

समभुवि निहिते तुरीययन्त्रे
स्पृशति यथा च दिगंशकाग्रकेद्रे ।
अवलम्ब विभोत केन्द्रसंस्थे-
षीकाभाथ दिशोऽत्र यन्त्रगाः स्युः ।।२४।।

मल्लारिः

अथ तैर्दिगंशैर्यन्त्रात् कथं दिक्साधनं भवति तदाह । जलवत्समीकृतायां भूमौ तुरीयन्त्रे निहिते स्थापिते दिगंशा यावन्तः स्युस्तदग्रचिन्हमेव केन्द्रं तस्मिन् अवलम्बकस्य विभा छाया तदुत्थकेन्द्रसंस्थाया ईषीकायाश्छाया यथा स्पृशति तथा यन्त्रे साधिते सति तुरीययंत्रदिगंशकाग्रकेन्द्रोपरि यो रज्जुः सा पूर्वापरा । तन्मत्स्याद्याम्योत्तरे भवतः । अत उक्तं यन्त्रगा दिशः स्युरिति ।।२४।।

विश्वनाथः

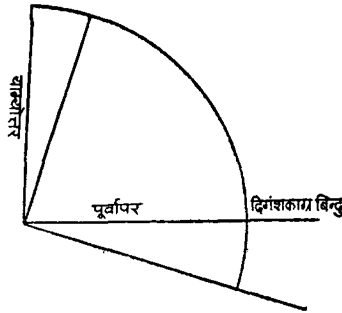
अथ दिगंशेभ्यो दिक्साधनमाह । समभुवी ति । जलवत्समीकृताथां भूमौ तुरोययन्त्रे त्रिकोणयन्त्रे निहिते स्थापिते सति पूर्वोक्तदिगंशकान् क्षितिजात् विगणय्य तेषामग्रं तदेव केन्द्रं तस्मिन्नवलम्बस्य विभा छाया अथवा केन्द्रस्थिताया इषीकायाश्छाया यथा स्पृशति तथा यन्त्रे दिशः स्युरेवं स्थापिते यन्त्रे पूर्वापरा स्यात् तस्या याम्योत्तरे भवतः ।।२४।।

केदारदत्तः

पूर्वसाधित दिगंशों का उपयोग कैसे किया जाता है ? एक वृत्त चतुर्थांश की आकृति का यन्त्र जिसका नाम तुरीय यन्त्र है उसका निर्माण कर उसे समतल भूमि में रखकर अंशों से चिन्हित करना चाहिए । उसको साधारण पूर्वापर स्थिति में रखकर पूर्व विन्दु से दिगंश तुल्य चिन्ह को ऐसे स्थापित करना चाहिए उसके केन्द्र विन्दुगत शंकु की छाया तुरीय यन्त्र के केन्द्र और दिगंश के अग्रविन्दु पर जिस प्रकार स्पर्श करे, इस प्रकार तुरीय यन्त्र को समान भूमि में स्थापित करने से उसके दोनों भुजाओं में छाया स्पार्शिक विन्दुगत भुजा पूर्वापर और दूसरी भुजा याम्योत्तर हो जाती है ।।२४।।

उपपत्ति—खमध्य और ग्रह विम्बोपरिगत क्षितिज संसक्त वृत्त का नाम दृग्वृत्त है। दृग्वृत्त और क्षितिजवृत्त के पूर्वापर सम्पात विन्दुओं पर गई रेखा का नाम दृक्कुज सूत्र कहा जाता है। ग्रहबिम्ब की छाया दृक्कुज सूत्र पर ही पड़ती है। अतः तुरीय यन्त्र में भी दिगंश विन्दु ही तुरीय यन्त्र के केन्द्र व दिगंशकाग्र दोनों विन्दुओं को स्पर्श करती हुई छाया में यन्त्रीय भुज ही पूर्वापर रूप हो जाता है। पूर्वापर रेखा पर लम्ब रूप द्वितीय रेखा याम्योत्तर रेखा हो जाती है।

क्षेत्र देखिए



क्रान्तिः स्फुटाभिमतकर्णगुणाक्षकर्ण-
निघ्नी खखाद्रि-७०० हृदपक्रमादिग्भुजः स्यात्।
संस्कारितो यमदिशाक्षभया स्फुटोऽसौ
तद्वर्गभाकृतिवियोगपदं च कोटिः ॥२५॥

मल्लारिः

अथ नलिकाबन्धनार्थं भुजसाधनमाह। यस्य ग्रहस्य नलिकाबन्धः क्रियते तस्य क्रान्तिः स्वशरेण संस्कृता सती स्पष्टा कार्या सा क्रान्तिरिष्टकर्णेन गुण्या रात्रौ यासु घटीषु नलिकाबन्धः क्रियते तद्घटीभ्यश्छायेष्टकर्णयन्त्रभागग्रहद्युगतादिसाध्यम्। तत्साधनमाचार्येणाग्रे प्रोक्तमस्ति। ततः सेष्टकर्णगुणा क्रान्तिरक्षकर्णगुणा सती खखाद्रिहृत्। अपक्रमदिक् स्पष्टक्रान्तेर्या दिक् तदिग्भुजो भवति स मध्यमः। यमदिशा दक्षिणदिशा। अक्षभयाऽसौ संस्कृतः स्यात्। तस्य भुजस्य यो वर्गो भायाश्छायाया यो वर्गस्तयोर्वियोगान्तरं तस्य पदं मूलं कोटिः स्यात् अत्र भुजस्योपपत्तिः पूर्वमेव प्रतिपादितास्ति तत्र द्विगुणः कृतोऽस्ति अत्रैकगुण्योऽतो हरो द्विगुणः पठितः एकगुणया पलभया संस्कार्यः॥

अथ कोटेरुपपत्तिः दक्षिणोत्तरो भुजः। छायैव कर्णः: यो हि भुजश्छायावृत्त-स्थोऽतो दोः कर्णवर्गयोर्विवरान्मूलं कोटिरिति ॥२५॥

विश्वनाथः

अथ नृपसभायां स्वकौशल्यदर्शनार्थं नलिकाबन्धार्थं भुजकोटिसाधनमाह। क्रान्तिरिति। यस्य ग्रहस्य नलिकाबन्धः क्रियते स ग्रहो वक्ष्यमाणदृक्कर्मसंस्कृतः कार्यः। तस्य वक्ष्यमाणशरसंस्कृता स्फुटा क्रान्तिः कार्या सा इष्टकर्णेन गुण्या। एतदुक्तं भवति। ग्रहछायाधिकारोक्तप्राग्दृष्टिकर्मखचरेत्यादिना ग्रहस्य दिनगतः कालो भवति। जिनाप्तोक्षाभा इत्यादिना स्फुटचरादिनमानं साध्यम्। ग्रहस्फुटक्रान्तेरुक्तवत् क्रान्त्यक्षजसंकृतिवित्यादिनोन्नतपरः कार्यः। ग्रहद्युयातादुक्तवद्यातः शेष इत्यादिनोन्नतं कार्यम्। तस्मादुन्नतात् नवगुणितमिष्टमुन्नतमित्यादिनेष्टकर्णस्साध्यः। एवं सिद्धेष्टकर्णेन फुटक्रान्तिर्गुणनीया।

अस्योदाहरणम्। संवत् १६६९ शके १५३४ वैशाखशुक्लपौर्णिमा १५ सोमे सूर्योदयाद्गतघटीषु ५७ भौमस्य नलिकाबन्धः क्रियन्ते। तत्र प्रागानीतः प्रातर्मध्यमो रविः १।४।१३।४२। गतिः ५९।८। भौमः ९।२९।५५।१३। गतिः ३१।२६। इष्टघटीभिः ५७ चालितो रविः १।५।९।५२। भौमः १०।०।२५।४॥

अथः स्पष्टीकरणं रवेर्मन्दकेन्द्रम् १।१२।५०।८। मन्दफलं धनम् १।२८।५५। संस्कृतो रविः १।६।३८।४७। चरमृणम् ९५। संस्कृतः स्पष्टोऽर्कः १।६।३७।१२। भौमस्य शीघ्रकेन्द्रम् ३।४।४४।४८। शीघ्रफलार्धं धनम् १६।५२।५८। संस्कृतो भौमः १०।१७।१८।२। मन्दकेन्द्रम् ५।१२।४१।५८। मन्दफलं धनम्। ३।१९।४५ मन्दफलसंस्कृतो भौमः १०।३।४४।४९। शीघ्रकेन्द्रम् ३।१।२५।३। शीघ्रफलं धनम् ३२।५२।४०। स्पष्टो भौमः ११।६।३७।२९॥

अथ दृक्कर्मसाधनम्। तत्र कुद्वीत्यादिना कर्णः ११।४८।४०। मन्दस्पष्टखगादित्यादिना क्रान्तिर्दक्षिणा २३।४४।५९। अंगुलाद्यः शरो दक्षिणः ४६।१४।३४ प्राक् त्रिभण वर्जितेत्यादिना राशित्रयरहिताद्भौमात् ८।६।३७।२९ क्रान्तिर्दक्षिणा २३।४७।२९। अक्षांशा दक्षिणाः २५।२६।४२। अनयोः संस्कारे जाता नतांशा दक्षिणाः ४९।१४।११। षट्शैलाष्ट इत्यादिना दृक्कर्मकला धनम् ११८।४४। सत्संस्कृतो भौमः ११।८।३६।१३। अस्मात् क्रान्तिर्दक्षिणा १।१७।३०। शरसंकृता जातास्पष्टा क्रान्तिर्दक्षिणा ३।१।३३। इघष्टयः ५७ दिनमानम्। ३३।१० रविभोग्यकालः ५९। लग्नम् ०।१५।२३।२१। लग्नभुक्तम् ३० दृक्कर्मदत्तभौमस्य भोग्यकालः १८। प्राग्दृष्टिकर्म इत्यादिना भौमस्य दिनगतकालः ४।२९। दृक्कर्मदत्तभौमाच्चरं दक्षिणम् ६। जिनाप्रोऽक्षभाघ्न इत्यादिना फलं दक्षिणम् ८। स्पष्टं चरं दक्षिणम् १४। दिनमानं २९।३२। स्पष्टाक्रान्तेरुक्तवत्क्रान्त्यक्षजसंस्कृतिरित्यानिना नतांशाः २८।२८।१५ उन्नतांशाः ६१।३१।४५ अस्मात् पराख्यः २१।१२।१४। ग्रहद्युयातात् ४।२९ उक्तवद्यातः शेष इत्यादिना उन्नतम् ४।२९ अस्मान्नवतिगुणितमिष्टमुन्नतनित्यादिना इष्टकर्णः साध्यते उन्नतम् ४।२९ नवत्या ९० गुणितं ४०३।३० दिनार्धेन १४।४६ भक्तं फलं भागाः

२७।१९।३७ अस्मात्क्रान्तिः १०।४२।३६ पराख्येन २१।१२।१४ गुणिता २२७।५।३७ अनेन रविनवषड्-६९१२ भक्ताः फलमिष्टकर्णः ३०।२६ एवं सिद्धेष्टकर्णेन ३०।२६ स्पष्टाक्रान्तिः ३।१।३३ गुणिता ९२।५।१० अक्षकर्णेन १३।१९ निघ्नी १२२६।१६।४८ खखाद्रि-७०० हृज्जातो भुजः २।४५ क्रान्तेर्दक्षिणत्वाद्दक्षिणोऽसौ भुजो दक्षिणाक्षभया ५।४५। संस्कारितो जातः स्पष्टो भुजः ७।३० तस्य भुजस्य वर्गः कार्यः। कष्टकर्णात् कर्णार्कवर्गविवरात् पदमित्यानिनेष्टच्छाका कार्या। अस्या वर्गः कार्यः। तयोर्वर्गयोरन्तरात् पदं मूलं सा कोटिः स्यात्। भुजवर्गः ५६।१५ इष्टकर्णः ३०।२३ अस्य वर्गः ९२।६।११ अर्क–१२ वर्गः १४४। अनयोरन्तरान्मूलं जाता इष्टच्छाया २७।२५ छायावर्गः ७८२।८ भुजवर्गच्छायावर्गयोरन्तरम् ७२५।५३ अस्य मूलं जाता कोटिः २६।५६।० ॥२५॥

केदारदत्तः

शर संस्कृत मध्यमा क्रान्गि का नाम स्पष्टा क्रान्ति है। शर ज्ञान के लिए इस ग्रन्थ का आगे का छायाधिकार दृष्टव्य होगा। जिस ग्रह को आकाश में देखना है उस ग्रह की स्पष्टा क्रान्ति को इष्ट कर्ण से गुणाकर पुनः उसे पल कर्ण से गुणा फर गुणनफल में ७०० का भाग देने से लब्धि = भुज जो क्रान्ति की दिशा का होता है। इस भुज में दक्षिण दिशा की पलभा के साथ संस्कार करने से स्पष्ट भुज होता है। छाया के वर्ग में स्पष्ट भुज का वर्ग कम कर मूल लेने से कोटिमान (स्पष्टा कोटि) होता है ॥२५॥

उदाहरण:—ग्रह की दक्षिणा स्पष्ट क्रान्ति = ३।१।३३ इष्ट कर्ण = ३०।२६ अक्षकर्ण = १३।१९ पलभा = ५।४५ स्पष्ट क्रान्ति ३।१।३३ को इष्ट कर्ण ३०।२६ से गुणा कर ९२।५।१० होता है। इसमें पल कर्ण से १३।१९ से गुणा कर देने के १३२६।१६।४८ होता है। इसमें ७०० का भाग देने से लब्ध फल = १।४५ यह भुज होता है। क्रान्ति दक्षिण होने से यह भुज दक्षिण दिशा का होता है। पलभा भी दक्षिण है अतः दोनों का योग = ७।३० के तुल्य स्पष्ट भुज होता है। तथा कर्ण ३०।२६ के वर्ग ९२६।११ में १२ का वर्ग = १४४ घटा कर मूल लेने से छाया = २७।२५ होती है। छाया का वर्ग ७८२।० में स्पष्ट भुज = ७।३० का वर्ग = ५६।१५ को घटा देने से शेष = ७२५।५३ होता है। ७२५।५३ का पूर्वोक्त षष्टि वर्ग गुणादङ्कात् से सूक्ष्म मूल लेने से २५।५६ = स्पष्ट कोटि होती है ॥२५॥

(सुबुद्ध श्री विश्वनाथ की व्याख्या के उक्त उदाहरण में, इसी ग्रन्थ के ग्रहोदयास्ताधिकार के श्लोक १७ में यह छायाधिकार के श्लोक १, २, तथा श्लोक ४ दृष्टव्य हैं)।

उपपत्तिः—२२ वें श्लोक की उक्ति से पूर्णज्या रूप द्विगुणित भुज = २ × भुज = $\frac{\text{क्रान्ति ज्या} \times \text{इष्टकर्ण} \times \text{पलकर्ण}}{३५०} \pm २ \times \text{पलभा}$। ∴ भुज = $\frac{\text{क्रान्ति} \times \text{इष्टकर्ण} \times \text{पलकर्ण}}{३५० \times २}$

पलभा। = $\frac{\text{क्रान्ति} \times \text{इष्टकर्ण} \times \text{पलकर्ण}}{७००} \pm$ पलभा। यतः भुज ± पलभा = स्पस्टभुज!

$\therefore$ स्पष्टभुज = $\frac{\text{क्रान्ति} \times \text{इष्टकर्ण} \times \text{पलकर्ण}}{७००}$ ± पलभा। भुज और कर्ण के वर्गों का अन्तर का मूल = कोटि होती है। स्पष्ट है ॥२५॥

ज्ञात्वाऽऽशाः परखेचरे परमुखीं प्राक्खेचरे प्राङ्मुखीं
बिन्दोः कोटिमतो भुजं स्वदिशि तन्मध्ये प्रभां विन्यसेत्।
बिन्दोर्भाग्रगशंकुमस्तकगते सूत्रे नले खे खगं
के बिन्दुस्थनराग्रभाग्रकगते सूत्रे नले लोकयेत् ॥२६॥

मल्लारिः

अथ भुजकोटिकर्णनलिकासंस्थानमाह। आशा दिशो ज्ञात्वा पूर्वोक्तवज्जलसमीकृतभूमौ दिक्साधनं कृत्वा तत्रेष्टकालीनच्छायाव्यासार्धेन वृत्तं कृत्वा तत्र दिक्चिह्नानि कार्याणि। ततो बिन्दोर्वृत्तमध्यात परखेचरे खमध्यात् पश्चिमकपालस्थे ग्रहे परमुखीं पश्चिमाभिमुखीं कोटिं तथागतां दद्यात्। प्राक्खेचरे पूर्वकपालस्थे ग्रहे प्राङ्मुखीं कोटिं बिन्दोरेव दद्यात्। अतः कोट्यन्तात् स्वदिशि भुजं दद्यात्। छायां विन्यसेत् केन्द्रादारभ्य भुजान्ताग्रपर्यन्तं छाया प्रसार्या स एव कर्णः। एवं जातं त्र्यस्रं क्षेत्रम्,

अथ नलिकानिवेशमाह बिन्दोरिति। बिन्दोर्वृत्तमध्याद्भाग्रे गच्छति स तथा एवं भूतो यः शंकुः। भुजान्तच्छायान्तसंयोगे द्वादशांगुलः शंकुः स्थाप्यः। तथा केन्द्रे कीलकण्टकादिबद्धं सूत्रं भूलग्नं कृत्वा तत्सूत्रं तच्छङ्कोर्मस्तकोपरि नीत्वा तेनैव ऋजुमार्गेणाग्रादूर्ध्वं नयेत्। तत्र सूत्रे नलो निवेश्यः। तस्य द्वौ वंशौ आधारभूतौ कार्यौ। नलो नामान्तः सुषिरं वंशनालं तस्मिन् नले यत्कालीनं भुजादि कृतं तद्घटीषु मूलमध्यस्थदृष्ट्या खे आकाशे खगं ग्रहं विलोकयेत्। एवं विलोक्यमाने तस्मिन् नलमध्ये स चेत् ग्रहो नावलोक्यते तदा स ग्रहो न घटते तत्रान्तरमपि लक्ष्यम्। एवमनयैव युक्त्याऽऽचार्येण सर्वग्रहाणां नलिकाबन्धं विधाय अन्तराणि ज्ञात्वा ग्रहसाधनं कृतम्।

अथ जले ग्रहदर्शनार्थं नलिकानिवेशमाह क इति। उदके ग्रहं विलोकयेत् तद्यथा। अत्र शंकुः केन्द्रे स्थाप्यः। तच्छङ्कगात् सूत्रं भाग्रपर्यन्तमधो नयेत्। तत्सूत्रे नलः स्थाप्यः। ततश्छायाग्रस्थाने जलपूर्णपात्रं स्थाप्यम्। तत्र मध्येऽधोदृष्ट्या जले ग्रहो विलोक्यः। अत्रेदं सर्वदिक्साधननलिकानिवेशादि कृत्वा ततस्तस्मिन्नेव काले विलोक्यमिति। उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ।

दर्शयेद्दिविचरं दिवि के वाऽनेहसि द्युचरदर्शनयोग्ये।
पूर्वमेव विरचय्य यथोक्तं रञ्जनाय सुजनस्य नृपस्य॥

अस्योपपत्तिः। प्रत्यक्षसिद्धार्थत एव ज्ञायते। इदं दिक्साधननलिकाबन्धादि नान्यकरणेष्वस्ति। आचार्येण राज्ञां चमत्कारदर्शनार्थं स्वकृतग्रहघटनार्थं कृतमिति।

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन ।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाधवे त्रिप्रश्नाधिकारः परिपूर्त्तिमागात् ॥२६॥

इति श्रीमद्गणेशदैवज्ञकृत ग्रहलाधवस्य टीकायां मल्लारिदैवज्ञविरचितायां लग्नादिच्छायायन्त्रभागदिक्साधननलिकाबन्धाधिकारश्चतुर्थः ॥४॥

विश्वनाथः

अथ नलिकाबन्धमाह ज्ञात्वेति । आशा दिशो ज्ञात्वा जलवत्समीकृतभूमौ दिक्साधनं कृत्वा तत्रेष्टकालीनच्छायाव्यासार्धेन वृत्तं कृत्वा तत्र दिक्चिह्नानि कार्याणि । ततो बिदोर्वृत्तमध्यात् परखेचरे पश्चिमकपालस्थे ग्रहे परमुखीं पश्चिमाभिमुखीं कोटिं न्यसेत् । प्राक्खेचरे पूर्वकपालस्थे ग्रहे प्राङ्मुखीं कोटिं न्यसेत् । कोट्यग्रतः स्वदिशि ज्यावत् भुजकोट्योर्मध्ये तिर्यक् प्रभां छायां न्यसेत् । स एव कर्णः । एवं जातं त्र्यस्रं क्षेत्रम् । बिन्दोर्भाग्रगते सूत्रे नले खे खगं विलोकयेत् । एतदुक्तं भवति । छायाग्रे द्वादशांगुलः शंकुः स्थाप्यः । तस्य मस्तकस्थबिन्दोर्वृत्तमध्यात् गते सूत्रे यष्टिद्वयाभ्यां स्थिरीकृते सूत्रगते नले. नलिकायां यत्कालीनं भुजादि कृतं तद्घटीषु मूलस्थदृष्ट्या खे आकाशे ग्रहं विलोकयेदित्यर्थः ।

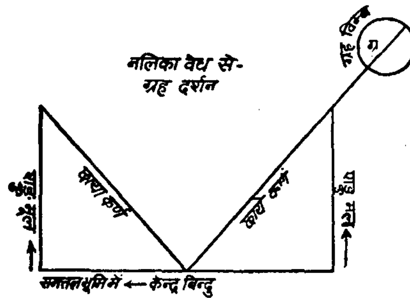
अथ जले ग्रहदर्शनार्थं नलिकानिवेशमाह क इति । बिन्दुस्थनराग्रभाग्रकगते सूत्रे के खगं विलोकयेत् । तद्यथा । यत्र शंकुः स्थाप्यस्तच्छङ्क्वग्रात् सूत्रं शङ्क्वग्राच्छायाग्रपर्यन्तमधो नयेत् । तत्सूत्रे नलः स्थाप्यः । तत्र छायाग्रस्थाने जलपूर्णपात्रं स्थाप्यम् । तत्र जलमध्येऽधोदृष्ट्या ग्रहो विलोक्यः । अत्रेदं सर्वदिक्साधन नलिकानिवेशादि कृत्वा ततस्तस्मिन्नेव काले विलोक्यमिति इदं यथोक्तं विचार्य सुजनस्य नृपस्य रञ्जनाथ दर्शयेत् ॥२६॥

इति श्री दिवाकरदैवज्ञात्मज विश्वनाथदैवज्ञ विरचितेग्रहलाघवस्य
लग्नादिच्छायधिकारोदाहृतिः ॥४॥

केदारदत्तः

पहिले पूर्व, पश्चिम अग्नि, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायु, उत्तर और ईशान दिशाओं का ज्ञान आवश्यक है । उदय विन्दु से मध्यान्ह तक पूर्वकपाल एवं मध्यान्ह से अस्त तक पश्चिम परकपाल होता है । पश्चिम कपालीय ग्रह में केन्द्र विन्दु से पश्चिम पूर्वकपालीय ग्रह में केन्द्र विन्दु से पूर्वाभिमुख पूर्वापर रेखा में कोटि के मान की तुल्य दूरी पर विन्दु नियत करना चाहिए । कोटि के अग्रविन्दु से उक्त श्लोक २६ में जो ग्रह का स्पष्ट भुज (अगुलादिक) जो आया है उतनी दूरी में दक्षिण या उत्तर जैसा हो भुज का दान देकर भुजाग्र विन्दु का ज्ञान करना चाहिये । भुजाग्र और कोटि अग्र विन्दुओं को मिला देने से जो रेखा होती है वह छाया होती है । केन्द्र विन्दु से छाया के अग्र और केन्द्र विन्दु स्थित शंकु के मस्तक तक सूत्र बाँधकर सूत्र के आधार से छायाग्र शंकु के मस्तक से वर्धित छिद्र युक्त बांस या अन्य कोई नलिकाग्र से आकाश में ग्रह विम्ब दर्शनीय होता है । अथवा शंकु के शिर से

छायाग्र विन्दु पर स्थापित जल में शंकु के अग्र में खड़ा होकर छिद्रयुक्त नलिका से जल में ग्रह दर्शन होगा ।।२६।। क्षेत्र देखिए—



उपपत्तिः—पूर्वकपालीय ग्रह के लिए केन्द्र से पूर्व, पश्चिम कपालीय ग्रह में केन्द्र से पश्चिमाभिमुख कोटि देना समीचीन है। पूर्वसाधित भुजकोटियों का वर्ग योग मूल छाया होती है। भुज = छाया। शंकु = कोटि, छाया शंकु वर्ग योग मूल = छाया कर्ण इस प्रकार से समकोण त्रिभुज होता है।

ग्रह विम्ब से शंकु द्वारा शंकु की छाया अभीष्ट समय में छायाकर्ण संसक्त केन्द्र विन्दु में पड़ती है अतः केन्द्रस्थ दृष्टि से नलिका छिद्र से शंकु मस्तक गत ग्रह का दर्शन होगा ही अथवा शंकु मस्तकगत दृष्टि से छायाग्रगत जल पात्रस्थ ग्रहविम्ब के प्रतिविम्ब को छाया कर्ण संसक्त नलिका छिद्र से जल में ग्रह का प्रतिविम्ब का दर्शन होगा ही ।।२६।।

कूर्माद्रि प्रसिद्ध अल्मोड़ा मण्डलान्तर्गत जुनायल ग्रामजं श्री पूज १०८ पं० हरिदत्त ज्योतिर्विदात्मज श्री केदारदत्त जोशी, वर्तमान नलगाँव काशीस्थ, कृत ग्रह-लाघव ग्रन्थ के चतुर्थ अधिकार में श्री केदारदत्तीय व्याख्यान व उपपत्ति सुसम्पन्न हुई ।।४।।

अथ चन्द्रग्रहणाधिकारः

गतगम्यादिनाहतद्युभुक्तेः खरसाप्तांशवियुग्युतो ग्रहः स्यात् ।
तत्कालभवस्तथाघटीघ्न्याः खरसैर्लब्धकलोनसंयुतः स्यात् ॥१॥

मल्लारिः

तत्रेदं चिन्त्यते ननु किं नाम ग्रहणम्, गृह्यतेऽनेनेति ग्रहणं योऽयं ग्रहीतुमिच्छति स तं प्रति यदा गच्छेत् तदैव ग्रहणम् । अतो ग्राह्यग्राहकयोर्योगो ग्रहणम् । योगो नामान्तराभावः । अतो ग्राह्यग्राहकयोरन्तराभावो ग्रहणमिति ।

अस्ति ग्रहाणा गतिः षोढा पूर्वापरायाम्योत्तरोर्ध्वाधराचेति । तत्र किं पूर्वापरयाम्योत्तरोर्ध्वाधरान्तराणामभावो ग्रहणम् । किं वा पूर्वापरयाम्योत्तरान्तराभावो ग्रहणम् किं बा पूर्वापरोर्ध्वाधरान्तराभावो ग्रहणम् । वा पूर्वापरान्तराभावो ग्रहणम् । उत याम्योत्तरान्तराभावो ग्रहणम् । किमुत ऊर्ध्वाधराभावो ग्रहणम् । अत्रोच्यते । ग्रहकक्षयोर्महदन्तरस्य विद्यमानत्वादग्राह्यग्राहकयोरूर्ध्वाधरान्तराभावः कल्पान्तेऽपि न स्यात् । अथ प्रथमतृतीय षस्ठा पक्षा न सुन्दराः । अथ वक्तव्यं पूर्वापरयाम्योत्तरान्तराभावो ग्रहणमिति सापि संज्ञा न घटते यतो हि विद्यमाने शर तुल्ये दक्षिणोत्तरान्तरे ग्रहणम् भवत्येव । अनेन हेतुना द्वितीयपञ्चमपक्षौ न शोभनौ ।

अथ वक्तव्यं पूर्वपरान्तराभावो ग्रहणम् तत्र प्रतिपर्वणि ग्राह्यग्राहकयोः पूर्वापरान्तराभावोऽस्त्येव न प्रतिपर्वणि ग्रहणं भवति । अतो नापि चतुर्थः पक्षः शोभनः । तत्र किं नाम ग्रहणमिति मन्दमतयोऽत्र मुह्यन्ति । अत्रोच्यते । पूर्वापरान्तराभावे मानैक्यखण्डादूने शरे ग्रहणं मानैक्यखण्डतुल्ये शरे बिम्बप्रान्तयोः संयोग मात्रं भवति यथा यथा मानैक्यखण्डाच्छरो न्यूनोभवति तथा तथा ग्राह्यबिम्वं ग्राहकबिम्बेप्रविशति तावानेव ग्रासः । एवं सत्यपि ऊर्ध्वाधरान्तरे ग्रहणम् । तत्र हेतुः । अस्मदादिदृष्टेरावरणीभूतत्वं तावद्ग्रहणकर्तृत्वं न तु ग्राह्यग्राहकयोर्बिम्बसंयोगः अहो आस्तां तावदनेन विचारेण । यतः प्रथमं सूर्यचन्द्रयोर्ग्राह्यग्राहकयोः को वा ग्राहक इति न ज्ञायते । अत्रोच्यते । अत्रसूर्यचन्द्रग्रहणे राहुरेव कारणीभूतः । यतो राहुर्नाम पातः । पातवशाच्छरः । शखशादेव ग्रहणमतोऽयश्यं ग्रहणे राहुर्हेतुभूतः । अत्र 'ग्रहणे कमलासनानुभात्रात्' । 'राहुग्रस्ते दिवाकरे निशाकरे चे'ति स्मृतिवाक्यपर्यालोचनेन च राहुरेव सूर्यचन्द्रग्रहणयोर्ग्राहकं इति पूर्वपक्षः अत्र वयं तु ब्रूमः । ननु राहोग्रहणकर्तृत्वे प्रोच्यमाने राहुणा सूर्यचन्द्र तुल्यैर्न भवितब्यम् । यतः पूर्वापरान्तराभावं विना ग्रहणं वक्तुं न शक्यते । नात्रग्रहणं राहुणा सह पूर्वापरान्तराभावो दृश्यते नातो ग्रहणे राहोर्ग्राहिकत्वमिति सिद्धान्तः । ननु पूर्वपक्षीत्याशङ्कते । अहो भवद्भिः ग्रहणे ग्राह्य-

गाहकयो पूर्वापरान्तराभाव एवोच्यते तदयुक्तम्। यते यथा ग्रहाणामस्ते भवंतः कालांशान्तरिते सूर्याद्ग्रहे सति ग्रहास्तादिरिति मन्मन्ते। तथैवास्माभिः सप्तभिर्द्वादशभिः कालांशैः सूर्यचन्द्राभ्यां यथाक्रममन्तरिते राहौ ग्रहणादिबिम्बसंयोगमात्रं मन्यते कालांशान्तराभावे परमं ग्रहणम्। यथा सूर्यग्रहान्तराभावे परमास्तमय उच्यते। एते कलांशा राहुवशेनैव मानैक्यखण्डतुल्यशरादुत्पन्ना युक्तियुक्ता एव सन्ति। अतोराहुणा ग्राहकेणकालांशान्तरितेन सूर्यचन्द्रौ ग्रस्येते इति युक्तिः कथं भवोच्चेतो न सहते। एवं चेत् तदाऽस्तेऽपि सूर्यग्रहयोः पूर्वापरान्तराभारमेव वदन्तु भवन्तो न कालांशान्तरे चेत् तत्र कालांशान्तरमङ्गीक्रियते तर्हि किमनेनापराद्धमिति ग्रहे प्रतिबन्धराहुरेव कारणमिति युक्तम्। सत्यम्। अहो भवतु राहुर्ग्रहणे कारणं परं तस्य राहोर्ग्राहिकस्य विम्वसिद्धिः कर्त्तव्या। तद्बिम्बं गगने नावलोक्यते। अत्र तु ऋजुत्रिज्यामितशलाकाभ्यां विम्बप्रान्तौवेध्यौ तन्मध्ये याः कलास्ता बिम्बकलाः। अनयैव युक्त्या सर्वेषां बिम्बानि साधितानि। अनेन विधिना राहोर्बिम्बं ज्ञातुं नैव शक्यतेऽदर्शनादेव। अतः सति कुड्ये चित्रमिति न्यायात् राहोर्ग्राहिकत्वं नैव सम्भवतीति सिद्धान्तः। अत्रोच्यते। अहो भवद्भो राहुबिम्बसाधनोपायादर्शनान्न तस्य ग्राहकत्वमुच्यते। तद्यथा। राहुश्चन्द्रकक्षायां क्रान्तिमण्डलविमण्डलसम्पातेऽस्ति। तत्र सूर्यग्रहणे सूर्यचन्द्रौ समकलौ।सूर्यात् सप्ताल्पेष्टकालांशान्तर एव राहुः स पुच्छादियुतो मुखपुच्छाकारो वर्तते। तस्य मुखं तु क्रान्तिविमण्डलसम्पाते नास्त्येव 'अमृतास्वादवेलायां छिन्नश्चक्रेण विष्णुने'ति स्मृतिवाक्यबलेन राहुमुखं सम्पातात् कालांशान्तरितमस्तीति कल्पनोयमेव। यतो यदाकाशे दृश्यते तदेव गणितेन सिद्ध्यतीति राहुमुखाभावाद् राहुमुखस्यानाज्ञानात् तस्य मुखहोनशरीरस्य सम्पातसंज्ञं स्थानमङ्गीकृतम्। ततस्तत् सम्पातात् कालांशान्तरे राहुशीर्षसम्पातात् कालांशातरे राहुशीर्षं सम्पातात् कालांशान्तरे चन्द्रश्च। सूर्यश्चन्द्रतुल्यः। अतः सूर्यस्य ग्राह्यस्य राहुणा ग्राहकेण सह पूर्वापरान्तराभावोऽप्यस्ति राहुशीर्षं तु चन्द्रबिम्बोपरि तत्समानमेव। एककक्षत्वात् तत्तुल्यत्वाच्च यच्चन्द्रबिम्बं श्यामं तदेव सूर्यग्रहणे सूर्यस्यावरणीभूतम्। तथा चन्द्रग्रहणे चन्द्रः षड्भान्तरे सूर्यात् भूछायाऽपि षड्भान्तरेण। चन्द्रभूछाये समाने। चन्द्राद्वृत्तसम्पात इप्टकालांशान्तरे सम्पाताद्राहुशीर्षमपि कालांशान्तरेऽतो राहुशीर्षं भूछायातुल्यम्। अत एव चन्दकक्षायां यावतीभूछायाविस्तृतिस्तावदेव राहुबिम्बम्। अतश्चन्द्रग्रहणेऽपि राहुबिम्बं भूभातुल्य चन्द्रस्यावरणीभूतम्। तयोः पूर्वापरान्तराभावोऽप्यस्ति। अतो बिम्बसिद्धिरपि वर्त्तत इति युक्तिबलादागमप्रामाण्याच्च राहुरेवावश्यं ग्रहणद्वयेऽपि कारणीभूतो वक्तव्य इति सिद्धम्। ननु सूर्यग्रहणे चन्द्रबिम्बतुल्यं राहुबिम्बं भवद्भिरुच्यते चन्द्रग्रहणे भूछायातुल्यं राहुबिम्बम्। इदं न घटते यत एककक्षास्थितस्य राहोर्बिम्बं कथं महान्तरितम्। चन्द्रविम्बाद भूछाया तु त्रिगुणितासन्ना। दूरस्थग्रहे विम्बं लघु गतिश्च लघ्वी। समीपस्थे ग्रहे विम्बं पृथु गतिश्च पृथ्वी। तत्र राहोर्गतिः सदा समैव। अतो विम्बलघुमहत्त्वं न स्यादेव।

अथ वक्तव्यं चन्द्रकक्षायां राहुः। यथा चन्द्रस्योर्ध्वाधरगमनेन विम्बलघुमहत्त्वं तथैव राहोरिति तदप्ययुक्तम् यतश्चन्द्रविम्बोर्ध्वाधरगमनवशेनैव यदास्यविम्बोनाधिक्यं स्यात् तदा सर्वदा सूर्यग्रहणेऽपि चन्द्रविम्बतुल्यमेव राहुविम्बं ताधिकं स्यात्। कथं चन्द्रग्रहणे भूछायातुल्यं राहुविम्बमुच्यते। अतस्तदसत् यदि ग्रहणद्वयेऽपि चन्द्रविम्ब-तुल्यमेव राहुविम्बं वक्तव्यं तदा चन्द्रग्रहणे स्थितिर्महती सूर्यग्रहणे स्थितिर्लघ्वी एवं कथं स्यात्। स्थितिलघुमहत्वं तु प्रत्यक्षं ग्रहणे दृश्यते। अतश्चन्द्रविम्बतुल्यं राहुविम्बं सर्वदा कल्प्यमित्यतेदप्यसत्। अन्यच्च। सूर्यग्रहणेऽर्धग्रासे सूर्यविम्बशृंगे तीक्ष्णे चन्द्र-ग्रहणे शृंगयोः कुण्ठता दृश्यते। अतो हि छादको ग्रहणद्वये भिन्न एव कल्प्यः। अत ऽपि राहुर्न छादकः। पूर्वं भवद्भिः कालांशान्तरेऽस्तप्रतिबंधकग्रहणमिति। यदुक्तं तदप्य-सत्। यतः सूर्येण स्वतेजसा कालांशान्तरेऽपि ग्रहो निष्प्रभः क्रियते। अत्रस्तत्रैव तस्यास्त इति युक्तम्। अत्र राहुरन्धकाररूपः अन्धकारो नाम तेजोहानिः। तेजोहान्या कालांशान्तरेण सूर्यचन्द्रावाच्छाद्येते इदं सर्वथाऽल्पसंबन्धनम्। एवं सति गणितयुक्ति-बलेन प्रत्यक्षदर्शनतया च राहोर्ग्रहणे ग्राहकत्वं न सम्भवत्येवेति सिद्धान्तः। नन्वेवं चेत् तर्हि वेदाप्रामाण्यप्रसगः स्यात्। अत्रोच्यते। सूर्यग्रहणे चन्द्रश्छादकश्चन्द्रग्रहणे भूछाया छादिनी। तत्रामायां चन्द्रविम्बं श्यामं राहुविम्वमपि श्यामं यद्यपि तत्र न कालांशान्तरे वृत्तसम्पातेऽस्ति तथापि ब्रह्मवरदानाद्ग्रहणकाले तत्र गच्छतीति कप्यते। एवं चन्द्र-ग्रहणेऽपि भूछाया श्मामली राहुबिम्बमपि तथा यद्यपि तत्र न कालांशान्तरे वृत्तसम्पाते ऽस्ति। तथापि शरवशाद्ग्रहणे भूछायान्तर्वती राहुर्भवतीति कल्प्यते आगमभयात्। उक्तं च भास्कराचार्यैः।

सिद्धान्तशिरोमणौ।

दिग्देशकालावरणादिभेदैर्नच्छादको राहुरिति ब्रुवन्ति।
यन्मानिनः केवलगोलविद्यास्तत्संहितावेदपुराणबाह्यम् ॥१॥
राहुः कुभाण्डलगः शशांङ्कं शशांङ्कगश्छादयतीनबिम्बम्।
तमोमयः शम्भुवरप्रदानात् सर्वागमानामविरुद्धमेतत्॥

एवमत्र मुख्यतया सूर्यस्य चन्द्रश्छादकश्चन्द्रस्य भूछाया छादिनीति सिद्धम्। अहो भवद्भी राहोर्ग्रहणकर्त्तृत्वं कृतं चेत् तदा सूर्यग्रहणे सूर्यविम्बस्य पश्चिमे स्पर्शः चन्द्रग्रहणे चन्द्रविम्बस्य पूर्वस्पर्शः भूमेश्छायां प्रविशंति इति कथम्॥

अथ प्रकृतं ग्रहसाधनं तदर्थं पर्वान्तकालीनौ चन्द्रसूर्यौ कार्याविव। राहुरपि कार्यः। यतो राहुं विना शरसिद्धिर्न। अतः पञ्चांगीयावधिस्थितग्रहाणां तदिनज-करणार्थं स्थूलामेव तदवधिस्थितां गतिं तदिनान्तरे समानामेवांगीकृत्य ग्रहाणां चालनं वदति तत्स्वल्पान्तरं स्यात्। अतो न दोषाय भवति इति। अथवा सूर्योदयिकयोः पर्वान्तकालीनकरणार्थं चालनमाह। व्याख्या। यद्दिनजो ग्रहस्तद्दिनात् पूर्वकालीन-ग्रहसाधनार्थं गतदिनानि। अग्रिमकालीनग्रहसाधनार्थं यावन्ति दिनानि यावन्ति

गम्यानि। तैर्गतैरथ वा गम्यदिवसैर्ग्रहस्य द्युभुक्तेर्दिनगतेर्गुणितायां ये खरसैः षष्ट्या अप्तांशा लब्धभागास्तैर्वियुग्युतो ग्रहश्चेत् पूर्वं क्रियते तदा हीनः। अग्रिमश्चेत् तदा युक्तः। स तद्दिनजो ग्रहः स्यात्। तथा इष्टघटीघ्न्या गतेः खरसैर्या लब्धकलास्ताभिर्यथाक्रममूनसंयुतः सन् तत्कालभवो ग्रहो भवतीत्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। अत्रानुपातो यदि सावनाभिः षष्टिघटीभिर्गतिकला ग्रहः पूर्वगत्या क्रामति तदा इष्टघटीभिः कति कलाः। एवं दिनगुणितायां गतौ कलाः स्युः। षष्ट्या भाज्या भागार्थम्। अत उक्तं गतम्येत्यादि। धनर्णोपपत्तिः प्रत्यक्षतोऽतिसुगमा॥१॥

विश्वनाथः

तत्र ग्रहाणां तत्कालिककरणमाह गतगम्येति। यस्मिन् दिवसे ग्रहसाधनं कृतं तस्माद्दिवसात् गतगम्या ये दिवसास्तैराहता गुणिता या द्युभुक्तिर्ग्रहभुक्तिस्तत्सकाशात् खरसैः ६० षष्ट्याप्ता लब्धा येंऽशास्तैर्वियुक् रहितो युक् युक्तो ग्रहः कार्यः। गताश्चेदिवसास्तदा रहितः कार्यः। गम्याश्चेदिवसास्तदा युक्तः कार्य इत्यर्थः। स ग्रहस्तत्कालभवस्तदिनजो ग्रहः स्यात्। तथा गतगम्यघटीघ्न्या गतेः सकाशात् खरसैर्लब्धकलाभिरूनो युक्तः कार्यः स तात्कालिकः स्यादित्यर्थः। अत्र एतावान् विशेषः। चन्द्रसूर्यग्रहणयोर्या पौर्णमासी तथाऽमावस्या पञ्चाङ्गे यावद्धटिकापरिमिताऽस्ति ताभिर्घटीभिर्मध्यमा रविचन्द्रोच्चराहवश्चाल्याः। तदनन्तरं स्पष्टीकरणं कार्यम्। ततो रविचन्द्राभ्यां तिथेर्घटिकाः साध्याः। ताः पञ्चाङ्गस्य घटीमध्ये युक्ता रहिताः कार्याः। तद्यथा। यद चतुर्दश एकोनत्रिंशद्वा गततिथिरायाति तदा वर्त्तमानपौर्णमास्या अमावास्याया यावत्य ऐष्यघटयः साध्यास्ताः पञ्चांगस्य पर्वघटीमध्ये युक्ताः कार्याः। यदा पञ्चदशतुल्या वा त्रिंशत्तुल्या गततिथिरायाति तदा वर्तमानप्रतिपत्तिथेर्गतघटयः साध्यः। ताः पञ्चांगस्थघटीमध्ये रहिताः कार्याः। स पर्वान्तकालो भवति। एवं या गतगम्या घट्य आगतास्ताभिर्ग्रहाणां चालनं देयम्। ते पर्वान्तकालीना भवन्ति॥

उदाहरणम्। संवत् १६७७ शाक १५४२ मार्गशीर्षशुक्लपौर्णमासीबुधे घटी ३८।११। रोहिणीनक्षत्रघटी ९।८। साध्ययोगघटी १०।३६। अथ चन्द्रपर्वसाधनार्थमहर्गणः ६३६। चक्रम् ९। तस्मात् साधितः प्रातर्मध्यमः सूर्यः ८।०।८।५९। चन्द्रः १।२५।१९।५७। चन्द्रोच्चम्। १०।३।३७।५। राहुः ७।२८।२५।२७। तिथिघतिभि-३८।११ श्चालितो रविः ८।०।४६।३६। चन्द्रः २।३।४३।४। उच्चम् १०।३।४१।२०। राहुः ७।२८।२५।२७। अथ स्पष्टीकरणम्। रवेर्मन्दकेन्द्रम् ६।१७।१३।२४। मन्दफलमृणम् ०।३९।४। मन्दफलसंस्कृतो रविः ८।०।७।३२। अयनांशाः १८।१८। चरं धनम् ११४। चरसंस्कृतो जातः संस्कृतोऽर्कः ८।०।९।२६। गतिफलं धनम् २।३। स्पष्टा गतिः ६१।११। फलत्रयसंस्कृतश्चन्द्रः २।३।५६।१८।

विधोर्मन्दकेन्द्रम् ७।२९।४५।२। मन्दफलमृणम् ४।२०।१२। संस्कृतः स्पष्टश्चन्द्रः १।२९।३६।६ गतिफलं धनम्। ३३।३०। स्पष्टा गतिः ८२४।५। आभ्यां गततिथिः १४।

एष्य घट्यः २।३७। आभिः पञ्चांगस्था घटिका ३८।११ युक्ता जातः पर्वान्तः ४०।५८। आभिरेष्यघटीभि-२।३७ श्चालितः पर्वान्ते जातस्तात्कालिको रविः ८।०।१२।६ । चन्द्रः २०।१२।१ । राहुः ७।२८। २५।१८ ।।१।।

केदारदत्तः

तात्कालिक (इष्टकालिक) ग्रह साधन करने के लिए ग्रह की गतिकलाओं से गत या ऐष्य दिनादिक को गुणा कर ६० का भाग देने से लब्ध फल, अंश कलादिक जो हो उसे गत चालन = ऋण चालन में घटाने और ऐष्य चालन = धन चालन में जोड़ने से वह तात्कालिक ग्रह हो जाता है।

तथा इसी प्रकार ग्रहगति गुणित चालन घटो (धन या ऋण) में ६० से भाग देने पर लब्ध कलादिकफल को ग्रह में जोड़गे या घटाने से अभीष्ट समय का अभीष्ट ग्रह हो जाता है ।।१।।

उदाहरणः—संबत् २०३६ शके १९०१ भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमा व गुरुवार ता० ६ से १९८१ को काशी में घट्यात्मक पूर्णान्त काल = २६।५८ (घण्टात्मक = दिन के ४-२९ P.M.) श्री काशी विश्वेश्वर राजधानी श्रो काशी कें सूर्योदय के अनुसार है ।

इस दिन ग्रहण गणित साधनोपयुक्त दृश्यगणित से प्रातः काल ५'२९ A.M. में स्पष्टसूर्य का मान ४।१६।५।११ सूर्य की स्पष्टा गति ५८।९, स्पष्ट चन्द्रमा १०।१२।४३।२५ चन्द्रमा की स्पष्टा गति = १५°।९'।५४" = ९९९'।५४" तथा स्पश्ट राहु = ४।१४।३१।१८ गति = ३।११ है । यतः पूर्णान्त काल, सायं बजे ४।२९ (१६।२९) को हो रहा है और उक्त स्पष्ट प्रातः काल ५'२९ बजे के दिये हैं । अतः १६।२९ – ५।२९ = ११ घण्टे या २७ घटी ३० पल के तुल्य सभी ग्रहों को आगे चलाना है । तात्पर्य गम्य या धन चालन है अतः सूर्य-गति (५८।९ × २७।३०) ÷ ६० = २६'।३९" कों सूर्य में जोड़ने से ४।१९।३१।५०=स्पष्ट सूर्य होता है ।

इसी प्रकार पूर्णान्त कालीन चन्द्रमा १०।१६।४३।२५ + २°।४'।२५" = पूर्णान्त समय में चन्द्र स्पष्ट = १०।१६।३१।४७ होता है । एवं पूर्णान्त कालीन राहु की गति ३।११ × चालन – २७।३० = १।२७।३२ यत. राहु की गति सदा विलीन होने से धन चालन फल ऋण होगा अतः प्रातःकालीन राहु ४।१४।३१।१८ – १।२७।३२ = पूर्णान्त कालीन राहु ४।१४।२९।४४ होता है ।

ग्रहलाघवीय पञ्चाङ्गों से मिश्रमान ४६।४४ में सू० स्प० ४।१९।२९।३७ गति ५८।१० पूर्णान्त २७।३१ अतः ४६।४४ – २७।३१ = ऋण चालन = १९।१३ से गुणित रविगति १८।३७।४६ को मिश्रमान कालिक सूर्य में घटा देने से ४।१९।१०।५९।१४ होता है । आसन्न २०'।५१····कला दृश्य से कम है । इसी प्रकार चन्द्रमा और राहु में भी गणित वैषम्य प्रत्यक्ष है । सूर्ण सिद्धान्तीय पञ्चाङ्गों से भी, मिश्रमान = ४६।४९ कालिक सूर्य ४।१९।२९।१७ गति = ५८।१० पूर्णान्त काल = २७।५६ अतः ४६।४९ – २७।५६ = १८।५३

= गत या ऋण चालन होता है। चालन × सू० गति = १८'।१"।४२" को स्प० सूर्य ४।१९।२९।२७ में कम करने से ४।१९।११।२६ यह पूर्णान्त कालीन सूर्य होता है।

आचार्य ने·····'दृक्तुल्यता' पक्ष का ही काफी सूझ-बूझ के अनन्तर 'दृक्तुल्यतां यान्ति' की प्रतिज्ञा की है। जो किसी भी बुद्धिजीवी ग्रह गणितज्ञ को अवश्य ही मान्य होती है। अतः यहाँ पर उदाहरणों में दृक्तुल्यता-जैसे महत्त्व की प्रतिज्ञा का 'ग्रहण जैसे प्रत्यक्ष दर्शनीय गणित में उपेक्षा करना भूल होगी। अतः दृक्तुल्य पञ्चाङ्गों के आश्रय से उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इति

उपपत्तिः—अनुपात से गत गम्य दिनादिक चालन फल को पर्वान्त में ऋण धन करने से अभीष्ट पर्वान्त कालिक ग्रह होते हैं ॥१॥

एवं पर्वान्ते विराह्वर्कबाहो-
रिन्द्राल्पांशाः सम्भवश्चेद्ग्रहस्य ।
तेंऽशा निघ्नाः शंकरैः शैलभक्ता
व्यग्वर्कांशः स्यात् पृषत्कोंऽगुलादिः ॥२॥

मल्लारिः

अथ ग्रहणसम्भवासम्भवज्ञानार्थं पर्वसम्भूतिं कथयति। एवंकृते सति सूर्यचन्द्रौ तु पर्वान्ते समकलौ भवतः।

उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ ।

'पूर्णान्तकाले तु समौ लवाद्यैर्दर्शान्तकालेऽवयवैर्गृहाद्यैः' इति ।

ततः पर्वान्तकालीनराहूनितस्य सूर्यस्य यो बाहुर्भुजस्तस्य भुजभागाश्चेत् इन्द्राल्पांशाश्चतुर्दशाल्पास्तदैव ग्रहस्य ग्रहणस्य सम्भवः स्यादधिकेषु नैव। ततस्तेंऽशः भुजभागाः शङ्करैरेकादशभिर्निघ्ना गुणिताः शैलैः सप्तभिर्भक्ताः सन्त उद्दिष्टं फलं सोंगुलादिरंगुलपूर्वकः पृषत्कः शरो व्यग्वर्कांशो भवति। राहूनितसूर्यो यस्मिन् गोले तद्दिग्भवतीत्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। अपवृत्ते यद्राशौ भागे कलायां चन्द्रपातो वर्त्तते तं तु विलोमं दत्त्वा तत्र विमण्डलापमण्डलयोः सम्पातो द्वितीयः षड्भान्तरेण द्वयो सम्पातयोस्त्रिभेऽन्तरे परमविक्षेपतुल्यैर्भागैरपवृत्ताद्रविमंडलाद्यर्धमुदग्विदध्यात् तथा द्वितीयं दक्षिणेन। एवं स्थिते चन्द्रपातावपि द्वौ मेषादितः पूर्वगतौ प्रवृत्तौ चन्द्रः शीघ्रत्वादग्रतो याति तत्र यदा पातसमश्चन्द्रो भवति तत्र विक्षेपाभावः। अतो विगतराहुश्चन्द्रः। चन्द्रशरार्थं केन्द्रम्। अत्र सूर्यग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः समत्वात् राहुणा सूर्य एव हीनः कृतश्चन्द्रग्रहणेऽपि सूर्यचन्द्रयोः षड्भान्तरात् विराहुचन्द्रविराहुसूर्ययोर्भुज साम्यमेव। परमत्र गोलान्यत्वात् शराऽन्यदिक्स्थे एव परिलेखे प्रयोजकः। अत एवाचार्येण चन्द्रग्रहे

व्यस्तादिक् शर इति प्रोक्तम् । तत्र त्रिभे परमः शरः । अतोऽनुपातः । यदि त्रिज्या-तुल्यया १२० विराह्वर्कभुजज्यायां परमो नवत्यंगुलतुल्यः शरः ९० तदेष्टदोर्ज्यया किमिति । अत्र भुजभागाः सप्तमिताः प्रकल्पिताः । तेभ्यः साधितः शरः ११ । ततोऽनुपातः । यदि सप्तभिर्भुजभागैर्भवतुल्यः शरस्तदेष्टैः किमिति । अत उक्तंन्तेंऽशा निघ्नाः शङ्करैः शैलभक्ता' इति गोलवशाद्दिग्भवतीत्यर्थत एव सिद्धम् ।

अथः पूर्वार्धोपपत्तिः । मानैक्यखण्डाधिके शरे गहणाभावः । अतश्चन्द्रभूभाविम्बे परमगतिप्रमाणेन कृत्वा तयोर्योगार्धं मानैक्यखण्डं कृतम् । २०।३७ । एतावान् शरस्तु चतुर्दशतुल्यभुजभागेभ्य एव भवति । अत इन्द्राल्पांशा यदा तदा गहणमित्युपपन्नम् ।।२।।

विश्वनाथः

अथ गहणसम्भवज्ञानं शरसाधनं चाह एवमिति । पूर्वोक्तप्रकारेण चालितौ चन्द्राकौं पर्वान्ते पौर्णमास्यन्ते षड्राश्यन्ते समांशकलौ भवतः । अमान्ते राश्यंशकलाभिः समौ भवतः ।

उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ ।

'पूर्णान्तकाले तु समौ लवाद्यैर्दर्शान्तकालेऽवयवैर्गृहाद्यैरिति' ।

अत्र पर्वशब्दः पूर्णिमामावास्यावाची ज्ञेयः । तत्र विराह्वर्कवाहोर्लवाः कार्याः । विगतो राहुर्यस्मादसौ विराहुः । स चासावर्कश्च विराह्वर्कः । राहुरर्काच्छोध्य इत्यर्थः । तस्य भुजः कार्यः । भुजस्यांशाः कार्याः । तेंऽशाश्चेदिन्द्राल्पाश्चतुर्दशभ्योऽल्पास्तदा ग्रहणस्य सम्भवः स्यात् तदा ग्रहणं भवतीत्यर्थः । एवं चन्द्रग्रहणे । सूर्यग्रहणे तूत्तरगोले भुजांशा इन्द्राल्पा दक्षिणगोलेऽष्टभ्यो न्यूनास्तदाऽर्कग्रहणं भवतीति ज्ञातव्यम् । अग्रे वक्ष्यति । तेंऽशाः शङ्करैकादशभिर्निघ्ना गुणिताः । ततस्ते शैलैर्भक्ता सप्ततष्टाः फलमंगुलानि । शेषं षष्टिगुणं सप्तभक्तं फलं व्यंगुलानि । एवमंगुलादिर्व्यग्वर्काशो व्यग्वर्कस्याशा दिग् यस्य सः विराह्वर्को यस्मिन् गोले वर्त्तते तद्दिक् पृषत्कः शरः स्यात् । रविः ८।०।१२।६ । राहुः । ७।२८।२३।१८ । विराह्वर्कः ०।१।४८।४८ । अस्य भुजांशाः १।४८।४८ । चतुर्दशभ्यो न्यूना अतः ग्रहणसम्भवः । विराह्वर्कस्य भुजांशाः १।४८।४८ । शङ्करै–११ गुणिताः १९।४६।४८ सप्तभक्ताः फलमंगुलादिशरः २।५० । विराह्वर्कस्योत्तरगोलस्थत्वादुत्तरः ।।२।।

केदारदत्तः

इस प्रकार पर्वान्तकाल (पूर्णान्त और अमान्त) में सूर्य चन्द्र राहु का स्पष्टी करण करते हुए यदि सूर्य में ऋण राहु के भुजांश १४° से कम हों तो तभी ग्रहण होने का सम्भव होता है । अर्थात् इससे अधिक सूर्य में राहु के भुजांशों में ग्रहण का सम्भव नहीं होता ।

सूर्य में राहु को घटाने से शेष जो हो उसका नाम विराह्वर्क' कहना चाहिए । विराह्वर्क के ग्रहण संभव अंशों को ११ से गुणा कर ७ से भाग देने पर लब्धि का नाम अंगुलादिक शर होता है । विराह्वर्क की जो दिशा (उत्तर या दक्षिण) हो शर भी उसी दिशा का होता है ।।२।।

ऊदाहरणः—पर्वान्त कालीन सूर्य-राहु = ४।१९।३१।५० – ४।१४।२९।४४ = विराह्वर्क = ०।५।२।६ यही भुजांश है जो १४° से कम है इसलिए चन्द्रग्रहण पर्व का अवश्य सम्भव है। विराह्वर्क भुजांश = (५।२।६ × ११) ÷ ७ = ७।५४) अंगुलादिक शर (वाण) का मान होता है। विराह्वर्क उत्तर गोल में है इसलिए उत्तर शर = ७।५४। होता है ॥२॥

उपपत्तिः—शर साधन के लिए सपात सूर्य भुजांशों का प्रयोजन है। राहु = पात विलोम गतिक होने से तथा चक्र शुद्ध = १२ में पूर्व में घटा देने से सू० + राहु = सू० – (१२ – राहु) = सू० – राहु = विराह्वर्क। सूर्य और चन्द्रमा के पूर्णान्त में अन्तर = ६ राशि, और अमान्त में दोनों की राश्यादिक की तुल्यता से उभय ग्रहणों सूर्य-चन्द्र विराह्वर्क के भुजों की तुल्यता से उभयत्र विराह्वर्क के भुजांशों की १४° से न्यूनता (शर=१४) होने पर दोनों (सूर्य-चन्द्र) ग्रहणों का सम्भव समझना चाहिए जो भूभा विम्ब और चन्द्र विम्ब व्यासार्धों के योग से कम शर में होता है। भूभा व चन्द्र विम्बों के परममानैक्य खण्ड तुल्य शर की स्थिति तभी होती है। जब कि शर का मान १४° से कम होगा। ऐसी स्थिति में छाद्य विम्ब (चन्द्रमा) छादक विम्ब (भूभा) का स्पर्श मात्र होगा। यदि मानैक्य खण्ड से ही शर का मान अधिक हो तब तो ग्रहण का सम्भव ही नहीं होगा। इसलिए १४° से कम विराह्वर्क में ग्रहण का संभव जो आचार्य ने गणित से बताया है समीचीन है।

शर साधन के लिए—त्रिप्रश्नाधिकार के श्लोक २२ में १ अंश चाप की ज्या साधन समय ज्या $१^{\circ} = \frac{७२}{३५}$ तो अभीष्ट भुजांश ज्या = $\frac{७२ \times \text{भुजांश}}{३५}$ = भुज ज्या।

यदि त्रिज्या में परम शर ज्या तो विराह्वर्क भुजज्या में स्पष्ट शर ज्या

$$= \frac{२७० \times ७२ \times \text{भुजांश}}{१२० \times ३५} = \frac{५४ \times \text{भुजांश}}{३५} \text{ स्वल्पान्तर से } \frac{११ \times \text{भुजांश (विराह्वर्क)}}{७}$$ ।

चन्द्रग्रहण में सूर्य व चन्द्रमा की विभिन्न गोल स्थितियों से शर की दिशा से ही स्पर्शादिक स्थिति विचारणीय होती है ॥२॥

व्यसुशरगतीष्वंशो दिग्युग्भवेद्वपुरुष्णगो-
रथ सितरुचो विम्बं भुक्तिर्युगाचलभाजिता।
तदपि हिमगोर्बिम्बं त्रिघ्नं निजेशलवान्वितं
विवसु भवति क्ष्माभाविम्बं किलांगुलपूर्वकम् ॥३॥

मल्लारिः

अथ सूर्यचन्द्रभूछायाविम्वानां साधनं कथयति। विगता असुशराः पञ्च-पञ्चाशत् ५५ यस्याः सा तथा एवंभूता या गतिस्तस्या इष्वंशः पञ्चमांशा स दिग्भि-र्दशभिर्युग्युक्तः कार्यः। तत् उष्णगोः सूर्यस्य वपुर्बिम्बं स्यात्। अंगुलपूर्वकमिति सर्वबिम्बेषु संयुज्यते ॥

अथ सितरुचश्चन्द्रस्य भुक्तिर्गतिर्युगाचलैश्चतुः सप्तत्या ७४ भाजिता सती चन्द्रबिम्बं स्यात् ॥

अथ भूछायां साधयति। तदपि हिमगोश्चन्द्रस्य बिम्बं त्रिघ्नं त्रिगुणं ततः निजेन ईशभागेन एकादशांशेन युक्। विवसु अष्टोनं सत् क्ष्माया भुवो या भा छाया तस्या बिम्बं भूछायाबिम्बं भवतीत्यर्थः ॥

अत्रोपपत्तिः। उच्चस्थितग्रहस्य बिम्बं लघु गतिश्च लघ्वी। तथा नीचसमस्य ग्रहस्य बिम्बं पृथु गतिर्महती। यथायथा गतिर्वर्धते तथा तथा बिम्बमपि वर्धते। यथा हीयते तथाऽपचीयते। अतो गतेर्बिम्बानयनं कर्त्तुं युज्यते। तद्यथा। यदि दिनगतियोजनैर्गतिकलास्तदा बिम्बयोजनैः किमिति कलादीनि बिम्बानि स्युः। तानि त्रिभक्तान्यंगुलानि। यतोऽत्रांगुलं त्रिकलमेव कल्पितमस्ति। अत्राचार्येण लाघवार्थं सूर्यगतिं पञ्चपञ्चाशन्मितां प्रकल्प्यः सूर्यबिम्बांगुलाद्यं साधितम्। तद्यथा। दिनगतित्रोजनानि पादोनगोक्षधृतिभूमितानि ११८५८।४५ एभिः पञ्चपञ्चाशन्मितायां गतौ भाजितायामेभिः सूर्यबिम्बयोजनै-७५२२ गुणितायां जातं कलाद्यमर्कबिम्बम् ३०। इदं त्रिभक्तं जातमंगुलाद्यम् १०। अथ पञ्चपञ्चाशदधिकस्य गतेः खण्डस्य बिम्बं साध्यं तदत्र योज्यं बिम्बं स्यात्। अत्र गतिखण्डस्य सार्धपञ्चभागो भवति। गतिखण्डस्याल्पत्वात् पञ्चमांश एवाङ्गीकृतः। अतो व्यसुशरगतीष्वंशो दिग्युगित्युपपन्नम्। एवमेव चन्द्रस्य मध्यगतिप्रमाणेनांगुलाद्यं चन्द्रबिम्बं साधितम् १०।४०। चन्द्रबिम्बयोजनानि ४८०। अतोऽनुपातः। यदि मध्यगत्या ७९० इदं चन्द्रबिम्बं तदा स्पष्टगत्या किमिति। स्पष्टगतेर्बिम्बं गुणो मध्यगतिर्हरः। गुणहरौ गुणेनापवर्त्तितौ हरस्थाने जाताः ७४। अतः सितरुचो बिम्बं भुक्तिर्युगाचलभाजितेत्युपपन्नम्।

अथ भूछायोपपत्तिः। अत्रार्कबिम्बभूव्यासान्तरयोजनानां रविकक्षायां कलाकरणार्थमनुपातः। यदि दिनगतियोजनै-११८५९गतिकला लभ्यन्ते ५९।८ तदाऽर्कबिम्बयोजनभूव्यासान्तरयोजनैः ४९४१ किमिति। अतो लाघवार्थं मध्यगतेरेवानीताः कलाः २४। एतास्त्रिभिभक्ताः जातानि रविगतिसम्बन्धीनि अंगुलानि ८।

अथ भूव्यासस्य चन्द्रकक्षायां कलाकरणायानुपातः। यदि गतियोजनै-११८५९ श्चन्द्रगतिकला लभ्यन्ते तदा भूव्यासयोजनैः १५८१ किमिति। अंगुलार्थं त्रीणि हरः ३। चन्द्रगतेर्गुणः १५८१। हर घातो हरो जातः ३५५७७। गुणहरौ सार्धत्रिवेदैरपवर्त्तितौ ४३।३०। जातं गुणस्थाने ३६। हरस्थाने ८१७। अत्र खण्डगुणनं विहितम्। प्रथमस्थाने एकादशभिर्गुणहरावपवर्त्तितौ ३।७४। अत्र वेदाद्रिभक्ता चन्द्रगतिश्चन्द्रबिम्बं भवति। अतश्चन्द्रबिम्बं त्रिगुणं पृथक् स्थाप्यम्। द्वितीयस्थानीयो हरश्चतुःसप्तत्या भक्तश्चन्द्रबिम्बस्य गृहीतत्वात्। अतो जातो द्वितीयहरः ११। गुणकस्त्रिमित एवोभयत्र। अत एव हिमिगोर्बिम्ब त्रिनिघ्नं निजेशलवान्वितमिति। तत् सूर्यगतिसम्बन्धिभिरंगुलैः स्वल्पान्तरै-८ हीनं कार्यम्। यतो भूव्यासाद्यावद्रविबिम्बमधिकं

तावत्प्रमाणेनोपर्युपरि गच्छन्त्या भूभाया विस्तृत्तिरपचयिनी स्यात् । यथा पृथुदीपेऽल्प-वस्तुनश्छायाऽग्रेऽपचीयमाना सूच्यग्रा भवति । अल्पे दीपे पृथुवस्तुनोऽग्रे उपचीयमाना स्थूला भवति । अतो भूव्यासाद्यावदधिकं तेन भूव्यासो हीनः कृत इति ॥३॥

विश्वनाथः

अथ सूर्यचन्द्रबिम्बानयनं भूभानयनं चाह गतिरिति । खररुचः सूर्यस्य गति-६१।११ द्विगुणिता १२२।२२ । एकादशभक्ता फलमंगुलाद्या तनुः सूर्यबिम्बं स्यात् ११।७ । विधोर्भुक्ति-८२३।५ वेदाद्रिभि-७४र्भक्ता फलमंगुलाद्यं चन्द्रबिम्बमुदितम् ११।८ । चन्द्रस्येयं चान्द्री चन्द्रगतिः ८२४।५ नृपाश्वोना ७१६ कृता १०८।५५ । लोचन-करै-२२ र्भक्ता फलं ४।५४ द्वात्रिंशद्भि-३२र्युतम् ३६।५४ । सूर्यगतिः ६१।११ । अस्या नगां-७ शेन ८।४४ अनेन रहिता रदाढ्या जाता भूभा २८।१० । इदमेव राहु-बिम्बम् ॥३॥

केदारदत्तः

कलादिक सूर्यगति में ५५ घटा कर शेष के पञ्चमांश में १० जोड़ने से अंगुलादिक सूर्य बिम्ब का मान होता है । चन्द्रगति में ७४ के भाग देने से लब्ध फल अंगुलात्मक चन्द्र बिम्ब होता है ।

त्रिगुणित चन्द्र बिम्ब में त्रिगुणित चन्द्र बिम्ब का ११ वाँ भाग जोड़ने से, जो हो उसमें ८ घटाने से अंगुलादिक भूभा विम्ब हो जाता है ।

उदाहरणः—रविचन्द्र भूभा बिम्ब साधन में ग्रन्थकार का प्रकार स्थूल होता है । श्री विश्वनाथ की टीका में बिम्ब साधन प्रकार सूक्ष्म है वह जैसे—

गतिर्द्विघ्नीशाप्तांगुलमुखतनुः स्यात् खररुचो ।
विधोर्भुक्तिर्वेदाद्रिभिरपहर्त्ता बिम्बमुदितम् ॥
नृपाश्वोना चान्द्री गतिरपहृता लोचन करैः–
रदाढ्या भूभा स्याद्दिनगतिनगांशेन रहिता ॥१॥

अर्थात्—द्विगुणित सूर्य में ११ का भाग देने से अंगुलादिक सूर्य विम्ब होता है । चन्द्रमा की गति में ७४ का भाग देने से लब्ध फल चन्द्र विम्ब होता है । चन्द्रमा की गति में ७१६ कम कर उसमें २२ का भाग देकर लब्धि में ३२ जोड़ देने से अंगुलादिक भूभा विम्ब का मान होता है । सू०ग० × २ = ५८।८ × २ = ११६।१६ में ११ का भाग देने से अंगुला-त्मक १०।३४ = सूर्य विम्ब हुआ । चन्द्रगति = ९०९ + ७ में ७४ का भाग देने से लब्धि = १२।७ यह अंगुलादिक चन्द्र विम्ब का मान होता है । चान्द्रीगति = ९०९।५४ − ७१६ = १९३।५४ में २२ का भाग देने से ८।४९ को ३२ में जोड़ने से भूभा विम्ब = ४०।४९ होता है । ग्रन्थकार के मत से, सू०ग० ५८।९ − ५५ = ३।९ में ५ का भाग देने से ०।३९।३६ में १० जोड़ने से सूर्य बिम्ब = १०।३९ होता है । चन्द्रगति = ९०९।५४ में ७४ का भाग देने से चन्द्रबिम्ब १२।१७ होता है । चन्द्रबिम्ब = १२।१७ को ३ से गुणित करने से ३६।५१ में

११ का भाग देने से ३।२१ होता है। इसे ३६।५१ में जोड़ने से ४०।१२ में ८ कम करने से ३२'१२ = भूभा बिम्बमान होता है जो कुछ स्थूल है आगे की उपपत्ति से समझ में आवेगा ।।३।।

उपपत्तिः—भास्कराचार्य के अनुसार रविबिम्ब $= \frac{\text{सूर्यगति} \times ११}{६०}$

$= \frac{११ \times \text{सूर्यगति} \times २}{६० \times २} = \frac{२ \times \text{सूर्यगति}}{११}$। अंगुलात्मक चन्द्रबिम्ब $\frac{\text{चन्द्रगति}}{७४}$। 'भानोर्गतिः शर हतेति' अंगुलात्मक भूभाबिम्ब $= \frac{२ \times \text{चन्द्रगति}}{४५} - \frac{\text{सूर्यगति} + ५}{३६} = \frac{२ \times \text{चन्द्रगति}}{४५}$

$- \frac{\text{सूर्यगति} \times ५}{३६} = \frac{\text{चं०ग०} \times २ \times १८}{४५ \times १८} - \frac{(५९।८)\ ५}{३६} = \frac{\text{चं०ग०} \times ३६}{८१०} - \frac{२९५'४०''}{३६}$

$= \frac{\text{चं०ग०} \times ३६}{\frac{८१०।११}{११}} - \frac{२९५'४०''}{३६} = \frac{\text{चं०ग०} \times ३६}{७४ \times ११} - \frac{२९९'।४०''}{३६} = \frac{\text{चं०ग०}}{७४}\left(\frac{३६}{११}\right) -$

$\frac{२९५''४०''}{३६} = \frac{\text{चं०ग०} \times ७}{७१}\left(३ + \frac{३}{११}\right) - ८$ यतः $\frac{\text{चं०ग०}}{७४} = \text{चं०वि०}$ अतः भूभाबिम्ब

$= \text{चन्द्रबिम्ब} \left(३ + \frac{३}{११}\right) - ८$। $\text{चं०वि०} \times ३ + \frac{\text{चं०वि०} \times ३१}{११} - ८$ = भूभा बिम्बमान उपपन्न होता है ।।३।।

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभा
छादकच्छाद्यमानैक्यखण्डं कुरु ।
तच्छरोनं भवेच्छन्नमेतद्यदा
ग्राह्यहीनावशिष्टं तु खच्छन्नकम् ।।४।।

मल्लारिः

अथ मानैक्यखण्डग्रासप्रमाणे साधयति। इन्दुश्चन्द्रोऽर्कं छादयति। अस्मदादि-दृष्टेरावरणीभूतो भवति। भूमिभा विधुं चन्द्रमसं छादयति। छादकच्छाद्ययोः सूर्यग्रहणे सूर्यचन्द्रयोश्चन्द्रग्रहणे चन्द्रभूछाययोर्ये माने विम्बे तयोर्यदैक्यं तस्य यत् खण्डमर्धं तत् कुरु तन्मानैक्यखण्डमिति शरेण पूर्वसाधितेन ऊनं रहितं सद्यदवशिष्टं तच्छन्नमंगुलाद्यो ग्रासः स्यात्। चेन्मानैक्यखण्डाच्छरो न निर्गच्छति तदा ग्रहणमपि नास्तीति ज्ञेयम्। ततश्छन्नं यदा ग्राह्येन छाद्यविम्बेन हीनं सदवशिष्टं तदा तु शेषतुल्यः खग्रासो भवति। खच्छन्नमिति यथार्थं नाम यतः सर्वविम्वं ग्रासयित्वाकाशमपि तावद्ग्रसितम्। इदं तु सर्वग्रहण एव भवति।

अथग्रासोपपत्तिः। खेर्भार्धान्तरे क्रान्तिवृत्ते भूभा भ्रमति। खेर्भार्धान्तरे चन्द्रश्च। अतः पौर्णमास्यन्ते भूभाचन्द्रौ समौ भवतः। अतश्चन्द्रस्य भूछाया छादिनी स्यात्। दर्शान्ते चन्द्रादूर्ध्वं रविश्चन्द्रसमोऽतो रवेश्चन्द्रमाश्छादको भवति।

अथ ग्रासोपपत्तिः। चन्द्रविमण्डलापवृत्तयोः सम्पातश्चन्द्रपातः। यथा तस्मात् षड्भान्तरेऽपि। एवं स्थानद्वये शराभावः। ततस्त्रिभेऽन्तरे परमः शरः। एवंकृते चन्द्रबिम्बमध्यकेन्द्रं विमण्डले सदैव वर्त्तते। सूर्यस्य मण्डलकेन्द्रं क्रान्तिमण्डले। तस्मात् षड्भान्तरे भूछायायाः केन्द्रमपि क्रान्तिमण्डल एव। यदा चन्द्रस्य शराभावास्तदा चन्द्रः क्रान्तिवृत्तमाश्रयति। एवमुभयोरेकमार्गाश्रितत्वान्मण्डलभेदः स्यात्। तदा चन्द्रमण्डलं भूछायां प्रविश्य पूर्वतो निःसृत्य गच्छति तदा सर्वग्रहणं भवति। स्वल्पे शरे ग्रासादिकस्य सम्भवः। उभयोर्मण्डलयोर्योगार्धाधिके शरे ग्रहणाभाव एवमत्र राहोरकारणं परिदृश्यते। उक्तं च। दिग्देशकालावरणादिभेदैर्नच्छादक' इति। किन्तु संहितादिषु राहुकृतं ग्रहणमिति प्रसिद्धिः। तत्कारणं लल्लेनोक्तं 'ग्रहणे कललासनानुभावा' दित्यादि। छाद्यच्छादकयोर्मण्डलमध्यकेन्द्रयोर्विमण्डलापमण्डलस्थयोर्नेमिस्पर्शे उभयोर्मण्डलार्धमेव केन्द्रान्तरं भवति। तावति शरे मण्डलस्पर्श एव। तदूने यावानुभयोः संयोगस्तावान् ग्रास इति। अधिके मण्डलयोः सम्पर्को न भवत्येव तस्माद्ग्रहणाभावः। छाद्यतुल्ये छन्ने पूर्वग्रहणं तस्माच्छाद्योने छन्नं चाकाशग्रामः खच्छन्नसंज्ञा इति ४।

विश्वनाथः

अथ मानैक्यखराडं ग्रासानयनं चाह छादयतीति। सूर्यग्रहणे इन्दुश्चन्द्रश्छादयति। चन्द्रग्रहणे भूमिभा विधुं चन्द्रमसं छादयति लोके तु राहुकृद्ग्रहणमित्यत्र ब्रह्मणो वरप्रदानात्।

उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ।
'राहुः कुभामण्डलगः शशाङ्कं शशाङ्कगश्छादयतीनबिम्बम्।
तमोमयः शम्भुवरप्रदानात् सर्वागमानामविरुद्धमेतत्-इति, !

भो गणक ! छादकच्छाद्यमानैक्यखण्डं कुरु। छादयति यः स छादकः। छादयितुं योग्यः स छाद्यः। छादकश्च छाद्यश्च छादकच्छाद्यौ तयोर्बिम्बयोर्मानयोरैक्यं तस्य खण्डमर्धं कार्यमित्यर्थः। चन्द्रग्रहणे छादको भूभा। छाद्यश्चन्द्रः। तयोर्बिम्बयोगार्धं चन्द्रग्रहणे मानैक्यखण्डं स्यात्। रविग्रहणे छादकश्चन्द्रः। छाद्यो रविः। तयोर्बिम्बयोर्योगार्धं तत् सूर्यग्रहणे मानैक्यखण्डं स्यात्। तन्मानैक्यखण्डं पूर्वोक्तेनांगुलाद्येन शरेण ऊनं रहितं कार्यम्। यदवशिष्टं तच्छन्नमंगुलादिर्ग्रासः स्यात्। यदा मानैक्यखण्डाच्छरो न शुध्यति तदा ग्रहणं नास्तीत्यर्थतः सिद्धम्। एतच्छन्नं ग्राह्यबिम्बेन हीनं कृत्वाऽवशिष्टं यत् खण्डं तत् खच्छन्नकं स्यात्। तन्मितः खग्रासो भवतीत्यर्थः। चन्द्रग्रहे ग्राह्यं चन्द्रबिम्बमिति। सूर्यग्रहे सूर्यबिम्बमिति।

उदाहरणम् । छादको भूभा २८।१० । छाद्यश्चन्द्रविम्बम् ११।७ । अनयोरैक्यम् ३९।१७ । अस्यार्धं जातं मानैक्यखण्डम् १९।३८ । शरेण २।५० रहितं जातो ग्रासः १६।४८ ग्राह्यविम्बेप ११।७ छन्नं १६।४८ रहितं जातः खग्रासः ५।४१ ॥४॥

केदारदत्तः

चन्द्रमा को भभा (भू छाया = पृथ्वी की छाया) और सूर्य बिम्ब को चन्द्रमा आच्छादित करता है । अतः चन्द्रग्रहण में छाद्य बिम्ब = चन्द्रमा एवं छाद्य पदार्थ = भूभा एवं सूर्य ग्रहण में छाद्य बिम्ब = सूर्य एवं छादक बिम्ब = चन्द्र विम्ब समझना चाहिए ।

दोनों ग्रहणों में पृथक्-पृथक् छाद्य और छादक विम्बों के योग के आधे में शर को कम करने से अंगुलादिक ग्रास प्रमाण होता है । ।

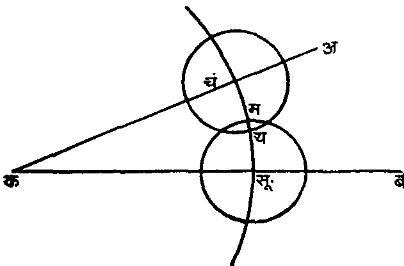
यदि छाद्य बिम्ब से ग्रासमान अधिक हो जाय तो छाद्य बिम्ब को आच्छादित करते हुए आकाश का भी ग्रास हो जाने से ऐसी स्थिति में खग्रास ग्रहण होता है ॥४॥

उदाहरण:—चन्द्रग्रहण में छादक भूभा बिम्ब = ३२।१२ छाद्य चन्द्र बिम्ब = १२।७ का योग ४४।१९ का आधा = २२।०९ योगार्ध २२।०९ में शरमान ७।५४ कम करने से ग्रासमान = १४।१२ में चन्द्र बिम्ब १२।७ से भी अधिक होने से १४।१५ − १२।७ = २।८ यह खग्रास मान हो जाता है ॥४॥

उपपत्तिः—अमान्त काल में सूर्य विम्ब के नीचे चन्द्र बिम्ब शीघ्र गतिक होने से पश्चिम से पूर्व जाते हुये सूर्य बिम्ब की पश्चिम पालि को दृष्टि से अवरोध करते हुए स्पर्श, मध्य एवं सूर्य बिम्ब के पूर्व बिन्दु का त्याग करते हुए आगे चले जाने से पूर्व में सुर्य ग्रहण का मोक्ष होता है और चन्द्रमा छाद्य सूर्य का छादक भी होता है । दोनों के बिम्ब योगार्ध से अल्प शर की स्थिति में ही ग्रहण होता है ।

पूर्णान्त समय में सूर्य से ६ राशि आगे अन्तरित चन्द्रमा बिम्ब पर सूर्य प्रकाश लगने से पृथ्वी की छाया सूर्य से ६ राशि की दूरी पर चन्द्र कक्षा में भी सूच्याकार होकर जाती है और चन्द्रमा का भूच्छाया प्रवेश होने से भूच्छाया ही चन्द्रमा की छादक और चन्द्रमा छाद्य होता है । ग्राह्य ग्राहक बिम्बयोगार्ध से कम शर में ही ग्रहण लगता है ।

क्षेत्र देखिए



अ क रेखा = चन्द्रमार्ग
क ब रेखा = सूर्यमार्ग
चं० = चन्द्र बिम्ब, सू० = रवि बिम्ब
चं० सू० = चन्द्र शर, यम = ग्रासमान
चं० सू० = च म + म य + य सू० अर्थात्
चन्द्र बिम्बार्ध + रवि बिम्बार्ध − शर = मय
= ग्रासमान स्पष्ट है ॥४॥

मानैक्यखण्डमिषुणा सहितं दशघ्नं
छन्नाहतं पदमतः स्वरसांशहीनम् ।
ग्लौविम्बहृत् स्थितिरियं घटिकादिका स्या-
न्मर्दं तथा तनुदलान्तरखग्रहाभ्याम् ॥५॥

मल्लारिः

अथ ग्रहणस्य स्थितिसाधनमाह। मानैक्यखण्डमिषुणा शरेण सहितं ततो दशभिर्हन्येत तत् तथा। ततश्छन्नेन ग्रासेन आहतं गुणितम्। अतः पदं मूलं तत् चन्द्रविम्बभक्तं घटिकादिका स्थितिः स्यात्। तथा तनुदलान्तरखग्रहाभ्यां मर्दं स्यात्। तद्यथा। विम्बार्धान्तरं शरयुक्तं खग्रासगुणम्। अतो मूलं स्वषडंशहीनं चन्द्रविम्बभक्तं घटिकादिकं मर्दं स्यादित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। समायां भुवि अभीष्टव्यासार्धेन वृत्तमालिख्य दिगङ्कं कृत्वा या पूर्वापरा वृत्तरेखा ततः स्वदिशि माध्यग्रहणिकं शरं प्रसार्य तदग्रे बिन्दुः कार्यः। ततस्तदग्रसूत्रस्पृक् पूर्वापरायता रेखा कार्या सा विमण्डलरेखा। ततो ऽपवृत्तरेखामध्ये कृत्वा भूभाव्यासार्धेन यद्वृत्तमुत्पद्यते तद्भूभावृत्तम्। ततो विक्षेपाग्र बिन्दुं मध्यं कृत्वा ग्राह्यविम्बार्धेन यद्वृत्तमुत्पद्यते तच्चन्द्रवृत्तम्। तच्चन्द्रभूभावृत्तान्तयोः परस्परमनुप्रवेशो ग्रासः। अत्र स्पर्शान्मध्यग्रहणं यावद्येन मार्गेण छादको गच्छति तस्यछादकमार्गस्य प्रमाणं ज्ञातुं त्रिभुजकल्पना कृता। सा यथा। ग्राह्यग्राहकयोरवश्यं मानैक्यार्धं तुल्यमन्तरं स एव कर्णः। मध्यग्रहणकालिकः शरः कोटिः। कोटिकृतिं कर्णकृतेर्विशोध्य मूलं पूर्वापरो भुजो भवति। अत्र वर्गान्तरं योगान्तरघातसममतो मानैक्यखण्डशरयोर्योगो मानैक्यखण्डशरान्तरेण गुण्यो वर्गान्तरं भवति। मानैक्यखण्डमिषुणा सहितं छन्नाहतमिति सिद्धम्। ततस्तदंगुलात्मकं जातं कलीकरणार्थं गुणः ३। ततो घटी करणार्थमनुपातः। यदि गत्यन्तरकलाभिः षष्टिघटिकास्तदाऽभिभुजकलाभिः किमिति। फलं स्थित्यर्धघटिकाः। एवं मानैक्यखण्डशरयोगस्य ग्रासगुणस्य पूर्वं गुणः ३। इदानीं षष्टिर्गुणः। एवं जातो गुणघातो गुणः १८०। गत्यन्तरं हरः गुणहरावष्टषष्ट्या-६८ ऽपवर्त्तितौ जातं गुणस्थाने सावयवं ३।३८।२०। हरो गत्यन्तरं यावदष्टषष्ट्या भाज्यते तावच्चन्द्रविम्बमेव हरः। अत्र खण्डगुणनार्थं सषडंशत्रयमितो गुणो धृतः। अत्र मूलं गृहीत्वाऽनेन गुण्यम्। अत्राचार्येणा-३।१० स्य गुणस्य वर्गं कृत्वा-१० ऽनेन वर्ग एव प्रथमं गुणितस्ततो मूलं गृहीतं तुल्यमेव भविष्यति यतो 'वर्गेण वर्गं गुणये' दित्याद्युक्तमिति। अतो दशघ्नं ततो मूलमित्युक्तं पूर्वं गुणण्डस्थाने एतावधिकं गृहीतम् ०।३१।४० इदं षड्भिः सवर्णितं जातम् ३।१०। पूर्वगुणतुल्यं जातमतः स्वरसांशहीनमिति। चन्द्रविम्बं हरोऽस्ति। अतो ग्लौविम्बहृदिति। एवं स्थितिघटिकाः स्युरित्युपपन्नम्। अथ मर्दानयने युक्तिः। तत्र संमीलनकाल विम्वान्तरार्धतुल्यं ग्रहकेन्द्रयारन्तरं भवति स च कर्णः। मध्यशरः कोटिः। अनयोर्वर्गान्तरात् स्थितिवन्मर्दसिद्धिर्भवतीति।

अनुपातसादृश्यात् । अत उक्तंतनुदलान्तरखग्रहाभ्यां मर्दामिति । एवं कृते स्थितिमर्दयोः खण्डे न सकले । यतः स्पर्शान्मध्यपर्यन्तमेकं स्थितिखण्डं मध्यान्मोक्षपर्यन्तमेकं स्थितिखण्म् । तथैव मर्दखण्डमपि । मर्दखण्डं तु खग्राससम्भवे नान्यथेत्यर्थत एव सिद्धम् ॥५॥

विश्वनाथः

अथ स्थितिघटिकामर्दानयनमाह मानैक्येति । मानैक्य खण्डम् १९।३८। इषुणाशरेण २।५० सहितम् । २२।२८ । दशघ्नं २२४।४० । छन्नेन १६।४८ गुणितम् ३७७४।२४ । इदं वारद्वयं षट्या सवर्णिम् १३५८७८४० । अस्य मूलम् ६१।२६ । इदं स्वषडंशेन १०।१४ हीनं ५१।१२ ग्लौविम्बेन ११।७ भक्तं फलं जाता घटिकादिस्थितिः ४।३६ । तनुदलान्तरखग्रहाभ्यां तथा स्थितिवन्मर्दं साध्यम् । एतदुक्तं भवति । तयोर्विम्बयोर्दले खण्डे तयोरन्तरं कार्यम् । चन्द्रग्रहे चन्द्रभूभाविम्बदलान्तरं कार्यं सूर्यग्रहे सूर्यचन्द्रविम्बदलान्तरमित्यर्थः । खग्रहः खग्रासः । ताभ्यामित्यर्थः ।

उदाहरणम् । चन्द्रविम्बम् ११।७ । भूभाविम्बम् २८।१० । चन्द्रविम्बदलम् ५।३३ । भूभाविम्बदलम् १४।५ । अनयोरन्तरम् ८।३२ । इषुणा २।५० सहितम् ११।२२। दशध्नम् ११३।४० । खग्रासेन ५।४१ गुणितम् ६२६।० । इदं वारद्वयं षष्टया सवर्णितम् । २३२५६०० । अस्य मूलम् २५।२४ । इदं स्वषडंशेन ४।१४ हीनम् २१।१० । चन्द्रविम्बेन ११।७ भक्तं फलं घटिकादिक मर्दम् १।५४ ॥५॥

केदारदत्तः

पाँच (५) युक्त मानैक्य खण्ड को दश (१०) से गुणा कर गुणनफल को पुनः ग्रासमान से गुणा कर उसका मूल लेकर मूल में भी उसी का षष्ठांश कम कर शेष में चन्द्र बिम्ब का भाग देने से लब्धफल घटिकादि स्पष्ट स्थिति हो जाती है । इसी प्रकार दोनों विम्बों के अन्तरार्ध और खग्रास से मर्दघटी का साधन करना चाहिए ।

उदाहरण—भूभा वि० ३३।१२ चन्द्र वि० १२।७ का योगार्ध ४५।१९ ÷ २ = २२।३४ में शर ७।५४ जोड़ने से ३०।२८ को १० से गुणा करने से ३०४।४० गुणनफल को पुनः ग्रासमान १४।५६ से गुणा कर मूल लेने से मूल ६७।१४ में मूल का षष्ठांश १०।.... मूल में कम करने से ५५-२२ । होता है। इस में चन्द्र बिम्ब का भाग देने से घटिकादिक स्थिति ४।३१....आती है । इसी प्रकार चन्द्र विम्ब व भूभा विम्बों के अन्तरार्ध वश मर्दघटिका का ज्ञान करना चाहिए ॥५॥

उपपत्तिः—स्पर्श काल से ग्रहण मध्यकाल तक स्पर्श एवं मध्य से मोक्ष तक मोक्ष स्थिति तथा सम्मीलन समय से मध्य एवं उन्मीलन से मोक्ष काल तक मर्दस्थितियाँ होती हैं ।

स्पर्शकाल में छाद्यछादक विम्बों का योगार्ध के तुल्य दोनों विम्बों का केन्द्रान्तर = कर्ण, शर = कोटि, दोनों का वर्गान्तर मूल क्रान्तिवृत्त में स्थिति कला यह एक चापीय क्षेत्र होता है । त्रिगुणित अंगुलात्मक मान = कलात्मक होता है । भुजवर्ग=स्थिति $\text{कला}^2 = ९$ मा $\text{खं}^2 - \text{शर}^2 = ९$ (मा ऐ$\text{रव}^2 - \text{शर}^2$) = ९ (मा० ए० ख + शर) (मा ऐ ख − शर) =

(मा ए खं + शर) ग्रास, अनुपात से $\frac{३६०० \times (\text{मा ए खं} + \text{शर}) \times \text{ग्रास}}{(\text{चं०गति} - \text{सूर्यगति})^{२}}$

$$= \frac{९ \times ३६० \times १० \ (\text{मा० ऐ खं} + \text{शर}) \times \text{ग्रास}}{(\text{च ग} - \text{र ग})^{२}}$$

मूल लेने से स्थिति घटिका $= ७५ \times \sqrt{\frac{१० \times (\text{मा० ए ख} + \text{शर}) \times \text{ग्रास}}{\text{चं० ग} = \text{सू० ग}}}$

$$= \frac{५७}{६८} \frac{\sqrt{१० \ (\text{मा ऐ खं} + \text{श}) \ \text{ग्राम}}}{\frac{\text{चं०ग}}{६८} - \frac{\text{सू०ग०} \times \text{चं०ग०}}{६८ \times \text{चं०ग०}}}$$

$$= \frac{५}{६} \times \frac{\sqrt{१० \ (\text{माएखं} + \text{शर}) \times \text{ग्रास}}}{\frac{\text{चं०ग}}{६८} - \frac{\text{चं० ग} \times १}{६८ \times १३}} \left(\text{यतः} \ \frac{\text{सू०ग०}}{\text{चं०ग०}} = \frac{१}{१३} \right)$$

स्वल्पान्तर से

$$= \frac{१० \ (\text{मा० ऐ खं०} + \text{शर}) \times \text{ग्रास}}{\frac{\text{चं०ग०}}{७४}} = \frac{५}{६} \times \sqrt{\frac{१० \times (\text{मा०ए०ख} + \text{शर}) \times \text{ग्रास}}{\text{चन्द्र बिम्ब}}}$$

इसी प्रकार मा० ऐ० द० की जगह मानान्तर दल लेने से यह घटिका का ज्ञान सुगम है ॥५॥

युग्माहतैर्व्यगुभुजांशसमैः पलैः सा
द्विष्ठा स्थितिर्विरहिता सहिताऽर्कषड्भात् ।
ऊने व्यगावितरथाऽभ्यधिके स्थिती स्तः
स्पर्शान्तिमे क्रमगते च तथैव मर्दे ॥६॥

मल्लारिः

अथ स्पर्शमोक्षस्थितिसाधनमाह । युग्माहता द्विगुणिता ये व्यगोर्भुजांभस्तन्मितैः पलैः सा द्विष्ठा स्थितिर्विरहिता सहिता सती स्पर्शमोक्षयोः स्थितिः स्यात् । इदं कदा-तदाह । अर्कषड्भाद्द्वादशराशिभ्यः षड्राशिभ्यश्चव्यगौ उने सति । अधिके सति इतरथा विपरीतम् यत्र विरहिता सा मोक्षस्थितिः मर्देऽपि तथैव कार्ये ।

अत्रोपपत्तिः । अत्र त्वसकृत्प्रकारेण स्थितिखण्डे साध्ये ते यथा । स्थिति-खण्डेन गतिर्गुण्याषष्टया भाज्या फलं स्पर्शार्थं ग्रहेषु हीनं मोक्षार्थं युक्तं तेभ्यः पुनः शरादिकं विधाय पृथक् स्थितिखण्डे साध्ये । पुनस्ताभ्यां स्थितिखण्डाभ्यां रविराहू चाललयित्व स्थिती कार्ये । एवमसकृत् समे भवतः । इदं जडकर्म दृष्ट्वा आचार्येणेत्थमनुकल्पोऽङ्गीकृतः । द्विगुणितव्यगुभुजभागतुल्लानि फलानि मध्यस्पर्श-स्थित्यन्तराले मध्यमोक्षस्थित्यन्तराले च स्वल्पान्तरत्वात्तुल्यान्येवदृष्टानि । अतो

द्विगुणितव्यगुभुजभागतुल्यैः फलैः सा स्थितिर्द्विष्ठायुतोना मोक्षस्पर्शस्थितिखण्डे भवत इत्युपपन्नम्। युतोनितस्योपपत्तिर्यथा। षड्भार्कभोने व्यगौ सति स्पर्शकालार्थं ऋण-चालनं दत्त्वा मध्यकालीनान्न्यूने सति भुजवृद्धिरतः शरवृद्धिः। शरवृद्धौ स्थितेरल्पत्वम्। अतो विरहिते सति मोक्षार्थं धनचालने दत्ते व्यगोराधिक्यं तत्र भुजशराल्पत्वात् स्थितेराधिक्यम्। अतः सहितेति। अर्कषड्भादधिके व्यगौ अग्रे भुजवृद्धिः पूर्वं भुजह्रासः। अतो विपरीतमिति। एकक्षेत्रमूलत्वात् स्थित्यर्धवन्मर्दार्धे अपि कार्ये इत्युपपन्नम् ॥६॥

विश्वनाथः

अथ स्पर्शमोक्षस्थितिमर्दानयनमाह। युग्मेति। व्यगोर्ये भुजांशास्ते द्विगुणिताः श्रार्या। तत्तुल्यैः पलैः सा पूर्वोक्ता द्विष्ठा स्थितिविरहिता सहिता कार्या कस्मिन् सति। अर्कषड्भादूने व्यगौ सति द्वादशराशिभ्यः षड्राशिभ्यऊने व्यगौ सतीत्यर्थः। अधिके इतरथाऽन्यथा कार्यम्। सहितारहिता चेति क्रमगतेन स्पर्शान्तिमे स्पर्शमोक्षजे स्थिति स्तः। तथैव स्थितिवन्मर्दे साध्ये। अर्कषड्भादूने व्यगावित्यत्र राश्यंशैकना-धिकता ज्ञेया। तद्यथा। विराह्वर्कस्सेकादशराशिषोडशांशानारभ्य शून्यराश्याद्य-वयवपर्यन्तं स द्वादशाधिको ज्ञेयः। एवं यिराह्वर्कस्य पञ्चराशिषोडशांशमारभ्य षड्राशिपर्यन्तं स षड्भादूनो ज्ञेयः। षड्राशिमारभ्य चतुर्दशांशपर्यन्तं स षड्भाद-धिको ज्ञेयः।

उदाहरणम्। धटिकादि स्थितिः ४।३६ अर्कमध्ये ऊनितो राहुः स व्यग्यर्कः। व्यगुभुजांशाः १।४८।४८ युग्माहताः ३। विराह्वर्कस्य द्वादशराशिभ्योऽधिकत्वात् सहिता जाता स्पर्शस्थितिः ४।३९ विरहिता जाता मोक्षस्थितिः ४।३३ मर्दम् १।५४ युग्माहतैर्व्यगुभुजांशासमैः पलैः सहितं जातं संमीलनमर्दम् १।५७ रहितं जातं मोक्ष-मर्दम् १।५१ ॥६॥

केदारदत्तः

राहु रहित रबि का नाम व्यगु हैं। यदि १२ चौर ६ राशि से व्यगु कम हो (सम-पदीय होने से) तो द्विगुणित व्यगु के भुजांश तुल्य पलों को दो जगह स्थापित स्थिति घटिका में घटाने से स्पर्श और जोड़ने से मोक्ष स्थिति होती है।

यदि १२ या ६ राशि से व्यगु अधिक हो। विषमपदीय होने से तो द्विगुणित व्यगु भुजांश तुल्य पलों को पूर्वागत स्थिति घटी में जोड़ने से स्पर्श एवं घटाने से मोक्ष स्थितियाँ होती है।

इसी प्रकार मर्द में भी उक्त संस्कार करने से सम्मीलन एवं उन्मीलन समय स्पष्ट होते हैं ॥६॥

उदाहरण:—विराह्वर्क = व्यगु = ०।५।२।० भुधांश = ५।२।० को २ से गुणा करने से १०।४ पलात्मक को पूर्वसाधित स्थिति = ४।३१ में जोड़ने से घटयात्मक ४।४१

घटाने से घट्यात्मक ४।२१ क्रमशः स्पर्श और मोक्ष स्थितियाँ होती हैं। इसी प्रकार उक्त पलों का सम्मीलनोन्मीलन में भी संस्कार करने से स्पष्ट सम्मीलन एवं उन्मीलन होते हैं।

उपपत्ति—विराह्वर्क भुजांश = वि० भु०। शर = $\frac{\text{वि०भु०} \times ११}{७}$। भास्कराचार्य के शराच्छरघ्नात् द्विहताच्चतुर्भि…से पलात्मक संस्कारमान = $\frac{५ \times \text{शर}}{४} = \frac{\text{विभु} \times ११ \times ५}{७ \times ४}$ = २ × विराह्वर्क स्वल्पान्तर से उपपन्न होता है ॥६॥

तिथिविरतिरयं ग्रहस्य मध्यः
स च रहितः सहितो निजस्थितिभ्याम् ।

ग्रहणमुखविरामयोस्तु काला—
विति पिहितापिहिते स्वमर्दकाभ्याम् ॥७॥

मल्लारिः

अथ स्पर्शकालादिनाधनं कथयति तिथेर्गणितागता या विरतिरन्तोऽयं ग्रहस्य ग्रहणस्य मध्यः। स मध्यकालः। निजे ये स्थिती ताभ्यां विरहितः सहितः सन् ग्रहणमुखं स्पर्शो विरामोमोक्षः। तयो कालौ भवत् इत्यनेनैव प्रकारेण स्वमर्दकाभ्यां पिहितापिहिते संमीलनोन्मीलने भवतः। एतदुक्तं भवति। तिथ्यन्तकालोग्रहस्यमध्यः। स चतुर्षु स्थानेषु स्थाप्यः स्पर्शस्थित्या न्यूनः स्पर्शकालः स्यात्। अन्यत्र मोक्षस्थित्या युक्तो मोक्षकालः स्यात्। तथा प्रथमंमर्दनोने मध्यः संमीलनकालो भवति द्वितीयमर्देनान्यत्र युक्तो मध्य उन्मीलनकालः।

अत्रोपपत्तिः। मध्यकालात् पूर्वं स्थित्यर्धकालेन स्पर्शोभवत्येवातो मध्यकाले स्पर्शस्थितिर्न्यूना कृता। मोक्षकालस्तु मध्यादग्रतो मोक्षस्थित्यर्धेन भवत्यतो मोक्षस्थितियुक्तो मध्यो मोक्षो भवतीत्युपपन्नम्। तथैव मध्यान्मर्दार्धतुल्यकालाभ्यां संमीलनोन्मीलने भवत् एव ॥७॥

विश्वनाथः

अथ मध्यग्रहणस्पर्शकालमोक्षसंमीलनकालसाधनमाह। तिथिविरतिरिति। तिथेर्गणितागतायाविरतिरन्तोऽयं ग्रहस्यग्रहणस्य मध्यो मध्यग्रहणकालो भवति। य आगतोग्रासस्तस्य ग्रसनं यत् तन्मध्यग्रहणम् स मध्यग्रहणकालो निजस्थितिभ्यां स्पर्शमोक्षजस्थितिभ्यां रहितः सहितः स्पर्शस्थित्या रहितो मोक्षस्थित्या सहितो ग्रहणमुखविरामयोः ग्रहणमुखं स्पर्शः। विरामी मोक्षः। तयोः कालौ समयौ स्तः। स्पर्शोग्रासस्य प्रारम्भः मोक्षो ग्रासाभाव इति। अनेन प्रकारेण मर्दकाभ्यां पिहितापिहिते ग्रासे स्तः। मध्यग्रहणकालः स्पर्शमोक्षमर्दाभ्यां रहितः सहित क्रमेण पिहितापिहितेस्तः

संमीलनोन्मीलनेस्त इत्यर्थः। संमीलनं सर्वविम्बग्रासः खग्रासे। उन्मीलनं विम्बोन्मुक्तिप्रारम्भकाल इत्यर्थः।

उदाहरणम्। तिथिविरतिरयं ग्रहणमध्यः ४०।४८ स्पर्शस्थित्या ३।३९ रहितो जातः स्पर्शकालः ३६।९ मोक्षस्थित्या ४।३३ युक्तो जातो मोक्षकालः ४५।२१ तिथिविरतिः ।४०।४८ स्पर्शमर्दन १।५७ रहितो जातः समलिनकालः ३८।५१ मोक्षमर्दन १।५१ सहितो जात उन्मीलनकालः ४२।३९ ॥७॥

केदारवत्तः

गणितागत पर्वान्त काल ग्रहण का मध्यकाल होता है। मध्यकाल में स्पर्श स्थिति कम करने से स्पर्शकाल और मोक्ष स्थिति जोड़ने से मोक्षकाल होता है। इसी प्रकार मध्यकाल पर्वान्तकाल में सम्मीलन स्थिति घटाने से सम्मीलन काल उन्मीलन स्थिति जोड़ने से उन्मीलन काल होता है ॥७॥

उदाहरण—पूर्णान्त काल ग्रहण मध्यकाल =२६।५८ में स्पष्ट स्पर्श स्थिति ४।४१ को घटाने से ग्रहण स्पर्श काल = २२।१७ एवं स्पष्ट मोक्ष स्थिति ४।२१ को जोड़ने से ३१।१८ ग्रहण मोक्ष काल होता है। इसी प्रकार सम्मीलन और उन्मीलन काल भी समझने चाहिए।

जिन देशों में दिन में ही पूर्णान्त होगा वहाँ ग्रहण दृश्य नहीं होगा।

ध्यान देने की बात—जिन देशों, नगरों एवं स्थानों में चन्द्रोदय के समयों के मध्य में ग्रहण का स्पर्श मोक्षादि मणितागत काल होगा वहीं ग्रहण दृश्य होगा। और भूपरिधि के जिन देशों में चन्द्रमा का ही उदय नहीं देखा जा सकेगा वहाँ ग्रहण नहीं दिखाई देने से ग्रहण का आदेश नहीं करना चाहिए गणितगत ग्रहण काल भले ही आ रहा है। तारतम्य से देशाधिप्रायिक ग्रहण स्पर्शादिकों का विचार करना चाहिए ॥७॥

पिहितहतेष्टं स्थितिविहृतं तत्।
सचरणभूयुग्ग्रसनमभीष्टम् ॥८॥

मल्लारिः

अथेष्टकाले ग्रासमानयति। पिहितेन ग्रासेन हत गुणितं यदिष्टं घटिकाद्यं स्थित्या विहृतं कार्यम्। चेत् स्पर्शकालिकमिष्टं तदा स्पर्शस्थित्या भाज्यम्। मोक्षेष्टं चेत् तदा मोक्षस्थित्या भाज्यमिति। तत् फलं द्विष्ठं सचरणभुवा सपादैकेन युगभौष्टं ग्रसनमंगुलाद्यं स्यादिति व्याख्या ॥

अत्रोपपत्तिः। अत्रेष्टकर्णं प्रसाध्य तदूनमानैक्यखण्डं कृत्वा यच्छेषं तदिष्टकाले छन्नं स्यात्। इष्टकर्णानयने प्रयासोऽस्ति। अतो लाघवार्थमनुपातः कल्प्यः। यदि स्थितिघटीभिर्यथागतो ग्रासस्तदेष्टघटीभिः किमिति। अतः पिहितहतेष्टं स्थिति-

विहृतमिति। अत्रानुपातस्यासम्भवः। वृत्तक्षेत्रपरिध्याश्रितत्वादप्राप्तावपि प्राप्तिः कृता। अतो महदन्तरं स्यात्। तत्रानुकल्पेनेत्थमङ्गीकृतम्। सचरणभूयुक् सूक्ष्मासन्नं भवति ॥८॥

विश्वनाथः

अथेष्ट ग्रासानयनमाह। पिहितेति। पिहितेन ग्रासेन हतं गुणितं यदिष्टं घटिकात्मकं स्वस्थितेर्यथा न्यूनं तथेष्टं कल्प्यम्। तत् स्वस्थित्याविहृतं कार्यम्। चेत् स्पर्शकालिकमिष्टं तदा स्पर्शस्थित्या भाज्यम्। मोक्षकालिकमिष्टं चेन्मोक्षस्थित्या-भाज्यमिति। तत्फलं सचरणभुवा सपादरूपेण १।१५ युतमभीष्टग्रसनमिष्टग्रासो भवति। स्पर्शादग्रे यदिष्टं तत् स्पर्शेष्टं मोक्षात् प्रागिष्टं मौक्षेमिति ध्येयम्।

उदाहरणम्। स्पर्शानन्तरं कल्पितमिष्टं घटीद्वयम् २। ग्रासेन १६।४८ गुणितम् ३३।३६। स्पर्शस्थित्या ४।३९। विहृतम् ७।१३ सचरणम् १।१५ युक्तम्। जातमभीष्ट-ग्रसनम् ८।२८ ॥८॥

केदारदत्तः

इष्ट से गुणित ग्रासमान में स्थितिघटी का भाग देवे जोड़ने से लब्ध फल में १$\frac{1}{4}$ और जोड़ने से अभीष्ट कालीन अंगुलादिक ग्रासमान हो जाता है ॥८॥

उदाहरण—स्पर्श काल के अनन्तर दो घटी = (४८ मिनट में) विम्ब में 'कितना ग्रास होगा ?' इस प्रकार के प्रश्नों के समाधान के लिए ग्रासमान = १४।१६ × इष्ट घटी = २ = २७।३० में स्पर्श स्थिति = ४।४० का भाग देने से ६।१५।१५ और जोड़ने से = ७।९५ अंगुल इष्ट समय में ग्रास होता है।

उपपत्तिः—स्पर्श से मध्यकाल या मध्य से मोक्षकाल तक के बीच में इष्ट कालीन ग्रहणांगुल ज्ञान अनुपात से, स्थिति घटी में साधित ग्रासमान उपलब्ध होता है—स्पार्शिक या मौक्षिक इष्टकाल में इष्ट कालिक ग्रास अनुपात से उपलब्ध होगा। प्रतिक्षण में शर छाया, क्रान्ति आदि के गतियों की बिलक्षणता को समझ कर आचार्य ने तारतम्य से १$\frac{1}{4}$ अंगुल और अधिक जोड़ने की बात कही है वह सयुक्तिक सही है ॥८॥

त्रिभयुतोनरविः स्वविधुग्रहे ऽयनलवाढ्य इतश्चखदलैः।
नगशरेन्दुमितैर्वलनं भवेत् स्वरविदिक् त्वथ मध्यनताच्च यत् ॥९॥

मल्लारिः

अथ मध्यस्पर्शमोक्षादिदिग् ज्ञानार्थं तदुपयोगि वलनद्वयं साधयिषुस्तावदायने साधयति। स्वविधुग्रहे त्रिभयुतोनरविः कार्यः। सूर्यग्रहणे रविस्त्रिभयुतः कार्यः। चन्द्रग्रहणे रविरेव त्रिभोनः कार्यः। ततः सोऽयनलवैरयनांशैराढ्यो युक्त कार्यः। इतः सायनसूर्यात्। नगशरेन्दुमितैर्दलैः खण्डैः चरवत् यथा चरं क्रियते तथा कार्यं तदायन-वलनं भवति। तस्य दिशमाह। स्वरविस्त्रिभयुतोनो यस्मिन् गोलेऽस्ति तद्दिगित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः । वलनं साध्यम् । अहो किं नाम वलनम् । कस्मात् किं वलतीत्युच्यते । सममण्डलप्राच्याः सकाशान्नाडिकामण्डलप्राची यावताऽन्तरेण वलति यदाक्षवलनमन्वर्थं नाम । यतो नाडिकासमण्डलयोरन्तरमक्षांशा एव । तथैव नाडीमण्डल प्राच्याः क्रान्तिमण्डलप्राची यावता ऽन्तरेण वलति तदायनं वलनम् । अयनसम्बन्धित्वादायनम् । तदादौ साध्यते । गोलसन्धौ तु यद्यपि नाडिकामण्डलक्रान्तिमण्डलयोगोऽस्ति तथाऽपि प्राच्योर्ऋजुमार्गेण परममन्तरम् । अयनसन्धौ तु क्रान्तिवृतनाडीवृत्तयोर्यद्यपि परममन्तरं तथाऽपि ऋजुमार्गात् प्राच्यन्तराभावोऽतोऽयनसन्धौ वलनाभावः । गोलसन्धौ परमम् । गोलसन्धौ ग्रहस्य दोर्ज्याभावात् कोटिज्या परमा । अयनसन्धौ दोर्ज्यापरमत्वात् कोटिज्याऽभावः । यत्र कोटिज्यापरमत्वं तत्रायनवलनस्य परमत्वं यत्र कोटिज्या ऽभावस्तत्रायनवलनाभावोऽस्त। कोटिज्यातो वलनं साध्यम् । तत्र ग्रहः सत्रिभः । तस्य भुजज्या कोटिज्यैव प्रत्यक्षं भवतित्त । एवं सूर्यग्रहणे सूर्यस्त्रिभ—युक्त इति । चन्द्रग्रहणे चन्द्रस्यापि त्रिभं योज्यम् तत्र सूर्यचन्द्रयोः षड्भान्तरत्वाद्भुजतुल्यत्वम् । अतो खावेव त्रिभं देयम् । परमत्र त्रिभं हीनं कार्यं गोलान्यत्वसद्भावात् । ततः सायनः कार्य एवायनसम्बन्धित्वाद्तास्त्रिभयुतोनसायनरविदोर्ज्यातो वलनसाधनेऽनुपातो यथा । यदि त्रिज्या–१२० तुल्यया दोर्ज्यया परमक्रान्तिज्यातुल्यमायनं वलनं ४८।४५ तदेष्टया किमिति । अन्योऽनुपातः । यदि द्युज्यावृते इदं तदा त्रिज्यावृत्ते किमेवं जाताऽऽयनवलनज्या । अस्या धनुरायतं वलनं स्यात् । तत्रेदं गुरुकर्म दृष्ट्वा आचार्येण राशित्रयमध्ये प्रतिराशिवलनानि प्रसाध्य तान्यधोऽधो विशोध्य खण्डानि कृतानि ७।५।१ । एवं तानि वलनानि । अन्यत्र सम्पूर्णज्यावद्वलनप्रदानार्थं द्विगुणानि कृतानि सन्ति । एवमेभिः खण्डैश्चरवद्वलनं साधनम् । यतश्चरखण्डान्यपि राशित्रयमध्ये त्रीण्येव सन्ति । अतो भुजर्क्ष संख्याचरार्धयोग इत्यादि सममेव ।।९।।

विश्वनाथः

अथ वलनसाधनमाह । त्रिभेति । स्वविधुग्रहे त्रिभयुतोनरविः कार्यः । सूर्यग्रहे रविस्त्रिभयुतः कार्यः। चन्द्रगृहे रविस्त्रिभोनः कार्यः। अयनलवाढ्योऽयनांशयुक्तः कार्यः । इतोऽस्मान्नगशरेन्दुमितैर्दलैः खण्डकैश्चरसाधनोक्तवत् साध्यम् । तदायन वलनं भवेत् । तत् स्वरविदिक् त्रिभयुतोनः सायनो यस्मिन् गोलेऽस्ति तद्दिगित्यर्थः ।

उदाहरणम् । रविः ८।०।१२।६ चन्द्रग्रहणस्य विद्यमानत्वात् त्रिभोनः ५।०।१२।२ अयनांश–१८।१८ युक्तः ५।१८।३०।६ अस्यभुजः । ०।११।२९।५४ । भुजे राशिस्थाने शून्यमस्ति । अतो नगशरेन्दमित–७।५।१ खण्डकं न प्राप्तं शेषं ११।२९।५४ । भोग्यखण्डकेन ७ गुणितं ८०।२९।१८ त्रिशद्भक्तं फलम् । २।४० । अनेन युक्तो गतखण्डः ० । योगेजातं वलनम् २।४० । त्रिभोन सायनखेरुत्तरगोलत्वादुत्तरम् ।।९।।

केदारदत्तः

सूर्य और चन्द्र ग्रहण में पृथक्-पृथक् क्रमशः स्पष्ट सूर्य में ३ राशि जोड़ कर तथा चन्द्र ग्रहण में ३ राशि घटाकर शेष में अयनांश जोड़कर तीन राशियों के चर खण्डों की तरह

७।५।१ को चर खण्डा मानकर चर साधन की तरह चर साधन कर जो उपलब्धि हो वही सूर्य की दिशा की तरफ का अयन वलन होता है ॥९॥

उदाहरण—स्पष्ट सूर्य ४।१९।३१।५० में चन्द्रग्रहण है, अतः ३ राशि कम करने से १।१९।३१।५० होता है। इसमें अयनांश = २३।३४।१६ जोड़ने से २।१३।६।६ उत्तर गोलीय सायन सूर्य हुआ।

अतः २।१३।६।६ सा० सू० और ७।५।१ को चरखण्डा मानकर १२।२६।२२ त्रिभोन सायन सूर्य की उत्तरगोलीय स्थिति होने से वलस = १२।२६।२२ उत्तर गोलीय अयन वलन होता है ॥९॥

उपपत्ति—त्रिज्या=१२०, जिन ज्या = ४८, सायन ग्रह की द्युज्या=११३ अनुपात से सायन ग्रह क्रांज्या $\frac{६० \times जिन ज्या}{त्रि} = \frac{६० \times ४८}{१२०}$ = त्रिज्या वृत्तीय होती है। द्युज्या वृत्त में परिणमन करने से ज्या वलन मान होता है। यथा—

$= \frac{६० \times ४८}{११३}$ दो से भाग देने से वलन के अंश = $\frac{३० \times ४८}{११३}$ = यह मान ३६०° की परिधि में होने से अनुपातसे मध्यममानीय ३२ अंगुलात्मक चन्द्रबिम्ब परिधि में $\frac{३० \times ४८ \times ३२}{११३ \times ३६०}$

= वलनांश होते हैं। ६ से गुणा करने से $\frac{३० \times ४८ \times ३२ \times ६}{११३ \times ३६०} = \frac{२४ \times ३२}{११३} = \frac{७८०}{११३}$

= ७ स्वल्पान्तर से प्रथम खण्ड उपपन्न होता है। इसी प्रकार द्वितीय और तृतीय खण्ड ५, १ भी० उपपन्न होते हैं।

सूर्यग्रहण में—स्प० चं० + स्प० सू० $\therefore$ स्प० सू० − ३ = स्प० चं० + ३ अर्थात् तीन राशि रहित रवि = सत्रिभ चन्द्रमा होता है। सत्रिभ ग्रह की क्रान्ति ज्या = द्युज्या वृत्तीय चन्द्रायन वलन ज्या होती है। तथा सायन सूर्य में तीन राशि कम करने से सूर्य की क्रान्ति ज्या, चन्द्रमा की अयन वलन ज्या होती है। अतः सायन त्रि राशि रहित सूर्य की क्रान्ति ज्या = चन्द्रबलन ज्या इत्युपपन्न होता है ॥९॥

विषयलब्धगृहादित उक्तवद्वलनमक्षहृतं पलभाहतम्।
उदगपागिह पूर्वपरे क्रमाद्रसहृतोभयसंस्कृतिरंघ्रयः ॥१०॥

मल्लारिः

एवमायनं वलनं प्रसाध्यदानीमाक्षजं वलनं साधयति मध्यनताच्च यत्। मध्यनतात् मध्यकाल द्युदलान्तरं नतं ततः विषयैः पञ्चभिर्लब्धं यद्गृहादि राश्यादि तत् उक्तवत् नगशरेन्दुमितैरेव खण्डैर्वलनं साध्यम्। तत् पलभया हतं गुणितमक्षैः पञ्चभिर्हृतं भक्तं कार्यं तदाक्षं वलनं भवति। तत् पूर्वपरे नते क्रमादुदगपाक् स्यात्।

पूर्वनते उत्तरं पश्चिमनते दक्षिणम् । एवमुभयोर्वलनयोर्या संस्कृतिः सा रसैः षड्भिर्हृता भक्ता सती अंघ्रयो वलनदिक् चरणाः स्युरित्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः । क्षितिजे यद्यपि नाडीमण्डलयोः सम्पातस्तथाऽपि प्राच्योर्ऋजुमार्गेण तत्र परमन्तरमक्षज्यातुल्यम् । खमध्य नाडिकामण्डलसममण्डलयोर्यद्यपि परममन्तरमस्ति तथापि ऋजुमार्गारम्भात् प्राच्योरन्तराभावः उदये परमक्षज्यातुल्यमाक्षं वलनं तत्र नतमपि परमम् । खमध्ये आक्षवलनाभावः । तत्र नतस्याभावः । अतो नताद्वलनं साध्यम् । अत्रानुपातो यथा । नतघटीनां पञ्चमांशो राशयः स्युः । यतः पञ्चदशघटीनां मध्ये राशित्रय एव । अतो नतस्य पञ्चमांशस्य दोर्ज्यातो वलनं साध्यम् । तद्यथा । यदि त्रिज्या—१२०

तुल्यया नतज्या अक्षज्यातुल्यं परमं वलने तदेष्टनतदोर्ज्यया किमिति । ततो द्युज्यावृते इदं तदा त्रिज्यावृते किमिति । अत्र लाघवार्थं पञ्चमिता पलभां प्रकल्प्य सार्धद्वाविंशति–२२।३० मितान् अक्षांशान् कृत्वा पञ्चसु पञ्चसु घटिषु त्रीणि वलनानि पृथक् प्रसाध्य तान्यधोऽधो विशोध्य ततोऽर्धानिकृत्वा वलनखण्डानि क्रियन्ते । तानि तु पूर्वायनतुल्यान्येव भवन्ति । अतस्तैरेव वलनमिति । परमेतद्वलनं पञ्च पलभा प्रमाणेन जातम् । स्वदेशीयकरणार्थमनुपातः । यदि पञ्चपलभा प्रमाणनेदं तदेष्टाक्षभया किमिति। अतोऽक्षहृतं पलभा हृतमिति। पूर्वापरेनते दक्षिणोत्तरमिति । अस्योपपत्तिर्गोलोपरि प्रत्यक्षतो दृश्यते । अथ रसहृतेत्यस्योपपत्तिः । अत्रेदं वलनं भागाद्यं वृत्तपरिधौ देयम् । अत्र एकमहादिङ्मध्येऽष्टौ चरणाः कृताः । ततोऽनुपातः । यदि चक्रांशैर्द्वात्रिंशत् सर्वं चरणा ३२ लभ्यन्ते तदेष्टवलनांशैः किमिति । गुणहरयोर्गुणेनापवर्तितयोर्लब्धा हरस्थाने ११।१५ । अत्र वलनार्धं कृतमस्यतो हरार्धं कृतम् ५।३७ ॥१०॥

विश्वनाथः

अथानन्तर्ये । अथ द्वितीयवलनं तत्संस्कृतिं तदघ्रींश्चाह विषयेति । तत्र मध्यकालीन नत साधनं यथा । पर्वान्तिकालीनचन्द्रमध्ये पर्वान्तिकालीन राहुः शोध्यः । एवं व्यगविधुकार्यः । तस्यभुजांशाः कार्याः । अस्मात् तेंऽशा निघ्नाः शङ्कुरैरित्यादिना शरः साध्यः वक्षमाणप्राक् त्रिभेनवर्जितात्—इत्यादिना दृक्कर्मकलाः साध्याः । एवं दृक्कर्मसंस्कृतश्चन्द्रः कार्यः । पर्वान्तिकालीन सूर्यात् लग्नं साध्यम् । वक्ष्यमाणग्रहच्छायाधिकारोक्त 'प्रागदृष्टिकर्मखचर'—इत्यादिना चन्द्रस्य दिनगतकालः साध्यः । दृक्कर्मसंस्कृतात् चन्द्रात् चरं साध्यम् । वक्ष्यमाणविधिना 'जिनाप्तोक्षाभाघ्नं' इत्यादिना स्पष्टं चरं कार्यम् । स्पष्टचरात् दिनार्धं साध्यम् । तत् चन्द्रदिनार्धं भवति । द्युगत दिनार्धयोरन्तरात् नतं कार्यम् ।

अस्योदाहरणम् । चन्द्रः २।०।१२।१ । राहुः ७।२८।२३।१८ । व्यगुर्विधुः ६।१। ४८।४४ । अस्य भुजांशाः १।४८।४४ । शरो दक्षिणः २।५० राशित्रयरहितचन्द्रः ११।०।१२।१ । अस्मात् क्रान्तिर्दक्षिणा ४।३५।५९ । अक्षांशा दक्षिणाः २५।२६।४२ ।

अनयो संस्कारे जाता नतांशा दक्षिणाः ३०।२।४१। अस्माद् दृक्कर्मकलाधनं ४।५८। संस्कृतश्चन्द्रः ?।०।१६।५९। दिनमानम् २६।१२ पर्वान्तकालः ४०।४८। सूर्यास्ताद्गत घटिका १४।३६ पर्वान्तकालीनसूर्यः ८।०।१२।६ भोग्यकालः ११६। लग्नम् ४।१८। १४।१४ दृक्कर्मसंस्कृतचन्द्रस्य भोग्यकालः ११५ लग्नस्य भुक्तकालः ७३। अनयोर्योगः १८८। कर्क–३४२। सिंहो–३४५ दयाभ्यां युक्तः ८७५। षष्टिभक्तः १४।३५। नवभिः पलैः रहितो जातश्चन्द्रोदयाच्चन्द्रस्य दिनगतकालः १४।२६। दृक्कर्मसंस्कृतचन्द्राच्चर-मुत्तरं घटिकाद्यम् १।५४। अंगुलमयः शरः २।५०। अक्षभा–५।४५ घ्नः १६।१७। जिना–२४ ह्रः। फलं पलात्मकं दक्षिणम् ०।४०। शरस्य दक्षिणत्वादनेन संस्कृताश्चर-घटिका जाताः स्पष्टाश्चरघटिका उत्तराः १।५३।२०। आभिः पञ्चदशघटिका युक्ताः। जातं चन्द्रस्य दिनार्धम् १६।५३। अस्य कर्मणो जाड्यत्वात् स्वल्पान्तरत्वाच्च यत् सूर्यस्य रात्र्यर्धं तदेव चन्द्रस्य दिनार्धमिति ज्ञेयम्। इदं चन्द्रस्य दिनगतकालेन १४।२६ रहितं जातं २।२७ पूर्वनतम्। द्युगतं दिनार्धाच्छुद्धं तदा पूर्वोन्नतम्। विपरीतशोधने पश्चिमनतं भवति। अयं चन्द्रग्रहणे पर्वान्तकालीननतसाधने मुख्यप्रकारः। अथवा सूर्यास्तात् पर्वान्तकालीनेष्टसूर्यरात्रिदलयोरन्तरं कार्यं तन्नतं भवति। यत् कार्यं तन्नतं भवति यत् सूर्यस्य रात्रिदलं तदेव चन्द्रस्य दिनार्धं तन्नतं दिनार्धादुपरि रात्र्यर्धपर्यन्तं पूर्वरात्र्यर्धादुपरि दिनार्धपर्यन्तं पश्चिमम्। पूर्वपश्चिमलक्षणं सूर्यग्रहणे विपरीतं ज्ञेयम्।

उक्तं च

अहर्दलाद्रात्रिदलावसानं यावत् कपालं कथयन्ति पूर्वम्।
ततो दिनार्धान्तमपूर्वमन्दोर्भानोर्भवेतां ग्रहणेऽन्यथा ते॥

एवं जातं मध्यनतं पूर्वम् २।२७ इदं विषयै-५ र्भक्तं फलं राशिः०। शेषं २।२७। त्रिंशद्गुणम् ६०।८१०। अधः षष्टिमुक्तं फलेनोर्ध्वं युक्तं जातम् ७३।३०। पुनर्विषयैर्भक्तं फलं भागाः १४। शेषम् ३।३०। षष्ठिगुणं पञ्चभिर्भक्तं फलं कलाः ४२। शेषं षष्टिगुणं विषयैर्भक्तं फलं विकला०। एवं जातं गृहादि ०।१४।४२।० अत उक्तवद् 'भुजर्क्षसङ्ख्यचरार्धयोग' इत्यादिना नगशरेन्दुमितैश्चरदलैर्वलनं कार्यम्। जत्रायनांशसंस्कारो नास्ति। तत् पलभाहतमक्षैः पञ्चभिर्हृतं तद्वलनमुदक् अपाक् भवति। कस्मिन् सति। क्रमात् पूर्वपरे नते सति। पूर्वनते उत्तरवलनं पश्चिमनते दक्षिणं स्यादित्यर्थः। उभयोर्वलनयोः संस्कृतिः। समदिशि योगो भिन्नदिशि अन्तरं सा संस्कृतिः रसहृता षड्भक्ता। अंघ्रयो वलनांघ्रयः स्युः। मध्यनताद्विषयलब्ध-गृहादि ०।१४।४२।० अस्माद्वलनम् ३।२५।४८। पलभया ५।४५ गुणितम् १९४३। भञ्चभक्तं जातं वलनमुत्तरम् ३।५६। पूर्वनतस्य विद्यमानत्वात्। पूर्वानीतं वलनः मुत्तरम् २।४७। उभयोः संस्कृतिः ६।३६। षड्भक्ता जाता वलनांघ्रय उत्तराः १।६।

अथ ग्रस्तोदिते ग्रस्तास्ते वलनसाधनार्थं नतज्ञानमाह—

स्पर्शादिकं यदि विधोर्दिवसस्य शेषे
यातेऽथवा द्युदलतद्विवरं रवेस्तु ।
रात्रेस्तदूनितनिशाशकलं क्रमात् स्यात्
प्राक्पश्चिमं नतमिदं वलनस्य सिद्ध्यै ॥

दिवसस्य शेषे विधोर्यदि स्पर्शादिकं स्यात् । अथवा दिवसस्य याते गते सति । आदिशब्दात् मध्यग्रहणमोक्षौ । दिवसस्य शेषे ग्रस्तश्चन्द्र उदेति प्रातः ग्रस्तोऽस्तमेति । यद्घटिकाभिः दिवसस्य शेषे गते वा स्पर्शादिकं तदा द्युदलतद्विवरं कार्यम् । द्युदलं सूर्यस्य दिनार्धम् । तद्घटिकादिकं तयोरन्तरं कार्यमित्यर्थः । प्राक्पश्चिमनतं स्यात् । दिनशेषे प्राग्नतं गते पश्चिमनतमिति । रवेस्तु रात्रिशेषे प्राग्नतं गते पश्चिम नतमिति । रवेस्तु रात्रि शेषे गते वा स्पर्शादिकं भवति । रात्रि शेषे गते व यावद्घटिकाद्येनावयवेन । स्पर्शादिकं तावता ऊनितं निशाशकलं रात्र्यर्धम् । तच्छेषं प्राक् परं नतं स्यात् । वलनस्य सिद्ध्यै वलनसाधनायेत्यर्थः । एतल्लक्षणव्यतिरिक्ते स्पर्शादिकं तदा 'यातः शेषः प्राक्' इति नतं कार्यमित्यर्थः ॥१०॥

केदारदत्तः

पूर्व श्लोक ९ से मध्यनत काल में ५ का भाग देने से लब्ध जो राश्यादिक हो उससे पूर्व के वलन प्रकार से जो वलन हो उसको पलभा से गुणाकर ५ से भाग देकर जो लब्धि हो, उसे पूर्वनत में उत्तर दिशा का, एवं पश्चिम नत में दक्षिण दिशा का आक्ष वलन समझना चाहिए। आक्ष और आयन वलनों के संस्कार (एक दिशा में योग, भिन्न दिशा में अन्तर) से जो फल हो इसमें ६ का भाग देने से लब्ध फल का नाम स्पष्ट वलन या ग्रहणारम्भीय दिक्चरण होता है।

ध्यान देने की बात है कि चन्द्र ग्रहण में दिन का उत्तरार्ध एवं रात्रि के पूर्वार्ध को पूर्व कपाल, तथा रात्रि के उत्तरार्ध और दिन के पूर्वार्ध काल को पश्चिम कपाल समझना चाहिए। पूर्वकपाल के भीतर में मध्यग्रहण में पूर्व नत एवं पश्चिम कपालीय मध्य ग्रहण में पश्चिम नत समझना चाहिए।

उदाहरण—दिनमान = ३१।४ रात्रिमान = २८।५६ दिनार्ध = १५।३२ रात्र्यार्ध = १४।२८ दिनमान में रात्र्यार्ध जोडने से ४५।३२, ग्रहण मध्यकाल = २६।५८ पूर्व कपालीय ग्रहण है। अतः दिनार्ध १५।३२ और ग्रहण मध्यकाल २६।५८ का अन्तर ॥ ११।२६ पूर्वनत हुआ।

स्पष्ट सूर्य = ४।१९।३१।५० में अयनांश जोड़ने से ५।१३।६।६ नत ११।२६ में ५ का भाग देते से २।१७।१२।० इसे सायन सूर्य मानकर ७।५।१ पूर्वगत की तरह चरखण्डों से १२।३४।२४ को पलभा ५।४५ से गुणा करने से ७२।१५ में ५ का भाग देने से १४।३७ यह भी उत्तर दिशा का आक्षवलन होता है। आक्षवलन व आयन वलन दोनों की एक दिशा होने से १४।२७ + १२।२६ = २७।३ में ६ का भाग देने से ४।३० यह उत्तर वलनांघ्रि होता है ॥१०॥

उपपत्ति—नत घटी से सूर्य सिद्धान्त द्वारा अक्षवलन ज्या $= \frac{\text{अक्ष ज्या} \times \text{नत ज्या}}{\text{त्रि}}$

$= (\text{अ})$ नतांश $=$ नत घटी $\times$ ६ $=$ अतः राश्यादिक $= \frac{\text{नतघटी} \times ६}{३०} = \frac{\text{नतघटी}}{५} = \text{ज्या} = \text{क})$

अक्ष क्षेत्रानुपात से, $\frac{\text{त्रिज्या} \times \text{पलभा}}{\text{पल कर्ण}} = \frac{१२० \times \text{पलभा}}{१३} = (\text{ग})$ क, ग, समीकरणों से

अ समीकरण मान को उत्थापित करने से $\frac{\frac{\text{नतघटी}}{५} \times \frac{\text{पलभा} \times १२०}{१३}}{\text{त्रिज्या}}$ अतः वलनांश $=$

$$\frac{\frac{\text{नतघटी}}{५}\,\text{ज्या} \times \frac{\text{पलभा} \times १२० \times ६}{१३}}{\text{त्रिज्या} \times २} = \frac{\frac{\text{नतघटी}}{५}\,\text{ज्या} \times \text{पलभा} \times १२० \times ६ \times \text{त्रिज्या},}{१२० \times \text{त्रिज्या} \times २ \times \text{जिन ज्या}}$$

फिर ३२ अंगुल व्यास वृत्तके लिए $\frac{\text{पलभा} \times १२०}{१३ \times ४८} \times \left(\frac{\frac{\text{नतघटी}}{५}\,\text{ज्या} \times ६ \times \text{जिन ज्या} \times ३२}{१२० \times २ \times ३६०}\right)$

$= \frac{\text{पलभा} \times \text{अयन वलन}}{५}$, पहिले ६ से गुणा किया है अतः पुनः ६ भाग देने से समीकरण विकार रहित रहता है ॥१०॥

मानैक्यार्धहृतात् खषड्घ्नपिहितान्मूलं तदाशांघ्रयः
खच्छन्नं सदलैकयुक् च गदिताः खच्छन्नजाशांघ्रयः ।
सव्यासव्यमपागुदग्वलनजाशांघ्रीन् प्रदद्याच्छरा-
शायाः स्याद्ग्रहमध्यमन्यदिशि खग्रासोऽथवा शेषकम् ॥११॥

मल्लारिः

छन्नं दिक्चरणसाधनमाह खषड्भिः षट्या हन्यते तत् तथा । एवम्भूतं पिहितं छन्नं मान्यैक्यार्धेन मानैक्यखण्डेन हृतं भक्तं सत् यल्लब्धं तस्मात् यन्मूलं तत् तस्य छन्नस्य आशांघ्रयो दिक्चरणाः स्युः । खच्छन्नं सदलैकेन सार्धैकेन युक् स्वच्छन्ना जायन्ते ते तथा । एवम्भूता आशांघ्रतो दिक्चरणा गदिता उक्ताः स्युः । ग्राह्य-विम्वार्धेन वृत्तं दिगङ्कं समदन्त ३२-कोष्ठाङ्कितं च कृत्वा तत्र शराशायाः शरस्य दिशमारभ्य अपाक् उदक् वलनजाशांघ्रीन् सव्यापसव्यं दद्यात् । चेद्दक्षिणा वलानां-घ्रयस्तदा शरदिशः सव्यक्रमेण देयाः । चेदुत्तरास्तदाऽपसव्यं व्युत्क्रमेण तत्र मध्यं मध्यग्रहणं स्यात् । खग्रसनं खग्रासो ऽन्यदिशि मध्यग्रहणस्पर्धिन्यामेव दिशि भवेत् । खग्रासाभावे विम्बस्य शेषकं मध्यस्पर्धिन्यामेव दिशि भवेत् ।

अत्रोपपत्तिः। यदि मानैक्यखण्डतुल्यग्रासेन दिगंघ्रि—८ वर्गः स्वल्पान्तरः षष्टितुल्यो लभ्यते तदेष्टेन किमिति तन्मूलं ग्रासादिक्चरणा इत्युपपन्नम्। एवं स्वच्छन्नांघ्रयोऽपि साध्यास्तत्राचार्येण सार्धैकयुगित्युपलब्ध्या स्वल्पान्तराः साधिताः शेषोपपत्तिः स्पष्टा ॥११॥

विश्वनाथः

अथ खच्छनं खच्छन्नचरणानाह मानैक्यार्धेति। खषड्घ्न-६० पिहितात् षष्टि-गुणितग्रासात् मानैक्यार्धेन हृतात्। तस्मान्मूलं यत् तत् आशांघ्रयश्छन्नस्य दिगंघ्रयः स्युः। अथ खच्छन्नं चेत् तदा तत् सदलैकयुक् सार्धरूप–१।३० युक्तं खच्छन्नजाशांघ्रयो गदिता उक्ता इति।

उदाहरणम्। ग्रासः १६।४८। षष्टिगुणितः १००८। मानैक्यखण्डेन १९।३८। भक्तः फलं ५१।२०। अस्य मूलं जाताश्छन्नांघ्रयः ७।९। खच्छन्नं ५।४१ सदलैक–१।३० युक्तं जाताः खग्रासांघ्रयः ७।११।

अथ मध्यग्रहणदिग्ज्ञानं श्लोकार्धेनाह सव्यासव्येति। इष्टवृत्तं कार्यम्। तद्दि-गङ्कितम्। तत्र शराशायाः शरदिशोऽपागुदग्वलनजाशांघ्रीन् सव्यासव्यं प्रदद्यात्। इह एकैकदिङ्मध्ये चत्वारोंऽघ्रयो ज्ञेयाः। वलजाशांघ्रयोऽपागृदक्षिणाश्चेत् तदा शरदिशः सकाशात् सव्यं सव्यक्रमेण देयाः। उदक् उत्तराश्चेत् तदा शरदिशातोऽसव्यमपसव्यं देयाः। तत्र चिह्नं कार्यम्। तत्र दिशि मध्यः मध्यग्रहणं स्यात्। अन्यदिशि मध्यग्रहण-संमुखान्यदिशि खग्रासः। शेषं ग्रहणशेषं ज्ञेयम् ॥११॥

केदारदत्तः

६० गुणित ग्रासमान में मानैक्यार्ध से भाग देने से लब्ध के मूल का नाम ग्रासाङ्घ्रि होता है तथा ख ग्रास को ६० से गुणा कर उसमें विम्थान्नरार्ध से भाग देने से उसका नाम खग्रासांघ्रि होता है।

ग्रहण का मध्य विन्दु ज्ञात करने के लिए एक बृत्त बनाकर उसमें पूर्वापरोत्तर पश्चिम दिक्साधन करना चाहिए। उस वृत्त के ३२ विभाग (प्रत्येक वृत्तपाद में ८ विभाग) करने चाहिए।

यदि बलन दक्षिण दिशा का है तो शर की दिशा उत्तर या दक्षिण विन्दु से सव्य क्रम प्रदक्षिण) से, यदि बलन उत्तर हो तो असव्य विपरीत क्रम बृत्त में वलनांघ्रि दान देकर जो विन्दु अङ्कित हो वहाँ पर ग्रहण का मध्य होता है। ठीक उसी की विपरीत दिशा में ग्रहण का खग्रास ग्रहण या विम्ब शेष दिखाई देता है। सव्यगणना-प्रदक्षिण क्रम पूर्व से दक्षिण से पश्चिम से उत्तर और पूर्व से उत्तर से पश्चिम से दक्षिण गमन असव्य क्रम या विपरीत भ्रमण कहा जाता है ॥११॥

उदाहरण—ग्रासमान = १४।१५ को ६० से गुणा करने से ८५५।० में विम्बयोगार्ध २२।९ का भाग देने से ३८।३६ होता है। २८।३६ मूल ६।१५ = ग्रासांघ्रि का मान होता है

इसी प्रकार खग्रास = १४९ को ६० से गुणा करने से १०९ × ६० = ६५४० में विम्बदलान्तर = १०।२ भाग देने से १२।४५ का मूल ३।३७ यह खग्रासांघ्रि का मान होता है ॥११॥

उपपत्तिः—पूर्व-अग्नि-दक्षिण-नैऋत्य-पश्चिम-वायु-उत्तर-ईशान-इस प्रकार ८ दिक्-चरण स्पष्ट हैं। ८ का वर्ग ६४ की जगह स्वल्पान्त से आचार्य ने ६० संख्या ग्रहण की है।

यदि मानैक्यार्ध तुल्य ग्रास में दिक्चरण वर्ग = ६० तो इष्ट ग्रास में क्या ? इस प्रकार के अनुपात से ग्रासांघ्रि वर्ग होता है। ग्रासांघ्रि मूल ही इष्ट दिक्चरण होता है। इसी प्रकार खग्रासांघ्रि अंगुलमान साधन करते हुए आचार्य ने तारतम्य से १।१५ अंगुल और अधिक माना है ॥११॥

मध्याच्छन्नाशांघ्रिभिः प्राक् च पश्चा-
दिन्दोर्व्यस्तं तूष्णगोः स्पर्शमोक्षौ।
खग्रस्तात् खच्छन्नपादैः परे प्राग्
दत्तैरिन्दोर्मीलनोन्मीलने स्तः ॥१२॥

मल्लारिः

अथ स्पर्श मोक्षदिग्ज्ञानमाह। मध्यगृहणात् खच्छन्नस्य खगृासस्य आशांघ्रिभिर्दिक्चरणैः प्राक्पश्चाद्दत्तैरिन्दोश्चन्द्रस्य स्पर्शमोक्षौः स्तः। एतदुक्तं भवति। मध्यगृहणचिह्नात् छन्नांघ्रयः पूर्वदिशि यथागता गणयित्वा देयाः। तत्र स्पर्शश्चन्द्रस्य भवेत्। तथैव मध्यात् छन्नांघ्रय पश्चिमदिशि देयाः। तत्र चन्द्रस्य मोक्षः। उष्णगोः सूर्यस्य व्यस्तं विपरीतम्। तद्यथा। मध्यात् छन्नांघ्रयो हि पश्चिमतो देयास्तत्र स्पर्शः। पूर्वदिशि देयास्तत्र मोक्ष इत्यर्थः। खगृस्तात् खगृासचिह्नात् खच्छन्नांघ्रिभिः पश्चिमायां दत्तैः सम्मीलनं स्यात्। पूर्वदिशि दत्तैरुन्मीलनं स्यादिति सूर्यस्य विपरीतं पूर्वदिशि संमीलनम्। पश्चिमदिश्युन्मीलनं स्यात्।

अत्रोपपत्तिः। चन्द्रगृहणे तु गृासस्यचंद्रस्य पूर्वगतेर्बाहुल्यात्। अगृे सरण्यापूर्वदिशि गृाहकत्वेन वर्त्तमानायां भूछायायाः बिम्बान्तश्चन्द्रमाः प्रविशति। अतश्चन्द्रविम्बस्य पूर्वदिशि प्रथमं गृाहकविम्बे लग्नत्वात् तत्र स्पर्शः। एवं गृहणं कृत्वा पूर्वगति बाहुल्यात् चन्द्रमा भूछायां पश्चिमतस्त्यक्त्वागतः। अतोः निःसरणे गृाहस्य विम्बस्य पश्चिम दिशिसंयोगोऽतस्तत्र मोक्षः।

उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ।
पूर्वाभिमुखो गच्छन् भूछायान्तर्यतः शशी विशति।
तेन प्राक् प्रगृहणं पश्चान्मोक्षेऽस्य निःसरतः॥

सूर्यग्रहणे हि सूर्यस्य ग्राह्यस्य पूर्वगतेऽपेक्षया चंद्रस्य ग्राहकस्य पूर्वगति-बाहुल्यात् ग्राहकेण पश्चिमस्थेन पूर्वदिग्वर्तमानस्य ग्राह्यस्य स्पर्शः कृतोऽतो ग्राहक विम्बं लग्नमतोऽत्र मोक्षः अनयैव युक्त्या सम्मीलनोन्मीलनदिशोरुपपत्तिर्ज्ञातव्या ॥१२॥

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारि समाह्वयेन ।

वृत्तीकृतायां गृहलाघवस्य समाप्तइन्दु गृहणाधिकारः ॥

विश्वनाथः

अथ स्पर्शमोक्षसंमीलनोन्मीलनदिग्ज्ञानमाह मध्यादिति । मध्यान्मध्यगृहण-दिशः प्राक्पश्चाद्दत्तैश्छन्नाशांघ्रिभिरिन्द्रोः स्पर्श मोक्षौ स्तः । मध्यगृहणात् प्राक्-पूर्वदत्तैः पश्चादत्तैर्मोक्ष इत्यर्थः । उष्णगोः सूर्यस्य व्यस्तं विपरीतं प्रागदत्तषु छन्नाघ्रिषु मोक्षः । पश्चाद्दतेषु स्पर्श इत्यर्थः खगृासादिति । यद्दिशि खगृासस्तद्दिशिः सकाशात् परे प्राग्दत्तैः खच्छन्नपादैरिन्दोर्मीलनोन्मीलनाख्येस्तः । खगृासात्पश्चाद्दत्तैः संमीलनं पूर्व-दत्तैरुन्मीलनम् । अस्माद्रवेर्विपरीतः पूर्वदत्तैः सम्मीलनं पश्चादुन्मीलनम् । अत्रा-चार्येणोक्तः सूर्यखगृासः कदाचिद्भविष्यतीति ॥१२॥

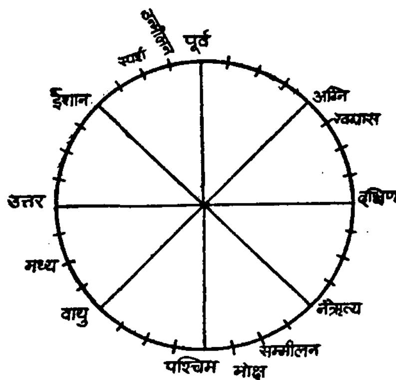
इति श्री गणेशदैवज्ञ विरचित गृहलाघवस्य टीकायां विश्वनाथ-
दैवज्ञविरचितायां चंद्रग्रहणाधिकारः पञ्चमः ॥५॥

केदारदत्तः

शर दिशा को समझकर वलनांघ्रिदान देकर जो मध्यग्रहण विन्दु हो उस मध्य विन्दु से पूर्व दिशा की ओर ग्रासांघ्रि तुल्य दान देकर उस विन्दु पर चन्द्र ग्रहण का स्पर्श और पश्चिम दिशा विन्दु पर चन्द्रग्रहण का मोक्ष विन्दु होता है ।

सूर्य ग्रहण में स्पर्श मोक्ष चन्द्र ग्रहण के विपरीत अर्थात् सूर्य ग्रहण का पश्चिम विन्दु में स्पर्श और पूर्व विन्दु में मोक्ष होता है ।

इसी प्रकार खग्रास विन्दु से पश्चिम में खग्रासांघ्रि तुल्य विन्दु पर चन्द्रग्रहण के निमीलन और पूर्व दिशा में उन्मीलन होता है । नीचे क्षेत्र देखिये—



उपपत्ति:—चन्द्रग्रहण में भूभा = छादिका और चन्द्रमा = छाया है। चन्द्रमा का पूर्वगति गमन से भू छाया में चन्द्रमा प्रवेश करते हुए पूर्व विन्दु में स्पर्श, एवं भूच्छाया को पार करते समय चन्द्रमा का पश्चिम विन्दु सबसे अन्त में चन्द्रमा के बाहर आने से पश्चिम में चन्द्र ग्रहण का मोक्ष होगा ही।

तथा—सूर्यग्रहण में सूर्य विम्ब छाया एवं चन्द्र विम्ब छादक होने से चन्द्रमा की पूर्वाभिमुखी गति से सूर्य के पश्चिम विन्दु को स्पर्श करते हुए अन्त में सूर्य बिम्ब के पूर्व विन्दु से बाहर होने से सूर्य ग्रहण का पूर्व में मोक्ष कहना सही है ॥१२॥

गर्गगोत्रीय स्वनामधन्य, कूर्माञ्चलीय ज्योतिर्विद्वर्य श्री पं० हरिदत्त जी के आत्मज—अल्मोड़ामण्डलीय जुनायल ग्रामज पर्वतीय काशीस्थ श्री केदारदत्त जोशी कृत ग्रहलाघव-चन्द्रग्रहणाधिकार की उपपत्ति सहित सोदाहरण व्याख्या सम्पूर्ण ॥५॥

अथ सूर्य्यग्रहणाधिकारः

लग्नं दर्शान्ते त्रिभोनं पृथक्स्थं
तत् क्रान्त्यंशैः संस्कृतोऽक्षो नतांशाः ।
तद् द्विद्व्यं-२२ शो वर्गितश्चेद्द्विकोर्ध्वो
ऽधोऽसौ द्व्यूनः खण्डितस्तद्युतः सः ॥१॥
सार्को हारः स्यात् त्रिभोनोदयार्क-
विश्लेषांशा-१० शांशहीनघ्नशक्राः ।
हाराप्ताः स्याल्लम्बनं नाडिकाद्यं
तिथ्यां स्वर्णं वित्रिभेऽर्काधिकोने ॥२॥

मल्लारिः

अथ सूर्यग्रहणाधिकारो व्याख्यायते। तत्रादौ लम्बनं वृत्तद्वयेन साधयति। आमान्ते लग्नं कृत्वा तत् त्रिभेण राशित्रयेण ऊनं सत् पृथक् अन्यत्र स्थाप्यम्। तत् क्रान्त्यंशैः संस्कृतोऽक्षोऽक्षांशा नातांशा स्युः। संस्कारस्तु एकदिशोर्योगो भिन्नदिशोन्तरमिति प्रसिद्धः। तेषां नतांशानां यो द्विद्व्यंशो द्वाविंशतिभागः स वर्गितः वर्गः सन् चेत् द्विकात् द्वयात् ऊर्ध्वोऽधिको भवति तदाऽसौ अधोऽन्यस्थाने स्थाप्यः। ततोऽत्र द्व्यूनो द्विहीनः सन् खण्डितोऽर्धित यत् फलं तेन स पूर्वस्थापितो युतः। ततः सार्को द्वादशयुक्तः सन् हारः स्यात्। ततस्त्रिभोनोदयो राशित्रयोनलग्नम्। अर्कः सूर्यः। अनयोर्योविश्लेषोऽन्तरं यथा रात्रियाल्पं तथा कार्यं तस्य येंऽशाः। तेषां य आशांशो दशमांशः तेन हीनाः संगुणिताश्च ये शक्राश्चतुर्दश ते हाराप्ताः सन्तो नाडिकाद्यं लम्बनं स्यात्। तत् तिथ्याममाघटीषु स्वर्णं कार्यम्। कदेत्याह। वित्रिभे त्रिभोनलग्नेऽर्कादधिके धनम् ऊने ऋणमिति।

अत्रोपपत्तिः। ननु किं नाम लम्बनम्। उच्यते। लम्बनमित्यन्वर्थं नाम। अतो दृक्सूत्राच्चन्द्रो यावताऽन्तरेण लम्बितस्तल्लम्बनम्। अहो लम्बनं चन्द्रग्रहणे कथं नास्ति सूर्यग्रहणे कथमित्युच्यते। चन्द्रग्रहणे तु चन्द्रो ग्राह्यः स्वकक्षायां भ्रमति। भूछायाऽपि ग्राहकरूपा चन्द्रकक्षायामेव साधिताऽस्ति। अतो ग्राह्यग्राहकसमकक्षत्वात् लम्लननत्योरभावः। सूर्यग्रहणेतु ग्राह्यग्राहकयोः सूर्यचन्द्रयोर्भिन्नकक्षत्वाल्लम्बननती उत्पन्ने। भङ्गिविरचय्य सूर्यस्य लम्बननत्युपपत्तिं शिष्यान् प्रतिदर्शयेत्। तत्र किञ्चिदुच्यते। प्रथमं भूवृतं लघु गतिः तिथ्यंशतुल्यांशं कार्यं तदुपरि चन्द्रकक्षावृतं कार्यम्। तस्मादुपरि सूर्यकक्षावृत्तम्।

अथ द्वयोर्वृत्तयो राशयो द्वादशाङ्कचः। तत्र यथास्थाने चन्द्रकक्षायां चन्द्रो देयः। सूर्यकक्षायां सूर्यलग्ने अपि यथा स्थाने देये। एवं भूगर्भान्नीयमानं चन्द्रस्योपरि यत् सूत्रं तद्गर्भसूत्रमित्युच्यत एवं भूषष्ठान्नीयमानं सूत्रं दृक्सूत्रमुच्यते। तत् तु सूर्योपरि नीयमानं चन्द्रं सान्तरं त्यक्त्वा याति अतश्चन्द्रकक्षायां दृक्सूत्राच्चन्दो यावताऽन्तरेण लम्बितस्तल्लम्नम्।

उक्तं च।

'दृक्सूत्राल्लम्बितश्चन्द्रस्तेन तल्लम्बनं स्मृतम्'।

अतो हि भूगर्भस्थलोकानां सूर्यग्रहणेऽपि लम्बनाभावः। दृग्गर्भसूत्रयोरेकीभूतत्वात्। एवमत्र लम्बने केवलं भिन्नकक्षात्वमेव कारणं नो वाच्यम्। भूगर्भे लम्बनाभावदर्शनात्। अतो भिन्नकक्षात्वं द्रष्टणां भूपृष्ठस्थितित्वं चेति। द्वे लम्बनकारणे। लम्बनं तु पूर्वापरं यतो गर्भसूत्रीयचन्द्रे दृक्सूत्रीकरणं पूर्वगत्यैव। एवं ग्रहे पूर्वापरान्तरोत्पत्तौ दक्षिणोत्तरान्तरमप्युत्पन्नं तन्नतिसंज्ञम्। अत्र लम्बनसाधनोपायो यथा। क्षितिजे दृग्गर्भसूत्रयोः परममन्तरं चन्द्रगतितिथ्यंशतुल्यकलानां सूर्यगतितिथ्यंशकलानामन्तरतुल्यम् ४८।४५। खमध्ये तु दृग्गर्भसूत्रे एकीभूते अतो लम्बनाभावः।

उक्तं च।

'दृग्गर्भसूत्रयोरैक्यात् खमध्ये नास्ति लम्बनम्' इति।

क्षितिजे रवितुल्यं लग्नम्। तस्मिन् त्रिभे हीने कृते तत् सूर्यान्तरं त्रिभमेवातोऽस्माल्लम्बन साध्यम्। यतः खमध्ये त्रिभोनलग्नं रवितुल्यमतस्तदन्तराभावे लम्बनाभावश्च। अत्रानुपातः। यदि त्रिज्यातुल्यया सूर्यत्रिभोनलग्नात्तरदोर्ज्ययेदं परमं लम्बनं तदेष्टदोर्ज्यया किमिति। अत्र लम्बनकलानां घटीकरणार्थमनुपातः। यदि गत्यन्तरकलाभिः षष्टिघटिकास्तदा लम्बनकलाभिः किमिति जातं घटिकाद्यं परमं लम्बनम्। अनेन दोर्ज्या गुण्या त्रिज्यया भाज्येष्टलम्बनं स्यादित्यत्राचार्येण भागेभ्य एव साधितम्। तद्यथा। 'त्रिभोनोदयार्कविश्लेषांशाशांशहीनघ्नशक्रा' इति। परमिदं लम्बनं मध्यमम्। खमध्यक्षितिजयोरन्तरं सर्वत्र त्रिभमेव लक्षितम्। तत्र। यतो याम्योत्तरक्षितिजयोरन्तरं सर्वत्र त्रिभं नास्ति। अतः खमध्य एवेदं लम्बनमिष्टयाम्योत्तरवृत्तीयकरणार्थमनुपातः। खमध्ये तु त्रिभोनलग्नस्य नतांशाभावादुन्नतांशाः परमाः। अतोऽनुपातः। यदि द्वादशतुल्ये त्रिभोनलग्नस्य छायाकर्णे इदं लम्बनं तदेष्टछायाकर्णे किमिति। अत्र व्यस्तत्रैराशिकम्। एवमत्रेष्टत्रिभोनलग्नार्कान्तरदोर्ज्यायाः परमलम्बनमिदं घटिकाद्यमसकृत्प्रकारत्यागाद्घटीचतुष्टयादूनं गृहीतम् ३।४५ अयं गुणः। द्वादश च १२ गुणः। त्रिज्या १२० हरः। अत्र त्रिज्यातुल्येष्टदोर्ज्या १२० गुणघातगुणा त्रिज्याभक्ता। गुणघातो जाताः ४५। एतावती त्रिज्या कृता। इयं त्रिभोनोदयार्कविश्लेषांशाशांशहीनघ्नशक्रतुल्या भवति। अतः सा दोर्ज्या छायाकर्णभक्ता स्पष्टं लम्बनं स्यात्। तदर्थं त्रिभोनलग्नस्य नतोन्नतलवाः साध्याः। ततोऽनुपातः। यदि उन्नतांशज्याकोटौ त्रिज्या कर्णस्तदा द्वादशकोटौ क इति। एवमत्र छायासकर्णो द्वादशेभ्यो नतांशद्वा-

विंशत्यंशवर्गेणाधिको भवति। अतो द्वादश नतांशद्वाविंशत्यंशवर्गयुक्ताश्छायाकर्णः स्यात्। तस्य हरसंज्ञा कृता! यतः स दोर्ज्याया हरः। इदं नतांशद्वाविंशत्यंशवर्गो येन भवति। अधिकं सान्तरम्। तद्यथा। द्व्यधिकाद्द्वयमपास्य यच्छेषं तदर्धमपि। तेन नतांशद्वाविंशत्यंशवर्गेण युक्तं तावद् द्वादशछायाकर्णान्तरम्। अनेन द्वादश युक्तास्त्रिभोनलग्नच्छायाकर्णो भवति। अनेनेष्ट दोर्ज्या भक्ता लम्बनं स्यादित्युपपन्नम्। एतल्लम्बनं चन्द्रगत्या गुणयित्वा षष्टया लब्धं चन्द्रे देयम्। तथा रवावपि देयम्। ताभ्यां तिथिः साध्या। अतो हि तल्लम्बनं तिथ्यामेव देयमित्युक्तम्। धनर्णोपपत्तिर्यथा। पूर्वकपाले दृक्सूत्रदगर्भसूत्रं पूर्वस्यामधो लम्बितमतो ग्रहे पूर्वकपाले धनं देयम्। अत्र त्रिभोनलग्नमर्काल्पकमस्ति ग्रहे यद्धनं क्रियते तत् तिथौ ऋणमेव भवति भोग्यत्वात्। तथा पश्चिमकपाले दृक्सूत्रात् गर्भसूत्रं पश्चिमतो वर्त्ततेऽतो ग्रहे ऋणम्। त्रिभोनलग्नमत्रार्काधिकं यदग्रहे ऋणं तत् तिथौ धनम्। अत उक्तं स्वर्णं वित्रिभेऽर्काधिकोन इति। एवं सूर्यगृहे लम्बनसंस्कृतो दर्शान्तः एवं मध्यकालो भवतीयं युक्तिर्गोलोपरि सविस्तरा॥ १-२॥

विश्वनाथः

संवत् १६६७ शके १५३२। मार्गशीर्षकृष्णे ३० बुधे घटी १२।३६। मूलनक्षत्रे घटी ५१।१२। गण्डयोगे घटी २३।४५। अस्मिन् दिने सूर्यपर्वविलोकनार्थं वर्षगणः ९०। चक्रम् ८। अधिमासः १। अवमानि १५। अहर्गणः १००५। प्रातर्मध्यमः सूर्यः ८।५। ३९।२५। चन्द्रः ८।१।१०।३३। उच्चं ८।१७।७।२१। राहुः २।११।४१।५९। आभिर्घटीभि-१२।३६। श्चालितो रविः ८।५।५१।५०। चन्द्रः ८।३।५६।३४। उच्चम् ८।१७। ८।४५। राहुः २।११।४१।१९।

अथ स्पष्टीकरणम्। तत्र रवेर्मन्दकेन्द्रम् ६।१२।८।१० मन्दफलमृणम्। ०।२७। ५०। संस्कृते रविः ८।५।२४।० । अयनांशाः १८।८। चरखण्डानि ५७।४६।१९। चरं धनम् ११७। अनेन संस्कृतो जातः स्पष्टो रविः ८।५।२५।५७। स्पष्टा गतिः ६१।१५। फलत्रयसंस्कृतश्चन्द्रः ८।४।१०।५३। मन्दकेन्द्रम् ०।१२।५७।५२। मन्दफलं धनम् १।९।४८। संस्कृतो जातः स्पष्टचन्द्रः ८।५।२०।४१। स्पष्टा गतिः ७२६।३०। आभ्यां तिथिघटी ०।२८। अनया पञ्चाङ्गस्थघटिकाः १२।३६। युक्ता जातः पर्वान्तकालः १३।४। आभिर्घटीभिः ०।२८। चालिता जाताः पर्वान्तकालीनाः सूर्यादयः ८।५।२६।२५। चन्द्रः ८।५।२६।२०। राहुः २।११।४१।१८। विराह्वर्कः ५।२३।४५।७॥

अथ लम्बनसाधनं श्लोकद्वयेनाह लग्नमिति। सार्को हार इति। दर्शान्ते लग्नं साध्यम्। तत्र रवेर्भोग्यकालः ७३। दर्शान्तः १३।४। लग्नम् ११।२।४६।१७। राशित्रयरहितम् ८।२।४६।१७। इदं द्विस्थम् ८।२।४६।१७। अस्य सायनस्य 'स्युः खण्डानि'— इत्यादिना क्रान्तिर्दक्षिणा २३।३८।१०। अक्षांशा दक्षिणाः २५।२६।४२। अनयोरेकदिक्त्वात् योगो जाता नतांशा दक्षिणाः ४९।४।५२। एषां द्विद्व्यंशो २।१३।५१ वर्गितः ४।५८। अयं द्वाभ्यामधिकः। अतो द्विष्ठः ४।५८। द्वाभ्यामूनः २।५८। अर्धितः १।२९।

अनेन युतो द्विस्थः ६।२७। सार्को जातो हारः १८।२७। वर्गश्चेद्द्वाभ्यामूनस्तदा स वर्गः सार्को हारः स्यात् त्रिभोनलग्नम् ८।२।४६।१७। अर्कः ८।५।२५।२६। अनयोर्विश्लेषः ०।२।४०।८। अत्र त्रिभोनलग्नार्कयोरन्तरं यथा राशित्रयाल्पं भवति तथा कार्यम् अनयोर्मध्ये यः शोध्यते स न्यूनो ज्ञेयोऽन्योऽधिक इत्यर्थतः सिद्धम्। इदं धनर्णताज्ञानार्थमुक्तम्। अत्र कल्पितं त्रिभोनलग्नम् ८।२।४६।१७। अर्कः ८।५।२६।२५। अनयोरन्तरम् ०।२।४०।८। अस्माल्लम्बनमृणं ज्ञेयम्। अर्कतस्त्रिभोनलग्नस्य न्यूनत्वादस्यांशाः २।४०।८। एषां दशमांशः ०।१६। शक्रा १४ दशमांशेन ०।१६। हीनाः १३।४४। एते दशमांशेनैव गुणिताः ३।३९। हारेण १८।२७ भक्ताः फलं घटिकाद्यं लम्बनमृणम् ०।११। वित्रिभस्यार्कान्न्यूनत्वात्। तत् तिथ्यां तिथिघटिकादिके स्वर्णं कार्यम्। कस्मिन् सति वित्रिभेऽर्काधिकोने सति त्रिभोनलग्नेऽर्काधिके स्वं धनं कार्यं हीने ऋणं कार्यमित्यर्थः। तस्मिन् तिथ्यन्ते मध्यग्रहणो भवतीति लम्बनसंस्कृतस्तिथ्यन्तः १२।५३॥१–२॥

केदारदत्तः

दर्शान्त (अमान्त) समय में लग्न साधन कर उसमें ३ राशि कम करने से उसका नाम वित्रिभ लग्न होता है। वित्रिभ लग्न की क्रान्ति साधन कर उसका अक्षांश के साथ संस्कार करने से वह वित्रिभ लग्न का नतांश होता है।

वित्रिभ के नतांश में २२ का भाग देकर उपलब्ध संख्या का वर्ग करना चाहिए। यह वर्ग २ संख्या से कम हो तो वर्ग में १२ जोड़ना चाहिए इसका नाम हार होता है।

यदि वित्रिभ नतांश ÷ २२ = २ से अधिक हो तो उसमें २ घटाकर शेष के आधे के वर्ग में १२ जोड़ने से हार होता है।

वित्रिभ लग्न और स्पष्ट सूर्य के अन्तरांशों में १० का भाग देकर लब्धि को १४ में घटाकर शेष और उसी दशमांश का गुणा कर गुणनफल में हार का भाग देने से लब्ध फल का नाम घटिकादिक लम्बन होता है।

सूर्य से वित्रिभ लग्न के अधिक होने पर लम्बन को दर्शान्त घटी में जोड़ना तथा सूर्य स्पष्ट से स्पष्ट वित्रिभ की राश्यादिक कम होने से दर्शान्त घटी में लम्बन घटी कम करने से स्पष्ट दर्शान्त या पृष्ठीय तिथ्यन्त या पृष्ठीय मध्य काल होता है ॥१–२॥

उदाहरण—संवत् २०३६ शक वर्ष १९०१ फाल्गुन मास कृष्ण पक्ष अमावस्या तिथि शनिवार ता० १६ फरवरी सन् १९८०, सूर्य पर्व अर्थात् सूर्य ग्रहण का स्पर्श मध्य मोक्षादि कालों का काशी में गणित प्रदर्शित किया जा रहा है।

विश्वेश्वर राजधानी श्री काशी में—इस दिन प्रातः घटा २९·४ इष्ट समय पर के—स्पष्ट सूर्य १०।२।५३।०९ और सूर्य की स्पष्टागति = ६०।२६ स्पष्ट चन्द्रमा ९।२७।४३।४६ और चन्द्रमा की स्पष्टागति = ८८९।१५ स्पष्ट राहु ४।५।५३।४ और राहु की गति = ३।११

तिथि साधन गणित, चं० − सू० = ११।२४। ४८।३४ के अंश = ३५४।४८।३४ में १२ का भाग देने से लब्धि २९ = कृष्ण चतुर्दशी, अमावस्या का भुक्तांश ६।४८।३४ भोग्यांश = ५।११।२६, भुक्तांश विकला × ६० = १४७०८४०, तथा भोग्यांश विकला = ११२११६० चन्द्रगति − सूर्यगति = ९०२।१५३ − ६०।३६ = ८४१।४७ की विकला = ५०५०७ $\frac{\text{भुक्तांश विकला} \times ६०}{\text{गत्यन्तर विकला}}$ घटिकादिक अमा० का भुक्त मान = घटी २९ पल = ३५ तथा $\frac{\text{भोग्यांश विकला} \times ६०}{\text{गत्यन्तर बिकला}}$ = घटिकादिक अमावास्या का भोग्यमान = घटी २२ सल=१२ यहाँ पर अभी अमान्त काल नहीं सिद्ध होता है। अमान्त काल की पूर्ति में घटी २२ पल १२ की कमी होने से पुनः २२।१२ घटी चालन से सूर्य चन्द्र और राहु को चालित किया जा रहा है। सूर्यगति × २२।१२ = ६०।३६ × २२।१२ = ०।०। २२।२२।१६ को सूर्य में जोड़ देने से दर्शान्त कालीन सूर्य = १०।२।५३।१४ + ०।०।२२।३७= १०।३।१५।३६ होता है।

एवं तात्कालिक चन्द्रगति × २२।३४ = ८८९।१५ × २२।३४ = ०।५।३४।१९।४ को स्पष्ट चन्द्रमा ९।२७।४३।४६ में जोड़ देनेसे १०।३।१८।५ यह दर्शान्त कालीन चन्द्रमा होता है।

दर्शान्त काल में राश्यादिक अवयवों से सूर्य चन्द्रमा तुल्य होते हैं। इस प्रकार की राश्यादिक तुल्यता कालीन काल या समय का नाम दर्शान्त या अमान्त कहा जाता है। यहाँ पर अभी चं० − सू०=१०।३।१८।५ − १०।३।१८।३६=११।२९।५९।२९ अर्थात् १२ × ३० = ३६० अंश की तुल्यता नहीं होने से ३५९।५९।२९ ÷ १२ = २९ गत तिथि फा० कृ० चतुर्दशी और वर्तमान तिथि अमावस्या का ११।५९।२९ अंश वीत गये हैं और ०।०।३१ विकला अमावास्या का भोग्यांश सम्बन्धी काल = $\frac{३१ \times ६०}{\text{गत्यन्तर विकला}=४९७१९}$ =१८६० ÷ ४९७१९ = घटी ० एवं १८६० × ६० = १११६०० ÷ ४९७१९ = २ पल १४ विपल तुल्य में स्थिर अमान्त होगा। और पुनः चालन काल से चालित सूर्य और चन्द्रमा दोनों की राश्यादिक सर्वतो भावेन तुल्यता होने से स्पष्ट सूर्य = १०।३।१५।३६ एवं स्पष्ट चन्द्रमा=१०।३।१५।३६ एवं दर्शान्त कालीन राहु=४।५।५३।४ − ०।०।१।११ = ४।५।५१।४८ विपरीत गतिक होने से राहु का धन चालन फल ऋण होता है। इस प्रकार ता० १६ फरवरी १९८० के प्रातःकाल (५'२९ ए० यम) घण्टा मिनट में २२।३४ + ०।२ = २२।३६ घटी का घण्टा मिनट ९ घण्टा २ मिनिट और २४ सें० जोड़ देने से ५।२९।४ + ९।२।२५ = २।३१।२८ दिन के २।३१ बजे स्पष्ट दर्शान्त काल घण्टा मिनिट में अथवा प्रातः ५.२९ वजे तक भुक्त अमावास्या का २९।३५ घण्टादिक = ११।५० को ५.२९ में घटा देने से पूर्व शुक्रतार ता० १५ फरफरी '८० को चतुर्दशी का स्पष्ट मान होगा हो।

इस प्रकार दर्शान्त कालीन सर्वतो भावेन राश्यात्मक सूर्य चन्द्रमा की तुल्यता सगणित सिद्ध होती है। सूर्योदय से घट्यादिक दर्शान्त=१९।२५ घण्टात्मक=२।२१ ए०एम० इष्टकाल= पर्वान्त काल=१९।२५, स्पष्ट सूर्य=१०।३।१५।३६ से स्पष्ट लग्न मान=२।१८।७।५७ होती है। विशेष-शर ग्रासादिक का ज्ञान एवं पर्वान्ते से सूर्य − राहु=१०।३।१५।३६ − ४।५।५३।४=

५।२७।२२।३२ का भुज=०।२।३७।२८, भुज के अंश १४ से कम हैं अतः ग्रहण का संभव ही नहीं अपि च ग्रहण का निश्चय है।

$$\frac{२।२७।२८ \times ११}{७} = २२।१५४।३०८ = २४।३९।८ \div ७ = ३।३१।३२$$ अंगुलादि उत्तर शर होता है। यह स्थूल है। श्लोक ३ में स्पष्ट होगा। सू०ग०=६०।३६ × २=१२१।१२ ÷ ११ = ११।१ = सूर्य बिम्ब। चं० ग०=९०२।१३ ÷ ७४=१२।३=चन्द्र बिम्ब। ९०२।१३−७१६=१८६।१३ ÷ २२ = ८।२८ + ३२ = ४०।२८ भूभा बिम्ब सूर्य ग्रहण में छाद्य सूर्य बिम्ब = ११'१ छादक चन्द्र बिम्ब = १२।३ योगार्ध = २३।४ ÷ २ = ११।३२ − ३।३१=८।१ अंगुलादि ग्रासमान होता है। (स्वल्पान्तरादि से)—

स्पष्ट सूर्य १०।३।१५।३६, स्पष्ट चन्द्र १०।३।१५।३६, स्पष्ट लग्न २।११८।७।५७

लम्बन साधन—पर्वान्त कालीन स्पष्ट लग्न में ३ राशि कम करने से वित्रिभ लग्न = ११।१८।७।५७ होती है। वित्रिभ लग्न की उत्तरा क्रान्ति ४।४० होती है। सायन सूर्य या वित्रिभ के उत्तर गोल में होने से यह ४।४० उत्तरा क्रान्ति होती है

श्री काशी में दक्षिण अक्षांश = २५।२६ उत्तरा क्रान्ति = ४।४० का भिन्न दिशा होने से अन्तर = २०।४६ यह नतांश होते हैं।

नतांश=२०।४६ का २२ वाँ भाग=०।५६ होता है ०।५६ का वर्ग=१।१ यह वर्ग संख्या २ से कम होने से विशेष संस्कार की आवश्यकता नहीं है। इस वर्ग को १२ में जोड़ देने से १२ + १।१ = १३।१ इसका नाम हार होता है। सूर्य व वित्रिभ के अन्तरांश ७४।५२ २१ का दशमांश=७।२९ को १४ में घटाने से ६।३१ होता है। दशमांश × १० − दशमांश= ७।२९ × ६।३१ = ४८।४० होता है। ४८।४० में हार १३।१ का भाग देने से स्वल्पान्तर से घटी=३, पल = ४४ यह लम्बन का घटिकादिक मान गणित से सिद्ध होता है। स्पष्ट सूर्य से स्पष्ट वित्रिभ लग्न अधिक होने से लम्बन धन सिद्ध होता है।

अत गर्भीय दर्शान्त २०।७ में धन लम्बन ३।४५ = २३।५२ घटी-पल में पृष्ठीय या ग्रहण मध्यकाल होता है।

उपपत्ति:—मध्य नतांश=न, वित्रिभ लग्न ~ सूर्य = वि० अं० इस प्रकार मानकर श्री केशव दैवज्ञ के करण रहस्य ग्रन्थ के श्लोक...

"ख शक्रनिघ्नं रविवित्रिभान्तरं त्रिभोन-द्व्यन्तर-वर्ग वर्जितम्।
हृतं शतेनाऽत्र भाज्यसंज्ञकस्तथा त्रिभिर्मध्य नतांश वर्गकः॥
निघ्नस्तथा नागरसाङ्कभक्त इशार्युतोऽसौभवतीह हारः।
हारेण भाज्यं विभजेत् फलं यद् घट्यादिकं स्पष्टविलम्बनं तत्।"

की लम्बन साधन प्रक्रिया के अनुसार—

$$\frac{\dfrac{\text{वि० अं०} \times १४० - \text{वि०शं०}^2}{१००}}{११ + \dfrac{३ \times \text{न}^2}{९६८}} = \frac{\dfrac{\text{वि० अं०} \times १४०}{१००} \quad \dfrac{\text{वि० अं०}}{१००}}{११ + १ + \dfrac{३ \times \text{न}^2}{४८४ \times २ - १}}$$

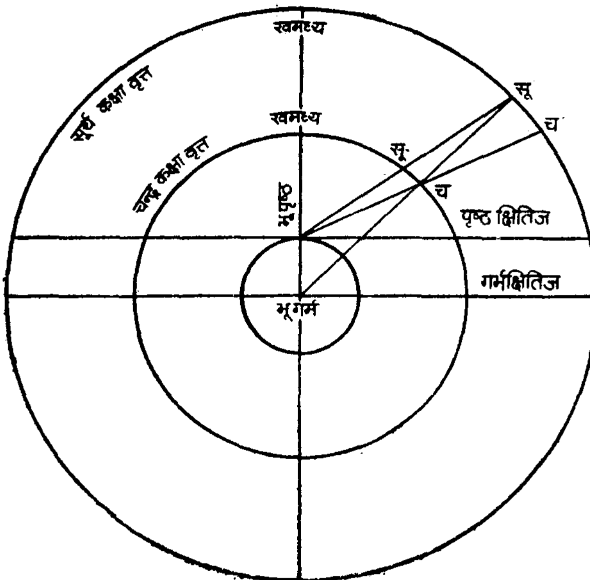
$$= \frac{\frac{\text{वि० अं०} \times १४}{१०} - \frac{(\text{वि०अं०})^२}{१०}}{१२ + \frac{न^२(२+१)}{४८४ \times २} - \frac{२}{२}} = \frac{\left(१४ - \frac{\text{वि०अं०}}{१०}\right) \frac{\text{वि०अं०}}{१०}}{१२ + \frac{२ न^२}{(२२)^२ \times २} + \frac{न^२}{(२२)^२ \times २} - \frac{२}{२}}$$

$$= \frac{\left(१४ - \frac{\text{वि०अं०}}{१०}\right) \frac{\text{वि०अं०}}{१०}}{१२ + \frac{न^२}{(२२)^२} + \frac{न^२}{(२२)^२ \times २} - \frac{२}{२}} = \frac{\left(१४ - \frac{\text{वि०अं०}}{१०}\right) \frac{\text{वि०अं०}}{१९}}{१२ + \left(\frac{न}{२२}\right)^२ + \frac{\left(\frac{न}{२२}\right)^२ - २}{२}}$$

यतः $१२ + \left(\frac{न}{२२}\right)^२ + \frac{\left(\frac{न}{२२}\right)^२ - २}{२}$ = हार। अतः लम्बन घटिका

$$= \frac{\left(१४ - \frac{\text{वि०अं०}}{१०}\right) \frac{\text{वि०अं०}}{१०}}{\text{हार}}$$ = उपपन्न होता है।

भास्कराचार्य के अनुसार भी "रवौ तदूनेऽभ्यधिके च तत्स्यात्" से वित्रिम लग्न से रवि की न्यूनतासे लम्बन धन और रवि की अधिकता से ऋण स्पष्ट है। गर्भाभिप्रायिक अमान्त के समय गर्भ दृष्टि से सूर्य-चन्द्र एक दृष्टि पथ में रहते हैं किन्तु दृष्टि सूत्र तो भू पृष्ठ से ही स्पष्ट व प्रत्यक्ष है। सूर्य चन्द्रमा की भिन्न कलायें हैं। अतः गर्भ दृष्टि से योग होते हुए भी पृष्ठ दृष्टि से कक्षाओं के अन्तर से योग नहीं होने से लम्बन कला उत्पन्न होती हैं जिन्हें काल (समय) में परिणत किया जाता है। भू पृष्ठ और भू गर्भ गत दृष्टि सूत्रों के अन्तर से उत्पन्न कोण का मान कक्षा वृत्त परिणत काल कला ज्ञान पूर्वक लम्बन काल ज्ञान किया गया है। नीचे क्षेत्र देखिए



रवि कक्षा में सू० चं० या चन्द्र कक्षा में सू० चं० कला लम्बन कला है। गर्भ दृष्टि से भू चं० सू' रेखा में एक दृष्टि सूत्र में चन्द्रमा के होते हुए भी भू पृष्ठ दृष्टि से सूर्य चन्द्रमा का योग नहीं हो रहा है। भूपृष्ठीय पृष्ठ दृष्टि से भू चं० चं' या भू सू सू' सूत्र अन्त में ही दोनों की योग होता है जो लम्बन कला या कोण पृ० चं० भू या कोण सू०' चं० चं' से मापा जाता है। अलम् होगा अधिक प्रयास से ॥१-२॥

त्रिकुनिघ्नविलम्बनं कलास्तत्सहितोनस्तिथिवद्व्यगुः शरोऽतः ।
अथ षड्गुणलम्बनं लवास्तैर्युगयुग्विस्त्रिभत पुनर्नतांशाः ॥३॥

मल्लारिः

अथः लम्बनकाले व्यगोश्चालनमाह। त्रयोदशगुणितं लम्बनं कला स्युः तिथिवद्व्यगुस्ताभिः कलाभिः सहितोनः। तिथौ चेल्लम्बनं धनं तदा व्यगावपि धनम्। ऋणं चेदत्रापि ऋणमिति। अतोऽमुष्माद्व्यगोः शरः पूर्ववत् साध्यः। अथ शब्दोऽनन्तरवाची। षड्गुणलम्बनं लवाः स्युः। तैर्लवैर्युग्वियुर्ग्विस्त्रिभतो नतांशाः साध्याः। ततः क्रान्त्यक्षांशसंस्कारेण नतांशाः साध्याः। एतदुक्तं भवति। षड्गुणलम्बनं भागास्ते त्रिभोनलग्ने लम्बने धने सति धनं कार्याः। ऋणे लम्बने सति ऋणं कार्यास्ततः क्रान्त्यक्षांशसंस्कारेण नतांशाः साध्या इत्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। यदि षष्टिघटिकाभिर्विपातचन्द्रगतिकला ७८७ एतास्तदा लम्बनकलाभिः किमिति गुणहरयोर्हरेणापवर्त्तितयोर्जाता गुणस्थाने त्रयोदश १३। अतस्त्रिकुनिघ्नविलम्वनमिति। अथ मध्यकालीनं त्रिभोनं लग्नं कार्यम्। तत्र लाघवार्थं लम्बनेन दर्शान्तकालीनं त्रिभोनलग्नमेव चालयति। तत्र घटिकाः षड्गुणा भागा भवन्ति। यतः षष्टिघटिकानां चक्रभागाः। अतो हि षड्गुणलम्बनं दर्शान्तकालीनत्रिभोनलग्नेधनमृणं कार्य त मध्यकालीनत्रिभोनलग्नं भवति। अतो नतांशाः कार्या नतिसाधनार्थमेव ॥३॥

विश्वनाथः

अथ व्यगोर्लम्बनसंस्कारमाह त्रिकुनिघ्नेति। विलम्बनं ०।११ त्रयोदशगुणं जातं कलाद्यम् २।२३। व्यगुः ५।२३।४५।७ लम्बनस्थ तिथौ ऋणत्वान्व्यगावपि ऋणमतो लम्बनसंस्कृतो व्यगुः ५।२३।४२।४४। अस्य भुजांशाः ६।१७।१६। अस्मात् 'तेंऽशा निघ्नाः' इत्यादिना जातः शरः ९।५४ विराह्वर्कस्योत्तरगोलत्वादुत्तरं लम्बनम् ०।११। षड्गुणं जातं लवाद्यम् १।६। पृथक्स्य त्रिभोनलग्नम् ८।२।४६।१७। अस्य क्रान्तिदक्षिणा २३।३४।३५। अक्षांशैः २५।२६।४२। संस्कृत जाता नतांशा दक्षिणाः ४९।१।१७।।३॥

केदारदत्तः

१३ गुणित लम्बन घटिका का मान लम्बन कला होती है। जिस प्रकार धन वा ऋण संस्कार तिथि में किया है ठीक उसी प्रकार का संस्कार व्यगु = राहु रहित सूर्य में करना

चाहिए। इस प्रकार के संस्कृत व्यगु से शर साधन करना चाहिए। लम्बन घटिका को ६ से गुणा करने से अंश हो जाते हैं। धन लम्बन में इन अंशों को वित्रिभ में जोड़ने एवं ऋण लम्बन के वित्रिभ में घटाने से पुनः वित्रिभ की क्रान्ति एवं ग्रहण दर्शन योग्य देशीय अक्षांश का परस्पर संस्कार कर नतांशों का साधन करना चाहिए ॥३॥

उदाहरण—लम्बन=३।४५ × १३=४०।४५ सूर्य राहु = १०।३।१८।३६ – ४।५।५१। ४८=५।२७।२६।४८=व्यगु। व्यगु + १३ × लम्बन=५।२७।२६।४८ + ४८।४५=५।२८।१५।३३ भुजांश = ०।१।४४।२७ को ११ से गुणा करने से २०।४४।१७ में ७ का भाग देने से २।४४ शर उत्तर हुआ यतः व्यगु उत्तर गोल में हैं।

तथा लम्बन = ३।४५ × ६=२२°।३० अंशादिक है। लम्बन धन है अतः वित्रिभ लग्न =११।१८।७६° + ०।१८।३०=०।१०।३७।'१७ से क्रान्ति साधन से उत्तरा क्रान्ति=१२।५७ दक्षिण अक्षांश=२५।२६ का भिन्न दिशा से संस्कार करने से १३।३१ यह दक्षिण दिशा में नतांश होते है ॥३॥

उपपत्ति—अमान्त काल में (सूर्य=चन्द्र। घटिकादिक लम्बन=लं सपात चन्द्रगति= स चं० ग)।

सूर्य चन्द्रमा राश्यादिक सर्वतो भाव से तुल्य होते हैं। अतः सूर्य-राहु=चन्द्र-राहु। किन्तु राहु को १२ में घटाकर रखा जाता है अतः वि राहु रहित सूर्य=चन्द्रसहित राहु। अनुपात से यदि ६० घटी में सपातचन्द्रगति कला तो लम्बनघटी में,

$$\frac{(७९० + ३)=७९३ \times \text{लम्बन घ०}}{६०} — १३ \times \text{लम्बन घटिका स्वल्पान्तर से।}$$

तथा यदि ६० घटी में ३६०° तो लम्बन घटिका में $\frac{३६० \times \text{लम्ब०}}{६०}$ = लम्बन काल × ६

आगत अंशों से संस्कृत गर्भीय वित्रिभ = पृष्ठीय वित्रिभ उपपन्न होता है ॥३॥

दशहृतनतभागोनाहताष्टेन्दवस्त-
द्रहितसधृतिलिप्तैः षड्भिराप्तास्त एव।
स्वदिगिति नतिरेतत्संस्कृतः सोऽङ्गुलादिः
स्फुट इषुरमुतोऽत्र स्यात् स्थितिच्छन्नपूर्वम् ॥४॥

मल्लारिः

अथ नतिसाधनमाह। दशभक्ता ये नतांशास्तैरूनाः सन्तस्त एव गुणिता ये अष्टेन्दवस्ते कलाद्याः पृथक् स्थाप्याः ते रहिता हीना ये सधृतिलिप्ताः षड्भागाः। अष्टादशकलान्विताः षड्भागास्ताभिः कलाभिर्हीनाः कार्या इत्यर्थः। ततो यच्छेषं तेन तेन पृथक्स्था भाज्याः। यल्लब्धं सा स्वदिक् नतांशदिक् नतिः स्यात्। एतया नत्या संस्कृतः सोऽङ्गुलादिः शरः स्फुटः स्यात्। अमुतो हि स्पष्टशरादेव स्थिति-च्छन्नपूर्वं साध्यम्।

अत्रोपपत्तिः। नतिकारणं तु लम्बनानयने उक्तमेव। तत्साधनार्थमनुपातः। यदि त्रिज्यातुल्यया १२० नतांशज्यया परमा नतिकलाः ४८।४५। तदेष्टनतांशज्यया किमिति। ता नतिकलास्त्रिभक्ता अंगुलानि स्युः १६।१५। तथाऽत्र त्रिज्या ८१ धृता। इयं दशहृतनतभागो नाहताष्टेन्दुतुल्या भवति इयं त्रिज्या ८१ केन भक्ता परमनतिः स्यादतः परमनत्यंगुलभक्ता जातो हरः ५।५७ अयं हरस्त्रिज्यातुल्यकलोनसाष्टादशकलाषड्भागतुल्य एव (स्वल्पान्तरात्)। अतस्तद्रहितसधृतिलिप्तैः षड्भिस्त एव भक्ता अंगुलाद्या नतिः स्यादित्युपपन्नम्। खमध्याद्दक्षिणत उत्तरतो वा त्रिभोनलग्नं यावद्भिर्नतांशैर्नतं स्यात् तद्वशेनैव दृक्सूत्राच्चन्द्रोऽपि दक्षिणत उत्तरो वा त्रिभोनलग्नं यावद्भिर्नतांशैर्नतं स्यात् तद्वशेनैव दृक्सूत्राच्चन्द्रोऽपि दक्षिण उत्तरतो वा नतिसंज्ञेनान्तरेण नतो भवति। अतो हि नतांशदिगेव नतिर्भवतीत्युपपन्नम्। इयं नतिः स्थूला स्वल्पान्तरा भवति। अत्र नतिर्याम्योत्तरमन्तरम्। शरोऽपि याम्योत्तरः। अतो नतिसंस्कृत एव शरः स्पष्टशरो भवति। अस्मादेव छन्नस्थित्यादिकं साध्यम्। यतो हि मानैक्यखण्डं कर्णः। ग्राह्यग्राहकयोर्याम्योत्तरमन्तरं कोटिः। सा तु नतिसंस्कृतशरस्तुल्यैव भवति। चन्द्रग्रहणे तु नतेरभावात् केवलशरतुल्यैव भवति ॥४॥

विश्वनाथः

अथ नतिसाधनमाह दशेति। नतभागाः ४९।१।१७। दशभक्ताः फलम् ४।५४। अष्टेन्दवो १८ दशभक्तफलेन हीनाः १३।६। एते दशभक्तफलेनैव गुणिता जाताः कलाः ६४।११। एताः पृथक्स्था ६४।११। तद्रहितसधृतिलिप्तैः षड्भिस्त एवाप्ताः। तद्यथा। धृतिलिप्ताभिः सहितैः षड्भिर्भागैरिति 'दशहृतनतभागोनाहताष्टेन्दव' इत्यादिना कलादि यत् फलं तदष्टादशकलामध्ये रहितं कार्यं कलास्थाने यदा न शुद्ध्यति षड्भागादेको ग्राह्यः। यदा कलात्मकफलं षष्ट्यधिकं तदा षष्टिभक्तं भागात्मकं कार्यं तत् भागास्थाने शोध्यम्। अनेन य पृथक् स्थितास्ते भाज्याः फलं स्वदिक् नतांशदिक् अंगुलाद्या नतिः स्यात्। एतत्संस्कृतोऽगुलादिः शरः स्फुटः स्यात्। अमुतः स्फुटशरादुक्तवत् स्थितिच्छन्नादिकं कार्यम्। कलात्मकं फलम् ६४।११। अनेन एते ६।१८। रहिता ५।१३।४९। अनेन पथक्स्था ६४।११ भक्ताः फलमंगुलाद्या नतिर्दक्षिणा १२।१६। नतांशानां दक्षिणत्वात् नत्या संस्कृतोऽगुलादिः शरो जातः स्पष्टः दक्षिणः २।२२। 'गतिर्द्विघ्नी' इत्यादिना रविबिम्बम् ११।८। चन्द्रबिम्बम् ९।४९। मानैक्यखराडम् १०।२८। ग्रासः ८।६।

अथ स्थित्यानयनम्। मानैक्यखराडम् १०।२८। इषुणा २।२२ सहितम् १२।५०। दशघ्नम्। १२८। २० ग्रासेन ८।६। गुणितम् १०३९।३०। इदं वारद्वयं षष्ट्या सवर्णितम् ३७४२२००। अस्य मूलम् ३२।१४। इदं पथक् ३२।१४। अस्य रसांशेन ५।२२। पृथक्स्थं हीनम् २६।५२। चन्द्रबिम्बेन ९।४९। भक्तं फलं जाता घटिकादिका स्थितिः २।४४ ॥४॥

केदारदत्तः

श्लोक ३ में साधित नतांशों को १८ में घटाकर शेष और नतांश के दशमांश के कलात्मक गुणनफल को दो जगह प्र और प्र' नाम देकर रखना चाहिए। प्रथम स्थानीय गुण फल को ६।१८ में घटाकर शेष से प्र' स्थानीय गुणनफल में भाग देने से नतांश के दिशा की नति सिद्ध होती हैं। नति और पूर्व साधित शर का परस्पर संस्कार एक दिशा मे योग और भिन्न दिशा में अन्तर करने से स्पष्ट शर ज्ञात होता है। उक्त प्रकार के स्पष्ट शर से सूर्य ग्रहण में स्थिति घटिकादिकों का ज्ञान करना चाहिए ॥४॥

उदाहरणः—दक्षिण नतांशः = १३।३१ का दशमांश=१।२१ कलादिक को १८ में घटाने से १६।३९ होता है। शेष $\times \frac{\text{नतांश}}{१०}$ = १।२१ × १६।३९ = २२।२९।४४ इस कलात्मक गुणनफल को ६°।१८' में घटाने से ५।३७।३१ होता है। उक्त कलात्मक गुणनफल २२।२९।४४ में ५।३७।३१ का भाग देने से ४।२ नति होती है। नतांश दक्षिण है अतः नति भी दक्षिण हुई। पूर्व साधित उत्तर शर = ३।३८ और नति दक्षिण का परस्पर संस्कार ४।२५ − २।५४ = ०।२३ यही स्पष्ट शर का मान है। नति शेष होने से शर दक्षिण का हो गया है। पूर्व श्लोक १।२ में साधित सूर्य बिम्ब = ११।१ चन्द्र बिम्ब = १२।३ दोनों बिम्ब मानैक्य = २३।४ का आधा=११।३२ में शर ०।२२ कम करने से ग्रासमान अंगुलादिक=११।१० ।

स्थिति साधन—चन्द्र ग्रहण श्लोक ५ से शर + मानैक्य खण्ड=११।३२ + ०।२३ = ११।५५ को १० से गुणा करने से ११९।१० =को ग्रासांगुल=७।५४ से गुणा करने से १३२८।४२ होता है। इसका मूल = ३६।२० होता है। मूल में मूल का षष्ठांश कम करने से ३०।१७ होता है। ३०।१७ में चन्द्र बिम्ब १३।३ का भाग देने से लब्धि = २।१९ होती है। इसी का नाम स्थिति है ॥४॥

उपपत्तिः—भास्कराचार्य ने सू० चं० गतियों के १५ वें विभाग का नाम परम लम्बन एवं परम नति कहा है। अतः अनुपात से त्रिज्या तुल्य वित्रिभ नत ज्या में परम नति कला ४८ मिलती है तो इष्ट वित्रिभ नत ज्या में क्या? अनुपात से नति=$\frac{४८ \times \text{वि० नत ज्या}}{१२०}$

तीन से भाग देने से अंगुलादिक मान होता है अतः $\frac{१६ \times \text{वि० नत ज्या}}{१२०}$ इस समीकरण का नाम = अ यदि वित्रिभ के नतांश=वि०न०भा०, तो श्री पति के प्रकार से "दो कोटि भाग रहिताभिहता खनागचन्द्रा" से ज्या वि०न०भा० = $\frac{१८०(\text{वि०न०भा०})\text{वि०न०भा०} \times १२०}{१०१२५ - \frac{(१८० \text{ वि०नभा०})\text{वि०न०भा०}}{४}}$

$= \frac{(१८० - \text{वि०न०भा०})\text{ न०भा०} \times १२० \times ४}{४०५००८ - (१८० \text{ वि०न०भा०})\text{वि०न०भा०}}$ पूर्व समीकरण अ में उत्थापन देने से—

$$= \frac{\text{१६} \times (\text{१८०} - \text{वि०न०भा०})\text{वि०न०भा०} \times \text{४}}{\text{४०५०००} - (\text{१८०} - \text{वि०न०भा०})\text{वि०न०भा०}}$$ हार भाज्य में २०० से अपवर्तन देने से—

$$\frac{\text{१८} - \left(\frac{\text{वि०न०भा०}}{\text{१०}}\right)\frac{\text{वि०न०भा०}}{\text{१०}}}{\frac{\text{४०५}}{\text{६५}} - \frac{\left(\text{१८} - \frac{\text{वि०न०भा०}}{\text{१०}}\right)\frac{\text{वि०न०भा०}}{\text{१०}}}{\text{६५}}}$$

$$= \frac{\left(\text{१८} - \frac{\text{वि०न०भा०}}{\text{१०}}\right)\frac{\text{वि०न०भा०}}{\text{२०}}}{\text{६}^{\circ}\text{।१८ क} - \frac{\left(\text{१८} - \frac{\text{वि०न०भा०}}{\text{१०}}\right)\frac{\text{वि०न०भा०}}{\text{१०}}}{\text{६०}}}$$ स्वल्पान्तर से ६४ की जगह ६० माना है

$$= \frac{\left(\text{१८} - \frac{\text{वि०न०भा०}}{\text{१०}}\right)\frac{\text{वि०न०भा०}}{\text{१०}}}{\text{६}^{\circ}\text{।१८} - \left(\text{१८} - \frac{\text{वि०न०भा०}}{\text{१०}}\right)\frac{\text{वि०न०भा०}}{\text{१०}}}$$ उपपन्न होता है ॥४॥

स्थितिरसहृतिरंशा वित्रिभं तैः पृथक्स्थं
रहितसहितमाभ्यां लम्बने ये तु ताभ्याम् ।
स्थितिविरहितयुक्तः संस्कृतो मध्यदर्शः
क्रमश इति भवेतां स्पर्शमुक्त्योस्तु कालौ ॥५॥

मल्लारिः

अथ स्पर्शकालमोक्षकालौ साधयति षड्गुणा स्थितिरंशाः स्युः। तैरंशैर्मध्यदर्शान्तकालीनं पृथक्स्थापितं त्रिभोनलग्नं स्पर्शार्थं रहितं मोक्षार्थं सहितं कार्यम्। आभ्यां त्रिभोनलग्नाभ्यां पृथक् लम्बने साध्ये। ताभ्यां लम्बनाभ्यां स्थित्वा विरहितयुक्तो मध्यो गणितागतो दर्शः संस्कृतः कार्यः। तद्यथा। एषशार्थं तिथौ स्थितिर्हीना कार्या। तस्यां तल्लम्बनं धनमृणं लक्षणागतं कुर्यात्। स स्पर्शकालो भवति। तथैव मोक्षार्थं दर्शान्ते स्थितिर्योज्या। तस्यां स्वीय लम्बनं संस्कार्यं स मोक्षकालो भवतीत्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः स्थितिहीनयुक्ततिथेः पृथक् त्रिभोनलग्ने साध्ये। ताभ्यां लम्बने अपि साध्ये। ते स्थितिहीनयुक्ततिथौ देये तौ स्पर्शमोक्षौ भक्त इत्यत्र लाघवार्थं त्रिभोनलग्ने स्थितिघटीभिश्चालिते। तत्र स्थितिघटिका यावत् षड्गुणा क्रियन्ते यावद्भागा भवन्ति। ते भागा दर्शान्तकालीने त्रिभोनलग्ने स्पर्शकालीनकरणार्थमृणं देयाः प्राक् कपालत्वात्। मोक्षार्थं धनं देया अग्रेसरत्वादित्युपपन्नम्। अत्रार्कोऽपि स्थितिचालितो गृह्यते चेत् स्यादिति द्रष्टव्यम् ॥५॥

विश्वनाथः

अथ स्पर्शमोक्षकालाज्ञानमाह स्थितिरिति । स्थिति २।४४। रस ६ हतिर्जाता ज्ञंशाः १६।२४। वित्रिभम् ८।२।४६।१७। पृथक्स्थम् ८।२।४६।१७। एकत्रांशै रहितम् ७।१६।२२।१७। अपरत्र सहितम् ८।१९।१०।१७। स्पर्शे साध्यमाने रहितं मोक्षे सहितं स्पर्शमोक्षजे वित्रिभे भवतः। इत्यनेन प्रकारेण गणितागततिथ्यन्तात् मध्यस्थितितुल्य-घटिकाभिः स्पर्शमोक्षकालीनकरणार्थं चालनं सुगमत्वादुक्तम्। परन्तु किञ्चित् स्थूलं भवति। अथ सूक्ष्मोपायः। तिथ्यन्तकालीनसूर्यस्य स्थितितुल्यघटिकाभिर्गतगम्यचालनं दत्वा स्पर्शमोक्षकालीनः सूर्यः कार्यः। स्पर्शे चालनं रहितं कार्यं मोक्षे सहितमिति। एवं मध्यदर्शान्त एकत्र स्थितिघटिकाभी रहितः कार्यस्तत्र स्पर्शकालो भवति। अपरत्र युक्तः कार्यस्तत्र मोक्षकालो भवति। ताभ्यां लग्नं साध्यम्। तत् त्रिभोनं कार्यं तदा स्पर्शमोक्षजे वित्रिभे भवतः। आभ्यां लम्बने कार्ये तत्रप्रथमं रहितात् लम्बमं साध्यते। वित्रिभम् ७।१६।२२।१७ अस्य क्रान्तिर्दक्षिणा २१।२४।३९ अक्षांशैः २५।२६।४२ संस्कृता जाता नतांशा दक्षिणः ४६ ५१।२१ अस्य द्विद्व्यंशः २।७ वर्गितः ४।२८ पृथक् ४।२८ द्व्यूनः २।२८ अर्धितः १।१४। एतद्युक्तः पृथक्स्थः ४।२८ सार्को जातो हरः १७।४२। पर्वान्तकालीनः सूर्यः ८।५।२६।२५ गतिः ६१।१५ स्थितिघटिकाभिः २।४४ चालितो जातः स्पर्शकालीनः सूर्यः ८।५।२३।३८ स्पर्शकालीनं त्रिभोनलग्नम् ७।१६।२२।१७ त्रिभोनोदयार्कविश्लेषः ०।११।१।२१ अस्यांशाः १९।१।२१ अस्य दशांशः १।५४ अनेन हीनाः शक्राः १२।६ एते दशांशेनैव गुणिताः २२।४९ हारेण १७।४२ भक्ता लब्धं नाडिकाद्यं लम्बनमृणम् १।१७ अथ मोक्षकालीनं लम्बनं साध्यते। तत्रांशैः सहितं वित्रिभम् १९।१०।१७ अस्य क्रान्तिर्दक्षिणा २३।४२।२८ अक्षांशैः संस्कृता जातानतांशाः दक्षिणाः ४९।९।१० अस्य द्विद्व्यंशः २।२४ वर्गितः ४।५९ पृथक् ४।५९ द्व्यूनः २।५९ अर्धितः १।२९ एतद्युक्तः पृथक्स्थः ६।२८ सार्को जातो हारः १८।२८ मोक्षकालीनः सूर्यः ८।५।२९।१२ मोक्षकालीनत्रिभोनलग्नम् ८।१९।१०।१७ त्रिभोनोदयार्कविश्लेषः ०।१३।४१।५ अस्यांशाः १३।४१।५ अस्य दशमांशः १।२२ अनेन हीनघ्नशक्राः १७ १५ हारेण भक्ता लब्धं घटिकाद्यं लम्बनं धनम् ०।५६ मध्यस्थितिविरहितयुक्तो मध्यदर्शः। ताभ्यां लम्बनाभ्यां संस्कृतः स्पर्शमुक्त्योः कालौस्तः। मध्यस्थित्या रहितो मध्यदर्शान्तः स्पर्शलम्बनेन संस्कृतः स्पर्शकालः स्यात्। पूर्वं मध्यलम्बनसंस्कृतो दर्शान्तमध्यकालो ज्ञेय इत्यनुक्तमपि बुद्धिमता ज्ञायते। मध्यदर्शः १३।४ स्थित्या २।४४ विरहितः १०।२० स्पर्शलम्बनेन १।१७ संस्कृतो जातः स्पर्शकालः ९।३ मध्यदर्शः १३।४ स्थिति-२।४४ युक्तः १५।४८ मोक्षलम्बनेन संस्कृतः ०।५६ जातो मोक्षकालः १६।४४ ॥५॥

केदारदत्तः

स्थिति घटी को ६ से गुणा करने से अंश होते हैं। इन्हे पृथक्-पृथक् क्रमशः वित्रिभ लग्न में जोड़ने और घटाने से मोक्ष और स्पर्श कालिक वित्रिभ लग्न होते हैं। इस प्रकार के वित्रिभ लग्नों से लम्बन घटी ज्ञात करने से वह स्पर्श व मोक्ष कालीन लम्बन होंगे। स्पार्शिक

व मौक्षिक स्थितियों में स्पार्शिक व मौक्षिक लम्बनों का संस्कार करने से स्पष्ट स्पर्श एवं मोक्ष स्थितियाँ होंगी। इस प्रकार पृष्ठीय दर्शान्त या लम्बन संस्कृत गर्भीय पर्वान्त में स्पर्श स्थिति कम करने से स्पर्श काल एवं मोक्ष स्थिति जोड़ने से ग्रहण का स्पष्ट मोक्षकाल सिद्ध होता है ॥५॥

उदाहरण—स्थिति घटी = २।३१ को ६ से गुणा करने से १५°।६' को वित्रिभ लग्न ११।१८।७।५० में घटाने से स्वल्पान्तर से ११।३।२।०= स्पार्शिक वित्रिभ, एवं ११।१८।७।५० + ०।१५°।१६'।० = ०।३।१४ मोक्ष कलिका वित्रिभ का मान होता है।

स्पार्शिक वित्रिभ ११।३।२।० क्रान्ति दक्षिण १।२५ तथा मौक्षिक वित्रिभ लग्न की ०।३।१४।० की क्रान्ति उत्तरा=१०।४० अतः स्पार्शिक नतांश=अक्षांश द० और क्रान्ति संस्कार =२५।२६ ~ उत्तरक्रान्त्यंश = १।२५ = २४।१ दक्षिण अक्षांश एवं मौक्षिक नतांश = अक्षांश द०=२५।२६–क्रान्ति उ० १०।४१=१४।४५ दक्षिण नतांश। स्पार्शिक लम्बन। नतांश=२४।१ ÷ २२=१।५ का वर्ग=१।१० को १२ में जोड़नेसे १३।१०=हार होता है। अमान्त कालीन सूर्य की गति ६०।३६ को स्थिति २।३१ से गुणा करने से २।३२ को अमान्त कालीन सूर्य में १०।३।१५।३६ कम करने से स्पर्श कालिक सूर्य १०।३।१३।४ तथा स्पार्शिक वित्रिभ लग्न के ११।३।२ अन्तरांश ०।२९।४९ का दशमांश = २।५८ को १४ में घटाने से ११।२।४९ का और दशमांश २।५८ का गुणन फल = ३२।४३ में उक्त हार १३।१० का भाग देने से लब्ध फल= घटी २ पल २८ यह स्पार्शिक लम्बन होता है। सूर्य से वित्रिभ अधिक है अतः धन लम्बन होता है।

मौक्षिक लम्बन = मौक्षिक नतांश=१४।४५ ÷ २२ = ०।४० का वर्ग ०।२६ को १२ में जोड़ने से १२।२६ = हार होता है। स्थिति × सूर्यगति को पर्वान्त कालिक सूर्य में जोड़ने से १०।४।१८ मोक्षकालिक सूर्य होता है। मोक्ष कालीन वित्रिभ = ०।३।१४।० और सूर्य के अन्तरांश = ५७।५६।० का दशमांश = ५।४७।१२ को १४ में घटाने से ८।१२।४८ और गुणा करने से गुणनफल ४७।३१ में हार का भाग देने से घटी ३।४९ = मौक्षिक लम्बन सूर्य से वित्रिभ अधिक है। अतः धन होता है ॥५॥

मध्य दर्शान्त = १९।२५ में स्थिति घटिका = २।३३ कम करने से १६।५२ होता है तथा इसमें धन स्पार्शिक लम्बन २।२८ धन करने से १९।२०=स्पर्श काल होता है। घण्टात्मक २.४ p.m. में स्पर्श। मध्य दर्शान्त = १९।२५ में स्थिति घटिका = २।३३ जोड़ने से २१।५८ होता है। इसमें मोक्षकालिक लम्बन = ३।३९ जोड़ने से २५।३७ में मोक्षकाल होता है।

अर्थात् काशी के स्टैण्डर्ड सूर्य घड़ी १ समय से

घण्टात्मक मान से ग्रहण स्पर्श	२.१४ p.m.	
मध्य	३.३५	
मोक्ष	४.५०	होगा ॥५॥

उपपत्ति—मध्यकाल से पहिले स्थिति घटिका तुल्य कम अन्तर में स्पर्श काल और स्थितिकाल अधिक तुल्य अन्तर में मोक्षकाल होता है। स्पष्ट है।

स्वल्पान्तर से १ घटी = ६° यत: १५ घटी = ९०° मानने से स्थिति काल को ६ से गुणा कर अंशमान कहना सही है। स्वल्पान्तर से मध्य कालिक वित्रिभ में उक्त अंशों को कम करने से स्पार्शिक एवं जोड़ने से मौक्षिक वित्रिभ होगा ही स्पष्ट है।

स्पर्शकालिक वित्रिभ से साधित लम्बन से संस्कृत स्पर्श काल, एवं मोक्षकालिक लम्बन संस्कृत मोक्षकाल ही ग्रहण दर्शनोपयुक्त स्पर्श एवं मोक्षकाल होंगे, ठीक है। गर्भीय स्पर्श, सम्मीलन, मध्य, उन्मीलन एवं मोक्ष कालों में, स्पार्शिक सम्मीलनीय माध्य उन्मीलनीय एवं मौक्षिक लम्बनों के संस्कार से पृष्ठीय ग्रहण दर्शनोपयुक्त स्पर्श सम्मीलन, मध्य, उन्मीलन एवं मोक्ष काल होते हैं इति दिग्दर्शन हैं ॥५॥

मर्दादेवं मीलनोन्मीलने स्तो ग्रासो नादेश्योऽङ्गुलाल्पो रवीन्द्वोः।
धूम्रः कृष्णः पिङ्गलोऽल्पार्धसर्वग्रस्तश्चन्द्रोऽर्कस्तु कृष्णः सदैव ॥६॥

मल्लारिः

अथ सम्मीलनोन्मीलनकालौ साधयति एवमनयैव रीत्या मर्दात् मीलनोन्मीलने स्तः। एतदुक्तं भवति। मर्दं षड्गुणं भागाः स्युः। ते दर्शान्तकालीनत्रिभोनलग्ने सम्मीलनार्थं होना उन्मीलनार्थं युक्ताः। ताभ्यां पृथक् लम्बने साध्ये। ततश्च सम्मीलनार्थं तिथौ मर्दं न्यूनं कायम्। तत्र तल्लम्बनं संस्कार्यं सम्मीलनकालो भवति। तथैव मर्दं तिथौ योज्यं तत्र लम्बनं द्वितीयं देयमुन्मीलनकालो भवति।

अस्योपपत्तिः। स्पर्शमोक्षवत् सुगमा।

रवीन्दोः सूर्य चन्द्रयोरंगुलादल्पो ग्रासो नादेश्यः। यतो हि किरणबलवशादल्पग्रासो न दृश्यत इति प्रत्यक्ष हेतुः। चन्द्रो हि अल्पार्ध सर्वग्रस्तो धूम्रादिः स्यात्। तद्यथा अल्पग्रहे धूम्रवर्णोऽर्धग्रहः कृष्णः सर्वग्रहः पिंगलः स्यात्। अर्कः सदा अल्पादिग्रासेषु कृष्ण एकवर्णः। अत्र दृग्गोचर तथैवोपपत्तिः ॥६॥

विश्वनाथः

मर्दात् सम्मीलनोन्मीलनसाधनं पर्वानादेश्यत्वं वर्णज्ञानं चाहमर्दादिनि। एवं पूर्वोक्तप्रकारेणमर्दान्मीलनोन्मीलने स्तः एतदुक्तं भवति मर्दरसहतिरंशाः स्युः। तैः पृथक्स्थं वित्रिभं सम्मीलनेन साध्यमानेन रहितमुन्मीलनेन सहितम्। अभ्यामुक्तवल्लम्बने कार्ये। मर्दरहितयुतो मध्यदर्श आभ्यांलम्बनाभ्यां संस्कृताः सम्मीलनोन्मीलने स्तः रवीन्द्वोरंगुलाल्पो ग्रासोयदाऽऽगच्छनि तदा नादेश्यः। चन्द्रग्रहणे चन्द्रोऽल्पार्ध सर्वग्रस्तः सन् धूम्रः कृष्णः पिंगलः स्यात् अल्पग्रस्तो धूम्रवर्णः ग्रह अर्ध ग्रस्तः कृष्ण वर्णः सर्वग्रस्तः पिङ्गलः स्यात्। अर्कः सदैवाल्पादि ग्रासेषु कृष्ण वर्ण एव ॥६॥

केदारदत्तः

जिस प्रकार मध्य दर्शान्त से स्पर्श मोक्षकाल साधन किया गया है उसी प्रकार मर्द काल से सम्मीलन एवं उन्मीलन कालों का साधन पूर्ववत् करना चाहिए ॥६॥

सूर्य ग्रहण का ग्रासमान यदि १ अंगुल से कम हो तो जनता के लिए उसका आदेश नहीं करना चाहिए। क्योंकि सूर्य किरणों की प्रचुर प्रखरता से ऐसा १ अंगुल से कम ग्रहण लोक दृष्टि में नहीं आ सकता है।

अल्पग्रास के चन्द्र ग्रहण का वर्ण धूम्र, तथा अर्द्धग्रास का चन्द्रग्रहण कृष्ण वर्ण का और सर्वग्रासीय चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा का वर्ण पिंगल (पीला) दिखाई देता है। किन्तु सूर्य ग्रहण में, अल्प, अर्ध और सम्पूर्ण ग्रासों में सूर्य बिम्ब काला ही दिखाई देता है ॥६॥

उपपत्तिः—ग्रहण का मध्यकाल एवं सम्मीलन कालों का अन्तर मर्दकाल के तुल्य तथा ग्रहण मध्यकाल एवं उन्मीलन कालों का अन्तर भी मर्दकाल कहा जाता है। अतः मर्दकाल से सम्मीलन उन्मीलन कालों का साधन समीचीन होता ही है ॥६॥

इष्टं द्विघ्नं छन्नक्षुण्णं स्पर्शान्त्यान्तर्नाडीभक्तम्।
रूपार्धेनोपेतं विद्यादिष्टे कालेऽर्कस्य ग्रासम् ॥७॥

मल्लारिः

अथेष्टग्रासानयनमाह। इष्टं घटीपूर्वं द्विघ्नं द्विगुणं ततोहि छन्नेन ग्रासेन क्षुण्णं गुणितं सत्स्पर्शान्त्ययोः स्पर्शमोक्षयोर्या अन्तर्मध्य नाडिकाः पर्वकालाख्यास्ताभिर्भक्तं ततो लब्धं रूपार्धेन उपेतं युक्तं सत् अर्कस्येष्टे काले ग्रासं विद्यात् जानीयात्।

अत्रोपपत्तिः। यदिस्थितिघटिकाभिरयं ग्रासस्तदेष्ट घटीभिः किमिति ग्रासोऽभीष्ट घटीगुणः स्थित्या भाज्यः। अत्र स्पर्शमोक्षस्थितीष्टं पृथक् न कृतम्। अतोहि पर्वकाल एव हरो गृहीतः। एवं हरस्य द्विगुणितादिष्ट द्विगुण कार्यमित्युपपन्नम् ॥७॥

विश्वनाथः

अथेष्टग्रासानयनमाह। इष्टमिति। इष्टं १ द्विनिघ्नं २ छन्न-८।६ गुणम् १६।१६ स्पर्शकाल-९।३ मोक्षकालयो-१६।४४ रन्तरघटिकाभि-७।४१ भक्तं फलम् २।६ रूपार्धेन ३० त्रिंशद्व्यंगुलैर्युतम् २।३६ इष्टकालेऽर्कस्य ग्रासं विद्यात्। शेषं वलनपरिलेखादिकं पूर्ववत् कार्यमिति। लम्बनसंस्कृततिथ्यन्त-१२।५३ कालीनो रविः ८।५।२६।१४ त्रिभयुतः ११।५।२६।१४ अयनलवाढ्यः ११।२३।३४।१४ 'इतश्चरवद्दलैर्नगशरेन्दुमितै रित्यादिनाऽऽनीत वलनं दक्षिणम् १।३० मध्यग्रहणकालः १२।५३ दिनार्धम् १३।३ यातः शेष प्राक्परत्रोन्नतः स्यात् इत्यादिना जातं नतं पूर्वम् ०।१० विषयलब्धगृहादितो ०।१।०।० अस्मान्नगशरेन्दमितैरित्यादिनाऽऽनीतं वलनम् ०।१४ पलभया ५।४५ गुणितं १।२० पञ्चभक्तं जातं वलनमुत्तरम् ०।१६ पूर्वनतत्वादुभयोः संस्कृतिः १।१४ रसभक्ता जाता वलनांग्रयो दक्षिणाः ०।१२ ग्रासः ८।६ षष्टिगुणितः ४९६ मानैक्यखण्डेन

१०।२८ भक्तः फलम् ४६।२६ अस्य मूलं जाताश्छन्नांघ्रयः ६।४९ तथाऽयं परिलेखः ॥७॥

केदारदत्तः

इष्टघटी, ग्रासमान और २ इन तीनों के गुणन फल में स्पर्श से मोक्षकाल तक की घटिका मान से भाग देने पर जो लब्ध फल हो उसमें ½ अंगुल जोड़ देने से इष्टकालीन ग्रास का मान स्पष्ट हो जाता है ॥

उदाहरण:—ग्रासमान = ७।२३ इष्टघटिका स्पर्श से मध्य ग्रहण के बीच = २ अतः इष्टघटी × ग्रासमान × २ = २९।३२ में स्पर्शघटी से मोक्षघटी तक २५।३७ – १९।९ = ६।२८ का भाग देने से लब्धि अंगुलादिक = ४।३५ के तुल्य कल्पित तुल्य २ घटी की काल में ग्रहण दर्शन होता है ॥७॥

उपपत्तिः—अनुपात से यदि स्थित्यर्धघटी तुल्य काल में ग्रासमान मिलता है तो इष्ट घटी तुल्य काल में $\frac{\text{ग्रास} \times \text{इष्ट घटी}}{\text{स्थित्यर्धघटी}}$ = इष्ट ग्रासांगुल । अनुपात की स्थूलता तथा अन्य अनेक हेतु को समझ कर आचार्य ने ½ अंगुल और अधिक जोड़ा है ॥७॥

गर्गगोत्रीय स्वनामधन्य, कूर्माञ्चलीय ज्योतिर्विद्वर्य श्री पं० हरिदत्त जी
के आत्मज अल्मोड़ामण्डलीय जुनायल ग्रामज पर्वतीय, काशीस्थ
श्री केदारदत्त जोशी कृत ग्रहलाघव सूर्यग्रहणाधिकार की
उपपत्ति सहित सोदाहरण व्याख्या सम्पूर्णः ॥६॥

अथ मासगणाधिकारः

अथ मासगणात् सुलघुक्रियया
ग्रहणद्वयसिद्धिकृतेऽभिदधे ।
स्फुटसूर्यविपाततिथींश्च वपु-
र्ग्रसनादिविशेषचमत्कृतये ।।१।।
क्षेपो भाद्यः खं कृता भूदृशोऽर्के
रुद्राः शैला नागचन्द्रा विपाते ।
वृत्ते शून्यं वज्रिणश्चन्द्रबाणा
वाराद्ये द्वौ व्यंघ्रिनन्दाब्धयः स्यात् ।।२।।

मल्लारिः

अथ मासगणादेव ग्रहणद्वयसाधनाधिकारो व्याख्यायते। मासगणात् सुतरां लघुक्रियया ग्रहणद्वयसिद्ध्यर्थं स्फुटान् सूर्यविपाततिथीन् यथा वपूंसि विम्बानि ग्रसनं ग्रास इत्यादि विशेषचमत्कारदर्शनार्थमभिदधेऽभिधास्ये। तत्रादौ क्षेपकानाह। अर्के भाद्यो राश्याद्योऽयं क्षेपः स्यात् खम्० । कृताः ४। भूदृशः २१ इति। विपाते व्यगौ रुद्राः २१ शैला ७। नागचन्द्राः १८। क्षेपः स्यात्। वृत्ते शून्यम् ०। वज्रिणश्चतुर्दश १४। चन्द्रबाण एकपञ्चाशत् ५१। वाराद्ये द्वौ व्यंघ्रिनन्दाब्धयो विचरणैकोनपञ्चाशत्। वारस्थाने द्वौ २। घटीष्वष्टचत्वारिंशत् ४८ पलेषु पञ्चचत्वारिंशत् ४५।

अत्रोपपत्तिः। ग्रन्थशकादौ रविचन्द्रराहूणां क्षेपाः प्रथममुक्ता सन्ति। एवं राहुक्षेपे चन्द्रक्षेपं त्यक्त्वा विपातः कृतः। सूर्यक्षेपस्तु सिद्ध एव। वृत्तं चन्द्रस्य मन्द-केन्द्रम्। चन्द्रोच्चक्षेपयोरन्तरे जातस्तस्यापि क्षेपः। एवं तच्छकादौ यन्मध्मं तिथे-र्वाराद्यं स वारादिकस्य क्षेपः। अत्र मासगणोत्पन्ना ग्रहा मासादिप्रतिपदि स्युः। अतः अतः पौर्णमास्यन्तकरणार्थं पक्षचालनानि ग्रहेषु क्षेप्याणि। ततो लाघवार्थं क्षेपेष्वेव प्रक्षिप्य क्षेपाः पाठपठिताः ।।१-२।।

उदाहरण—यहाँ से अत्यधिक ग्रन्थ गौरव भय से और अनेकों उदाहरणों की आवश्यकता में किसी एक को ग्रहण कर उसी आधार से पूरे उदाहरणों की प्रक्रिया देना भी संभव नहीं होने से तथा आचार्य श्री विश्वनाथ की टीकोदाहरण ही सर्वश्रेष्ठ सर्वोपादेय होने से तथा आचार्य की द्रविड़ गणित क्रिया के अनुसार प्राप्त फल की, आज के विकसित ग्रह गणित में यत्र तत्र सर्वत्र सुलभ प्राप्ति होने से स्वकल्पित उदाहरण क्रिया देना अनावश्यक समझ कर मात्र गहन गम्भीर विवेचन की स्पष्टतया उपपत्ति क्रिया ही प्रदर्शित की जा रही है ।

विश्वनाथः

अथ मासगणात् पर्वानयनमाह अथेति। अथेत्यनन्तरम्। मासगणात् सुतरां लघुक्रियया गृहणद्वयस्य सिद्धिः साधनम्। तस्य कृते तदर्थं स्फुटसूर्यविपाततिथीन् तथा वपूंसि विम्बानि गृसनं गृास इत्यादि विशिष्टचमत्कारदर्शनार्थमभिदधे वाच्मि। येन गणकानां चमत्कारो भवति। तत्रादौ क्षेपकानाह क्षेप इति। स्पष्टोऽर्थः ॥१-२॥

केदारदत्तः

सूर्य और चन्द्रमा दोनों के ग्रहणगणितों की साधनिका के लिए सरल प्रकार से मास समूह द्वारा, स्पष्ट रवि-व्यगु-तिथि-बिम्ब और गासादिकों का चमत्कारिका गणित साधन प्रक्रिया कही जा रही है। एतदर्थ राश्यादिक सूर्य क्षेप का मान ०।४।२१ विपात क्षेप, ११।७।१८ वृत्तक्षेप (चन्द्र केन्द्र क्षेप) ०।१४।५१, और २।४८।४५ तिथि के वारादिक का क्षेप हैं ॥१-२॥

उपपत्तिः—मध्यमाधिकार में रुद्रागोऽब्जः कुवेदाः से ग्रन्थारम्भ समय शके १४४२ में सूर्य क्षेप = ११।१९।४१ चन्द्र क्षे० = ११।१९।६ और चन्द्रोच्च क्षेप = ५।१७।३३।

यहाँ पर सूर्य से चन्द्रमा कुछ कम होने से अभी दर्शान्त = अमावस्या का अन्त नहीं हुआ। कितनी समय में दर्शान्त होगा? तदर्थ तिथि साधन प्रक्रिया से, दर्शान्त की भोग्य कला = ३५, चं० मध्यमागति–सूर्य मध्यमा गति = ७९०।३५ – ५९।८ = ७३१'।२७'' की विकला = ४३८८७ अतः अनुपात से $\frac{६० \times \text{भोग्य विकला}}{४३८८७}$ = २ घटी ५२ पलात्मक चालन फल से चलाकर दर्शान्त समय में सूर्य = ११।१९।४४ आगे के श्लोक से रवि का पाक्षिक चालन फल = ०।१४°।३३ को उक्त सूर्य में जोड़ने से = ०।४।१७ = रवि क्षेप होता है।

दर्शान्त कालीन सूर्य	=	चन्द्रमा अतः
दर्शान्त में सूर्य = चन्द्र	=	११।१९°।४४'
दशान्तकालिक चन्द्रोच्च	=	५।१७।३३ (मध्यमाधिकार के श्लोक ८ से)
चन्द्र – चं० उ० चन्द्र केन्द्र	=	६।२।११
चन्द्र केन्द्र=वृत्तक्षेप का पाक्षिक चालन	=	६।१२।५४
दोनों के योग से वृत्त क्षेप	=	०।१५।५
ग्रन्थारम्भ में राहु क्षेप	=	०।२७।३८ (अत्यल्प गति से दर्शान्त में भी राहु क्षेप ०।२७।३८)

दर्शान्तीय विपात १०।२२°।६ को विपात के पाक्षिक चालन ०।१५।२० में जोड़ने से विपात क्षेप = ११।२७°।२६'' दिनादिक पाक्षिक चालन = ०।४५।५५ को ग्रन्थारम्भ कालिक पर्शान्त के वारादिक २।२।५२ में जोड़ देने से २।४८।४७ मासगण से आगत सूर्यादिकों में क्षेप जोड़ने पूर्णान्त कालिक सूर्यादिक ग्रह होते है। (इसी अधिकार के सातवें श्लोक में पाक्षिक चालन है)।

एक साणि से—

	दर्शान्त क्षेप	+	पाक्षिक चा०	=	योग	=	पठित क्षेप
रवि क्षेप	= ११।१९।४४	+	०।१४।३३	=	०।४।१७	=	०।४।२१
विपात क्षेप	= १०।२२।३	+	०।१५।२०	=	११।७।२३	=	११।७।१८
वृत्त क्षेप	= ६।२।११	+	६।१२।५४	=	०।१५।५	=	०।१४।५१
वारादिक्षेप	= २।२।५२	+	०।४५।५५	=	२।४८।४७	=	२।४८।५५

यहाँ पर आचार्य ने, रवि क्षेप में ४ कला अधिक, विपात में ८ कला कम, वृत्तक्षेप में १४ कला कम, और वारादिक क्षेप में २ पल कम किया है। ऐसी उपलब्धि ही आचार्य के समय में हुई थी या और क्या कारण होगा कहा नहीं जा सकता ॥१–२॥

भानोः खं भूः खाब्धयोऽयं ध्रुवः स्यात्
शैलाः क्वर्का राशिपूर्वो व्यगोः स्यात् ।
वृत्तस्याङ्का भूरसाश्चार्थतिथ्यो
वाराद्यस्याक्षाः खगास्तर्करामाः ॥३॥

मल्लारिः

अथ ध्रुवानाह । भानोः सूर्यस्य खम् ० । भूः १ । खाब्धयः ४० । अयं राशिपूर्वो ध्रुवः स्यात् । व्यगोः । शैलाः सप्त ७ । कुरेकः १ । अर्का द्वादश १२ । ध्रुवः स्यात् । वृत्तस्य । अङ्का नव ९ । भूरेकः १ । रसाः षट् ६ । तथा तिथिवाराद्यस्य । अक्षाः पञ्च ५ । खगा नव ९ । तर्करामाः षट्त्रिंशत् ३६ ।

अस्योपपत्तिः । एकादशवर्षमितं चक्रम् । अतो हि एकादशवर्षाहर्गणात् रव्यादयः पूर्वोक्तवत् साधितास्ते ध्रुवसंज्ञा इति ॥३॥

विश्वनाथः

ध्रुवकानाह । भानोरिति स्पष्टोऽर्थः ॥३॥

केदारदत्तः

सूर्य,-व्यगु-चन्द्र केन्द्र और तिथि वारादिक के क्रमशः राश्यादिक ०।१।४०, ७।१।१२ ९।१।१६ और ५।९।३६ ध्रुवक होते हैं ।

उपपत्तिः—११ सौर वर्षों का एक चक्र होता है । अतः ११ सौर वर्षों में ११ × १२ = १३२ सौर मास होते हैं । ३२ दिन १६ घटी में एक अधिक मास होता है अतः ११ चक्रोद्भव सौर वर्षों १३२ में, १३२ ÷ ३२।१६···· = ४ अधिक मास होने से १ चक्रोत्पन्न चान्द्र मास = १३२ + ४ = १३६ संख्यक होंगे ही । सूर्य सिद्धान्त के मध्यमाधिकार के श्लोक ३७ से एक कल्प सम्बन्धी चान्द्र दिन संख्याओं में १६०३०००००८०००० में ३० का भाग देने से एक कल्प सम्बन्धी चन्द्रमास = ५३४३३३३६००० । तथा सूर्य सिद्धान्तीय प्रसिद्ध कल्प

सावन दिन संख्या = १५७७९१७८२८। अत्र अनुपात से यदि कल्प चान्द्रमासों में कल्प सावन दिन संख्या मिलतां है तो एक चक्र सम्बन्धी १३६ चान्द्रमासों में क्या ?—

$$\frac{१६७७९५७८२८ \times १३८}{५३४३३३३६०००}$$ = ४०१६।९।३६ = एक चक्रोद्भव अहर्गण। एक चक्रोद्भव अहर्गण से मध्यमाधिकारोक्त मध्यम सूर्य साधन रीति से मध्यम सूर्य = ११।२८।२०।२५ को चक्र = १२ में घटाते से ०।१।३९।३५ एक चक्रोद्भव मध्यम सूर्य=सूर्य ध्रुवा उपपन्न होती है।

इसी प्रकार उक्त अहर्गण से मध्यम चन्द्र=११।२८।२०।१०, राहु = ४।२७।८।९ दोनों का अन्तर=७।१।१२।१=विपात ध्रुव। उपपन्न होता है।

साधित मध्यम चन्द्र = ११।२८।२०।१०, नवहृतदिनसंघ: से साधित चन्द्रोच्च = २।२७।११।४६ से कम मध्यम चन्द्र = ९'१।८।० = वृत्त संज्ञक आचार्य ने ९।१।६ पढ़ा है होना चाहिए ९।१।८।

एक चक्र में सावयव अहर्गण = ४०१६।९।३६ को ७ से तष्टित करने से ५।९।३६ तिथि का वारादिक ध्रुवक उपपन्न होता है ॥३॥

मासौघतौ द्विगुणितान्नगषड्भिराप्त-
राश्यादिना रहितमासगणो रविः स्यात्।
मासा गृहाणि विनिजत्रिलवाश्च तेंऽशा
मासांघ्रितुल्यकालिकाः स्युरयं विपातः ॥४॥

मल्लारिः

अथ मासगणात् सूर्यविपातावेकवृत्तेन साधयति। द्विगुणितात् मासगणात् नगषड्भिः सप्तषष्ट्याऽऽप्तं लब्धं यद्राश्यादि फलं तेन रहितो मास गणो मध्यमरविः स्यात्। अथ यावन्तो मासगणे मासास्तावंत्येव गृहाणि राशयः स्युः। विगतो निजः स्वकीयस्त्रिलवो येभ्यस्ते तथा। एवम्भूता मासा अंशा भागाः स्युः। मासानां योंऽघ्रिश्चरणः।'तत्तुल्या एव कलिकाः। अयं विपातः स्यात्।

अत्रोपपत्तिः। कल्पचान्द्रमासैः कल्पग्रहभगणानां राशयो लभ्यन्ते तदेकमासेन किमिति लब्धाः पृथक् पृथक् सूर्यविपातवृत्तवारादिकानां मासगुणाः। ततोऽन्योऽनुपातः। यद्येकमासेनैते तदेष्टमागणेन के। अत्र रूपहरस्याविकृतत्वान्नाशे कृते मासगणेनैव ते गुणा गुण्यास्ते ग्रहाः स्युरिति। अत्र गुणानां चतुःस्थितत्वात् मासगणाङ्कबाहुल्यात् गुणने जडकर्म दृष्ट्वा आचार्येण खण्डगुणनानि सर्वत्र विहितानि। तत्रादौ रवेरयं राश्यादिर्मासगुणः ०।२९।६।१६। अत्र खण्डगुणनार्थमेको राशिरेव धृतः। अतो मासगणतुल्यो रविः स्यात्। ततस्तदेकस्माच्छुद्धं शेषम् ०।५३।४४। इदं सप्तषष्टयासवर्णितं जातावुपरि द्वौ २। अतो द्विगुणमासगणात् सप्तषष्टिलब्धं मासगणे न्यूनीकृतं सत्

रविर्भवतीत्युपपन्नम् । तथैवायं विपातमासगुणः १।०।४०।१५ अत्रैकराशिरतो मासा एव राशयः । शेषस्यापि खण्डद्वयं कृतम् । तत्रैकं खण्डम् ०।४० । इदं त्रिभिः सवर्णितं जातौ भागस्थाने द्वौ । अतो मासा द्विगुणास्त्रिभक्ता इत्यत्रापि यो राशिर्द्वाभ्यां गुण्यते त्रिभिर्भज्यते स तावत् स्वत्रिभागोन एव भवति अतो विनिजत्रिलवा इति मासा भागाः स्युरिति । अन्यत् खण्डम् ०।१५ । इदं चतुर्भिः सवर्णितं जातं कलास्थाने रूपम् । अतो मासांघ्रितुल्यकलिका इत्युपपन्नम् ।।४।।

विश्वनाथः

अथ मध्यमार्कव्यगुसाधनमाह मासौघत इति । संवत् १६६९ शाके १५३४ कार्त्तिकशुक्ल–१५ गुरौ घटी ३२।३३ । भरणीनक्षत्रे घटी २३।१४ । वज्रयोगे घटी ४४।४४ । अब्दाः ९२ । चक्रम् ८ । अधिमासौ: २ । मासाः ५७ । द्विगुणिताः ११४ । नगषड्भक्ताः फ ं राश्यादि १।२१।२।४१ । अनेन रहितो मासगणो जातो रविः ७।८। ५७।१९ । रवेर्ध्रुवकः ०।१।४० चक्रहतः ०।१३।२० । अनेन रहितो रविः ६।२५।३७।१९। रविक्षेपकेण ०।४।२१। युतो रविः ६।२९।५८।१९ ।

अथ विपातसाधनम् मासगणः ५७ । एते राशयः ५७ । मासगणः ५७ । अस्य त्रिलवः १९ । अनेन रहितो मासगणो जाता अंशाः ३८ । मासागणः ५७ । अस्यांघ्रिः १४।१५ एताः कलाः । एवं राश्यादिव्यगुः १०।८।१४।१५ । व्यगोर्ध्रुवः ७।१।१२ । चक्रहतः ८।९।३६ । अने युक्तो व्यगुः ६।१७।५०।१५ क्षेपकेण ११।७।१८ युक्तो जातो व्यगुः ५।२५।८।१५ ।।४।।

केदारदत्तः

द्विगुणित माग गण में ६७ का भाग देने से प्राप्त राश्यादिक लब्धि को मास गण में घटाने से जो प्राप्त हो वही स्पष्ट रवि होता है । तथा मास गण की तुल्य राशि तथा मास गण में अपना तृतीयांश कम करने से उक्त जो शेष उतने अंश, और मासगण के चतुर्थांश तुल्य कला का यह विपात चन्द्रमा होता है ।।४।।

उदाहरण—शके १९०१ भाद्रपद शुक्ले पूर्णिमा गुरुवार (ता० ६-९-१९७९) घटी २६।३१ को द्वयब्धीन्द्रोनित शक से १९०१-१४४२ = ४५९ में ११ का भाग देने से चक्र = ४१ शेष = ८ को १२ से गुणा करने से ९६ में चैत्र शुक्ल पूर्णिमा से भाद्र शुक्ल पूर्णिमा तक ६ महीने जोड़ ९६ + ६ = १०२ में स्वल्पान्तरीय अधिक मास = ३ को जोड़ने से १०२ + ३ = १०५ मासगण होता है ।

अतः उक्त श्लोकानुसार मासगण २ × १०५ ÷ ६७ में ६७ का भाग देने से राश्यादिक = ३।८।३।३४ को मासगण १०५ में घटाने से १०१।२१।५६।२६ राशि स्थान १०१ को १२ से तष्टित करने से ५।२१।५६।२६ होता है ।

अग्रिम श्लोक ६ के अनुसार रवि ध्रुव = ०।१।४० को चक = ४१ से गुणा करने से २।८।२० को उक्त सूर्य ६।१।५१।२ में घटाने से ६।७।३१।२ में सूर्य क्षेपक = ०।४।२१ जोड़ने से ०।४।२१ उपपन्न होता है ।

उपपत्तिः—कल्प कुदिन की सौरमास संख्या = क० कु० सौरराशि । कल्प चान्द्र मासों में कल्प सौरमास तुल्य सौर राशियां उपलब्ध होती हैं तो १ चान्द्र मास में क्या ?
$= \frac{५१८४००००००० \times १}{५३४३३३६०४०}$ = आमन्नमान ग्रहण करने से आचार्य ने $\frac{६५}{६७}$ ग्रहण किया है।

एक चान्द्रमास सम्बन्धी रवि राशि= $\frac{६५}{६७} = १ - \frac{२}{६७}$ अतः इष्ट चान्द्रमास सम्बन्धी रवि

राशि = $\frac{२ \text{ चा०मास}}{६७}$ रवि उत्पन्न होता है । यदि मास = मा तो भास्कराचार्य के अनुसार

मासाः पृथक् ते द्विगुणास्त्रिपूर्णवारगाधिकाः खाङ्कनृपांशयुक्तास्त्रिभिर्विभक्ता से क्षेप रहित अंशात्मक त्रिपात खण्ड = $\frac{२ \text{ मा०} \times १७०}{१६९ \times ३} + \frac{२ \text{ मा०}}{३} + \frac{२ \text{ मा०} \times १७०}{१६९ \times ३} - \frac{२}{३}$

$= \frac{(३ - १) \text{ मा०}}{३} + \frac{२४० \text{ मा०} - ३३८ \text{ मा०}}{१६९ \times ३} = \text{मा०} - \frac{\text{मा}}{३} = \frac{२ \text{ मा०}}{५०७} = \text{मा०} - \frac{\text{मा}}{३}$

अंश + $\frac{१२० \text{ मा०}}{५०७}$ कला = मा० − $\frac{\text{मा}}{३}$ अंश + $\frac{\text{मा}}{४}$ कला स्वल्पान्तर से उत्पन्न होता है ॥४॥

स्वाद्र्यंशकेन रहिता मनुतष्टमासा
वृत्तं गणाभ्रकुलावढ्यलवं गृहादि ।
स्वार्धान्विता दिनमुखं मनुतष्टमासा
मासौघतो दशगुणाद्गुणाप्तियुक्तम् ॥५॥

मल्लारिः

अथैकवृत्तेन वृत्तवारादिके साधयति । मनुभिश्चतुर्दशभिस्तष्टा भक्ता अवशिष्टा ये मासास्ते स्वस्याद्र्यंशकेन सप्तभागेन रहिताः सन्तो गृहादि राश्यादि वृत्तं स्यात् । परमेतत्गणस्य मासगणस्य अभ्रकुभिर्दशभिर्लवाः । तैराढ्या युक्ता लवा भागा यस्य तत् । एवम्भूतं कार्यम् । तथैव मनुतष्टा मासाः स्वस्य अर्धेनान्विता युक्ताः सन्तो दिनमुखं वारादिकं स्यात् । दशगुणात् मासगणाद्गुणैः सप्तविंशत्यधिकशतत्रयेण याऽऽप्तिर्लब्धिस्तया युक्तं कार्यमित्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः । वृत्तगुणो राश्यादिः ०।२५।४८।५२ । अत्र चतुर्दशभिर्मासैरेकं चक्रं भवति । अतो भगणप्रयोजनाभावात् मनुतष्टमासा इत्युक्तम् । अत्रास्यैको राशिर्धृतः । एकशुद्धध्रुवः ०।४।११।८ । अस्यापि खण्डद्वयं कृत्वात्रेदं खण्डमधिकं गृहीतम् ०।४।१७।८। सप्तभिः सवर्णितं जातं राशिस्थाने रूपम् । अतो हि स्वाद्र्यंशकेन रहिता इति । अधिकं खण्डम् ०।६ । दशभिः सवर्णितं जातं भागस्थाने रूपम् १ । अतो गणाभ्रकुलवाढ्य-मित्युपपन्नम् । अत्र तिथिवारादिकस्यायं मासगुणः १।३१।५० । अत्र खण्डद्वयम्

१।३० । इदं द्वाभ्यां सवर्णितं जातं गुणस्थाने त्रयः ३ । यो राशिस्त्रिगुणो द्वाभ्यां भज्यते स स्वार्धान्वित एव भवति । अन्यत् खण्डम् ०।१।५० । इदं मगुणैः सवर्णितं जाता गुणस्थाने दश १० । अतो दशगुणात् भगुणाप्तियुक्तमित्युपपन्नम् ।।५।।

विश्वनाथः

अथ वृत्तवारादिसाधनमाह । स्वाद्रयंशमिति । मनुतष्टभासाः स्वकीयेन सप्तमांशेन राश्यादिना ०।४।१७।८ हीनाः ०।२५।४२।५२ । मासगणः ५७ । अस्य दशमांशोंशादि ५।४२।० । इदमंशादौ युक्तम् १।१।२४।५२ । वृत्तध्रुवकः ९।१।६ । चक्रहतः ०।८।४८ । अनेन युक्तः १।१०।१२।५२ । क्षेपकेण ०।१४।५१ युक्तो जातं वृत्तम् १।२५।३।५२ ।

अथ वारादिसाधनं मनुतष्टमासाः १ स्वकीयेनार्धेन ०।३० । युक्ताः १।३०।० । मासगणो ५७ दशगुणः ५७० । भगुणै-३२७ भक्तः फलम् १।४४।३५ । अनेन युक्तं जातं वारादि ३।१४।३५ । तिथेर्वारादिध्रुवकः ५।९।३६ । चक्रहतः ६।१६।४८ । अनेन युक्तः ९।३१।२३ । क्षेपक-२।४८।४५ । युतो जातं वारादि ५।२०।८ ।।५।।

केदारदत्तः

चतुर्दश विभक्त मासगण में जो शेष उसका सप्तमांश उसी में कम करने से उसमें मासगण का लवादिक दशमांश जोड़ने से वृत्त होता है । अपने आधे से सहित १४ से शेषित मासगण में, मासगण का दशगुणित ३२७वें अंश को जोड़ने से वारादिक क्षेप हो जाता है ।

उपपत्तिः—सूर्य सिद्धान्त के अनुसार चन्द्रोच्च व चन्द्रमा के १ महायुग के भगण क्रमशः ४८८२०३, ५७७५३३३६ होते हैं ।

चन्द्रभगण—चं०भ० – केन्द्र भगण = ५७७५३३३६ – ४८८२०३ = ५७२६५१३३ = वृत्त भगण होते हैं । इन्हें १००० 'एते सहस्रगुणिताः कल्पे स्युर्भगणादयः' से गुणा करने से १ कल्प में वृत्त भगण = ५७२६५१३३००० तथा सौर सिद्धान्त मे तथा एक कल्प सम्बन्धी चान्द्रमास संख्या = ५३४३३३६००० अतः अनुपात से राश्यादिक वृत्त =

$$\frac{५७२६५१३३००० \times १२ \times \text{इष्ट चान्द्रमास}}{५३४३३३६०००} = \frac{१२।१^{\circ}।२४' \times \text{इष्ट चान्द्रमास}}{१४} \text{ स्वल्पान्तर से ।}$$

$$\frac{६।०।४२ \times \text{इष्ट चान्द्रमास}}{७} = \frac{\text{इष्ट चान्द्रमास } (१ + ६ - १}{७} + \frac{\text{इष्ट चान्द्रमास} \times ४२^{\circ}}{४२०}$$

$$= \frac{\text{इष्ट चान्द्रमास } (७ - १)}{७} + \frac{\text{इष्ट चान्द्रमास} \times १^{\circ}}{१०} = \frac{\text{इष्ट चान्द्रमास} \times ७}{७}$$

$$- \frac{\text{इष्ट चान्द्रमास} \times १}{७} + \frac{\text{इष्ट चान्द्रमास} \times १^{\circ}}{१०} = \text{इष्ट चान्द्रमास} - \frac{\text{इष्ट चान्द्र मास}}{७}$$

$$+ \frac{\text{इष्ट चान्द्रमास}१^{\circ}}{१०}$$ वृत्त ज्ञान उपपन्न होता है । तथा १ एक चान्द्रमास सम्बन्धी सावन दिनादि अवयव = २९।३१।५० में ७ का भाग देने से वारादिक-१।३१।५० की उपलब्धि

सयुक्तिक सही है । अनुपात से इष्ट चान्द्रमासीय सावन दिनादिक —

$$= \frac{\text{शेष=इष्ट चान्द्रमास } (१।३।५०)}{\text{१ मास}} = \frac{\text{इष्ट चान्द्रमास} \times १४\ (१।३१।५०)}{१४}$$

$$= \frac{\text{इष्ट चान्द्रमास } (२१।२५।४०)}{१४} \times \frac{\text{इष्ट चाद्रमास } २१}{२१} + \frac{\text{इष्ट चान्द्रमास} \times २५}{१४ \times ६०}$$

$$+ \frac{\text{इष्टचा॰मा॰} \times ४०}{१४ \times ६० \times ६०} = \frac{\text{इष्ट चा॰मा॰} \times ३}{२} + \frac{\text{इष्ट चा॰मा॰} \times १०}{३२७} \text{ स्वल्पान्तर से ।}$$

$$= \text{इष्ट चा॰मा॰} + \frac{\text{इष्ट चा॰मा॰}}{२} + \frac{\text{इष्ट चा॰मा॰} \times १०}{३२७} \text{ वार संख्या} = ७ \text{ से अधिक होने से}$$

७ से शेषित करना सयुक्तिक उपपन्न होता है ।।५।।

मासगणाज्जनितो रविरूनश्चक्रहतध्रुवकेण निजेन ।
संकलिता इतरेऽथचते स्युः क्षेपयुता निजमासि सितान्ते ।।६।।

मल्लारिः

ध्रुवकक्षेपका अत्र योज्या इत्याह । मासगणात् जनित उत्पादितो रविर्निजेन स्वेन चक्रहतेन ध्रुवकेण ऊनः कार्यः । इतरे विपातादयस्तेन संकलिताः संयोज्याः । ततस्ते सूर्यादयः स्वीयेन क्षेपकेण युताः सन्तो निजेऽभीष्टे मासि सितान्ते पौर्णमास्यन्ते स्युरिति ।

अत्रोपपत्तिः । चक्रहतास्तु ध्रुवका ग्रहेषु प्रक्षेप्या एव वर्षाणामेकादशतष्टत्वात्। तत्र रवेर्ध्रुवको द्वादशशुद्धोऽस्ति । अतस्तदूनो रविः कार्यः । अन्ये योज्याः । एवं क्षेपास्तु योज्या एव यतो ग्रन्थशकादिमारभ्याग्रेसरकालादेव ग्रहाः साधिताः । अतः सृष्टयादेः सकाशात् ये ग्रहास्तद्युक्ता एवेत्युपपन्नम् ।।६।।

विश्वनाथः

अथ मासगणादुत्पन्नानां रव्यादिकानां ध्रुवादिसंस्कारमाह मासेति । मासगणात् जनित उत्पादितो रविर्निजेन चक्रहतध्रुवकेण ऊनः कार्यः । इतरे विपातादयश्चक्रहतध्रुवकेण संकलिताः कार्याः । ते सर्वे निजक्षेपकेण युताः । निजेऽभीष्टे मासि सितान्ते पूर्णिमास्यन्ते स्युरिति ।।६।।

केदारदत्तः

मासगणोत्पन्न रवि में चक्र गुणित ध्रुवा कम-कम करते हुए, अपनी-अपनी चक्र-गुणित ध्रुवाओं से युक्त वृत (चन्द्र केन्द्र ") आदिकों में अपनी-अपनी राश्यादिक क्षेपक संख्या को जोड़ देने से अभीष्ट मास के पूर्णान्त काल में, सूर्य व चन्द्र केन्द्रादिक ग्रह स्पष्ट हो जाते हैं ।:६।।

उपपत्तिः—सूर्य का ध्रुवक चक्र शुद्ध होने से चक्र × ध्रुव को रवि में कम करना ठीक है। और ग्रहों के ध्रुवक यथा स्थान होने से उनकी चक्र × ध्रुवा से प्राप्त फल को उनमें जोड़ने से वे पूर्णान्त कालीन होंगे ही, उपपन्न है ॥६॥

रवौ पाक्षिकं चालनं खेन्द्रदेवा
विपाते नभो बाणचन्द्रा नखाश्च ।
षडर्का युगाक्षा गृहाद्यं च वृत्ते
दिनाद्ये नभोऽक्षाब्धयो बाणबाणाः ॥७॥

मल्लारिः

पाक्षिकं चालनं कथयति । सूर्ये पाक्षिकं पञ्चदशदिनभवं तदेतच्चालनम् । खं शून्यं राशिः । इन्द्राश्चतुर्दश भागाः । देवास्त्रयस्त्रिंशत् कलाः । विपाते नभः शून्यं राशिः । बाणचन्द्राः पञ्चदश भागाः । नखा विंशतिः कलाः । वृत्ते षट् राशयः । अर्का द्वादश भागाः । युगाक्षाः चतुष्पञ्चाशत् कलाः । दिनाद्ये वाराद्ये नभः शून्यं वारः । अक्षाब्धयः पञ्चत्वारिंशत् घटिकाः । बाणबाणाः पञ्चपञ्चाचत् कलाः ।

अत्रोपपत्तिः । पूर्वमनुपातात् रव्यादीनां मासगुणाः साधिताः सन्ति तेषामर्धं चालनं कृतम् । अमान्तकालिकग्रहसाधनार्थमिति । एतदेव द्वादशगणं षण्मासचालनं चतुर्विंशतिगुणं वर्षचालनं भवतीति सुगमा ॥७॥

विश्वनाथः

अथ पक्षचालनमाह । रवौ पाक्षिकमिति । स्पष्टोऽर्थः ॥७॥

केदारदत्तः

रवि विपात और चन्द्र केन्द्र के एक पक्ष के प्रायः १५ दिन के क्रमशः चालन, ०।१४°।३३'।०'', ०।१५°।२०।०, ६।१२°।५४'।१०'' होते हैं तथा ०।४५।५५ तिथि के दिनादिक का पाक्षिक चालन होता है ॥७॥

उपपत्ति—चौथे श्लोक से इष्ट मास सम्बन्धी ग्रह साधन किया है इससे अर्धमासिक साधित ग्रह का नाम पाक्षिक चालन कहा है। आचार्य का तात्पर्य है कि पूर्णान्त कालीन ग्रहों का पाक्षिक चालन से दर्शान्त कालीन ग्रह किया जाता है ॥७॥

अथवा—एक चान्द्रमासान्तःपाती सावन दिन संख्या = २९।३१।५० से सूर्य मध्यमा गति को गुणा करने से २९।६।१४।२०।४० होता है। चान्द्रमास ÷ २ = पक्ष में २९।६।१४। २०।४० ÷ २ = १४।३३।७।१० यह रवि का समीचीन पाक्षिक चालन होता है।

शरा वेदपक्षा भुजङ्गाग्नयोऽर्के ब्यगौ षट्कृताःकुश्च षाण्मासिकं स्यात् ।
शरा वार्धयस्त्रीषवो भादिवृत्ते दिनाद्ये तिथेर्द्वौ भवा भूर्दिनाद्यम् ॥८॥

मल्लारिः

अथ षाण्मासिकं राश्यादिचालनमाह। शराः पञ्च। वेदपक्षाश्चतुर्विंशतिः। भुजङ्गाग्नयोऽष्टत्रिंशत्। इदमर्के षाण्मासिकं चालनं स्यात्। व्यगौ षट्। कृताश्चत्वारः। कुरेका। वृत्तेशराः पञ्च। वार्धयश्चत्वारः। त्रीषवः त्रिपञ्चाशत्। तिथेर्दिनाद्ये द्वौ। भवा एकादश। भूरेका। इदं दिनाद्यं चालनं स्यात्।

विश्वनाथः

अथ षाण्मासिकचालनमाह शरा इति स्पष्टोऽर्थः ॥८॥

केदारदत्तः

सूर्य व्यगु और वृत्त (चन्द्र केन्द्र के) क्रमशः ६ महीने के चालन ५।२४।३८, ६।४।१, ५।४।५३ होते हैं तथा २।११।१ तिथि का यह दिनादिक का षाण्मासिक चालन होता है ॥८॥

उपपत्तिः—मात्र ६ महीने का मासगण मान कर श्लोक ४ के अनुसार साधित सूर्य-व्यगु- और वृत्तों का षाण्मासिक चालन सयुक्तिक सिद्ध होता है ॥८॥

यहाँ भी ६० नाक्षत्र ६० घटी के दिन माप से एक दिन सम्बन्धी रवि मध्य गति को ६ महीने के दिन = १८० मान कर १८० × ५९।८=५।२७।२४ होगा किन्तु गति, सावन दिन के बड़े माप से हर अधिक होने से आचार्य ने मासौघतः श्लोक ४ से ६ महीने का चालन सही मान का ५।२४।३८ ठीक ही कहा है ॥८॥

अभिमततिथिसिद्ध्यै प्राक् पर यास्तु तिथ्यः
स्वयुगरसलवोनाश्चालनं स्याद्दिनाद्ये।
स्वयुगगुणलवोनाः स्याल्लवाद्यं दिनेशे
स्वगुणनवलवोना विश्वनिघ्नाश्च वृत्ते ॥९॥

मल्लारिः

अथेष्टतिथिसाधनमाह। अभिमताया इष्टायास्तिथेः सिद्धयर्थं प्राक् पौर्णमास्याः पूर्वं परे पश्चात् या यावत्य इष्टतिथ्यः स्युस्ताः स्वस्य युगरसलवेन चतुःषष्टिभागेन ऊनाः सत्यो दिनाद्ये चालनं स्यात्। स्वस्य युगगुणलवेन चतुस्त्रिंशदंशेन ऊनास्तु तिथयः। दिनेशे सूर्ये लवाद्यं चालनं स्यात्। ततस्ता एव तिथयो विश्वैस्त्रयोदशभिर्हन्यन्ते गुण्यन्ते तास्तथा। ततः स्वस्य गुणनवलवेन त्रिनवतिभागेन ऊना वृत्ते चालनं स्यात्।

अत्रोपपत्तिः। अत्रैकचान्द्रदिनमानम्। ०।५९।३।४५। यद्येकतिथावेतत् तदेष्टतिथिभिः किमिति। इदमिष्टतिथिगुणं रूपहरस्याविकृतत्वान्नाशः। अत्र खण्डगुण-

नार्थमस्यैक एव गृहीतः। अतः इदमेकशुद्धं कृत्वा जातम् ०।०।५६।१५। चतुःषष्ट्या सवर्णितमूर्ध्वस्थाने रूपम्। अतः स्वरसयुगलवोनास्थियो वाराद्ये देयाः। पूर्वे ऋणमग्रे धनमिति चालनेऽप्युक्तमस्ति।

अथ रविचालनोपपत्तिः। तत्र रवेश्चान्द्रदिनान्तर्वर्त्तिनी मध्यगतिरियं भागाद्या ०।५८।१४। अस्या अप्येको गृहीतोऽत इदं रूपशुद्धं जातम् ०।१।४६। इदं चतुस्त्रिंशत्-सवर्णितं जातमूर्ध्वं रूपम् १। अतो युगगुणलबोनास्तिथयो रविचालनमिति। अथ वृत्तचालनम्। वृत्तस्य चन्द्रमन्दकेन्द्रस्य चान्द्रदिनान्तर्वर्त्तिनी मध्यगतिर्भागाद्या १२।५१।३७। अस्यास्त्रयोदश गृहीताः। इदं त्रयोदशशुद्धम् ०।८।२३। इदं त्रिनवतिसवर्णितं जाता ऊर्ध्वं त्रयोदशैव। अतो विश्वनिघ्नाः स्वत्रिनवतिभागोनास्तिथयो वृत्तचालनमिति ॥९॥

विश्वनाथः

अथेष्टतिथिसाधनमाह अभीति। अभिमतायास्तिथेः सिद्धयै प्राक् पौर्णमास्याः पूर्वं परे पश्चात् या यावत्य इष्टतिथ्यः स्युस्ताः स्वचतुःषष्टिभागेन ऊनाः सत्यो दिनाद्ये चालनं स्यात्। स्वस्य चतुस्त्रिंशदंशेन ऊनास्ता एव तिथयो दिनेशे सूर्ये भागाद्यं चालनं स्यात्। ततस्ता एव तिथयस्त्रयोदशभिर्गुण्यास्ततः स्वस्य त्रिनवतिभागेनोना वृत्ते चालनं स्यात् ॥९॥

केदारदत्तः

पूर्णिमान्त से आगे या पीछे की अभीष्ट जो तिथि हो या तिथियाँ हैं उनमें अपना ६४ वाँ भाग कम करने से वह दिनादिक इष्ट तिथि साधन के लिए चालन होता है। अपने ३४ वाँ भाग कम करने से अंशादिक सूर्य में चालन और अपना ९३ वाँ भाग कम करने से जो फल उसे १३ से गुणा करने से वह चन्द्रमन्द केन्द्र (वृत्त) में चालन होता है ॥९॥

उपपत्तिः—भास्कराचार्य के अनुसार एक चान्द्रमास की सावन दिनादिक संख्या = २९।३१।५० होती है तो अनुपात से ३० तिथियों की सावन दिन संख्या से एक तिथि का

सावनादिक मान $= \frac{\text{अभीष्ट तिथि} \times (२९।३१।५०)}{३०} = \frac{\text{अभीष्ट}}{३०}\left(\frac{१३६३१}{३६०}\right)$

$= \frac{\text{अभीष्ट तिथि} \times १०६३१}{१०८००}$, १६८ से हर भाज्य में अपवर्त्तन देने से अभीष्ट तिथि=इष्टतिथि

$- \frac{\text{अभीष्ट तिथि}}{६४}$ स्वल्पान्तर से उपपन्न होता है। सूर्य की एक दिन की मध्यमा गति ×

५९।८ = (अ) इसलिए अभीष्ट तिथ्यात्मक सावन दिन में $\frac{\text{अभीष्ट तिथि } ६३}{६४}(५९'।८)$

$= \frac{\text{अभीष्ट तिथि} \times ६३}{६४} \left(\frac{३५४८}{३६००}\right)^{\circ} = \frac{\text{अभीष्ट तिथि} \times ६३}{६४} \left(\frac{८८७}{९००}\right)^{\circ}$

$= \frac{\text{अभीष्ट तिथि} \times ५५८८१}{५७६००}$ हर भाज्य में १६९ से अपवर्त्तन देने से $\frac{\text{अभीष्ट तिथि} \times ३३}{३४}$

$= \frac{\text{अभीष्ट तिथि} (१ + ३३ - १)}{३४} = \frac{\text{अभीष्टतिथि} (३४-१)}{३४} = \frac{\text{अभीष्ट तिथि} \times ३४}{३४}$

$- \frac{\text{अभीष्टतिथि}}{३४} = \text{अभीष्ट तिथि} - \frac{\text{अभीष्टतिथि}}{३४}$ = रविचालन उपपन्म होता है। चन्द्रगति

चन्द्रगति − चन्द्रोच्च गति = ७९०।३५ − ६।४१ = ७८३'।५४'' अनुपात से अभीष्ट सावन

दिन सम्बन्धिनी वृत्त गति = वृत्त चालन $\frac{\text{अभीष्ट तिथि} \times ६३}{६४}$ (७८३'।५४'')

$= \frac{\text{अभीष्ट तिथि} \times ६३}{६४} \left(\frac{४७०३४}{६०}\right) = \frac{\text{अभीष्ट तिथि} \times ६३}{६४} \left(\frac{४७०३४}{३६००}\right)^{\circ}$

$= \frac{\text{अभीष्ट तिथि} \times ६३}{६४} \left(\frac{२६१३}{२००}\right)^{\circ}$ यहाँ हर भाज्य में १६८ अपवर्त्तन देने से स्वल्पान्तर

$\text{अभीष्ट तिथि} \times \left(\frac{१२}{१३}\right) = \text{अभीष्ट तिथि} \times १३ \left(\frac{१२ + १ - १}{१३}\right)^{\circ} = \text{अभीष्टतिथि} \times १३^{\circ}$

$- \frac{\text{अभीष्टतिथि} \times १२^{\circ}}{१३}$ = अंशादिक वृत्त चालन उपपन्न होता है ॥९॥

अत्यष्ट्यष्टिवृषार्कगोशरदृशः खण्डानि तैर्वृत्तदो-
र्भागत्रीन्दुलवप्रमैक्यमगतघ्नोच्छिष्टविश्वांशयुक्
प्राग्वत् स्यात् स्वमृणं फलं त्विति रवेः केन्द्राद्यदन्यच्च तद्
द्व्याप्तं स्वाङ्कलवोनितं कुरु तयोः कार्या पुनः संस्कृतिः ॥१०॥

मल्लारिः

अथ रवेः स्पष्टार्थं तिथेरपि स्पष्टार्थं सूर्यचन्द्रयोर्मन्दफले साधयति। एतानि खण्डानि स्युः। अत्यष्टिः सप्तदश १७। अष्टिः षोडश १६। वृषाश्चतुर्दश १४। अर्का द्वादश १२। गावो नव ९। शराः पञ्च ५। दृशौ द्वौ २। तैः खण्डकैः कृत्वा वृत्तस्य दोर्भुजः। तस्य ये भागाः। तेषां यस्त्रीन्दुभिस्त्रयोदशभिर्लवो भागो यन्मितः स्यात्। तन्मितानां खण्डानामैक्यम्। तत् आगतेन खण्डकेन हन्यते तथा। एवम्भूतस्य उच्छिष्टस्य शेषस्य यस्त्रीन्दुलवस्त्रयोदशभागस्तेन युक्तं सत्। प्राग्वदिति वृत्ते मेषादि-

षट्के धनं तुलादिषट्के ऋणं चन्द्रफलं स्यात्। इत्यनेनैव प्रकारेण रवेर्मन्दकेन्द्राद्भु-जादिविधिना एभिः खण्डैः सूर्यमन्दफलं साध्यं तद्द्वयासं ततः स्वस्याङ्गलवेन ऊनितं कार्यम्। तयोः सूर्यचन्द्रफलयोः संस्कृतिः कार्या। संस्कृतिर्यथा। धनयोर्योगः। ऋणयोरपि योगः। धनर्णयोरन्तरमिति।

अत्रोपपत्तिः अत्र वृत्तत्रयोदशभागान्तरं प्रकल्प्य पूर्वोक्तवन्मन्दफलखण्डानि चन्द्रस्य साधितानि राशित्रयमध्ये सप्तैव। एतानि मन्दफलखण्डानि सावयवानि यतः पञ्चदशगुणानिः निःशेषाणि भवन्ति। अतः पञ्चदशगुणानि कृत्वा पठितानि। अत्रेष्टफलार्थमनुपातः। यदि त्रयोदशभागैरेकं खण्डं तदेष्टवृत्तदोर्भागः किमिति लब्ध-मितखण्डानामैक्यं कार्यं ततः शेषादनुपातः। यदि त्रयोदशभागैर्भोग्यखण्डं तदा शेषांशैः किमिति लब्धं गतखण्डयोगे योज्यं तत् फलं स्यात्। धनर्णोपपत्तिः स्पष्टीकरणाधिकारे उक्तैवास्ति। एवं रविकेन्द्रादपि मन्दफल साध्यम्। तत्र लाघवार्थमेभिरेव खण्डै रवि-केन्द्रादपि फलं साध्यमित्युपपन्नम्। अत्र चन्द्रफलं केन भक्तं रविफलं स्यादिति ज्ञानार्थं सूर्यफलेन परमेण २।१०। चन्द्रपरमफले ५।२। भक्ते लब्धं द्वौ २। अतश्चन्द्र-फलं द्वयाप्तम्। एवं द्विभक्तं चन्द्रफलम् २।३१। सूर्यफलात् २।१० यदधिकम् ०।२१ तद्द्विभक्तस्य २।३१। षडंशाः स्वल्पान्तरात्। अत उक्तं स्वषडंशविवर्जितमिति। एवमुभयोः फलयोः संस्कृतिः कार्या तिथौ देयत्वात् ॥१०॥

विश्वनाथः

अथ स्पष्टतिथिसाधनार्थं वृत्तफल रविमन्दकेन्द्रफलसाधनमाह अत्यष्टीति। अत्यष्टिः सप्तदश १७। अष्टि षोडश १६। वृषाश्चतुर्दश १४। अर्का द्वादश १२। गावो नव ९। शराः पञ्च ५। दृशौ द्वौ २। एतानि खण्डानि स्युः। वृत्तम् १।२५।३। ५२। अयमेव भुजः। अस्य भागाः ५५।३।५२। त्रीन्दुलवः ४। एतत्प्रमितगतखण्डकानां योगः ५९। आगतेन भोग्यखण्डेन ९ उच्छिष्टमवशेषम् ३।३।५२। निघ्नम् २७।३४।४८। अस्य विश्वांशः २।७।१७। अनेन गतखण्डयोगो युक्तः ६१।७।१७। प्राग्वदिति मेषादि-षट्के वृत्ते फलं धनं तुलादिषट्के ऋणमित्यर्थः। वृत्तस्य मेषादिकेन्द्रत्वात् धनं वृत्त-फलम् ६१।७।१७। रविः ६।२९।५८।१९। मन्दोच्चात् २।१८ शुद्धो जातं रवेः केन्द्रम् ७।१८।१।४१। अस्य भुजांशाः ४८।१।४१। त्रयोदशभक्ताः फलम्। एतत्तुल्यगतखण्डयोगः ४७। भोग्यखण्डकेन १२ शेष ९।१।४१ गुणितम् १०८।२०।१२। अस्य विश्वांशः ८।२०।०। अनेन गतखडयोगो युक्तः ५५।२०।०। इदं द्विभक्तम् २७।४०।०। स्वकीयेन षडंशेन ४।३६।४० रहित २३।३।२० तुलादिकेन्द्रत्वात् जातं रविफलमृणम् २३।३।२०। फलद्वयसंस्कृतिर्धनम् ३८।३।५७ ॥१०॥

केदारदत्तः

मन्दफल साधनार्थ खण्ड = १७, १६, १४, १२, ९, ५ और २ होता है। वृत्त के

भुजांश में १३ का भाग देकर लब्ध तुल्य खण्डों के योग में, ऐष्य खण्ड गुणित शेषांशों के त्रयोदशांश जोडने से चन्द्रमन्दफल (पूर्ववत् मेष तुलादि केन्द्र क्रम में धन अथवा ऋण) होता है।

इसी प्रकार रवि केन्द्रांश से साधित फल, १ में तथा साधित फल में अपना षष्ठांश कम कर फल = २ दोनों फलों का संस्कार (दोनों धन हों, या दोनों ऋण हों तो क्रमशः योग (धनात्मक वा ऋणात्मक) और एक धन दूसरा ऋण हो तो 'धनर्णयोरन्तरमेव योगः' से से (अन्तर ही योग होता है) अन्तर करना चाहिए ॥१०॥

उपपत्तिः—१३ अंश भुजांश वृद्धि से ९० ÷ १३ = ७ स्वल्पान्तर से (वस्तुतः ९१ ÷ १३ = ७ होता है) खण्ड भुजांशों से जो फल आया है उन्हें ७ खण्डों मे पढ़ दिया गया है।

यदि १३° भुजांश में एक खण्ड तो अभीष्ट भुजांशों में अभीष्ट भुजांश ÷ १३ = खण्ड योग + शेषानुपात से यदि १३ अंशों में अग्रिम खण्ड तो शेषांशों में जो प्राप्त हो उसमें १० का भाग देकर उन्हें गत खण्ड योग में जोड़ने से वृत्त का भुजांश फल होता है। पुनः $\frac{\text{अन्त्यफल ज्या} \times \text{इ०भुज ज्या}}{\text{त्रि}}$ से रवि पर मन्द फल = $२^\circ।१०' = १३०'$, एवं चन्द्रपर मन्द फल = $५^\circ = ३००'$ केन्द्रांश १३, २६, ३९, ५२, ६५, ७८, ९१ तथा केन्द्र ज्या = २७, ५२ ७५··· होती है। अनुपात से १५ से गुण करने से $\frac{१३५ \times १५}{१२०} = \frac{२७ \times ५}{१२०} = \frac{१३५}{१२०} =$ १७ = प्रथम खण्ड। इसी प्रकार $\frac{५२ \times ५}{१३०} = \frac{२६०}{१२०}$ को १५ से गुणा करने से स्वल्पान्तर से ३३ = द्वितीय खण्ड होता है।

द्वितीय फल − प्रथम फल = ३३ − १७ = १६ दूसरा खण्ड। इसी प्रकार तीसर चौथ···खण्डों का ज्ञान समाधान है। चन्द्र मन्द फल $\frac{\text{चन्द्रकेन्द्र ज्या} \times ३००}{१२०}$ = रवि फल $= \frac{\text{रवि के० ज्या} \times १६०}{१२०}$ यदि रवि केन्द्र ज्या = चन्द्र केन्द्र ज्या तो $\frac{\text{रविफल}}{\text{चन्द्रफल}} =$

$\frac{\text{रविके०ज्या} \times १३० \times १२०}{\text{चन्द्रके०ज्या} \times ३०० \times १२०} = \frac{१३०}{३००} = \frac{१३}{३०}$। ∴ रविफल $\frac{\text{चन्द्रफल} \times १३}{३०}$ हर भाज्यों में $\frac{५}{२}$ से अपवर्तन देने से स्वल्पान्तर से $\frac{\text{चन्द्रफल} \times ५}{१२} = \frac{\text{चन्द्रफल } (६-१)}{१२} = \frac{६ \times \text{चन्द्र फल}}{१२}$

$- \frac{\text{चन्द्र फल}}{१२} = \frac{\text{चन्द्रफल}}{२} - \frac{\text{चन्द्रफल}}{२ \times ६}$ उपपन्न होता है ॥१०॥

वृत्तैष्यदलाद्रसाप्तियुक्ता रहिताः कर्किमृगादिके च वृत्ते ।
सगुणांशखवह्नयो हरःस्यादथ सूर्याच्चरपूर्वमुक्तवत् स्यात् ॥११॥

मल्लारिः

अथ हरं साधयति । वृत्तस्य यदेष्यं दलं भोग्यखण्डं तस्माद्या रसाप्तिः षडंशः । तेन सगुणांशाः सत्र्यंशाः खवह्नयस्त्रिंशत् कर्किमृगादिके वृत्ते युक्ता रहिताः कार्याः । कर्क्यादिषड्भे युक्ता मकरादिषड्भे रहिताः सन्तो हरः स्यात् । अथ सूर्याच्चरादिमानं चोक्तवत् पूर्ववत् साध्यम् ।

अस्योपपत्तिः । इयं फलसंस्कृतिस्तिथौ देयाऽतो घटीकरणार्थमनुपातः । यदि गत्यन्तरकलाभिः षष्टिघटिकास्तदाऽभिः फलकलाभिः कति घटिकाः । एवमत्र फलभागानां पूर्वं कलीकरणार्थं षष्टिर्गुणः । एतत् फलं पञ्चदशगुणितमस्ति सावयवत्वात् । अतः पञ्चदश हरः । गुणहरयोर्हरेणापवर्त्तितयोर्जातोगुणः ४ । इदानीं षष्टिर्गुणः । अतो गुणघातो जातो गुणः २४० । हरस्तु गत्यन्तरकलाः । तास्तु मध्यमा एव गृहीताः ७३० । गुणहरयोश्चतुर्विंशत्या अपवर्त्तितयोर्जातो गुणः १० । हरः ३०।२० । फलसंस्कृतिर्दशहृतेत्यग्रे उक्तमस्ति । अयं हरो मध्यः । अतः स्पष्टत्वं यथा । वृत्तभोग्यखण्डं परम् १७ । इदं केन गुणं परमं गतिफलं भवति । अत्रेदं भोग्यखण्डं वेदैर्गुण्यं ततश्चतुर्विंशत्याऽपवर्त्तितगुणहरयोर्गुणेनापवर्त्तितयोर्जातो हरः षट् । इदं फलं सगुणांशखवह्निमिति हरे संस्कार्यम् । तत्र कर्क्यादिषट्के केन्द्रे गतिफलं धनमतो युक्ता इति । मकरादिषट्के ऋणमतो रहिता इति । एवं जातः स्पष्टो हरः । अतो हि फलसंस्कृतिर्दशहृता हारोद्धृता नाड्यः स्युरित्युपपन्नम् ॥११॥

विश्वनाथः

अथ हरसाधनमाह वृत्तैष्येति । वृत्तस्य भोग्यखण्डं ९ षड्भक्तं फलम् १।३० अनेन सगुणांशखवह्नयः ३०।२० । वृत्तस्य मकरादिषट्के स्थितत्वाद्रहिता जातो हरः २८।५० । अथ सूर्याच्चरं प्रोक्तवत् कार्यम् । सूर्यः ६।२९।५८।१९ । अयनांशाः १८।१०। सायनरविः ७।१८।८।१९ । अस्माच्चरं धनम् ८४ ॥११॥

केदारदत्तः

वृत्त के कर्कादि या मकरादि की स्थिति में, वृत्त के अग्रिम अपने खण्ड के ६ ठे अंश (षष्ठांश) को क्रमशः तृतीयांश सहित ३० में (तृतीयांश = १ ÷ ३=२०′) जोड़ने या घटाने से हार होता है । सायन रवि से उक्त पूर्व रीति से चर साधन करना चाहिए ।

उपपत्तिः—गतियों का अन्तर = गतिफल । उच्च की अल्प गति होने से केन्द्र गत्यन्तर तुल्य गति = ग्रहगति – उच्च गति के तुल्य मानने से चन्द्र केन्द्रगति=(७९०।३५) – (६।४१) = ७८४=१३° स्वल्पान्तर से—

अद्यतन व स्वस्तन केन्द्रों से उत्पन्न फलों का अन्तर = भोग्य खण्ड हैं जो १० गुणित हैं। इसे १५ से भाग देकर अंशात्मक बनाकर ६० से गुणा करने पर कलात्मक होता है। अतः कलात्मक चन्द्रगति फल = $\frac{\text{ऐष्य खण्ड} \times ६०}{१५}$ = ऐष्य खण्ड × ४ कर्क मकरादि केन्द्र वश संस्कार करने से ७९० ± ४ = चन्द्र स्फुट गति होती है।

सूर्यगति स्वल्पान्तर से=६२ अतः अनुपात से गत्यान्तर कलाओं में ६० घटिका तो फलसंस्कृत कलाओं में क्या ? $\frac{\text{फल संस्कृत कला} \times ६०}{७९० \pm \text{ऐ.ख.} \times ४ - ६२} = \frac{\text{फल संस्कृत} \times १०}{\frac{७२८ \times ४}{२४ \pm \text{ऐ.ख.}}}$

$= \frac{\text{फल संस्कार} \times १०}{\left(३० + \frac{१}{३}\right) \pm \frac{\text{ऐष्य खण्ड}}{६}} = \frac{\text{फल संस्कार} \times १०}{\left(३०'।२०''\right) \pm \frac{\text{एष्यखण्ड}}{६}}$ । उपपन्न हुआ ॥११॥

नाड्यः स्युः फलसंस्कृतिर्दशहता हारोद्धृताऽथो चरं
सायं लक्षणकं त्वथो विघटिकाः पश्चादृणं प्राग्धनम् ।
स्वांघ्र्यूनान्तरयोजनान्यथ तिथिः स्पष्टा त्रिभिः संस्कृता
तत्संस्कारघटीसमाश्च कलिका देयाव्यगौ चोष्णगौ ॥१२॥

मल्लारिः

तदेवाह। फलयोः संस्कृतिर्दशगुणा स्पष्टहरभक्ता सती नाड्यः स्युः। अथो चरं सायं लक्षणकं विपरीतलक्षणम्। धनं चेत् तदा ऋणमृणं चेत् तदा धनमिति। स्वांघ्रिणा स्वचरणेन ऊनानि रेखादेशान्तरयोजनानि। विघटिकाः पलानि। रेखातः पश्चात् स्वपुरे ऋणम्। पूर्वस्यां धनम्। एवं त्रिभिः फलैरपि संस्कृता तिथिः स्पष्टा स्यात्। तत्संस्कारस्तेषां फलानां यः संस्कारस्तद्धटीसमाः कलिका व्यगौ उष्णगौ च देया।

अत्रोपपत्तिः। फलनाडीकरणोपपत्तिः पूर्वमेवोक्ता। चरव्यस्तत्वे हेतुर्यथा। यद्ग्रहे ऋणं तत् तिथौ धनं यद्धनं तदृणं भोग्यत्वात् अतश्चरं विपरीतम्। रेखास्वदेशान्तरोपपत्तिः पूर्वं प्रतिपादिताऽस्ति। तिथी रविचन्द्रान्तराद्भवति। अतो गत्यन्तरादनुपातः। यदि भूपरिधियोजनैः–४८०० गत्यन्तरकला लभ्यन्ते तदा रेखास्वदेशान्तरयोजनैः किमिति। पुनर्घटीकरणायानुपातः। यदि गत्यन्तरकलाभिः षष्टिघटिकास्तदाऽऽभिः किमिति गत्यन्तरकलातुल्ययोर्गुणहरयोर्नाशः। पुनरस्य फलस्य पलीकरणार्थं षष्टिर्गुणः। एवं गुणघातो गुणः ३६००। हरः ४८००। गुणहरौ द्वादशशता–१२०० पवर्त्तितौ गुणः ३। हरः ४। अतः स्वाङ्घ्र्यूनानि योजनानि पलानि स्युरित्युपपन्नम्। एतत्फलत्रयसंस्कृता तिथिः स्पष्टा भवतीत्युपपन्नम्। रविव्यगू मध्यमतिथ्यन्तकालीन

तयोः स्पष्टतिथिकालीनकरणार्थं फलसंस्कारघटीभिश्चालनं देयम्। अतो लाघवार्थं स्वल्पान्तरत्वात् संस्कारघटीसमाः कलाः सूर्ये व्यगौ देयास्तौ तात्कालिकौ मध्यमौ भवत इति। अतस्तयोः स्पष्टत्वार्थं फलमग्रे साधयति ॥१२॥

विश्वनाथः

अथ स्पष्टतिथिसाधनं नाड्य इति। फलसंस्कृतिः ३८।३।५७। दशहता ३८०। ३९।३०। हारेण २८।५०। भक्ता फलं नाड्यः संस्कृतेर्धनत्वाद्धनम् १३।१२। चरं धनम् ८४। नायं लक्षणकं सूर्यास्तमयिकमित्युक्तेर्जातमृणम् ८४। देशान्तरयोजनानि ६४ स्वाङ्घ्रियूनानि जातानि देशान्तरपलानि ४८। रेखातः पूर्वत्वाद्धनानि। फलत्रयसंस्कृतिधननाड्यः १२।३६। तिथिः ५।२०।८। फलत्रयसंस्कृता जाता स्पष्टा गुरौ घटयः ३२। पलानि ४४। फलत्रयसंस्कारघटयः १२।३६। एतत्तुल्यकलादिसंस्कृतोऽर्कः ७।०।१०।५५। व्यगुश्च ५।२५।२०।५१ ॥१२॥

केदारदत्तः

१० श्लोक के फल संस्कार को १० से गुणाकर हार से भाग देने से घट्यादिक फल होता है। चर धन तो ऋण और ऋण तो धन की कल्पना करते हुए देशान्तर योजन में अपना अनुर्थांश कम करते हुये शेष तुल्य फल को रेखा देश से पश्चिम में ऋण पूर्व देश में धन समझना चाहिए। इन तीनों फलों के संस्कार से तिथि स्पष्ट होती है। तथा संस्कार घटी तुल्य कलाओं को सूर्य और व्यगु में संस्कार करने से व्यगु और सूर्य सुस्पष्ट होते हैं ॥१२॥

उपपत्ति:—देशान्तर चरादिक संस्कार व्यवस्था (उपपत्ति) पूर्व में हो चुकी है। अनुपात से देशान्तर पल साधन के लिए स्पष्ट भूपरिधि योजन=४८०० में यदि अहोरात्र पल ६० × ६० = ३६०० मिलते हैं तो देशान्तर योजन में $\frac{३६०० \times \text{देशान्तर योजन}}{४८०४}$

$$= \frac{३ \times \text{देशा०यो०}}{४} = \text{देशा० यो०}\left(१ - \frac{१}{४}\right) = \text{देशा० यो०} - \frac{\text{देशा०यो०}}{४}$$ उपपन्न हुआ ॥१२॥

सस्वार्हल्लवमिनजं फलं युगघ्नं
लिप्तास्ताः कुरु च तयोः स्फुटौ च तौ स्तः।
त्रिघ्न्यंशद्वियुतहरः कृशानुभक्त-
श्चन्द्रस्य प्रभवति बिम्बमंगुलाद्यम् ॥१३॥

मल्लारिः

इनात् सूर्याज्जायते तत् एवम्भूतं फलं स्वस्य अर्हल्लवेन चतुर्विंशत्यंशेन युक्तं युगघ्नं चतुर्गुणितं सत या लिप्ताः कलाः स्युः। तास्तयोः सूर्यत्रिपातयोः कुरु तौ स्फुटौ

स्तः। वित्र्यंशौ यौ द्वौ ताभ्यां युतो हरः कृशानुभिस्त्रिभिर्भक्तः सन् फलमंगुलाद्यं चन्द्रस्य विम्बं प्रभवति।

अत्रोपपत्तिः। अत्र रविफलं पञ्चदशभिर्भाज्यं पूर्वं पञ्चदशगुणितत्वात् ततः कलार्थं षष्टिर्गुणः। गुणहरयोर्हरेणापवर्त्तितयोर्गुणः ४। अतो युगघ्नमिति। अत्र प्रथमं रविफलं परमेतावत् २।५।३१ धृतम्। एतन्मितं धार्यम् २।१०।३१। अनयोरन्तरमिदम्। ०।५। इदं चतुर्विंशत्या सवर्णितं जातं द्वयं फलं तुल्यमेव। अतः सस्वार्हल्लवमिति। ताः फलकलाः रविव्यग्वोर्देयास्तौ स्फुटौ भवतः अथ चन्द्रविम्बस्योपपत्तिः। अत्र गतेर्बिम्बानयनं कार्यमित्यत्र हरोऽपि गतिखण्डमतो हरादनुपातः। यद्यस्मिन् मध्यमे हरे ३०।२०। इदं चन्द्रबिम्बं १०।४०। तदेष्टस्य स्पष्टहरे किमिति। अत्र गुणाद्धरो हि त्रिगुणासन्नोऽतोऽत्र वित्र्यंशौ द्वौ क्षेप्यौ। ततस्त्रिगुणं चन्द्रबिम्बं भवति। अत उक्तं वित्रंशद्वियुतहरः कृशानुभक्तश्चन्द्रबिम्बमिति ॥१३॥

विश्वनाथः

अथ व्यगुरविस्फुटीकरणमाह। वेदघ्नमिति। रविफलं २३।३।३०। वेदघ्नम् ९२।१३।२०। स्वकीयचतुर्विंशतिभागेन ३।५०।३। सहितं जाताः कलाः ९६।३। तरणिफलस्य ऋणत्वादणं रविफलं धनं चेत् तदा एताः कलाः व्यग्वर्कयोयुताः कार्याः। ऋणफले रहिताः कार्याः। तौ व्यग्वर्कौ स्फुटौ स्तः। कलाभिः संस्कृतौ जातः स्पष्टो रविः ६।२८।३४।५२। स्पष्टो व्यगुः ५।२३।४४।४८। हारः २८।५० वित्र्यंशद्वि–१।४०। युतः ३०।३०। कृतानु–३ भक्तो लब्धमंगुलाद्यं चन्द्रबिम्बम् १०।१०। ॥१३॥

केदारदत्तः

सूर्य के कलात्मक फल में फल का २४ वाँ विभाग जोड़कर उसे पुनः ४ से गुणित अपने २४ वें अंश से युक्त और चतुर्गुणित कलात्मक रबिफल का रवि और व्यगु में यथोक्त संस्कार करने से स्पष्ट सूर्य और स्पष्ट व्यगु होते हैं। तथा अपने तृतीय अंश $२ - \frac{१}{३} = \frac{५}{३} = १$ अंगुल ४० व्यंगुल से कम हार में पुनः २ जोड़ कर और योगफल में ३ का भाग देने से लब्ध फल के तुल्य चन्द्रमा का विम्ब मान होता है ॥१३॥

उपपत्तिः—१० वें श्लोक से सूर्यफल $= \frac{\text{चन्द्रफल} \times ५}{२ \times ६}$, वास्तव में तो

$$\frac{\text{चं०फ०} \times १३०}{३००} = \frac{\text{चं०फ०} \times १२५}{३००} + \frac{\text{चं०फ०} \times ५}{३००} = \frac{\text{चं०फल} \times ५}{२ \times ६} + \frac{\text{चं०फ०} \times ५}{२ \times ६ \times २}$$

$$(\text{स्वल्पान्तर से}) = \frac{\text{चं०फ०} + ५}{२ \times ६} + \frac{\text{चं०फ०} \times ५}{२ \times ६ \times २४} = \text{पूर्वोक्त रविफल} + \frac{\text{पूर्वोक्तरविफल}}{२४}$$

यह १५ गुणित होने से १५ से भाग देने से अंशात्मक होगा और ६० से गुणा करने से कलात्मक होगा$=\left(\text{पूर्वोक्त फल} + \frac{\text{पूर्वोक्त फल}}{२४}\right)४$ इसका, रवि और व्यगु की कलाओं में संस्कार

करना चाहिए। तथा ११ वें श्लोकोपपत्ति में $\frac{\text{स्पष्ट चं०ग्र० − स्पस्टसू०ग्र०}}{\text{२४}} = \text{हार}$।

अतः स्पष्ट चन्द्र गति = ७४ × हार + स्पष्ट सूर्य गति = हार + २४ × ६२ चन्द्रग्रहणाधिकारीय चन्द्र बिम्ब = $\frac{\text{हार २४ × ६२}}{\text{७४}} = \frac{\text{७२ हार × १८६}}{\text{७४ × ३}} = \frac{\text{७४ हा०−२ हा० + १८६}}{\text{७४ × ३}}$

$= \frac{\text{७४ हा०−(३०−}\frac{\text{१}}{\text{३}}\text{) २ + १८६}}{\text{७४ × ३}}$ .... यतः सगुणाशखवह्लयः = हार कह चुके हैं।

$= \frac{\text{७४ हा० + १२६−}\frac{\text{२}}{\text{३}}}{\text{७४ × ३}} = \frac{\text{७४ हा० − }\frac{\text{३७१}}{\text{३}}}{\text{७४ × ३}} = \frac{\text{हार + }\frac{\text{५}}{\text{३}}}{\text{३}} = \frac{\text{हार + २−}\frac{\text{१}}{\text{३}}}{\text{३}}$ उपपन्न हुआ ॥१३॥

खाब्ध्याप्तार्कागतदलयुतोनाः स्वकेन्द्रे कुलीर-
नक्राद्ये स्याद्व्यरिलवभवा अंगुलाद्यर्कविम्बम्।
हारो वीषु स्वतिथिलवयुक् स्यात् कुभाऽस्यां धनर्णं
खाक्षाप्तार्कागतदलमतो नक्रकर्क्यादिकेन्द्रे ॥१४॥

मल्लारिः

अथ सूर्यबिम्बभूभाबिम्बे साधयति। खाब्धिभिश्चत्वारिंशता ४० आप्तं भक्तं च तदर्कस्य अगतदलं भोग्यखण्डं तेन व्यालिवभवा विषड्लवा एकादश युक्तोनाः कार्याः। कदेत्याह। स्वकेन्द्रे सूर्यस्य मन्दकेन्द्रे कुलीरनक्राद्ये सति। कर्क्याद्ये युता मकराद्ये ऊनाः सन्तोऽअंगुलादि सूर्यबिम्बं स्यात्। विगता इषवः पञ्च यस्मात् स तथा। एवम्भूतो हरः। स्वस्य तिथिलवेन पञ्चदशांशेन युक् कुभा स्यात्। अस्यां कुभायां खाक्षैः पञ्चशताऽऽप्तं भक्तं यदर्कस्य अगतदलं तत् नक्रकर्क्यादिकेन्द्रे धनर्णं खार्यम्। मकरादौ धनं कर्क्यादौ ऋणम्। तत् भूछायाबिम्बं भवति।

अत्रोपपत्तिः। मध्यगतिप्रमाणेन रवेर्मध्यबिम्बमिदम् १०।५० यदि मध्यगत्या इदं तदा स्पष्टगत्या किम्। अत्र भोग्यखण्डपरमत्वे गतिफलपरमत्वमित्यत्र भोग्यखण्डात् गतिफलं प्रसाध्य विम्बं साध्यम्। तदत्र परमं बिम्बम् ११:१५ अनयोर्मध्यस्पष्टयोन्तरम् ०।२५ इदं परमभोग्यखण्डस्यास्य १७ चत्वारिंशत्तमो भागः। अयं मध्यबिम्बे देयः। कर्क्यादौ गतिफलं धनमतो युतो युक्तः। मकरादौ गतिफलमृणमतो हीनः। एवं रविविम्बं भवति। अथ भूभाविम्बोपपत्तिः। अत्र चन्द्रमध्यगतिवशात् जातं भूभाखण्डमेकम्। २७ इदं मध्यहर ३०।२० पञ्चोनितस्य स्वतिथिलवयुक्तस्य समं भवति। अतो हि स्पष्टहरादेवं साध्यम्। तदत्र सूर्यगतिफलोत्थं विम्बं भूछायायामस्यां देयम्। तत्र सूर्यभोग्यखंडस्य पञ्चदशांशं देयमिति दृश्यते। यतो हि परमं

भोग्यखण्डमिदम् १७। त्र्यंशोनाष्ट–७।४० भक्तं रविगतिफलं भवति २।१३ तदपि सप्तभक्तं भूभाखण्डं भवति। अतोऽयं हरघातो हरः ५०। भोग्यखण्डं पञ्चशद्भक्तं तत्र भूभाखण्डे देयः। मकरादौ ऋणं फलं गतेः। अतस्तद्भूभायां युज्यते। कर्क्यादौ धनं फलं तद्भूभायां न्यूनं भवति ॥१४॥

विश्वनाथ

अथ रविबिम्बसाधनमाह खाब्धीति। गतखण्डम् १२। अस्मात् खाब्ध्या-४० प्तिः ०।१८ अनेन व्यरिलवभवाः १०।५० केन्द्रस्य कर्क्यादित्वात् ऊनाः १०।३२ जातं रविबिम्बम्। हारः २८।५० पञ्चरहितः २३।५० स्वकीयेन पञ्चदशभागेन १।३५ युक्तः २५।२५ सूर्यफलसाधने भोग्यखण्डं १२ पञ्चाशद्भक्तं फलम् ०।१४ रविकेन्द्रस्य कर्क्यादित्वात् ऋणं जाता भूभा २५।११ ॥१४॥

केदारदत्तः

क्रमशः कर्क-मकरादि केन्द्रों में षष्ठांश रहित ११ में, ४० से विभाजित रवि केन्द्र के अग्रिम खण्ड को, जोड़ने और घटाने से अंगुलादिक रवि बिम्ब हो जाता है।

हार में ५ कम करने से जो शेष इसमें इसी शेष का १५ वाँ भाग जोड़ने से भूभा मान हो जाता है। किन्तु मकरादि और कर्कादि केन्द्रों में भूभा में ऐष्य खण्ड का ५० वाँ भाग क्रमशः जोड़ने और घटाने से स्पष्ट अंगुलात्मक भूभा बिम्ब होता है ॥१४॥

उपपत्तिः—सूर्यगति स्वल्पान्तर से $= १^\circ =$ सूर्य केन्द्र गति। अनुपात से १३ अंशों में ऐष्य खण्ड तो १ अंश तुल्य रविकेन्द्र गति में $\frac{\text{ऐष्य खण्ड} \times १}{१३}$ चन्द्रवत् गतिफल को १५ से भाग और ६० से गुणा करने से कलात्मक $= \frac{\text{ऐष्यखण्ड} \times ४}{१३}$ को दो से भाग देते हुए अपना षडंशोन……करने से वास्तविक सूर्यगति फल $= \frac{\text{ऐष्यखण्ड} \times ४}{२ \times १३} - \left(\frac{\text{ऐष्यखण्ड} \times ४}{६ \times २ \times १३} \right) \times \frac{२५}{२४} = \frac{\text{ऐष्यखण्ड} \times १२५}{३३६}$, इसे कर्क मकरादि केन्द्रों में मध्यगति में धन ऋण करने से $५९।८ \pm \frac{\text{ऐष्यखण्ड} \times १२५}{९३६}$ होता है। तथा चन्द्रग्रहणाधिकार के श्लोक ३ से अंगुलात्मक सूर्य बिम्ब $= १० + \frac{४'।८'}{५} + \frac{\text{ऐष्यखण्ड} \times १२५}{९३६ \times ५} = १०'।५०'' + \frac{\text{ऐष्य खण्ड}}{४०} = १०' + \frac{५'}{६} \pm \frac{११ \text{ ऐष्यखण्ड}}{४०} - \frac{१}{६} \times \frac{\text{ऐष्यखण्ड}}{४०}$ सूर्य बिम्ब उपपन्न होता है। पूर्वार्ध श्लोक॥१४॥

पहिले की युक्ति से $\text{हार} = \dfrac{\text{स्प० चं० ग०} \times ६२}{२४}$ $\therefore$ स्प० चं० ग० = २४ हार + ६२ तथा

$\text{चन्द्रगतिफल} = \dfrac{\text{ऐ० खं०} \times ४}{१२} = \text{फल}$ । द्व्याप्तं स्वाङ्गलवोनितं से $\text{रविगतिफल} = \dfrac{\text{फल} \times ५}{१२}$ ।

अतः रवि की स्पष्टा $\text{गति} = ५९'।८'' + \dfrac{\text{फल} \times १२}{१२} = \dfrac{७०९'।३६'' \pm ५ \text{ फल}}{१२} \pm ५ \text{ फ}$ ।

अतः चन्द्रग्रहण के श्लोक ३ से भूभा $\text{बिम्ब} = \dfrac{२४ \times \text{हार} + १२ - ७१६}{२२} + ३२ -$

$\dfrac{७०९।३६ + ५ \text{ फल}}{१२ \times ७} = \dfrac{२४ \times \text{हार} + ५०}{२२} - \dfrac{(७०९) \pm \text{फ}}{२२ \times ७}$ स्वल्पान्तर से $\dfrac{१२ \times \text{हा०} + २५}{११}$

$- \dfrac{७०९ \pm ५ \text{ फल}}{८४} = \dfrac{१००८ \times २१०० - ७७९९}{९२४} \pm \dfrac{\text{फल} \times ५५}{९२४} = \dfrac{१००८ \times \text{हार} - ५५९९}{९२४}$

$= \dfrac{\text{फल} \times ५५}{९२४} = \dfrac{१६ \, (\text{हार} \times ३३ - ३५६)}{९२४} = \dfrac{\text{ऐष्यखण्ड} \times ४ \times ५५}{१३ \times ९२४} = \dfrac{\text{हार } १६}{१५} - ५ \pm$

$\dfrac{\text{ऐ० ख०}}{५०} = \dfrac{१६}{१५}\left(\text{हार} - ५\right) = \dfrac{\text{ऐ० ख०}}{५०} = १ + \dfrac{१}{१५}\left(\text{हार} - ५\right) = \dfrac{\text{ऐ० खं०}}{५०} = \left(\text{हार} - ५ + \right) +$

$\left(\dfrac{\text{हार} - ५}{१५}\right) \pm \dfrac{\text{ऐ० खं०}}{५०} =$ भूभा बिम्ब उपपन्न होता है ॥१४॥

ज्ञात्वैवं तिथिपूर्वकं ग्रहणजं शेषं भवेत् पूर्ववत्
षण्मासैरुत पक्षवर्जितयुतैः पक्षेऽथ वाऽऽलोकयेत् ।
अर्केन्दुग्रहणं व्यगोर्भुजलवैस्तिथ्यल्पकैरुष्णगो-
र्याम्यैर्वस्वधरैर्द्युरात्रिगतिथौ चाहर्निशामाश्रिते ॥१५॥

मल्लारिः

एवं बिम्बादि प्रसाध्येदानीं ग्रहणसम्भूतिमाह । एवं तिथिपूर्वकं ग्रहणजं शरस्थित्यादि पूर्ववत् चन्द्रग्रहजोक्तवद्भवेत् । अर्केन्द्वोः सूर्यचन्द्रयोर्ग्रहणं षण्मासैर्ग्रहणादन्यद्ग्रहणम् । अथवा पक्षवर्जितयुतैः षण्मासैः सार्धपञ्चमासैः सार्धषण्मासैर्वा आलोकयेत् ग्रहणसम्भूतिं पश्येत् । तत्सम्भवमाह । व्यगोर्भुजभागैस्तिथ्यल्पकैः सद्भिर्ग्रहणम् । तु विशेषे । उष्णगोः सूर्यस्य ग्रहणे व्यगुभुजभागैर्याम्यैर्दक्षिणगोलजैर्वस्वधरैः सद्भिर्ग्रहणम् । तद्यथा । सूर्यग्रहणे यदा व्यगुरुत्तरगोले तदा तद्भुजांशैस्तिथ्यल्पकैरेव ग्रहणम् । यदि याम्या भुजभागास्तदाष्टाधिकत्वे ग्रहणसम्भवो नास्तीत्यर्थः । द्युरात्रिगतिथौ सत्याम् । सूर्यग्रहणं तु दिवा तिथौ सत्यां भवति । चन्द्रग्रहणं तु रात्रौ तिथौ

सत्यां भवति। अथवा अहर्निशं तिथौ आश्रिते किञ्चिद्दिनरात्रिस्पर्शे तिथौ सति सूर्यचन्द्रग्रहणे भवत इति व्याख्या।

अस्योपपत्तिः प्रतिपादितप्रमेयाऽतिसुगमा च ॥१५॥

विश्वनाथः

अथ ग्रहणसम्भवमाह ज्ञात्वेति। एवं तिथिपूर्वक तिथिव्यग्वादिकं पूर्ववचन्द्रग्रहणवद्भवेत्। अर्केन्द्वोर्ग्रहणसम्भूतेः सकाशात् अन्यग्रहणम्भूति षण्मासैर्वदेत्। उत अथ वा पक्षवर्जितैः षण्मासैर्ग्रहणं विलोकयेत् सार्धपञ्चभिर्मासैरित्यर्थः। अथ वा पक्षयुतैः पञ्चदशदिनयुतैः षण्मासैर्ग्रहणं विलोक्यम्। अथ वा पक्षे पञ्चदशदिने विलोक्यम्। आदौ यत्र ग्रहणसम्भूतिस्तत्रत्यं व्यगुरवितिथ्यादिकं कृत्वा तेषां पक्षचालनं धनं देयम्। ग्रहणं विलोक्यम्। तत्र चेन्न ग्रहणं तदा तत्रत्यानां व्यग्वादीनां षण्मासचालनं धनं देयम्। तत्र चेन्न तदा पक्षचालनमणं देयम्। तत्र चेन्न तदा पक्षचालनं धनं देयम्। एवमग्रे पुनश्चालनं कृत्वा ग्रहणं विलोक्यम्। तत्र व्यगोर्भुजलवैस्तिथ्यल्पकैः पञ्चदशभागाल्पकैरर्केन्द्वोर्ग्रहणं स्यात्। सूर्यस्य याम्यैर्दक्षिणैर्व्यगुभुजांशैर्वस्वधरैरष्टाल्पैरर्कग्रहणं स्यात्। कस्मिन् सति द्युरात्रिगतिथौ सति दिनमानात् तिथौ न्यूने सति सूर्यग्रहणं विलोक्यम्। चेद्रात्रिगतस्तिथ्यन्तस्तदा चन्द्रग्रहणं विलोक्यम्। चेदथ वा अहर्निशमाश्रिते सति। इदं ग्रस्तोदिते ग्रस्तास्ते वा ग्रहणं स्यात् ॥१५॥

केदारदत्तः

इस प्रकार, तिथि-बिम्ब-शर आदि का साधन कर पहिले कहे गये प्रकारों से ग्रहण सम्बन्ध के शेष विषयों को समझ कर साधन करना चाहिए। किसी भी सूर्य या चन्द्र ग्रहण से आगे या पीछे १५ दिनों से रहित और सहित अर्थात् ५½, और ६½ महीनों अथवा आगे के १५ दिनों में दूसरे ग्रहण की सम्भावना समझनी चाहिए।

यदि व्यगु भुजांश १५° से कम हो तो ग्रहण की सम्भावना होती है। या व्यगु का दक्षिण भुजांश ८ अंश से कम होने पर सूर्यग्रहण का सम्भव विचारणीय होता है। तिथि मान से दिनमान अधिक होने से सूर्यग्रहण, और रात्रि के तिथ्यन्त में चन्द्रग्रहण का सम्भव विचारना चाहिए।

उपपत्तिः—१४ अंश से कम शर में ग्रहण का सम्भव पहिले चन्द्रग्रहण अधिकार में बताया गया है। इत्यादि ये विषय स्वयं स्पष्ट हैं ॥१५॥

सत्र्यंशगुणोनितो हरोऽयं वेदघ्नोऽङ्कहृतो व्यगोर्भुजांशैः।
हीनोभवताडितोऽद्रिहृत्स्याच्छन्नं शीतरुचोऽङ्गुलादिकंवा ॥१६॥

विश्वनाथः

अथ ग्रासं साधयति। अयं हरः सत्र्यंशैर्गुणैस्त्रिभिरूनितस्ततो वेदैश्चतुर्भिर्हन्यते स तथा। ततोऽङ्कैर्नवभिर्हृतो भक्तो व्यगुभुजांशैर्हीनः कार्यः चेद्धीनो न स्यात्

तदा ग्रहणमेव नास्ति । ततः स भवैरेकादशभिस्ताडितो गुणितः । अद्रिहृत् सप्तभक्तः । फलं शीतरुचश्चन्द्रस्यांगुलादि छन्नं वा प्रकारान्तरेण स्यात् ।

अत्रोपपत्तिः । शरोनं मानैक्यखण्डं ग्रास इति मुख्ययुक्तिः । तदत्र मध्यमं मानैक्यखण्डमिदम् १८।५२ अत एव भागाः साधिता विलोमविधिना । शरवद्व्यगु-भुजभागा भवघ्नाः सप्तभक्ताः शरो भवति । अतो व्यस्तविधिना मानैक्यखण्डं सप्त-गुणमेकादशभक्तं जाता भागाः १२ । एतं मध्यहराद्यथाऽऽगच्छन्ति तथा कार्यम् । अतो मध्यहरे सत्र्यंशगुणोनिते सति सप्तविंशतिर्यावत् चतुर्गुणा नवभिर्भज्यते तावद्द्वादश भागा एव भवन्ति । अतः सत्र्यंशगुणोनितश्चतुर्गुणो नवभक्तो भागाः स्युस्तेभ्यो व्यगुभुजभागा ऊनाः कार्याः शरस्य न्यूनकर्त्तव्यत्वात् ततो भागा भवगुणाः सप्तभक्ता-श्छन्नमंगुलाद्यं चन्द्रस्य भवतीत्युपपन्वम् ॥१६॥

विश्वनाथः

अथ चन्द्रस्य छन्नानयनमाह सत्र्यंशेति । हारः २८।५० सत्र्यंशगुणेन ३।२० रहितः २५।३० वेदघ्नः १०२।० नवभिर्भक्तः ११।२० व्यगोर्भुजांशैः ६।१५।१२ हीनः ५।४।४८ यदा व्यगुभुजांशैर्हीनो न भवति तदा चन्द्रग्रहणं न स्यात् । एकादशभिर्गुणितः ५५।५२।४८ सप्तभक्तः फलं शीतगोचश्चन्द्रस्य अंगुलाद्यं छन्नम् ७।५८ वेत्यथवा ।

अथ सूर्यग्रहणे ग्रस्तोदिते ग्रस्तास्ते नतघटिकाज्ञानमाह ।

चेन्निशैष्यके गतेऽर्कग्रहस्तदन्वितम् ।

स्याद्द्वियादलं नतं प्राक् परं क्रमात् तदा ॥

चेन्निशैष्यके रात्रिशेषे रात्रिगते वाऽर्कग्रहः । तदा यावतीभिर्घटिकाभी रात्रिशेषे गते वा सूर्यग्रहणं स्यात् तदा तावतीभिर्घटिकाभिर्युतं दिनदलं नत् प्राक् परं नतं भवति । रात्रिशेषें प्राङ्नतं रात्रिगते पश्चान्नतं स्यादित्यर्थः ॥१६॥

केदारदत्तः

३ में १ का तृतीयांश $=\frac{\text{१}}{\text{३}}=\frac{\text{६०}'}{\text{३}}=\text{२०}'$ को हर में घटाकर शेष को ४ से गुणा कर उसमें ९ का भाग देने से जो फल मिलै उसमें व्यगु के भुजांश घटाकर शेष को ११ से गुणा कर गुणनफल में ७ का भाग देने से लब्ध फल के तुल्य चन्द्रमा का अंगुलादिक शर का मान होता है ॥१६॥

उपपत्ति:—चन्द्रग्रहणाधिकार से भूभा और चन्द्र विम्बों के मानयोग दल में शर कम करने से ग्रासमान स्पष्ट है । इसी अधिकार के श्लोक १३ से चन्द्रबिम्ब $=\frac{\text{३} \times \text{हार} + \text{५}}{\text{३} \times \text{२}}$

भूभा विम्ब $=\frac{\text{१६ हार} - \text{८०}}{\text{१५}}$ अतः भूभा चन्द्र बिम्ब योगदल $=\frac{\text{हार} \times \text{३} + \text{५}}{\text{१८}} +$

$\frac{\text{हार} \times \text{१६} + \text{८०}}{\text{३०}} = \frac{\text{६३} \times \text{हार} - \text{२१५}}{\text{९०}} = \frac{\text{हार} \times \text{७}}{\text{१०}} - \frac{\text{४३}}{\text{१८}}$ इसमें शर मान =

$\frac{\text{व्यगु भु०} \times ११}{७}$ को कम करने से $= \frac{\text{हार} \times ७ \times ४४ \times ६३}{१० \times ४४ \times ६३} - \frac{४३ \times ११ \times २७}{१८ \times ११ \times २७} -$

$\frac{\text{व्यगु भुजांश} \times ११ \times \text{हार}}{७ \times ६३} - \frac{४० \times ११}{२७ \times ७} - \frac{\text{व्यगु भु०} \times ११}{७} =$

$\left\{ \text{ह} - \frac{१०}{७}) \; \frac{९}{४} - \text{व्यगु भुजांश} \right\} \times \frac{११}{७}$ उपपन्न होता है ॥१६॥

अमान्तनतनाडिकांघ्रिरहिताद्युतात् प्राक् परे
गृहादिकरवेर्नतांशकरसांशसंस्कारिताः ।
व्यगोर्भुजलवाः स्फुटाः स्युरथ सप्तशुद्धाश्च ते
निजार्धसहिता रवेः स्थगितमंगुलाद्यं स्फुटम् ॥१७॥

मल्लारिः

अथ रविग्रहणे ग्रासानयनं स्थूलमाह । दर्शान्तकालीनं यन्नतं तस्य नाडिका घटिका यास्तासामंघ्रिश्चतुर्थांशो राश्यादिस्तेन प्राक् पूर्वनते रहिताद् गृहादिकात् । रवेः सूर्यात् । परे पश्चिमनते युताद्ये नतांशकाः स्युः । तस्य क्रान्तिरक्षांशैः संस्कृता नतांशा भवन्ति । तेषां नतभागानां यो रसांशकः षडंशस्तेन व्यगोर्भुजलवाः संस्कारिताः । एकदिशोर्योगो भिन्नदिशोरन्तरमिति । ते स्फुटाः स्युः । ततस्ते सप्तभ्यः शुद्धाः कार्याः । यदि न शुध्यन्ति तदा ग्रहणमेव नास्ति । तेनिजेन अर्धेन सहिताः सन्तो रवेरंगुलादिकं स्फुटं स्थगितं ग्रासः स्यात् । इति व्याख्या ।

अत्रोपपत्तिः अत्र रविग्रहणे लम्बननतिसाधनं विना ग्रहणसम्भवोऽपि न ज्ञायते । अतः स्थूले लम्बननती साध्यते । दतघटीनां चतुर्थांशो लम्बनं तद्दर्शान्ते देयम् । पुनस्तत्कालीननताद्यः पञ्चमांशः स रवौ पूर्वकपाले यावत् न्यूनीक्रियते पश्चिमकपाले युक्तःक्रियते तत् त्रिभोनलग्नं भवति । अत्र चतुर्थांशसंस्कृतस्य तस्य पञ्चमांशः केवलचतुर्थांशतुल्य एव भवति । अतो नतघटीनां चतुर्थांशः पूर्वापरे नते रवौ हीनाधिकः कार्यः । तत् त्रिभोनलग्नं स्यात् । तस्य नतांशाः कार्याः । तेभ्यो नतिः साध्या सा शरेण संस्कार्या । स स्पष्टशरो मानैक्यखण्डान्निष्कासनीयो ग्रासः स्यादित्यत्र लाघवार्थं नतभागोत्थनतिभागैर्व्यगुभुजभागा ये ते विहिनाः कृताः तद्यथा । नतभागानां चतुर्थांशः स्थूला नतिर्भवति । नतिस्तु स्पष्टशरखण्डम् । अतोऽस्याः भागकरणार्थं सप्तगुण एकादश हरः । पूर्वं चत्वारो हरः एवं जातो हरघातो हरः ४४ । गुणहरयोर्गुणेनापवर्त्तियोर्लब्धा हरस्थाने षट् । अतो नतांशरसांशसंस्कारिता व्यगुभुजभागाः स्युरिति । अत्र रवेर्मानैक्यखण्डमिदम् ११ । मध्यं कियद्भ्यो भुजभागेभ्यः स्यादिति ज्ञानार्थं सप्तगुणमेकादशभक्तं जाता भागाः सप्त ७ । अत एतेषु भागेषु सप्तभ्यो न्यूनेस्वेव ग्रहणम् । अतः सप्तशुद्धाः । शरार्थं स्थूलत्वात् निजार्धसहिता इति तत् अंगुलादिकं सूर्यग्रहणे छन्नं भवतीत्युपपन्नम् ॥१७॥

विश्वनाथः

अथ सूर्यग्रहणे किञ्चित् स्थूलं ग्रासानयनमाह । अमान्तेति । अस्योदाहरणं सूर्यग्रहणे ॥१७॥

केदारदत्तः

दिनार्ध से पहिले अर्थात् पूर्वकपाल में दर्शान्त कालीन नतघटी का राश्यादिक चतुर्थांश सूर्य में कम, पश्चिम कपाल में नतघटी का राश्यादिक चतुर्थांश जोड़कर जो प्राप्त हो उसकी क्रान्ति का अक्षांशों में संस्कार पूर्वक नतांश साधन कर नतांश के षष्ठांश का व्यगु के भुजांशों में संस्कार करने (एक दिशा में योग विभिन्न दिशा में अन्तर) से व्यगु का स्पष्ट भुजांश होता है । व्यगु भुजांश को ७ में घटा कर शेष में अपना ½ (आधा) जोड़ने से सूर्य का स्थूल अंगुलादिक ग्रासमान होता है ॥१७॥

उपपत्तिः—नतघटी चतुर्थांश के तुल्य अमान्तकालीन स्थूल लम्बन मानकर लम्बन घटी युक्त अमान्तकाल घटिका को पृष्ठीय नत घटिका मानकर नतघटिका = नत घ० − $\frac{\text{नत घ०}}{४} = \frac{\text{नतघटी} \times ५}{४}$ । नत घटिका मे ५ का भाग देनेसे राश्यादिक फल = $\frac{\text{नत घटी}}{४}$ से पूर्वनत में रहित पश्चिम नत में सहित रवि = वित्रिभ के तुल्य माना है । वित्रिभ क्रान्ति और अक्षांश संस्कार से नतांश साधन पूर्व रीति से करना चाहिये ।

नतांश चतुर्थांश के तुल्य स्थूल नति मानी गयी है । नति संस्कृत मध्यम शर = स्पष्ट शर होता है । स्पष्ट शर ज्ञान से विलोम (व्यस्त) विधि मे स्पष्ट व्यगु भुजांश = $\frac{७ \times \text{शर}}{११} \pm \frac{\text{नतांश} \times ७}{४ \times ११}$ = व्यगु भुजांश $\pm \frac{\text{नतांश}}{४}$ यह पदार्थ जब ७ से कम होगा तभी सूर्य ग्रहण का सम्भव होगा । अतः इन्हें ७ मे शुद्ध (घटाया) है । तेंऽशा निघ्ना शंकरैः····से शर = $\frac{११}{७}$ (७−स्पष्ट व्यगु भुजांश) = स्वल्पान्तर से = $\frac{३}{२}$ (७−स्पष्ट व्यगु भुजांश) = सूर्य ग्रासमान स्वल्पान्तर से उपपन्न होता है ॥१७॥

व्यगुमध्यपर्ययगणो द्विगुणो वणिगादिगे व्यगुगृहे कुयुतः ।
स्मृतचक्रसंज्ञकयुतो विधितो गतपर्वपो मुनिहृतोवरितः ॥१८॥

मल्लारिः

अथ पर्वेशानयनमाह । क्षेपचक्रघ्नध्रुवयुक्तस्य व्यगोर्मध्यो यः पर्ययगणः । मध्यग्रहानयने राशयो द्वादशभिर्भज्यन्ते फलं पर्ययाः । स पर्ययगणो द्विगुणः कार्यः । वणिगादिगे तुलादिषड्भस्थे व्यगुगृहे सति कुयुत एकयुतस्ततोऽसौ स्मृतं यच्चक्रसंज्ञं तेन युतः । ततो मुनिहृतोर्वरितः सप्तनष्टावशिष्ट सन् विधितो ब्रह्मणः सकाशात् शेषतुल्यो गतः पर्व ग्रहणं पाति तथा पर्वेशः स्यात् । पर्वेशाः सप्त ७ । उक्तं च वराहसंहितायाम् ।

षण्मासोत्तरवृद्धया पर्वेशाः सप्त देवताः क्रमशः ।
ब्रह्मशशीन्द्रकुबेरा वरुणाग्नियमाश्च विज्ञेयाः ॥

अत्रोपपत्तिः। मासषट्केन एकः पर्वेशः। वर्षमध्ये द्वौ। वर्षमध्येतुव्यगुपर्ययोऽप्येकः। अतः स द्विगुणः पर्वेशःस्यादित्युपपन्नम्। स राशिषट्कस्थ एव यतो राशिषट्कानन्तरमेकवृद्धि। अतस्तुलादिगे व्यगौ कुयुत इति। अत्रैकादशवर्षात्मकचक्रमध्ये द्वाविंशतिः पर्वेशाः। ते सप्ततष्टाः। एकश्चक्रतुल्य एव भवति। अतश्चक्रयुत इति। पर्वेशाः सप्त। अतः सप्ततष्ट इत्युपपन्नम्। नन्वत्र चक्रकोत्पन्नपर्वेशस्य योजितत्वात्। पूर्वं चक्रघ्नध्रुवयोगो नोपपद्यत इति चेत्। भ्रान्तोऽसि। नह्येकचक्रे निरवयवैकादश भगणा येन चक्रोत्थपर्वेशयोगे चक्रघ्नध्रुवयोगोऽनर्थकः स्यात्। किं त्वेतावान् भगणादिव्यगुः। ११।७।१।१२ तत्र राश्यादिरयं ध्रुवः ७।१।१२ चक्रघ्नः पूर्वयोजित इदानीं चक्रघ्नैकादश योज्याः। आचार्येण त्वेकादशोत्थपर्वेश एकश्चक्रघ्नः पर्वेश योजितस्तदपि युक्तमेव। नन्वेवं ग्रन्थादिजव्यगुभगणानां तदुत्पन्नपर्वेशस्य वा योजनेः प्रसज्येत। बाढम्। तदुत्थपर्वेश इति वराहोक्तेर्मासशब्दस्य चान्द्रे मुख्यत्वात्। चान्द्रवर्षे द्वौ पर्वेशाविति गम्यते न पुनरेकस्मिन् भगण इति। न चैकवर्षे व्यगुभगणोऽप्येक इति वाच्यं गणितेनाधिक्यदर्शनात्। अतः एकभगणे पर्वेशद्वयं न युक्तमिति चेत्। अत्र ब्रूमः।

ब्रह्मेन्दुशक्रवित्तेशवरुणाग्नियमाः क्रमात्।
फणीनभगणैक्यघ्नद्विमितग्रहणाऽधिपाः॥

इति ब्रह्मसिद्धान्तोक्तिश्रवणादेकभगणे द्वौ पर्वेशावित्येव युक्तम्। वराहोक्तिर्यथाकथंचिन्नयेति विस्तरभयाद्विरराम॥१८॥

विश्वनाथः

अथ पर्वेशानयनमाह। व्यगुमध्येनि। मासगणात् मध्यमव्यगुसाधनं राशयस्ते द्वादशभक्ताः फलं पर्ययगणो भवति। व्यगुमध्यपर्ययगणः १०। द्विगुणः २०। वणिगादिगे तुलादिषट्के व्यगुगृहे सति एकयुक्तः कार्यः। चक्र-८ युतः २९। सप्ततष्टः। शेषे विधितो ब्रह्मणः सकाशात् गतपर्वेशा भवति। अत्र पर्वस्वामी ब्रह्मा।

पर्वेशाः सप्त वराहेणोक्ताः।
षण्मासोत्तरवृद्ध्या पर्वेशाः सप्तदेवताः क्रमशः।
ब्रह्मशशीन्द्रकुबेरा वरुणाग्नियमाश्च विज्ञेयाः।
एतस्य प्रयोजनं शुभाशुभफलकथनाय॥१८॥

केदारदत्तः

मास गण से सिद्ध व्यगु क मध्य पर्यय (भगण) को दो से गुणा कर यदि व्यगु तुलादि हो तो १ और जोड़ने से जो हो उसमें चक्र संख्या जोड़कर ७ से भाग देने से एकादिक शेष में क्रमशः ब्रह्मादिक पर्वेश—(१–ब्रह्मा, २–चन्द्र, ३–इन्द्र, ४–कुबेर, ५–वरुण, ६–अग्नि, और ७–यम) होता है। ७ से भाग देने से शेष तुल्य गत पर्वेश होगा वर्तमान के लिए १ और जोड़ना चाहिए॥१८॥

उपपत्ति:—६ महीने की उत्तर वृद्धि से ७ पर्वेश देवता होते हैं। विश्वनाथ टीका में बराह वचन स्पष्ट हैं। अतः एक वर्ष में मध्यम मान से पर्वेश संख्या = २ होती है। तथा मध्यम मान से वर्ष में व्यगु का एक ही पर्यय होगा। अतः ग्रन्थारम्भ काल से गत वर्षगण तुल्य ही व्यगु का मध्यम पर्यय होगा। जो ११ × चक्र + व्यगु० म० पर्याय। अतः अनुपात से एक पर्यय में पर्वेश संख्या=२ तो अभीष्ट व्यगु मध्यम पर्यय में $\frac{\text{१ चक्र × व्यगु मध्यम पर्यय}}{\text{१}}$

यतः पर्वेश संख्या ७ ही है अतः पर्यय ज्ञान के लिए ७ से भाग देकर लब्धि तुल्य गत पर्यय होगा ही यथा $\frac{\text{१ चक्र × व्यगु मध्यम पर्यय}}{\text{७}}$। तुलादिक व्यगु की स्थिति में ६ महीने बीत जाने से तुलादिक व्यगु की स्थिति में १ जोड़ना युक्तिसंगत है। अथवा ११ वर्ष के एक चक्र में पर्वेश संख्या=११ × २ = २२ सात से भाग देने से $\frac{\text{२२}}{\text{७}}$ शेष = १ अतः गत चक्र संख्या में जोड़ने से पर्वेश गत ही होगा ॥१८॥

तिथिरविहतिरंशास्तद्युतोऽर्को विधुः स्या-
दथ जिन-२४ गुणहारो द्व्यङ्गयुक्तद्गतिः स्यात् ।
खचरशरकलाः स्यात् सूर्यभुक्तिस्ततः स्यु-
र्भयुतिजगतगम्या नाडिकास्तिथ्यपायात् ॥१९॥

मल्लारिः

अथ सूर्याच्चन्द्रं साधयति। द्वादशगुणा तिथिसंख्या भागाः स्युः। तैर्भागैर्युक्तोऽर्को विधुश्चन्द्रः स्यात्। अथ जिनैश्चतुर्विंशत्या गुण्यते स तथा। एवम्भूतो हारो द्व्यंगैर्द्विषष्ट्या युक् तस्य चन्द्रस्य गतिः स्यात्। खचरशरा एकोनषष्टिकलाः सूर्यस्य भुक्तिर्गतिः स्यात्। सूर्यचन्द्राभ्यां भयुतिजा नक्षत्रयोगजा गतगम्या घटिकास्तिथेरपायादन्तात् स्युन सूर्योदयात्। यतो रविचन्द्रौ तिथ्यन्तकालीनौ ताः स्थितिघटीसंस्कृताः सूर्योदयान्नक्षत्रयोगघटिकाः स्युरित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। सूर्यचन्द्रान्तरे द्वादशभागतुल्ये एका तिथिर्भवति। अतो द्वादशगुणतिथिः सूर्यचन्द्रान्तरभागास्ते रवौ यावत् क्षिप्यन्ते तावच्चन्द्रो भवति। अत्र गत्यन्तरं चतुर्विंशतिभक्तं हारः कृतोऽस्ति। अतो जिनगुणो हारो गत्यन्तरम्। तत्र सूर्यगतिर्योज्या चन्द्रगतिः स्यादित्यत्र द्व्यंगमिता सूर्यगतिः प्रकल्पिता। अतो द्व्यंगयुगित्युपपन्नम् ॥१९॥

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन ।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्य मासौघतः वर्वयुगं समाप्तम् ॥

इति श्रीगणेशदैवज्ञकृतग्रहलाघवस्य टीकायां मल्लारिदैवज्ञविरचितायां मासगणादेव ग्रहणद्वयसाधनाधिकारः समाप्तः ॥७॥

विश्वनाथः

अत्र चन्द्रसाधनं तद्गतिसाधनमाह। तिथीति। तिथिः १५। द्वादशगुणिता जाता अंशाः १८०। अनेन रविः ६।२८।३४।५२ युक्तो जातश्चन्द्रः ०।२८।३४।५२ एवमिष्टतिथयो द्वादशगुणा भागा भवन्ति तैर्भागैर्युक्तोऽर्को विधुः स्यात्। हारः २८।५० चतुर्विंशत्या २४ गुणितः ६९२।० द्विषष्टि-६२ युक्तो जाता चन्द्रगतिः ७५४।० खचरशरकलाः ५९ सूर्यभुक्तिः। ततः सूर्यचन्द्राभ्यां भयुतिजा नक्षत्रयोगजा गतगम्या घटिकाः साध्याः। तास्तिथेरपायात् अन्त्यात् स्युः। तिथ्यन्ते विद्यमानौ नक्षत्रयोगौ तयोर्गतैष्या घटिकास्तिथ्यन्तात् स्युरित्यर्थः। न सूर्योदयात्। यतो रविचन्द्रौ तिथ्यन्तकालिको। तास्तिथिघटीमध्ये हीनयुक्ताः सत्यः सूर्योदयान्नक्षत्रयोगघटिकाः स्युरित्यर्थः तिथ्यन्तात् ३२।४४ कृत्तिकानक्षत्रस्य गतघटी ९।८ एष्यघटी ५४।३१ वरीयसो योगस्य गतघटी ४६।२८ एष्यघटी १२।३३।

अथ मासगणात् सूर्यपर्वसाधनम्। संवत् १६६९ शाके १५३४ वैशाख कृष्ण ३० बुधे घटी २६।८ रोहिणीनक्षत्र घटी ३४।५७ धृतियोगे घटी ४२।२९ चक्रम् ८। मासगणः ५१। द्विगुणः १०२। नगषड्भक्तः फलं राश्यादि १।१५।४०।१७ अनेन मासगणो रहितः १।१४।१९।४३ चक्रनिघ्नध्रुवकेण ०।१३।२० रहितः १।०।५९।४३ क्षेपकयुक्तो ०।४।२१।० जातो रविः पौर्णिमास्यन्त १।५।२०।४३ पक्षचालनेन ०।१४।३३ युतो जातोऽमान्ते रविः १।१९।५३।४३।

अथ विराह्वर्कसाधनम्। उक्तवज्जातः पौर्णिमास्यन्ते ११।२१।६।४५ पक्षचालनेन ०।१५।२० युतो जातोऽमान्ते व्यगुः ०।६।२६।४५ अथ वृत्तानयनम्। उक्तवज्जातं पूर्णिमान्त वृत्तम् ८।२०।१०।४३ पक्षचालनेन ६।१२।५४ युक्तं जातममान्ते वृत्तम् ३।३।४।४३।

अथ वाराद्यानयनम्। उक्तवज्जातं वाराद्यम् ३।९।७ पक्षचालनेम ०।४५।५५ युक्तं जातममान्ते वाराद्यम् ३।५५।२ वृत्तफलं धनम् ७४।२२।११ रवेः केन्द्रम् ०।२८।६।१७ रविफलं धनम् १४।४१४० फलद्वययोगो धनम् ८९।४।१ वृत्तैष्यखण्डम् २। हारः ३०।३० सूर्योच्चरमृणम् १०८। सायंलक्षणकमित्युक्तत्वाज्जातं धनम्। फलसंस्कृतिः ८९।४।१ दशहता ८९०।४०।१० हारेण ३०।४० भक्ता फलं नाड्यः २९।२ संस्कृतेर्धनत्वाद्धनम्। देशान्तरयोजनानि ६४ त्वांघ्र्यूनानि जातानि देशान्तरपलानि ४८ रेखातः पूर्वत्वाद्धनानि। फलत्रयसंस्कृतिर्धननाड्यः ३१।३८ तिथिः ३।५५।२ फलत्रयसंस्कृता जाताः स्पष्टा बुधे घट्यः २६ पलानि ४०। फलत्रयसंस्कारतुल्यघटिकाः ३१।३८ एतत्संस्कृतो रविः १।२०।२५।२१ व्यगुः ०।६।५८।२३ तरणिफलम् १४।४१।४० वेदघ्नम् ५८।४६।४० स्वसिद्ध-२४ भागेन २।२६।५६ युक्तं जाताः कलाः ६१।१३।३६ तरणिफलस्य धनत्वाद्धनकलाभिः संस्कृतो रविः स्पष्टः १। २१।२६।३४ स्पष्टो व्यगुः ०।७।५९।३६ चन्द्रबिम्बम् १०।४६।

अथ सूर्यबिम्बानयनमाह । सूर्यस्य फलसाधने भोग्यखण्डम् १४ । खाब्ध्या-४० प्तम् ०।२१ व्यरिलवभवा १०।५० मकरादिकेन्द्रत्वाद्रहिता जातमंगुलाद्यर्कबिम्बम् १०।२९ ।

अथ सूर्यग्रासानयनमाह । अमान्तोऽयम् २६।४० दिनार्धम् १६।४८ नतं पश्चिमम् ९।५२ अस्य चतुर्थांशो राश्यादिः २।१४:० पश्चिमनतस्य विद्यमानत्वादंघ्रिणा युक्तो रविः ४।५।२६।३४ अस्य क्रान्तिरुत्तरा १३।५२।२२ अक्षांशा दक्षिणाः २५।२६।४२ क्रांत्यक्षजसंस्कारे जाता नतांशा दक्षिणाः ११।३४।२० अस्य षडंशो दक्षिणाः १।५५।४३ व्यगुभुजभागा उत्तराः ७।५९।३६ षडंशेन संस्कारिताः स्पष्टाः ६।३।५३ सप्त-७ शुद्धाः ०।५६।७ स्वीयाधन ०।२८।३ सहिता जातोऽगुलाद्यो ग्रासः १।२४ व्यगुमध्य-पर्ययगणः ६ । पर्वस्वामी यमः । तिथि-३० द्वादशगुणा जाता अंशाः ३६० । एतत्सहितो रविर्जातश्चन्द्रः १।२१।२६।३४ चन्द्रगतिः ७९८ । सूर्यगतिः ५९ । तिथ्यन्ताद्रोहिणी-नक्षत्रस्य गतघटी ५१।३७ एष्यघटी ८।३१ धृत्तियोगस्य गतघटी ४०।१० एष्यघटी १५।५२ ॥१९॥

केदारदत्तः

तिथि संख्या गुणित १२ के तुल्य अंश संख्या को सूर्य स्पष्ट में जोड़ने से स्पष्ट चन्द्रमा होता है । हार और २४ के गुणनफल में ६२ को जोड़ने से उक्त चन्द्रमा की गति सिद्ध होती है । तथा स्वल्पान्तरीय रवि गति ५९ कला सर्वत्र प्रसिद्ध है। इस प्रकार उक्त रवि चन्द्रमा से तिथ्यन्त काल साधित कर नक्षत्र योगादिक की गत गम्य घटिका सिद्ध होती है ।

उपपत्तिः—सूर्य चन्द्र स्पष्टी करणाधिकार श्लोक ८, ९ से तिति $= \frac{\text{चन्द्रांश} - \text{सूर्यांश}}{१२}$

$\therefore$ तिथि $\times$ १२ = चन्द्रांश $-$ सूर्यांश । $\therefore$ चन्द्रांश = १२ $\times$ तिथि + सूर्यांश । तथा हार = $\frac{\text{स्पष्ट चन्द्र गति} - ६२}{२४}$ । अतः स्पष्ट चन्द्र गति = हार $\times$ २४ + ६२ तथा स्वल्पान्तर से सूर्य गति = ५९ पूर्व में मानी ही गई है । रवि चन्द्रमा तिथ्यन्त कालीन हैं, अतः तिथ्यन्त पर से नक्षत्र योगादि की गत गम्य घटिकाओं का ज्ञान सुगम व सुस्पष्ट होता है ।।१९।।

(सं० २०३७ भाद्र शु० १३ मंगल सायं ४ P.M)

कूर्माद्रि प्रसिद्ध अल्मोड़ा मण्डलान्तर्गत जुनायल ग्रामज श्री पूज्य १०८ पं० हरिदत्त ज्योतिर्विदात्मज श्री केदारदत्त जोशीकृत, (वर्तमान नलगाँव काशीस्थ), ग्रह-लाघव ग्रन्थ के चतुर्थ अधिकार में श्री केदारदत्तीय व्याख्यान व उपपत्ति सुसम्पन्न हुई ।।४।।

अथ ग्रहणद्वयसाधनाधिकारः

अथ वाऽयं तिथिपत्रतोऽवगम्यः पर्वान्तश्च रविस्तमास्तिथेति ।
भस्येतैष्यघटीयुतिर्द्युमानं तेभ्योऽथ ग्रहणद्वयं प्रवच्मि ॥१॥

मल्लारिः

अथ केवलं पञ्चांगादेव लघुकर्मणा ग्रहणद्वयं साधयति । अथ वाऽयं पर्वान्तो दर्शान्तः पौर्णमास्यन्तश्च । रविः सूर्यः तमो राहुस्तिथेर्वा: भस्येतैष्यघटीयुतिः । गतैष्य-घटीयोगश्च ज्ञेयः । तिथिपत्रस्थद्युमानमपि ज्ञेयम् । तेभ्यो ज्ञातेभ्यो ग्रहणद्वयं प्रव-च्मीत्यर्थः ॥१॥

विश्वनाथः

अथ पञ्चांगात् ग्रहणद्वयसाधनमाह अथेति । अथ वा प्रकारान्तरेणायं पर्वान्तो घटिकादिकस्थितिपत्रतः पञ्चांगादवगम्यो ज्ञातव्यः । तत्र पर्वान्ते रविस्तमो राहुश्च ज्ञातव्यः । तिथिपत्रस्थौ रविराहू गतगम्यदिनाहतेत्यादिना पर्वान्ते तात्कालिकौ कार्यौ । तत्र पूर्णिमामान्तयोर्यातैष्यघटीनां युतिर्वा भस्य नक्षत्रस्य गातैष्यघटीयोगो ज्ञातव्यः । द्युमानं दिनमानमवगम्यम् । इदं सर्वं तितिपत्राज्ज्ञात्वा तेभ्यो ग्रहणद्वयं प्रवच्मीत्यर्थः । संवत् १६६९ शके १५३४ वैशाखशुक्ल-१५ सोमे गतघटी २।२३ एष्यघटी ५४।२० गतैष्यघटीयोगः ५६।४३ अनुराधागतघटी २०।४ एष्यघटी ३८।३५ गतैष्यघटीयोगः ५८।३६ दिनमानम् ३३।६ पर्वान्तकालिको रविः १।६।३४।३७ राहुः ११४।१८।११ विराह्वर्कः ११।२२।१६।२६ ॥१॥

केदारदत्तः

पञ्चाङ्ग से ही घटिकादिक पर्वान्त समय, सूर्य, राहु, तिथि-नक्षत्र के गतगम्य घटि-काओं का ज्ञान, दिनमान प्रमाण आदि सभी उपकरणों को समझ कर सूर्य और चन्द्रमा दोनों के ग्रहणों की साधन विधि कहने जा रहा हूं ॥१॥

उपपत्तिः—उपपत्ति स्पष्ट है ॥१॥

ताराषड्व्यगतिथियातगम्यनाडीयोगाता व्यगुरविदोर्लवोनितास्ते ।
संयुक्ता निजदलभूपभागकाभ्यां छन्नं बाऽङ्गुलवदनं भवेत् सुधांशोः ॥२॥

मल्लारिः

अथ छन्नसाधनमाह । सप्तविंशत्यधिकषट्शतमिता विगता अगाः सप्त यस्मात् स तथा । एवम्भूतो यस्तिथेर्यातगम्यनाडीयोगस्तेन आप्ता भक्ता लब्धं त्रिष्ठं ग्राह्यम् । ततस्ते लब्धांशा व्यगुरवेः बिराह्वर्कस्य ये दोर्लवा भुजभागास्तैरूनितास्ते निजेन

स्वीयेन दलेन अर्धेन तया स्वस्य भूपभागेन षोडशांशेन च लब्धद्वयेन युक्ताः सन्तोऽगुलपूर्वकं विधोश्चन्द्रस्य छन्नं ग्रासो भवेदित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। चन्द्रस्य मध्यममानैक्यखण्डमिदम् १८।५६ तिथिघटिका-५९।४ मध्यमा मध्यमरविचन्द्रगत्यन्तरोत्पन्नाः। तत्र गतेराधिक्ये मानैक्यखण्डाधिक्यम्। तत्र तिथिघटीनामल्पत्वम्। तत्रानुपातः। यदि मध्यमतिथिघटीभिर्मध्यमं मानैक्यखण्डं तदेष्टस्पष्टतिथिघटीभिः किम्। अत्र व्यस्तत्रैराशिके स्पष्टतिथिघटिका हरः। मध्यमतिथिघटीमध्यममानैक्यखण्डघातो भाज्यः १११९।८ अत्रास्मिन्। भाज्ये भागकरणार्थं सप्तगुणे भवभक्ते जाता भागाः ७१२।११ एते तिथिगतैष्यघटीयोगेन भाज्या इत्यत्र तेषां सावयवत्वर्थं सञ्चारगुणनम्। यद्यासु घटीषु ५९।४ अयं भाज्यः ७१२।११ तदा सप्तोनितास्वासु घटोषु ५२।४ को भाज्य इति जाताः ६२७। अत एते व्यगुतिथिगतैष्यघटीयोगेन भाज्या व्यगुभुजांशोनाः। ततः शरार्थं स्वदलयुक्ता भागाः स्थूलः शर इत्यतो भूपभागान्विताः कृताः। तच्छन्नं भवतीत्युपपन्नम् ॥२॥

विश्वनाथः

अथ छन्नानयनमाह तारा इति। ताराषट् ६२७ सप्तरहितेन तिथेर्गतैष्यघटीयोगेन ४९।४३ भक्ताः फलं भागाद्यम् १२।३६।४१ विराह्वर्कस्य भुजांशैः ७।४३।३४ ऊनाः ४।५३।७ एते निजार्धेन २।२६।३३ निजषोडशांशेन ०।१८।१९ युक्ता जातोऽगुलाद्यो ग्रासः ७।३७।५९ यदा भुजांशा ऊनिता न स्युस्तदा ग्रहणस्य सम्भवो न स्यात् ॥२॥

केदारदत्तः

तिथि भोग धटी में ७ कम कर शेष में ६२७ का भाग देने से अंशादिलब्धि में व्यगु का भुजांश घटाकर जो शेष उस शेष में, शेष का आधा एवं शेष का १६ वाँ भाग जोड़ने से योगफल के तुल्य अंगुलादिक ग्रासमान हो जाता है ॥२॥

उपपत्तिः—उच्च के समीप गति और बिम्ब मान लघु और नीच के समीप में गति और विम्बमान बड़ा होने से, उच्च समीप में तिथि भोग घटीमान अधिक और नीच विन्दु के समीप में तिथि के भोग घटी का मान अधिक होता है। अतः अनुपात होता है कि यदि मध्यम तिथि घटिकाओं में मध्यम मानैक्य खण्ड उपलब्ध होता है तो स्पष्ट तिथि घटिकाओं में यदि तिथि घटिका मान कम होगा तो यहाँ पर व्यस्त त्रैराशिक हो जायेगा। तदनुसार

$$\text{स्पष्टमानैक्य खण्ड मान} = \frac{\text{मध्यम तिथि घटी} \times \text{मध्य मानैक्य खण्ड}}{\text{स्पष्ट तिथि घटी}}$$ अर्थात् स्पष्टमानैक्य खन्ड × स्पष्ट तिथि घटी = मध्य तिथि घटी × मध्यमा मानैक्य खण्ड। स्पष्ट मानैक्य खण्ड × स्पष्टतिथि घ० – मध्य०मानै०ख० × ७ = मध्य०तिथिघ० × मध्य०मानै०ख० × ७

$$\therefore \text{स्पष्ट तिथि घटी} - \frac{\text{स्पष्ट मानै०ख०} \times 7}{\text{स्पष्टमानै०ख०}} = \frac{\text{मध्यम मानै०ख० (मध्यमतिथिघटी} - 7)}{\text{स्पष्ट मानै० ख०}}$$

$= \text{स्पष्ट तिथि घटी} - ७ = \frac{१८।५६ \times ५२।४}{\text{स्पष्टमानै० ख०}}$ अतः स्पष्ट मानै० ख० $\frac{१८।५६ \times ५२।४}{\text{स्पष्टतिथिघ०} - ७}$ इस स्वरूप

को ७ से गुण कर ११ से भाग देने से (शर साधन की विपरीत प्रणाली से)

$\frac{(१८।५६) \times (५२।४) \times ७}{(\text{स्पष्टतिथिघटी} - ७) \times ११} = \frac{६२७}{७ \times \text{स्पष्ट तिथि घटी}}$। पुनः-'तँऽशा निघ्नाः शङ्करैः शैलभक्ता'

से $\frac{११}{७} \left(\frac{६२७}{\text{स्पष्ट तिथि घटी}} \text{ व्यगु भुजांश} \right)$ स्वल्पान्तर से $= \left(\frac{१}{२} + \frac{१}{१६} \right) \times$

$\left(\frac{६२७}{\text{स्पष्ट तिथि घटी} - ७} - \text{व्यगु भुजांश} \right)$ उपपन्न है ॥२॥

अङ्गयुक्तिथिघटीहृतबाणाङ्गर्तवोंऽगुलमुखं विधुबिम्बम् ।
दिग्वियुक्तिथिघटीहृतदृग्दृक्त्रीन्दवोंऽगुलमुखा क्षितिभा स्यात् ॥३॥

मल्लारिः

अथ चन्द्रबिम्बभूभाबिम्बे कथयति। षड्युक्ततिथिगतैष्यघटीयोगेन भक्ताः पञ्चोनशप्तशतमिताः सन्तोंऽगुलमुखं विधोश्चन्द्रस्य बिम्बं स्यात्। दिग्भिर्वियुजो हीना यास्तिथिघटिकास्ताभिर्हृता दृक्दृक्त्रीन्दवो द्वाविंशत्यधिकत्रयोदशशतमिता अंगुलमुखा क्षितिभा भूछाया स्यादिति व्याख्या।

अत्रोपपत्तिः। अत्र मध्यतिथ्याऽनया ५९।४ मध्यमे चन्द्रबिम्बेऽस्मिन् १०।४१ गुणिते भाज्यः ६३१।२ अयं सावयवोऽतः सञ्चारः। यद्यासु घटीषु ५९।४ अयं ६३१।२ तदा षड्युक्तघटीषु क इति जातो भाज्यः ६९५। अयं तिथिघटीभिः ष युक्ताभिर्भाज्यश्चन्द्रबिम्ब भवतीत्युपपन्नम्। अथ मध्यमं भूभाविम्बमिदम् २६।५५ अस्मिन् मध्यतिथिभिर्गुणिते जातो भाज्यः सावयवः १५९२।४९ अत्र सञ्चारः। यद्यभिर्घटीभिः ५९।४ अयं भाज्यः १९५२।४९ तदा दशहीनघटीनां ४९।४ को भाज्य इति जातः १३२२। अतो दशहीनतिथिघटीभक्तो भाज्यो भूभा स्यादित्युपपन्नम् ॥३॥

विश्वनाथः

अथ चन्द्रबिम्बभूभासाधनमाह अंगेति। तिथिघटिकाः ५६।४३ षड्युक्ताः ६२।४३ अनेन बाणाङ्कर्त्तवो ६९५ भक्ताः फलमंगुलाद्यं चन्द्रबिम्बम् ११।४ तिथिनाड्यः ५६।४३ दशहीनाः ४६।४३ अनेन दृग्दृक्त्रीन्दवो १३२२। भक्ताः फलमंगुलाद्या भूभा २८।१७ ।:३॥

केदारदत्तः

तिथिमान घटी में ६ जोड़ कर जो प्राप्त हो उससे ६९५ में भाग से अंगुलादिक चन्द्र

बिम्ब मान होता है। तथा तिथिमान घटी में १० कम कर उपलब्ध अंक से १३२२ में भाग देने से लब्धि का मान अंगुलादिक भूभा बिम्ब होता है ॥३॥

उपपत्तिः—मध्यम चन्द्र बिम्बमान १०।३१=चन्द्र बिम्ब। मध्यम भूभा बिम्ब २६।४० मध्यम तिथि भोग=५९।४। ग्रहों की गति और ग्रह बिम्बों के परस्पर के सम्बन्धों से। अतः स्पष्ट चन्द्र बिम्ब × स्पष्ट तिथि भोग = १०।४१ × ५९।४ यतः चन्द्र बिम्ब × ६ = ६०४।६

$$\text{चन्द्र बिम्ब} = \frac{\text{मध्यम बिम्ब} \times \text{मध्य तिथि घटी}}{\text{स्पष्ट तिथि घटी}} \quad \frac{\text{स्प० च० वि०}}{\text{चन्द्र वि०}} = \frac{\text{तिथि भो०}}{\text{स्प० तिथि भो०}}$$

अतः स्पष्ट वि० × स्पष्ट तिथि घटी = मध्य विम्ब × म० ति० घ० अतः स्प० बि० × स्प० ति० घ० + मध्य बि० × ६ = म० बि० × म० ति० घ० + मध्य बि० × ६ अतः स्पष्ट तिथि घटी + $\frac{\text{म०वि०} \times ६}{\text{स्प० बि०}} = \frac{\text{म०वि०(म०ति०घ०} + ६)}{\text{स्पष्ट बि०}}$

अतः स्पष्ट तिथि घटी + १ × ६ = $\frac{\text{म०वि०(म०ति०घ०} + ६)}{\text{स्पष्ट बिम्ब}}$ =(अ)। यदि $\frac{\text{म० बि०}}{\text{स्प०वि०}} = १$

तथा मध्यम चन्द्र बिम्ब आदि को समीकरण अ में उत्थापित करने पर स्पष्ट तिथि घटी + ६

$= \frac{(१०।४१)\ (६५।४)}{\text{स्प० चं० बि०}} = \frac{६९५}{\text{स्प०चं०बि०}}$ अतः स्प० चं० बि० = $\frac{६९५}{\text{स्प० ति० घ०} + ६}$ चन्द्र

बि० साधन उपपन्न होता है। पूर्व युक्तियों से स्पष्ट भूभा बिम्ब = $\frac{\text{म०ति०घ०} \times \text{म०भू०बि.}}{\text{स्प० ति० घ०}}$

∴ स्प० ति० घ० × स्प०भू०भा०बि० = म० ति० घ० × म०भूभावि० म० भूभा वि० × १०

को दोनों पक्षोंमें कम करने से स्प०ति०घ०−$\frac{\text{म० भू० बि०} \times १०}{\text{स्प० भूभा बि०}} = \frac{\text{म०भूभाबि०(म.ति.-१०)}}{\text{स्प० भूभा बि०}}$

= स्पष्ट तिथि घटी−१० = $\frac{२६।४० \times ४९।४}{\text{स्प०भूभा बि०}} = \frac{१३२२}{\text{स्प० भूभा वि०}}$ ∴ स्पष्ट भूभा विम्ब

$\frac{१३२२}{\text{स्प० ति० घटी} - १०}$ यतः मध्यम भूभा बिम्ब ÷ स्प० भूभा वि० = १ (स्वल्पान्तर से)

उपपन्न होता है ॥३॥

विदशोडुघटीहृताः खभूषड्व्यगुभास्वङ्कुजभागवर्जितास्ते ।
शितिकण्ठहतास्तुरङ्गभक्ताः स्थगितं चांगुलपूर्वकं विधोः स्यात् ॥४॥

मल्लारिः

अथ नक्षत्रघटीभ्यो ग्रासानयनमाह। विगता दश याभ्य एवंविधा उडुघट्यो नक्षत्रगतैष्यघटीयोगः। ताभिर्हृताः खभूषड् दशाधिकशतशतमितास्ते व्यगोर्विराहो-

भास्वतः सूर्यस्य ग्रे भुजभागास्तैरूनिताः कार्याः। ततः शितिकण्ठैरेकादशभिर्हता गुणितास्तुरंगैः सप्तभिर्भक्ताः। अंगुलपूर्वकं विधोः स्थगितं छन्नं प्रकारान्तरेण स्यादित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। मध्यमनक्षत्रघटीभिराभिः ६०।५२ भाज्यादि कृत्वा तिथिवदङ्का उत्पादनीयाः। सुगममिदम् ॥४॥

विश्वनाथः

अथ नक्षत्रघटिकाभ्यश्छन्नानयनमाह। विदशेति। नक्षत्रगतैष्यघटीयोगः ५८।३६ दशहीनः ४८।३६ अनेन खभूखड्-६१० भक्ताः फलमंशाद्यम् १२।३३।५ एते व्यग्वर्कस्य भुजांशै ७।४३।३४ र्वजिताः ४।४९।३१ एकादशभिर्गुणिताः ५३।४।४१ सप्त-भिर्भक्ताः फलमंगुलाद्यो ग्रासः ७।३४।

अथ भूभायाः संस्कारमाह 'रुद्रभूपनखभूपरुद्रखेर्व्यंगुलैर्विरहिता युता क्रमात्। षड्गृहे सति रवौ घटात् क्रियात् नाडिकोद्भवकुभा स्फुटा भवेत्' इति। रुद्रभूप इत्यादि-व्यंगुलैः ११।१६।२०।१६।११।० भूभा क्रमात् तुलादिषट्के विरहिता मेषादिषट्के युता कार्या सा नाडिकोद्भवकुभा स्फुटा भवेत्। सूर्यस्य वृषराशौ मेषादिषड्राशिमध्ये स्थितत्वात् षोडशव्यंगुलयुता स्पष्टा भूभा २८।३३ ॥४॥

केदारदत्तः

१० संख्या कम भभोग से ६१० में भाग देकर लब्धि संख्या में व्यगु के भुजांश को कम करने से जो शेष बचे उसे ११ से गुणा करने से गुणनफल में ७ का भाग देने से लब्ध फल के तुल्य चन्द्रमा का ग्रास मान होता है ॥४॥

उपपत्तिः—बिम्ब योगार्ध = १८।५६, मध्यममानीय भभोगः ६०।५२, अतः

$$\frac{\text{स्फुटमान योगार्ध}}{\text{मानयोगार्ध}} = \frac{\text{भभोग}}{\text{स्फुट भाभोग}}$$ अतः स्फुट भा० योगार्ध = $$\frac{\text{भभोग} \times \text{मान योगार्ध}}{\text{स्फुढ भभोग}}$$

$$= \frac{६०।५२ \times १८।५६}{\text{स्फुट भभोग}}$$ । तथा स्फुट मान योगार्ध × स्फुट भभोग = ६०।५२ × १८।५६ दोनों पक्षों में १८९।४० कम करने से स्फुटमाम योगार्ध × स्फुट भभोग − (१८९।४०) = (६०।५२ × १८।५६) − १८९।४० यतः १८९।४० = मानयोगार्ध × १० अतः, स्फुटमान योगार्ध × स्फुट भभोग − मान योगार्ध × १० = ६०५० × १८।५६ − (१८।५६) × १० स्वल्पान्तर से स्फुटमान योगार्ध = मानयोगार्ध अतः स्फुटमान योगार्ध × स्फुट भभोग − स्फुटमान योगार्ध × १० = स्फुटमान योगार्ध (स्फुट भभोग−१०) = ८।५६ (६०।५२ − १०) ∴ स्फुटमान योगार्ध

$$= \frac{१८।५६(६०।५२ - १०)}{\text{स्फुट भभोग} - १०} = \frac{(१८।५६)\ (५०।५२)}{\text{स्फुट भाभोग} - १०}$$ । अतः स्फुटमान योगार्ध =

$$\frac{१८।५६ \times ५०।५२}{\text{स्फुट भभोग} - १०}$$ ग्रासमान साधन वैपरीत्य से स्फुटमान योगार्ध भुजांश= $$\frac{\text{स्फु०मानयो०} \times ७}{११}$$

$$= \frac{(१८।५६ \times ५०।५२) \times ७}{(\text{स्फुट भभोग}-१०) \times ११} = \frac{६१०}{\text{स्फुट भभोग}-१०}$$ स्वल्पान्तर से। अनन्तर, 'तेंऽशाविघ्नाः

शकरैः शैलभक्ताः' से चन्द्र ग्रासमान $= \frac{६१०}{\text{स्फू० भभोग}-१०} - \text{व्यगु भु०} \times \frac{११}{७}$ उपपन्न

है ॥४॥

भगतागतनानाडिकैक्यभक्ता नववेदर्त्तव इन्दुबिम्बमुक्तम् ।
विमनूडुघटीहृताः शराक्षद्विभुवः स्यात् क्षितिभाऽगुलादिका वा ॥५॥

मल्लारिः

अथ नक्षत्रघटीभ्यश्चन्द्रविम्बभूभाविम्बे कथयति। भस्य नक्षत्रस्य यो गतागत-नाडीयोगो गतैष्यघटीयोगः। तेन भक्ता नववेदर्त्तव एकोनपञ्चाशदधिकषट्शतमिताः। यल्लब्धं तदंगुलाद्यं चन्द्रविम्बमुक्तम्। तथैव विगता मनवश्चतुर्दश याभ्यस्तास्तथा एवंविधा या उडुनाड्यो नक्षत्रघटिकास्ताभिर्हृताः शराक्षद्विभुवः पञ्चपञ्चाशदधिक-द्वादशशतमिताः। अंगुलमुखाक्षितिभा भूछाया स्यादिति।

अत्रोपपत्तिस्तिथिवत् सुगमा ॥५॥

विश्वनाथः

अथ चन्द्रविम्वभूभासाधनमाह मेति। नक्षत्रगतागतघटीयोगेन ५८।३६ नव-वेदर्त्तवो ६४९ भक्ताः फलमंगुलाद्यं चन्द्रविन्वम् ११।४ विमनू-१४ डुघट्यः ४४।३६ अनेन शराक्षद्विभुवो १२५५ भक्ताः फलमंगुलाद्या भूभा २८।८ षोडशव्यंगुयेर्युता जाता स्पष्टा २८।२४ अथ या विनृपो-१६ डुघट्यः ४२।३६। अनेन खखार्का १२०० भक्ता जाता भूभा २८।१० षोडशव्यंगुलैर्युता जाता स्पष्टा भूभा २८।२६ इति चन्द्रग्रहणम्।

अथ सूर्यग्रहणम्। शके १४३२ मार्गशीर्षकृष्णबुधे गतघटी-५१।५० एष्यघटी-१२।५९ योगः ६४।४९ मूलनक्षत्रस्य गतघटी १३।५४ एष्यघटी-५२।२ योगः ६५।५६ दिनमानम् २६।४ तिथ्यन्ते रविः ८।५।२६।२० राहुः २।११।४१।१८ विराह्वर्कः ५।२३। ४५।२ अमान्ते नतं पूर्वम् ०।३ अस्य चतुर्थांशो राश्यादिः ०।०।२२।३० अनेन पूर्वनतस्य विद्यमानत्वाद्रहितो रविः ८।५।३।५० अस्य क्रान्तिर्दक्षिण २३।४३।४० क्रान्त्यक्षज-संस्कारे जाता नतांशा दक्षिणाः ४९।१०।२२ अस्य षडंशः ८।११।४३ दक्षिणः। व्यगु-भुजभागा उत्तराः ६।१४।५८ षंडशेन संस्कारिता जाताः स्पष्टा व्यगुभुजभागाः १।५६।४५ ॥५॥

केदारदत्तः

नक्षत्र की गतगम्य घटी योग से ६४९ में भाग देकर लब्ध फल के तुल्य चन्द्र विम्ब का मान होता है। १४ से रहित भभोग का १२५५ में भाग देने से लब्ध फल के तुल्य अंगुलादिक भूभा का मान होता है ॥५॥

उपपत्ति—यदि चन्द्र विम्व = १०।४१, भूभा विम्व = २६।५५, भभोग = ६०।५२

पूर्व भुक्ति से स्फुट चन्द्र बिम्ब = $\frac{१०।४१ \times ६०।५२}{\text{स्फुट भभोग}} = \frac{६५०}{\text{स्फुट भभोग}} = \frac{६४९}{\text{स्फुट भभोग}}$

स्वाल्पान्तर से। इसी प्रकार स्फुट भू० विम्ब × स्फुट भभोग = भू० विम्ब × भभोग दोनों पक्षों में (२६।५५) × १४ को घटाने से स्फुट भू०विम्ब × स्फुट भभोग – (२६।५५) × १४=भू० विम्ब × भभोग—(२६।५५) × १४=(२६।५५) (६०।५२)–(२६।५५) × १४ अथवा स्फुट भू० विम्ब × स्फुट भभोग–भूभा विम्ब × १४=२६।५५(६०।५२–१४।०) यतः स्फुट भूभा विम्ब=भू० विम्ब स्वल्पान्तर से। अतः स्फुट भूभा ग्रिम्ब (स्फुट भभोग - १४)

=(२६।५५)(४६।५२) स्फुट भू० विम्ब = $\frac{(२६।५५)\ ४६।५२)}{\text{स्फुट भभोग}-१४} = \frac{१२६१}{\text{स्फुट भभोग}-१४}$

= $\frac{१२५५}{\text{स्फुट भभोग}-१४}$ — स्वल्पान्तर से स्फुट भूभा विम्ब उपपन्न ॥५॥

खात्यष्टयस्तिथिघटीविहृताः सवेदा
वाऽथोडुनाडिहृतदेवयमाः सरामाः।
हीना व्यगुस्फुटलवैर्भवसंगुणास्ते
शैलोद्धृताः खररुचः स्थगितांगुलानि ॥६॥

मल्लारिः

अथ सूर्यग्रहणे ग्रासं साधयति। सप्तत्यधिकशतमितास्तिथिघटीहृतास्ततस्ते सवेदाश्चतुर्भिर्युताः ते व्यगस्फुटलवैरमान्तनतनाडिकांघ्रिरहितायुतादित्यादिना कृतैर्हीनास्ततो भवगुणा एकादशगुणाः शैलैः सप्तभिर्हृताः खररुचः सूर्यस्य स्थगितांगुलानि ग्रासांगुलानि स्युः अथ वा उडुनाडीभिर्नक्षत्रघटीभिर्हृता देवयमास्त्रयस्त्रिंशदधिकशतद्वयमितास्ते सरामास्त्रियुक्तास्ततो व्यगुस्फुटभुजभागहीनास्ते एकादशगुणाः सप्तभक्ता ग्रासः स्यादित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। अत्र सूर्यस्येदं मध्यमं मानैक्यखण्डं १०।४७ सप्तगुणमेकादशभक्तं जाता भागाः ६।५२ एभ्यः सुखार्थं चत्वारस्त्यक्ताः शेषम् २।५२ इदं मध्यतिथिघटीगुणितं जातो भाज्यः १७०। अतः खात्यष्टयस्तिथिघटीविहृतः सवेदा इत्युपपन्नम्। तथैवेभ्यो भागेभ्यस्त्रीन् त्यक्त्वा शेषं मध्यनक्षत्रघटीभिः ६०।४२ गुणितं जातो भाज्यः २३३। अतो नक्षत्रघटीभक्तदेवयमाः सरामा इति। एवं जातो मानैक्यखण्डोत्थभागो व्यगुभुजांशहीनः। शेषेंऽगुलकरणार्थं भवगुणे शैलभक्ते ग्रासः स्यादिति सुगमम् ॥६॥

विश्वनाथः

अथ तिथिवदृक्षघटीभ्यो रवेश्छन्नानयनमाह खात्यष्टेति। तिथिघट्यः ६४।४९ आभिः खात्यष्टयो १७० भक्ताः फलमंशाद्यम् २।३७।२२ चतुर्युक्ताः ६।३७।२२ व्यगु

स्फुटलवैहीनाः ४।४०।३७ भव-११ संगुणाः ५१।२६।४७ शैलोद्धृताः फलं सूर्यस्य छन्नमंगुलाद्यम् ७।२०।५८ नक्षत्रघटीभिः ६५।५६ देवयमा २३३ भक्ताः फलमंशाद्यम् ३।३२।१ त्रिभिर्युक्ताः ६।३१।१ व्यगुस्फुटलवैर्हीनाः ४।३६।१६ भवगुणाः ५०।२७।५६ सप्तभिर्भक्ताः प्रकारान्तरेण जातो ग्रासः ७।१२ ॥६॥

केदारदत्तः

तिथि भभोग घटी में १७० से भाग देकर लब्धि में ४ जोड़ कर अथवा नक्षत्र भभोग घटी से भाजित २३३ में ३ जोड़ने से जो प्राप्त हो उसमें व्यगु के स्पष्ट भुजांशों को घटाने से शेष को ११ से गुणा कर ७ से भाग देने से अंगुलादिक लब्धि का मान सूर्यग्रहण में ग्रास होता है ॥६॥

उपपत्तिः—मध्यम मानीय कल्पना से मध्यम तिथि भोग घटी=५९।४ में मध्यम मानैक्य खण्ड = १०।४७ तो स्पष्ट तिथि भोग में स्पष्ट मानैक्य खण्ड $\frac{\text{म० तिथि} \times १०।४७}{\text{स्पष्ट तिथि}}$

इन्हे ७ से गुणा कर ११ से भाग देने से स्पष्ट मानैक्य खण्ड सम्बन्धी भुजांश =

$= \frac{\text{म० तिथि} \times (६।५२}{\text{स्पष्प तिथि}} = \frac{\text{म० ति०} \times ४}{\text{स्पष्ट तिथि}} + \frac{\text{म० ति०} \times २।५२}{\text{स्पष्ट तिथि}} = ४ + \frac{१७०}{\text{स्प० ति०}}$ (स्वल्पान्तर से) यदि मध्यम नक्षत्र घटी = ६०।४२ से पूर्व युक्ति से स्पष्ट मानैक्य खण्ड सम्बन्धी

भुजांश $= \frac{(\text{म० भभोग} \times १०।४७) \times ७}{\text{स्पष्ट भभोग} \times ११} = \frac{\text{म० भभोग } (६।५२)}{\text{स्प० भ०}} = \frac{३ \times \text{म० भ०}}{\text{स्प० भ०}}$

$+ \frac{(६०।४२)\ (३।५२)}{\text{स्प० भभोग}} = ३ + \frac{२२३}{\text{स्प० भभोग}}$ उपपन्न हुआ ॥६॥

रविलवयुतभानोर्दोर्लवत्र्यंशतुल्यै-
र्विरसलवमहेशा व्यंगुलैर्हीनयुक्ताः ।
अजघटरसभेऽर्के बिम्बमस्यांगुलाद्यं
स्थितिमुखमवशिष्टं पूर्ववत् शेषमत्र ॥७॥

मल्लारिः

अथ सूर्यविम्बसाधनमेकवृत्तेनाह । रविलवयुतभानोरिति । रविलवैर्द्वादशभागैर्युतो यो भानुस्तस्य ये दोर्लवा भुजभागास्तेषां यस्त्र्यंशस्तत्तुल्यानि यानि व्यंगुलानि तैर्विरसलवा विगतषडंशा महेशाः १०।५० हीनयुक्ताः कार्याः । कदेत्याह । अर्के सूर्ये अजघटरसमे सति । मेषादिषड्भे हीनास्तुलादिषड्भे युक्तास्तदाऽस्य सूर्यस्यांगुलाद्यं

बिम्बं भवति। अत्र स्थितिमर्दस्पर्शकालादिकं यदवशिष्टमुक्तादुर्वरितं तदत्र पूर्ववत् ग्रहणोक्तवज्ज्ञेयमित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। रविविम्बं मध्यममिदम् १०।५० इदं मध्यमगतिवशात् स्पष्ट गतेः साध्यम्। मध्यमस्पष्टगत्योरन्तरं गतिफलम्। तत् सूर्यमन्दकेन्द्रकोटिवशात्। अतो मन्दकेन्द्रं कार्यम्। तद्यथा रवेर्मृदूच्चं राशिद्वयमष्टादशभागाधिकम् २।१८।०।० ततो रविः शोध्यः केन्द्रं स्यात्। अस्माद्रविः शोध्यस्तस्य भुजस्त्रिभागाच्छोध्यः कोटिः स्यादित्यत्र द्वादशभागयुक्तसूर्यस्य भुजोहि मन्दकेन्द्रकोटिर्भवतीति सिद्धम्। तस्य सत्रिभस्यभुज एव कोटिः। अतस्त्रिभस्य ३। सूर्योच्चस्यान्तरं द्वादशभागास्ते रवौ योज्यास्ततो भुज कार्य इति सिद्धम्। अत्र मध्यमस्पष्टसूर्यंबिम्बान्तरमिदं परम ०।३० मंगुलाद्यम्। इदं परमाणां नवत्यंशानां त्र्यंशगुण्यम्। अतो द्वादशभागयुक्त-सूर्यभुजभागत्र्यंशतुल्यम्। ततो द्वादश भागयुक्तसूर्यभुजाभागत्र्यंशतुल्यव्यंगुलहीन युक्तं मध्यविम्बं स्पष्टं भवतीति। मेषादौ रवौ सति केन्द्रं मकरादौ भवति तत्र गतिफलम् ऋणमतो मेषादो हीनः। तुलादौ रवौ केन्द्रं कर्क्यादौ तत्र गति फलं धनमतस्तुलादौ युक्ताः कार्या इत्युपपन्नम् ॥७॥

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारि समाह्वयेन। वृतौ कृतायां ग्रहलाघवस्य पञ्चागतः पर्वयुगं समाप्तम्।

इति श्री गणेशदैवज्ञकृत ग्रहलाघवस्य टीकायां मल्लारिदैवज्ञविरचितायां तिथिपत्रादेव ग्रहणद्वयसाधनाधिकारोऽष्टमः ॥८॥

विश्वनाथः

अथ सूर्यविम्बानयनमाह रविलवेति। रविः ८।५।२६।२० द्वादशभागैर्युक्तः ८।१७।२६।२० अस्य भुजांशाः ७७।२६।२० एषां त्र्यंशो व्यंगुलात्मकः २५। सूर्यस्य तुलादिषड्राशिस्थत्वादेतै २५६ र्व्यंगुलै-२५ विरसलवमहेशाः १०।५० युक्ता जातं सूर्यविम्बम् ११।१६ एवं छन्नाद्यं ज्ञात्वा स्थितिमुखं यदत्रशिष्टं तत् पूर्ववज्ज्ञेयम् ॥७॥

इति ग्रहलाघवोदाहरण पञ्चाङ्गाद्ग्रहणाद्वयसाधनम् ॥

केदारदत्तः

मेषादिक ६ राशि सूर्य में १२ अंश जोड़ने से जो हो उसके भुजांश के तृतीयांश तुल्य व्यंगुल को षष्ठांशोन ११ अर्थात् (११५०) से घटाने से, तुलादि सूर्य में जोड़ देने से अंगुलादिक रवि विम्ब होता है ॥७॥

उपपत्ति—सूर्य मन्दोच्च = ७८ = २ राशि १८ अंश। मन्दोच्च—सूर्य = सूर्य का मन्द केन्द्र। कोटि=९०—७८°—सूर्य। १२ + सूर्य। कोटि के भुजांश = भुजांश। 'केन्द्रस्य कोटि लव खाद्विलव' से सूर्य गति फल = $\frac{\text{भुजांश} \times ११}{१३ \times २०} - \frac{\text{भुजांश}^2}{५२००}$ अतः कर्कादि केन्द्र में सूर्य

स्पष्टा गति सूर्य मध्यम $\pm \frac{\text{भुजांश} \times ११ - \text{भुजांश}}{१३ \times २०} = \frac{\text{भुजांश}}{५२००}$ अतः भानोर्गतिः स्वदशभाग-

युताधिता से, अंगुलादिक सूर्य विम्ब $= \left(\text{सूर्य म० ग०} \pm \frac{\text{भुजांश} \times ११}{२६०} - \frac{\text{भुजांश}}{५२००} \right)$

$\times \frac{११}{२० \times ३} = \frac{(५९'।८'')११}{२० \times ३} \pm \frac{१२१ \times \text{भुजांश}}{२६० \times ६०} - \frac{११ \times \text{भुजांश}^२}{५२०० \times ६०} = १०'।५०'' \pm$

$\frac{१२१ \times \text{भुजांश}}{२६०}$ स्वल्पान्तर से । $= १०'।५०'' + १०'' - १०'' + \frac{\text{भुजांश}}{\frac{२६०}{२११}} = १०'।६०'' -$

$१०'' \pm \frac{\text{भुजांश}}{३}$ स्वल्पान्तर से । $= ११' - १०'' \pm \frac{\text{भुजांश}}{३} = ११' - \frac{१०}{६०} \pm \frac{\text{भुजांश}}{३} =$

$११ - \frac{१}{६} \pm \frac{\text{भुजांश}}{३}$ । अथ अनन्तर बिम्ब ज्ञान से ग्रासादिक ज्ञान सुगम है ॥७॥

गर्गगोत्रीय स्वनामधन्य, कूर्माञ्चलीय ज्योतिर्विद्वर्य श्री पं० हरिदत्त जी के
आत्मज-अल्मोड़ामण्डलीय जुनायल ग्रामजपर्वतीय काशीस्थ (नलगाँव)
श्री केदारदत्त जोशी कृत ग्रहलाघव ग्रहणद्वयसाधनाधिकार की
उपपत्ति सहित सोदाहरण व्याख्या सम्पूर्ण ॥

अथोदयास्ताधिकारः

साकांशाविह कुरु पक्षतिक्षयेऽर्कव्यग्वकौ चरमथ केवलाद्व्यगोर्यत् ।
षड्बाणैर्विहृतमिदं क्रमाल्लवाद्यं स्वर्णं स्याद्व्यगुरविगोलयोः पृथक् तत् ।।१।।

मल्लारिः

अथोदयास्ताधिकारो व्याख्यायते तत्रादौ शुक्लप्रतिपदि चन्द्रदर्शनं भविष्यति न वेत्युच्यते वृत्तत्रयेण । इह पक्षतेः प्रतिपदः क्षयेऽन्ते अर्कव्यग्वकौं सुर्यविराह्वर्कौ सार्कांशो द्वादशभागयुक्तौ कुरु । अथ केवलात् । अदत्तायनांशाद्व्यगोश्चरं साध्यम् । तत् षड्वाणैः षट्पञ्चाशता विहृतं भक्तं सल्लवाद्यं फलं ग्राह्यं तत् स्वर्णं धनर्णं स्यात् । कदेत्याह । व्यगु रवेर्विराह्वर्कस्य यौ गोलौ तद्वशात् । उत्तरगोले धनम् । दक्षिणगोले ऋणमिति । तत्फलं पृथक् । एकान्ते स्थापयेत् ।।१।।

विश्वनाथः

अथोदयास्ताधिकारोदाहरणम् । तत्र तावत् शुक्लप्रतिपदि चन्द्रोदयज्ञानं त्रिभिः श्लोकैराह साकांशाविति । शके १५३२ माघशुक्ल–१ शनौ घटी ७ । श्रवणनक्षत्रं घटी २८।२५ । सिद्धियोग घटी ४०।८ चक्रम् ८ । अहर्गणः १०३६ । प्रातर्मध्यमो रविः ९।६।१२।३८ चन्द्रः ९।१९।३८।३३ उच्चम् ८।२०।५४।२८ राहुः २।१०।३।२५ पञ्चाङ्ग-स्थतिथिघटीभि-७ श्चालिताः । रविः ९।६।१९।३१ चन्द्रः ९।२१।१०।४७ उच्चम् ८। २०।५५।१४ राहुः २।१०।३।३ खेर्मन्दकेन्द्रम् ५।११।४०।२९ मन्दफलं धनम् ०।४१।२७ संस्कृतो रविः ९।७।०।५८ अयनांशां १८।८ चरं धनम् १०६ । चरसंस्कृतो जातः स्पष्टोऽर्कः ९।७।२।४४ स्पष्टा गतिः ६१।१० । फलत्रयसंस्कृतश्चन्द्रः ९।२१।२५।१२ मन्दकेन्द्रम् १०।९।३०।२ मन्दफलमृणम् २।३३।० संस्कृतः स्पष्टश्चन्द्रः ९।१८।५२।१२ स्पष्टा गतिः ७३५।१ आभ्यां तिथि-१ घटी ०।५६ आभिः पञ्चाङ्गस्थ घटिका ७ युक्ता जातः प्रतिपदन्तः ७।५६ आभिर्घटीभि-०।५६ श्चालितौ जातौ तिथ्यन्तकालीनौ रवि-९।७।३।४१ राहू २।१०।३।१ विराह्वर्कः ६।२७।०।४० अर्कव्यग्वकौं द्वादशभागैः रहितौ रविः ६।१९।३।४१ विराह्वर्कः ७।९।०।४० इह पक्षते प्रतिपदः क्षयेऽन्ते तात्कालिकार्कव्यग्वकौं सार्कांशौ कुरु । अथ केवलाद्व्यगोर्यच्चरम् । व्यगुः ७।९।०।४० अस्माच्चरं ७० षड्बाणै- ५६ भक्तं फलं १।१५।० व्यगोर्दक्षणगोलस्थत्वादृणम् इदमेकं फलम् ।।१।।

केदारदत्तः

शुक्ल पक्षादि प्रतिपदान्त तिथि में पश्चिम क्षितिज में चन्द्र दर्शन की सम्भवासम्भवता का गणित से विचार किया जा रहा है । प्रतिपदा तिथि की समाप्ति समय में सूर्य और विरा-

ह्वर्क दोनों में १२ अंश (अयनांश सम्बन्ध रहित) जोड़ कर, तथा विराह्वर्क से चर साधन कर लब्ध फल में ५६ का भाग देकर लब्ध फल को व्यगु की उत्तर दक्षिण गोल की स्थिति-वश क्रमशः फल को क्रमशः धन या ऋण समझना चाहिए। इसका नाम प्रथम फल समझिए ॥१॥

उपपत्तिः—प्रतिपदान्त में रवि=र, व्यग्वर्क=व्य। १२ अंश के तुल्य अन्तर में पतिपद समाप्ति में स्पस्ट चन्द्र = र + १२ तथा सपात चन्द्र = व्य + १२° (राहुश्चक्र शुद्ध है) अतः यहाँ पर रवि द्वादश अंशाधिक रवि, रवि से द्वादश अंशाधिक व्यगु को कल्पना समुचित होगी।

प्रतिपद के अन्त में क्षितिज के ऊपर के चन्द्र बिम्ब को स्थिर मानकर भगोल का भ्रमण कराकर उसे अस्त क्षितिज में स्थापित कर तब आयन और आक्ष दृक्कर्म गणितों का साधन करना चाहिए।

लघु ज्या से व्यगु भुज ज्या = ज्या व्य। अतः कलात्मक चन्द्र शर= $\frac{२७० \times ज्या व्य}{१२०}$

$= \frac{९ \times ज्या व्य}{४}$ । यष्टि= $\frac{प० द्यु \times त्रि}{द्यु०}$ ।

अतः श्री भास्कराचार्य के 'यष्ट्याद्युचरविशिखस्ताडितः' प्रकार से स्पष्ट शर कला

$= \frac{९ \times ज्या व्य \times प०द्यु}{४ \times द्यु}$, पुनः श्री मद्भास्कराचार्य के सिद्धान्त से आक्ष दृक्कर्म असु =

$\frac{९ ज्या व्य \times पद्यु \times वि \times त्रि}{४ द्यु \times १२ \times द्यु} = \frac{९ त्रिज्या \times ज्या व्य \times वि \times त्रि० पद्यु \times त्रि}{जिन ज्या \times ४ \times त्रि \times द्यु \times १२ \times द्यु}$ ।

व्यगु की क्रां ज्या को विषुवती से गुणा कर १२ से भाग देकर उसकी कुज्या, पुनः कुज्या को द्यु से भक्त त्रिज्या से गुणित करने से व्यगु चर ज्या = $\frac{२१ \times च}{१० \times १०}$ यहाँ पर आचार्य ने स्यात् सायनोष्णाशु से चर पल साधन किया है। उत्थापन से—

$\frac{९ ज्याच \times पद्यु \times त्रि}{४ जिन ज्या \times द्यु}$ यहाँ ६० से भाग देने से, आक्ष दृक्कर्मांश = $\frac{९ \times ज्याच \times पद्यु \times त्रि}{६० \times ४ \times जिनज्या \times द्यु}$

$= \frac{९ \times २१च \times ११० \times १२०}{१०० \times ६० \times ४(४९-\frac{१}{४}) \times द्यु} = \frac{९ \times २१ \times च \times ११०}{१०० \times २(४९-\frac{१}{४}) द्यु} = \frac{९ \times २१च० \times ११०}{१०० \times २(४८'।४५'')द्यु}$

$= \frac{२१ \times च० \times ११}{१० \times २(५'।२५'')द्यु}$ लघु ज्या प्रकार से स्वल्पान्तर से सभी द्युज्या=मिथुनाना द्युज्या।

अतः हर की जगह जहाँ द्युज्या है उसका मान = १२० माना है। अतः आक्षदृक्कर्म

असु = $\frac{२१ च \times ११}{२०(५'।२५'') \times १२०} = \frac{७ \times ११ \times च}{२० \times ४०(५'।२५'')}$

$$= \frac{\text{७७} \times \text{च}}{\text{८००}\left(\text{५}\frac{\text{२५}}{\text{६०}}\right)} = \frac{\text{७७} \times \text{च}}{\text{४०००} + \frac{\text{२५} \times \text{८००}}{\text{६०}}} = \frac{\text{७७} \times \text{च}}{\text{४०००} + \frac{\text{१०००}}{\text{३}}} = \frac{\text{७७} \times \text{च}}{\text{४०००} + \text{३३३}\frac{\text{१}}{\text{३}}}$$

$= \frac{\text{७७} \times \text{च}}{\text{४३३३}\frac{\text{१}}{\text{३}}} = \frac{\text{च}}{\text{५६} + \frac{\text{२१}}{\text{७७}} + \frac{\text{१}}{\text{७७} \times \text{३}}}$ 'अर्घाल्पं त्याज्यं' इस नियम से $= \frac{\text{च}}{\text{५६}}$ । इस प्रकार से आक्षज दृक्कर्मानयन गणित उपपन्न होता है ॥१॥

त्रिभायनलवान्वितारुणचराहतं द्व्यक्षभा-
हतेः कृतिहृतं धनर्णमसमैकगोले व्यगोः ।
खखानलविशेषितः सरसभायनार्कोदयः
शरद्विकहृतो धनाघनमनल्पकाल्पोदये ॥२॥

द्युमितिप्रतिपदुगमान्तरं यच्छरभक्तं स्वमृणं दिनेऽधिकोने ।
धनमत्र चतुष्कसंस्कृतिश्चेत् तपनास्ते विधुरीक्ष्यतेऽन्यथा न ॥३॥

मल्लारिः

त्रिभेण राशित्रयेण । अयनलवैरयनांशैः अन्वितो युक्तो योऽरुणाः सूर्यस्तस्य यच्चरं तेन पृथक्स्थं फलमाहतं गुणितम् । ततो द्व्यक्षभाहतेर्द्विगुणितपलभायाः कृत्या वर्गेण हृतं तत् द्वितीयं फलमेकान्ते स्थाप्यम् । तद्व्यगोरसमैकगोले धनर्णं स्यात् । रविव्यगू यदि भिन्नगोले तदा धनम् । एकगोले तदा ऋणमिति । अथ सरसभायनार्कोदयः षट्राश्ययनांशयुक्तार्कोदयः खखानलविशेषितः शतत्रयान्तरितः सन् शरद्विकैः पञ्चविंशत्या हृतः फलमनल्पकाल्पेऽर्कोदये सति धनाधनं स्यात् । शतत्रयात् उदये अधिके धनमूने ऋणम् । इदं तृतीयमप्येकान्ते स्थाप्यम् ।

अथ चतुर्थं फलं साधयति । द्युमितिर्दिनमानम् । प्रतिपद्गमः प्रतिपदन्तः । अनयोर्यदन्तरं तत् शरभक्तं फलं दिनेऽधिकोने स्वमृणं स्यात् । दिनमाने तिथेरधिके धनमूने ऋणमिति चतुर्थं फलं भवति । अत्र चतुष्कसंस्कृतिः फलचतुष्टयसंस्कारश्चेद्धनं तदा तपनस्य सूर्यस्यास्ते विधुश्चन्द्र ईक्ष्यते दृश्यते । अन्यथा फलसंस्कारे ऋणे सति न दृश्यत इति भावः । संस्कारस्तु धनयोर्योगः । ऋणयोरपि योगः धनर्णयोरन्तरमिति प्रसिद्धः ।

अत्रोपपत्तिः । चन्द्रस्य कालांशा द्वादश यदा स्युस्तदा चन्द्रोदयः । चेदल्पस्तदा नेति । अतश्चन्द्रे दृक्कर्मादि दत्त्वा कालांशाः साध्याः । तत्राचार्येण लाघवार्थं शिष्यक्लेशभयार्थं फलानि साधितानि तेषां योगो यदा धनं तदा कालांशा द्वादशाधिकाः । अत उदयो भविष्यत्येव । यदा ऋणं तदा कालांशा द्वादशकाल्पा अतो न दर्शनम् । सूर्यचन्द्रान्तरं प्रतिपदन्ते द्वादशभागास्ते तु क्षेत्रांशा नित्यांशा नित्या

एव। कालांशा देशविशेषेण कालवशेन शराद्यन्तरवशेन चान्तरिता भवन्ति। तत्र प्रतिपदन्ते चन्द्रः कार्यः। अतो रविः सार्कांशश्चन्द्रो जातः। तथा शरार्थं व्यगुचन्द्रः कार्यः। अतो व्यगुरविरेव सार्काशो व्यगुः चन्द्रः स्यात्। अतः सार्कांशाविद्युपपन्नम्। अथाक्षं दृक्कर्म साध्यम्। तत्रादौ व्यगौ शरः साध्यः। ततो द्वादशकोटौ पलभा भुजस्तदा शरकोटौ क इति। जातं दृक्कर्म। तत्र लाघवार्थं प्रतिराशित्रयमध्ये शराः साधिताः। ते यथा १३५।२३४।२७० एते द्वादशभक्ता जाताः ११।१९। (२२।३०)। एषां पलभा गुणोऽस्ति। एते एकांगुलपलभोत्थचरखण्डैरेभिरासन्नाः सन्ति १०।१८। (२१।२०) एतानि चरखण्डानि यावत् पलभया गुण्यन्ते तावत् स्वदेशीयान्येव भवन्ति। तैश्चरखण्डकैर्व्यगोः साधितं यच्चरं तत्पलभागुणितं शरासन्नं स्यादेव द्वादशभिस्तु पूर्वमेव भक्तमस्ति। अतो व्यगोश्चरदृक्कर्मकलाः। तासां भागकरणार्थं षष्टिर्हरः ६०। परमिदं सान्तरं तदनन्तरं साध्यते यद्यनेन परमचरखण्डकेन २१।२० एताः परमदृक्कर्मखण्डकलाः २२।३० तदेष्टेन चरेण का इति एवं हरघातो हरः १२८०। गुणहरौ गुणेनापवर्त्य जातो हरः ५६। अतो व्यगोश्चरं षड्बाणैर्हृतं भागाद्यमाक्षं दृक्कर्म भवतीत्युपपन्नम्। धनर्णोपपत्तिः। उत्तरगोले ग्रहः क्षितिजादुन्नाम्यते अतस्तदुदयः पूर्वमेव। अतस्तत्र धनम्। दक्षिणे नाम्यतेऽतस्तदुदयः पश्चात्। अतस्तत्र ऋणमेकं फलम्। अथायनदृक्कर्म साधयति। त्रिज्याकर्णे आयनवलनज्या भुजस्तदा शरकर्णे क इति। द्युज्यावृत्ते इदं तदा त्रिज्यावृत्ते किं त्रिज्ययोस्तुल्यत्वान्नाशे कृते द्युज्याहरः शरा गुणः। तत्र सायनसत्रिभग्रहक्रान्तिरेवायनवलनम् ११।२०। २४ एतदप्येकांगुलपलभोत्थचरार्धासन्नम्। भागार्थं षष्ट्या भाज्यस् ६०। यदाऽस्य १० इदं बलनम् ११।४३ तदयकस्ट्टामिति। हरघातो हरः ६००। मध्यस्थद्युज्या ११२।३० इयमपि हरः। अतो हरघातो जातो हरः ६७५००। जीवाथ द्वौ २ गुणः। पूर्वगुणश्च ११।४३ एवं सत्रिभायनार्कस्यैकांगुलपलभोत्थचरं ग्राह्यम्। तदिष्टपलभावशेन गृहीतम् अतस्तस्याक्षभाऽपि हरः शरो गुणोऽस्ति तदर्थं शरः साध्यः। तदाऽऽक्षदृक्कर्मतो विलोमेन शरः। तत षष्टिद्वादशघात-७२० गुणं पलभाभक्तं शरः स्यात्। उभयोर्घाते पलभावर्गो हरः। अयं च हरः ६७५००। सत्रिभायनार्कचराक्षदृक्कर्मघातस्य गुणघातो गुणः १६८७२। गुणहरौ गुणेनापवर्त्य जातो हरः ४। चतुर्भिः पलभावर्गोऽपि हरः एवं हरघातो द्व्यक्षभाहतेः कृतिर्हरः। रूपगुणस्याविकृतान्नाशः। धनर्णोपपत्तिः प्रत्यक्षं गोले दृश्यते। इदं द्वितीयफलम्। अथ क्षेत्रांशाकालांशान्तरं साध्यम्। तत्र राशिकलोदयास्वन्तरं कार्यम्। अत्रोदयपलान्यतो राशिकलाः षड्भक्ताः ३०० एतदन्तरं तत्र सूर्यास्ते चन्द्रोदयोऽतः सूर्यः सषड्भायनः कार्यः। तदुदयः खखानल विशेषितः कलास्वन्तरस्य त्रिंशदंशैरिदमन्तरं तदा द्वादशभिः क्षेत्रांशैः किमिति हरः ३०। गुणः १२। षष्टिभक्तं घटिकाः। ताः षड्घ्नो भागाः। एवं हरघातो हरः १८६। गुणघातो गुणः ७२। गुणहरौ गुणेनापवर्त्य हरः २५। अतः शरद्विकहृत इति। धनर्णोपपत्तिः शतत्रयादधिके उदयकलाभ्यः असवोऽधिकाः ततस्तत्र धनमूने ऋणमिति

इदं तृतीयं फलम् । प्रतिपदन्ते सूर्यास्ते चन्द्रोदयः । अतो द्युमानतुल्ये प्रतिपदन्ते चन्द्रोदयः । ऊनाधिकात् फलं साध्यते । षष्टिघटिकाभिर्द्वादशभागास्तदेष्टदिनमानप्रतिपदन्तरघटीभिः किमिति गुणहरौ गुणेनापवर्त्य हरः ५ । अतः शरभक्तमिति धनर्णोपपत्तिः । प्रतिपदधिके दिने चन्द्रोदयः स्यादेव अतस्तत्र धनम् । ऊने ऋणमित्यर्थत एव सिद्धम् । एवं चतुर्णां फलानां संस्कारे धनभूते कालांशा द्वादशाधिकाः स्युः । तदा तत्र चन्द्रोदयः स्यादित्युपपन्नम् । अन्यथा नैवेति । अथ झटिति सभायां गुरुशुक्रोदयास्तज्ञानं यथा भवति तथोच्यते ॥२–३॥

विश्वनाथः

अथ द्वितीयं फलम् । इद पृथक्स्थम् १।१५।० त्रिभायनेति । राशित्रयेण अयनलवैरयनांशैर्युक्तोऽरुणः सूर्यः १।७।११।४१ अस्माच्चरम् ६८ । अनेन पृथक्स्थम् १।१५।० गुणितम् ८५।०।० अक्षभा ५।४५ द्विगुणिता ११।३० अस्याः कृतिः १३२।१५ अनयपृथक्स्थां गुणितं भक्तं फलम् ०।३८।३३ व्यगोः सकाशात् त्रिभायना लवान्वितसूर्यस्य भिन्नगोलत्वाद्धनम् । अथ तृतीयं फलम् । सरसायनांशयुक्तोऽर्कः ४।७।११।४१ अस्योदयः ३४५ । खखानल-३०० विशेषितः ४५ । शरद्विक-२५ हृतः फलम् १।४८।० खखानलेभ्यः सरसभायनार्कोदयस्याधिकत्वाद्धनम् । अथ चतुर्थं फलम् । द्युमितीति । द्युमितिः २६।२८ प्रतिपदन्तः ७।५६ अनयोरन्तरम् १८।३२ शरभक्तं फलम् ३।४२।१४ दिनमानस्य प्रतिपदन्तापेक्षयाऽधिकत्वाद्धनम् । तेषां चतुर्णां फलानां संस्कृतिः । धनयोर्योगः ऋणयोर्योगः । धनर्णयोन्तरमिति । फलचतुष्कसंस्कृतिर्धनम् ४।५३।५७ अतस्तपनास्ते चन्द्रो दृश्यः । अथ वा चतुर्णां फलानामृणसंस्कारेणादृश्य इति चन्द्रदर्शनम् ॥२–३॥

केदारदत्तः

सत्रिभसायन रवि और चर के गुणन फल में द्विगुणित पलभा वर्ग का भाग देने से जो फल रवि और व्यगु की भिन्न और एक दिशा के क्रम से इसे धन और ऋण समझ कर, २०० और सषडभ सायन रवि के अन्तर में २५ से भाग देने से, वह यदि अपने उदयमान से अधिक और कम होने से इसे क्रमशः धन और ऋण समझ कर रखिए ।

दिनमान और प्रतिपदान्त कालीन इष्ट समयों के अन्तर में ५ का भाग देकर लब्ध फल को, दिनमान के अधिक और न्यून की स्थिति में इस फल को भी क्रमशः धन और ऋण समझ कर उक्त चारों फलों का संस्कार यदि धनावशेष हो तो उस दिन पश्चिम क्षितिज में चन्द्र दर्शन सम्भव अन्यथा ऋणावशेष में चन्द्र का दर्शन असम्भव होता है ॥२–३॥

उपपत्तिः—पूर्व साधित अक्ष दृक्कर्म$=\frac{\text{च}}{५६}=$ फ । तथा अयन सत्रिभ चन्द्र क्रान्ति = क्रां १, इसकी द्युज्या=द्यु १, चन्द्र द्युज्या = द्यु । चन्द्रमा का कलात्मक मध्यम शर =श । 'सत्रिराशिद्युज्यानिघ्नस्त्रिज्याप्त' श्री भास्कर के अनुसार कलात्मक स्पष्ट शर =

$\frac{श \times द्यु_{\circ} १}{त्रि}$ । इसे पलभा गुणित १२ भक्त, तथा त्रिज्या गुणित चन्द्र द्युज्या से भाग देने से

अक्षज दृक्कर्मांश $= \frac{च०}{५६} = \frac{वि \times द्यु १ \times श \times त्रि}{१२ \times त्रि \times द्यु \times ६०}$ = फ। समच्छेदादि से श =

$\frac{फ \times १२ \times त्रि \times द्यु \times ६०}{वि \times द्यु १ \times त्रि}$ । चन्द्रमा की अयनवलन ज्या $= \frac{ज्या क्रां १ \times त्रि}{द्यु}$, यष्टि =

$\frac{पद्यु \times त्रि}{द्यु}$ ततः स्पष्टेन्दु वलनाहृतिस्तु वा, श्री भास्कर के सिद्धान्त से आयन कलाओं में ६०

से भाग देने से आयन दृक्कर्मांश $= \frac{श \times ज्या आ०व}{६० \times य}$

$= \frac{फ \times १२ \times त्रि० द्यु \times ६० \times ज्या क्रां १ त्रि० द्यु}{वि० द्यु १ \times त्रि० द्यु पद्यु० त्रि० ६०} = \frac{फ १२ त्रि० ज्या क्रां १ द्यु}{वि० त्रि० द्यु० पद्यु}$

$= \frac{फ. १२^{२} त्रि. वि. ज्या क्रां.१ द्यु.}{वि^{२}. १२०. द्यु १. १२ पद्यु.}$ यदि सायन त्रिभ चन्द्रमा का पलात्मक चर $= च_{१}$ तो—

$\frac{त्रि. वि. ज्या क्रां. १}{द्यु १. १२} = ज्या च_{१} = \frac{२१ च_{१}}{१००}$, इसके उत्थापन से आयन दृक्कर्म के

अंश $= \frac{१२^{२}. फ. द्यु. २१. च १}{१०^{२}.वि^{२}. १२०, पद्यु} = \frac{१२. २१ च. फ.द्यु.}{१०० \times १० वि^{२}.पद्यु} = \frac{३. २१ च १ फ. द्यु.}{२५०.वि^{२}. प.द्यु}$

$= \frac{६३. च १. फ.द्यु.}{२५० वि^{२}.प.द्यु.}$ । यहाँ पर भी चन्द्र ग्रहण में आक्षजवलन साधन की तरह यदि द्यु =

प. द्यु. तो आयन दृक्कर्मांश $= \frac{६३. च_{१} फ}{२५० वि^{२}} = \frac{च_{१} फ}{\frac{२५० वि^{२}}{६३}} = \frac{फ. च_{१}}{४ वि^{२}} = \frac{फ. च_{१}}{(२ वि)^{२}}$ आयन

दृक्कर्मांश साधन उपपन्न होता है। एक या भिन्न दिशाओं के क्रम से ऋण और धन संस्कार स्पष्ट है।

यदि प्रतिपद समाप्ति समय में रवि का अस्त काल हो तो सूर्यास्त के अनन्तर, जितने समय में चन्द्रमा का स्थान रवि से १२ अंश अधिक में अस्त होगा, उतने समय से ६ राशि युक्त रवि निष्ठ राश्युदय के १२ अंशों का उदय होगा। अतः भुक्त भोग्य काल साधन की तरह अनुपात से, यदि ३० अंशों में ६ राशियुक्त रविनिष्ठ राश्युदय असु मान प्राप्त होता है तो १२ अंशों में क्या उपलब्ध होगा ? पलों में १० का भाग देने से अंश होते

हैं। अंश $= \frac{सरस र. उदय \times १२}{३० \times १०} = \frac{स. भोदय}{२५}$ । लब्ध फल और १२ अंशों का अंशात्मक

अन्तर=१२ ~ $\frac{\text{स. भोदय}}{२५}$ = $\frac{३० \sim \text{स. भोदय}}{२५}$ । यदि ३०० से सभोदय अधिक तो धन और ३०० से कम सभोदय में ऋण होना युक्ति युक्त है । उपपन्न होता है ॥२-३॥

चक्राढ्यो मधुवक्रमासनिचयो विश्वाप्तचक्रोनितो
द्विघ्नो युक् दशमासधूर्जटिदिनैर्भैः शेषितो भच्युतः ।
द्व्याप्तः स्याद्भमुखः पृथक् तिथिलवैरूनोऽस्य बाह्वंशका-
र्काप्तांशोनयुतो घटाजरसभे मासादिकः स्यान्मधोः ॥४॥
तिथिदिनरहिताढ्योऽसौ द्विधा तैश्च मासैः
क्रमश इह भवेतां मन्त्रिणोऽस्तोदयौ च ।

मल्लारिः

तत्रादौ गुरोरुदयास्तौ सार्धश्लोकेन कथयति ।

मधुवक्रे चैत्रादौ यो मासगणो भवति स तद्वर्षीयचक्रेण आढ्यो युक्तः कार्यः स एव विश्वाप्तेन त्रयोदशभक्तेन चक्रेण ऊनितः ततोऽसौ द्वाभ्यां हन्यते गुण्यते स तथा । ततो दशभिर्मासैर्धूर्जटिभिरेकादशदिनैर्युक् युक्तः सन् ऊर्ध्वस्थाने भैः सप्तविंशत्या शेषितो भक्तोर्वरितः । ततो भच्युतः सप्तविंशतः शोध्यः सन् नक्षत्रात्मको द्व्याप्तः सन् भमुखो राश्यादिः स्यात् । राश्यादिः पृथक् अन्यस्थले स्थाप्यः । तत्र तिथिलवैः पञ्चदशभागैरूनोऽस्य पञ्चदशभागौनितस्य यो बाहुर्भुजस्तस्य येंऽशका भागास्तेभ्योऽर्कैर्द्वादशभिराप्तांश लब्धा भागास्तैर्भागैः पृथक्स्थो राश्यादिक ऊनयुतः कार्यः । कदेत्यत आह । घटाजरशभे सति तुलादिषड्भे राश्यादिके सति फलं तत्रैव ऋणं कार्यम् । मेषादिषड्भस्थे धनं कार्यं । सराश्यादिरेव मधोश्चैत्रमारभ्य मासादिकः स्यात् ! तावन्तो राशयस्तावन्तो मासाः । भागा दिनानि । कला घटिकाः । विकलाः पलानीति । तिथिदिनरहिताढ्य इति । अयं मासादिको द्विधा स्थानद्वये स्थाप्यः । तत एकस्थाने प्रथमं तिथिदिनैः पञ्चदशदिवसै रहितः कार्यः । तत्र तैः सावयवैर्मासैश्चैत्राद्गुरोरस्तः स्यात् । तथा द्वितीयस्थाने पञ्चदशयुक्तैस्तैर्मासैश्चैत्रादेव गुरोरुदयः स्यात् ।

अत्रोपपत्तिः । वर्षादौ गुरु साध्यः । स स्पष्टः कार्यः । तथा रविस्तत्र वर्षादौ शून्यमतो गुरुरेव शीघ्रकेन्द्रम् । यो हि गुरू राश्यादिः स मासादिकः कृतः । स यथा । चैत्रादौ मासगणस्ततो गुरुः । सार्धविश्वमासैर्गुरोरुदयास्तकालः शुद्धो भवति । अतो मासगणः सार्धविश्वैर्भाज्यः अत एव द्विघ्नो मासगणो यैः शेषित इति । अत्र चक्रोत्थमासगणे सार्धविश्वभक्ते यच्छेषं तदप्यत्र योज्यम् । एवमेकचक्रे मासगणः १३६ अयं सार्धविश्वभक्तः शेषं रूपम् । एकचक्रे इदं तदेष्टचक्रैः किमिति चक्रस्य गणः १ । गुण-

गुणितचक्रं सार्धविश्वभक्तमासगणे योज्यमित्यत्र मासगणे प्रथममेव योजितं तत्तु चक्रतुल्यमेव। अतश्चक्राढ्य इति इदं सान्तरम्। यतः सार्धविश्वे संपूर्णो न भवति। अतो विश्वाप्तचक्रोनित इति। ग्रन्थारम्भे गुरोर्मासादिक्षेपः १०।११ अत उक्तं दश-मासधूर्जटिदिनैर्युगिति। अग्रे कदोदयास्तः स्यात्। अतो भोग्यार्थं भच्युतो द्विगुण-त्वाद्द्व्याप्त इति। अस्य कालांशान्तरे सूर्यान्तः पञ्चदशभागोनः कृतस्तस्मात फलं साध्यम्। अतस्तद्भुजभागार्कलवोनयुक्तः कार्य इति। यतः परमभुजांशानां ९० द्वादशांशः ७।३० सूर्यमन्दफलगुरुमन्दफलयोः परमयोर्योगासन्नो भवति। स मासादिको यावत् पञ्चदशदिनैरूनाधिकः क्रियते तावद्गुरूदयास्तयोरन्तरं त्रिंशद्दिनात्मकमेव भवति। अतस्तैर्मासैश्चैत्रादगुरोरस्तोदयौ भवत इति शोभनमुक्तम् ॥४$\frac{१}{२}$॥

विश्वनाथः

अथ मासगणाद्गुरोरुदयास्तमाधनमाह चक्राढ्य इति। शके १५३२ चैत्रशुक्ल-प्रतिपद्यब्दाः ९०। चक्रम् ८। मासगणः २५। चक्राढ्यः ४३। चक्रं ८ विश्वाप्तं फलं मासाद्यम् ०।१८।२७।४१। अनेनोनितः ३२।११।३२।१९ द्विगुणितः ६४।२३।४।३८ दश-१० मासधूर्जटि-११ दिनैर्युक्तः ७५।४।४।३८ सप्तविंशत्या तष्टः २१।४।४।३८। अयं भ-२७ च्युतः ५।२५।५५।२२ द्व्याप्तो भमुखो राश्यादिः २।२७।५७।४१ पृथक् २।२७।५७।४१। पञ्चदशभिरंशैरूनः २।१२।५७।४१ अस्य भुजांशाः ७२।५७।४१ एषां द्वादशांशः ६।४।४८ तिथिभागोनराश्यादिकस्य मेषादिषड्राशिस्थितत्वादर्कांशेन पृथक्स्थो युक्तः जातश्चैत्रान्मासादिकः ३।४।२।२९ अस्माद्गुरोरुदयास्तौ श्लोकार्धेनाह तिथि-दिनेति। मासादिको द्विधा ३।४।२।२९ एकत्र तिथिदिनरहितः २।१९।२।२९ अपरत्र युक्तः ३।१९।२।२९ एवं तैर्मासैर्मन्त्रिणो गुरोः क्रमेणास्तोदयौ स्तः तद्यथा। तिथिदिन-रहितेन मासाद्येन मासदिनघटिकाद्यनावयवेन चैत्राद्गुरोरस्तः स्यात्। अन्यत्रोदय इत्यर्थः ॥४$\frac{१}{२}$॥

केदारदत्तः

चक्र युक्त मास गण में चक्र का त्रयोदशांश घटा कर शेष को २ से गुणा कर गुणनफल में १० मास ११ दिन जोड़कर २७ से भाग देने से जो शेष उसको २७ में घटाने से जो शेष उसमें २ का भाग देने से राश्यादिक होता है। इसे दो स्थानों में रखकर एक स्थान में १५ का भाग देकर दूसरे स्थान में इसे १५ अंश घटाकर जो हो उस राश्यादिक के भुज के अंशों का द्वादशांश को उक्त राश्यादिक में मेषादि और तुलादि में क्रमशः जोड़ने व घटा देने से चैत्रादिक मासादि होता है। इसे दो स्थानों में रखकर, उस मासादिनीय मान में १५ अंश जोड़ने और घटा देने से जो फल हो उतने मासादि में क्रमशः गुरु का उदय और अस्त होता है ॥४$\frac{१}{२}$॥

उपपत्ति—मास गणोत्पन्न ग्रह, ग्रन्थारम्भकालिक मास क्षेप के योग से, मासान्त कालिक ग्रह होता है। कल्पानुपात से गुरु-सूर्य के एक योग सम्बन्धी चान्द्र मास =

$१३ + \frac{३३}{६५}$ तथा १ चक्र में चान्द्र मास = १३२ + ४ = १३६ । 'अनुपात से एक चान्द्र-मासीय योग $= १० + \frac{१२}{१३} = १० + \frac{१ + १२ - १}{१३} = १० + \frac{१३}{१२} - \frac{१}{१३} = १० + \left(१ - \frac{१}{१३}\right)$ =शेष + १० । अतः यदि १ चक्र में $१ - \frac{१}{१३}$ के तुल्य शेष तो अभीष्ट चक्र में इष्ट चक्र सम्बन्धी शेष= चक्र $\times \left(१ - \frac{१}{१३}\right)$ = चक्र $- \frac{चक्र}{१३}$ = फ, को मास गण में जोड़ने से मासगण + $\left(चक्र + \frac{चक्र}{१३}\right)$ इसे ग्रन्थारम्भ कालिक क्षेप $\frac{१० \text{ मास } ११ \text{ दिन}}{२}$ में जोड़नेसे $\frac{१०\text{मा.} + ११ \text{ दि.}}{२}$ + मासगण + चक्र $- \frac{चक्र}{१३}$ । शुक्रस्य शुद्धयति गुरोर्यदि सार्ध विश्वैः से $१३ + \frac{१}{२}$ मास में १ योग तो उक्त मासों में $\frac{\frac{(१० \text{ मास } + ११ \text{ दिन})}{२} + \text{मासगण} + \text{चक्र} - \frac{\text{चक्र}}{१३}}{१३ + \frac{१}{२}}$

$\frac{५ \text{ मास } \frac{११}{२} \text{ दि.} + \text{मासगण} + \text{चक्र} - \frac{\text{चक्र}}{१३}}{२७}$, लब्धि संख्या गत योग संख्या का त्याग करने से, हर में शेष शोधित करने से अग्रिम योग के तुल्य चन्द्रमास=$१३\frac{१}{२} - \frac{शेष}{२} = \frac{२७}{२} - \frac{शेष}{२}$

$= \frac{२७ - शेष}{२}$ । पूर्व युक्ति से शेष मास सम्बन्धी राश्यादिक सूर्य $= \frac{६५ \times \text{शेष मास}}{२}$ ।

युति के समय सूर्य=गुरु । चैत्रादि से मेषादि तक जो सौरअंश=१५ के तुल्य आचार्य ने माना है । आगत फल के तुल्य भुजांश फल को तुलादि मेषादि केन्द्रवशात् ऋण या धन करने से चैत्रादि से मासगण होता है । अस्त के अनन्तर एक मास में पुनः गुरु का उदय होने से १५ दिन रहित सहित मासगण तुल्य में गुरू का उदयास्त समीचीन उपपन्न होता है ।।४$\frac{१}{२}$।।

क्षथ मधुमुखमासाः सप्तभूनिघ्नचाक्रैः
स्वशरयुग-४५ लवाढयैः संयुता मार्गणघ्नाः ।।५।।
उदधिरससमेताश्छिद्रखेगामितष्टा
नवनवपरिशुद्धाः पञ्चभक्ताः पृथक्स्थाः ।
रसगुणदिनहीनाढ्या द्विघा चैत्रतस्तै-
र्भृगुजहरिदिगस्ताम्बूदयौ स्तः क्रमेण ।।६।।

नवमासभवस्रतोऽल्पपुष्टाः
पृथक्स्थाः क्रमशस्तु तैर्युतोनाः
द्वेधा युगवासरोनयुक्ता-
स्तोयास्तैन्द्र्युदयौ क्रमाद्भृगोः स्तः ॥७॥

मल्लारिः

अथ शुक्रोदयास्तौ कथयति सार्थवृत्तद्वयेन। अथ गुरूदयास्तकथनानन्तरं शुक्रास्तोदयौ कथयति। मधुमुखमासाश्चैत्रादौ यो मासगणः। ते मासाः सप्तभूभिर्निघ्नानि गुणितानि यानि चक्राणि ततस्तानि स्वशरयुगलवेन पञ्चचत्वारिंशदंशेन आढ्यानि युक्तानि। तैः संयुतास्ततो मार्गणघ्नाः पञ्चगुणः। तत उदधिरसः चतुःषष्ट्या समेताः ततश्छिद्राणि नव। खेगामिनो ग्रहा नव। एवं नवनवतितष्टाः शेषा नवनवभ्यः परिशुद्धा। तच्छेषाः पञ्चभक्ताः पृथक्स्थाः कार्याः। ये पृथक्स्थास्तेऽपि स्थानद्वये स्थाप्याः। एकत्र रसगुणदिनैः षट्त्रिंशद्दिनैर्हीना अन्यत्र युक्ताः चैत्रतस्तैर्मासैर्यथाक्रम भृगुजस्य शुक्रस्य हरिदिशि पूर्वस्यामस्तोऽम्बुनि पश्चिमायामुदयो भवेत्। ततो ये पृथक्स्थास्ते नवमासभघस्रतः सप्तविंशतिदिनाधिकनवमासेभ्यश्चेदल्पाः पुष्टा वा स्युस्तदा क्रमशः तैर्नवमासभघस्रैर्युतोनाः कार्याः। ततस्ते द्वेधा युगवासरैश्चतुर्भिर्दिनरूनयुक्ताः क्रमाद् भृगोः शुक्रस्य तोयास्तः पचिमास्त ऐन्द्र्युदयः पूर्वोदयः। एतौ चैत्रात्तैर्मासैः स्त इत्यर्थः।

अत्रोपपत्तिर्गुरूदयास्तवत् सुगमा ॥४–६॥

विश्वनाथः

अथ शुक्रास्तोदयसाधनं सार्धवृत्तेनाह अथ मधुमुखेति। मधुमुखमासाः २५। चक्रं ८ सप्तदशगुणितम् १३६। अस्य शरयुग-३५ लवो मासाद्यः ३।०।४०।० अनेन सप्तदशगुणिता युक्ताः १३९।०।४०।० एतैर्मधुमुखमासाः २५ संयुताः १६४।०।४०।०। मार्गणा-५ घ्नाः ८२०।३।२०।० उदधिरस-६४ समेताः ८८४।३।२०।० छिद्रखेगामि ९९ तष्टाः ९२।३।२०।० नवनवभ्यः ९९ शुद्धाः ६।२६।४०।० पञ्च पञ्च-५भक्ताः १।११।२०।० पृथक्स्थाः १।११।२०।० एकत्र रसगुणदिन-३६ हीनाः ०।५।२०।४ अन्यत्र युताः २।१७।२०।० तैर्मासैः क्रमेण चैत्राद्भृगुजस्य हरिदिगस्तः पूर्वास्तोऽम्बूदयः पश्चिमोदयः स्यात्। यत्र हीनस्तत्र शुक्रस्य पर्वास्तः। यत्र युक्तस्तत्र पश्चिमोदयः। अथ शुक्रस्य पश्चिमास्तपूर्वोदयसाधनमाह नवमासेति। ये पृथक्स्थास्ते नवमासभघस्रैः सप्तविंशतिदिनाधिकनवमासेभ्यश्चेदल्पाः पुष्टा वा स्युस्तदा क्रमशस्तैर्नवमासभघस्रैर्युतोनाः कार्याः। पृथक्स्थाः १।११।२०।० नवमासभघस्रः-९।२७ तोऽल्पा अतो नवमासभघस्रैर्युताः ११।८।२०।० द्वेधा ११।८।२०।० युग-४ वासरोनाः ११।४।२०।० अन्यत्र युक्ताः ११।१२।२०।० यत्र हीनास्तत्र भृगोः शुक्रस्य तोयास्तः पश्चिमास्तः। यत्र युक्तास्तत्रैन्द्र्युदयः पूर्वोदयः एतौ चैत्रात्तैर्मासैः स्त इत्यर्थः ॥४½–७॥

केदारदत्तः

१७ गुणित चक्र में १७ गुणित चक्र का ४५ वाँ भाग जोड़कर जो हो उसे चैत्रादि मास गण में जोड़कर उसे ५ से गुणा कर, गुणनफल में ६४ जोड़कर इसमें ९९ का भाग देकर शेष को ९९ में घटाकर इस शेष में ५ से भाग देकर लब्ध मासादि फल को पृथक् रखना चाहिए। एक स्थान में ३६ दिन कम कर शेष तुल्य मासादि समय में शुक्र का पूर्व दिशा में अस्त होता है। द्वितीय स्थान स्थित फल में ३६ जोड़ने से योग तुल्य चैत्रादि मासादि में शुक्र का पश्चिमोदय होता है। पूर्व में पृथक् स्थित मासादि यदि ९ मास २९ दिन से कम हो तो उसमें ९ मास २७ दिन जोड़ने से जो योगफल उसमें ४ दिन घटाकर शेष तुल्य मासादि में शुक्र का पश्चिम में अस्त होता है। यदि पूर्व पृथक् स्थापित मासादि ९ मास २७ दिन से अधिक हो तो उसमें ९ मास २७ दिन घटाकर शेष में पुनः ४ दिन जोड़कर जो योगफल हो उतनी संख्या के मासादिकों में शुक्र का पूर्वोदय होता है ॥४$\frac{1}{2}$–७॥

उपपत्तिः—कल्प शुक्र केन्द्र भगणों में कल्प चान्द्र मास तो एक भगण में एक भगण सम्बन्धी चान्द्रमास=युतिकाल = $\frac{५३४३३३३६००० \times १}{२७०२३८८७४६} = १९ + \frac{४}{५} = \frac{९९}{५}$।

एक चक्र सम्बन्धी चान्द्र मास=१३२ + ४=१३६ में $\frac{९९}{५}$ भाग देने से एक चक्र सम्बन्धी

शेष $= \left(१७ + \frac{१७}{४५}\right)$। अनुपात से एक चक्र शेष से इष्ट चक्र शेष$\left(१७ + \frac{१७}{४५}\right)$ इष्ट चक्र।

चैत्रादि मास=चै. मा.। ग्रन्थारम्भ में शुक्र क्षेप=$\frac{६४}{५}$। इनके योग से तथा अनुपात से चान्द्र-

$$\text{मास} = \left\{ \frac{\left(१७ + \frac{१७}{४५}\right) \text{चक्र} + \text{चै.मा.} + \frac{६४}{५} \times ५}{९९} \right\} = \frac{\left(१७ + \frac{१७}{४५}\right)\text{चक्र} + \text{चै.मा.} \times}{९९}$$

$\times ५ + ६४ = \text{ल} + \frac{\text{शेष}}{५}$ प्रयोजन भाव से लब्धि त्याग से, शेष को हर में घटाने से युतिकालीन

अग्रिम चान्द्रमास $= \frac{९९}{५} - \frac{\text{शेष}}{५} = \frac{९९ - \text{शेष}}{५}$ इसके तुल्य के चै. मा. में योग होगा।

पञ्चतारा स्पष्टी करण से पूर्वोक्त से शुक्र के पूर्वास्त से पश्चिमोदयान्तर दिन संख्या=७२, ७२ ÷ २=३६ दिन रहित सहित से शुक्र का पूर्वास्त और पश्चिमोदय समय होता है।

उच्चनीचासन्न की शुक्र की स्थिति में पूर्वास्त पश्चिमास्त व पूर्वोदय क्रमशः होते हैं। अतः अपने शीघ्रोच्च व शुक्र के योग से पुनः युति कालार्ध समय$\frac{९९}{२ \times ५}$ (९ मास २७ दिन)

नीच व शुक्र का योग होता है। योग के अनन्तर पूर्व पश्चिम केन्द्रांश ३° के तुल्य से पश्चिमास्त व पूर्वोदय होते हैं। शुक्र केन्द्र गति कला = ३७′ तथा ३° की कला=१८०, अनुपात से ३ अंश सम्बन्धी दिन संख्या $\frac{१८० \times १}{३७}$=४ स्वल्पान्तर से उपपन्न होता है ॥४½-७॥

मासैर्नखैर्व्यरिदिनैरुदयास्तकालः
शुक्रस्य शुध्यति गुरोर्यदि सार्धविश्वैः ।
सोऽन्यो भवेन्मधुमुखादथ तैर्युतश्चेत्
स्यात् तत्परोऽथ पुरतोऽपि विलोमशुद्ध्या ॥८॥

मल्लारिः

अथ गुरुशुक्रयोरुदयास्तकालपरिवर्तमाह। शुक्रस्योदयास्तकालः पूर्वास्तपूर्वोदयपश्चिमास्तपश्चिमोदयपरिवर्त्तो व्यरिदिनैः षड्दिनरहितैर्नखैर्विंशतिमासैः शुध्यति सम्पूर्णो भवति। गुरोः सार्धविश्वैर्मासैः शुध्यति। मधुमुखाच्चैत्रादेस्तैर्युतश्चेत् तदाऽन्यः स्यात्। विलोमशुद्ध्या पुरतोऽपि पूर्वमेव तैः स्वमासैरुदयान्तः स्यात्। एतदुक्तं भवति। यस्योदयास्तयोर्मासादिकश्चैत्रादितः कालः स एभिः परिवर्त्तमासैर्युक्तस्तैरेव मासैश्चैत्रादेः स एवोदयास्तः स्यात्। चेन्न्यूनीकृतस्तदा तैर्मासैश्चैत्रादेः पूर्वमुदयास्तः स्यादित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। प्रत्यक्षसिद्धा सुगमा च ॥८॥

विश्वनाथः

अथ शुक्रगुर्वोरुदयास्तकालपरिवर्त्तमाह मासैरिति। शुक्रस्य पूर्वोक्तो य उदयास्तकालः स व्यरिदिनैः षड्दिनरहितैर्नखैर्विंशतिमासैः १९।२४ शुध्यति निःशेषो भवति। शुक्रस्य पूर्वोदयात् पूर्वोदयः परोदयात् परोदयोऽनेन १९।२४ कालेन भवतीत्यर्थः। एवमस्तोऽपि स्पष्टाधिकारपठितानां द्विमासस्येत्यादीनां मासानां योग एतत्तुल्यः १९।२४ इति सुगमा वासना। एवं गुरोर्यदि उदयास्तकालः स सार्धविश्वैर्मासैः १३।१५ शुध्यति। तैर्मासैः पूर्वोक्तैः स उदयास्तकालो युतश्चेत् तदा मधुमुखादन्यो भवति। सोऽपि चेद्युतस्तदातत्परो भवति। तैर्मासैस्तस्मादुदयास्तादग्रेऽन्योदयास्तकालः स्यादित्यर्थः विलोमशुद्ध्या पुरतोऽपि पूर्वमेव तैर्मासैरुदयास्तकालः स्यात् ॥८॥

केदारदत्तः

६ दिन कम ९० मास=१९ महीने २४ दिन में शुक्र का उदय और अस्तकाल, पूर्व या पश्चिमोदय से अस्त पर्यन्त) होता है। और गुरु का १३½ मास का उदयास्तकाल होता है। चैत्रादि मास में उक्तष्ट समय जोड़ने से अन्य उदयास्तकाल होता है। विलोम करने अर्थात् घटाने से पूर्व का उदयास्तकाल सिद्ध होता है ॥८॥

उपपत्तिः—पूर्ववत् सुस्पष्ट है ॥८॥

प्रथमे व्यगुचन्द्रदोर्गृहेंऽशाः
स्वदलाढ्यास्त्वपरे नगाब्धियुक्ताः ।
चरमे दलिता नगाद्रियुक्ता
व्यगुविधुदिग् विशिखोंऽगुलादिकः स्यात् ॥९॥

मल्लारिः

अथ चन्द्रशरं साधयति व्यगुचन्द्रस्य विराहुचन्द्रस्य दोर्गृहे भुजराशौ प्रथमे सति अंशा भागाः स्वदलेन स्वार्धेन आढ्या युक्ताः कार्याः सोंऽगुलादिकः शरः स्यात् । अपरे द्वितीयराशौ ये भागास्ते नगाब्धिभिः सप्तचत्वारिंशता युक्ताः कार्याः स शरः स्यात् । चरमे तृतीयराशौ ये भागास्ते दलितास्ततो नगाद्रिभिः सप्तसप्तत्या युक्ता व्यगुविधुदिक् विराहुचन्द्रो यस्मिन् गोले तद्दिक् शरो भवतीत्यर्थः । अत्र शरानयने राशीनामंशा न कार्याः । अधस्तना यथावस्थिता एव भागा ग्राह्याः ।

अत्रोपपत्तिः । प्रथमराशौ भागाः स्वार्धयुक्ताः शरो भवतीति पूर्वमेव ग्रहणयुक्तिः प्रतिपादितास्ति । द्वितीयराश्यन्ते शरः ७७ । अत्र प्रथमराश्यन्ते शरः ४७ । अतो द्वितीयराश्यादितो ये भागास्तैर्युक्ताः ४७ एते शरो भवत्येव । तथैव तृतीयराश्यादेर्भागा दलिता द्वितीयराश्यन्तशरेणानेन ७७ युक्ताः शरः स्यादेवेति युक्तमुक्तम् । पूर्वं ग्रहणे चन्द्रशर उक्तः स त्रिंशदल्पभुजभागमध्यस्थ एव । अन्यत्र बहुषु भुजभागेषु बह्वन्तरितः स्यात् । अत उदयास्तशृङ्गोन्नतिग्रहयोगादिविधावनेन प्रकारेण शरः कार्यो न पूर्वेणेति ॥९॥

विश्वनाथः

अथ चन्द्रस्य शरसाधनमाह प्रथमेति । विराहुचन्द्रस्य दोर्गृहे भुजराशौ प्रथमे सति अंशाः स्वदलेन स्वार्धेन युक्ताः कार्याः सोंऽगुलादिकशरः स्यात् अपरे द्वितीये राशौ ये भागास्ते नगाब्धिभि-४७र्युक्ताः कार्याः स शरः । चरमे तृतीये राशौ भागा दलितास्ततो नगाद्रिभि-४७र्युक्ता व्यगुविधुदिक् विराहुचन्द्रो यस्मिन् गोले तद्दिक् शरोंऽगुलादिकः स्यात् । अत्र शरानयने राशीनामंशा न कार्या अधस्तना यथावस्थिता एव भागा ग्राह्याः । चन्द्रस्य शरसाधनार्थं सूर्यग्रहणे कृतौ तिथ्यन्तकालीनौ चन्द्रराहू तत्रैव स्थापितौ । चन्द्रः ८।५।२६।२० राहुः २।११।४१।१८। व्यगुविधुः ५।२३।४५।२ अस्य भुजः ०।६।१४।५८ भुजस्य प्रथमराशौ विद्यमानत्वादंशाः ६।१४।५८ स्वार्धेन ३।७।२९ युक्ता जातः शरः ९।२२।२७ व्यगुविधोरुत्तरगोलत्वादुत्तरः ॥९॥

केदारदत्तः

प्रथम राशिस्थ व्यगु के भुज में भुजांश का आधा भुजांश में जोड़ने से, दूसरी राशि के व्यगु भुज में भुजांश में ४७ जोड़ने से और तीसरी राशिस्थ व्यगु चन्द्र की भुज की स्थिति में ७७ में भुजांश का आधा जोड़ने से राहु रहित चन्द्र गोल का अंगुलादिक शर का मान हो जाता है ।

उपपत्ति—अग्रिम दशम श्लोक में, ३०, ६०, ९० भुजांशों में क्रमशः ४५, ७८, ९० के तुल्य शरांगुल कहे गये हैं। आचार्य ने स्वल्पान्तर से उक्त तीन स्थानों में ४५ ७८, और ९० अंगुल शर मान पढ़े हैं। अतः अनुपात से, $\frac{\text{व्यगुचंद्रभुजांश} \times ४७}{३०} = \frac{\text{व्य.चं.भु.} \times ३}{२}$

व्यगु चं. भु. $(१ + \frac{१}{२})$ = व्यगुचं.भु. + $\frac{\text{व्य. चं. भु.}}{२}$ स्वल्पान्तर से उपपन्न होता है (१) अथ

७७—४७ = ३० = प्रथम द्वितीय राश्यन्तरीय शरांगुल मान। पुनः अनुपात से $\frac{३० \times \text{व्य.चं.भु}}{३०}$

= व्य. चं. भु.। प्रथम राश्यान्त कालिक शर को जोड़ने से ४७ + व्य. चं. भु.। (२) तथा

७७ ~ ९० = १३, पुनः उक्तवदनुपात से $\frac{१३ \times \text{व्य. चं. भु.}}{३०}$ = स्वल्पान्तर से $\frac{\text{व्य. च. भु.}}{२}$ में

७७ जोड़ने से ७७ + $\frac{\text{व्य. च. भु.}}{२}$ उपपन्न होता है। (३) ॥९॥

नृपतिथिमनुविश्वरुद्रगोद्रि-
श्रुतिवसुधा १६।१५।१४।१३।११।९।७।४।१ शरखण्डकानि तैर्यत्।
व्यगुविधुभुजतोऽपमोक्तिवद्वा
व्यगुविधुदिग्वाशिखोंगुलादिकः स्यात् ॥१०॥

मल्लारिः

इदानीं खण्डकैः सूक्ष्ममप्याह। व्यगुचन्द्रभुजांशदशांशमितखण्डैक्यं शेषं भोग्यखण्डाहतिदशांशयुक्तं सदंगुलादिकः शर स्यादित्यर्थः। उपपत्तिरत्रातिस्फुटा ॥१०॥

विश्वनाथः

अथ प्रकारान्तरेण शरानयनमाह नृपेति। व्यगुविधुः ५।२३।४५।२ अस्य भुजांशाः ६।१४।५८ दशभिर्भक्ता लब्धखण्डं शून्यं० शेषं ६।१४।५८ ऐष्यखण्डेन १६ गुणितं ९९।५९।२८ दशभिर्भक्तं फलम् ९।५९॥ अनेन गतखण्डयोगो युक्तो जातोंऽगुलादिः शर उत्तरः ९।५९ ॥१०॥

केदारदत्तः

क्रमशः १६, १५, १४, १३, ११, ९, ७ और ४ ये शर खन्ड होते हैं। इन खण्डों से क्रान्ति साधन की तरह विराह्वर्क चन्द्र का शर होता है ॥१०॥

उपपत्तिः—लघु ज्या से, दश अंश वृद्धि व्यगु चन्द्र भुजांश से अंगुलात्मक शर मान को, त्रिज्या = १२० में परम शर तो इष्ट भुजांश में क्या? उक्त अनुपात से शरमान लाकर खन्ड पठित किए गये हैं।

यथा $\frac{९० \times \text{ज्या व्य. चं०}}{१२०} = \frac{३ \times \text{ज्या व्य. चं.}}{४}$

तथा सपात चन्द्र = १०°, २०°, ३०°, ४०°, ५०°, ६०°, ७०°, ८०°, ९०°

ज्या = २१, ४१, ६०, ७७, ९२, १०४, ११३, ११८, १२०

शर के अंगुल = १६, ३१, ४५, ५८, ६९, ७८, ८५, ८९, ९०

अन्तर से शर खड=१६, १५, १४, १३, ११, ९, ७, ४, १

इस प्रकार शर खण्ड उपपन्न होते हैं ।।१०।।

लघुगोऽल्प इनादुदेति पूर्वे भूयान् भूरिगतिग्रहः प्रतीच्याम् ।
भूयाँल्लघुगः परत्र चास्तं प्राच्यां भूरिजवो लघुः प्रयाति ।।११।।

मल्लारिः

अथ ग्रहाणां पूर्वपश्चिमदिशोरुदयास्तकारणमाह द्युपगोऽल्पं इति। यो ग्रह इनात् सूर्यात् लघुगोऽल्पगतिः। अल्पश्च भागैरपि न्यूनः स पूर्वस्यामुदयं प्राप्नोति। यो ग्रहो भूयान् सूर्यापेक्षया भागैरधिकः। भूतिगतिः सूर्याधिकगतिश्च स प्रतीच्यां पश्चिमायामुदेति उदयं प्राप्नोति। यो भूयान् सूर्यादधिकभागो लघुगः सूर्यादल्पगतिः स परत्र पश्चिमदिशि अस्तं गच्छति। यो भूरिजवः सूर्याधिकगतिः। लघुः सूर्याद् भागैरल्पः स प्राच्यां पूर्वदिशि अस्तं याति। इदं सूर्यकृतोदयास्तलक्षणं दैनंदिनोदयास्तौ ग्रहाणां प्रवहानिलवशेन पूर्वपश्चिमयोर्वर्त्तेते एवेति।

अत्रोपपत्तिः। सूर्यादल्पोऽल्पगतिश्च ग्रहः सूर्यात्पूर्वराश्यंशे स्थितोऽतः सूर्योदयात् पूर्वमेव तस्योदयः। अतः कालांशतुल्यान्तरेण तस्य पूर्वोदयः स्यात्। यः सूर्यादधिकः। अधिकगतिश्च ग्रहः। स पश्चिमायामुदेति विलोमत्वात्। यः सूर्यादधिकः। अल्पगतिस्तं ग्रहं त्यक्त्वा सूर्योऽग्रतो याति। अतः पश्चिमायामस्तः। यो भागैरल्पो गत्याधिकः स सूर्यं प्रति गच्छति। अतोऽल्पत्वात् पूर्वस्यामस्तो भवतीत्युपपन्नम् ।।११।।

विश्वनाथः

अथोदयास्तयोर्दिग्ज्ञानमाह। लघुगोऽल्प इति। यो ग्रह इनात्सूर्याल्लघुगोऽल्पगतिरल्पो भागैर्न्यूनश्चेत्तदा स ग्रहः पूर्वे पूर्वस्यां उदेति ह्युदयं प्राप्नोति। यो ग्रहो भयान् सूर्यापेक्षयात्राधिकः। भूरिपतिरधिकगतिश्च तदा प्रतीच्यां पश्चिमायां दिशि उदेति। यो भूयान् सूर्यादधिकभागो लघुगः सूर्यादल्पगतिः सः ग्रहः परत्र पश्चिमदिश्यस्तं याति। यो ग्रहो भूरिजवः सूर्याधिकगति.। लघुः सूर्यात् भागैरल्पः स ग्रहः प्राच्यां पूर्वदिशि अस्तं याति। एतद्बुधशुक्रयोः। अन्येषां न घटते स्वल्पगतित्वात् ।।११।।

केदारदत्तः

सूर्य से कम गतिक, और राश्यादि में भी अल्प ग्रह पूर्व दिशा में तथा सूर्य गति से अधिक गतिक एवं राश्यादि से भी अधिक ग्रह पश्चिम दिशा में उदय होता है।

एवं सूर्य से कम गतिक, राश्यादिक अधिक ग्रह पश्चिम दिशा में, तथा, सूर्य गति से अधिक गतिक एवं राश्यादि से कम पूर्व दिशा में अस्त होता है ।।११

उपपत्तिः—स्पष्ट है ।।११।।

भास्करा नगभुवो गुणचन्द्रा भूभुवो दिविसदस्तिथयोऽब्जात् ।
प्राक्तनैर्निगदिताः समयांशा वक्रिणोर्भृगुविदोः क्षितिहीनाः ।।१२।।

मल्लारिः

अथोदयास्तनिमित्तं कालांशानाह । अब्जात् चन्द्रमारभ्य ग्रहाणामेते कालांशाः स्युः । भास्करा द्वादशभागाश्चन्द्रस्य । नागभुवः सप्तदश भौमस्य । गुणचन्द्रांस्त्रयोदशः बुधस्य । भूर्भुवः एकादश गुरोः । दिविसदो नव शुक्रस्य । तिथयः पञ्चदश मन्दस्य । प्राक्तनैः पूर्वाचार्यैरेते कालांशा निगदिताः । भृगुविदोः शुक्रबुधयोः । वक्रिणोः सतोऽस्ते कालांशाः क्षित्या एकेन हीनः ।

अत्रोपपत्तिः । अत्रोदयोऽस्तो वा तुल्यैरेव कालांशैः लक्षणोपायैर्भवति । कालांशा यथा । यद्दिने ग्रहस्योदयाऽस्तो वा आकाशे ज्ञातस्तद्दिने सूर्यग्रहयोरन्तरं लग्नसूर्यान्तरवत् लङ्कोदयैः कालः साध्यः । ता घटिका षड्गुणा भागाः स्युः । ते कालस्यांशाः । अतः कालांशा इत्यन्वर्थं नाम । अत्र बुधशुक्रयोर्वक्रिणोः सतो निरेकैस्तैः कालांशैस्तयोरुदयास्तौ भवत इत्युपपन्नम् ।।११।।

विश्वनाथः

इदं सूर्यकृतोदयास्तलक्षणम् । अथोदयास्तज्ञानार्थं कालांशानाह भास्करा इति । भास्करा इत्यादयोऽब्जात् चन्द्रात् प्राक्तनैः पूर्वाचार्यैः समयांशाः कालांशा निगदिताः । चन्द्रस्य द्वादश १२ । भौमस्य नगभुवः १७ । बुधस्य गुणचन्द्राः १३ । गुरोर्भूभुवः ११ । शुक्रस्य दिविसदः ९ । शनेस्तिथयः १५ । भृगुविदोः शुक्रबुधयोर्वक्रिणोर्वक्रगत्योः सतोस्तदा तदुक्तं कालांशाः क्षितिहीना एकोनाः कार्याः ।।१२।।

केदारदत्तः

भौमादिक ग्रहों के कालांशों का मान पूर्वाचार्यों ने क्रमशः १२, १७, १३, ११, ९ और १५ अंश कहा है । वक्री होने से बुध और शुक्र के क्रमशः कालांश ९, १३ में एक-एक कम करने से ८ और १२ कहे हैं ।।१२।।

उपपत्तिः—प्राचीनाचार्यों को नलिका वेधादि से जैसी उपलब्धि हुई है तदनुसार कालांश पढ़े गये हैं ।।१२।।

खाम्बुधयः खयमाः खभुजङ्गाः खाङ्गमिताः खदश क्रमशः स्युः ।
पातलवाः कुसुताद्बुधभृग्वोर्मध्यमचञ्चलकेन्द्रविहीनाः ।।१३।।

मल्लारिः

अथ भौमादीनां पातानाह। कुसुताद्भौममारभ्य ग्रहाणामेते पातस्य लवा भागाः स्युः। खाम्बुधश्चत्वारिंशद्भागा भौमस्य। खयमा विंशतिर्भागा बुधस्य। खभुजंगा अशीतिभागा गुरोः। खांगमिताः षष्टिभागाः शुक्रस्य। खदश शतमिता भागाः शनेः। बुधभृग्वोः पातांशा मध्यमेनाहर्गणोत्पन्नेन चञ्चलकेन्द्रेण शीघ्रकेन्द्रेण विहीनाः कार्याः ॥

अत्रोपपत्तिः। मन्दस्फुटो ग्रहः शीघ्रमतिमण्डले भ्रमति विमण्डलाश्रितः सन्निति। तस्मान्मन्दस्फुटादेव शरः साध्यते इत्युपपत्तौ ग्रहः सपातः कार्यः। अत्र विमण्डलक्रान्तिमण्डलयोः सम्पातस्तत्र ग्रहस्य शराभावः। एवमत्र सम्पाते विक्षेपपाते क्रान्तिमण्डले यो राश्याद्यवयवः स एव पातः। एवं गहाणां पातलवाः सिद्धाः पाठपठिताः। एवं पातात् षड्भान्तरेऽपि शराभावः। एवं बुधशुक्रयोः पातलवाः शीघ्रप्रतिमण्डलस्था एव पठिताः सन्ति स्वशीघ्रकेन्द्रभागैरधिकाः कृत्वा पठिताः। अतः शीघ्रकेन्द्रविहीना एते पाताः। मन्दस्फुटग्रहयुक्तपातात् शरः साध्य इत्यग्रेऽपि वक्ष्यतीत्युपपन्नम् ॥१३॥

विश्वनाथः

अथ भौमादीनां पातभागानाह खाम्बुधय इति। खाम्बुधय इत्यादयः कुसुताद्भौममारभ्य पातलवाः स्युः। खाम्बुधयो ४० भौमस्य। खयमा २० बुधस्य। खभुजंगा ८० गुरोः। खांगमिताः ६० शुक्रस्य। खदश १०० शनेः। बुधभृग्वोः पातांशा मध्यमेनाहर्गणोत्पन्नेन चलकेन्द्रेण विहीनाः कार्याः ॥१३॥

केदारदत्तः

मंगलादिक पाँचों ग्रहों के क्रमशः ४०, २०, ८०, ६० और १०० ये पातांश होते हैं। बुध और शुक्र के स्पष्ट पातांश तभी होंगे कि बुध और शुक्र के पातांशों में अहर्गणोत्पन्न मध्यम बुध और शुक्र का शीघ्र केन्द्र घटा दिया जाय ॥१३॥

उपपत्तिः—क्रान्ति वृत्त और विमण्डल (ग्रह गमन मार्ग) के सम्पात का नाम पात कहा जाता है। आचार्य ने मंगल-गुरू और शनि के पातों की अत्यन्त गति होने से उन्हें (स्वल्पान्तरित ग्राह्य दोष से) स्थिर रूप में पढ़ा है।

बुध और शुक्र के पठित पातों का तात्पर्य है कि ये उनके शीघ्र केन्द्र भगण संख्या तुल्य अधिक पढ़े गये हैं। 'ते शीघ्रकेन्द्रभगणैरधिकाः यतः स्युः' भास्कराचार्य ने भी स्पष्ट कहा है। अतः बुध शुक्र के पठित पात अंशों में अहर्गणोत्पन्न मध्यम बुध-शुक्र केन्द्र ग्रहों से कम करने से बुध शुक्र के स्पष्ट पातांश कहना समीचीन होता है ॥१३॥

कुद्वित्र्यब्धियुगाश्विनो दलचयश्चेत् षड्भपुष्टं चलं
केन्द्रं चक्रविशुद्धमस्य भमितार्धैक्यं लवघ्नागतात्।

त्रिंशल्लब्धयुतं कुजात्कुयमलाब्धीन्द्वद्रिभक्तं क्रमा-
त्तद्धीना धृतिरिष्विला गुणभुवो गोऽब्जा इनाद्राकृश्रुतिः ॥१४॥

मल्लारिः

अथ ग्रहाणां शीघ्रकर्णानयनमेकवृत्तेनाह । अयं दलानां खण्डानां चयः स्यात् । कुरेकः । द्वौ । त्रयः । अब्धयश्चत्वारः । युगानि चत्वारि । अश्विनौ द्वौ । एतानि षट् खण्डानि स्युः । चलकेन्द्रं चेत् खड्भपृष्टं षड्राश्यधिकं तदा चक्रात् द्वादशराशिभ्यः शुद्धम् । अस्य चलकेन्द्रस्य यानि भानि राशयः । तन्मितार्धानामैक्यं कार्यम् । लवघ्नागतात् भागगुणितभोग्यखण्डात् त्रिंशता यल्लब्धं तेन लवैक्यं युतं कार्यम् । ततः कुजात् मंगलमारभ्य कुगमलाब्धीन्द्वद्रिभक्तम् । भौमस्यैकभक्तम् । बुधस्य द्विभक्तम् । गुरोश्चतुर्भक्तम् । शुक्रस्यैकभक्तम् । शनेः सप्तभक्तम् । क्रमात् तत्फलेन एतेऽङ्का ऊनाः कार्याः । धृतिः अष्टादश भौमस्य फलेन हीना भौमस्य शीघ्रकर्णः । इष्विलाः पञ्चदश बुधस्य । गुणभुवस्त्रयोदश गुरोः । गोऽब्जा एकोनविंशतिः शुक्रस्य । इना द्वादश शनेरेतेऽङ्काः फलेन हीनाः सन्तो यच्छेषं तद्ग्रहाणां द्राक्श्रुतिः शीघ्रकर्णः स्यात् ।

अत्रोपपत्तिः । अत्र कोटिज्यान्त्यफलज्ययोर्मृगकर्क्यादिशीघ्रकेन्द्रे योगान्तरं कोटिः । शीघ्रकेन्द्रदोर्ज्या भुजः । अनयोर्वर्गैक्यपदं कर्णः । शीघ्रप्रतिमण्डले व्यासार्धमत्र तु दोर्ज्याकोटिज्यादिविधिनास्ति । अतः प्रतिराशिशीघ्रकर्णः साधितः । शीघ्रफलयुतराशित्रयं प्रथमं पदम् । शीघ्रफलोनं राशित्रयं द्वितीयम् । अतः षड्राशिमध्ये पदद्वयमस्त्येव । अतः षट् खण्डान्येव कर्णार्थं शीघ्रकेन्द्रात् साधितानि । तानि भवमितां त्रिज्यां परिकल्प्य भौमशीघ्रफलान्त्यज्यातः साधितानि । ग्रहाणां परमशीघ्रफलज्या भिन्ना भिन्ना । अतो हि भौमशीघ्रपरमफलज्या–८१ यामस्यां यद्येतानि खण्डानि तदेष्टग्रहपरमशीघ्रफलज्यासु कान्यतो बुधादीनां यमलाऽधीन्द्वद्रिभक्तमुक्तं भोगस्य यथास्थितत्वात् कुभक्तमिति । अनेन फलेन परमशीघ्रकर्णा यावदूनीक्रियन्ते तावदिष्टशीघ्रकर्णा भवन्ति । परमशीघ्रकर्णास्तु त्रिज्यान्त्यफलज्यायोगतुल्याः । यथा भौमस्यान्त्यफलज्या ८१ । इयं त्रिज्यायुता २०१ । यदि त्रिज्यायामस्यां १२० परमभौमशीघ्रकर्णोऽयं २०१ तदेष्टायां भवतुल्यायां किमिति जाताः १८ । अत्र भवमितित्रिज्यायां सप्तमितान्त्यफलज्या ७ । अतस्त्रिज्यान्त्यफलज्यायोगे परमशीघ्रकर्णोऽयं १८ युक्तः । एवं त्रिज्यान्त्यफलज्यान्तरेण परमाल्पशीघ्रकर्णः । अत्र भौमस्य कुभक्तमिति यदुक्तं तेन सर्वखण्डयोगे १६ । धृतिशुद्धे द्वयं परमाल्पः शीर्णकर्णः स चायुक्तः । तत्साधितोऽग्रे यः शरः स च त्रिज्याल्प–११ शीघ्रकर्णे पुनर्द्विभक्तः कार्य इति युक्तः । अन्यत्र महदन्तरं स्यात् । त्रिज्याधिकशीघ्रकर्णेनान्तर तत्र स्वाङ्घ्र्यून इत्येव । अथवा तत्रापि चेत् द्विभक्तस्तदा किञ्चिदन्तरः शरः स स्वल्पान्तरत्वादंगीकर्तव्यः । अतो न दोषायेति । एवमन्येषामपीति । अत एव तद्धीना धृतिरित्युपपन्नम् ॥१४॥

विश्वनाथः

अथ शरसाधनार्थं शीघ्रकर्णसाधनमाह कुद्धीति। शके १५३४ वैशाखशुक्लपूर्णिमायां भौमादीनां स्पष्टक्रान्तिसाधनं क्रियते तत्र भौमादीनामन्तिमशीघ्रकेन्द्राणि। भौमस्यशीघ्रकेन्द्रम् ३।१।४।५७। बुधस्य शीघ्रकेन्द्रम् ११।१६।२५।१७। गुरोः शीघ्रकेन्द्रम् ८।२१।२०।५८। शुक्रस्य शीघ्रकेन्द्रम् ३।४।५९।५२। शनेः शीघ्रकेन्द्रम् २।२।५०।०। अथ भौमस्य शीघ्रकर्णः साध्यते। भौमस्य शीघ्रकेन्द्रम् ३।१।४।५७। अस्य राशितुल्यगतखण्डकत्रयोगः ६। शेषेण १।४।५७ एष्यखण्डम्। ४। गुणितं ४।१९।४८। त्रिंशद्भक्तं फलम् ०।८।३९। अनेन खण्डयोगो ६ युक्तः ६।८।३९। एकभक्तः ६।८।३९ एतेनाष्टादश १८ रहिता जातो भौमस्य शीघ्रकर्णः ११।५१।२१॥ बुधस्य शीघ्रकेन्द्रात्फलम् २।५।४१ द्विभक्तम् १।२।५०। पञ्चदश १५ मध्ये रहितं जातो बुधस्य शीघ्रकर्णः १३।५७।१०॥ गुरोः शीघ्रकेन्द्रात्फलम् ७।९।११। चतुर्भक्तम् १।४७।१८। इदं त्रयोदश मध्ये रहितं जातो गुरोः शीघ्रकर्णः ११।१२।४२॥ शुक्रस्य केन्द्रात्फलम् ६।३९।५८ एकभक्तम् ६।३९।५८ इदमेकोनविंशति-१९ मध्ये रहितं जातः शुक्रस्य शीघ्रकर्णः १२।२०।२॥ शनेः केन्द्रात्फलम् ३।१७।०। सप्तभक्तं फलम् ०।२८।८। इदं द्वादशमध्ये रहितं जातः शनेः शीघ्रकर्णः ११।३१।५२॥१४॥

केदारदत्तः

कुजादि ग्रहों के शीघ्र कर्ण साधन के लिए क्रमशः १।२।३।४।४।२ खण्ड होते हैं। मंगलादिक ग्रहों के शीघ्र केन्द्र यदि ६ राशि से अधिक हों तो उन्हें १२ राशि में घटाकर शेष राशि की संख्या तुल्य खण्डों के योग, और अंशो से गुणित अग्रिम खण्ड में ३० से भाग देकर लब्ध फल उक्त योग में जोड़ने से प्राप्त फल को क्रमशः पाँच स्थानों में रखकर क्रमशः १।२।४।५।७ इन अंकों से भाग देकर लब्ध फलों को क्रम से १८।१५।१३।१९।१२ में घटाने से प्राप्त अंकात्मक मंगलादिक ग्रहों का अभीष्ट समय का अभीष्ट स्थानीय कर्ण होता है।

उपपत्तिः—भूगर्भ विन्दु से शीघ्रप्रतिवृत्तस्थ ग्रह बिम्ब केन्द्र पर्यन्त ग्रहों का शीघ्र कर्ण होता है, जो श्री भास्कराचार्य के 'स्वकोटिजीवान्त्यफलज्ययोः' सूत्र से सुस्पष्ट भी होता है। इस ग्रन्थकार आचार्य 'गणेश' ने ज्या चाप रहित गणित और सुलघु प्रकार के गणित साधन की प्रतिज्ञा की है। अतः प्रकारान्तर से नीच और उच्च के मध्यगत ६ राशियों में ११ के तुल्य की त्रिज्या माप से ६ प्रकार के शीघ्र कर्ण साधन कर उनके पूर्वापर अन्तर से ६ खण्डों को पढ़ा है।

१२० त्रिज्या में मंगलादि पञ्चग्रहों का अन्त्य फल ज्या = ७७, ४४, २२, ८८, १० होती है तो ११ माप की त्रिज्या में क्रमशः ७, ४, २, ८, $\frac{९}{१८} = \frac{७०}{११०}$ यतः त्रि + अन्त्यफल ज्या = परमोच्च शीघ्रकर्ण। अतः मंगलादिक पञ्चतारा ग्रहों के क्रमशः शीघ्रकर्ण = १८, १५, १३, १९, १२ अथ ६ राशि के मध्य प्रत्येक राश्यन्त केन्द्र में शुक्र की कोटि ज्या =

१९, ११, ०, १९, २३ अतः 'अन्त्यफलत्रिमौर्व्योर्वर्गैक्यराशेः' प्रकार से प्रति राशि के अन्तिम में शुक्र का शीघ्र कर्ण = १८, १६, १३, ९, ५, ३ स्वल्पान्तर से। इन्हें परम उच्च स्थानीय शीघ्र कर्ण १९ में घटा देने से १, ३, ६, १०, १४, १६ होते हैं। पूर्वापर खण्ड को पर खण्ड में घटाने से १, २, ३, ४, ४, और २ खण्ड उपपन्न होते हैं। शेष उपपत्ति क्रान्ति साधन की तरह स्पष्ट है ॥१४॥

मन्दस्पष्टखगात् स्वपातरहितात् क्रान्त्यंशकाः केवलात्
कर्णाप्तास्त्रियमाहता अथ गुरोश्चेल्लोचनाप्ताः पुनः ।
स्वाङ्घ्र्यूना असृजोऽङ्गलादिकशरः वातोनदिक् स्यादसौ
त्रिघ्नः स्यात् कलिकादिकः स्फुटतरस्तत्संस्कृतश्चापमः ॥१५॥

मल्लारिः

एवं शीघ्रकर्णं प्रसाध्येदानीं ग्रहाणां शरं साधयति। स्वपातरहितात् मन्दस्पष्टग्रहात्। केवलादित्यदत्तायनांशात् क्रान्तिभागाः साध्याः। ते त्रियमैस्त्रयोविंशत्या आहताः। ततः कर्णेन आप्ता भक्ताः। अथ गुरोर्बृहस्पतेस्तर्हि लोचनाभ्यां द्वाभ्यां भक्ताः कार्याः। असृजो भौमस्य चेत् तर्हि द्व्याप्ताः पुनः स्वांघ्रिणा ऊनाः सन्तः पातोनग्रहो यस्मिन् गोले तद्दिगंगुलादिकशरः स्यात्। त्रिगुणः कलादिकः स्यात्। तेन कलादिना वाणेन अपमो ग्रहक्रान्तिः संस्कृता एकान्यदिशोर्युक्तोना स्फुटतरा भवतीत्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। अत्र ग्रहाणां पठिताः शरकलाः शीघ्रकर्णाग्रस्थानीयाः। शीघ्रप्रतिमण्डले हि शीघ्रकर्णो व्यासार्धम्। एवं शीघ्रप्रतिमण्डले मन्दस्पष्ट एव ग्रहो भ्रमति तत्रैवास्य पातः। अतो मन्दस्पष्टात् पातयुतात् शरः साध्य इति युक्तमुक्तम्।
उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ

मन्दस्फुटो द्राक्प्रतिमण्डले हि ग्रहो भ्रमत्यत्र च तस्य पातः।
पातेन युक्ताद् गणितागतेन मन्दस्फुटात् खेचरतः शरोऽस्मात् ॥ इति

अत्राचार्येण पाताश्चक्रशुद्धाः कृताः। अतः पातरहितादित्युक्तम्। अत्रानुपातः। यदि चतुर्विंशतिमितायां क्रान्तौ एताः पठितशर कलास्तदेष्टायां ग्रह क्रान्तौ का इति। अत्र लाघवार्थं स्वल्पान्तरत्वात् अंगुलादिकशरस्योपयोगित्वात् सर्वेषां शरः पञ्चाशदंगुलो गृहीतः। एवमिष्टग्रहक्रान्त्यंशानां पञ्चाशद्गुणः। चतुर्विंशतिर्हरः। यदि कर्णाग्रे अयं तदा चतुर्विंशतित्रिज्याग्रे कः। एवं चतुर्विंशतितुल्ययोर्गुणहरयोर्नाशे कृते क्रान्तेः पञ्चाशद्गुणः। कर्णो हरः। अत्र कर्णो हि भवमितत्रिज्यां प्रकल्प्य कृतोऽस्ति। अतोऽन्योऽनुपातः। यदि चतुर्विंशतिव्यासार्धेऽयं तदा भवमिते क इति। एवं भवपञ्चाशद्घातो गुणः ५५०। चतुर्विंशतिर्हरः। कर्णोऽपि हरः। अत्र सिद्धौ गुणहरौ हरेणा-

पर्वाित्ततौ जातो गुणस्त्रयोविंशतिः। अतः क्रान्त्यंशकास्त्रियभाहताः कर्णाप्ता इति। अत्र बुधशुक्रशनीनां स्वल्पान्तरत्वात् सम एव गहीतः। गुरोः पठितशरः पञ्चविंशतिः। पञ्चाशन्मितः कृतोऽस्त्यतो लोचनाप्ता इति। एवं भौमस्य सप्तत्रिंशत्। अतस्ते वाङ्घ्रयूना इति। परमाल्पशीघ्रकर्णोऽर्धमतो द्वयाप्तोऽपि। कलात्रयेणैकमंगुलमतस्त्रिघ्नः कलाद्यः स्यात्। एवमत्र नाडीमण्डलात् क्रान्तिमण्डलपर्यन्तं दक्षिणोत्तरमन्तरं क्रान्तिः। क्रान्तिमण्डलाद्ग्रहपर्यन्तं शरः। एवमुभयोः संस्कारे स्पष्टा क्रान्तिर्नाडिकामण्डलग्रहयोरन्तरे भवतीत्युपपन्नम् ॥१५॥

विश्वनाथः

अथ भौमादीनां शरसाधनमाह मन्दस्पष्टेति। मन्दस्पष्टो भौमः १०।३।८।४५ स्वपातेन राश्यादिना १।१० रहितः ८।२३।८।४५ अस्मात् केवलादयनांशसंस्कारं विना स्युः खण्डानित्यादिना क्रान्तिः २३।४३।३३ त्रयोविंशत्या २३ गुणिता ५४५।४१।३९ शीघ्रकर्णेन ११।५१।२१ भक्ता फलम् ४६।१।३८ स्वांघ्रयूनाअसृजः इत्युक्तत्वात् स्वचतुर्थांशेन ११।३०।२४ रहितं पातोनमन्दस्पष्टस्य दक्षिणगोलस्थत्वाज्जातोऽगुलादिको दक्षिण शरः ३४।११।१४ अत्र एतावान् विशेषः। यदा भौमस्य शीघ्रकर्ण एकादशाल्पस्तदा महदन्तरं पतति इति कारणात् शीघ्रकर्णेन भक्ताद्यत्फलं प्राप्तं तत् द्वाभ्यां भक्तं पश्चात् स्वचतुर्थांशेन रहितं कार्यं स भौमस्य शरो भवति। एकादशाधिके शीघ्रकर्णेनान्तरं तत्र स्वांघ्रयूना इत्येव। मन्दस्पष्टो बुधः १।५।३।१५ राश्यादिपातः ०।२०। ०।० अयमहर्गणोत्पन्नशीघ्रकेन्द्रेण ११।७।१४।५० रहितः ११।२।४५।१० अनेन मन्दस्पष्टो रहितः २।२।१८।५ अस्य क्रान्तिः २१।०।५१ त्रियमा—२३ हता ४८३।१९।३३ शीघ्रकर्णेन १३।५७।१० भक्ता फलं जातः शरः ३४।३८।२४ पातोनस्योत्तरगोलस्थत्वादुत्तरः॥ मन्दस्पष्टो गुरुः ४।१२।१२।४४ स्वपातेन राश्यादिना २।२० रहितः १। २२।५०।४४ अस्य क्रान्तिः १८।४९।११ त्रयोविंशतिगुणा ४३२।५१।१३ शीघ्रकर्णेन ११।१२।४२ भक्ता ३८।३६।२६ गुरोः पुनर्द्व्याप्ता फलं जातः शरः १९।१८।१३ पातोनस्योत्तरगोलस्थात्वादुत्तरः॥ शुक्रस्य पातो राश्यादिः २।० अहर्गणोत्पन्नशीघ्रकेन्द्रेण ३।५।४१।३५ रहितः १०।२४।१८।२५ अनेन मन्दस्पष्टः शुक्रो १।५।२५।२५ रहितः २।११।७।० अस्य क्रान्तिः २२।३२।२ त्रयोविंशत्या गुणिता ५१८।१६।४६ शीघ्रकर्णेन १२।२४।२ भक्ता फलं जातः शरः ४१।४७।४१ पातोनस्योत्तरगोलस्थत्वादुत्तरः॥ मन्दस्पष्टः शनिः १०।२१।२३।४२ स्वपातेन राश्यादिना ३।१० रहितः ७।११।२३।४२ अस्य क्रान्तिः १५।३१।१६ त्रयोविंशत्या २३ गुणिता ३५६।५५।१८ शीघ्रकर्णेन ११।२३।१८ भक्ता फलं जातः शरः २१।२०।२७ पातोनस्य दक्षिणगोलस्थत्वाद्दक्षिणः॥ भौमादीनामेते अंगुलात्मकशरास्त्रिगुणिता जाता भौमादीनां कलात्मकशराः। भौमस्य १०३। ३३।४२ बुधस्य १०३।५५।१२ गुरोः ५७।५४।३९ शुक्रस्य १२५।२३।३ शनेः ९४।१।२१ एते षष्टिभक्ता जाता अंशाद्याः। भौमस्य अंशाद्यः शरो दक्षिणः १।४३।३३ बुधस्योत्तरः १।४३।५५ गुरोरुत्तरः ०।५७।५४ शुक्रस्योत्तरः २।५५।२३ शनेर्दक्षिणः १।३४।१

स्पष्टा भौमादयः । भौमः ११।५।५६।४ बुधः १।१७।४।० गुरुः ४।२।९।४६ शुक्रः २।१२।१५।४६ शनिः १०।२६।४२।३० अयनांशाः १८।१० भौमादीनां क्रान्तयः । भौमस्य क्रान्तिर्दक्षिणा २।२१।३४ बुधस्योत्तरा २१।३२।३१ गुरोरुत्तरा १४।५९।१५ शुक्रस्योत्तरा १४।५९।१५ शुक्रस्योत्तरा २३।५८।५८ शनेर्दक्षिणा ६।३।० एताः स्वस्वशरेण संस्कृता जाता भौमादीनां स्पष्टाः क्रान्तयः । भौमस्य दक्षिणा ४।५।७ ज्ञस्योत्तरा २३।१६।२६ गुरोरुत्तरा १५।५७।९ शुक्रस्योत्तरा २६।४।२१ शनेर्दक्षिणा ७।३७।१ ॥१५॥

केदारदत्तः

अपने अपने पातों से रहित निरयण पृथक् पृथक् मंगलादिक पाचों तारा ग्रहों की की क्रान्तियों को २३ से गुणाकर अपने-अपने शीघ्रकर्ण से भाग देने से जो फल होता है, वही फल पातोनमन्दस्पष्ट ग्रह के जिस गोल का है उसी गोल का अंगुलादिक शर होता है ।

मंगल और गुरु के उक्त फल में विशेष संस्कार है कि बृहस्पति के फल में २ का भाग देने से तथा मंगल के उक्त शर में शर का ही चतुर्थांश घटा देने से वह मंगल और गुरु का स्पष्ट शर होता है ।

अंगुलादिक शर को तीन से गुणित कर देने से वह कलादिक हो जाता है । ग्रहों की मध्यमा क्रान्ति में उक्त शर का संस्कार कर देने से ग्रहों का स्पष्ट शर होता है । अर्थात् शर व क्रान्ति की एक दिशा में योग और भिन्न दिशा में अन्तर करना चाहिए ॥१५॥

भौमादिक ग्रहों की परम क्रान्ति २४ तुल्य में परम शर अंगुल क्रमशः ३७।५०।२५।५०।५० होते हैं । अनुपात से यदि २४ क्रान्ति अंशों में परम शरांगुल मान तो इष्ट क्रान्ति में इष्ट शरांगुल होते हैं ।

$= \frac{\text{पठित परम शर} \times \text{इष्ट क्रान्ति}}{२४}$ । फिर से अनुपात करने से उक्त शीघ्र कर्णाग्रीय शर को

२४ माप की त्रिज्या वृत्तीय बनाने से $= \frac{\text{पर शर} \times \text{इष्ट क्रा०} \times २४}{२४ \times \text{शीघ्र कर्ण}} = \frac{\text{पर शर} \times \text{इष्ट क्रा०}}{\text{शीघ्र कर्ण}}$

पूर्व में ११ मापक त्रिज्या में शीघ्र कर्ण का साधन हुआ है अतः उक्त फल को ११ मापक

शीघ्र कर्ण में मापित करने से $= \frac{\text{पर शर} \times \text{इष्ट क्रा०} \times ११}{२४ \times \text{शीघ्र कर्ण}} = \text{अ}$ । यदि परम शर $= ५०$

अंगुलादिक शर $= \frac{५० \times \text{इष्ट क्रा०} \times ११}{२४ \times \text{शी०क०}} = \frac{२३ \times \text{इष्ट क्रा०}}{\text{शीघ्रकर्ण}}$ बुध शुक्र और शनि के शरांगुल तुल्य होने से इन तीनों का इष्ट शर सिद्ध हो जाता है ।

अथ ५० अंगुल तुल्य परम शर में उक्त भौम शर तो मंगल के परम शर में—

$= \frac{\text{इष्ट क्रान्ति} \times २२ \times ३७}{\text{शीघ्र कर्ण} \times ५०} = \frac{\text{इष्ट का०} \times २३ \times ३}{\text{शीघ्रकर्ण} \times ४}$ इसी प्रकार ५० अंगुल मित परम

शर को गुरु के परम शर २५ में परिणत करने से $\frac{\text{इष्टक्रा० × २३ × २५}}{\text{शीघ्रकर्ण × ५०}} = \frac{\text{इष्ट क्रा० × २३}}{\text{शीघ्रकर्ण × २}}$

उपपन्न होता है ॥१५॥

वक्रास्ताद्यं तिथिपटगतुं तद्दिनेऽस्योक्तकेन्द्रं
स्यात् तच्चाल्यं त्वभिमतदिने स्वाशुकेन्द्रोक्तगत्या ।
तस्मात् प्राग्वच्चलफलमिदं चालितस्पष्टखेटे
व्यस्तं देयं मृदुजफलभाक् स्यात् ततो वा शराद्यम् ॥१६॥

मल्लारिः

अथ पञ्चांगीयस्फुटग्रहज्ञाने वक्रादिदिनज्ञाने चेष्टादिनस्थमन्दस्पष्टग्रहसाधनं करोति । तिथिपटे पञ्चांगे गतं वर्त्तमानं यद्वक्रास्ताद्यं तद्दिने तस्य ग्रहस्य उक्तकेन्द्रं त्रिनृपैरित्यादिकं स्यात् । तदभिमते इष्टे दिने । स्वशीघ्र केन्द्रोक्तगत्या गतगम्यदिनाहतद्युभुक्तेरित्यादिविधिना चालनीयं तस्मात् शीघ्रकेन्द्रात् पूर्वोक्तरीत्या शीघ्रफलं साध्यम् । इदं चालितस्पष्टग्रहे व्यस्तम् धनं चेत् तदा ऋणं ऋणं चेत् तदा धनं देयं स ग्रहो मन्दस्पटो भवति । तस्माद्वा शराद्यं साध्यमिति ।

अत्रोपपत्तिः–प्रत्यक्षविलोमविधिनैव सुगमा ॥१६॥

विश्वनाथः

अथ पञ्चांगात् शरसाधनार्थं मन्दस्पष्टग्रहसाधनमाह वक्रास्ताद्यमिति । तिथिपटगतं पञ्चांगस्थितं वक्रास्ताद्यं ज्ञेयम् । आदिशब्दादुदयमार्गौ । यस्य ग्रहस्य शरसाधनं क्रियते तस्य पञ्चांगस्थितं यत्र कुत्रापि वक्रोदयादि ज्ञेयं तद्दिवसे तस्य ग्रहस्य वक्रोदयादेः स्पष्टाधिकारोक्तं शीघ्रकेन्द्रं स्यात् । तद्यथा । वक्रास्ताद्यभागास्त्रिशद्भक्ता राश्यादिकं शीघ्रकेन्द्रं स्यादित्यर्थः । तदभिमतदिने इष्टदिवसे स्वाशुकेन्द्रस्योक्तगत्या गतगम्यदिनाहतद्युभुक्तेरित्यादिना चाल्यं तस्माच्चालितशीघ्रकेन्द्रात् प्राग्वत् पूर्वोक्तप्रकारेण चलफलं शीघ्रफलं कार्यं तच्चालितस्पष्टखेटे व्यस्तं विपरीतं देयं धनं तदा ऋणम् । ऋणं तदा धनं स ग्रहो मृदुजफलभाक् मन्दस्पष्टो भवति । वेत्यथ वा तस्मात् शराद्यं स्यात् । आदिः शब्दाद्दृक्कर्मादि । संवत् १६६७ शके १५३२ चैत्रशुक्ल ८ गुरो तद्दिने शुक्रास्तज्ञानार्थं अहर्गणादि कियते । चक्रम् ८ । अहर्गणः ७४७ । सूर्यः ११।२१।२२।१७ शुक्रस्य शीघ्रकेन्द्रम् ११।८।३१।५२ रवेर्मन्दकेन्द्रम् २।२६।३७।४३ मन्दफलं धनम् २।१०।२१ संस्कृतः सूर्यः ११।२३।३२।४८ चरणमृणम् २२ । संस्कृत स्पष्टो रविः ११।२३।३२।२६ स्पष्टा गतिः ५९।० शुक्रस्य शीघ्रकेन्द्रम् ११।८।३१।५२ शीघ्रफलार्धमृणम् ४।३०।३० संस्कृतः शुक्रः ११।१६।५१।४७ मन्दकेन्द्रम् ३।१३।८।१३ मन्दफलं धनम् १।३०।० मन्दस्पष्टः शुक्रः ११।२२।५२।१७ शीघ्रकेन्द्रम् ११।७।१५२ शीघ्र फलमृणम् ९।३७।४८ स्पष्टः शुक्रः ११।१३।१४।२९ स्पष्टगतिः ७४।५३ मन्दस्पष्टखगात्

इत्यादिना क्रान्तिरुत्तरा २३।४६।३८ शीघ्रकर्णः १८।१४।८ अंगुलाद्यः शरो दक्षिणः ३०।१२।५ ॥१६॥

केदारदत्तः

पाठ पठित शीघ्र केन्द्रांश के तुल्य शीघ्र केन्द्रांश जिस-जिस ग्रह का जिस-जिस दिन होगा उसी दिन वह-वह ग्रह वक्र अस्तोदय''''आदि होगा। अतः तत्कालीन इष्ट वश केन्द्र गति चालन से इष्ट कालिक शीघ्र केन्द्र, तथा अपनी गति से चालन देकर इष्टकालिक स्पष्ट ग्रह बनाना चाहिए। स्पष्ट ग्रह से शीघ्रफल साधन कर विलोम संस्कार से मन्द स्पष्ट ग्रह का ज्ञान होगा। तब मन्द स्पष्ट ग्रह से क्रान्ति शरादिक साधन होगा।

उपपत्ति—ग्रहों के वक्रादिक पठित केन्द्रांशों में 'गतगम्यदिनाहत द्युभुक्तेः' में चालन फल संस्कार से अभीष्ट कालीन केन्द्र व स्फुट ग्रह का ज्ञान सुगम ही है।

शीघ्र केन्द्र और स्फुट ग्रह से शीघ्रफल साधन कर उसे स्पष्ट ग्रह में विलोम संस्कार करने से मन्दस्पष्ट ग्रह का ज्ञान होगा ही। उपपन्नम् ॥१६॥

प्राक् त्रिभेण वर्जितात् संयुतात् तु पश्चिमे।
खेटतोऽपमाक्षयोः संस्कृतिर्नता लवाः ॥१७॥

मल्लारिः

अथ नतांशान् साधयति। प्राक्पूर्वोदयास्तसाधने राशित्रयेण हीनात्। पश्चिमोदयास्तसाधनेराशित्रयेण युक्तात् स्पष्टात् ग्रहात् क्रान्तिः साध्या साक्षांशैः संस्कृता नतांशाः स्युरित्यर्थः ॥१७॥

विश्वनाथः

अथ दृक्कर्मसाधनार्थं नतांशसाधनमाह प्रागिति। प्राक् पूर्वोदयास्तसाधने राशित्रयेण वर्जितात् स्पष्टखेटात् क्रान्तिः साध्या पश्चिमोदयास्तसाधने राशित्रयेण संयुतात्। क्रान्तिः साध्या। अक्षांशैः संस्कृता नतांशाः स्युरित्यर्थः। स्पष्टः शुक्रः ११।१३।१४।२९ पूर्वास्तस्य साध्यत्वात् त्रिभेण रहितः ८।१३।१४।२९ अस्य क्रान्तिर्दक्षिणा २३।५५।४२ अक्षांशैः संस्कृता जाता नतांशा दक्षिणाः ४९।२३।२४ ॥१७॥

केदारदत्तः

पूर्व क्षितिजस्थ ग्रह में ३ राशि कम, एवं पश्चिम क्षितिजस्थ ग्रह में ३ राशि जोड़ने से वित्रिभ का ज्ञान होता है। ततः क्रान्ति और अक्षांश के साधन से ग्रह का नतांश ज्ञान होता है ॥१७॥

उपपत्तिः—पूर्व क्षितिजस्थ ग्रह के तुल्य लग्न, एवं पश्चिम क्षितिजस्थ ग्रह में ग्रह + ६ राशि = लग्न मान होता है। लग्न में ३ राशि कम करने से वित्रिभ होता है अर्थात् पूर्व क्षितिजस्थ ग्रह में—३ राशि एवं पश्चिम क्षितिजस्थ ग्रह + ३ राशि = वित्रिभ लग्न का मान होगा वित्रिभ की क्रान्ति और अक्षांश के संस्कार से नतांश मान सुबोध सुगम है। उपपन्नम् ॥१७॥

पट्शैलाष्टनवार्कधृत्यदितिजाः खण्डानि कार्यं नतां-
शाशांशप्रमखण्डकैक्यमगतोच्छिष्टांशघातादद्युतम् ।
आशात्या रविहृच्छरांगुहतं लिप्ता ग्रहे ता नतां-
शेष्वोः स्वर्णमभिन्नभिन्नदिशि स व्यस्तं परे दृग्ग्रहः ॥१८॥

मल्लारिः

अथ दृक्कर्म साधयति । षट्शैलाष्टनवार्कधृत्यनितिजाः । एतानि खण्डानि । नतांशानां यो दशकांशस्तत्तुल्यखण्डानामैक्यं कार्यम् । ततस्तत् अगतखण्डशेषभागघ्नाद्दशमांशेन युतम् । शरांगुलगुणितं द्वादशभक्तं लिप्ता दृक्कर्मकला भवन्ति । ताः कलाः स्पष्टे ग्रहे धनं वा ऋणं देयाः शरनतांशयोरेकदिक्त्वे धनं भिन्नदिक्त्वे ऋणम् । पश्चिमोदयास्तसाधने व्यस्तमिदम् । दृग्ग्रहो दृक्कर्मदत्तो ग्रह आकाशे दृग्गोचरो भवतीत्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः । ग्रहो यस्मिन् राश्याद्यवयवे वर्त्तते स क्रान्तिमण्डलस्थो राश्याद्यवयवो यदा क्षितिजे उदेति तदैव ग्रहस्य नोदयः । ग्रहस्य विमण्डलेऽवस्थितत्वात् । शरतुल्येनान्तरेण ग्रहः क्षितिजादुन्नमितो नमितो व भवति । तदन्तरस्य दृक्कर्मसंज्ञा-यतोऽन्वर्थं नाम दृशःकर्म दृक्कर्म । तावताऽन्तरेण ग्रहो दृग्गोचरो भवति । तदपि दृक्कर्म द्विविधम् । आयनमाक्षजं चेति । यतः शरः क्षितिज एव नास्ति कदम्बाभिमुखत्वात् । उक्तं च सिद्धान्तशिरोमणौ—

> क्रान्तिवृत्तग्रहस्थानचिह्नं यदा स्यात् कुजे नो तदा खेचरोऽयं यतः ।
> स्वेषुणोक्षिप्यते नाम्यते वा कुजात् तेन दृक्कर्मखेटोदयास्ते कृतम् ॥
> नैव वाणः कुजेऽसौ कदम्बोन्मुखस्तत्समुत्क्षेपणं नामनं च द्विधा ।
> आयनं चाक्षजं तेन कर्मद्वयं तत्प्रपञ्चः पुनः संविविच्योच्यते ॥

एवमत्र च ग्रहादग्रतस्त्रिभेऽन्तरे दृक्कर्मणः परमत्वात् पूर्वस्यां त्रिभहीनः पश्चिमायां त्रिभयुक्तः इति तद्ग्रहस्य नतांशज्यातोऽनुपातः यदि उन्नतज्याकोटौ नतज्या भुजस्तदा शरकोटौ क इति दशभागोत्तरान् नतांशान् प्रकल्प्य तज्जीवाः स्वस्वोन्नतांशज्याभक्ताः सावयवा अतो द्वादशभिः सवर्णिताः । अनुपाते शरः कलात्मकः । अत्रांगुलाद्यो गृहीतोऽतः पुनस्त्रिसवर्णितः कृत्वा खण्डानि पठितानि । तत्र प्रथमं खण्डं प्रतीत्यर्थं साध्यते । दशतुल्यनतांशानां ज्या २१ । इयमेव षट्त्रिंशता सवर्णिता ७५६ उन्नतांशज्ययाऽनया ११८ भक्ता जातमाद्यखण्डम् ६ । एवमन्यान्यपि । मध्येऽनुपातः । यदि दशभागैरेकं खण्डं तदेष्टभागैः किमिति । फलयुक्तं गतखण्डैक्यं कार्यं तस्य शरो गुणो वर्त्तते । खण्डानि द्वादशगुणान्यतो द्वादश हरः । अतो रविहृत् शरांगुलहृयमिति । धनर्णोपपत्तिर्यथा । उन्नमिते ऋणं नमिते धनम् । यतः खस्वस्तिकात् क्रान्तिवृत्तस्य यत्रोन्नमनं तद्दिग्ग्रहस्यापि क्षितिजान्नमनं भवति । तस्माद्धनम् । अन्यदिक्त्वे ऋणमित्युपपन्नम् ॥१८॥

विश्वनाथः

अथ दृक्कर्मसाधनमाह षट्शैलेति। नतांशाः ४९।२३।२४ अस्य दशमांशः ४। एतन्मितखण्डयोगः ३०। उच्छिष्टम् ९।२३।२४ उनत १२ घ्नम् ११२।४०।४८ अस्य दशमांशेन ११।१६।४ गतखण्डैक्यं ३० युतम् ४१।१६।४ शरांगुल-३०।१२।५ हतम् १२४६ २०।२९ द्वादशभक्तं फलं कलादि दृक्कर्म १०३।५१ नतांशेष्वोरेकदिक्त्वाद्धनम्। नतांशशरयोरेकदिशि धनं भिन्नदिशि ऋणम्। परे पश्चिमास्तोदये साध्यमाने व्यस्तं विपरीतं देयम्। भिन्नदिशि धनम्। एकदिशि ऋणमित्यर्थः। स दृग्ग्रहः दृक्कर्मदत्त-ग्रहो भवति। स्पष्टः शुक्रः दृक्कर्मसंस्कृतः ११।१४।५८।२० ॥१८॥

केदारदत्तः

दृग्ग्रह साधन के लिए ग्रह के ६, ७, ८, ९, १२ और १८ ये खण्ड होते हैं। नतांश में १० का भाग देकर लब्ध तुल्य खण्डों का योग करना चाहिए। ऐष्य खण्ड और शेषांश के घात में १० से भाग देकर लब्धफल को उक्त योग में जोड़कर जो योगफल हो उसे अंगुलादिक शर से गुणा कर गुणनफल में १२ का भाग देने से लब्ध कलादिक फल का नाम दृक्कर्म होता है। नतांश और शर का एक दिशा में योग भिन्न दिशा में अन्तर करने से, पूर्व में उदया-स्तादि साधन के लिए दृग्ग्रह होता है। पश्चिम दिशा के दृग्ग्रह साधन में शर नतांश का विलोम संस्कार होने से दृग्ग्रह होता है ॥१८॥

उपपत्तिः—क्रान्ति तृतीय ग्रह स्थान जब क्षितिज में आता है तो उस समय विमण्ड-लीय वास्तव ग्रह विम्ब शर के तुल्य अन्तरित होने से क्षितिज से नीचे या ऊपर गोल वशात् रहता है। प्रत्यक्ष दर्शनीय ग्रह विम्व अपने विमण्डल में रहता है। अतः ग्रह स्थान विन्दु के उदय के पूर्व या पश्चात् के कितने समय में ग्रह विम्ब क्षितिज में दृष्टि पथ में आया या आवेगा, इसी को दृक्कर्म काल कहा जाता है। अभी तक फलादेश के लिए सभी ग्रह गणित ग्रह स्थानीय गृहीत किया गया है।

क्षितिजस्थ ग्रह बिम्ब के ऊपर गया हुआ कदम्ब प्रोत वृत्त और समप्रोत वृत्त (अर्थात् क्षितिज वृत्त ही) का क्रान्ति वृत्तीय अन्तर मान का नाम स्पष्ट दृक्कला होता है। ग्रहविम्ब व क्षितिज का योग ही दृग्ग्रह है। ऐसी स्थिति में ग्रह स्थान और विम्ब का याम्योत्तरान्तर = कदम्बप्रोत वृत्त में = शर = कोटि। ग्रह विम्ब और ग्रह स्थान का पूर्वापर वृत्तीय अन्तर = संस्कार कला = भुज। बिम्ब और दृग्ग्रह का क्षितिज वृत्तीय अन्तर = कर्ण इस प्रकार के त्रिभुज में क्रान्ति वृत्त के ऊपर लम्ब रूप कदम्ब वृत्त से, क्रान्ति वृत्त व कदम्बप्रोत से उत्पन्न कोण = ९० ज्या = त्रिज्या। क्षितिज और क्रान्ति वृतोत्पन्नोत्पन्न कोण ज्या = वित्रिभ की उन्नतांश ज्या। अतः क्षितिज कदम्ब-प्रोत व्रतोत्पन्न विम्ब लग्न कोण = वित्रिभ नतांश की ज्या। अतः कोणानुपात से भुजमान

$$= \frac{\text{शर कला} \times \text{वित्रिभ नतांश ज्या}}{\text{वित्रिभोन्नतांश ज्या}} = \text{दृक्कर्म कला} = \frac{\text{शरांगुल} \times ३ \times \text{वित्रिभ नतांश ज्या}}{\text{वित्रिभ शंकु}}$$

$$= \frac{\text{शर अं०} \times ३ \times \text{वित्रिभ ज्या} \times १२}{\text{वित्रि शं} \times १२} = \frac{\text{शरांगुल} \times ३६ \times \text{वित्रिभ नत ज्या}}{\text{वित्रिभ नतांश} \times १२} \quad (\text{अ})$$

यहां पर आचार्य ने १० अंश वृद्धि क्रम से ज्या बनाकर उन्हें ३६ से गुणाकर वित्रिभोन्नतांश ज्या से भाग देकर उपलब्ध फलों का अधोऽधः अन्तर का नाम खण्ड कह कर पूर्व में षट्शैलाष्ट'''से पढ़ दिये हैं।

अतः अनुपात से १० अंश में एक खण्ड तो अभीष्टांश में $\frac{\text{अंश खं० × शेषा}}{१०}$

आगत फल को लब्ध तुल्य खण्ड योग में जोड़ कर योग में ३६ गुणित वित्रिभ उन्नतांश ज्या से भाग देकर वित्रिभ नतांश ज्या कहा है। जो= $\frac{\text{शरांगुल × (गतखण्डयोग + अ.ख. × शेषांश)}}{१२ × १०}$

नतांश और शर की एक ही दिशा दृग्ग्रह स्थान से लम्बित दोनों की भिन्न दिशा में दृग्ग्रह उन्नत होने से दोनों का योगान्तर संस्कार समीचीन होता है। उपपन्नम् ॥१८॥

कल्प्योऽल्पो रविरर्कदृक्खचरयोरन्यश्च लग्नं तयो-
र्मध्ये स्युर्घटिकाश्च पूर्ववदिमाः पश्चात् सचक्रार्धयोः।
षड्घ्न्यः काललवा अमीभिरधिकैर्गम्योऽत ऊनैर्गतः
प्रोक्तेभ्योऽभ्यधिकैर्गतः समुदयोऽप्यूनैस्तु गम्यो भवेत् ॥१९॥

मल्लारिः

अथोदयास्तयोः कालज्ञानमाह। व्याख्या। अर्कः सूर्यः। दृक्खचरो दृक्कर्मदत्तो ग्रहः। अनयोर्द्वयोर्मध्ये योऽल्पः स रविः कल्प्यः अधिको लग्नम्। तयोर्लग्नार्कयोर्मध्ये भुक्तभोग्यादिविधिना घटिकाः साध्याः। पश्चिमोदयास्तसाधने सचक्रार्धयोः षड्राशि-युक्तयोर्लग्नार्कयोर्घटिकास्ताः षड्गुणा इष्टकालभागाः स्युः। तैरिष्टकालांशैः प्रोक्त-कालांशेभ्यश्चन्द्रशुक्रयोस्तु वक्ष्यमाणसंस्कृतेभ्योऽभ्यधिकैरस्तो गम्यः। न्यूनैर्गतः। उद-यस्तु अधिकैर्गतो न्यूनैर्गम्यः।

अत्रोपपत्तिः प्रत्यक्षसुगमा ॥१९॥

विश्वनाथः

अथैवं दृक्कर्म दत्वा ग्रहस्योदयास्तदिनज्ञानार्थं गतगम्यलक्षण माह कल्प्योऽल्पो रविरिति। अर्कः सूर्य दृक्खचरो दृक्कर्मदत्तो ग्रहः। तयोर्मध्येऽल्पो रविः कल्प्यः। अधिको यस्तल्लग्नं कल्प्यम्। तयोर्लग्नार्कयोर्मध्ये अयनांशान् दत्वा प्राग्वत् 'अर्कस्य भोग्य' इत्यादिना एदराशिस्थे तु तदंशान्तरहतेत्यादिना कालः साध्यः। पश्चात् पश्चिमोदयास्तसाधने सचक्रार्धयोः षड्राशियुक्तयोर्लग्नार्कयोः कालः साध्यः। पला-त्मकः षष्टिभक्तो घटिकात्मको भवति। ता घटिकाः षड्गुणिता इष्टाः कालांशाः स्युः। अमीभिरिष्टकालांशाः पूर्वोक्तस्थिरकालांशेभ्योऽधिकैरस्तो गम्य ऊनैर्गतोऽस्तः। उदयस्तु अधिकैर्गतो न्यूनैर्गम्यः। अर्कः ११।२३।३२।२६ दृक्कर्मसंस्कृतः शुक्रः ११।१४। ५८।२० अनयोर्मध्येऽल्पः शुक्रः स एव रविः ११।१४।५८।२० अयनांशयुक्तः ०।३।६।२०

अन्यो रविर्लग्नम् ११।२३।३२।२६ अयनांशाः १८।८ अयनांशयुक्तलग्नम् ०।११।४०।२६ अनयोरेकराशिविद्यमानत्वाद्भागान्तरम् ८।३४।६ अनेन मेषोदयो २२१ गुणितः १८९३। ३६।६ त्रिशद्भक्तो जातः कालः १।३ षड्गुणा जाता इष्टकालांशाः ६।१८ शुक्रस्य प्रोक्तकालांशाः संस्कारेण ६।४६ ।।१९।।

केदारदत्तः

स्पष्ट सूर्य और दृग्ग्रह इन दोनों में राश्यादिक से कम अर्थात् पृष्ठ स्थित हो उसे सूर्य, राश्यादिक से अधिक को अर्थात् अग्रिमस्थ को लग्न मानकर 'अर्कभोग्यस्तनोर्भुक्त-कालान्वित' की विधि से दोनों की अन्तर घटिका ज्ञात कर उन्न अन्तर घटिकाओं को ६ से गुणा करने से अन्तरांश होते हैं।

यदि अन्तरांश कथित कालांश से अधिक तो अस्त को गम्य आगे, और कथित कालांशों से अन्तरांश कम में अस्त गत है ऐसा समझना चाहिए।

तथैव अन्तरांश के कालांश से अधिक और अल्प होने से उदय को क्रमशः गत और गम्य समझना चाहिए ।।१९।।

उपपत्तिः—सूर्य और दृग्ग्रह की अन्तर घटिकाओं को ६ से गुणा करने से अन्तरांश होते हैं स्पष्ट है। ये अन्तरांश ग्रह के पठित कालांश से अधिक से ग्रहास्त समय गम्य, कम से गत, तथा ग्रहोदय विचार में उक्त गतगम्य लक्षण क्रमशः गम्य-गत रूप में होंगे ही ।।१९।।

खाभ्राग्निभिर्विनिहताः कथितेष्टकाल-
भागान्तरस्य कलिका रविभोदयाप्ताः ।
तत्सप्तमेन परतोऽथ जवान्तराप्ता
योगेन वक्रिणि दिनान्युदयास्तयोः स्युः ।।२०।।

मल्लारिः

अथ दिवसानयनम्। कथिताः पूर्वोक्ताः इष्टाः। इदानीमानीता ये कलांशास्तेषां यदन्तरं तस्य कलाः खाभ्राग्निभि-३०० विनिहिताः शतत्रयगुणाः। ततो रविभोदयेन सूर्याधिष्ठितराशेः स्वदेशोदयेन भक्ताः। परतः पश्चिमोदयास्तसाधने तत्सप्तमोदयेन भक्ताः कार्याः। ततो जवान्तरेण रविग्रहगत्यन्तरेण भक्ताः वक्रिणि ग्रहे गतियोगेन भक्ताः सन्त उदयास्तयोर्दिनानि स्युरित्यर्थः

अत्रोपपत्तिः। यदि उदयासुभी राशिकला १८०० लभ्यन्ते तदा कालांशान्तरकलातुल्यासुभिः किम्। एवं कालांशान्तरकलानामष्टादशशतं गुणः। उदयासवो हरः। अत्रोदयपलानि सन्त्यतोऽन्यः षड्हरः। एवं गुणे षड्भक्ते जातस्त्रिशतीगुणः। अतः उक्तं खाभ्राग्निभिर्विनिहता इति। पश्चिमायां सप्तमोदयादनुपातः। यदि गत्यन्तर-

कलाभिरेकं दिनं तदाभिः किमित्यतो जवान्तराप्ता इति । वक्रिणि गतियोगं विनान्तरं न सिध्यति । अतो गतियोगाप्ता इति । एवमुदयास्तदिनानि स्युरित्युपपन्नम् ॥२०॥

विश्वनाथः

अथ दिवसानयनमाह खाभ्राग्निभिरिति । कथिताः ६।४६ इष्टकालांशाः ६।१८ अनयोरन्तरभागः ०।२८। अस्य कलिकाः २८ खाभ्राग्निभि–३०० गुणिताः ८४०० । पूर्वास्तस्य साध्यत्वात् सायनसूर्याधिष्ठतराश्युनयेन २२१ भक्ताः ३८।०।३२ परतः पश्चिमास्तोदये सति तत्सप्तमेन सायनरवेः सप्तमोदयेन भक्ताः कार्या । रविशुक्रगत्यन्तरेण १५।५३ भक्ताः फलमस्तस्य गतदिनानि २।२३।३४ चैत्रशुक्लाष्टम्याः सकाशात् पूर्वमेभिर्दिनादिकैः २।२३।३४ शुक्रस्य पूर्वास्तः । वक्रिण उदयास्तः साध्यते । स चेद्वक्री तदा गतियोगेन भक्ताः कार्याः ॥२०॥

केदारदत्तः

पाठ पठित कालांशों का इष्ट कालांशों के साथ अन्तर कर कलाओं को ३०० से गुणाकर गुणनफल में रवि स्थित राशि के उदयमान से भाग देने से प्राप्त कलादिक फल में रवि और दृग्ग्रह की गत्यन्तर कलाओं से भाग देने से लब्ध दिनादिक पूर्वोदयास्त के दिनादिक हो जाते हैं ॥

पश्चिमोदयास्तादि साधन के लिए रविनिष्ठ राशि से जो सातवीं राशि हो उसके उदयमान से भाग देना चाहिए । वक्रीग्रह में गतियोग से भाग देना चाहिए ॥२०॥

उपपत्तिः—कथित और इष्ट कालांशों का अन्तर = अंक में ६, से भाग देने से अन्तर असु (प्राण) होते हैं । $= \frac{\text{अं० क०}}{६}$ । उदयमान = उदयमान । अनुपात से अंक

$= \frac{\text{अंक} \times १८००}{६ \times \text{उदयमान}}$ । $= \frac{\text{अं०क० } ३००}{\text{उदयमान}}$ । पुनः गत्यन्तर में एक दिन तो अंक में = दिनादिक

उपलब्धि होती है । $= \frac{\text{अं०क०} \times ३००}{\text{उदयमान} \times \text{गत्यन्तर कला}}$ । वक्री ग्रह में गतियोग से भाग देना सविशेष है । उपपन्नम् ॥२०॥

स्यात् खाभ्राग्न्युदयान्तरं भवहृतं स्वर्णं पृथूनोदये
यत् तत्संस्कृतदृष्टिकर्मलवतः प्राणांशसंस्कारिताः ।
पूर्वोक्ता भृगुचन्द्रयोः क्षणलवाः स्पष्टा भगोश्चोनिता ।
द्वाभ्यां तैरुदयास्तदृष्टिसमता स्याल्लक्षितैषा मया ॥२१॥

मल्लारिः

अथ चन्द्रशुक्रयोरुदयास्तयोरन्तरमाह । शतत्रयस्वोदस्य च यदन्तर तद्भैः सप्तविंशत्या विहृतं भक्तं सत् यत् फलं स्यात् तत् फलं शतत्रयादधिके उदये धनमूने

ऋणम् । अनेन भागादिफलेन संस्कृतदृक्कर्मभागेभ्यो यः प्राणांशः पञ्चमभागस्तेन पूर्वोक्ता नवद्वादशमिताः शुक्रचन्द्रयोः कालांशाः संस्कृता धनर्णत्वेन स्पष्टाः स्युः। भृगोः शुक्रस्य द्वाभ्यां च हीनाः कार्याः । तैः कालांशैः शुक्रचन्द्रयोरुदयास्तदृष्टिसमता स्यात् । एषा मया लक्षिता वर्त्तमानघटनामवलोक्य ज्ञाताऽत्रातो मूलोपलब्धिरेव वासनेति सिद्धम् ॥२१॥

विश्वनाथः

अथ ग्रन्थकृता शुक्रचन्द्रयोः कालांशानां संस्कारो लक्षितस्तमाह स्यादिति । खाभ्राग्नयः ३०० । सायनशुक्रस्योदयः २२१ । अनयोरन्तरं ७९ भ-२७ विहृतं फलमंशादि २।५५।३३ शतत्रयेभ्य उदयस्य न्यूनत्वादृणम् । दृक्कर्मलवा धनम् १।४३।५१ अनयोः संस्कृतिः १।११।४२ एषां पञ्चमांशः ऋणम् ०।१४ शुक्रस्य कालांशाः ९ एते । आभिः कलाभि-१४ रूनिताः ८।४६ पुनरंशद्वयेन २ ऊनिताः शुक्रस्य कालांशाः ६।४६ एतैः कालांशैः साधितोदयास्तयोर्दृष्टिसमता स्यात् । एषा मया लक्षिता यन्त्रवेधादिनोदयास्तयोरन्तरं लक्षितमित्यर्थः । कलांशाः ६।४६ एभ्य इष्टकालांशा ६।१८ न्यूनाः अतो गतोऽस्तः ॥२१॥

केदारदत्तः

सायन शुक्र और सायन चन्द्रमा के राश्युदय पलों का ३०० के साथ के अन्तर में २७ से भाग देने से फल, ३०० से अधिक व कम में फल क्रमशः धन और ऋण समझना चाहिए । उक्त फल का दृक्कर्म ग्रह में संस्कार करके, इसके पञ्चमांश को पठित केन्द्रांश में संस्कार करने से स्पष्ट कालांश होता है ।

शुक्र के कालांश में २ कम करने से वास्तविक शुक्र कालांश होता है । इस प्रकार से संस्कारित कालांशों से दृग्गणितैक्य होता है आचार्य का कथन है कि जैसा मैंने स्वयं देखा है ॥२१॥

उपपत्तिः—यह आचार्य के ग्रह वेध का स्वयं का अनुभव है । जिसे प्रत्यक्ष उपलब्धि कहते हैं और ग्रह गणित गोल तन्त्र में प्रत्यक्ष की उपलब्धि के अनन्तर किसी भी प्रमाण का प्रामाण्य नहीं होता ॥२१॥

पलभाऽष्टवधोनसंयुता भजशैला वसुखेचरा लवाः ।
इह तावति भास्करे क्रमाद्घटजोऽस्त ह्युदयं च गच्छति ॥२२॥

मल्लारिः

अथागस्त्योदयास्तज्ञानमाह । अक्षभा अष्टगुणा भागाः स्युस्तभोगैर्गजशैला अष्टसप्ततिः । ऊना रहिता । वसुखेचरा अष्टनवतिः । युक्ता कार्या । तत्समे सूर्ये सति क्रमाद्घटजोऽगस्त्यः । अस्तमुदयं च गच्छति इत्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः। अगस्त्यध्रुवः सप्ताशीतिभागा आयनदृक्कर्मसंस्कृताः। तथास्य कालांशा द्वादश १२। एतेषां क्षेत्रांशा एकादश सप्ताशीत्यंशेषु युक्ताः ९८। एतन्मिते सूर्ये उदयः। अस्ते व्यस्तायनदृक्कर्मसंस्कृता ध्रुवभागाः ८९। क्षेत्रांशै ११ रूना जाताः ७८। एतन्मिते सूर्येऽस्तः। इदं निरक्षे। साक्षे तु अक्षदृक्कर्म कर्तुं युज्यते शरस्य महत्त्वात्। मुख्यकल्पेन स्फुटास्फुटक्रान्तिजयोश्चरार्धयोरित्यादिविधिना एकांगुलाक्षभाया अष्टौ भागा उत्पद्यन्ते। ततोऽनुपातः। यद्येकांगुलपलभया अष्टौ भागास्तदेष्टपलभया किमिति। अक्षभाया अष्टौ गुणाः रूपं हरः अतः पलभाष्टवधोनसंयुता इत्याद्युपपन्नम्। अत्रानुपातस्याप्राप्तौ प्राप्तिः कृता तेन षट्पलभापर्यन्तं स्वल्पान्तरमग्रे बह्वन्तरम् ॥२२॥

विश्वनाथः

अथागस्त्योदयमाह पलभाष्टेति। पलभा ५।४५ अष्टगुणः ४६।० अनेन गजशैलभागा ७८ रहिताः। वसुखेचरऊवा ९८ युक्ताः १४४। एते त्रिशद्भक्ता राश्यादि। वृषभराशौ अंशद्वयेऽस्तः। सिंहस्थेऽर्के चतुर्विंशतिभागे उदयः ॥२२॥

केदारदत्तः

अष्टगुणित पलभा को ७८° अंश में घटाने से शेष के तुल्य सूर्य के अंशों में अगस्त्य तारा का अस्त, तथा अष्टगुणित पलभा को ९८ मे जोड़ने से, जो अंशादिक हो तत्तुल्य सूर्य स्पष्ट के अंशों में सूर्य का उदय होता है ॥२२॥

उपपत्तिः—छायाधिकार के श्लोक ४ में अगस्त्योदय का आयन दृक्कर्म संस्कृत ध्रुवक = ८८, तथा कालांश से साधित क्षेत्रांश = १०। शून्य अक्षांश या अक्षांश रहित भूपृष्ठ देशों में, क्षेत्रांश हीन और युक्त तुल्य ध्रुवांश तुल्य सूर्य में अगस्त्य का अस्त और उदय होना युक्ति युक्त होता है। जैसे अगस्त्यास्त कालीन सूर्य = ध्रुवांश + क्षेत्रांश + अक्ष दृक्कर्मांश = ८८ + १० + ८ × पलभा = ९८ − ८ × पलभा। अगस्त्योदय कालीन सूर्य = ध्रुव + क्षेत्रांश + अक्ष दृ० अं० = ८८ + १० + ८ × पलभा = ९८ + ८ पलभा। उपपन्न है ॥२२॥

खेचरोऽर्कास्तकाले सषड्भार्कतो
योऽधिकोऽल्पोऽर्कतो निश्युदेतीह सः ॥
अस्तमेत्यन्यथा यो विधेयः क्रमात्
पूर्वपश्चात्स्थदृक्कर्मभाक् स ग्रहः ॥२३॥

मल्लारिः

अथ ग्रहस्य नित्योदयास्तज्ञानमाह। सूर्यास्तकाले यो ग्रहः सषड्भसूर्यादधिकः। अथ वा केवलात् सूर्यादूनः सः निश्युदेदीति। अन्यथाऽस्तमेति। अथो स ग्रहः क्रमेण पूर्वपश्चात्स्थदृक्कर्मभाग् विधेय इति।

अत्रोपपत्तिः। ग्रहोदये ग्रहतुयं लग्नं सूर्यास्ते सषड्भार्कतुल्यमुदयलग्नम्। केवलार्कतुल्यमस्तलग्नम्। अतः सषड्भार्काद्ग्रहेऽधिके रात्रौ ग्रहस्योदयः। केवलार्कादूने अस्त इति प्रत्यक्षम्। उदयास्तयोः कालज्ञानार्थं दृक्कर्मसंस्कृतो ग्रहः कार्यः ॥२३॥

विश्वनाथः

अथ ग्रहाणां नित्योदयास्तज्ञानार्थं दृश्यादृश्यलक्षणमाह खेचरोऽर्कास्तेति। अर्कास्तकाले सूर्यास्तसमये। खेचरो ग्रहः कार्यः सूर्यश्च। ग्रहः सषड्भसूर्यादधिकः केवलसूर्यादल्पश्चेत् तदा निशि रात्रौ उदेति उदयः प्राप्नोति। अन्यथा तद्विपरीतश्चेत् तदाऽस्तं याति। ग्रहः सषड्भार्कतोऽल्पः सूर्याधिक इत्यर्थः। अथो आन्तर्येन एवं दृश्यज्ञाने सति स ग्रहः पूर्वपश्चिमस्थदृक्कर्मभाग् विधेयः। उदये पूर्वदृक्कर्म देयमस्ते पश्चिम दृक्कर्म देयमित्यर्थः। शकः १५३४ वैशाखशुक्ल-१५ पौर्णिमास्यां गुरोर्नित्यास्तसाधनम्। स्पष्टः सूर्यः १।५।४२।३७ स्पष्टा गतिः ५७।३६ स्पष्टो गुरुः ४।२।९।४९ स्पष्टा गतिः ५।२२ मन्दस्पष्टो गुरुः ४।१२।५२।४४ मन्दस्पष्टा गतिः ४।४२ दिनमानम् ३३।६। सूर्यास्ते चालितः सूर्यः १।६।१४।२३ गुरुः ४।२।१२।४५ मन्दस्पष्टो गुरुः ४।१२।५५।१९ स्वपात-२।२० रहितः १।२२।५५।१९ केवलात् क्रान्तिः १८।४९ शीघ्रकर्णः ११।१२।४२ अंगुलाद्यः शर उत्तरः १९।१८।५२ स्पष्टो गुरुः ४।२।१२।४६ अष्टं सषड्भार्का ७।५।३२ ३७ न्यून केवलार्कादधिक इति रात्रावस्तं गमिष्यतीति निर्णीतम्। अथ पश्चिमास्तस्य साध्यत्वात् त्रिभयुक्तः ७।२।१२।४६ अस्य क्रान्तिर्दक्षिणा १८।१२।४१ अक्षांशैः संस्कृता जाता नतांशा दक्षिणाः ४३।३८।२३ दृक्कर्म कलाद्यं धनम् ५५।१८ दृक्कर्मसंस्कृतो गुरुः ४।३।८।४ ॥२३॥

केदारदत्तः

६ राशि युक्त सूर्य से अधिक या अल्पग्रह रात्रि में उदित होता है। विलोम स्थिति में रात्रि में अस्त होता है। उदय और अस्त के ज्ञान के लिए पूर्व और पश्चिमस्थ दृक्कर्मांश का ग्रह में संस्कार करना चाहिये ।।२३।।

उपपत्तिः—सूर्यास्त समय में ६ राशि युक्त सूर्य से अधिक और कम राश्यात्मक ग्रह क्षितिज के नीचे होने से रात्रि में उदय होगा ही। क्षितिज से ऊपर गत ग्रह अस्त होगा ही ।।२३।।

उद्गमे यातकालः खगात् त्वस्तके
षड्भयुक्तात् सषड्भार्कभोग्यान्वितः।
युक्तमध्योदयोऽस्योद्गमास्ते भवे-
द्रात्रियातोथ तत्कालखेटात् स्फुटः ॥२४॥

मल्लारिः

अथोदयास्तकाले रात्रिगतघटिकाज्ञानमाह। उदये सति ग्रहाद् भुक्तः कालः

साध्यः । अस्ते च षड्भयुक्तात् ग्रहाद् यात एव कालः साध्यः । सषड्भसूर्यास्तकालेन युक्तः । ततो मध्योदययुक्तः कार्यः एतावान् कालो ग्रहस्योदये अस्ते च रात्रेर्गतो भवति । तात्कालिकदृदृक्कर्मादि विधाय स कालः पुनः साध्यः स्पष्टः स्यादित्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः पूर्वप्रतिपादितैव ।।२४।।

विश्वनाथः

अथ रात्रौ ग्रहोदयास्तयोर्गतघटिकाज्ञानमाह उद्गमेति । उद्गमेउदये साध्यमाने खगाद् दृक्कर्मदत्तग्रहाद् यातः कालो भुक्तकालः साध्यः । अस्ते षड्युक्ताद्ग्रहाद् भुक्तकालः साध्यः । स कालः सषड्भार्कस्य भोग्य कालेनान्वितो युक्तमध्योदयः । एवमस्योद्गमास्ते घटिकादिको रात्रियातो भवेत् । तात्कालिकग्रहात् कालः पुनः साध्यः स्पष्टः स्यादित्यर्थ । सषड्भदृक्कर्मदत्तग्रहाद् भुक्तकालः १७९ । सषड्भसूर्यात् ७।६।१४।२३ भोग्यकालः ६४ । भुक्तभोग्ययोर्योगे २४३धनु-३४२मकरो-३०४दयाभ्यां युक्तः ८८९ । सूर्यास्तादाभिर्घटिकाभिः १४।४९ गुरोरस्तः । आभिर्घटिकाभिश्चालितो गुरुः ४।२।१४।६ तल्लग्नम् ४।३।९।२४ रविः १।६।२८।४६ लग्नभुक्तम् १७९ । रविभोग्यम् ६१।३६।६ अनयोर्योगः २४० । धनु--३४२मकरो–३०४दयैर्युक्तः ८८६ षष्टिभक्तो जातः स्पष्टः कालः १४।४६ ।।२४।।

केदारदत्तः

ग्रह के उदय और अस्त समय में, केवल अस्तकालिक सूर्य और अस्तकालिक ६ राशि युक्त सूर्य के भुक्तकाल में ६ रादि युक्त सूर्य का भोग्यकाल और मध्यगत राशि के उदयकाल के योग करने से रात्रिगत काल होता है । एवं इष्ट कालिक ग्रह पर से साधित स्पष्ट काल होता है ।।२४।।

उपपत्तिः—सूर्यास्त समय में पूर्व पश्चिम क्षितिज के ऊपर और नीचे स्थित ग्रह का रात्रि में उदय और अस्त स्पष्ट होता है गोलज्ञान दक्ष स्वयं समझते हैं ।।२४।।

इन्दोस्तु गोपलाढ्योनः कार्योऽथ प्रतिनाडिकम् ।
युतो द्विद्विपलैः स्पष्टः किं स्यात् तात्कालिकेन्दुना ।।२५।।

मल्लारिः

चन्द्रस्यासकृत्प्रकारार्थं विशेषं वदति । चन्द्रस्य स कालश्चद्गोपलैर्नवपलैः । उदयेऽस्ते क्रमेण आढ्य ऊनः कार्यः । प्रतिघटिकं पलद्वयेन युक्तः । द्विगुणघटीतुल्यैः पलैर्युक्तः स्पष्टः कालः स्यात् । तात्कालिकचन्द्रात् पुनः कालः साध्य इति प्रयासेन किं प्रयोजनमिति । अत्रोपलब्धिरेव वासना ।।२५।।

देवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन ।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्य खगोदयास्तानयनं समाप्तम् ।।

इति श्रीगणेशदैवज्ञविरचितस्य ग्रहलाघवस्य टीकायां मल्लारिदैवज्ञ विरचितायामुदयास्ताधिकारो नवमः ।।९।।

विश्वनाथः

अथ तात्कालिकं चन्द्रं विना कालस्पष्टीकरणमाह इन्दोरिति । चन्द्रस्य कालो गो-९ पलाढ्योनो नवपलैरुदये युक्तः । अस्ते ऊनः । प्रतिघटिकं द्विद्विपलैर्युक्तः । द्विघ्नघटिकातुल्यपक्षैः फलस्थाने युक्त इत्यर्थः । स स्पष्टकालः स्यात् । एवं कृते तात्कालिकचन्द्रात् पुनः काल- साध्य इति प्रयोजनं नास्तीति सूचितमिति ॥२५॥

इति ग्रहोदयास्ताधिकारोदाहरणम् ।

केदारदत्तः

पूर्व साधिक चन्द्रमा के उदय और अस्त काल में ९ पल जोड़ देने और घटा देने से, तदनन्तर प्रत्येक घटिकाओं में २ पलों को जोड़ने से चन्द्रमा का स्पष्टकाल होता है । यहाँ पर अभीष्ट कालिक चन्द्रस्पष्ट साधन की आवश्यकता नहीं होती है ।।२५॥

उपपत्तिः— $\frac{\text{गति योजन}}{१५}$=भूव्यासार्ध । चन्द्रमा का कलात्मक लम्बन = $\frac{\text{चं० ग०}}{१५}$

= $\frac{७९० । ३५}{१५}$ = ५३ स्वल्पान्तर से असु माना है । अतः पलात्मक चन्द्र पर लम्बन

=$\frac{५३}{६}$स्वल्पा० से असु माना है अतः लम्बन से युत और हीन गर्भीय चन्द्रोदयास्त काल पृष्ठीय

होते हैं । चन्द्र सावन – सूर्य सावन = ७२१ । अतः पल=$\frac{७२१}{६}$ = १२० अनुपात से एक

घटिका में अन्तर पलमान = $\frac{१२० \times १}{६०}$ = २ पल । अतः प्रत्येक घटी में २ पल के योग से

उदयास्त काल स्पष्ट होते हैं । उपपन्नम् ॥२५॥

गर्गगोत्रीय स्वनामधन्य, कूर्माञ्चलीय ज्योतिर्विद्वर्य श्री पं० हरिदत्त जोशी के आत्मज अल्मोड़ामण्डलीय जुनायल ग्रामज पर्वतीय, काशीस्थ (नगवानलग्राम) श्री केदारदत्त जोशी कृत ग्रहलाघव उदयास्ताधिकार की उपपत्ति सहित सोदाहरण व्याख्या सम्पूर्ण ॥९॥

अथ ग्रहच्छायाधिकारः

प्राग्दृष्टिकर्मखचरस्तनुतोऽल्पकोऽस्तात्
पुष्टश्च दृश्य इह खेचरभोग्यकालः ।
लग्नेन युक् च विवरोदययुगद्युयात-
स्यात् खेचरस्य सितगोर्यदि गोपलोनः ॥१॥

मल्लारिः

अथ ग्रहच्छायाधिकारो व्याख्यायते । दत्तपूर्वदृक्कर्मा ग्रह इष्टकालीनलग्ना-द्यदाऽल्पोऽस्तात् सप्तमलग्नाद्यदाधिकः स्यात् तदा तत्समये ग्रहो दृश्यः । इहेष्टकाले ग्रहस्य भोग्यकालः । तनुभुक्तयुक् मध्योदययुक् च कार्यः । ग्रहस्योदयाद् द्युगतकालः । स्यात् । चन्द्रस्य चेत् तर्हि नवपलोनः कार्यः

अत्रोपपत्तिरतिसुगमा ॥१॥

विश्वनाथः

अथ ग्रहच्छायोदाहरणम् । तत्र रात्रौ ग्रहस्य दृश्यादृश्यत्वज्ञानं दिनगतसाधन-माह प्रागिति । शके १५३२ वैशाखशुक्ल ९ शनौ रात्रौ दशघटिकासु १० चन्द्रस्य छायासाधनं क्रियते । तत्राहर्गणः ७७७ । प्रातर्मध्यमः सूर्यः ०।२०।५६।२२ चन्द्रः ३।२६ ५८।३ उच्चम् ७।२२।४।६ राहुः २।२३।४७।३ रवेर्मन्दकेन्द्रम् १।२७।३।३८ मन्दफलं धनम् १।४९।४० संस्कृतो रविः ०।२२।४६।२ अयनांशाः १८।८ चरमृणम् ७३ । चर-संस्कृतः स्पष्टो रविः ०।२२।४४।४९ स्पष्टा गतिः ५९।५८ फलत्रयसंस्कृतश्चन्द्रः ३।२६। ३५।१३ मन्दकेन्द्रम् ३।२५।२८।५३ मन्दफलं धनम् ४।३२।० संस्कृतः स्पष्टश्चन्द्रः ४।१। ७।१३ स्पष्टा गतिः ८१९।१९ दिनमानम् ३२।२६ सूर्योदयाद्गघटीभि-४२।२६ श्चालितः सूर्यः ०।२३।२५।४८ चन्द्रः ४।१०।४६।३९ राहुः २।५३।४४।४८। व्यगुश्चन्द्रः १।१७।१। ५१ उत्तरः शरः ६५।४४ त्रिभर्वाजितश्चन्द्रः १।१०।४६।३९ अस्य क्रांतिरुत्तरा २०।१९। ३९ अक्षांशैः २५।२६।४२ संस्कृता जाता नतांशा दक्षिणाः ५।७।३ पूर्वं दृक्कर्म कलाद्यं ऋणम् १६।४ दृक्कर्म संस्कृतश्चन्द्रः ४।१०।२९।५० रात्रिगतघटीषु १० लग्नम् ८।१६। २४।२२ पूर्वदृक्कर्मदत्तश्चन्द्रो लग्नादल्पोऽस्तलग्ना–१।१६।२४।२२ दधिकोऽतस्तत्रेष्ट-घटीषु दृश्यश्चन्द्रः सायनदृक्कर्मसंस्कृतचन्द्रस्य भोग्यकालः १५ । सायनलग्नस्य भुक्त-कालेन ४६ युक्तः ६१ । ग्रहलग्नयोर्मध्ये सिंहादारभ्य मकरपर्यन्तं ये उदयास्तेषां योगेन १३५७ युक्तः १४१८ । षष्टिभक्तः जातो ग्रहस्य दिनगतकालः १३।३८ चन्द्रस्य दिन-गतमतो नव–९ पलरहितं जातश्चन्द्रस्य दिनगतकालः २३।२९ ॥१॥

केदारदत्तः

इष्टकालीन लग्न से उदयकालीन दृक्कर्म संस्कृत ग्रह यदि कम और सप्तम लग्न से अधिक हो तो ऐसा ग्रह इष्ट समय में दृश्य होता है।

ग्रह की दृश्यता ज्ञात होने से ग्रह के भोग्यकाल में लग्न का भुक्तकाल तथा मध्यगत-राशियों का स्वोदय मान जोड़ने से उस ग्रह का दिनगत काल ज्ञात होता है। उक्त प्रकार के साधित चन्द्रमा के दिन गत काल में ९ पल घटा देने से चन्द्रमा का स्पष्ट दिन गत काल होता है ॥१॥

उपपत्तिः—प्राग्दृग्रह यदि इष्ट लग्न से कम और अस्त लग्न से अधिक होने पर वह क्षितिज के ऊपर रहता है अतः दृश्य होता है। इसलिए ग्रह और लग्न की अन्तर घटिकाओं का ज्ञान लग्न साधन की विपरीत क्रिया से सुस्पष्ट होती है। यह इष्ट घटिका सावन हैं और दिनगत हैं और सावन उन्नत घटिका गर्भ क्षितिज से होती हैं।

चन्द्रमा की दिनगत घटिकायें जो गर्भ क्षितिज से हुई है उनमें चन्द्रमा की शीघ्रगतिता कारण से गर्भ पृष्ठ क्षितिजीय लम्बनकाल तुल्य अन्तर पड़ने से आचार्य ने ९ तुल्य लम्बन काल को, अर्थात् चन्द्रमा के दिनगत काल में ९ पल कम किया है ॥१॥

जिनाप्तोऽक्षाभाघ्नोऽङ्गुलमयशरोऽनेन तु चरं
स्फुटं संस्कृत्यातो दिनमथ खगस्य द्युविगतात्
प्रभाद्यं संसिध्येदथ खचरभादेर्निशि गतं
ब्रुवेऽथारादीनां द्युतिपरिगमं यन्त्रवशतः ॥२॥

मल्लारिः

अथ ग्रहच्छायासाधनमाह। अंगुलादिकः शरः पलभागुणश्चतुर्विंशतिभक्तः कार्यः अनेन पलात्मकफलेन ग्रहात् सूर्यवत् साधितचरं शरचरैकान्यगोले युक्तोनं स्फुटं स्यात्। अतश्चराद्दिनमानं साध्यम्। अथ ग्रहस्य द्युगतकालात् सूर्यवत् छायाद्यं साध्यम्। एव तावाद्विज्ञाते रात्रिगते ग्रहस्य द्युगतमानीय छायाद्यं साधितम्। इदानीं दृष्टच्छायाद्युगतद्वारेण वक्ष्यमाणरीत्या रात्रिगतं साध्यमित्याह। अथेति खचरभादेर्ग्रहस्य छायादितो यन्त्रभागेभ्यो निशि गतं रात्रिगतघटिकादिकं स्यात्। कथं पुनः प्रभादिज्ञानं स्यादित्यत आह। ब्रुव इति। आरादीनां भौमादीनां द्युतिपरिगमं छाया-ज्ञानं यन्त्रवशतो ब्रुवे वक्ष्यमाणरीत्या इति।

अत्रोपपत्तिः। अत्र चरं शरसंस्कृतस्पष्टक्रान्तितः साध्यम्। तत् केवलक्रान्तितः एव खण्डकैः साधितम्। अतो हि मध्यमस्पष्टक्रान्त्योरन्तरं शर एव। तस्माच्चरं साध्यम्। तत् पूर्वचरे संस्कार्यं स्पष्टक्रान्तितः कृतं चरं भविष्यति। अतोऽनुपातः। यदि द्वादशकोटौ पलभा भुजस्तदा शरतुल्यक्रान्तिकोटौ क इति। अत्र शरोऽङ्गुलाद्योऽतः

कलायां त्रयं गुणः । एवं जाताः कलाः । तावन्त एवासवः । ते षड्भक्ताः पलानि । एवं शरस्य द्वादशषड्घातो हरः ७२ । त्रयं गुणः ३ । गुणहरौ गुणेनापवर्त्तितो जातो हरश्चतुर्विंशतिः । पलभागुणोऽस्त्येव । अतो जिनाप्त इत्याद्युपपन्नम् ॥२॥

विश्वनाथः

अथ ग्रहस्य दिनमानमाह जिनाप्तेति । दृक्कर्मदत्तचन्द्रात् चरमुत्तरम् ५९ । अंगुलाद्यः शर उत्तरः ६५।४४ अक्ष-५।४५ घ्नः ३७७।५८ चतुर्विंशतिभक्तः फलं पलात्मकमुत्तरम् १५।४४ शरस्य उत्तरत्वात् अनेन चरं ५९ संस्कृतं जातं स्पष्टम् ७४।४४ अस्माद्दिनमानम् ३२।२८ अथ ग्रहस्य द्युगतात् प्रागुक्तदिनगतकालात् छायाद्यं साध्यम् । अथ खचरभादेर्ग्रहच्छायाया यन्त्रभागेभ्यो रात्रिगतघटिकादिकं ब्रुवे अग्रे इत्यनुवृत्तिः आरादीनां भौमादीनां द्युतिपरिगमं छायाज्ञानं यन्त्रवशतो वक्ष्यमाणरीत्या स्यात् । तद्यथा । ग्रहस्य यन्त्रवेधादिना यन्त्रभागा ज्ञेयाः । यन्त्रभागेभ्यः कर्णः कर्णात् छाया । यन्त्रभागेभ्यो दिनगतं वा ज्ञेयम् । दिनगतकालः २३।२९ दिनमानात् ३२।२८ शुद्धः । जातः शेषः ८।५९ अयमुन्नतसंज्ञकः । पश्चिमकपालस्य विद्यमानत्वादुन्नतं दिनार्धात् शुद्धं जातं पश्चिमं नतम् ७।१५ अक्षकर्णः १३।१८ स्पष्टं चरम् ७४।४४ हारः १२८।५६ समाख्यः ३०।१ अभिमतहारः ७।२५ भाज्यः ११७।५५ अंगुलाद्यः कर्णः १५।५३ इष्टच्छाया १०।२४ ॥२॥

केदारदत्तः

अंगुलादिक शर को पलभा से गुणाकर २४ से भाग देकर लब्ध फल से चर में संस्कार करने से स्पष्ट चर होता है ।

स्पष्ट चर ज्ञान से दिनमान ज्ञात कर, ग्रह दिनगत काल से ग्रह की छायादि का ज्ञान करना चाहिए । पुनः छाया और दिनगत काल से रात्रि गत काल ज्ञान होता है ।

आचार्य स्पष्ट कहते हैं कि यन्त्रादिकों द्वारा मंगल की छाया ज्ञान प्रकार भी कहता हूँ ॥२॥

उपपत्तिः—यदि १२ कोटि में पलभा भुज तो क्रान्ति ज्या में कुज्या भुज होगा । द्युज्या में कुज्या तो त्रिज्या में चर ज्या होगी ।

यथा $\frac{\text{पलभा} \times \text{कोज्या} \times \text{त्रि}}{१२ \times \text{द्यु०}}$ = ज्या चर स्वल्पान्तर से = चर कला । क्रान्ति की स्थूलता से

यह चरासु भी स्थूल होते हैं । शरकला संस्कृत मध्यमा क्रान्ति स्पष्टा क्रान्ति होती है । शर कला = ३ × शर । अतः स्पष्ट चर कला = $\frac{\text{पलभा} \times (\text{क्रान्ति ज्या} \pm \text{शर} \times ३) \times \text{त्रि०}}{१२ \times \text{द्यु०}}$

$$= \frac{\text{पलभा} \times \text{क्रां० ज्या} \times \text{त्रि०}}{१२ \times \text{द्यु०}} \pm \frac{\text{पलभा} \times \text{शर} \times ३ \times \text{त्रि०}}{१२ \times \text{द्यु०}} = \text{चर कला} \pm \frac{\text{प.} \times \text{श} \times ३ \times \text{त्रि.}}{१२ \times ६ \times \text{द्यु०}}$$

यदि कला = असु अतः $\frac{\text{स्पष्ट चर कला}}{६}$ = स्पष्ट चर पल । अतः चर पल $\pm \frac{\text{प.} \times \text{श.} \times ३ \times \text{त्रि.}}{१२ \times \text{द्यु०} \times ४}$

$= \text{चर पल} \pm \frac{\text{पलभा} \times \text{शर} \times \text{त्रि०}}{२४ \times \text{द्यु०}}$ स्वल्पान्तर से द्यु=त्रि० । अतः स्प० चर पल=चर पल $\pm$

$\frac{\text{पलभा} \times \text{शर}}{२४}$ उपपन्न होता है ॥२॥

पश्येज्जनादौ प्रतिविम्बितं वा खेटं दृगौच्च्यं गणयेच्च लम्बम् ।
तल्लम्बपातप्रतिबिम्बमध्यं दृगौच्च्यहृत् सूर्यहतं प्रभा स्यात् ॥३॥

मल्लारिः

प्रतिज्ञातां छायां धीयन्त्रेणाह । जलादर्शादौ ग्रहं प्रतिबिम्बितं पश्येत् । दृगौच्च्यमिति । भूतलात् दृक्पर्यन्तं लम्बं गणयेत् । एवं लम्बपातप्रतिबिम्बान्तरमध्यं-गुलादि गणनीयम् । तत् सूर्यहते द्वादशगुणं दृगौच्च्येनांगुलादिकेन भक्तं ग्रहस्य छाया स्यात् । प्रतिविम्बितं वेति वा शब्देन तुरीयादियन्त्रविद्धग्रहोन्नतांशेभ्यो यन्त्रलवोत्थ-क्रान्तिलवाप्ता इत्येन कर्णं प्रतिसाध्य ततः कर्णार्कवर्गविवरात् पदमिष्टभेति छायां साधयेदिति विध्यन्तरं सूचयति ।

अत्रोषपत्तिः । एकानुपातेन । यदि दृगौच्च्यतुल्यायां कोटौ लम्बपातद्रविविम्बा-न्तरभूर्भुजस्तदा द्वादशकोटौ केति छाया स्यादेवेति सुगमा ॥३॥

विश्वनाथः

अथ छायासाधनमाह पश्येदिति । जलादौ प्रतिबिम्बितं खेटं पश्येत् । दृगौच्च्यमवलम्ब्य गणयेत् । यत्र भूमौ लम्बः पतति तस्माज्जलप्रतिविम्बमध्यमंगुलात्मकं गणनीयम् । तद्द्वादशगुणं दृगौच्च्येन भक्तं फलमंगुलादिका छाया भवेत् ॥३॥

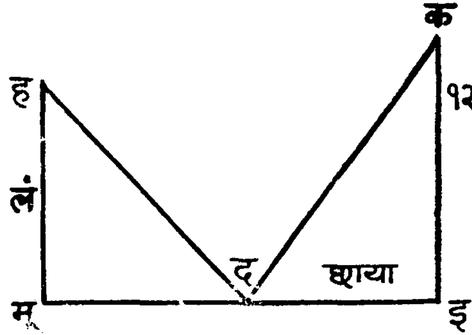
केदारदत्तः

पूर्वोक्त विधि से छाया का ज्ञान करना चाहिए । तथा ग्रह का प्रतिबिम्ब जल में देखना चाहिए ।

दृष्टि की ऊँचाइ के तुल्य लम्ब मान समझ कर लम्ब मूल से ग्रह के प्रतिबिम्ब केन्द्र तुल्य स्थान का मान = भुज होता, है । प्रतिविम्व स्थानीयमान को १२ से गुणा कर दृष्टि की ऊँचाई से भाग देने से ग्रह छाया होती है ।

उपपत्तिः—शंकु के अग्र भाग से ग्रह की किरण छाया जो भूमि में पड़ती है, उतने ही तुल्य उन्नतांश मान से उसके विपरीत दिशा मे छाया परावर्तिन होने से पतन परावर्त्तन कोण तुल्य होते हैं ।

• अतः दृष्टि उच्छ्रिति = लम्ब मूल प्रतिबिम्बान्तर = मूद = भुज परावर्तित किरण खण्ड = ह द = कर्ण। यह क्षेत्र क इ द क्षेत्र के सजातीय होने से दृगौच्च्य में लम्ब कोटि अन्तर मू ह तो १२ कोटि में $\frac{\text{मू. द.} \times १२}{\text{मू. ह.}}$ = छाया= $\frac{\text{अ} \times १२}{\text{दृ. उ.}}$ उपपन्न होता है ।।३।।



ज्ञात्वाऽनुमानान्निशि यातनाडीस्तत्कालखेटात् कथितैश्चराद्यैः ।
दृष्टप्रभादेर्द्युगता ग्रहस्य साध्यस्त्विहेन्दोर्यदि गोपलाढ्यः ।।४।।

मल्लारिः

अथ ग्रहस्य द्युगतकालसाधनं वदति । अनुमानात् स्थूलत्वेन रात्रौ गतघटीर्ज्ञात्वा तात्कालिकग्रहात् कथितस्पष्टचरादेर्दृष्टच्छायादितश्च ग्रहस्य सूर्यवद्द्युगतः कालः साध्यः । चन्द्रस्य चेत् तर्हि नवपलान्वितः कार्यः ।

अत्रोपपत्तिः । प्रत्यक्षसुगमा ।।४।।

विश्वनाथः

अथ ग्रहस्य द्युगतकालसाधनमाह ज्ञात्वाऽनुमानादिति । अनुमानाद्रात्रिगतघटिकाः १० । तात्कालिकचन्द्रात् स्पष्टं चरम् ७४।४४ दिनमानम् ३२।२८ इष्टच्छाया १०।२४ अस्या विलोमविधिना द्युगतसाधनम् । कर्णः १५।५३ भाज्यः ११७।५५ अभिमतो हारः ७।२५ अक्षकर्णः १३।१८ मध्यहारः १२८।५६ नतं पश्चिमम् ७।१५ इदं दिनार्धेन १६।१४ युतं जातो ग्रहस्य दिनगतकालः २३।२१ चन्द्रस्य दिनगतमतो नवपलसहितं जातश्चन्द्रस्य दिनगतकालः २३।३८ ।।४।।

केदारदत्तः

रात्रि में किसी ग्रह को आकाश में देखकर अनुमान से रात्रिगत घटी समझ कर तात्कालिक उस ग्रह का चरादिक और छाया से त्रिप्रश्नाधिकारोक्त प्रक्रिया से सूर्य ग्रह की तरह उस अन्य ग्रह का भी दिनगत साधन करना चाहिए । उक्त भाँति साधित चन्द्रमा का दिनगत काल जो हो उसमें ९ पल जोड़ने से वह चन्द्रमा का वास्तविक दिनगत काल होगा ।।४।।

उपपत्तिः—कर्णः स्यात्पदमर्कभाकृतियुतेः'''विधि से ग्रह का द्युगतकाल होता ही है। इष्टच्छाया से चन्द्रमा का पृष्ठ क्षितिज से दिनगत काल होगा। अतः गर्भ पृष्ठ क्षितिजोदयान्तर काल ९ पल अधिक करना युक्तियुक्त है ॥४॥

प्राग्दृक्खचराङ्कभाढयभान्वोरल्पोऽर्कस्त्वपरस्तनुस्तदन्तः ।
कालः स खगोदये द्युशेषो रात्रीतः क्रमशो ग्रहेऽल्पपुष्टे ॥५॥

मल्लारिः

अथ ग्रहोदये दिनशेषरात्रिगतकालं साधयति। पूर्वदृक्कर्मदत्तग्रहसषड्भसूर्ययोर्मध्ये अल्पो रविः। अन्यल्लग्नम्। एतदन्तरे यः कालः स ग्रहोदयसमये द्युशेषोऽथ वा रात्रीतः स्यात् क्रमश इति। ग्रहे सषड्भसूर्यादल्पे द्युशेषम्। अधिके रात्रीतः स्यादित्यर्थः ॥५॥

विश्वनाथः

अथ ग्रहोदये दिनशेषरात्रिगतकालमाह प्रागिति। पूर्वदृक्कर्म संस्कृतश्चन्द्रः ४।१०।२९।५० षड्राशियुक्तः सूर्यः ६।२३।२५।४८ अनयोर्मध्ये चन्द्रोऽल्पः। सोऽर्कः कल्पितः। अन्यो रविर्लग्नम्। अनयोरन्तरे कालः। अर्कभोग्यः १५। तनुभुक्त-१३३ युक्तः १४८। जातो ग्रहस्य सषड्भसूर्यादल्पत्वात्चन्द्रोदये दिनशेषकालः १३।३८ स कालो ग्रहस्योदये क्रमाद् द्युशेषो रात्रीतो भवति कस्मिन् सति ग्रहेऽल्पपुष्टे सति। ग्रहे सषड्भसूर्यादल्पे द्युशेषः। अधिके रात्रिगतः स्यादित्यर्थः ॥५॥

केदारदत्तः

पूर्व दृग्ग्रह और ६ रादि युक्त सूर्य इन दोनों में जो कम हो उसे सूर्य और अधिक को लग्न मानकर, 'अर्क भोग्यस्तनोर्भुक्त कालान्वितो' इस विधि से जो अन्तर घटी हो वह ६ राशि युक्त सूर्य से ग्रह अल्प हो तो दिन शेष, सषड्भ सूर्य से अधिक हो तो रात्रिगत काल होता है ॥५॥

उपपत्तिः—सूर्यास्त समय में ६ राशि युक्त सूर्य = लग्नमान होता है। फिर ऊनस्य भोग्योऽधिक भुक्त युक्तः श्री भास्कराचार्य के प्रकार से लग्न और प्राग्दृग्ग्रह की अन्तर घटिका ज्ञात होती हैं। शेष सुगम है ॥५॥

तेनोनोऽथ च सहितो ग्रहद्युयातः
स्यादर्कास्तमयकतो निशि प्रयातः ।
चेद्ग्लावोऽनुमितघटीष्वतोऽल्पपुष्टं
द्विघ्नं तत्समपलयुग् वियुक् स्फुटः सः ॥६॥

मल्लारिः

अथास्मात् कालाद्रात्रिगतमाह। तेन द्युशेषेण ग्रहद्युयात ऊनो रात्रिगतेन सहितः सन् सूर्यास्ताद्रात्रिगतकालः स्यात्। चन्द्रस्य चेत् अनुमानज्ञातरात्रिगतघटीषु

आनीतरात्रिगततो यावदल्पमाधिकं स्यात् तावदेव द्विगुणं पलात्मकं स्यात्। तैः पलैः स कालोऽल्पश्चेदूनः पूर्वाधिकश्चेदन्वितः कृतः स्फुटः कालो भवतीत्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। प्रत्यक्षसुगमा ॥६॥

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्य खेटप्रभाद्यानयनाधिकारः॥

इति श्रीगणेशदैवज्ञकृतग्रहलाघवस्य टीकायां मल्लारिदैवज्ञविरचितायां ग्रहच्छायाधिकारो दशमः॥१०॥

विश्वनाथः

अथ सूर्यास्तात् रात्रिगतमाह तेनेति। तेन द्युशेषेण पूर्वोक्तो द्युयात ऊनः। रात्रोतेन सहितः कार्यः। एवमर्कास्तसमयतः सूर्यास्तानन्तरं निशि प्रयातो रात्रिगतः कालो भवति। चेद्ग्लावश्चन्द्रस्य कालस्तदा अनुमितघटीषु अल्पपुष्टं चेत्। तद्यथा। कल्पितघटिकाभ्यः आगता घटिका अल्पा वापुष्टा इत्यर्थः। तावदेव द्विगुणं तत्समपलैः स कालः अल्पश्चेद्युक्तः। अधिकश्चेदूनः इन्दोः स कालः स्फुटो भवति। ग्रहद्युयात २३।३० द्युशेषेण १३।३८ रहितो जातः सूर्यास्तात् रात्रिगत कालः॥६॥

इति ग्रहच्छायाधिकारोदाहरणम्॥

केदारदत्तः

ग्रह के दिनगत काल में पूर्व साधित दिन शेष एवं रात्रि शेष काल को क्रमशः घटाने और जोड़ने से रात्रिगत काल होता है। यदि अनुमानित घटी से चन्द्रमा का काल न्यून या अधिक हो तो न्यून या अधिक तुल्य घटी को द्विगुणित करके उतने पल को उक्त काल में जोड़ने या घटाने से चन्द्रमा का काल स्पष्ट होता है॥६॥

उपपत्तिः—ग्रहोदय काल में पूर्वसाधित दिन शेष, और रात्रिगत काल होता है। अतः दिन शेष को कम और रात्रिगत को जोड़ने से ग्रह का दिन गत और सूर्यास्त से रात्रिगत काल होगा ही।

यहाँ पर रवि और चन्द्रमा के सावन समयों का अन्तर २ पल के तुल्य पूर्व में बताया गया है। अतः न्यूनाधिक कालों में २ पल से गुणित घटी तुल्य पल का योग वियोग करण समीचीन सिद्ध उपपन्न होता है॥६॥

गर्गगोत्रीय स्वनामधन्य. कूर्माञ्चलीय ज्योतिर्विद्वर्य श्री पं० हरिदत्त जोशी आत्मज अल्मोड़ामण्डलीय जुनायल ग्रामज पर्वतीय. काशीस्थ (नगवानलग्राम) श्री केदारदत्त जोशी कृत ग्रहलाघव ग्रहच्छायाधिकार की उपपत्ति सहित सोदाहरण व्याख्या सम्पूर्ण॥१०॥

अथ नक्षत्रच्छायाधिकारः

दास्रादष्ट च मूर्च्छना गजगुणा नन्दाब्धयो दृग्रसाः
षट् तर्कायुगखेचरा रसदिशोऽद्र्याशा नवार्काः क्रमात् ।
भाग्यादष्टयुगेन्दवोऽक्षतिथयः खात्यष्टयोंऽशा ध्रुवा-
स्त्र्यष्टाब्जा गजगोभुवो रविदृशः सिद्धाश्विनः खत्रिदृक् ॥१॥
मूलात् स्युर्द्विजिनाः शराशुगदृशः ख्वङ्काश्विनोऽष्टेषुदृक्
बाणर्क्षाणि रसाष्टदृक् नखगुणास्तत्त्वाग्नयोऽश्वामराः ।
खं दत्तायनदृक्क्रियाः स्युरिह च क्षेपोऽक्षभाघ्नोऽर्कहृत्
स्वर्णं प्राक्परतोऽन्यथोत्तर शरे ते स्युः स्वदेशे ध्रुवाः ॥२॥

मल्लारिः

अथ नक्षत्रच्छायाधिकारो व्याख्यायते। तत्रादौ नक्षत्रध्रुवानाह। अश्विनी-मारभ्य सर्वेषां नक्षत्राणां क्रमाद् दत्तायनदृक्कर्मणो भागाद्या एते ध्रुवाः स्युरिति। ते त्रिंशद्भक्ता राश्यादयो भवन्तीत्यर्थः। क्षेपो नक्षत्राणां वक्ष्यमाणः शरः। पलभागुणः। द्वादशभक्तः। भागादिफलं ग्राह्यं तत् पूर्वध्रुवे धनं पश्चिमध्रुवे ऋणम्। इदमपि दक्षि-णशरे। उत्तरशरे विपरीतं ते स्वदेशे नक्षत्रध्रुवाः स्युरिति।

अत्रोपपत्तिः। तत्र भवेधार्थं गोलबन्धोक्तविधानेन विपुलं गोलयन्त्रं कार्यम्। तत्र खगोलस्यान्तर्भगोल आधारवृत्तद्वयस्योपरि विषुवद्वृत्तम्। तत्र च यथोक्तं क्रान्ति-वृत्तं भगणांशाङ्कितं कार्यम्। ततस्तद्गोलयन्त्रं सम्यग्ध्रुवाभिमुखयष्टिकं जलसम-क्षितिजवलयं च यथा भवति तथा स्थिरं कृत्वा रात्रौ गोलचिह्नमध्यगतया दृष्ट्या रेवतीतारां विलोक्य क्रान्तिवृत्ते मीनान्ते चिह्नं कार्यम्। ततो मध्यगतयैव दृष्ट्या अश्विन्यादेर्योगतारां विलोक्य तस्योपरि तद्वेधवलयं निवेश्यम्। एवं कृते विषुवक्रान्ति-वृत्तयोर्यः सम्पातस्तन्मीनान्तचिह्नयोरन्तरे येंऽशास्ते तस्य भध्रुवांशाः। वेधवलये तस्य सम्पातस्य योगतारायाश्चान्तरे येंऽशास्ते तस्य भस्य दक्षिणा उत्तरा वा ध्रुवसक्तवृत्ते स्पष्टशरांशा ज्ञेयाः अत्र ये ध्रुवास्ते दत्तायनदृक्कर्माण एव। आक्षदृक्कर्म देयम्। तत्रानुपातः। यदि द्वादशकोटौ पलभाभुजस्तदा शरकोटौ क इति। अत एव क्षेपोऽ-क्षभाघ्नोऽर्कहृदित्युपपन्नम्। याम्ये शरे प्राच्यां नामनं प्रतीच्यामुन्नामनम्। सौम्यशरे त्वन्यथा। अतः स्वर्णं प्राक्परतोऽन्यथोत्तरशर इति युक्तम्। यत् तु नृसिंहदैवज्ञकृत-टिप्पणे रेखातः प्राग्देशे धनं प्रत्यक्देशे ऋणमिति दृश्येन तल्लेखकदोषेणेति प्रतीमः ॥१-२॥

विश्वनाथः

अथ नक्षत्रच्छायाधिकारोदाहरणम् तत्र तावत् नक्षत्रध्रुकानाह्। दास्रादिति। मूलादिति। दास्रात् अश्विनीमारभ्य अष्टमूर्छनेत्यादयः खमित्यन्ताः सर्वेषां नक्षत्राणां क्रमादंशाद्या ध्रुवाः स्युः। ते विंशद्भक्ता राश्यादयो भवन्तीत्यर्थः इमे ध्रुवा दत्तायनदृक्कर्मक्रिया भवन्ति। एषामायनदृक्कर्मदत्तमित्यर्थः। अथाक्षदृक्कर्माह् क्षेप इति। क्षेपो नक्षत्राणां वक्ष्यमाणः शरः पलभया गुण्यो द्वादशभक्तः फलं भासादि ग्राह्यम्। ध्रुवे प्राक् पूर्वकपाले धनम्। पश्चिमकपाले ऋणम्। इदं दक्षिणशरे। उत्तरशरे विपरीतम्। पूर्वकपाले ऋणम्। पश्चिमकपाले धनमित्यर्थः। ते स्वदेशे नक्षत्रध्रुवाः स्युः ॥१–२॥

केदारदत्तः

आयन दृक्कर्म संस्कार से संस्कृत अश्विनी से रेवती तक अंशात्मक क्रमशः ८, २१, ३८, ४९, ६, ६६, ९५, १०६, १०७, १२९, १४८, १५५, १६०, १८३, १९८, २१२, २२४, २३०, २४२, २५५, २६१, २५८, २७५, २८६, ३२०, ३२५, ३३७ और ० ध्रुवा होती हैं। अंशों में ३० का भाग देने से राश्यात्मक ध्रुवा होते हैं।

पलभा गुणित शर में १२ का भाग देने से, उपलब्ध फल को दक्षिण शर में, पूर्व पश्चिम में क्रमशः धन और ऋण तथा उत्तर शर होने से विलोम संस्कार पूर्व में ऋण पश्चिम में धन करने से नक्षत्रों के अपने देश में अंशात्मक ध्रुवकमान होते हैं ॥१–२॥

उपपत्ति—श्री मद्भास्कराचार्य के अनुसार 'स्फुटेषुरक्षबलनेन हृतो विभक्तो लम्बज्या रवि हृतोऽक्षभया हृतो वा' शर का मान अंशात्मक होने से—अक्षज दृक्कर्मांश $= \frac{\text{शर} \times \text{पलभा} \times \text{त्रि}_0}{१२ \times \text{द्यु}_0}$ पूर्व चन्द्र ग्रहणाधिकार में तीनों द्युज्या = त्रिज्या = १२० तुल्य यहाँ पर भी मानने से अक्ष दृक्कर्मांश $= \frac{\text{शर} \times \text{पलभा}}{१२}$ उपपन्नम् ॥१–२॥

दिक्सूर्येष्विषुदिक्शिवाङ्कखनगाभ्राकांश्च विश्वे भवा-
स्त्वाष्ट्राद् द्वौ नगत्रहयः कुयमलाग्नीभाक्षबाणा द्विषट्।
कर्णात् त्रिंशदरित्रयः खजिनभाभ्रं त्वाष्टहस्ताहिभे
द्वीशात् षट्सु कभात् त्रये शरलवा याम्या उदक् शेषभे ॥३॥
प्रजापतिब्रह्महृदग्न्यगस्त्यापांवत्सलुब्धध्रुवकांशकाः स्युः।
कुषट् षड्क्षास्त्रिशरा नभोऽष्टौत्र्यष्टेन्द्रवो भूफणिनः क्रमेण ॥४॥
तेषां क्रमादगोशिखिनः खरामा अष्टौ रसाश्वाः शिखिनः खवेदाः।
शरांशकाः स्युर्मुनिलुब्धयोस्तु याम्यास्तु सौम्याः परिशेषकाणाम् ॥५॥

मल्लारिः

अथ नक्षत्राणां शरभागान् । वदति । अस्योपपत्तिः पूर्वमेव प्रतिपादिताऽस्ति । अत्र लुब्धकादीनां ध्रुवान् शरांश्च कथयति । प्रजापतिब्रह्महृदयग्न्यगस्त्यापांवत्स-लुब्धकानामेते ध्रुवांशकाः । तेषामेतेशरभागाः स्युरिति सुगमार्थम् ।

अत्रोपपत्तिः । नक्षत्रोक्तरीत्येव सुगमा ॥३–५॥

विश्वनाथः

अथ नक्षत्राणां शरभागानाह दिगिति । अथ प्रजापतिप्रमुखादीनां ध्रुवांशका-नाह प्रजापतिरिति । अथ तेषां शरभागानाह तेषामिति स्पष्टोऽर्थः । अश्विन्याः शरः १० । पलभा–५।४५ घ्नः ५७।३० द्वादशभक्तः । फलं भागाद्यम् ४।४७।३० अनेन अश्विनीध्रुवकः ०।८ उत्तरशरत्वादूनो जातः काश्यामश्विन्युदग्ध्रुवकः ३।१२।३० फलेन युतो जातोऽस्तध्रुवकोऽश्विन्याः १२।४७।३० एवं कृते जाता उदयास्तध्रुवाङ्काः ॥३-५॥

केदारदत्तः

अश्विनी से लेकर हस्त तक के १३ नक्षत्रों के १०, १२, ५, ५, १०, ११, ६, ०, ७, ०, १२, १३, और ११ तथा २, ३७, १, २, ३, ८, ५, ५, और ६२ ये चित्रादि श्रवण पर्यन्त ९ नक्षत्रों के ३०, ६, ३, ०, २४ और ० ये शेष ६ नक्षत्रों के शरों के अंश होते हैं ।

चित्रा-हस्त-श्लेषा-विशाखा से ६ नक्षत्र और रोहिणी से ३ नक्षत्रों के उक्त दक्षिण दिशा के शरांश और शेष १५ नक्षत्रों के शरांश होते हैं ।

प्रजापति, ब्रह्महृदय, अग्नि, अगस्त्य, अपांवत्स लुब्धक इन नक्षत्रों के क्रमशः ६१, ५६, ५३, ८८, १८३ और ८१ ये ध्रुवांश तथा इन्हीं ६ नक्षत्रों के क्रम से, ३९, ३०, ८, ७६, ३ और ४० शरांश होते हैं । अगस्त्य और लुब्धक का दक्षिण ० शर शेष ४ के उत्तर शर कहे गये हैं ॥३–५॥

उपपत्तिः—वेध से देखने से जो प्रत्यक्ष उपलब्धि वही उपपत्ति होती है ॥३–५॥

विशेष—चौथे श्लोक में कषट् षड्क्षास्त्रिशिरा नभोऽष्टौ की जगह पर कुषट् षड्क्षास्त्रिशिरा इभाष्टौ पाठ ही सही पाठ होना चाहिए । प्राचीन गोल तत्वानभिज्ञ ने नभोऽष्टाविति ऐसा पाठ स्वकल्पित पढ़ा है । (सुधाकर द्विवेदी)

निजदेशभवाद्ध्रुवाच्च बाणाच्छायायन्त्रलवादि खेटवत् स्यात् ।
छायादेरपि चेह रात्रियातं नक्षत्रग्रहयोग उक्तवच्च ॥६॥

मल्लारिः

अथ नक्षत्रध्रुवात् तच्छायाद्यं साध्यमिति वदति । स्वदेशीयो नाम दत्ताक्षपूर्व-दृक्कर्मको नक्षत्रध्रुवो यः स्यात् । तस्मात् 'प्राग्दृष्टिकर्मखचर' इत्यादिना छायायन्त्रां-शादिकं ग्रहवत् स्यात् । तथा 'पश्येज्जलादौ' इत्यादिना ज्ञानात् छायादे रात्रिगतं तद्वदेव स्यात् । नक्षत्रग्रहयोगो ग्रहयुक्तिवत् । अत एव केचित् पठन्ति ।

द्यु चरभध्रुवकान्तरलिप्तिका द्यु गतिभुक्तिहृता हि गतागतैः ।
फलादिनैर्द्यु चरेऽधिकहीनके युतिरिहेतरथा खलु वक्रिणि ॥ इति ।
द्यु गतिर्ग्रहः । स्पष्टमन्यत् ।

अत्रोपपत्तिः सुगमा ॥६॥

विश्वनाथः

अथ नक्षत्राणां छायायन्त्रलवादिज्ञानमाह निजदेशेति । पूर्वोक्तप्रकारेण निजदेशभवाद्ध्रुवादौदयिकादुक्तुशराच्च छायायन्त्रलवादि खेटवत्स्यात् । एतदुक्तं भवति । स्वदेशोत्पन्नं नक्षत्रध्रुवकां ग्रहं प्रकल्प्य तस्माच्चरं साध्यं तच्चरं 'जिनाप्तोऽक्षभाघ्न' इत्यादिना स्फुटं कार्यं तस्माद्दिनमानं कार्यम् । स्वदेशनक्षत्रध्रुवात् 'प्राग्दृष्टिकर्मखचर' इत्यादिना नक्षत्रद्यु यातः साध्यः । तस्मादुन्नतं कार्यम् । तस्मादुन्नतात् 'नवतिगुणितमिष्टमुन्नतम्' इत्यादिना कर्णः साध्यः । तस्माद्यन्त्रभागाच्च छायादेरपि रात्रियातं ग्रहवज्ज्ञेयम् । तद्यथा । छायाया विलोमविधिना द्यु यातः स्वदेशध्रुवात् 'प्राग्दृक्खचराङ्गभाढ्यभान्वोः' इत्यादिना द्यु शेषं रात्रिगतो वा साध्यः । तदनन्तरं 'तेनोनोऽथ च सहित' इत्यादिना रात्रिगतं ज्ञेयम् । अथवा रात्रौ यन्त्रवेधादिना नक्षत्रस्य यन्त्रभागा ज्ञेयाः यन्त्रभागेभ्य उन्नतम् । तस्माद्रात्रिगतं वा ज्ञेयम् । नक्षत्रग्रहयोग उक्तवद्ग्रहयुतिवज्ज्ञेयः । परन्तु आचार्येणात्र नोक्तः । तद्भ्रातृपुत्रेण नृसिंहदैवज्ञेन स्वकृतकरणे नक्षत्रग्रहयोग उक्तः तद्यथा ।

द्यु चरभध्रुवकान्तरलिप्तिका द्यु गतिभुक्तिहृता हि गतागतैः ।
फलादिनैर्द्यु चरेऽधिकहीनके युतिरिहेतरथा खलु वक्रिणि ॥६॥

केदारदत्तः

ग्रह के स्वदेशीय ध्रु वांश और शरांश के ज्ञान से पूर्वोक्त प्रकार से छाया और यन्त्रांश आदि का ज्ञान करना चाहिए । पूर्व युक्तियों मे छायादि से रात्रिगत काल और नक्षत्र के साथ ग्रह योग का ज्ञान करना चाहिए ।

उपपत्तिः—स्पष्ट है ॥६॥

गवि नगकुलवे १७ खगोऽस्य चेद्यमदिगिषुः खशरांगुलाधिकः ।
कभशकटमसौ भिनत्त्यसृक्शनिरुडुपो यदि चेज्जनक्षयः ॥७॥

मल्लारिः

अथ ग्रहस्य रोहिणीशकटभेदं तत्फलं चाह । यो ग्रहो वृषभे सप्तदशभांगमितः स्यात् । तस्य शरोऽपि यदि दक्षिणः पञ्चाशदंगुलाधिकः स्यात् तदासै ग्रहो रोहिणीशकटं भिनत्तीति ज्ञेयम् । यदा एवमसृक् भौमः शनिश्चन्द्रो वा रोहिणीशकटं भेदयति तदा जनक्षयो लोकानां महती पीडा स्यादित्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः। रोहिणीध्रुवो वृषे एकोनविंशतिभागाः। अक्षदृक्कर्मसंस्कारार्थं भागद्वयं होनमेव स्वल्पान्तरत्वात् कृतम्। तत्सम एव ग्रहे तद्भेदः। अत उक्तम्। गवि नमकु-१७ लवे इति। एवं रोहिणीशकटं पञ्चतारात्मकं पञ्चाशदंगुलशरं यदस्ति तन्मध्ये ग्रहस्य प्रवेशो दक्षिणशरे पञ्चाशदधिक एव भवति। यतो रोहिणीशरः शतांगुलो याम्यः अत्र योगतारा याम्याऽस्ति ॥७॥

विश्वनाथः

अथ नक्षत्राणां रोहिणीशकटभेधं तत्फलं चाह। खगो ग्रहो गवि वृषभे स्थितश्चेन्नयकुलवे सप्तदशभागे वर्त्तमानः तस्य यः शरो यमदिग् दक्षिणः पञ्चाशदंगुलाविकश्चेत् तदा स ग्रहः कभशकटं रोहिणीशकटं भिनत्ति भित्वा गच्छतीत्यर्थः। यदि असृक् भौमः शनिश्तद्वच्चन्द्रश्चेद्भिनत्ति तदा जनक्षयो लोकानामतिपीडा स्यादित्यर्थः ॥७॥

केदारदत्तः

वृष के १७ अंश में स्थित होकर जिस ग्रह का दक्षिण शर ५० अंगुल से अधिक होता है वह ग्रह रोहिणीशकट भेदन करता है।

मंगल, शनि और चन्द्रमा के रोहिणी शकट भेद करने से विश्व की जनता अत्यन्त पीड़ित होती है ॥७॥

उपपत्तिः—रोहिणी नक्षत्र की पाँच तारांओं से एक शकट की (गाड़ी) सी आकृति बनने से उसे रोहिणी शकट कहते हैं। जो निम्न भाँति की आकृति की दिखाई देती है।

अर्थात् क < ल (अ) शकट या कोणाकृति। रोहिणी से राशि वृष होती है

जिसमें कृतिका के नक्षत्र का १ चरण = ३°।२०′ को रोहिणी के चारो चरण = ३°:२० × ४= १३।२० में जोड़ने से १६।४० आसन १७ अंश होता है। अतः १७° वृषस्थ ग्रह रोहिणी शकट भेद करेगा जब कि उसका शर ५० अंगुल से अधिक होगा। अर्थात् अ ल से दक्षिण शर अधिक होगा ॥७॥

स्वर्भानावदितिभतोऽष्ट ऋक्षसंस्थे
शीतांशुः कमशकटं सदा भिनत्ति।
भौमार्क्योः शकटभिदा युगान्तरे स्यात्
सेदानीं न हि भवतीदृशि स्वपाते ॥८॥

मल्लारिः

अथ चन्द्रस्य शकटभेदसमयमाह। राहौ पुनर्वसुमारभ्याष्टनक्षत्रमध्ये वर्त्तमाने सति चन्द्रो रोहिकीशकटं सदा भिनत्त्येव। सङ्गलशन्योः शकटभेदो युगान्तरे स्यात्। इदानीमस्मिन् पात 'खाम्बुधय' इत्यादिके नैव स्यात्।

अत्रोपपत्तिः चन्द्रो वृषभे सप्तदशभागमितन्तस्य शरो दक्षिणः पञ्चाशदंगुलाधिकऽ पुनर्वस्वाद्यष्टनक्षत्रस्थे राहावेव भवतीति प्रत्यक्षम्। भौमशन्योरेतादृशे पाते दक्षिणः शरः पञ्चाशदंगुलाधिको न भवत्येव ॥८॥

विश्वनाथः

अथ चन्द्रस्य शकटभेदसमयमाह। स्वर्भानौ राहौ अदितिभतः पुनर्वस्वोरष्ट ऋक्षसंस्थे सति सदा शीतांशुश्चन्द्रो रोहिणीशकटं भिनत्त्येव। भौमशन्योः शकटभेदो युगान्तरे स्यात्। शकटभेद ईदृशि स्वपाते 'खाम्बुधयः खयमा' इत्यादिरूपे सति इदानीं न भवति। वृषभे ग्रहे स्वपाततः पञ्चाशदंगुलाधिको याम्यः शरो नागच्छेदित्यर्थः॥८॥

केदारदत्तः

पुनर्वसु से लेकर चित्रा नक्षत्र तक, ८ नक्षत्रों में जब तक राहु रहता है तब तक रोहिणी शकट का भेदन करता है। शनि और मंगल का शकट भेद तो युग या युगान्तर में ही सम्भव होता है। क्योंकि वर्त्तमान शनि मंगल के पात की स्थिति से शकट भेदन सम्भव नहीं है ॥८॥

उपपत्तिः—५० अंगुल तुल्य शर स्थिति का चन्द्रमा पुनर्वसु से ८ नक्षत्रों में होने से उक्त ८ नक्षत्रों में शकट भंग (भेद) का निश्चित सम्भव होता ही है। भौम शनि के पातों की अत्यल्पगतिकता से उनके दक्षिण शर का मान ५० अंगुल मे सदा अल्प होने से शकट भेद का सम्भव नहीं असम्भव है। उपपन्न है ॥८॥

खमध्यगर्क्षध्रुवतः स्फुटं चरं
ततो दिनार्धान्निजभोदयैस्तनुः।
भवेत् तदा लग्नमथो तदङ्कभा-
न्वितार्कमध्य घटिका निशागताः ॥९॥

मल्लारिः

अथ खमध्यस्थनक्षत्रदर्शनात् तत्काललग्नं रात्रिगतं च कथयति। खमध्ये याम्योत्तरवृत्ते वर्त्तमानं यन्नक्षत्रं तस्य य उक्तो ध्रुवः। 'अष्ट च मूर्छने'त्यादि तस्मात साधितं स्फुटं सूर्यवत् चरं तेन चरेण यत् कृतं दिनार्धं स इष्टकालः। नक्षत्रध्रुव एव रविः। ताभ्यां स्वदेशीयोदयैर्यत् साधितं लग्नं तत् तत्कालिकलग्नं स्यात् ततस्तल्लग्नषड्भार्कयोर्मध्येरात्रिगतघटिकाः स्युरित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। नक्षत्रस्य यत्कृतं दिनार्धं स एवेष्टकालो नक्षत्रस्य खमध्यस्थितत्वात्। तस्मात् साधितं लग्नं तात्कालिकलग्नं भवतीत्याद्यतिसुगमा ॥९॥

विश्वनाथः

अथ खमध्यस्थनक्षत्राद्रात्रिमानम्। खमध्येति। खमध्ये वर्त्तमानं नक्षत्रं तस्य य उक्तध्रुवकः। अष्ट च मूर्छमे'-त्यादि। तस्मात् स्फुटं शरसंस्कारं विना चरं साध्यम्।

चराद्दिनार्धंत इष्टकालः। खमध्यनक्षत्रध्रुवं सूर्यं प्रकल्प्य अयनांशान् दत्त्वा स्वदेशोदयैर्लग्नं साध्यम्। तस्मिन्नक्षत्रे खमध्यस्थे सति तल्लग्नं स्यात्। तल्लग्नम्। अङ्गभान्वितार्कः सूर्यः। तयोरन्तरेऽर्कस्य भोग्यइत्यादिना कालः साध्यः। ताः खमध्ये नक्षत्रसूर्यस्य रात्रिगतघटिका भवन्ति। खमध्यस्थाश्विनीध्रुवकः ०।८ अयनांशाः १८।१० सायनः ०।२६।१० अस्माच्चरम् ४९। अतो दिनार्धम् १५।४९ एवं जातानि सर्वेषां दिनार्धानि। एभ्यो लग्नसाधनम्। अश्विनीध्रुवक ०।८ सायनः ०।२६।१० अस्माद् भोग्यकालः २८। इष्टकालः १५।४९ 'भोग्यः शोध्योऽभीष्टनाडीपलेभ्य' इत्यादिना जातं खमध्ये लग्नम् ३।१३।४४।४६ एवं जातानि सर्वेषां मध्यलग्नानि ॥९॥

केदारदत्तः

अपने ख मध्य स्थित नक्षत्र के ध्रुवांश से स्पष्ट चर लाकर इससे दिनार्धमान साधन कर, दिनार्ध और राश्युदय मान से लग्न साधन कर ६ राशि युक्त सूर्य और उक्त लग्नान्तर घटी का मान रात्रिगत खमध्य स्थित नक्षत्र दर्शन काल होता है ॥९॥

उपपत्तिः—नक्षत्र ध्रुवा से चर ततः दिनमान साधन सुगम है। दिनार्धात्मक इष्ट काल से साधित लग्न का मान खस्वस्तिकस्थ नक्षत्र का लग्नमान होता है। पुनः लग्न तथा ६ राशि युक्त सूर्य की अन्तवर्ती घटिकायें रात्रिगत घटिका होती हैं ॥९॥

उद्यद्धध्रुवकः स्वदेशजोऽस्तं वां प्राप्नुवतः सषड्गृहः।
स्यात् तत्कालविलग्नकं ततःप्राग्वत् स्युर्घटिका निशागताः ॥१००॥

मल्लारिः

अथ ये नक्षत्रोदयास्तलग्ने ताभ्यां निशागतं च वदति। उदये वर्तमानं यन्नक्षत्रं तस्य यः स्वदेशीयो ध्रुवः स सषड्भः सन्नस्तलग्नं भवति। ततस्तल्लग्नसषड्भार्कयोर्मध्ये प्राग्वद् रात्रिगता घटिकाः स्युरित्यर्थः। ध्रुव उद्यदुडोः स्वदेश इति पाठः साधुः।

अत्रोपपत्तिः अतिसुगमा ॥१०॥

विश्वनाथः

अथोदयनक्षत्राद्वाऽस्तनक्षत्राल्लग्नं रात्रिगतं चाह। उद्यदिति। उद्यदुदयं प्राप्नुवद्यद्धं नक्षत्रं तस्य स्वदेशजो ध्रुवकः स एव तात्कालिकलग्नं स्यात्। अस्तं प्राप्नुवतो ध्रुवकः षड्राशियुक्तः। अस्तलग्नं स्यात्। तत उदयाप्तलग्नतः सषड्भार्कतः प्राग्वद्रात्रिघटिकाः साध्याः। अश्विन्या उदयध्रुवकः स्वदेशजः ०।३।१२।३० ययं तत्काललग्नम्। अस्तध्रुवकः ०।३।४७।३० षड्राशियुक्तो जातमस्तलग्नम् ६।३।४७।३० एवं सर्वेषामुदयास्तलग्नानि बोधव्यानि ॥१०॥

केदारदत्तः

उदय क्षितिजस्थ नक्षत्र का स्वदेशीय ध्रुव इष्ट कालिक प्रथम लग्न और अस्त

क्षितिजस्थ नक्षत्र का स्वदेशीय ध्रुव में ६ राशि जोड़ने से लग्न होता है। लग्न और ६ राशि युत सूर्य से रात्रिगत काल ज्ञान सुलभ है ॥१०॥

उपपत्ति:—गोल दर्शन से सुस्पष्ट है ॥१०॥

इति नैजदेशपलभावशतो ह्युदयं खमध्यमथ वाऽस्तमयम्।
व्रजदश्विभादिषु सुखार्थमिह स्थिरलग्नकानि विदधीतसुधीः ॥११॥

मल्लारिः

अथ स्वदेशीयानि नक्षत्राणामुदयादीनि स्थिरलग्नानि कार्याणीत्याह। निजदेशपलभावशत उदयं खमध्यमस्तं वा गच्छतो नक्षत्रस्योक्तरीत्या सुधीः स्थिरलग्नकानि कुर्वीतेत्यर्थः। चतुर्भितां पलभां प्रकल्प्य आचार्येण स्थिराणि मध्यलग्नानि शिष्यकृपया कृतानि सन्ति।

'प्राग्लग्नस्य लवाः खमध्यकगते दास्रे द्विदिग्भिर्मिताः' इत्यादिभिः ॥११॥

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्याभूदृक्षदीप्त्यानयनाधिकारः ॥

इति श्रीग्रहलाघवस्य टीकायां नक्षत्रच्छायाधिकार एकादशः ॥११

विश्वनाथः

अथ स्वदेशनक्षत्रोदयानि स्थिरलग्नानि कार्याणीत्याह। इति अनेन प्रकारेण निजदेशे पलभावशात उदयमध्यास्तलग्नानि। अथ सुधीर्बुद्धिमान् स्थिरलग्नानि सुखार्थं विदधीत कुर्यादित्यर्थः। एवं जातान्युदयमध्यमास्तलग्नानि ॥११॥

केदारदत्तः

उक्त इस प्रकार से अपने देश की पलभा से, उदय क्षितिजस्थ खस्वस्तिकस्थ या अस्तक्षितिजस्थ अश्विनी आदिक नक्षत्रों का स्वसुखाय ग्रहगणितज्ञ ज्यौतिर्विद ने स्थिर लग्नों का साधन करना चाहिए ॥११॥

उपपत्ति:—स्पष्ट है ॥११॥

गर्गगोत्रीय स्वनामधन्य, कूर्माञ्चलीय ज्योतिर्विद्वय श्री पं० हरिदत्त जी के आत्मज-अल्मोड़ामण्डलीय जुनायल ग्रामजपर्वतीय काशीस्थ (नलगाँव) श्री केदारदत्त जोशी कृत ग्रहलाघव नक्षत्रच्छायाधिकार की उपपत्ति सहित सोदाहरण व्याख्या सम्पूर्ण ॥

अथ शृङ्गोन्नत्यधिकारः

मासस्य प्रथमेऽन्तिमेऽथ चांऽघ्रौ विधुशृङ्गोन्नतिरीक्ष्यते यदह्नि ।
तपनास्तमथोदयेऽवगम्यास्तिथयः सावयवाः क्रमाद्गतैष्याः ॥१॥

मल्लारिः

अथ चन्द्रशृङ्गोन्नत्यधिकारो व्याख्यायते। मासस्य प्रथमे चरणे अथ वा अन्तिमे चरणे यस्मिन्नभीस्टे दिने शृङ्गोन्नतिरवलोक्यते तद्दिवसे तपनास्तमयोदये क्रमादिति शुक्लपक्षे सूर्यास्तकाले गततिथयः कृष्णपक्षे सूर्योदये एष्यतिथयः सावयवा ज्ञेयाः ।

अत्रोपपत्तिः । एष चन्द्रो जलमयस्तस्य यथा यथा सूर्यकिरणसंयोगस्तथा तथा शृङ्गौच्च्यम् । एवममायां सूर्यचन्द्रयोः साम्यात् तत्र सिताभावः । एवं प्रतिपदि द्वादशभागान्तरे किञ्चित् सितम् । एवमष्टम्यामर्द्धं विम्बं सितम् । तत् सितं न समौच्च्यं कक्षाभेदात् सूर्यचन्द्रयोर्दक्षिणोत्तरान्तरस्य विद्यमानत्वात् । अत्र विम्बार्धादधिके सिते शृङ्गौच्च्यदर्शनाभावः । अत एव शुक्लाष्टमीपर्यन्तं कृष्णाष्टमीतोऽग्रे वा शृंगोन्नतिरवलोक्येत्युपपन्नम् । एवं शुक्लपक्षे शृंङ्गोन्नतिः सूर्यास्तासन्ना कृष्णपक्षे सूर्योदयासन्ना भवति । अत एव 'तपनास्तमयोदये' इत्याद्युक्तम् ॥१॥

विश्वनाथः

अथ शृङ्गोन्नतिः । शाके १५३२ ज्येष्ठशुक्ले ५ गुरौ शृङ्गोन्नत्यवलोकनार्थमहर्गणः । चक्रम् ८ । अहर्गणः ८०३ । अस्मान्मध्यमः सूर्यः १।११।३३।५४ चन्द्रः ३।९।३३।९ उच्चम् ०।२४।५७।४८ राहुः २।२२।२४।२३ रवेर्मन्दकेन्द्रम् १।१।२६।६ मन्दफलं धनम् १।८।२२ संस्कृतो रविः १।१७।४२।१६ अयनांशाः १८।८ चरमृणम् १०६ । स्पष्टो रविः ७।१।१६।४०।३० स्पष्टा गतिः ५६।२० फलत्रयसंस्कृतश्चन्द्रः ३।९।१।२८ मन्दकेन्द्रम् ४।१५।५५।४० मन्दफलं धनम् ३।२९।२१ स्पष्टश्चन्द्रः ३।१२।३०।४९ स्पष्टा गतिः ८३७।१३ दिनमानम् ३३।३२ ॥१॥

केदारदत्तः

यहाँ पर मास शब्द । चान्द्रमास का बोधक है । चान्द्रमास के प्रथम चरण अर्थात् शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से शुक्ल पक्ष की साढ़े सप्तमी तक या अन्तिम चरण अर्थात् कृष्ण पक्ष की साढ़े सप्तमी से अमान्त समय तक के दिनों में जिस अभीष्ट दिन चन्द्रमा की शृङ्गोन्नति देखनी हो उस दिन के क्रमशः सूर्यास्त और सूर्योदय कालिक सावयव गत और गम्य तिथि का ज्ञान करना चाहिए ॥१॥

उपपत्तिः—शुक्ल पक्ष के प्रथम चरण में, सूर्य से चन्द्रमा आगे होने से गततिथियों को १२ से गुणा करने से सूर्य चन्द्रमा के अन्तर अंश एवं कृष्ण पक्ष में मासान्त चरणों में सूर्य से चन्द्रमा पृष्ठगत होने से सावयव गम्य सूर्य चन्द्रमा के अन्तरांशों को १२ से गुणा करने से सूर्य चन्द्रमा के अन्तरांश होते हैं। शुक्ल कृष्ण पक्षों में इसीलिए क्रमशः गत और गम्य तिथियों का साधन किया है ॥१॥

रविहततिथयोंऽशास्तद्द्वियुग्युक् क्रमेण
द्युमणिरपरपूर्वे मासपादे विधुः स्यात् ।
नृपगुणतिथिरूना स्वघ्नतिथ्याक्षभाघ्नी
शरकुहृदुदगाशा संस्कृतार्कापमांशैः ॥२॥
चन्द्रस्य च व्यस्तशरापमांशै-
र्द्विनिघ्नतिथ्या विहृतांऽगुलाद्यम् ।
संस्कारदिक्कं वलनं स्फुटं स्यात्
स्वेष्वंशहीनास्तिथयः सितं स्यात् ॥३॥

मल्लारिः

अथ गतैष्यसावयवतिथिभ्यो रविचन्द्रं साधयति। द्वादशगुणस्तिथयो भागाः। तैर्भागैः सूर्यो मासान्त्यपादे हीनः। मासप्रथमांघ्रौ युक्तश्चन्द्रः स्यात्। षोडशगुण तितिस्तिथिवर्गेणोना पलभागुणा पञ्चदशभक्ता फलं भागादिकमुत्तरं स्यात्। तत् सूर्यक्रान्त्या संस्कृतं कार्यम्। अत्र सर्वत्र संस्कारस्तु एकदिशोर्योगोऽन्यदिशोरन्तरमिति प्रसिद्धः। चन्द्रस्य व्यस्तदिशा शरेण व्यस्तदिक्क्रान्त्या च तत् संस्कार्यम्। ततस्तद्-द्विगुणाभिस्तितिभिर्भज्यम्। फलं संस्कारादिगंगुलाद्यं वलनं स्फुटम्। स्वीयो यः पञ्चमांशस्तेन हीनास्तिथयः। अंगुलाद्यं सितं स्यादित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। रविचन्द्रान्तरे द्वादशभागतुल्ये एका तिथिर्भवति अतस्तिथयो द्वादशगुणा रविचन्द्रान्तरभागा जाताः। ते रवौ योज्याश्चन्द्रो भवत्येव। अत एवात्र शुक्ले युक्ता इत्युक्तम्। कृष्णेऽपि योज्याः परमत्र कृष्णे एष्यतिथयोगृहीताः सन्त्यतो हीना इत्युक्तम्। अथ वलनोपपत्तिः। तत्र चन्द्रसूर्ययोर्दक्षिणोत्तरमन्तरं भुजः। तस्य वलनसंज्ञा यतोऽन्वर्थं नाम। तावताऽन्तरेण चन्द्रशृंगं वलति। उर्ध्वाधरमन्तरं कोटिः। तयोर्मध्ये तिर्यक्कर्णः। तद्दक्षिणोत्तरमन्तरं साध्यते। सूर्यक्रान्तिश्चन्द्रस्य शरेण क्रान्त्या च संस्कार्या। तत्र व्यस्तदिक्त्वेऽथ हेतुः। यत उभयोर्दक्षिणोत्तरान्तरे साध्यमाने समदिशोरन्तरं भिन्नदिशोर्योगः कर्तव्यः। संस्कारलक्षणंतु सर्वदिशोर्योगो भिन्नदिशो-रन्तरमित्यतो व्यस्तशरापमांशैरित्युक्तम्। एवमत्र दक्षिणोत्तरमन्तरं निरक्षदेशीयं जातम्। तत् स्वदेशीयकरणार्थं फलं नृपगुणतिथिरित्याद्युत्पादितम्। तद्यथा। रवे-

रुदयेऽस्ते शृंगोन्नतौ चन्द्रो यदा खस्वस्तिके तदा तयोर्दक्षिणोत्तरान्तरमक्षांशा एव। अथेष्टस्थानस्थे चन्द्रेऽनुपातः। यदि त्रिज्यातुल्यया १२० व्यर्केन्दुदोर्ज्यया अक्षांशतुल्यमन्तरं तदेष्टदोर्ज्यया किमिति। अत्र तिथिर्द्वादशगुणा व्यर्केन्दुदोर्भागाः। ते द्विगुणा दोर्ज्या साक्षांशगुणा त्रिज्याभक्ता कृता। तत्राक्षांशस्थाने पलभा गृहीता। तेन पलभा पञ्चगुणा पलभावर्गदशांशोनाक्षांशाः स्युरिति। प्रथमं पञ्चगुणः किञ्चन्न्यूना ग्राह्य इत्यत्राधिक एव गृहीतः संत्र्यंशाः पञ्च ५।२० एवं तिथेर्गुणाः १२।२ अत्र गुणानां घातो जातो गुणः १२८। त्रिज्याहरः १२०। गुणहरावष्टभिरपवर्तितौ जातो गुणः १६। हरः १५। पलभागुणा शरकुद्वदिति जातम्। अत्र स्थानद्वयेऽन्तरं जातम्। यतो द्विगुणभागाः सर्वभुजभागेषु दोर्ज्या न भवति। सत्र्यंशपञ्चगुणपलभातुल्या अक्षांशा न भवन्ति। यतः पञ्चगुणपलभायाः पलभावर्गदशांशो न्यूनोऽस्ति तेन प्रतितिथिकं यदन्तरमिति ज्ञानार्थमुपायः। अत्र स्थानद्वयेऽन्तरमेकमक्षांशे पलभागदशांशतुल्यम्। द्वितीयस्थाने द्विगुणभागा दोर्ज्येति स्थानद्वयेऽन्तरमधिकमस्ति वर्गात्मकम्। तदन्तरं तिथिवर्गपञ्चदशांशतुल्यमधिकमस्ति तेन प्रथमं नृपगुणतिथिष्वेव हीनस्तिथिवर्गः कृतः यतोऽग्रे पञ्चदश हरोऽस्त्येव। अतो नृपगुणतिथिःस्वघ्नतिथ्योनाऽक्षभाघ्नी शरकुद्वलनं भवतीत्यपपन्नम्। व्यस्तदिक्कार्थमुदगाशा। एवं संस्कारदिग्वलनं जातम्। अत्र क्रान्तिशराक्षांशानां संस्काराज्जातं वलनमंशाद्यम्। तस्यांगुलीकरणार्थमुपायः। प्रतिपदन्ते रविचन्द्रान्तरे द्वादशभागाः। तत्र षडंगुलतुल्यं विम्बार्धं प्रकल्प्यानुपातः। यदि द्वादशभागैः षडंगुलानि तदेष्टवलनभागैः किमिति। अत्र गुणहरौ गुणेनापवर्त्य जातो हरः २। पुनरन्योऽनुपातः। द्वादशभागप्रमाणेन यद्ययं हरस्तदेष्टव्यर्केन्दुदोर्भागैः किमिति व्यर्केन्दुदोर्भागषडंशोः वलनस्य हरः। द्वादशतुल्ये रविचन्द्रान्तरे एकतिथिः। तत्र द्वयं हरः एकतिथ्या द्वयं हरस्तदेष्टतिथ्या किमिति अतो द्विनिघ्नतिथ्या विहृतेत्युपपन्नम्। अथ सितोपपत्तिः। अत्र रविचन्द्रयोः पादोनषट्काष्टलवान्तरेऽर्धविम्बं सितं भवति। अतः सार्धसप्ततिथिषु विम्बार्धं सितं षडंगुलतुल्यम्। तेनानुपातः। यदि सार्धसप्ततिथिभिः षडंगुलतुल्यं सितं लभ्यते तदेष्टतिथिभिः किमिति। तिथयो यावत् षड्गुणाः सार्धसप्तभक्ताः क्रियन्ते तावत् स्वपञ्चमांशहीना एव भवन्तीत्युपपन्नम् ॥२–३॥

विश्वनाथः

अथ वलनसाधनार्थं गतैष्यतिथिसाधनमाह। मासस्य प्रथमे चरणे अथवा अन्तिमे चरणे। शुक्लप्रातिपदमारभ्याष्टमीपर्यन्तं प्रथमचरणः। कृष्णाष्टम्या दर्शपर्यन्तमन्तिमश्चरणः। तत्र यस्मिन्निष्टदिने चन्द्रस्य शृङ्गोन्नतिरवलोक्यते तद्दिवसे तपनास्तमयोदये शुक्लपक्षे सूर्यास्तकालीनरविचन्द्राभ्यां तिथयः सावयवाः कार्याः। कृष्णपक्षे सूर्योदयकालीनरविचन्द्राभ्यामेष्यतिथयः सावयवा घटीपलाद्यवयवसहिताः कार्याः। शुक्लपक्षे सूर्यास्तसये शृङ्गोन्नतिरवलोक्यते कृष्णपक्षे सूर्योदये इत्यर्थः। अर्थात् शुक्लाष्टम्यादिकृष्णाष्टम्यन्तं तिथिषु शृङ्गोन्नतिनास्त्येवेति सिद्धम्। सूर्यास्ते चालितः सूर्यः १।१८।१२।३२ चन्द्रः ३।१९।४८।२ राहुः २।२२।२२।३८ सूर्यास्ते गताः सावयवा-

स्तिथयः ५।७।२०।२ यदः पञ्चांगस्थरविराहू सावयवास्तिथयश्चेदगृह्यन्ते तदा सूर्यास्ते सावयवास्तिथयः ५।७।२० रवि-१२ हता जाता अंशाः ६१।२८।० सूर्यास्ते द्युमणिः १।१८।१२।३२ मासस्य पूर्वपादत्वादंशैर्युक्तो जातश्चन्द्रः ३।१९।४०।३२ यदा अहर्गणाच्चन्द्रः साध्यते तदा गतस्य प्रयोजनं नास्ति । गताः सायवयास्तिथयः ५।७।२० नृप-१६ गुणाः ८१।५७।२० स्वघ्नतिथ्या २६।१४।१३ ऊनाः ५५।४३।७ अक्षभया ५।४५ गुणिताः ३२०।२२।५५ पञ्चदश-१५ भक्ताः फलं भागादिकमुत्तरम् २१।२१।३१ इदं सूर्यस्योत्तरक्रान्तिभागैः २१।४४।२९ संस्कृत जातमुत्तरम् ४३।६।० व्यगुविघुः ०।२७।२५ २४ अस्मात् 'नृपत्तिथि'इत्यादिखण्डकैः साधितोंऽगुलादिशर उत्तरः ४१।३३।२५ त्रिगुणितोंऽशादिरुत्तरशरः २।४।१०। चन्द्रस्य क्रान्तिरुत्तरा १८।३६।५९ प्रागानीतं भागाद्यमुत्तरं फलम् । ४३।६।० इदं व्यस्तदिक् शरभागैः संस्कृतम् ४१।१।५० इदं चन्द्रस्य व्यस्तक्रान्त्यंशेन संस्कृतं जातमुत्तरम् २२।२४।५१ इदं द्विगुणिततिथिभि-१०।१४।४० र्भक्तं जातं स्पष्टमंगुलाद्यं वलनं संस्कारस्योत्तरत्वादुत्तरम् २।११।६ सावयवास्तिथयः ५।७।२० स्वपञ्चमांशेन हीनाः १।१।२८ जातं सितम् ४।५।५२ ॥२-३॥

केदारदत्तः

पूर्व साधित सावयव गत और ऐष्यतिथि को १२ से गुणा करने से सूर्य और चन्द्रमा के अन्तरांश होते हैं। अन्तरांशों को क्रमशः मास के चतुर्थ और प्रथम चरण में सूर्य के घटाने और जोड़ने से स्फुट चन्द्र का ज्ञान होता है। १६ गुणित तिथि के गुणनफल में तिथि का वर्ग घटा कर जो शेष उसे पलभा से गुणाकर गुणनफल में पलभा का भाग देकर उत्तर दिशा का अंशादिक फल होता है। इस फल का सूर्य की क्रान्त्यांशों के साथ संस्कार कर पुनः चन्द्र शर ओर क्रान्त्यंश के साथ विलोम संस्कार कर जो हो उसमें द्विगुणित तिथि का भाग देने से संस्कार दिशा का अंगुलादिक वलन होता है। तिथि में तिथि का पञ्चमांश कम करने से अंगुलादिक शुक्ल मान होता है ॥२-३॥

उपपत्तिः--सूर्यास्त के अनन्तर पश्चिम दिशा में प्रतिपद की समाप्ति द्वितीया में शृङ्गाकार का चन्द्र दर्शन सम्भव होता है। ६ तुल्य पलभा देशों में चन्द्र दर्शन सम्भव विचारा गया है। शृङ्गाकार चन्द्र दर्शन और चन्द्र शृङ्गोन्नति का समय चान्द्रमास के प्रथम एवं अन्तिम चरणों में ही होता है। तिथि=ति, लघुखण्डों से अन्तरांश ज्या $\frac{२१ \times १२ \times ति०}{१०}$

सूर्य चन्द्रमा का दक्षिणोत्तर अन्तर = भुज = वलन संज्ञक। तुला और मेषादि में क्षितिजस्थ सूर्य में यदि चन्द्र स्थान खमध्य में हो तो क्रान्त्यन्तर = अक्षांश। अतः इष्ट अन्तर सम्बन्धी अन्तर का अनुपात से ज्ञान करना है। $अं० = \frac{अक्षांश \times ज्या\ अ}{१२०} = (अ)$ अक्षांश = प० ५ − $\frac{प^{२}}{१०} = \left(५ \frac{प}{१०}\right) प$। ज्या अन्तरांश=$\frac{१२ \times १२\ ति०}{१०}$, समीकरण अ में उत्थापन देने से

इष्टान्तरांश सम्बन्धी अंशात्मक वलन $= \left(५ - \frac{प}{१०}\right) \frac{प \times २१ \times १२ \text{ ति०}}{१२० \times १०}$

$= \frac{\text{ति०} \times १२६०}{१२००} - \frac{(प० \times \text{ति०}\ २५२)}{१० \times १२००} = \left(\frac{\text{ति०} \times १६}{१५} - \frac{३\ \text{ति०}}{१०} \times \frac{\text{ति०}\ २५२}{१२००}\right) प$

$= \left(\frac{१६ - \text{ति०}^२}{१५}\right) प$ = वलनांश = प इसे सूर्य की इष्ट क्रान्ति और चन्द्रमा की व्यस्त क्रान्त्यंशों के संस्कार से स्पष्ट अंशात्मक वलन होता है।

एक दिशा की क्रान्त्यशों का अन्तर भिन्न दिशाओं के योग, ग्रहान्तर होने से चन्द्रमा की क्रान्ति व्यस्त कल्पना समीचीन है। अंशात्मक मान का अंगुल करने के लिए प्रतिपद के अन्त में अन्तरांश = १२७ विम्ब के लिए मान = ६ अंगुल। अत: १२ अंश में ६ अंगुल तो इष्टान्तरांशों में $= \frac{व० \times ६}{१२} = \frac{व}{२}$ यहाँ वलन का हर २ है। पुनः अनुपात किया कि यदि एक राशि में हर = २ तो अभीष्ट तिथि में २ × अभीष्ट तिथि। इससे वलन में भाग देने से अंगुलात्मक स्फुट वलन होता है। चन्द्रमा से जिस दिशा में सूर्य उसी दिशा का वलन कहा है। शुक्ल साधन के लिए यदि ७½ तिथियों में असित मान = ६ अंगुल तो इष्ट तिथि में $\frac{६ \times \text{इष्ट तिथि}}{\frac{१५}{२}} = \frac{१२ \times \text{इ०ति०}}{१५} = \text{इ० ति०} - \frac{\text{इ०ति०}}{५}$ उपपन्न होता है ।।२-३।।

उन्नत वलनाशायामन्यस्यां स्यान्नतं विधोः ।
वलनस्यांगुलैः शृङ्गं किमत्र परिलेखतः ।।४।।

मल्लारिः

अथ कस्यां दिशि शृङ्गौच्चमिति वदति। वलनस्य या दिक् तस्यां शृङ्गोन्नतत्वमन्यस्यां दिशि चन्द्रस्य शृगं नतं स्यात् वलनस्यांगुलैः शृंगौच्च्यपरिमाणं ज्ञेयम्। अत्र परिलेखतः किं साध्यम्। किमर्थं जडकर्म कर्त्तव्यमिति भावः।

अत्रोपपत्तिः। सूर्यान्यदिशि वलनम्। अतो वलनान्यदिश्येव शृंगोन्नमनम्। अत्र वलनं व्यस्तदिक्कमस्त्यतो वलनदिश्येव शृंगौच्च्यं वलनांगुलतुल्यमेव। वलनाभावे शृंगे समाने भवतः। अत्र परिलेखः शृंगोन्नतिदिग्ज्ञानार्थं कर्त्तव्यः। तत् शृंगोन्नतिदिग्ज्ञानं शृंगौच्च्यपरिमाणं च वलनत एव जातम्। अतः किमर्थं परिलेखः कर्त्तव्य इत्युक्तम् ।।४।।

दैवज्ञवर्यस्व दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन ।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्याभूच्चन्द्रशृंगोन्नमनाधिकारः ।।
इति श्रीग्रहलाघवस्य टीकायां चन्द्रशृंगोन्नत्यधिकारो द्वादशः ।।१२।।

विश्वनाथ:

अथ शृंगस्योन्नतदिग्ज्ञानमाह। या वलनस्य दिक् तद्दिशि चन्द्रस्य शृङ्गमुन्नतं भवति वलनस्यांगुलैर्वलनस्य यावन्ति अंगुलानि तन्मितांगुलै शृंगमुन्नतं वलनान्यदिक् शृंगं नतं नम्रं भवतीति। एवं दिग् ज्ञाने सति परिलेखत: किं प्रयोजनम् प्रकृते वलनस्योत्तरत्वादुत्तरदिशि शृङ्गोच्च्यम् ॥४॥

इति शृंगोन्नत्युदाहरणम्।

केदारदत्त:

वलन की जो दिशा हो उस दिशा में चन्द्रमा का उन्नत शृङ्ग और वलन की विलोम दिशा में नत होता है। परिलेख अनावश्यक है ॥४॥

गर्गगोत्रीय स्वनामधन्य, कूर्माञ्चलीय ज्योतिर्विद्वर्य श्री पं० हरिदत्त जी के
आत्मज–अल्मोड़ामण्डलीय जुनायल ग्रामज पर्वतीय काशीस्थ (नलगाँव)
श्री केदारदत्त जोशी कृत ग्रहलाघव शृङ्गोन्नत्याधिकार
की उपपत्ति सहित सोदाहरण व्याख्या सम्पूर्ण ॥१२॥

अथ ग्रहयुत्यधिकारः

पञ्चर्त्वगाङ्कविशिखाः पृथगीशकर्णा-
योगहताः प्रकृतिभान्वरिसिद्धरामैः ।
भक्ताः फलोनसहिताः श्रवणेऽधिकोने
ते त्र्युद्धृताः स्युरसृजो वपुरंगुलानि ॥१॥

मल्लारिः

अथ ग्रहयुत्यधिकारो व्याख्यायते। पञ्च प्रसिद्धाः। ऋतवः षट्। आगाः सप्त। अङ्का नव। विशिखाः पञ्च। एतेऽङ्काः पृथक्। ईशानामेकादशानां कर्णस्य च योऽयोगो नामान्तरं तेनाहताः। ततः क्रमात् द्रकृत्याद्यङ्कभक्ताः प्रकृतिरेकविंशतिः। भानवो द्वादश: अरयः षट्। सिद्धाश्चतुर्विंशतिः। रामास्त्रयः एभिर्भक्ताः। यदंगुलाद्य फलं तेन पृथक् तेऽङ्काः ऊनसहिताः कार्याः। कर्णे एकादशाधिके ऊना ऊने सहिताः। ततस्ते त्रिभक्ताः। असृजः सकाशात् भौमादीनामंगुलात्मकानि विम्बानि भवन्तीत्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। अत्रातीन्द्रियदृग्भिराद्यै राचार्यैस्त्रिज्यातुल्ये शीघ्रकर्णे भौमादीनां विम्बांगुलानि लक्षितानि। तान्यैवाचार्येण पञ्चादीन्युक्तानि। तेषां स्पष्टीकरणं यथा। अन्त्यफलज्यातुल्येन त्रिज्याशीघ्रकर्णान्तरेण यदि विम्बत्रिभागतुल्यो ह्रासवृद्धिर्लभ्यते तदेष्टेन त्रिज्याशीघ्रकर्णान्तरेण किमिति। अत्र विम्बानामन्त्यफलज्या हारः। अत्र त्रिज्या भवमिता अतो भवशाघ्रकर्णान्तरं गुणः। अत्र यथा भौमस्यान्त्मफलज्या ७७। इयं त्रिगुणा जातो हरः २३१ यदि खार्कमिते व्यासार्धे अयं हरस्तदेकादशतुल्ये व्यासार्धे क इत्यतोऽयं हरः २३१। एकादशगुणः ८५४१। खार्कभक्तो जाता एकविंशतिर्भौमस्य हरः। एवं सर्वेषामेव फलेन त एवोनसहिता इति। दूरस्थे ग्रहे विम्बं लघु त्रिज्याधिकः कर्णः। अतस्तत्रोनम्। समीपे विम्बाधिक्यं तत्र त्रिज्यातः कर्णोनता अतस्तत्र युक्तमित्युक्तम्। तद्बिम्बं कलाद्यम्। अंगुलादिकरणाय त्रिभिर्भक्तम् यत् कलात्रयेणैकमंगुलं भवति ॥१॥

विश्वनाथः

अथ ग्रहयुत्यधिकारोदाहरणम्। अत्र युतिसाधनार्थं कस्मिश्चिद्ग्रहयुत्यासन्नदिने स्फुटौ ग्रहौ कार्यौ शीघ्रकर्णश्च वेद्यः। स्पष्टसूर्यश्च। संवत् १६६७। शाके १५३२ वैशाखशुक्ले १० रवौ। अस्मिन् दिने ग्रहयुतिसाधनार्थमहर्गणः। चक्रम् ८। अहर्गणः ७७८। मध्यरविः ०।२१।५५।३० भौमः ९।०।३३।५१ शनिः १०।५।४५।९ रवेर्मन्दके-

न्द्रम् १।२६।४।३० मन्दफलं धनम् १।४८।२६ संस्कृतो रवि ०।२३।४३।५६ अयनांशाः १८।८ चरमृणम् ७५ । स्पष्टो रविः ०।२३।४२।४१ स्पष्टगतिः ५७।५६ अथ भौमस्पष्ट-करणम् । शीघ्रकेन्द्रम् ३।२१।२१।३९ शीघ्रफलार्धं धनम् १८।५०।३७ संस्कृतो भौमः ९।१९।२४।२८ मन्दकेन्द्रम् ६।१०।३५।३२ मन्दफलमृणम् २।२।५२ मन्दस्पष्टो भौमः ८।२८।३०।५९ शीघ्रकेन्द्रम् ३।२३।२४।३१ शीघ्रफलं धनम् ३८।४।१० स्पष्टो भौमः १०।६।३५।९ स्पष्टा गतिः ४२।५० अथ शनिस्पष्टीकरणम् । शीघ्रकेन्द्रम् २।१६।९।३१ शीघ्रफलार्धं धनम् २।२४।३१ संस्कृतः शनिः १०।८।२८।३० मन्दकेन्द्रम् ९।२१।३१।३० मन्दफलमृणम् ८।२२।४१ मन्दस्पष्टः शनिः ९।२७।२३।१८ शीघ्रकेन्द्रम् २।२४।३२।१२ शीघ्रफलं धनन् ५।३५।२६ स्पष्टः शनिः १०।२।५८।४४ स्पष्टा गतिः ३।३ दिनमानम् ३२।३० भौमशीघ्रकर्णः ८।५२ शनिशीघ्रकर्णः ११।१३ अथ विम्वसाधनमाह । भौम-विम्बं कलाद्यं ५ पृथक्स्थम् ५ । ईश-११कर्णयो-८।५२ रन्तरेण २।८ गुणम् १०।४० प्रकृति-२१ भक्तं फलम् ०।३० एकादशभ्यः श्रवणस्य न्यूनत्वात् फलेन पृथक्स्थे ५ सहितं जातम् ५।३० इदं त्र्युद्धृतं त्रिभि-३ र्भक्तं जातमंगुलाद्यं स्पप्टं भौमबिम्बम् १।५० अथ शनिविम्बं ५ पृथक्स्थम् ५ । ईश-११कर्ण११।३३ योरन्तरेण ०।१३ गुणि-तम् १।५। रामै-३ र्भक्तम् । फलम् ०।२१ एकादशभ्यः श्रवणस्याधिकत्वात् फलेन पृथक्स्थेन रहितं जातम् ४।३९ त्रिभिर्भक्तं जातमंगुलाद्यं स्पष्टं शनिविम्बम् १।३३ असृजो भौममारभ्येत्यर्थः ॥१॥

केदारदत्तः

क्रमशः ५, ६, ७, ९ और ५ इन पाँच अंकों को मंगलादिकों के शीघ्र कर्णो का, ११ अंक के साथ जो अन्तर हो उस अन्तर से गुणाकर उस गुणनफल में क्रमशः २१, १२, ६, २४ और ३ से इन अङ्कों से भाग देकर लब्ध फलों को यदि ११ से कर्ण अधिक हो तो ५, ६, ७, ९ और ५ में घटाने से, और यदि कर्ण ११ से कम हो तो जोड़ने से उपलब्ध अंक में ३ तीन से भाग देने से क्रमशः मंगलादिक ग्रहों के बिम्बमान हो जाते हैं ।

उपपत्तिः—उदयास्ताधिकार के १३ वें श्लोक की उपपत्ति ११ संख्या मान की त्रिज्या में भौमादिक ग्रहों का कर्णमान ज्ञात किया गया है । इसी प्रसंग से वहाँ भौमादिकों की अन्त्यफल ज्या क्रम से ७।४।२।८।१ तथा क्रमशः भौमादिकों का बिम्ब मान भी ५।६।७।९।५ स्वीकार किए गये हैं । अतः 'त्रिज्याशुकर्णविवरेण पृथग्विनिघ्न्यस्त्रिघ्न्या निजान्त्यफलमौर्विकया विभक्ता' इत्यादि भास्कराचार्य की विधि से बिम्बमान साधन सुगम है ।

बिम्बमान में ३ तीन का भाग देने से लब्ध फल तुल्य क्रमशः बिम्बों का अंगुलादिक मान हो जाता है ॥१॥

अधिकजवखगाऽधिकेऽल्पभुक्तेरथ कुटिलेऽल्पतरेऽनुलोमतो वा ।
अनृजुगखगयोस्तु शीघ्रगेऽल्पे युतिरनयोः प्रगतान्यथा तु गम्या ॥२॥

मल्लारिः

अथ ग्रहयुतेर्गतैष्यताज्ञानमाह । ययोर्ग्रहयोर्युतिः साध्ये तयोर्मध्ये योऽधिकगतिर्ग्रहः स चेदल्पगतेर्ग्रहादंशाद्यवयवेनाधिकस्तदा तयोर्युतिर्गतेति वाच्यम् । अथ वा कुटिले वाक्रिणि ग्रहे अनुलोमतो मार्गिग्रहादल्पतरे सति युतिर्गता वाच्या । अनृजुगखगयोर्द्वयोर्वक्रिणोर्ग्रहयोर्मध्ये शीघ्रगतौ ग्रहे भागादिना अल्पे युतिर्गतैव वाच्या । अन्यथोक्तलक्षणवैपरीत्ये ग्रहयुतिर्गम्येत्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः प्रत्यक्षसुगमा ॥२॥

विश्वनाथः

अथ ग्रहयुतेर्गतैष्यताज्ञानमाह अधिकेति । ग्रहयुत्यासन्नग्रहयोर्मध्ये अल्पभुक्तेर्न्यूनगतेः सकाशात् । अधिकजवखगोऽधिकगतिर्ग्रहः । अधिकोंऽशाद्यवयवेनाधिकः । तदा अनयोर्युतिः प्रगता गतेति वाच्यम् । अथ वाऽनुलोमतो मार्गिग्रहात् कुटिले वक्रिणि ग्रहे अल्पतरे शति युतिर्गता वाच्या । अथ वा अनृजुगखगयोर्द्वयोर्वक्रिणोर्ग्रहयोर्मध्ये शीघ्रगतौ ग्रहे अल्पे युतिः प्रगता वाच्या । अन्यथोक्तलक्षणवैपरीत्ये ग्रहयुतिर्गम्येत्यर्थः । अल्पगतेः शनेः १०।२।५८।४४ सकाशादधिगतिर्भौमः १०।६।३५।९ अधिकोऽतो गतलक्षणा युतिः ॥२॥

केदारदत्तः

जिन दो ग्रहों की युति का ज्ञान करना हो तो उन दोनों में अल्पगतिक ग्रह से अधिक गत ग्रह अधिक है । अथवा मार्गी ग्रह से वक्री अल्प हो तथा दोनों यदि वक्रगतिक हों तो अधिक गतिक ग्रह अल्प गति से कम राश्यादिक का हो तो उक्त लक्षणों से उन दोनों ग्रहों का योग गत हो गया ऐसा समझते हुए यदि उक्त लक्षण विपरीत हैं तो योग गम्य अर्थात् आगे होने वाला है ऐसा समझना चाहिए ॥२॥

उपपत्तिः—दो ग्रहों की युति बिचार के लिए अधिक गतिक ग्रह पीछे होने से अल्पगतिक के साथ योग करेगा ही एवं मन्दगतिक ग्रह से कलादिक अधिक गतिक ग्रह हो गया तो युति गत हो गई स्वतः सिद्ध होती है ॥२॥

ऋजुगतिखगयोस्तु वक्रयोर्वा विवरकला गतिजान्तरेण भक्ताः ।
गतिजयुतिहृता यदैकवक्री युतिरगता प्रगताप्तवासरैः स्यात् ॥३॥

मल्लारिः

अथ ग्रहयुतिदिवसज्ञानमाह मार्गिणोर्द्वयोर्ग्रहयोः सतोः । अथ वा वक्रयोर्द्वयोर्ग्रहयोः सतोः । तदन्तरकलाः कार्याः ता गत्यन्तरेण भक्ताः । यदैको वक्रो परो मार्गी तदांप्यन्तरकला गतियोगभक्ताः कार्याः । 'आप्तैर्दिनैर्ग्रहयुतिर्गम्या गता पूर्वोक्तलक्षणेन स्यात् ।

अत्रोपपत्तिः । यदि गत्यन्तरकलाभिरेकंदिनं तदा ग्रहान्तरकलाभिः किमिति वक्रिणि गतियोग एवान्तरमिति । अतस्तत्र तेनैपाप्ता लब्धदिनैरेष्यगतैर्ग्रहयुतिसमयः स्यादित्युपपन्नम् ॥३॥

विश्वनाथः

अथ ग्रहयुतिदिवसज्ञानमाह ऋजुगतीति । मार्गिणोर्द्वयोर्ग्रहयोः सतोः । अथ वक्रयोर्द्वयोर्ग्रहयोः सतोस्तदन्तरकलाः कार्याः । ता गत्यन्तरेण भक्ता । यद्येको वक्री तदा तु ग्रहान्तरकला एव गतियोगेन भक्ताः कार्याः आप्तैर्दिनैर्ग्रहयुतिर्गम्या गता वा पूर्वोक्तलक्षणेन स्यात् । मार्गिग्रहयोर्भौमशन्योरन्तरम् ०।३।३६।२५ कलाः २१६।२५ गत्यन्तरेण ३९।४७ । भक्ताः फलं गतदिवसाः ५।२६।२३ एभिर्दिनैः पृष्ठे ग्रहयुतिर्भविष्यति । इदं दिनादिकं वैशाखशुक्लदशम्यां शोधितं जातं वैशाखशुद्धचतुर्थ्यां सूर्योदयाद्गतघटीषु ३।३७ तथा रात्रिगतघटीषु २।७ शनिभौमयोर्युद्धम् ॥३॥

केदारदत्तः

युति विचार योग्य यदि दोनों ग्रह मार्ग या वक्र हों तो दोनों के ग्रहान्तर कलाओं में गत्यन्तर कला से भाग देने से, अथ यदि एक वक्र एवं एक ग्रह आगे हो तो ग्रहान्तर कलाओं में गतियोग कला से भाग देने से लब्ध तुल्य दिनादि में दोनों ग्रहों की गत गम्य युति समझनी चाहिए ।

उपपत्तिः—भास्कराचार्य की 'दिवौकसोरन्तरलिप्तिकौघात्' के अनुसार त्रैराशिक गणित से स्पष्ट है ॥३॥

चाल्यौ खेटौ समौ स्तो ग्रहयुतिदिवसैश्चन्द्रबाणः स्वनत्या ।
संस्कार्योऽत्र ग्रहो स्वेषुदिशि समदिशोस्त्वल्पबाणोपरस्याम् ॥
एकान्याशौ यदेषू विरहितसहितौ खेटमध्येऽन्तरं स्यात् ।
भेदो मानैक्यखण्डादिह लघुनि तदाल्पं हि किं लम्बनाद्यम् ॥४॥

मल्लारिः

अथ ग्रहयोर्दक्षिणोत्तरदिक्संस्थानं तदन्तरं च साधयति । ग्रहयुयुर्ये दिवसाः समागतास्तैर्दिवसैः स्वगत्या ग्रहौ चाल्यौ तौ राश्याद्यवयवेन समौ स्त- । अत्र चन्द्रस्य शरः स्वनत्या सूर्यग्रहणोक्तरीत्या कृतया संस्कार्यः । ग्रहौ स्वशरदिशो ज्ञेयौ । यस्य ग्रहस्य शर उत्तरः स ग्रह उत्तरस्याम् । यस्य दक्षिणः शरः स दक्षिणस्यामिति । द्वयोः शरयोः समदिशोः शतार्योऽल्पबाणो ग्रहः सोऽधिकशरग्रहादन्यदिशि ज्ञेयः । इषू ग्रहयोः शरौ यदा द्वावधि एकदिशौ सदा तयोरन्तरं कार्यम् । यदा भिन्नदिशौ तदा तयोर्योगः ग्रहयोर्मध्ये तद्दक्षिणोत्तरमन्तरमंगुलात्मकं स्यात् । चतुर्विंशनि भक्तं चेद्धस्तात्मकमपि स्यात् । इह शरांतरेग्रहयोर्मानैक्यखण्डाल्लघुनि अल्पे सति ग्रहविम्बयोर्भेदः

स्यात् । तदा सूर्यग्रहणवदल्पं लम्बनाद्यमत्र किं कर्त्तव्यम् । अल्पविम्बत्वात् स्पर्शादिषु नोपलभ्यत एव । अतो लम्बनादि जडकर्म किमर्थं कार्यमिति भावः ।

अत्रोपपत्तिः । ग्रहयुतिदिवसा ग्रहयोन्तरे गतिवशात् साधिताः तैर्दिवसैश्चालितो ग्रहौ समौ भवत एवेति प्रत्यक्षम् । अत्र चन्द्रेण सहान्यग्रहस्य योगे साध्ये चन्द्रशरः स्वनत्या संस्कार्यः एव यतो नतिरपि दक्षिणोत्तरमन्तरम् । अत्रापि ग्रहकक्षयोर्भिन्नत्वं द्रष्टुर्भूपृष्ठगतत्वं चेति हेतुद्वयं वर्त्तत एव । अतश्चन्द्रशरो नत्या संस्कार्य एव इति युक्तम् । ग्रहौ स्वशरदिशावेव भवतः । शरयोर्दिक्साम्ये अल्पवाणोऽधिकबाणादन्यदिशि भविष्यत्येव । अथ ग्रहयोर्दक्षिणोत्तरमन्तरं साध्यम् । तत्तु शरान्तरतुल्यं क्रान्त्यन्तराभावात । अत एकदिशोः शरयोरन्तरं कार्यम् । अन्यदिशोः शरयोर्योगो विनाऽन्तरं न सिध्यत्यतो योगः कार्य इति दक्षिणोत्तरमन्तरं स्यात् । स एव ग्रासस्थित्यादिसाधनार्थं स्पष्टः शरो मानैक्यखण्डान्न्यूने शरे ग्राह्यग्राहकविम्बसंयोगः स्यात् । तदाऽधःस्थो ग्रहश्चन्द्रऊर्ध्वस्थो रविरित्यादि प्रकल्प्य अकल्पितार्कादिव लग्नादि कृत्वा लम्बनादि साध्यं तत् स्पर्शादिकाले देयं ते स्पष्टाः स्युः । इत्यादि विम्बस्वल्पत्वात् स्पर्शादिदर्शनाभावात् किमर्थं जडकर्त कार्यमित्याचार्येणोक्तं तदपि युक्तम् ॥४॥

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन ।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्य जातः खगानां मिलनाधिकारः ॥

इति श्रीग्रहलाघवस्य टीकायां ग्रहयुत्यधिकारस्त्रयोदशः ॥१३॥

विश्वनाथः

अथ ग्रहयोर्दक्षिणोत्तरदिक्संस्थानं तदन्तरं च साधयति चाल्याविति । अगतैर्ग्रहयुतिदिवसैर्गतम्यैस्तौ खेटौ चाल्यौ तौ राश्याद्यवयवेन समौ स्तः । तयोः समयोः शरः साध्यः । चन्द्रस्य चेद्युतिस्तदा चन्द्रबाणः स्वनत्या सूर्यग्रहणोक्तरीत्या कृतया संस्कार्यः । अत्र ग्रहौ स्वेषुदिशि स्वशरदिशौ ज्ञेयौ । यस्य ग्रहस्य उत्तरशरः स उत्तरस्यां यस्य दक्षिणशरः स दक्षिणस्यामिति । द्वयोः शरयोः समदिशो सतोर्योऽल्पबाणः । यस्य शरोऽल्पः । स ग्रहोऽधिकशरग्रहान्यदिशि ज्ञेयः । दक्षिणस्तदा उत्तरः । उत्तरस्तदादक्षिणः । यदा इष्टशरावेकान्याशौ तदा विरहितसहितौ । द्वावपि एकदिशौ तदा तयोरन्तरं कार्यं यदा भिन्नदिशौ तदा तयोर्योगः कार्यः । एवं कृते ग्रहयोर्मध्ये दक्षिणोत्तरमन्तरमंगुलादिकं स्यात् । अस्मिन्नन्तरे मानैक्यखण्डाल्लघुनिन्यूने सति भेदयोगः स्यात् । यदा भेदयोगः स्यात् तदा भेदयोगे सूर्यग्रहणवदल्पं लम्बनाद्यमत्र किं कर्त्तव्यमल्पविम्बत्वात् । तत्र स्पर्शादिको न लभ्यते अतो लम्बनादि जडकर्म किमर्थं कार्यमित्यर्थः । एभिर्दिनादिकैः ५।२६।२३ ऋणचालनानि । भौमचालनम् ३।५३।० शनिचालनम् ०।१६।३५ भौमः १०।२।४२।९ शनिः १०।२।४२।९ एतयोश्चालित ग्रहयोरायनदृक्कर्म दत्त्वा पुनरपि अन्तरकला गतिजान्तरेण भक्ता इत्यादिना दिनादिकं साध्यं

तत्पूर्वसाधितसमागमकाले गम्यगतलक्षणवशेन सहितं रहितं कार्यम्। तद् ग्रहयुतेः स्पष्टं दिनादिकं भवति। पूर्वदिनादिकापेक्षया यावदधिकमूनं दिनादिकं भवति ताव-द्भिश्चालितयोश्चालनयोश्चालनत्वात् समौ कार्यौ इति सिद्धान्तशिरोमणावुक्तमस्ति परन्त्वत्राचार्येण स्वल्पान्तरत्वादुपेक्षितम्। 'अथ मन्दस्पष्टखगा' दित्यादिना शरसाध-नार्थं मन्दस्पष्टचालनं भौमस्य ३।२२।३२ शनेः ०।१०।३ चालितो मन्दस्पष्टौ भौमः ८।२५।८।२७ मन्दस्पष्टः शनिः ९। ७।३।१५ पात-१।१०।०।० रहितो भौमः ७।१५। ८।२७ केवलात् क्रान्त्यंशा दक्षिणाः १६।३८।३२ त्रियमा-२३ हताः ३८२।४६।१६ शीघ्रकर्णेन ८।५२ भक्ताः फले ४३।१० स्वचतुर्थांशेन १०।४६ रहितं ३२।२३ द्वाभ्यां भक्तं जातो भौमशरोंऽगुलादिको दक्षिणः १६।११ पातोनस्य दक्षिणगोलस्थत्वात्। पातो-३।१० नः शनिः ६।१७।१३।१५ केवलात् क्रान्त्यंशाः ६।५३।१८ त्रियमा-२३ हताः १५८।२५।५४ कर्ण-११।१३ भक्ताः फलं जातः शनिशरोंऽगुलादिको १४।७ दक्षिणः। अत्र भौमशनिशरयोरेकदिशि स्थितत्वादल्पबाणः शनिः उत्तरस्यां ज्ञातव्यः। अत्र शरयोरेकदिशातो बाणयोरन्तरमंगुलादिकं जातं ग्रहयोरन्तरम् २।४ भौमबिम्बम् १।५० शनिबिम्बम् १।३३ अनयोर्योगः ३।२३ अर्धितः। जातं मानैक्यखण्डम् १।४१ अस्माद् ग्रहान्तरमधिकमतौ भेदयोगो नास्ति। अतो लम्बनादिकं न कार्यम्। सत्यपि भेदयोगो स्वल्पत्वान्न कार्यम्। चेत् कार्यं तत्र प्रकारो ग्रहयोर्मध्ये अधः कक्षास्थश्चन्द्रः कल्प्यः। तदुपरिकक्षास्थः सूर्यः कल्प्यः। ग्रहयुतिर्यदा रात्रिसमये भवति तदा तस्मिन् समये केवलार्काल्लग्न साध्यं न कल्पितार्कात्। तल्लग्नं वित्रिभं तस्मान्नतांशाः। तेभ्यः सूर्यग्रहणवद्धारः कार्यः। कल्पितार्कत्रिभोनलग्नयोर्विश्लेषांशाशांशहीनघ्नश्क्रा इत्या-दिना नाडिकाद्यं लम्बनं स्यात्। तल्लम्बनं कल्पितार्काद्वित्रिभे अधिकोने सति धनमृणं क्रमेण ग्रहयुतिसमये कार्यम्। स कालः स्फुटः स्यात्। अथ षड्गुणलम्बनमित्यादिना नतिः कार्या। कल्पितचन्द्रस्य शरो नतिवलये कार्यः स कालः स्फुटो भवतीति प्रागु-क्तम्। यतस्तद् ग्रहयोरन्तरमंगुलाद्यं स भेदयोगे शरः स्यात्। ग्रहयोर्मानैक्यार्थं शरोनं ग्रासो भवति। अतः प्राग्वत् स्थितिः। तस्या सूर्यग्रहणविधिना स्पर्शमोक्षलम्बनाभ्यां स्पर्शमोक्षकालौ भवतः। परिलेखवलनादिकं पूर्ववत् किञ्चिद्विशेषः। यदा मन्दाक्रान्तः शीघ्रगो वाऽधःस्थितस्तदा पूर्वदिशि स्पर्शः। वक्री वाऽध स्थितस्तदाऽप्येवम्। अपर-दिशि मोक्षः। मन्दगतिर्यो वक्री वा स रविः कल्प्यः शीघ्रगतिश्चन्द्रः कल्प्यः। ग्रह-युतिसमये लग्नाद् दृश्य दृश्ययुतिज्ञानं 'प्राग्दृष्टिकर्मखचर' इत्यादिना ज्ञेयम् ॥४॥

इति ग्रहयुत्यधिकारोदाहरणम् ॥

केदारदत्तः

पूर्व साधित गत गम्य दिवसों से चालित होने से युतिकाल में दोनों ग्रह तुल्य होते हैं। मात्र चन्द्र शर को अपनी नति से संस्कृति करना चाहिए। (चन्द्रगति की अधिकता से) दक्षिण उत्तर शर की स्थिति से उस ग्रह को दक्षिण या उत्तर समझना चाहिए।

यदि दोनों ग्रहों के उत्तर शर में अधिक शर का ग्रह कम शर के ग्रह से उत्तर में समझना चाहिए। दोनों की दक्षिण शर की स्थिति में अल्प शर का ग्रह उत्तर में एवं अधिक शर का ग्रह दक्षिण में होगा। दोनों के एक दिशा के शरों का अन्तर एवं भिन्न दिशा के शरों का योग करने से दोनों ग्रहों के बिम्ब का अन्तर होता है। यह अन्तर यदि दोनों के बिम्ब योगार्ध से कम हो तो दोनों बिम्बों का भेद योग होता है। यहाँ सूर्य ग्रहण की तरह लम्बनादिक साधन की आवश्यकता नहीं होती है ॥४॥

उपपत्ति—एवं लब्धैर्ग्रहयुतिदिनैः इत्यादि तथा मानैक्यार्धाद् द्युचर विवरेऽल्पे भवेद्भेदयोगः इत्यादि भास्कराचार्य के प्रकार से उपपत्ति स्पष्ट है।

गर्गगोत्रीय स्वनामधन्य, कूर्माञ्चलीय ज्योतिर्विद्वर्य श्री पं० हरिदत्त जी के आत्मज अल्मोड़ामण्डलीय जुनायल ग्रामजपर्वतीय काशीस्थ (नलगाँव) श्री केदारदत्त जोशी कृत ग्रहलाघव ग्रहयुत्यधिकारः की उपपत्ति सहित सोदाहरण व्याख्या सम्पूर्ण ॥१३॥

अथ पाताधिकारः

नन्दघ्नायनभागतुल्यघटिकोनाः सार्धविश्वे तथा
तारास्तावति साग्रयोगविगमे पातो व्यतीपातकः।
ज्ञेयौ वैधृतिरत्र यातघटिकाः सर्वर्क्षनाडीहताः
स्पष्टाः स्युः शरषड्हृताः६५इह तमोऽर्कौ सायनांशौ कुरु ॥१॥

मल्लारिः

अथ पाताधिकारो व्याख्यायते। नवभिर्गुणिता येऽयनांशाः। तत्तुल्या घटिकाः स्युः। ता घटिकाः षष्टिभक्ताः ऊर्ध्वस्थाने मोगोऽपि भविष्यति। तदूनाः सार्धविश्वयोगः १३।२० अथ सप्तविंशतियोगाश्च २७ तदूनाः कार्याः। तावान् सावयवो योगो यस्मिन् काले प्रतिमासे भविष्यति तस्मिन् काले क्रमात् व्यतीपातो वैधतिश्च पातो विज्ञेयः। यत्र सार्धास्त्रयोदशोनास्तत्र व्यतीपातः। यत्र सप्तविंशतिस्तत्र वैधृतिरीति। अत्र योगस्य या यातघटिकास्तास्तद्दिनजसर्वनक्षत्रनाडीभिर्गुण्याः शरषड्भिः पञ्चषष्ट्या भक्ताः सन्त्यः स्पष्टः स्युः। इहास्मिन् काले तमोऽर्कौ राहुसूर्यौ सायनांशौ कुरु। अत्र पातसाधनेऽमुनाऽऽचार्येण राहावयनांशा देयाः। रवौ च देयाः। ततो विराल्लार्कात् खण्डानि सन्धिविचारश्च कृतः। इदमल्पबुद्धीनामयुक्तमिव प्रतिभातियतोऽयनांश संस्कारः क्रान्तावेव न शरसाधने।

अत एव करणकुतूहले।

'विना सपातेन्दुमिहायनांशकैर्युतो रविः शीतकरश्च गृह्यत' इति।

तेषां भ्रान्तिनिराशार्थमुच्यते। अत्र पातः सायनचन्द्रसूर्ययोगो द्वादशषड्राशितुल्यः एव तदर्थमत्राचार्येण चन्द्रं विनैव सूर्यराहुभ्यां पातसाधनं कृतम्। तेन सायनः सूर्यः सायनराहुयुतः शरार्थमङ्गीकृतः। स चादत्तायनांशचन्द्रस्यादत्तायनांशराहूनितस्य भुजो भुजसाधनरीत्या समान एव भवति। अत्रोदाहरणं यथा। अयनांशाः १८। गणितागताः सूर्यचन्द्रराहवः। सूर्यः १।१२ चन्द्रः ३।१२ राहुः ५।७ अत्र व्यगुचन्द्रः १०।५ सायनः सूर्यः २ चन्द्रः ४ राहुः ५।२५ राहुयुतः सूर्यः ७।२५ अस्य भुजः १।२५ व्यगुचन्द्रस्य १०।५ भुजेन तुल्यो भवति १।२५ अतस्तमोऽर्कौ सायनांशाविति युक्तमुक्तम्। पातकाले सिद्धे तत्कालीनसूर्यचन्द्रराहवः साध्याः। ततः शरसाधनार्थमदत्तायनांशराहूनितादत्तायनांशचन्द्रादेव शरः क्रान्तिसंस्कारार्थं साध्यः। अथवा सायनचन्द्रसायनराहुभ्यामेव शरः साध्यः स शरो निरयनांशाभ्यां साधितेन तुल्यएव भवति यतस्तुल्ययोः क्षेपयोः क्षिप्तयोरन्तरे केवलयोरन्तरमेव सिद्धम्।

अत्रोपपत्तिः। पातो नाम रविचन्द्रयोः क्रान्तिसाम्यम्। तत्र चन्द्रक्रान्तिः शरसंस्कृता सूर्यक्रान्त्या यदा समा स्यात् तदा पातमध्यकालः। तत्रादौ रविचन्द्रयोर्मध्यमक्रान्तिसाम्यं साधयति। मध्यमक्रान्तिसाम्यं तयोर्भुजसाम्ये स्यात्। भुजसाम्यं तु रविचन्द्रयोः षड्राशितुल्यं योगे भवति। नन्वेवं चेत् तदा रविचन्द्रयोः षड्राशितुल्ये द्वादशराशितुल्ये अन्तरेऽपि भुजसाम्यात् क्रान्तिसाम्यमस्ति। तत्रापि पातस्तर्हि मासमध्ये पातचतुष्टयं वक्तव्यम्। सत्यम्। तत्र पातकाले स्नानदानादिकं फलमाचार्येणोक्तमस्ति। तत्रास्मिन्नेव पातद्वये उक्तमस्ति अतस्तद्द्वयं नोक्तम्। अतो रविचन्द्रयोगादेव पातः साध्य इति युक्तयुक्तम्। पञ्चांगीयो योगोऽपि रवीन्दुयोगादेव सिद्धोऽस्ति। अतस्तस्मादेव पातः साध्यते। चक्रार्धतुल्ये योगे सार्धत्रयोदश योगाः। चक्रतुल्ये योगे सप्तविंशतिर्योगाः अतस्त एवांगीकृताः। अत्र योगो निरयनांशात् क्रान्तिः सायनांशात्। अतोऽत्र योगे द्विगुणानांशोत्पन्नयोगो न्यूनीकर्त्तव्यो निरयनांशयोगर्योगस्य कृतत्वात्। यदि चक्रांशैः ३६० सप्तविंशतियोगा २७ लभ्यन्ते तदा द्विगुणायनांशः किमिति फलं योगस्तस्य घटीकरणार्थं षष्टिः ६० गुणः। एवमयनांशानां द्वयं षष्टिः सप्तविंशतिरिति गुणत्रयं तद्घातो जातो गुणः ३२४०। हरश्चक्रांशाः ३६०। एवं गुणहरौ हरेणापवर्त्यलब्धा गुणस्थाने नव। अतो नवगुणायनांशतुल्यघटीभिः सार्धत्रयोदश सप्तविंशतिश्चोनास्तत्तुल्ययोगे गते पातः स्यादित्युपपन्नम् अत्र योगाधःस्थले घटिका मध्यमाः। तासां स्पष्टीकरणायानुपातः। यदि परमाभिः षञ्चषष्टिमिताभिः सर्वर्क्षघटिकाभिरेता योगघटिकास्तदष्टेसर्वर्क्षनाडीभिः किमिति। अत्र पाते सायनांशस्यैव प्रयोजनमतः सायनांशावेव कार्यावित्युपपन्नम् ॥१॥

विश्वनाथः

अथ पताधिकारोदाहरणम्। पातो नाम चन्द्रार्कयोः क्रान्तिसाम्यम् संवत् १६७० शके १५३५ वैशाखकृष्ट ७ शनौ घटी ११।३५ धनिष्ठाघटी ५९।३ ब्रह्मघटी २८।४६ अस्मिन्दिने पातज्ञानार्थमहर्गणमाह। चक्रम् ८ अहर्गण १८८३ प्रातर्मध्यमो रविः १। १।०।९ चन्द्रः ९।२०।०।४४ उच्चम् ११।२५।१३।१४ राहुः ०।२५।९।५२ रविमन्दकेन्द्रम् १।१६।५९।१ मन्दफलं धनम् १।३५।३५ संस्कृतोऽर्कः १।२।३६।३४ अयनांशाः १८।११ चरमृणम् ८८ स्पष्टो रविः १।२।३५।६ स्पष्टा गतिः ५७।३३ फलत्रयसंस्कृतश्चन्द्रः ९। १९।३४।३ मन्द्रकेन्द्रम् २।५।३९।११ मन्दफलं धनम् ४।३४।४२ स्पष्टचन्द्रः ९।२४।८।३५ स्पष्टा गतिः ७६२।४९ धनिष्ठानक्षत्रस्थ गवघटी ३।४९ एष्यघटी ५९।६ गतैष्ययोगः ६२।५५ अथ प्रथमतो मध्यमपातसमयज्ञानमाह नन्दघ्नेति। अयनांशाः १८।११ नन्द-९ घ्नाः १६३।३९ षष्टिभक्ताः २।४३।३९ एतत्तुल्यघटिकाभिः २।४३।३९ सार्धविश्वे १३। ३० सार्धत्रयोदश योगा हीनाः १०।४६।२१ एतत्तुल्ये सायववे योगे गते व्यतीपातसम्भवः। तथा तारा२७हीनाः २४।१६।२१ एतत्तुल्ये सावयवे योगे जाते वैधृतिपातः। सम्भवः। अथ घटीनां स्फुष्टीकरणम्। ब्रह्मयोगस्य गतघटिका १६।२१ तत्कालीननक्षत्रस्य गतैष्ययोगघटिकाभिः ६२।५५ गुणिताः १०२८।४७ शरषड्-६५ भक्ता जाताः

स्पष्टघटिकाः १५।४९ शुक्रवारे शुक्लयोगे घटी ३०।१ अत्र ब्रह्मयोगगतघटिका योजिताः ४५।५० अत्र मध्यमक्रान्तिसाम्यकालस्य ४५।५० सूर्योदयस्य चान्तरमेतत् १४।१० शनिवासरजसूर्योदयिकौ सूर्यराहू आभिर्घटीभिः १४।१० प्राक्चालितौ जातौ मध्यम-क्रान्तिसाम्यकालिकौ। सूर्यः १।२।२१।३१ राहुः ०।२५।१०।३७ सायनांशो रविः १।२०।३३।३१ राहुः १।१३।२१।३७ ॥१॥

केदारदत्तः

नव ९ गुणित अयनांश तुल्य घटिकाओं को १३।२० में घटाने से शेष तुल्य सावयव योग गत होने पर व्यतीपात नामक पात, और नव गुणित अयनांश तुल्य घटिका को २७ में कम करने से जो शेष बचे उतने सावयव योग गत होने पर वैधृति नामक पात होता है।

योग की गत घटी को भभोग घटी से गुणा कर ६५ से भाग देने से स्पष्ट गत घटिका होती है। पात गणित साधन के समय स्पष्ट रवि और स्पष्ट राहु में अयनांश जोड़ना उचित होता है।

उपपत्तिः—जिस समय सूर्य चन्द्रमा की क्रान्तियों की समता होती है उसी समय पात योग होते हैं। अर्थात् सायन सूर्य + सायन चन्द्र = ६ राशि या = १२ के समय क्रान्ति साम्य होने से क्रमशः व्यतीपात और वैधृत नामक पात होते हैं। अर्थात् प्रत्येक मास में दो पात होंगे।

अर्थात्, सूर्य + अयनांश + चन्द्र + अयनांश = सू० + चं० + २ अयनांश = ६ राशि = १८०° हो तो सू० + चं० = १८० − २ अयनांश = १८० × ६०′ − ६०′ × २ × अयनांश = १८०° × ६′ − ६० घटी × ६०′ × २ अयनांश इस प्रकार योग साधन क्रिया के अनुसार

$$\text{विष्कम्भादि गत योग संख्या} = \frac{१८० \times ६०'}{८००} - \frac{६० \text{ घटी} \times ६०' \times २ \text{ अयनांश}}{८००} = \frac{१०८}{८}$$

$$- \frac{३६ \text{ घटी} \times २ \times \text{अयनांश}}{८} = १३\tfrac{१}{२} - ९ \text{ घटी} \times \text{अयनांश}$$ इससे आगे के समय में व्यतीपात ही होगा।

तथा सायन सूर्य चन्द्रमा के योग = १२ में योग संख्या = २७ अतः २७ − ९ घटी × अयनांश। इसके आगे के समय में वैधृत नामक पात होगा ही। अतः आचार्य ने परम भभोग घटी ६५ मानकर गत घटिकाओं की साधनिका की है। तदुपरि अनुपात से यदि ६० घटी तुल्य भभोग में गत घटिका तो इष्ट घटी तुल्य भभोग में स्पष्टगत घटिका होंगी। भुजसाम्य में क्रान्ति साम्य तथा सायन ग्रह से ही क्रान्ति साधन समीचीन होने से आचार्य का सायनांशौ कुरु कहना समीचीन है ॥१॥

गोलैक्ये साग्वर्कभान्वोः सदा स्यात्पातोऽन्यत्वे चेद्रवेर्बाहुभागाः।
पञ्चेषुभ्योऽल्पास्तदास्त्येव पातः पुष्टाश्चेत् तत्संशयस्तं च भिद्मः॥२॥

खाभ्रेन्दुद्विरसा धृतिर्नगशराः साग्वर्कभान्वोः पदै-
क्येऽर्घानि त्र्यगरुद्रभूपतिनखास्त्र्यक्षीणि भेदे क्रमात् ।
क्षेपः षड्दश ६।१० चार्ककोटिजलवेष्वंशप्रमाणैक्यकं
शेषांशैष्यवधेषुभागसहितं सन्धिर्भवेत् क्षेपयुक् ॥३॥
साग्वर्कभुजांशका यदाल्पाः सन्धेः क्रान्तिसमत्वमस्ति चेत् ।
अधिका न तदा भुजांशसंध्यन्तरसादृश्यमिहापमान्तरं स्यात् ॥४॥

मल्लारिः

अथ पातस्य सम्भवासम्भवविचारमाह । साग्वर्कभान्वोः सराहुरविसूर्ययोरेकगोलत्वे सति सदा पातः स्यादेव । अन्यत्वे भिन्नगोलत्वे सति रवेर्भुजभागा यदा पञ्चेषुभ्योऽल्पास्तदा पातोऽस्त्येव । चेत् पञ्चपञ्चाशदधिकास्तदा तस्य पातस्य संशयः । अस्ति नास्ति वेति । तमपि संशयं भिद्मो नाशयाम इति । सराहुसूर्ययोरेकपदत्वे खाभ्रेन्दुद्विरसा इति खण्डानि स्युः । पदभेदे त्र्यगरुद्रभूपतिनखा इति खण्डानि स्युः । अत्र क्षेपः षड्भागा प्रथमस्त द्वितीयस्य दश । अर्कस्य ये कोटिलवाः सूर्यस्य ये कोट्यंशाः । तेषां य इष्वंशः पञ्चमांशस्तत्प्रमाणानां खण्डानामैक्यं कार्यम् । तत्खण्डैक्यं शेषाणामैष्यखण्डस्य च यो वधस्तल्य य इषुभागः पञ्चमांशस्तेन सहितं क्षेपयुक् च कृतं सत् सन्धिर्भवति । एवं यत्र साग्वर्कस्य भुजांशकाः सन्धिभागेभ्योऽल्पास्तदा क्रान्तिसाम्यमस्ति । चेत् सन्धितोऽधिकास्तदा न पातः अत्र भुजांशानां सन्धेश्च यदन्तरं तत्समानं क्रान्त्यन्तरं स्यादित्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः । अत्र व्यतीपाते रविचन्द्रयोर्गोलैकत्वं वैधृते गोलान्यत्वम् । उभयत्रापि साग्वर्कभान्वोर्गोलैकत्वे विराहुचन्द्रोत्पन्नशरसंस्कृतेन्दुक्रान्ती रविक्रान्त्यग्रे पृष्ठे चासमैव भवति चयापचयहेतुभूतत्वात् । साग्वर्कार्कयोर्गोलान्यत्वे चन्द्रपरमशरेण ४।३० चन्द्रस्य परमक्रान्ति-२४र्हीना १९।३० अस्याः क्रान्तेरूनायां रविक्रान्तौ क्रान्तिसाम्यं भविष्यत्येव । एतावतो रविक्रान्तिकैर्भुजभागैर्भविष्यतीति ज्ञानार्थं धनुष्करणरीत्या ज्ञाता भुजभागाः ५५ । एभ्योऽल्पेषु रविभुजभागेषु क्रान्तिसाम्यमवश्यमस्त्येव । पञ्चपञ्चाशदधिकभुजभागेषु भावाभावविचारः । तत्र पञ्चपञ्चाशदधिकभुजभागाप्रयोजनात् रवेः कोटिभागा एव कार्याः । ते परमाः पञ्चत्रिंशत् ३५ । तत्र भुजभागपरमत्वे कोट्यंशभावात् शून्यमितान् रविकोट्यंशान् प्रकल्प्य पातविचारः कृतः । तत्र सराहुसूर्यसूर्ययोः पदैकत्वे सराहुसूर्यभुजभागेषु षड्नेष्वेव पात. । अतो रविकोट्यंशेषु शून्यतुल्येषु षट्तुल्यः सन्धिः । एवं पञ्चतुल्यरविकोट्यंशेष्वपि षट्तुल्य एव सन्धिः । एवं पञ्चोत्तरान् भागान् प्रकल्प्य साधितसन्ध्यंशानधो विशोध्य षडूनान् कृत्वा खण्डानि पञ्चत्रिंशदंशमध्ये सप्त पठितानि । एवं तयोः पदान्यत्वेव षष्ट्यधिकभुजभागेषु त्रिंशन्मितकोट्यंशमध्ये षट्सन्धिखण्डानि दशोनानि कृत्वा पठितानि । मध्येऽनुपातः ।

पञ्चभागैर्यदि भोग्यखण्डं तथा शेषभागैः किमिति । षट् दश चोनाः कृताः । अतः स क्षेपो योज्य एव । एवं जातो भागाद्यः सन्धिः । सन्धितः सराहुसूर्यभुजभागेष्वल्पेषु पातो नाधिकेष्वित्युपपन्नम् । भुजांशानां सन्ध्यंजानां यदन्तरं तत्तुल्यमेव क्रान्त्योरन्तरमित्यर्थत एव सिद्धम् ॥२–४॥

विश्वनाथः

अथ स्पष्टपातसम्भवलक्षणमाह गोलैक्ये इति । राहुयुक्तविसूर्ययोरेकगोले सति सदा पातः स्यात् । अन्यत्वे भिन्नगोले चेत तदा सायनरवेर्भुजभागाः कार्यास्ते पञ्चेषुभ्यो ५५ न्यूनास्तदा पातोऽस्त्येव । ते भुजभागाः पञ्चेषुभ्योऽधिकास्तदा पातस्य संशयस्तमपि वक्ष्यमाणप्रकारेण वयं भिद्मो निराकुर्म इति । साग्वर्कः ३।३।५५।८ सायनमध्यमक्रान्तिसाम्यकालिकः सूर्यः १।२०।३३।३१ अनयोरेकगोलस्थत्वात् पातोऽस्त्येव ।

अथ पातसम्भवभ्रान्तिनिरासार्थं सन्धिसाधनमाह खाभ्रेन्दुरिति । त्रिभिस्त्रिभिर्भैरसमं सममिति चत्वारि पदानि चक्रे स्युः । साग्वर्कसूर्ययोरेकपदत्वे सति खाभ्रेन्द्वित्यादिखण्डानि ग्राह्याणि । तयोः पदभेदे सति त्र्यगरुद्रेत्यादिखण्डानि ग्राह्याणि । क्रमेण षट् दश क्षेपः स्यात् । पदैक्य षट् ६ पदभेदे दश १० क्षेपो ग्राह्यः । सायनार्कस्य कोटिलवाः कार्यास्तेषां यः पञ्चमांशस्तत्प्रमाणानां खण्डानामैक्यं कार्यम् । शेषांशा एष्यखण्डकेन गुण्याः पञ्चभक्ताः । फलेन खण्डैक्यं सहितं क्षेपयुक् सन्धिर्भवेत् । यदा सायनसूर्यस्य भुजभागाः पञ्चेषुभ्योऽल्पास्तदा सन्धिसाधनमेव नास्ति ॥३॥

अथास्मात् पातभावाभावज्ञानमाह साग्वर्कभुजांशेति । साग्वर्कभुजांशा यदा सन्धेः सकाशादल्पास्तदा क्रान्तिसमत्वमस्ति । चेत् सन्धेरधिकास्तदा क्रान्तिसाम्यं न स्यात् । अत्र भुजांशानां सन्धेश्च यदन्तरं तत्सादृश्यं तत्तुल्य चन्द्रार्कयोः क्रान्त्यन्तरं स्यादित्यर्थः । अत्र कल्पितमुदाहरणम् । रविः १।२७ राहुः ६।१५ साग्वर्कः ८।१२ रवेर्बाहुभागाः ५७ पञ्चेषुभ्योऽधिकाः । अतोऽर्कस्य कोटिलवाः ३३ । एषां पञ्चांश–६ प्रमितखण्डैक्यम् २७ । शेषांशैष्यवधे–१७१ षुभाग-३४।१२ सहितम् ६१।१२ क्षेप-६ युक् जातः सन्धिः ६७।१२ अस्मात् साग्वर्कभुजांशा ७२ अधिकाः । अतो न क्रान्तिसाम्यं किन्तु भुजांशसन्ध्यन्तर ४।४८ तुल्यं मध्यमक्रान्तिसाम्यकाले रवीन्द्वोः स्पष्टापमान्तरं भवतीति छात्राय दर्शनीयम् ॥४॥

केदारदत्तः

राहु युक्त सूर्य, एवं स्प० सूर्य यदि एक गोल में हों तो पात अवश्य होता है । यदि राहुयुत सूर्य एवं सूर्य भिन्न गोलस्थ हों और सूर्य भुजांश ५५° से कम हों तो भी पात होता है । यदि उक्त स्थिति में सूर्य भुजांश ५५ अंश से अधिक हों तो पात होने में सन्देह होता है । ऐसी सन्देह की स्थिति का निम्न प्रकार से निश्चय किया जाता है ॥२॥

सराहु सूर्य और सूर्य दोनों एक ही पद अर्थात् दोनों सम या विषम पद में हों तो क्रम से ०।०।१।२।६।१८।५७ ये ७ खण्ड और क्षेप ६, तथा यदि दोनों भिन्न-भिन्न पद में हों तो क्रमशः ३।१०।११।१६।२० और २३ ये ६ खण्ड और क्षेप १० होता है ।

सूर्य की कोटि के अंशों में ५ से भाग देकर लब्ध तुल्य खण्डों के योग में, शेष अंश और अग्रिम खण्ड के गुणनफल के पञ्चमांश को जोड़ कर पद की क्षेप संख्या क्रम से उसमें क्षेप जोड़ने से सन्धि होती है।

राहु युक्त सूर्य का भुजांश यदि उक्त सन्ध्यंश से कम होने पर क्रान्ति की समता होती है। और उक्त भुजांश सन्ध्यंश से अधिक होने पर पात योग का समत्व नही होता है अपि च ऐसी स्थिति में दोनों का अर्थात् भुजांश और सन्ध्यन्तर के तुल्य क्रान्त्यन्तर भी होताहै।

उपपत्ति – सू० + राहु और सूर्य के एक गोलस्थ, तथा सूर्य + चन्द्र के एक गोल या भिन्न गोलस्थ की स्थिति में क्रमशः व्यतीपात एवं वैधृत योग होते हैं।

ऐसी स्थिति में चन्द्र शर एवं क्रान्ति की एक दिशा से इन दोनों के योग तुल्य क्रान्ति जो सूर्य क्रान्ति से अधिक होती है ऐसी स्थिति में चन्द्रभुज त्रय के अपचय (कमी) से इष्टकाल से आगे या पीछे स्पष्ट क्रान्तियों की तुल्यता होगी, क्योंकि ऐसे समय सूर्य क्रान्ति की गति परमाल्प होगी। तथा सराहु सूर्य एवं सूर्य के भिन्न गोलत्व में चन्द्रमा की क्रान्ति और शर भिन्न दिशा के होते हैं। ऐसी स्थिति में चन्द्रमा की स्पष्टा क्रान्ति, क्रान्ति व शर के वियोग से होती है। ततः चन्द्रमा का परम शर ४°।३०' से परम क्रान्ति = २४° को कम करने से १९°।३० के तुल्य चन्द्रमा की स्पष्टा क्रान्ति सिद्ध होती है।

इससे कम सूर्य क्रान्ति में किसी भी समय में सूर्य व चन्द्रकान्तियों की समता हो सकती है। १९°।३०' क्रान्ति से विलोम विधि से भुजांश ५५° होते हैं। अर्थात् ५५° से अल्प सूर्य के भुजांश में पात का होना है सिद्ध होता है ॥२॥

५५° से अल्प सूर्य भुजांशों में पात का होना निश्चित होने से, ५५° भुजांश के कोटि अंश = ९० – ५५ = ३५° अतः ३५° कोट्यंश पर से ही पात का विचार किया गया है। यहाँ पर सराहु सूर्य और सूर्य के भुजांशों के पदैक्य में में ६° कम करने पर ही पात होता है। तथा ५, ५ कोट्यंशों में स्वल्पान्तर से क्रान्त्यंश तुल्य स्वीकृत हुए हैं।

० से ५ अंश तक की सूर्य कोटि में ६ संख्या तुल्य सन्धि होती है! इस प्रकार ५, ५ अधिक कोट्यंश मानकर ३५° कोटि में ७ सन्धियाँ साधित कर अधोऽधः खण्ड शोधन से उनमें ६ कम करते हुए ०।०।१।२।६।१८।५७ ये सात खण्ड आचार्य ने बताये हैं। अतः यहाँ पर क्षेप = ६।

इसी प्रकार सराहु सूर्य एवं सूर्य की पद विभिन्नता से ३० अंश तुल्य कोट्यंशत्र्यग रुद्रे····१ कम ६ खण्ड पढ़े गये हैं। अतः यहाँ पर क्षेप = १० कहना युक्तियुक्त है।

अतः पञ्च विभक्त कोट्यंश से लब्ध तुल्य खण्डों का योग कर शेषांशों से अनुपात द्वारा यदि ५ अंशों में ऐष्य खण्ड तो शेषांश में क्या? लब्धफल को गत खण्ड में जोड़कर, क्षेप ६ जोड़ने से अभीष्ट सन्धि = गतखण्ड योग + $\frac{\text{शेषांश} \times \text{ऐष्यखण्ड}}{५}$ + ६। इसी प्रकार पद भेद में सन्धि = लब्धि तुल्य गत खण्ड योग + $\frac{\text{शेषांश} \times \text{ऐष्यखण्ड}}{५}$ उपपन्न होता है।

राहु युक्त सूर्य का भुजांश सन्ध्यंश से कम होने पर ही क्रान्ति की समता होती है। उक्त भुजांशों के सन्ध्यंश से अधिक होने से पात नहीं होता है ऐसी जगह पर क्रान्त्यंन्तर, सन्धि और भुजांश के तुल्य तोता है।

उपपत्ति—साग्वर्क (सहित रवि + राहु) भुजांश का नाम आचार्य ने सन्धि संज्ञा से कहा है।

सन्धि तुल्य साग्वर्क भुजांश में सूर्य की क्रान्ति और तात्कालिक चन्द्र परम स्पष्ट क्रान्ति के तुल्य स्वल्पान्तर से हो जाती है।

तात्कालिक चन्द्र परम स्पष्ट क्रान्ति से सूर्य क्रान्ति अधिक ही होती है साग्वर्क की अधिकता से ही क्रान्ति सम्भव होता है ॥४॥

पदे युग्मौजेऽर्कः समविषमगोले सतमस-
स्तदा यातः पातस्त्वगत इतरत्वे निगदितात् ।
विभिन्ने गोले चेदिह कृतशराङ्घ्रेर्लघुतरा
रवेर्दोर्भागाः स्यादिह रविपदान्यत्वमुचितम् ॥५॥

मल्लारिः

अथ पातस्य गतागतलक्षणमाह। अर्कः सूर्यः। यदि युग्मपदे वर्त्तते सराहुसूर्यात् समगोलेऽपि चेत् स्यात् तदा यातः पातो ज्ञेयः। अथ रविरोजपदे सराहुसूर्यात् भिन्न-गोले चेत् तदापि यातः पातः स्यात्। निगदितात् उक्तलक्षणात् इतरत्वे अन्यथात्वे आगत एष्यः पातः स्यात्। सराहुसूर्यात् सूर्यश्चेत् भिन्नगोले तदा कृतो गणितागतो यः शरस्तस्य योऽङ्घ्रिश्चतुर्थांशः। तस्माद्रवेर्भुजभागा लघुतरा अल्पाः स्युस्तदा रवि-पदस्य अन्यत्वमुचितम्।

अत्रोपपत्तिः। अत्र रविचन्द्रयोर्भुजसाम्यात् रविरेवाङ्गीकृतः। रविर्यदा युग्मपदे तदा तस्य क्रान्तिरपचीयमाना तत्र सराहुसूर्यात् समगोलत्वेऽपि समदिशा शरेण युक्तापि सा क्रान्तिरग्रे रविक्रान्त्या न समा स्यात्। अतस्तत्र पातो गतो ज्ञेयः। ओजपदे वर्त्त-मानस्य क्रान्तिरुपचीयमाना सा सराहुसूर्यभिन्नगोलत्वे सति भिन्नदिशा शरेणान्तरि-ताप्यग्रे सूर्यक्रान्त्या न समा स्यात्। अतस्तत्रापि पातो गतः स्यात् तदन्यथात्वे गम्यः पात इत्युपपन्नम्। अत्र चन्द्रस्य गोलसन्धिः साध्यः। तत्र चन्द्रो न कृतो रविरेवास्ति चन्द्रो भुजसाम्यात्। शरेण कृत्वा गोलान्यत्वसम्भवः सन्धौ। तत्र शरांगुलभागाः साध्यन्ते। परमक्रान्त्या २४ त्रिज्यातुल्या दोर्ज्या तदेष्टशरतुल्यक्रान्त्या केति। एवमिष्ट-दोर्ज्या तस्या धनु करणार्थं सुखार्थं द्वौ हरः शराङ्कानां दशगुणत्वात् दश हरः। एवमत्र हरघातो हरः ४८०। त्रिज्यागुणः। तेनैवापवर्त्तने जातः शरस्य हरः ४। एवं चतु-र्भक्तशरादल्पभुजभागेषु भिन्नगोलत्वात् पदान्यत्वं भविष्यतीति युक्तम्। तेन कृतशरा-ङ्घ्रेर्लघुतरा रवेर्दोर्भागा इत्युपपन्नम् ॥५॥

विश्वनाथः

अथ पातस्य गतगम्यलक्षणमाह पदे इति : साग्वर्कात् सायनसूर्यः समगोले समपदे चेद्भवति अथवा साग्वर्कात् सायनः सूर्यो भिन्नगोले विषमपदे चेद्भवति। उभयत्रापि गतः पातो ज्ञेयः। निगदितात् इतरत्वे अगत एष्यः। तद्यथा। साग्वर्कार्कौ समगोलस्थौ विषमपदेऽर्कस्तदा अथवा विषमगोलस्थौ समपदेऽर्कस्तदा पात एष्य इत्यर्थः। अथ रविपदान्यत्वलक्षणमाह विभिन्न इति। साग्वर्कात् सायनसूर्यो भिन्नगोले चेद्भवति तदा वक्ष्यमाणप्रकारेण शरं साधयित्वा तस्याङ्घ्रिर्ग्राह्यः। तस्मात् सायनरवेर्भुजभागा अल्पा भवन्ति तदा रविपदान्यत्वं कल्प्यं समपदस्थो यदा तदा विषमे ज्ञेयः। विषमस्थस्तदा समपदे ज्ञेयः। तदनन्तरं गतगम्यलक्षणं द्रष्टव्यम्। अत्र ओजपदस्थोऽर्कः साग्वर्कात् समगोले इति गम्यो वैधृतिः पातः ॥५॥

केदारदत्तः

सम पदस्थ सूर्य, और सराहु युत सूर्य भी समगोल में हो तो पात गत, तथा विषमपद गत सूर्य सरवि राहु से भिन्न गोल में भी हो तो भी पात गत ही होता है। अन्यथा पात गम्य होता है अर्थात् समपद भिन्न गोल, या विषमपद एक गोल।

भिन्न गोलस्थ की स्थिति में अग्रिम विधि से साधित शर के चतुर्थांश से यदि सूर्य के भुजांश न्यून हों तो रबि का अन्य पद मानकर पात का गतगम्य लक्षण समझना चाहिए।॥५॥

उपपत्तिः—व्यतीपात=सू० + चं०=६ ∴ चं० = ६ − सू० तथा चं० − रा = ६ − सू० − रा० = ६ − (सू० + रा०) = ६ − सार्क अंगु०। सार्क अगु = सा० अ०। सू० = सायन सू०। चं० = सायन चन्द्र। सा० अ० = सहित सूर्य राहु। व्यतीपात योग में, सू० चन्द्रमा पद भिन्नत्व समगोलीय, तथा सार्क अगु० तथा विपात चन्द्र की पदभिन्नता एवं गोल एकता सिद्ध होती है।

समपदस्थ सूर्य में विषमपद गत चन्द्रमा की क्रान्ति वृद्धि (उपचीयमान) सूर्य क्रान्ति से अधिक तथा सम दिशा के शर के साथ संस्कार करने से तो रवि क्रान्ति से चन्द्र क्रान्ति विशेष अधिक हो जावेगी ही ऐसी स्थिति में पात गत होगा।

इसी प्रकार सराहु युत सूर्य, चन्द्र और विराहुचन्द्र की भिन्न गोलत्व की स्थिति में, विषम पदगत सर्य एवं चन्द्रमा के समपदस्थ से क्षीयमाण चन्द्र क्रान्ति का भिन्न दिशा के शर के साथ संस्कार करने से तो सूर्य क्रान्ति से विशेष लध्वी होने से भी पात का गत लक्षण घटित होता है।

उक्त स्थितियों की विपरीत स्थितियों से पात का गम्य लक्षण स्वतः उपपन्न होता है।

चन्द्रक्रान्ति से न्यून भिन्न दिशा का शर होने पर ही उक्त लक्षण घटित होता है।

भिन्न दिशा के शर से क्रान्ति के आधिक्य पर सूर्य की अन्यपदत्व की कल्पना कर पात का गतगम्य लक्षण ज्ञात करना चाहिए। क्योंकि स्थानीय चन्द्रक्रान्ति की अपेक्षा ऐसी जगह पर चन्द्र की स्पष्टा क्रान्ति भिन्न दिग्गत होती है।

शर = श यह दश गुणित है अतः दश से भाग देने से वास्तविक शर = $\frac{श}{१०}$ द्विगुणित

अंश = ज्या अतः $\frac{श \times २}{१०} = \frac{श}{५}$ = शर ज्या। ततः शर ज्या से भुज ज्या = $\frac{त्रि. \times श. ज्य}{जिन ज्या}$

अर्थात् परम क्रान्ति ज्या में त्रिज्या तुल्य भुज ज्या तो इष्ट शर ज्या में क्या ? ऐसे अनुपात से

$= \frac{१२० \times शर}{४८ \times ५}$ = शर ज्या में दो का भाग देने से अंश = $\frac{१२० \times शर}{४८ \times ५ \times २} = \frac{श}{४}$ इमसे कम

भुजांशों में शर से क्रान्ति कम होती है। जिससे सूर्य की अन्य पदत्व की स्थिति सम्यक् उपपन्न होती है ॥५॥

पञ्चधा सागराः पञ्चधा वह्नयो द्वौ चतुर्धा कुभूखाभ्रमङ्का इषोः।
(४।४।४।४।४।३।३।३।३।३।२।२।२।२।१।१।०।०)
साग्विनाद्दोर्लवैष्वंशतुल्यैक्यकं शेषभोग्याहृतीष्वंशयुक् स्यात् शरः ॥६॥

मल्लारिः

अथ पातसाधने हेतुभूतशरं खण्डकैः सूक्ष्मं साधयति। इषोः शरस्य एतेऽङ्काः स्युः। सागराश्चत्वारः पञ्चधा। वह्नयस्त्रयस्तेऽपि पञ्चधा। द्वौ चतुर्धा। ततः कुभूखाभ्रम। कुरेकः। भूरेकः। खं शून्यम्। अभ्रं शून्यम्। एतेषां समाहारस्तत् तथा। ततः साग्विनात् सराहुसूर्याद् दोर्लवानां भुजभागानामिष्वंशः पञ्चमांशः। तत्तुल्या ये गताङ्कास्तेषामैक्यं कार्यम्। ततः शेषांशानां भोग्याङ्कस्य। या हृतिः। तस्या यः पञ्चमांशस्तेन युक्शरः स्यादित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। शरस्वरूपं पूर्वमेव प्रतिपादितमस्ति। अत्र पञ्चपञ्चभागानां शरभागादिकमुत्पाद्य सावयवत्वाद्दशभिः सवर्णयित्वा सिद्धान् नवतिभुजभागानामष्टादशशराङ्कानाचार्यः प्रोक्तवान्। मध्ये तत्रानुपातः। यदि पञ्चभिर्भुजभागैरेकः शराङ्को लभ्यते तदेष्टभुजभागैः कियन्त इति अत उक्तं भुजभागपञ्चांशतुल्यगताङ्कैक्यं कार्यम्। शेषाणामनुपातः। पञ्चभिर्भागैर्भोग्यखण्डं लभ्यते तदा शेषभागैः कियन्त इति। अतः शेषभोग्यखण्डवधपञ्चमांशेन युक्तं तदैक्यं शरः स्यादित्युपपन्नम् ॥६॥

विश्वनाथः

अथ शरखण्डानि शरसाधनं चाह पञ्चधा इति। साग्वर्कः ३।३। ४।८ अस्य भुजांशाः ८६।५।५२ एषामिष्वंश १७ तुल्यगतखण्डैक्यम् ४५। शेष-१।५।५२ भोग्याहृतिः ०।०।०। अस्य पञ्चमांशः ०। अनेन खण्डैक्यं ४५ युक्तं जातः शर उत्तरः ४५। भिन्नगोलत्वं प्रकल्प्य पदान्यत्वोदाहरणम् शराङ्४५घ्न ११:१५ अस्मात् सायनसूर्यस्य भुजभागा अल्पा न सन्ति अतः पदान्यत्वाभावः ॥६॥

केदारदत्तः

शर साधन के लिए १८ खण्ड क्रमशः ४, ४, ४, ४, ४, ३, ३, ३, ३, ३, २, २, २, २, १, १, और ० इस प्रकार १८ खण्ड पढ़े गये हैं। राहुयुत सूर्य के भुजांश में ५ से भाग देकर लब्ध तुल्य खण्डकों के योग में शेष × अग्रिम अंक ÷ ५ जोड़ने से शर मान स्पष्ट होता है ॥६॥

उपपत्तिः—९० भुजांशों में ५-५ अंश विभाग से भुजांश के १८ खण्ड होंगे स्पष्ट है। यदि ५ अंशों में एक खण्ड तो साग्वर्क भुजांशों में $\frac{१ \times \text{साग्वर्क भुजांश}}{५}$ = प्रात खण्ड होंगे।

गत खण्डों का ऐक्य कर, पुनः ५ अंशों में भोग्य खण्ड तो शेष अंशों में $\frac{\text{भो० खं०} \times \text{शेषांश}}{५}$ = फ०, इस फल को गत खण्ड योग में जोड़ने से अभीष्ट शर का मान उपपन्न होता है। यदि त्रिज्या में परम शर तो इष्ट भुज ज्या में = $\frac{\text{परम शर} \times \text{भुज ज्या}}{\text{त्रि०}} = \frac{\text{भुज ज्या} \times ९}{१२० \times २}$ इस सावयव मान को १० गुणित करने से निरवयव खण्ड होते हैं। यथा ४।८।१२।१६ अधोऽधः शोधन से ४,४,४,४,४, ३······ उपपन्न होते हैं ॥६॥

खैकादिके रविभुजांशदशांशके स्या-
द्धारोऽर्कसूर्यमनुधृत्युडवोऽङ्गरामाः।
खाश्वा द्विशत्युडुगुणास्तु शराद्धराप्त्या
हीनोऽत्र स ह्यपमसंस्कृतये स्फुटः स्यात् ॥७॥

मल्लारिः

अथास्य शरस्य क्रान्तिसंस्कारयोग्यत्वार्थं स्पष्टत्वमाह। रवेर्भुजांशा ये स्युः। तेषां यो दशमांशः। तस्मिन् खैकादिके शून्यैकादिसमे सति क्रमादयं हरः स्यात्। अर्का द्वादश। पुनः सूर्या द्वादश। मनवश्चतुर्दश। धृतिरष्टादश। उडूनि सप्तविंशतिः। अङ्गरामाः षट्त्रिंशत्। खाश्वाः सप्ततिः। द्विशती प्रसिद्धा। उडुगुणाः सप्तविंशत्यधिकशतत्रयम्। एवमत्र शरात् क्रमप्राप्तहरेण या लब्धिस्तया स एव शरो हीनः सन् क्रान्तिसंस्कारयोग्यः स्पष्टः शरः स्यादित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। अत्र क्रान्तिर्ध्रुवाभिमुखी अतः सा कोटिरूपा शरः कदम्बाभिमुखः स कर्णरूपः। अतः क्रान्तिसंस्कारार्थं शरस्य कर्णरूपस्य कोटिरूपत्वं कार्यम्। तद्यथा। यदि त्रिज्याकर्णे द्युज्याकोटिस्तदा शरकर्णे का कोटिरिति जातः कोटिरूपः शरः। एवमत्र दद्युज्या कार्या। दद्युज्या नाम द्युरात्रवृत्तव्यासार्धम्। तत्र क्रान्तिज्या भुजो द्युज्या कोटिस्त्रिज्या कर्णः। एवं क्रान्तिज्यावर्गोनस्त्रिज्यावर्गो द्युज्यावर्गस्तन्मूलं द्युज्येति कर्त्तव्यम्। अत्रेदं जडकर्म दृष्ट्वा आचार्येण दशभागानां द्युज्याः साधिताः।

तत्र प्रथमं दशभागानां क्रान्तिज्यायां क्रियमाणायां सत्रिराशिग्रहः कार्यः। एवमत्र सत्रिराशीनां दशभागानां द्युज्या ११०। शरोऽनया गुण्यः खार्कमितत्रिज्या भाज्यः। अत्र गुणहरौ दशभिरपवर्तितौ जातो गुण एकादश ११। हरो द्वादश १२। यो राशिरेकादशभिर्गुण्यते द्वादशभिर्भज्यते स स्वद्वादशांशहीन एव भवति। एवं सर्वेऽपि हरा उत्पादिताः अतः शरः स्वहरलब्ध्या हीनः क्रान्तिसंस्कारयोग्यः स्पष्टो भवतीत्युपपन्नम् ॥७॥

विश्वनाथः

अथ शरस्य क्रान्तिसंस्कारयोग्यत्वार्थं हरानयनम् शरस्पष्टत्वं चाह खैकादिके इति। रविभुजांशानां दशमांशे खैकादिकेः शून्यैकत्वादिके सति अर्कादि हारः स्यात्। रविभुजांशदशांशश्चेत् शून्यं तदा द्वादशहारः स्यात्। एकस्तदापि द्वादश हारः। द्वौ तदा मनव इत्यादि ज्ञेयम्। शेषांशा गतैष्यहारान्तरेण गुण्या दिग्भिर्भाज्याः फलेन हारो युक्तः कार्यः स्फुट स्यात्। इदं स्पष्टत्वं ग्रन्थकृता स्वल्पान्तरत्वान्न कृतम्। पूर्वं कृताच्छराद् हाराप्त्या स शरो हीनः कार्यः। सोऽपमसंस्कृतये स्पष्टशरो भवति। सायनार्कः १।२०।३२।३१ भुजांशाः ५०।३२।३१ एषां दशांशः ५। अत्र खैकादिकेत्यादि प्राप्तो हारः ३६। शेषांशाः ०।३२।३१ गतै-३६ष्या-७०न्तरेण ३४ गुणिताः १८।२५।३४ दशभिर्भक्ताः फलेन १।५० हारो ३६ युक्तो जातः स्फुटः ३७।५० हरः॥ शरः ४५।० हारेण ३७।५० भक्तः फलम् १।११ अनेन हीनः शरो जातः स्फुटः शर उत्तरः ४३।४९ ॥७॥

केदारदत्तः

सूर्य के भुजांश में १० से भाग देने से ०।१।२।३।४।५।६।७।८ लब्धियों में क्रमशः १२।१२।१४।१८।२७।३६।७०।१०२।३३१ हर होते हैं। साधित शर में क्रम प्राप्त हर का भाग देने से लब्ध फल को शर में घटाने से, क्रान्ति संस्कार योग्य शर होता है ॥७॥

उपपत्ति—श्री भास्कराचार्य के 'राशित्रययुतखगद्युज्यकाघ्नस्त्रिभौर्व्या भक्तः स्पष्टो-भवति नयतं क्रान्ति संस्कार योग्यः' अनुसार स्पष्ट शर $= \frac{\text{शर} \times \text{सत्रिग्रद्यु}}{\text{त्रि०}} = \text{अ}$। दश अंश अधिक = सत्रि रा० द्यु० = ११० अतः स्प० श $= \frac{\text{श} \times ११०}{१२०} = \frac{\text{श} \times ११}{१२} = \text{श} - \frac{\text{श}}{\text{ह}}$

प्रथम हर उपपन्न होता है तद्वत् आगे के हर उपपन्न होते हैं ॥७॥

चतुर्धा नखा गोभुवो द्विर्गजाब्जा नृपाष्टीन्द्रविश्वार्कदिग्वस्वगाक्षाः।
त्रयः क्ष्माऽपमांकाः क्रमादर्कबाहोर्लवेष्वंश ५ तुल्यो गतो न्यस्य शेषम् ॥८॥

मल्लारिः

अथ क्रान्तेः कर्त्तव्यताप्रकारं खण्डैरेवाह। एवमपमस्य क्रान्तेरङ्काः स्युरित्यन्वयः। नखा विंशतिश्चतुर्धा ततो गोभुव एकोनविंशतिः द्विवारम्। गजाब्जा अष्टा-

दश। नृपः षोडश। अष्टिः षोडश। इन्द्राश्चतुर्दश। विश्वे त्रयोदश। अर्का द्वादश। दिशो दश। वसवोऽष्टौ। अगाः सप्त। अक्षाः पञ्च। त्रयः प्रसिद्धाः। क्ष्मा एकः अर्कस्य यो बाहुर्भजस्तस्य ये लवास्तेषामिष्वंशः पञ्चमांशस्तत्तुल्यो गतोऽङ्कः स्यात् शेषं न्यस्येति शेषमेकान्ते स्थापनीयमेव।

अत्रोपपत्तिः। क्रान्तिलक्षणं पूर्वमेव प्रतिपादितम्। पञ्चपञ्चभागजान् क्रान्तिभागान् संसाध्य सावयवत्वाद् दशभिः संगुण्याङ्काः पठिताः। तत्रानुपातः। यदि पञ्चभिर्भुजभागैरेकः क्रान्तेरङ्को लभ्यते तदेष्टभुजभागैः किमिति लब्धतुल्यो गताङ्कः स्यात् शेषस्याग्रे प्रयोजनमस्त्यतस्तत् स्थाप्यम् ॥८॥

विश्वनाथः

अथ क्रान्त्यङ्कानाह चतुर्धेति। चतुर्धा नखेत्यादयः क्रान्त्यङ्काः स्युः। सायनसूर्यस्य भुजांशाः ५०।३२।३१ एषां पञ्चांशः १०। एतत्तुल्यो गताङ्को जातः शेषम् ०।३२।३१ न्यस्य स्थाप्ययित्वेत्यर्थः। अस्याग्रे प्रयोजनमस्ति ॥८॥

केदारदत्तः

२०।२०।२०।२०।१९।१९।१८।१६।१६।१४।१३।१२।१०।८।७।५।३।१ क्रान्ति साधन हेतु ये १८ अंक हैं। सूर्य भुजांश में ५ से भाग देने से लब्ध तुल्य अंक समझ कर शेष का आगे श्लोक के अनुसार उपयोग करना चाहिए।

उपपत्तिः—पाँच-पाँच अंशों की क्रान्ति साधन कर उन्हें दश गुणित कर अधोऽधः शोधन कर ९०° में १८ अक पढ़े गये हैं। इष्ट रवि भुजांश से अनुपात द्वारा ५ अंशों में एक अंक तो इष्ट सूर्य भुजांश में इष्ट भुजांश सम्बन्धी अंक प्राप्त होता है। शेष का आगे प्रयोजन है ॥८॥

क्रमोत्क्रमादुक्तशरापमांकान् सङ्ख्याहि भोग्यात् क्रमतः षडंकाः।
स्थाप्या गतैष्या गतगम्यपाते युग्मेऽथवौजे स्युरिमेऽयनांशाः ॥९॥
अन्त्याद्विलोमा यदि तेऽन्यदिक्का अथापमांकाः क्रमशः शराकैः।
सुसंस्कृतास्त्रीन्दुहृतापमैष्याङ्केनापि ते स्पष्टतरा भवेयुः ॥१०॥

मल्लारिः

अतः क्रान्तिखण्डानां शरखण्डानां संस्थानक्रमं तत्संस्कारं च कथयति। उक्ता ये शरस्य तथाऽपमस्य क्रान्तेर्येऽङ्कास्तान् यथागतान् आदौ क्रमात् पश्चादुत्क्रमात् सङ्ख्या हि गणय। भोग्यात् अङ्कात् क्रमतो यथाक्रमं षडङ्का गते पाते गता एष्ये पाते एष्याः स्थापनीयाः। अयं प्रकारस्तु युग्मपदे। ओजपदे च यदा रविः सराहुसूर्यो वा भवति तदा इदमन्यथा विपरीतम्। तद्यथा। गते पाते एष्या एष्ये पाते गता इमेऽङ्का अयनदिशः स्युः। रविर्यस्मिन्नयने तद्दिशः क्रान्त्यङ्काः विराहुसूर्यो यस्मिन्नयने तद्दिशः शराङ्काः स्युरिति। यदि ते क्रान्त्यङ्का अन्त्याद्विलोमास्तदा तेऽन्यदिशो ज्ञेयः।

भोग्यादन्त्यपर्यन्तं येऽङ्कास्तेऽयनदिशः। अन्त्यादन्त्ये ये उत्क्रमस्थास्ते विपरीतदिशः। उत्तरायणे दक्षिणा दक्षिणायने उत्तराः स्युरित्यर्थः। अथ शब्दोऽनन्तरवाची। क्रान्त्यङ्कशराङ्कस्थापनानन्तरं क्रान्त्यङ्काः शराङ्कैः सुसंस्कृताः कार्याः। अत्र संस्कारस्तु एकदिशो योगो भिन्नदिशोरन्तरमिति प्रसिद्धः। ततस्तेऽङ्कास्त्रीन्दुहृतापमभैष्याङ्केन त्रयोदशभक्तक्रान्तिभोग्याङ्केनापि संस्कृताः स्पष्टतरा भवेयुरित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। युग्मपदे खण्डानामग्रे उपचयः। तत्र चेद्गतः पातः। तज्ज्ञानार्थमपचयभूताङ्कग्रहणम्। अतो गताङ्कस्यानयनमुक्तम्। एष्ये पाते एष्यास्थापनमर्थत एव सिद्धम्। ओजपदे इदं विपरीतं भवति। अङ्कानामुपचयापचयस्य व्यस्तभूतत्वात्। तेऽङ्काः स्वायनदिशि स्युरिति प्रत्यक्षम्। अत्र शरसंस्कृतायाश्चन्द्रक्रान्तेः सूर्यक्रान्त्या सह यदन्तरं तज्ज्ञानार्थं क्रान्त्यङ्काः शराङ्कैः संस्कार्या एव। शरस्य प्रथमाङ्कः क्रान्तेः प्रथमाङ्के संस्कार्यः। एवं द्वितीयो द्वितीये इत्यादिषण्णामप्यङ्कानां संस्कारः कार्य एव। अन्यच्च संस्कारान्तरम्। यदि चन्द्रगतिप्रमाणेनेदं क्रान्तिभोग्यखण्डे तदा रविगतिप्रमाणेन किमिति भोग्यखण्डं रविगत्या गुण्यम्। चन्द्रगत्या भाज्यम्। अत्र रविगतिस्त्रयोदशगुणा चन्द्रगतिभवत्यतः स्थूलत्वात् भोग्याङ्कास्त्रयोदशभिर्भाज्याः फलं सर्वाङ्केषु संस्कारार्थं चन्द्रगतिसम्बन्धित्वात्। अतस्त्रीन्दुहृतापमैष्याङ्केनापि संस्कृतास्ते षडङ्काः स्पष्टतराणि क्रान्त्यन्तरखण्डानि चन्द्रार्कयोर्भवेयुरित्युपपन्नम् ॥९–१०॥

विश्वनाथः

अथ शरक्रान्त्याङ्कानां स्फुटीकरणं तत्संस्कारं चाह क्रमोत्क्रमादिति। अन्त्यादिति। हे गणक ? उक्तशरापमाङ्कान् क्रमेण उत्क्रमेण च संख्याहि गणय। एवं गणनायां कृतायां भोग्यात् क्रमतः षडङ्का गतगम्यपाते गतैष्याः स्थाप्याः। एतदुक्तं भवति। क्रान्तिभोग्याङ्कात् गते पातलक्षणे गताः खण्डकाः स्थाप्याः। एष्यलक्षणे पाते एष्याङ्का एष्याः खण्डकाः स्थाप्याः। एवं शरभोग्याङ्कात् गते पाते षड्गताङ्काः स्थाप्याः। एष्ये एष्याङ्का षट् स्थाप्याः। एवं समपदे सूर्ये सति क्रान्त्यङ्काः सायर्के समपदे सति शराङ्काः इति ज्ञेयम् ओजे विषमे पदेऽन्यथा गते पाते एष्या एष्ये गता इत्यर्थः। रवौ विषमपदे तदा क्रान्त्यङ्काः सायर्के विषमपदे तदा शराङ्का इत्यर्थात् सिद्धं ज्ञेयम्। इमेऽङ्का अयनांशा ज्ञेयाः। रवौ उत्तरायणे शराङ्का उत्तरा दक्षिणायने दक्षिणा इत्यवगन्तव्यम्। अन्त्याङ्कात् क्रमस्थापिताङ्कानां मध्येऽन्तिमाङ्कात् येऽङ्का विलोमा विपरीताङ्कमध्ये आगच्छन्ति ते अन्यदिक्काः कल्प्याः। उत्तरास्तदा याम्या याम्यास्तदोत्तरा इत्यर्थः अथानन्तरमपमाङ्काः क्रान्त्यङ्काः षट् स्थापयित्वा शराङ्कैः सुसंस्कृताः कार्याः। समदिशि योगो भिन्नदिश्यन्तरमिति। एवं संस्कृतास्ते त्रीन्दुहृतापमैष्याङ्केन त्रयोदशभक्तक्रान्तिभोग्याङ्केनापि संस्कृताः। एवं तेऽङ्काः स्पष्टतरा भवेयुः। अथ क्रमात् क्रान्त्यङ्काः स्थापिताः २०।२०।२०।२०।१९।१८।१८।१६।१६।१४।१३।१२।१०।८।७।५।३।१ अथोत्क्रमास्थापिताः १।३।५।७।८।१०।१२।१३।१४।१६।१६।१८।१८।१९।२०।२० २०।२० अथ शराङ्काः क्रमात् स्थापिताः ४।४।४।४।४।३।३।३।३।३।२।२।२।१।१।१।०।०।

उत्क्रमात् ०।०।१।१।२।२।२।२।३।३।३।३।३।४।४।४।४ सूर्यस्य विषमपदे स्थितत्वादेष्ये पाते क्रान्तेर्भोग्यादृगतखण्डकाः स्थापिताः १३।१४।१६।१६।१८।१८ इमे सौम्याः रवेरुत्तरायणस्थत्वात्। साग्वर्कस्य समपदस्थत्वादेष्ये पाते एष्या भोग्याच्चरखण्डकाः स्थापिताः ०।०।१।१।२ इमे दक्षिणाः साग्वर्कस्य दक्षिणायनगतत्वात्। अन्त्याद्विलोमा इत्युक्तत्वात् स्थापितशराङ्कानां मध्ये उत्तरा जाताः। प्रथमाङ्कस्तु याम्य एव। संस्कृताः शराङ्कैः क्रान्त्यङ्का जाता उत्तराः १३।१४।१६।१७।१९।२० इमे त्रीन्दु-१३ हृतापमैष्याङ्केन १।० सूर्यायनदिक्केन तुल्यदिक्त्वाद्युक्ता जाताः स्वष्टतराः १३।१५।१७।१८।२०।२१ ॥९-१०॥

केदारदत्तः

शराङ्क एवं क्रान्त्यङ्कों को एक पंक्ति में क्रमशः, द्वितीय पंक्ति में उत्क्रम से स्थापित करना चाहिये।

क्रान्ति अंक स्थापन क्रम विधि = २०।२०।२०।२०।१९।१८।१६।१६।१४।१३।१२।१० ८।७।५।५।३।१।

उत्क्रम विधि = १।३।५।७।८।०…

यदि गत लक्षण युक्तपात हो, पाय या सपात सूय समपद में हो तो भोग्यांक से गत अंक ६ स्थापित करना चाहिए। गम्य पात से भोग्यांक से ६ अंक स्थापित करने चाहिए।

सूर्य या सपात सूर्य विषम पद में हो तो, गत पात में अंक ६ एवं ऐष्य पात में भी अंक ६ स्थापित करने चाहिए।

सूर्य के अयन दिशा के क्रान्त्यंक, सपात सूर्य की अयन दिशा के पराङ्क होते हैं। यदि भोग्य खण्ड से गणना करते समय अन्तिम अंक से आगे विलोम अंक की स्थापना होने से विलोम दिशा के अंक होते हैं। फिर क्रम स्थापित क्रान्त्यंकों में शराङ्कों के संस्कार में भोग्यांश ÷ १३ का भी संस्कार करने से स्पष्ट क्रान्त्यंक होते हैं ॥९–१०॥

उपपत्तिः—गत लक्षण के व्यतीपात में सूर्य समपदीय हो तो चन्द्रमा के विषम पदगत होने से पृष्ठ चालन से, भुजांशों के अपचय से भोग्यांक से गताङ्क की ही उपलब्धि होती है। ऐसी स्थिति में क्रान्ति साधनोपयुक्त गत ६ ही अंक स्थापित किए गये हैं।

यदि सूर्य विषमपदीय तो समपदीय चन्द्रमा पीछे से चालन देने से भुजांशों के उपचीयमान होने से भोग्यांक से ऐश्यांक ही प्राप्त होंगे। अतः ऐष्य ६ अंक स्थापित करना समुचित है। इसी प्रकार वैधृत में भी समझिए।

सूर्यायन दिशा के क्रान्त्यंक एवं विपात सूर्यायन की दिशा के शराङ्क होते हैं। क्रमाङ्कों के अभाव से अन्त्याङ्क से उत्क्रमाङ्कों की गणना होती है यतः ऐसी स्थिति में अन्तिमांक और अग्रिमाङ्कों के भिन्नायन गत होते हैं।

शर संस्कृत चन्द्र क्रान्ति का सूर्य क्रान्ति के साथ अन्तर ज्ञान के लिए क्रान्त्यंकों में शराङ्कों का क्रमिक संस्कार समीचीन होता है। इस प्रकार के संकार से चन्द्रमा के स्पष्ट क्रान्त्यंक सिद्ध होते हैं। सूर्य क्रान्त्यंक संस्कार से स्फुट क्रान्त्यंकाङ्क होते हैं। यदि चन्द्रगति

में भोग्य खण्ड तो सूर्यगति में क्या $\frac{\text{ऐं० खण्ड} \times \text{सू० ग०}}{\text{चं० ग०}} = \frac{१ \times \text{ऐंख०}}{१३}$, इस फल से संस्कृत होने पर ही क्रान्त्यंकों की स्पष्टता सिद्ध होती है ॥९-१०॥

प्राक् स्थापिताः शेषलवाः शराप्ता रूपाद्विशुद्धा लघुसंज्ञकः स्यात् ।
आद्यः स्फुटाङ्को लघुनाहतो यस्तेनाढ्यबाणात् क्रमशोऽथ जह्यात् ॥११॥
तानङ्ककान् शेषमशुद्धभक्तं विशुद्धसंख्यासहितं लघूनम् ।
त्रिघ्नं भनाडीघ्नमिभाप्तमाप्तयातैष्यनाडीष्विह पातमध्यम् ॥१२॥

मल्लारिः

अथ पातकालं वृत्तद्वयेन साधयति । प्राक् पूर्वक्रान्तौ ये शेषभागा एकान्ते स्थापितास्ते शरैः पञ्चभिराप्ता भक्ताः सन्तो यत् फलं तस्य रूपशुद्धस्य लधुसंज्ञा । षडङ्कमध्ये य आद्यः प्रथमः स्पष्टाङ्कः स लघुना हतो गुणितः कार्यः । तेन आढ्यो युक्तो योऽत्र स्पष्टबाणः । तस्मात् तानङ्कान् जह्यात् शोधयेत् । ततः शुद्धेष्वङ्केषु यच्छेषं तमशुद्धेनाङ्केन भक्तं कार्यं तत्फलं विशुद्धखण्डानां संख्या यावती स्यात् तया सहितं युक्तं च कार्यं ततस्तत् लघुना ऊनं त्रिगुणम् । पुनर्भनाडीभिः नक्षत्रसर्वघटीभिर्गुण्यम् । ततस्तदिभैरष्टभिराप्तं भक्तं सत् आप्ता लब्धा या यातैष्यनाड्यस्तासु पातमध्यः स्यात् । यातैष्यलक्षणं पूर्वमेव प्रतिपादितमस्ति । मध्यमपातकालात् ताभिर्घटीभिर्गतो गम्यो वा पातमध्यः स्यादित्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः । अत्र खण्डानि पञ्चपञ्चभागानां तेनानुपातः । यदि पञ्चभिर्भागैर्भोग्याङ्को लभ्यते तदा शेषांशैः किमिति । अतः शेषलवाः शराप्ताः कार्या एव । रूपादूना एव सदा स्युरिति तेषां भोग्यत्वकरणार्थं ते रूपाद्विशुद्धा इत्युक्तम् । तस्य लघुसंज्ञा कृता । तस्य भोग्याङ्को गुणोऽस्त्यतो लघुना हत आद्यः स्फुटाङ्कः कार्य इति सिद्धम् । एवं जातं गते पाते शेषांशोत्थभोग्यखण्डमेष्ये शेषांशोनपञ्चाशोत्थं भोग्यखण्डम् । इदमाद्यापरपर्यायात्मध्यक्रान्तिसाम्यकालिकशरतुल्यक्रान्त्यन्तराच्छोध्यम् । द्वितीयादिखण्डान्यपि शोध्यानि । अत्राचार्येण प्रथमखण्डं सम्पूर्णं शोधितम् । अतो भोग्योत्थभोग्यखण्डं गते पाते भुक्तांशोत्थभोग्यं खण्डं गम्ये पाते शरे योज्यम् । अतः शेषलवाः शराप्ता रूपाद्विशुद्धाः । गते पाते लघुः । गम्ये शेषांशाः शराप्ता एव लघुः स्यादिति युक्तम् । अत एवाचार्यलिखिततज्जीर्णपुस्तके 'प्राक्स्थापिताः शेषलवा शराप्ता लघुर्भवेद्भूच्युत एष्यपाते' इति पाठो दृश्यते । अस्यार्थः । एष्यपाते शेषांशशरांशो भूच्युतो लघुर्गते किं कर्त्तव्यमिति मन्दधियां संशयो भवेदतः 'प्राक्स्थापिता' शेषलवाः शराप्ता गम्ये लघुर्भूपतितो गतेऽसौ' इति पाठो नितान्तरमणीय इति प्रतिभाति । 'रूपाद्विशुद्धो लघुसंज्ञकः स्यात्' इति पाठस्तु वासनाविरोधादुपेक्ष्यः । एवं यावन्तोऽङ्काः शुध्यन्ति तावन्तः शोध्याः शेषेण सहानुपातः । यदि अशुद्धाङ्केन पञ्चभागा लभ्यन्ते

तदाऽनेन शेषेण किमिति । अतः शेषमशुद्धाङ्कभक्तं कार्यमिति । तस्मिन् फले विशुद्धाङ्कसंख्या योज्या । तत्र पूर्वं लघु संयोजितो वर्त्तते स निष्काशनीय एव । तत्कालादेव पातज्ञानार्थम् । अतो लघूनमिति । यदि चन्द्रगतिभागैरेभिः १३।१० सर्वनक्षत्रघटिका लभ्यन्ते तदैभिः शेषभागैः किमिति । अत्र शेषस्य सर्वर्क्षनाड्यो गुणः । अतो भनाडीघ्नमिति । अत्र हरस्त्रयोदश सावयवाः १३।१० पूर्वानुपाते गुणः पञ्चतुल्यः स्थितः । अत्र सञ्चारो यदि पञ्चतुल्ये गुणे सावयवस्त्रयोदश १३।१० हरस्तदाऽऽचार्येण कल्पिते त्रिमिते गुणे को वा हरः । लब्धा अष्टौ । अतस्त्रिघ्नभिभाप्तमिति । लब्धघटीभिर्गतैष्यं पातमध्यं स्यादित्युपपन्नम् ॥११-१२॥

विश्वनाथः

अथ पातमध्यकालानयनमाह प्राक् स्थापिता इति । तानङ्कानिति । प्राक् स्थापिताः शेषलवाः शराप्ता गम्ये लघुर्भूपतितो गते स्यादिति । अयमर्थः प्राक्स्थापितशेषांशानां यः पञ्चमांशस्तत्तुल्यं एष्ये पाते लघुसंज्ञः स्यात् गते तु पाते शेषांशानां पञ्चमांशो ग्राह्यः । स रूपाद्विशुद्धः कार्यो लघुसंज्ञकः स्यादिति । प्राक् स्थापिताः शेषलवाः शराप्ता रूपाद्विशुद्धा लघुसंज्ञकः स्यादिति क्वचित् पाठः स तु वासनाविरुद्धत्वादुपेक्षितः । न्यस्य शेषमित्यादिना प्राक्स्थापिताः शेषलव : ०।३२।३१ पञ्चभक्ताः फलम् ०।६।३० अनेन आद्यस्फुटाङ्कः १४ गुणितः १।३१।० अनेन पूर्वानीतस्पष्टशरः ४३।४९ युक्तः ४५।२०।० अस्मात् ते स्पष्टक्रान्त्यङ्काः शोध्यास्तत्र प्रथमाङ्के १४ शोधिते शेषम् ३१।२०।० एतन्मध्ये द्वितीयाङ्के १४ शोधिते शेषम् १६।२०।० एतस्मात् तृतीयाङ्को १७ । न शुद्ध्यति अतः शेषम् १६।२०।० अशुद्धेन १७ भक्त ०।५७।३८ विशुद्ध संख्या-२ सहितम् २।५७।३८ लघू-०।६।३० ऊनं २।५१।८ त्रिघ्नं ८।३३।२४ भनाडी-६२। ५५ घ्नं ५३८।२१ इभा-८ प्तम् ६७।१६ मध्यक्रान्तिसाम्यकाला-४५।५० देतावति गम्ये काले ६७।१७ वैशाखशुक्लसप्तम्यां शनौ आसु घटीषु ५३ । फलेषु ५ पातमध्यम् ॥११-१२॥

केदारदत्तः

पूर्व श्लोक के गणित में प्राप्त शेष अंशों में ५ का भाग देने से पात 'ऐष्य' का नाम लघु होता है। गत पात में ५ भक्त शेष को १ में कम करने से लघु होता है। तथा पूर्व साधित ६ अंकों में प्रथम अंक को लघु से गुणा कर गुणनफल को शर में जोड़कर उसमें क्रमशः उन अंकों को घटाना चाहिए । घटे हुए अंक को शुद्ध एवं नहीं घटे अंकों की अशुद्ध संज्ञा समझनी चाहिए ।

शेष अंकों में अशुद्ध से भाग लेकर जो लब्ध अंशादि हो उसमें शुद्ध संख्या जोड़कर जो प्राप्त हो उसमें उघु को घटाकर शेष में ३ और भभोग घटी से गुणा कर ८ का भाग देने से लब्ध तुल्य घटी में गत अथवा गम्य पात का मध्य काल होता है ॥११-१२॥

उपपत्तिः—भोग्यांक से स्थापित जो ६ अंक हैं उनमें भोग्यांक ही आदि अंक है।

$\frac{ए_2 \quad\quad ए_1}{अ \quad क' \quad ग'}$ कल्पना करिए अ क = शेषांश = शे । अ ग = ५° । एष्य पात में एष्य खण्ड क्रान्त्यन्तर खण्ड ग विन्दु पर $ए_1$ के तुल्य । गत पात में अ विन्दुगत एष्य खण्ड $ए_2$ । क विन्दु पर रवि चन्द्रमा का क्रान्त्यन्तर शर के तुल्य । एष्य पात के पृष्ठ में क्रान्त्यन्तर उपचीय होता है आगे अपचीय ।

अत: एष्य पात मे अ विन्दु पर क्रान्त्यन्तर ज्ञान के लिए अनुपात करना है कि यदि अ ग = ५ अंश में एष्य खण्ड तुल्य क्रान्त्न्तर में अ क तो शेषांश में क्या ? लब्ध अ क जन्य

$$क्रान्त्यन्त = \frac{अ\ क \times ए_1}{अ\ ग} = \frac{शे० \times ए_1}{५} = ल\ ए_1 ।$$

यदि$\left(\frac{शे}{५} = लघु\right)$ इसे क स्थानीय शर तुल्य क्रान्त्यन्तर में जोड़ दें तो अ विन्दु में क्रान्त्यन्तर = श + $ए_1$ ल । इस प्रकार गत पात में एष्य खण्ड = $ए_2$ । यहाँ अग्रिम चालन से क्रान्त्यन्तर उपचीयमान होता है । अत: ग विन्दुगत क्रान्त्यन्तर ज्ञान के लिए क ग से उत्पण्न क्रान्त्यन्तर से क विन्दुगत शर सारवर्क तुल्य क्रान्त्यन्तर जोड़ना चाहिए । यहाँ पर पूर्व प्रकार के अनुपात से फल = $\frac{क\ ग \times ए_2}{अ\ ग} = \frac{५ - शे०}{५}\ ए_2 = \left(१ - \frac{श}{५}\right) ए_2 = ल$ $ए_2$ । यहाँ यदि $१ - \frac{शे}{५} = लघु$ ।

एष्य पात में, अ विन्दुगत पात में च ग विन्दु पर क्रान्त्यन्तर का जब अभाव तभी क्रान्ति साम्य मध्य शब्द से कहा जाता है । इसलिए यहाँ स्पष्ट क्रान्त्यन्तर खण्डों को शोधित किया है । जितने शुद्ध हैं तद्‌गुणित ५ अंश में अनुपात से प्राप्त शेषांश फल जोड़ने से अभीष्ट अंश होते हैं ।

ऐष्य पात में अ विन्दु से आगे च विन्दु से पीछे उन्हीं चालनांशों से अधिक या न्युन चन्द्रमा होगा । इस प्रकार क विन्दु से अ क या क ग तुल्य अंशों से क विन्दु से गत या ऐष्य चालनांश होते हैं । इस प्रकार गत या ऐष्य चालनांश = ५ शु० + $\frac{५\ शे०}{अशुद्ध}$ (अ क वा क ग) = ५ शु० + $\frac{५\ शे०}{अशु०} - ५\ ल = ५\left(शु + \frac{शे०}{अशु०} - ल\right)$ । अब कितनी घटिकाओं में चन्द्र चालन उपपन्न होगा तो अनुपात से चन्द्रगति में ६० घटी तो पूर्वागत चालनांश में तथा नक्षत्र भोग घटिका में ८०० कला तो ६० घटी में क्या ? से कलात्मक चन्द्रगति = $\frac{६० \times ८००}{नक्षत्र\ भोग}$ में ६० का भाग देने से अंशात्मक गति = $\frac{८००}{नक्ष\ भो०}$ तथा

$$तब\ \ चालन\ घटिका = \frac{६० \times ५ \times नक्ष०\ भो०\left(शु० + \frac{शे०}{अशु०} - ल\right)}{८००}$$

$$= \frac{३०० \times नक्षत्र\ भोग \left(शुद्ध + \frac{शे०}{अशुद्ध} - ल \right)}{८००}$$

$$= \frac{३\ नक्षत्र\ भोग \left(शुद्ध + \frac{शेष}{अशुद्ध} - ल \right)}{८}$$

= धन वा ऋण की उपपत्ति स्पष्ट है। उपपन्न है ॥११–१२॥

अविशुद्धहृता यमार्कनाड्यः १२२ प्राक् पश्चात् स्थितिरत्र पातमध्यात् ।
शुद्धाः क्वचिद चेत् षडंकाः संस्कार्याश्च तदग्रतस्त्रयोऽङ्काः ॥१३॥

मल्लारिः

अथ पातस्थितिकालमाह। अविशुद्धेनाङ्केन हृता भक्ता यमार्कनाड्यो द्वाविंशत्यधिकशतमितघटिकाः। यत् फलं ताभिघटिकाभिः पातमध्यात् पूर्वमग्रतश्च स्थितिः स्यात्। तावत्समयं पातस्य कालोऽस्त्येव। अत्र क्वचिद्यदा षडङ्का अपि वाणात् शुद्धास्तदाऽन्येऽपि त्रयोऽङ्का पूर्वोक्तरीत्या संस्कार्याः।

अत्रोपपत्तिः। स्थितिर्नाम मानैक्यखण्डतुल्यं यावत्क्रान्त्यन्तरं भवति तावत्पर्यन्तं पातोऽस्त्येव। अथ भाज्यः साध्यते। तत्र पञ्चदशभागानां कला ९०० यदि चन्द्रगतिप्रमाणेन ७९० एतास्तदा रविगतिप्रमाणेन ५९ का इति जाताः कलाः ६७।१३ तथा मानैक्यखण्डस्य मध्यमस्य कलाः ३२।१५ तत्र मानैक्यखण्डमेतत्कलागुण्यं जातो भाज्योऽपरपर्यायः। यदि यमांगराम-३६२ मितक्रान्त्या पञ्चदशभागकला ९०० लभ्यन्ते तदा मानैक्यखण्डतुल्यक्रान्त्या ३२।१५ का। चन्द्रगतिकलाभिः ७९०।३५ षष्टिघटिकाः ६०। तदाऽऽभिः कलाभिर्कि यदि यमांगराम-३६२ तुल्यभोगखण्डेनैतास्तदा अशुद्धेन खण्डेन काः। अयमनुपातो व्यस्तः। इच्छाह्रासे फले वृद्धेरपेक्षितत्वात्। तेनाशुद्धखण्डं हरः। यमांगरामा गुणः। पूर्वं हरश्च तयोर्नाशः। एवं जातो गुणत्रयघातो गुणः १७४१५००। हरश्चन्द्रगतिः। अशुद्धखण्डं च। चन्द्रगत्याऽपवर्त्ते कृते जातो भाज्यः २२०३। अयं यमांगरामखण्डेन पञ्चदशभागोत्पन्नेन। ततोऽन्योऽनुपातः। यदि यमांगरामानामयं भाज्यः २२०३। तदाऽऽचार्योक्तविंशतिमितानां किमिति जातो भाज्यः १२२। अस्याशुद्धाङ्को हरोऽस्त्यतोऽविशुद्धहृता यमार्कनाड्य इत्युपपन्नम्। इयं स्थितिरुभयतः समा। मानैक्यखण्डतुल्यान्तरस्य विद्यमानत्वात्। अत्र मानस्थितिमध्ये कृतं स्नानजपहोमादि अनन्तफलदं भवति। यत्र क्वचित् शरबाहुल्यात् षडङ्का अपि शुद्धास्तत्रान्ये त्रयः संस्कार्या इति प्रत्यक्षसिद्धम् ॥१३॥

विश्वनाथः

पातस्थितिकालमाह अविशुद्धेति। यमार्कनाड्यः १२२। अविशुद्ध-१७ हृताः फलं पातमध्यात् प्राक् पश्चात् स्थितिघटिकाः ७।१० पातमध्यात् ५३।५ पूर्वमाभिर्घटीभिः ४५।५५ प्रातप्रवेशः। रवौ घटी० पलेषु १५ निर्गमः। अथ षट्स्वपि अङ्केषु

शुद्धेष्वग्राङ्कसंस्कारं स्थितिघटिकानयनमाह्। शुद्धाः क्वचिदिति। बाणात् क्वचित् षडंकाः शुद्धास्तदा तदग्रतस्त्रयोऽङ्काः पूर्ववत् संस्कार्याः। तेभ्यः पूर्ववत् पातमध्यं साध्यम्॥१३॥

केदारदत्तः

१२१ में अशुद्ध अंक से भाग देते हुए लब्ध घटी तुल्य पात मध्य काल से पूर्व और पश्चात् में पात की स्थिति रहती है। दैवात् शर में ६ क्रान्ति अंक शुद्ध हो जाँय तो अग्रिम ३ अंकों का संस्कार पूर्व रीति से करना चाहिए॥१३॥

उपपत्ति—तावत्समत्वमेव क्रान्त्योर्विवरं—इत्यादि भास्कराचार्य के अनुसार आचार्यने मानैक्यार्धमान ३२ कला तुल्य माना है। उसे ६० से भाग देकर १० से गुणा कर यह फल स्पष्ट क्रान्ति का सजातीय हो जाता है। जो $\frac{३२ \times १०}{६०} = \frac{१६}{३}$। अनुपात से अशुद्ध खण्ड में चन्द्र चालनांश ५ अंश तो मानैक्यार्ध में क्या ? $= \frac{५ \times १६}{३ \times \text{कशुद्ध}}$ के तुल्य है। चालन घटी ज्ञान के लिए स्वल्पान्तर से चन्द्र मध्य गति और ६० घटी अनुपात से चालन घटिका =

$$\frac{६० \times ६० \times १६}{७९० \times ३ \times \text{अशुद्धखं०}} = \frac{२ \times ६० \times ५ \times १६}{७९ \times \text{अशुद्ध}} = \frac{९६००}{७९ \times \text{अशुद्ध}} = \frac{१२१\frac{४१}{७९}}{\text{अशुद्ध}} = १२२$$

स्वल्पान्तर से उपपन्न होता है॥१३॥

षड्भार्कभच्युतरविस्त्विह सायनाब्जो-
ऽथार्के घटीसमकलाश्चलनं त्वथेन्दोः।
भुक्त्यंशका भघटिकाप्तखखाष्टयः स्यु-
स्तच्चालितापमसमत्वमिह प्रतीत्यै॥१४॥

मल्लारिः

अथात्र सूर्यात् चन्द्रज्ञानं वदति। व्यतीपाते पाते जाते रविः षड्राशिभ्यः शुद्धः सन् सायनचन्द्रो भवति। वैधृते पाते जाते रविर्द्वादशराशिभ्यः शुद्धः सायनश्चन्द्रो भवति। अथ सूर्यघटीसमकलाश्चालनं देयम्। अथ भघटीभिर्नक्षत्रसर्वघटीभिराप्ता भक्ताः खखाष्टयोऽष्टशतानि इन्द्रोश्चन्द्रस्य भुक्त्यंशका गतिभागाः स्युः। तया गत्या चालितो यश्चन्द्रः। तस्यापमः शरसंस्कृतः सूर्यापमः केवल एव। अनयोः समत्वं प्रतीत्यै स्यात्।

अत्रोपपत्तिः। अत्र व्यतिपातपाते सायनरविशशियोगः षड्राशितुल्यः। वैधृते द्वादशराशितुल्यः। अतः षड्द्वादशराशिभ्यः शोधितः सायनो रविः सायनश्चन्द्रः स्यादिति प्रत्यक्षम्। पातकालीनसूर्यकरणार्थं पातघटीतुल्या एव कलाः स्वल्पान्तरत्वात् रवौ देया इत्युक्तम्। भघटीभक्ताः खखाष्टौ चन्द्रगतिः स्यादिति प्रत्यक्षोपपत्तिः। यदि सर्वर्क्षघटीभिरष्टशतकलाः ८०० तदा षष्टिघटीभिः का इति फलं चन्द्रगतिकलाः।

ताः षष्टिभक्ता भागाः स्युः। तेन षष्टितुल्ययोर्गुणहरयोर्नाशे भघटिकाप्तखखाहृयश्चन्द्रगत्यंशा इति एवं तत्र रविचन्द्रयोः क्रान्तिसाम्यं स्यादेवेति ॥१४॥

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन।
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्य पाताधिकारः परिपूर्तिमागात् ॥१४॥

इति श्री ग्रहलाघवस्य टीकायां पाताधिकारश्चतुर्दशः।

विश्वनाथः

अथ क्रान्तिसाम्यकाले सूर्याच्चन्द्रज्ञानमाह षड्भार्कादिति। अस्मिन् पातमध्ये व्यतीपातपाते सायनरविः षड्राशिभ्यः शुद्धः सन् सायनचन्द्रो भवति। वैधृतिपाते सायनरविर्द्वादशराशिभ्यः शुद्धः सन् सायनचन्द्रो भवति। प्रकृते मध्यक्रान्तिसाम्यकाले सायनार्कः १।२०।३२।३१ वैधृतिपातत्वादयं द्वादशभच्युतो जातः सायनचन्द्रः १०।९।२७।२९ घटीसमकलाभिः २७।१७ चालितोऽर्कः १।२१।३९।४८ भघटिका-६२।५५प्तखखाहृयः। चन्द्रभुक्त्यंशाः १२।४२।५५ एतैश्चालितश्चन्द्रः १०।२३।४३।० स्वगत्या चालितो राहुः ०।२५।७।३ रविक्रान्तिः १८।३०।५७ चन्द्रक्रान्तिः १३।५०।१० विराहुचन्द्रः ९।२८।३५।५७ पञ्चघेत्यादिमा शरो दक्षिणः ४४।५५।० खैकादिके इत्यादिना हारः ४१।३९।१९ स्पष्टः शरः ४३।५०।१९ अयं दसभक्तो जातोंऽशकादिः ४।२३।१ अनेन चन्द्रक्रान्तिरेकदिक्का युक्ता जाता स्पष्टा १८।१३।११ अत्र कलासु किञ्चिद्वैसादृश्यं दृश्यते स्वल्पान्तरत्वाददोषः ॥१४॥

इति पाताधिकारोदाहरणम्।

केदारदत्तः

व्यतीपात योग साधन में ६ राशि में सायन सूर्य घटाकर तथा वैधृत पात में १२ राशि में सायन सूर्य को कम करने से सायन चन्द्रमा हो जाता है। घटी तुल्य कला से चन्द्रमा को चालित करना चाहिये। तथा ८०० में भभोग घटी से भाग देने से अंशादि लब्धि चन्द्रमा की गति होती है। उससे अभीष्ट घटी से चालन पात मध्य काल में चन्द्र स्पष्टा क्रान्ति के साथ रविक्रान्ति साम्य प्रतीत्यर्थ देखना चाहिए ॥१४॥

उपपत्तिः—व्यतीपात में सा० र + सा० च० = ६ राशि। सा० चं० = ६ रा० − सा० र० इसी प्रकार वैधृति में सायन चन्द्र = १२—सायन सूर्य। स्वल्पान्तर से सूर्य गति= ६० कला मानी गई है। अनुपात से इष्ट घटी = $\frac{\text{६० × इष्ट घटी}}{\text{६०}}$ इष्ट घटिका। तथा भभोग घटी में ८०० कला तो ६० घटी में $\frac{\text{८०० × ६०}}{\text{भभोग}}$ में ६० से भाग देने से $\frac{\text{८०० × ६०}}{\text{भ० × ६०}} = \frac{\text{८००}}{\text{भभोग}}$ = चन्द्र गत्यंश उपपन्न होते हैं ॥१४॥

गर्गगोत्राय स्वनामधन्य कूर्माञ्चलीय ज्योतिर्विद्वर्यश्री हरिदत्त जी के आत्मज अल्मोड़ा मण्डलीय जुनायल ग्रामज पर्वतीय श्री केदारदत्त जोशी (वर्त्तमान काशीस्थ नलगाँव (नगुवा) कृत ग्रहलाघव पाताधिकार की उपपत्ति सहित केदारदत्तीय व्याख्या सम्पूर्ण ॥

अथ पञ्चाङ्गचन्द्रग्रहणानयनाधिकारः

मासाः स्वार्धयुतास्तिथेर्दिनाद्यं तावत्यो घटिकाश्च माससंघात् ।
त्र्यंशाढ्याः सहितं द्वयत्रयाभ्यां चक्रघ्नाक्षनवाङ्गवर्गयुक्तम् ॥१॥

मल्लारिः

अथ पञ्चाङ्गानयनाधिकरो व्याख्यायते। इष्टमासीयो मासगणो यस्त एव मासाः। ते स्वार्धयुताः तिथ्यादेर्दिनाद्यं वाराद्यं स्यात्। तावत्य एव घटिकाः। मासगणात् त्र्यंशाढ्याः। ततस्तत् द्वयत्रयाभ्यां सहितं कार्यम्। चक्रेग गुणा अक्षाः पञ्च। नव प्रसिद्धाः। अङ्गवर्गः षट्त्रिंशत्। चक्रगुणेनानेन ध्रुवेण युक्तं तत्कार्यमित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। अत्र तिथ्यानयनार्थं मध्यमतिथिवाराद्यं साध्यं। तत्र चान्द्रमासप्रमाणम् २९।३१।५० इदं सप्ततष्टं जातं वाराद्यम् १।२१।५० अत्रानुपातः। यद्येकमासेनेदं तदेष्टमासगणेन किमिति। अतो मासगणेनानेन गुण्यः। तत्र खण्डगुणेन मासगणतुल्या एव वारा एकं खण्डम्। द्वितीयखण्डम् ०।३० अतः सार्धयुक्ता इति घटिका अपि तावत्यः। अन्यत् खण्डम् ०।२० अतस्त्र्यंशाढ्या इति। अत्र ग्रन्थारम्भे तिथिवारद्वयं घटित्रयं च। अतस्तद्युक्तमिति। एकचक्रे तिथिवाराद्यम् ५।९।३६ यद्येकचक्रेणेदं तदेष्टचक्रेण किमिति। अतश्चक्रघ्नाक्षनबांगवर्गयुक्तमित्युपपन्नम् ॥१॥

विश्वनाथः

अथ पञ्चांगचन्द्रग्रहणानयनम्। तत्र तिथिसाधनमाह मासा इति। शाके १५३४ कार्त्तिकशुक्ल-१६ गुरौ मासगणः ५७। उदाहरणम्। मासाः ५७ स्वार्धं-२८।३० युताः। जातं तिथिदिनाद्यम् ८५।३० एतत्तुल्यघटिका अधःस्थापिताः ८५।१५।३० एता घटिका माससङ्घ-५७त्र्यंशे १९ योजिता नाड्यः ८५।१४।३० यथाक्रममूर्ध्वाधः स्थाने द्वयत्रयाभ्यां सहितम् ८७।१३७।३० इदं चक्र-८घ्नाक्षनवांगवर्ग-४१।१६।४८ युक्तम्। १२८।१५४।१८ इदं घटिकास्थाने षष्टिभक्त वारस्थाने सप्ततष्टं जातम् ४।३४।१८ इदं देशान्तरपलैः ४८ सहितं जातं कार्तिकशुक्लप्रतिपदि वाराद्यम् ४।३५।६ ॥१॥

केदारदत्तः

मासगण में मासगण का आधा जोड़कर जो हो उसके तुल्य दिनादिक और मासगण के तृतीयांश युत स्वार्धयुत मासगण तुल्य घटी के तुल्य तिथि का दिनादिक होता है। इसमें २ दिन और तीन घड़ी तथा चक्र गुणित ५।९।३६ तुल्य दिनादिक जोड़ने से अभीष्ट तिथि का दिनादिक होता हैं ॥१॥

उपपत्तिः—एक चान्द्रमासान्तः पाती सावन दिन संख्या = २९।३१।५० को ७ से तष्टि करने से दिनादिक १।३१।५० होता है। $= (१ + \frac{१}{२})$ दिन $+ (१ + \frac{१}{२})$ घटी $+ \frac{१}{३}$ घटी

अनुपात से इष्टमास में इष्टमासीय दिनादिक $\left(१\ मा० + \frac{मास}{२} + मास + \frac{मास}{२} + मास\ \frac{१\ घटी}{३}\right)$ ग्रन्थारम्भ कालीन २।३ क्षेप जोड़ने से तथा १ चक में (५।९।३६) तो अभीष्ट चक्र में चक (५।९।३६) जोड़ने से अभीष्ट कालीन तिथि वारादिक हो जाता है ।।१।।

खं सप्ताष्टयमा-०।७।२८श्च चक्रनिघ्ना नागाम्भोधिघटीयुता भशुद्धाः ।
द्वाभ्यां धूर्जटिभिर्विनिघ्नमासैर्युक्ता भध्रुवको भपूर्वकः स्यात् ।।२।।

मल्लारिः

अथ नक्षत्रध्रुवकं साधयति । खं शून्यम् । सप्त घटिकाः । अष्टविंशतिः पलानि । एते चक्रनिघ्नाः कार्याः । ततो नागाम्भोधि-४८ घटीभिर्युक्ताः कार्याः । ततस्ते सप्तविंशतेः शोध्याः । द्वाभ्यां धूर्जटिभिर्विनिघ्ना गुणिता ये मासाः । तैर्युक्ता भपूर्वो नक्षत्राद्यः । नक्षत्रध्रुवकः स्यादित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः । अत्रैकमासे नक्षत्रध्रुवकः सप्तविंशतितष्टः २।११ अतो लासा अनेन गुण्या इति । तथैकस्मिन् चक्रे नक्षत्रध्रुवकश्चक्रशुद्धः ७।२८ अतोऽयं चक्रगुण इति । क्षेपश्च चक्रशुद्धोऽयम् ०।४८ अतो नागाम्भोधिघटीयुता इति स्वचक्रशुद्धत्वात् भशुद्ध इत्युपपन्नम् ।।२।।

विश्वनाथः

अथ नक्षत्रध्रुवकमाह खमिति । खसप्ताष्टयमा' ०।७।२८ चक्र-८ निघ्नाः ०।५९।४४ नागम्भोधि—४८ घटीयुताः १।४७।४४ भ-२७ शुद्धाः २५।१२।१६ मासा ५७ द्वाभ्यां २ धूर्जटिभि-११ र्विनिघ्नाः १२४।२७ एतैर्भशुद्धा २५।११।१६ युताः १४९।३९।१६ इद सप्तविंशति-२७ तष्टं जातो नक्षत्रपूर्वको नक्षत्रध्रुवकः १४।३९।१६ ।।२।।

केदारदत्तः

०।७।२८ को चक्र से गुणा कर गुणनफल में ४८ घटी जोड़कर उसे २७ में घटाने से शेष में २।११ × मासगण जोडने से अक्षत्रादिकम ध्रुव (नक्षत्र – घटी पल) होता है ।।२।।

उपपत्तिः—एक चक्र में चक्र शुद्ध नक्षत्र ध्रुव का मान = ०।७।२८ अभीष्ट चक्र में चक्र ध्रुव × १ चक्र नक्षत्र ध्रुव, अभीष्ट नक्षत्र मान होगा । ग्रन्थारम्भ कालीन नक्षत्र ध्रुव घटिकादिमान = ४० जो २७ से शुद्ध है । तथा एक महीने में २७ शुद्ध नक्षत्र ध्रुव = २।११ को इष्ट मास में गुणा करने से गुणनफल उक्त में जोड़ने से नक्षत्र पूर्वक नक्षत्र ध्रुव होता है ।।२।।

स्वर्गाः शरा नव च चक्रहता द्विनिघ्न-
मासान्विता द्विहृतमासयुता घटीषु ।
पिण्डो भवद्युगकुभिः खचरैः समेत-
स्तष्टो गजाश्विभिरिदं भवतीह चक्रम् ।।३।।

मल्लारिः

अथ पिण्डं साधयति। स्वर्गा एकविंशतिः। शराः पञ्च। नव प्रसिद्धाः। एते चक्रेण गुणनीयाः। ततो द्विगुणमासगणेन युक्ताः कार्याः। पुनर्घटीषु द्विभक्तमासगणेन युक्ताः कार्याः स पिण्डो भवेत्। युगकुभिः चतुर्दशभिरूर्ध्वस्थाने खचरैर्नवभिर्घटीषु समेतो युक्तः कार्यः। ततो गजाश्विभिरष्टविंशत्या तष्टः कार्यः। तच्चक्रं भवति। अत्र पिण्डे अष्टविंशतिमितं चक्रम्।

अत्रोपपत्तिः। पिण्डी नाम चन्द्रमन्दकेन्द्रम्। तस्य चक्रमध्ये ध्रुवोऽयं २१।५।९ अतोऽयं चक्रगुण इति। ततो मासध्रुवोऽयं २।०।३० अतो द्विघ्नमासान्विताः घटीषु द्विहृतमासयुता इति 'युगकु' इत्यादिक्षेपोऽतस्तद्युक्तः कार्यः। अष्टाविंशतिचक्रत्वात् तष्टः कार्य इत्युपपन्नम् ॥३॥

विश्वनाथः

अथ पिण्डसाधनमाह स्वर्गा इति। स्वर्गाः शरा नव च २१।५।९ चक्र-८हता १६८।४१।१२ द्विनिघ्नमासा-११४। न्विताः २८२।४१।१२ द्विहृतमासयुता घटीषु। मासा ५७ द्विभक्ताः फलम् २८।३० अनेन घटिका युताः २८३।९।४२ ऊर्ध्वस्थाने चतुर्दशभिः १४। घटीस्थाने खचरैः ९ समेताः २९७।१८।४२ ऊर्ध्वाङ्के गजाश्वि २८-तष्टे जातः पिण्डः १७।१८।४२ अत्र पिण्डेऽष्टाविंशतिमितं चक्रम् ॥३॥

केदारदत्तः

चक्र गुणित २१।५।९ में द्विगुणित मासगण और मासगण की अधोतुल्य घटी जोड़ने से जो हो इस योगफल में १४।९ जोड़ने से योगफल में २८ का भाग देने से शेष तुल्य चन्द्रमा का पिण्ड होता है ॥३॥

उपपत्तिः—चन्द्रमन्द केन्द्र = पिण्ड। एक मास में ध्रुव = $\frac{\text{घटी पल}}{२।०।३०}$ = (२।$\frac{१}{२}$ घटी)

इसे मासगण से गुणा करने से $\left(२ \text{ मास} + \frac{\text{मास } १}{२}\right)$ = अ। अतः अ + ग्रन्थारम्भ कालिक क्षेप = १४।९ से भी युत होने पर पिन्ड या अपर नाम चन्द्रमन्द केन्द्र हो जाता है। उपपन्न है ॥३॥

शिवदशवसुषट्काब्ध्यश्विनाड्योऽश्विभात् स्वं
खगुणशरनगांकाशेशदिग्दिग्नवाष्टौ।
रसगुणखमिनर्क्षाद्रादितेयादृणं स्यु-
र्द्वियुगरसगजांकाशेश्वरा वैश्वतः स्वम् ॥४॥

मल्लारिः

अथ सूर्यनक्षत्रात् फलघटिका आह। अध ११।१०।८।६।४।२ पुत्र ०।३।५।७।९।

१०।११।१०।१०।९।८।६।३।० उषाध २।४।६।८।९।१०।११ अश्विनीघटिका एताः सूर्य-घटिका धनं स्युः क्रमात् शिवादयः। तथा आदितेयात् पुनर्वसुत एताः खमुख्या घटिकाः ऋणम्। तथा विश्वत उत्तरापाढातो द्वियुगादयो घटिका धनं स्युरिति।

अत्रोपपत्तिः। सूर्यस्य प्रतिनक्षत्रं सुखार्थं मन्दफलकलानां गत्यन्तरवशतो घटिकाः कृत्वा सिद्धाः पठिताः। तासां धनर्णोपपत्तिः। अश्विनीमारभ्य पुनर्वसुपर्यन्तं रविमन्दकेन्द्रं मेषादावतस्तत्र धनम्। एवं पुनर्वसुत उत्तरापाढपर्यन्तं केन्द्रं तुलादौ भवत्यतोऽत्र ऋणम्। उत्तराषाढमारभ्याश्विनीपर्यन्तं केन्द्रं मेषादावतस्तत्रापि धन-मित्युपपन्नम्। यत् सूर्ये धनं तच्चन्द्रे ऋणं पुनर्भोग्यकरणे तदधिकमेव भवति इति सूर्ये यादृशं फलं तादृशमेव तिथावपीत्युपपन्नम् ॥४॥

विश्वनाथः

अथ सूर्यनक्षत्रात् घटीफलमाह शिवदशेति। अश्विनीनक्षत्रादेताः सूर्यघटिकाः क्रमात् शिवादयो धनं स्युः ११।१०।८।६।४।२ तथा आदितेयात् पुनर्वसुतः खमुख्या घटिका ऋणं स्युः ०।३।५।७।९।१०।११।१०।१०।९।८।६।३।० तथा वैश्वत उत्तराषाढतो द्वियुगादयो घटिका धनम् २।४।६।८।९।१०।११ ॥४।

केदारदत्तः

अश्विनी से आर्द्रा तक क्रमशः ११।१०।८।६।४।२ घटी, धन, तथा पुनर्वसु से १४ नक्षत्र पूर्वाषाढ़ा तक, ०।३।५।७।९।१०।११।१०।१०।९।८।६।३।० घटी ऋण, तथा उत्तराषाढ़ा से ७ नक्षत्र रेवती तक २।४।६।८।९।११।११ घट्यात्मक रवि मन्द फल होता है ॥४॥

उपपत्तिः—प्रत्येक नक्षत्र के अन्त में सूर्य के मन्दफल की साधनिका कर उनको घटिकादि में माप कर आचार्य ने उक्त अंक पढ़े हैं। यथा अश्विनी के अन्त से स्पष्ट सूर्य = ०।१३।२०'।०" सूर्य चन्द्र स्पष्टाधिकारोक्त विधि से ०।१३।२०।० सू० का मन्द फल = ११८ कला होती हैं। कला की घटिका त्रैराशिक से यदि रविचन्द्रगत्यन्तर में ६० घटी तो उक्त मन्दफल कला में $\frac{६० \times ११८}{७९०।३५ - ५९।८}$ स्वल्पान्तर से ११ अंक उपपन्न होता है।

तथा अश्विनी से आर्द्रा तक सूर्य की स्थिति में मन्द केन्द्र मेषादिक (यथा २।१८।०।० − ०।१३।२०।० = २।१४।४०।०....) फल धन तथा पुनर्वसु से पूर्वाषाढ़ा तक मन्दकेन्द्र तुलादिक होने से मन्दफल ऋण तथा उत्तराषाढ़ा से रेवती तक मन्दकेन्द्र मेषादिक होने से मन्द फल धन होता है समीचीन है ॥४॥

वेदघ्नेष्टतिथिर्युतार्कभागा योज्या भध्रुवनाडिकासु तत् स्यात्।
सूर्यर्क्षं विगतं ततोऽर्कजाख्यनाडीहीनयुतं स्फुटं भवेत् तत् ॥५॥

मल्लारिः

अथ सूर्यनक्षत्रज्ञानमाह। चतुर्गुणा इष्टावर्त्तमानतिथिः स्वार्कभागयुता तिथेर्द्रा-

दशांशेन युता। ततः सा नक्षत्रध्रुवघटीषु योज्या तद्‌गतं सूर्यभं सावयवं च मध्यमं स्यात्। ततस्तत् अर्कजाख्या इदानीमुदिता याः सूर्यनक्षत्रघटिकास्ताभिर्धनर्णत्वेन सत् स्फुटं स्यात्।

अत्रोपपत्तिः। प्रतितिथिनक्षत्रध्रुवसूर्यनक्षत्रयोर्घटिकाचतुष्टय पञ्चपलाधिकमन्तरम्। अतोऽनुपातः। यद्येकया तिथ्येदं तदेष्टतिथिभिः किमिति। अत्र खण्डम् ४। अन्यत् ०।५ अतो वेदघ्नेष्टतिथिर्द्वादशांशयुक्तेत्युपपन्नम्। इदं भध्रुवे योज्यं सूर्यनक्षत्रं स्यादेव तन्मध्यमतः सूर्यघटीभिर्मन्दफलोत्पन्नाभिः संस्कृतं स्पष्टं स्यादित्युपपन्नम् ॥५॥

विश्वनाथः

अथ सूर्यनक्षत्रसाधनमाह। वेदघ्नेष्टेति। इष्टतिथिः १५। वेद-४ घ्नः ६०। स्वस्वादशांशेन ५ युतः ६५। भध्रुव-१४।३९।१६ नाडिकायोजितो जातं गतं सावयवं सूर्यर्क्षम् १५।४४।१६ अत्र रविर्विशाखानक्षत्रे वर्त्तते तथाऽर्कजाख्या घट्यः ९ ऋणम्। अथार्कजाख्यघटीनां स्फुटीकरणम्। विशाखाघटी ९ अनुराधाघटी-८ नामन्तरम् १। अनेन सूर्यनक्षत्रघट्यादि ४४।१६ गुणितं जातं तदेव ४४।१६ षष्टिभक्तं फलम् ०।४४ अग्रिमस्य क्षयत्वादृणम्। अनेन संस्कृता जाताः स्फुटार्कजा घट्यः ९ ऋणसंज्ञकाः ८।१६ आभिः सूर्यनक्षत्रं १५।५४।१६ हीनं जातं स्पष्टं सूर्यनक्षत्रम् १५।३६।० ॥५॥

केदारदत्तः

मध्यम मान से, सूर्य का गत नक्षत्र ज्ञात किया जा रहा है कि चतुर्गुणित इष्ट तिथि में अपना द्वादशांश जोड़ने से जो घटी हो उसमें ध्रुव घटी जोड़ने से सूर्य का गत नक्षत्र ज्ञात होता है। इस फल में पूर्व श्लोक ४ में कथित नक्षत्र घटीफल ऋण या धन जैसा हो तदनुसार घटाने एवं जोड़ने से स्पष्ट सूर्य का नक्षत्र ज्ञात होता है ॥५॥

उपपत्तिः—रवि के पूर्वोक्त पाक्षिक चालन में १५ का भाग देने से एक तिथि सम्बन्धी स्फुट रवि = ५८'।१२ यहाँ पर रवि चन्द्रमा का गत्यन्तर स्वल्पान्तर से ८०० मान कर एक तिथिज रवि सम्बन्धी घटिका $= \frac{(५८'।१२'')६०}{८००} = ४\frac{२९२}{८००} = ४ + \frac{४ \times ७३}{८००}$

$= ४ + \frac{४}{\frac{८००}{७३}} = ४ + \frac{४}{११}$ (स्वल्पान्तर से) आचार्य ने $४ + \frac{४}{१२}$ मान स्थूल स्वल्पान्तर ग्रहण किया है। इसे इष्ट तिथि से गुणा करने से इष्ट तिथि सम्बन्धी सूर्य से उत्पन्न घटिका $= ४ \times$ इष्ट तिथि $\frac{४ \text{ इष्ट तिथि}}{१२}$ उपपन्न होता है ॥५॥

पिण्डे युक्ततिथी तदाद्यमनुषु स्वं शेषपिण्डेष्वृणं
विश्वेन्द्वोश्चशरा दशार्कयमयोः पञ्चेन्दवस्त्रीशयोः।

गोचन्द्रा दशवेदयोर्यमयमा पञ्चांकयोः स्युर्जिनाः
षड्वस्वोश्च नगे तु तत्त्वघटिकाः शक्रे च खं पिण्डजाः ॥६॥

मल्लारिः

अथ पिण्डफलमाह। वर्तमानतिथियुक्ते पिण्डोर्ध्वाङ्के कृते सति एता घटिकाः स्युः। विश्वेन्द्वोः शराः त्रयोदशतुल्ये एकतुल्ये वा पिण्डेशराः पञ्चघटिकाः। तत्रैव अर्कयमयोः पिण्डयोर्दश। त्रीशयोः पञ्चेन्दवः। दशवेदयोर्गोचन्द्राः। पञ्चाङ्कयोर्यमयमाः। षड्वस्वोर्जिनाः। नगे तत्त्वघटिकाः। शक्रे खम्। एताः पिण्डघटिकाः प्रथमचतुर्दशमध्ये धनम्। अग्रे ऋणमित्यर्थः। परं पिण्डयुक्ततिथिमष्टाविंशतेः प्रोह्य शेषात् फलं ग्राह्यम्।

अत्रोपपत्तिः। अत्र पिण्डो नाम चन्द्रमन्दकेन्द्रम्। तत्र प्रतिपिण्डं चन्द्रस्य मन्दफलानि प्रसाध्य गत्यन्तरकलाप्रमाणेन तेषां घटिकाः कृत्वा सिद्धाः पाठपठिताः। पिण्डापरपर्यायचन्द्रकेन्द्रमुच्चोनो ग्रहः केन्द्रमिति प्रकारेण भवति। अतस्तुलादौ स्वमजादौऋणमिति यद्यपि तथापि भोग्यकरणे चन्द्रमन्दफलं व्यस्तं भवतीति मेषादि षड्भे केन्द्रे फलं धनम्। अतश्चतुर्दशपिण्डमध्ये धनम्। तुलादावृणमतोऽग्रे ऋणमित्युपपन्नम् ॥६॥

विश्वनाथः

अथ पिण्डफलमाह। पिण्डेति। इष्टतिथियुक्ते पिण्डोर्ध्वाङ्के कृते सति एता घटिकाः स्युः। विश्वन्द्वोः १३।१ शरः ५ : त्रयोदशतुल्ये रूपतुल्ये वा सतिथिपिण्डोर्ध्वाङ्के पञ्चघटिका ग्राह्याः। तथैवार्कयमयोः १२।२ दश। त्रीशयोः ३।११ पञ्चेन्दवः १५। दशवेदयोः १०।४ गोचन्द्राः १९। पञ्चाङ्कयोः ५।९। यमयमाः २२। षड्वस्वोः ६।८ जिना २४। नगे तत्त्वघटिकाः २५। शक्रे १४ खम् ०। एताः पिण्डघटिकाः। अथ आद्यमनुषु १४ स्वम्। शेषपिण्डेषु ऋणमिति। तद्यथा। एकमारभ्य चतुर्दशपर्यन्ततिथियुक्तपिण्डोर्ध्वाङ्के सति एता घटिका धनसंज्ञा ज्ञेयाः। ततोऽधिकेऽष्टाविंशतिपर्यन्तमृणसंज्ञकाः। तद्यथा। तिथियुक्तपिण्डोर्ध्वाङ्कश्चतुर्दशाधिकः। अष्टादिशतिमध्ये सावयवः शोध्यः। शेषस्योर्ध्वाङ्के या घाटकाः प्राप्तास्ता ऋणसंज्ञका ज्ञेयाः। शेषपिण्डे ऋणमित्युक्तत्वात्। अष्टविंशत्यधिकैऽष्टाविंशत्या तष्टाः कार्याः। शेषस्योर्ध्वाङ्के या घटिकाः प्राप्तास्ता धनसंज्ञका ज्ञेयाः। प्रथमचतुर्दशमध्ये स्थितत्वात् पिण्डः १७।१८।४२ इष्टतिथि-१५युक्तः ३२।१८।४२ चक्राधिकत्वादष्टाविंशतिभिस्तष्टः कृतः ४।१८।४२ अत्र दशवेदयोगोचन्द्रा इत्युक्तत्वात् पिण्डघट्य एकोनविंशतिः १९। ऊर्ध्वाङ्कस्य प्रथमचतुर्दशमध्ये स्थितत्वाद्धनम्। अथ पिण्डघटोस्फुटीकरणम्। अग्रिमपिण्डघटयः २२। आसामन्तरम् ३। अनेन पिण्डाधः स्थघटिकादि १८।४२ गुणितम् ५६।६ षष्टिभक्तं फलम् ०।५६ अग्रिमस्याधिकत्वाद्धनम्। अनेन संस्कृता जाताः स्पष्टाः पिण्डघटिका धनसंज्ञकाः १९।५६ ॥६॥

केदारदत्तः

पिण्ड के प्रथम अंक में वर्त्तमान तिथि जोड़ने से यदि १ से १४ तक हो तो फल धन इससे आगे होने से ऋण समझना चाहिए। विशेषता यह कि योग यदि १४ से अधिक होने पर २८ में घटाकर जो शेष तदनुसार ही फल साधन करना चाहिए।

इस प्रकार १ और १३ में ५ घटी २।१३ में १०, ३।११ में १५ घटी ४।१० में १९ घटी, ५।१९ में २२ घटी, ६।८ में २४ घटी और ७ में २५ घटी और पिण्ड यदि १४ हो तो ० शुन्य घटी फल होता है।

उपपत्तिः—चन्द्र मन्द केन्द्र का नाम पिण्ड शब्द से ज्ञात करना चाहिए। यतः १२ राशियों में २८ पिण्ड पढ़े हैं। अनुपात से २८ पिण्ड में ३६०° तो इष्ट पिण्ड में $\frac{३६० \times इष्टपिण्ड}{२८}$ = १२°।५२′ स्वल्पान्तर से १३° होता है। एक तिथि में चन्द्र मन्द केन्द्र $= \frac{७९०।३५ - ६।४१'}{६०}$ = १३° स्वल्पान्तर से अर्थात् एक-एक तिथि में एक-एक पिण्ड वृद्धि होती है। ६ राशि में १४ पिण्ड होते हैं यहाँ पर प्रथम तेरहवें दूसरे बारहवें के भुजांश की तुल्यता से पिण्ड घटिका मान भी तुल्य होते हैं। अर्थात् मेषादि केन्द्र में १४ एवं तुलादि केन्द्र में १४ एवं २८ पिण्ड सिद्ध होते हैं।

यहाँ पर चन्द्रमा में मन्दोच्च कम करने से केन्द्र संज्ञा कही जाने से मेषादि केन्द्र में फल ऋण एवं तुलादि में फल धन समझना चाहिए। तथापि तिथि फल घटिका साधन में विपरीत से मेषादि में धन एवं तुलादि में ऋण समझना चाहिए।

पूर्ववत् प्रत्येक पिण्ड का चन्द्रमन्द फल साधन कर फल से जायमान घटिकादि काल ज्ञात कर ५, १०, १५····अंक उपपन्न हो जाते हैं ॥६॥

वारेषु तिथिर्देया हेया नाडीषु जायते मध्या।
रविजापिण्डफलाभ्यां सुसंस्कृता स्पष्टतां याति ॥७॥

मल्लारिः

अथ स्पष्टतिथिवारादिकमाह। यदानीतं मासगणात् तिथिवाराद्यं तस्य वारे वर्त्तमानतिथिर्देया। नाडीषु सैव तिथिर्देया न्यूनांकर्त्तव्या सा मध्या स्यात्। सा रविजाभिर्घटीभिस्तथा पिण्डघटीभिः संस्कृता सती स्पष्टतां याति स्पष्टा स्यादित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। अत्र तिथेर्मध्यमं वाराद्यम् ०।५९।४ इदं तिथिगुणितं वारे योज्यम्। अतोऽत्र वारे तिथिर्युक्ता घटीषु न्यूनीकृता फलंचतुष्टयं स्वल्पान्तरत्वात् त्यक्तं तन्मध्यमं तिथिवाराद्यं सूर्यचन्द्रमन्दफलघटिकाभी रविजापिण्डजासंज्ञाभिः संस्कृतं स्पष्टं स्यादित्युपपन्नम् ॥७॥

विश्वनाथः

अथ तिथिस्पस्टीकरणमाह वार इति। वारादिकम् ४।३५।६ वारास्थिति-१५

युक्ताः १९। नाडीषु ३५ हीनास्तथा कृते जातम् १९।२०।६ वारे सप्ततष्टा जाता मध्यमा तिथिः ५।२०।६ रविनाडी ८।१६ हीनाः ५।११।५० पिण्डघटी १९।५६ युक्ता जाता स्पष्टा तिथिः ५।३१।४६ ।।७।।

केदारदत्तः

पूर्व साधित वारादि के स्थान के वारा स्थान में इष्ट तिथि जोड़ने घटी स्थान में १५ तिथि घटाने से मध्यम तिथि हो जाती है। इसमें रविफल घटी और पिण्ड फल घटी के संस्कार से स्पष्ट तिथि साधन होता है।

उपपत्तिः—भास्कराचार्य के गोलाध्यायानुसार 'अंकयमा कुरामाः पूर्णेषवस्तत्कुदिन प्रमाणम्' से एक चान्द्रमास में २९।३१।५० सावन दिनादिक = होते हैं। अतः एक तिथि में $=\frac{२९।३१।५०}{३०}$ = ०।५९। ४ स्वल्पान्तर से ४ पल का त्याग करने से तिथि का सावनमान= दिन घटी ०।५९ = १ दिन – १ घटी, अनुपात से इष्ट तिथि सम्बन्धी दिनादिक=१ दिन × इष्ट तिथि – इष्ट तिथि × १ घटी यह मध्यममान से उपपन्न होता है। अतः यहाँ रविफल घटी, एवं पिण्ड फल घटी संस्कार आवश्यक है। उपपन्नम् ।।७।।

स्याद्भं केवलयोस्तिथिध्रुवभयोर्योगे तिथेर्नाडिका
भुक्ता व्यङ्गलवा निघ्नतिथिना व्यस्तार्कजाः संस्कृताः।
नाडीभिर्ध्रुवभस्य चेन्न वियुतास्तद्धीनषष्ट्यान्विताः
सैकं भं घटिका वियत् षडधिकाः षष्ट्यूनिता व्येकभम् ।।८।।

मल्लारिः

अथ नक्षत्रानयनं करोति। केवलयोस्तिथिध्रुवभयोर्योगे सप्तविंशतितष्टे भं नक्षत्रं स्यात्। तिथेर्नाडिका व्यङ्गलवः केवलतिथिषडंशहीनो यो द्विनिघ्नतिथिस्तेन युक्ताः कार्याः। व्यंगलवश्चासौ द्विनिघ्नतिथिश्चेति विग्रहः। व्यंगलवो द्वाभ्यां निघ्नः स चासौ तिथिश्चेति तत्पुरुषगर्भकर्मधारयो वा। ततो व्यस्ताभिर्धनर्णविपरीताभिरर्कजाभिर्घटीभिः संस्कृताश्च ताः कार्याः। ततो ध्रुवभस्य नक्षत्रध्रुवस्य नाडीभिर्वियुताः कार्याः। चेन्न भविष्यन्ति तदा तद्धीनषष्ट्या ता अन्विताः कार्याः। एवं कृते सति भं नक्षत्रं सैकं कर्त्तव्यम्। घटिकाश्चेद्वियत्षड्भ्यः षष्ट्या अधिकाः स्युस्तदा ताः षष्ट्यूनिताः कार्याः। व्येकभमेकहीनं नक्षत्रं कर्त्तव्यमित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। नक्षत्रध्रुवो मासान्तीयः कृतोऽस्ति। इष्टतिथिकालीनत्वकरणार्थं तिथिस्तत्र योज्या। तथातिथिघटिकानांनक्षत्रघटिकानां प्रतितिथिइदमन्तरम् १।५० अतो व्यंगलयद्विनिघ्नतिथिना युक्ता इति। ततः स्पष्टत्वार्थं सूर्यघटाभिः संस्कार्याः। तत्र ग्रहापेक्षया तिथिनक्षत्रयोर्व्यस्तमतो व्यस्तार्कजाः संस्कृता इति। एता नक्षत्रघटिका नक्षत्रध्रुवघटीभ्य उपरि समागता। अतस्तद्धीना इति चेन्न्यूना भविष्यन्ति तदा तद्धी-

नषष्ट्या युक्ता इति । तदा नक्षत्रं सैकं कार्यमेव । यदा नक्षत्रघटिकाः षष्ट्यधिकास्तदा षष्ट्यूनाः । नक्षत्रमेकहीनं कार्यं भोग्यत्वात् ॥८

विश्वनाथ

अथ नक्षत्रसाधनं स्यादिति । केवलयोरेवायवरहितो भध्रुवकः १४ । इष्टतिथिः १५ । अनयोर्योगः २९ । सप्तविंशति–२७ तष्टो जातं २ भरणीनक्षत्रम् । तिथिघटिकाः ३१।४६ तिथि-१५द्विनिघ्नी ३० । स्याङ्गलव-५ हीना २५ । अनेन तिथिघटिका युक्ताः ५६।४६ अर्कजा घटी ऋणम् ८।१६ व्यस्त इत्युक्तत्वाद्धनं कृत्वा ६५।३ नक्षत्रध्रुवनाडी ३९।१६ र्भिवियता जाता नक्षत्रघटिकाः २५।४६ नक्षत्रध्रुवनाड्यश्चेन्न शुद्ध्यन्ति तदा ध्रुवनाड्यः षष्टिमध्ये शोध्या यच्छेषं तेन युक्ताः कार्याः । एवं कृते सति भं नक्षत्रं सैकं कार्यम् । चेद् घटिकाः षष्ट्यधिकाः स्युः तदाषष्ट्यूनिताः कार्याः । व्येकमेकहीनं नक्षत्रमित्यर्थः ।।८।।

केदारदत्तः

नक्षत्र ध्रुवा का अवयव त्याग कर केवल नक्षत्र संख्या ग्रहण करनी चाहिए । इस प्रकार नक्षत्र संख्या + तिथि संख्या = नक्षत्र होता है । तिथि $\left(\text{घटी} - \frac{\text{तिथि घटी}}{६}\right)$ घटी में अपना षष्ठांश रहित द्विगुणित तिथि जोड़ने से उसमें सूर्य फल घटी का विपरीत संस्कार (अर्थात् धन फल में ऋण, एवं ऋण फल में धन) करते हुए उसमें नक्षत्र ध्रुव घटी को घटाना चाहिए । यदि ध्रुव घटी से अधिक होने से ध्रुव घटी न घटे तो उसे ६० से घटाकर तब उसे जोड़ देना चाहिए । ऐसी स्थिति में नक्षत्र संख्या में एक जोड़ देना चाहिए । यदि नक्षत्र ध्रुव घटी ६० से अधिक हो तो उससे ६० घटा कर नक्षत्र संख्या में १ कम करना चाहिए ॥८॥

उपपत्तिः—एक चान्द्रमास सम्बन्धी सावयव नक्षत्र = २९।१० होती है । अतः एक तिथि सम्बन्धी सावयव नक्षत्र = २९।१० ÷ ३० = ०।५८।२० अथवा एक तिथि में नक्षत्र मान = २९ $+ \frac{१}{६}$ = ३० $- \frac{५}{६}$ । अनुपात से एक तिथि में नक्षत्र मान = १ न $- \frac{\text{१० घ०}}{६}$ $= \text{१ न} - \left(\text{२} - \frac{\text{२}}{६}\right)$ घटी । अतः इष्ट तिथि में इष्ट तिथि × १ न० − इष्ट तिथि × २ $- \frac{\text{२ × इष्ट तिथि}}{६}$ । इसी समीकरण को मासान्तकालिक भध्रुव नक्षत्र संख्या तथा सूर्यघटी फल संस्कृत भध्रुव घटी में जोड़ देने से अभीष्ट तिथ्यन्त में सावयव नक्षत्रमान = भध्रुव + भध्रुव + सूर्यफल + इष्ट तिथि १ न० $- \left(\text{२ इष्ट तिथि} - \frac{\text{२ इष्ट तिथि}}{६}\right)$ घटी । यहां पर भध्रुव + इष्ट तिथि = गत नक्षत्र संख्या प्रमाणम् । तथा भध्रुव ± सू० फल − २ × इष्ट तिथि $- \frac{\text{२ इष्ट तिथि}}{६}$ यह वर्त्तमान नक्षत्र की गत घटिका होती है । इसे तिथि घटी में

घटाने से सूर्योदय से गत नक्षत्र का भोग्यमान होता है जो तिथि घटी + $\left(२ \times \text{इष्ट तिथि} - \frac{२ \times \text{इष्ट तिथि}}{६}\right)$ ± सूर्यफल − ध्रुव घटी। यदि ध्रुव घटी मान यदि अधिक होने से संस्कृत तिथि घटी में न घटता हो तो ऐसी स्थिति में ६० घटी जोड़कर तब घटाना चाहिए। ऐसी स्थिति में एक नक्षत्र अधिक हो जाता है। यदि घटीमान ६० से अधिक तो उसमें ६० घटाने से १ नक्षत्र कम हो जाता है ॥८॥

सूर्यभेन्दुभयुतिर्भवेद्युतिस्तद्घटीविवरमत्र नाडिकाः।
चेद्द्युभेऽल्पघटिकास्तदा सकुर्योगकोऽस्य घटिकाः खषट्-६०च्युताः ॥९॥

मल्लारिः

अथ योगसाधनमाह। सूर्यनक्षत्रचन्द्रनक्षत्रयोर्योगोयोग स्यात्। तथा तयोर्घटीनां यदन्तरं ता योगघटिकाः स्युः। द्युभे दिवसनक्षत्रे यदि घटिका अल्पाः स्युस्तदा योगः सकुरेकयुक्तः कार्यः। अस्य योगस्य घटिकास्तदा खषट्च्युताः कार्या इत्यर्थः।

अत्रोपपत्तिरतिसुगमा ॥९॥

विश्वनाथः

अथ योगसाधनं सूर्यभेति। सूर्यभम् १५। चन्द्रभम् २। अनयोर्योगः १७। जातो व्यतीपातयोगः। अथ घटिकानयनम् सूर्यनक्षत्रघटिकाः ३६।० चन्द्रनक्षत्रघटिकाः २५। ४६ अनयोरन्तरे जाता योगघटिकाः १०।१४ अत्र दिननक्षत्रघटिकाः सूर्यनक्षत्रघटिकातोऽल्पाः सन्ति इति कारणात् योगाङ्क एकयुक्तो योगो जातो वरीयान् योगः। पूर्वानीतघटिकाः १०।१४ खषट्च्युता जाताः परिघयोगस्य घटिकाः ४९।४६ ॥९॥

केदारदत्तः

सूर्य नक्षत्र और चन्द्र नक्षत्र के योग से विष्कुभादि योग होते हैं। एवं सूर्य नक्षत्र घटी और दिन नक्षत्र घटी या चन्द्र नक्षत्र घटी का नाम अन्तर घटी होती है। यदि सूर्य नक्षत्र घटी से दिन नक्षत्र घटो कम हो तो उपरोक्त विधि से आगत योग में १ जोड़ना चाहिए और इस घटी को ६० में घटा देना चाहिए ॥९॥

उपपत्तिः—सावयव सूर्य नक्षत्र $\times$ ८०० = सूर्य कला। $= ८०० \times \text{सू० न०} + \frac{\text{सू० न० घ०} \times ८००}{६०}$ तथा भयात + भभोग्य = ६० स्वल्पान्तर से। अतः ६० − भभोग्य = भयात। सूर्योदयात् भभोग्य = दिन ग० घटी = चन्द्र नक्षत्र। सावयव चन्द्र नक्षत्र $\times$ ८००= कलात्मकचन्द्र = ८०० चन्द्र न० + ८०० $\frac{(६० - \text{दि० न० घ०})}{६०}$ सार्कसितगोर्लिप्ताः खखाष्टोद्धृता····से सावयव योग = सू० न० + च० न० + $\frac{६० + \text{सू० घ०} - \text{दि० न० घ०}}{६०}$

सूर्य नक्षत्र + च० न० योग = गत योग संख्या। यदि सू० घ० से दि० न० घ० कम हों तो उक्त सावयव योग मान। गत योग संख्या + १ + $\frac{\text{सू० घ० − च०ग०घ०}}{६०}$ उपपन्न होता है।९।

चक्राहताः सप्त यमौ खबाणा ७।२।५०
मासाहताः खं क्षितिरब्धिरामाः ०।१।३४
भाद्यानयोः संयुतिरर्क–१२ शुद्धा
भांशै–२७ र्युता शुक्लगमे तमः स्यात् ॥१०॥

मल्लारिः

अथ पूर्णान्तकाले राहुं साधयति। सप्त। यमौ। खबाणाः। चक्रेण गुणिताः कार्याः। खम्। क्षितिः। अब्धिरामाः। मासगणेन गुणनीयाः। अनयोर्भाद्या राशिपूर्वा या संयुतिः सा अर्कशुद्धा द्वादशशुद्धा भांशैः सप्तविंशतिभागैर्युक्ता सती शुक्लगमे पौर्णमास्यन्ते तमो राहुः स्यात्।

अत्रोपपत्तिः। एकचक्रे राहुध्रुवः ७।२।५० अतश्चक्रहतोऽयमिति। तथैकमासे राहुध्रुवः ०।१।३४ अनेन मासगणो गुण्य इति अनयोः संयोगः चक्रशुद्धः कार्यः। ध्रुवाणां चकशुद्धत्वात् तत्र क्षेपः सप्तविंशतिभागाः। अतस्तद्युक्तः कार्य इत्युपपन्नम् ॥१०॥

विश्वनाथः

अथ पूर्णान्तकाले राहुसाधनं चक्राहता इति। सप्त यमौ खबाणाः ७।२।५० चक्रा-८ हताः ५६।२२।४० खं क्षितिरब्धिरामाः ०।१।३४ मासा-५७ हताः ०।५७।१९। ३८ अधः षष्टिभक्तं मध्ये त्रिशद्भुक्तं जातम् २।२९।१८ अनयो राश्याद्या संयुतिः ११। २१।५८ अर्क-१२ शुद्धा ०।८।२ सप्तविंशति २७ भोगयुता जातः शुक्लगमे पूर्णान्ते तमो राहुः १।५।२।० ॥१०॥

केदारदत्तः

चक्र गुणित ७।२।५० तथा ०।१।२४ को मासगण से गुणाकर दोनों के राशि आदिक फलयोग को १२ में घटाकर शेष में २७ अंश जोड़ने से पूर्णान्तकालिक राहु होता है ॥१०॥

उपपत्तिः—एक चक्र में राश्यादिक राहु ध्रुव = ७।२।५०। अभीष्ट चक्र गुणित से अभीष्ट चक्र सम्बन्धी राहु होता है। एक चान्द्रमास में २९।३१।५० सावन दिनगण से नवकुभिरिषुवेदैः''''कथित प्रकार से राहु मध्यम राहु = ०।१।३४ स्वल्पान्तर से होता है। अतः अभीष्ट मास से गुणित अभीष्ट मास का राहु हो जाता है। यहाँ पर तमसि खमुडवोऽष्टाग्नयो से ०।२७।३८ की जगह आचार्य ने स्वल्पान्तर से ०।२७।० ही गृहीत किया है ॥१०॥

वेदघ्नगोहृद्रविभुक्तधिष्ण्यं तिथ्यन्तजोऽर्को गृहपूर्वकः सः।
राहूनितः पर्वणि तद्भुजांशा मन्वल्पकाश्चेद्ग्रहसम्भवः स्यात् ॥११॥

मल्लारिः

अथ सूर्यं साधयति । रवेः सूर्यस्य भुक्तं नक्षत्रं यत् साययवमतीतमस्ति तद्वेदघ्नगोहृत् चतुर्भिः संगुण्य नवभिर्भाज्यं फलग्रहपूर्वको राश्यादिकस्तिथ्यन्तजोऽर्कः स्यात् पर्वणि स रवौ राहुणा ऊनितः कार्यः। तस्य भुजभागाश्चेत् मनुभ्यश्चतुर्दशभ्योऽल्पास्तदा ग्रहणसम्भवः स्यात् ।

अत्रोपपत्तिः । प्रत्यक्षसुगमा ॥११॥

विश्वनाथः

अथ सूर्यसाधनं वेदघ्नेति । रविभुक्तधिष्ण्यम् १५।२६।० वेद-४ घ्नन् ६२।२४।० नवभक्तं फलं राशयः ६ । शेषम् ८।२४।० त्रिंशद्गुणम् २५२।०।० नवभक्तं फलं भागा। २८ । शेषम् ०।० । षष्टिगुणम् ०।०।० नवभक्तं फलं भागाः २८ । शेषम्=० षष्टिगुणं ०।०।० नवभक्तं कला=० एवं विकला ० । एषा विकला ० । एवं जातस्तिथ्यन्तकाले राश्यादिः सूर्यः ६।२८।०।० अथ ग्रहणसम्भवमाह । सयंः ६।२८ ०।० राहू-१।५।२।० नितः ५।२२।५८।० अस्य भुजांशाः ७।२।० चतुर्दशभ्योऽल्पाः सन्ति अतो ग्रहणसम्भवः ॥११॥

केदारदत्तः

सूर्य के गत नक्षत्रों को ४ से गुणाकर ९ से भाग देने से तिथ्यन्त कालिक रवि होता है । पूर्णान्त पर्वान्त कालिक सूर्य में राहु को कम करने से शेष के भुजांश यदि १४° से कम होते हैं तो चन्द्रग्रहण का संभव होता है ॥११॥

उपपत्तिः—यदि २७ नक्षत्रों में १२ राशियाँ तो सूर्य भुक्त नक्षत्र संख्या में $\frac{१२ \times \text{सू० भुक्त न०}}{२७} = \frac{४ \times \text{सू० भु०न०}}{८९} =$ राश्यादिक सूर्य । विराह्वर्क के भुजांश १४ अंश से कम होने पर ग्रहण संभव विचार तो पूर्व में हो ही चुका है । उपपन्नम् ॥११॥

पिण्डानाड्यन्तराङ्घ्र्यूनयुक्ता इनाः १२
स्वर्ग २१ पिण्डाद्रि ७ पिन्डात् क्रमाद्वर्जिताः ।
त्र्यग्निनाद्दोर्लवैः स्वार्द्धयुक्ता भवे-
च्छन्नमिन्दो रविच्छन्नकाद्युक्तवत् ॥१२॥
वित्र्यंशेशाः षिण्डनाड्यन्तरस्य
षष्ठोनाढयाः स्वर्गपिण्डाद्रिपिण्डात् ।
ग्लौविम्बं स्यात्तद्वदुर्वीप्रभा स्यात्
त्रिघ्नस्याक्षांशोनयुक्तानि भानि ॥१३॥

मल्लारिः

अथ ग्रासमानं साधयति । गतैष्य पिण्डोत्पन्ना या घटिकास्तासां यदन्तरं तस्य योऽङ्घ्रिश्चतुर्थांशस्तेन इना द्वादश ऊना युक्ताः कार्याः । स्वर्गपिण्डादिति एकविंशति

पिण्डमारभ्य षष्ठपिण्डपर्यन्तमूना अतोऽग्रे युक्ता इति। ततस्ते व्यग्विनात् विराहुसूर्या- द्दोर्लवः भुजभागैर्वर्जिताः कार्यास्ततः स्वार्धेन तुक्ताः सन्तश्चन्द्रस्य ग्रासोऽगुलाद्यो भवेत् सूर्यग्रासादि पूर्ववत् साध्यम्।

अत्रोपपत्तिः। प्रतिपादितप्रमेया। अथ चन्द्रविम्बभूछाये च साधयति। त्र्यंशोना एकादश ११ पिण्डनाड्यन्तरषडंशेन स्वर्गाद्रिपिण्डात् क्रमात् ऊनाड्याः कार्यास्तच्चन्द्र- विम्बं स्यात् तद्वत्तथैव त्रिगुणस्य पिण्डनाड्यन्तरस्य अक्षांशेन पञ्चमांशेन सप्तविंशति- मितानि स्वर्गाद्रिपिण्डादेव क्रमादूनयुक्तानि कार्याणि सा भूछाया स्यात्। अस्यो- पपत्तिः मासगणाधिकारे कथितैव ॥१२–१३॥

विश्वनाथः

अथ ग्रासानयनं पिण्डेति। पिण्डघटीस्पष्टीकरणे गतैष्यपिण्डोत्पन्नघटिकानां यदन्तरं तस्य योऽङ्घ्रिश्चतुर्थांशस्तेन इना द्वादश १२ ऊना युक्ताः कार्याः। स्वर्गपिण्डा- द्रिपिण्डात् २१।७ क्रमादिति एकविंशतिपिण्डमारभ्य षष्ठपिण्डपर्यन्तमूनास्ततोऽग्रे सप्त- पिण्डमारभ्य विंशतिपिण्डपर्यन्तं युक्ताः कार्याः। पिण्डनाड्यन्तरम् ३। अस्यांघ्रिः ०।४५ अनेन अद्रिपिण्डात् विंशतिपिण्डमध्ये साधितपिण्डस्य विद्यमानत्वाद्युक्ताः १२। ४५ विराह्वर्कभुजभागैः ७।२ वर्जिताः ५।४३ स्वार्ध-२।५१ युक्ताः। जातश्चन्द्रग्रासः ८।३४ सूर्यग्रासादि पूर्ववत् साध्यम्। अथ चन्द्रविम्बभूभासाधनमाह वित्र्यंशेशा इति। पिण्डनाड्यन्तरम् ३। अस्य षडंशः ०।३० अनेन वित्र्यंशेशाः १०।४० अद्रिपिण्डस्य विद्यमानत्वाद्युक्ता जातं चन्द्रविम्बम् ११।१० अथ भूभासाधनम्। पिन्डान्तरम् ३। त्रिघ्नम् ९। अस्य पञ्चमांशे १।४८ अद्रिपण्डस्य सत्त्वाद्भानि २७ युक्तानि जाता भूभा २८।४८ ॥१२–१३॥

केदारवत्तः

२१ से प्रारम्भ कर ७ पिण्ड तक पिण्डान्तर घटी के चतुर्थांश को १२ में घटाकर, तथा ७ से २१ तक पिण्डाातर घटी चतुर्थांश को १२ में जोड़कर जो फल हो उसमें व्यग्वर्क के भुजांश घटाकर शेष में अपना आधा जोड़ने से चन्द्रमा का ग्रासमान होता है।

२१ पिण्ड के तथा ७ पिण्ड के अनन्तर क्रम से पिण्ड घट्यन्तर के षष्ठांश को १०।४० में जोड़ने व घटाने से चन्द्रविम्ब का मान होता है। तथैव पिण्ड घटी अन्तर के त्रिगुणित पञ्चमांश को २७ में यथाक्रम जोड़ने घटाने से भूभा विम्ब होता है ॥१४॥

उपपत्तिः—२८ पिण्डों में ७ वें से आगे २१ तक कर्कादि केन्द्र, २१ वें से मकरादि केन्द्र पूर्व में कह आये हैं। चन्द्रकेन्द्रगति=१३°। दो दो पिण्डों का अन्तरांश=१३°। अतः पिण्डनाड्यन्तर सम्बन्धी कला एक चन्द्रगति फल होने से अनुपात से—

$$\frac{\text{गत्यन्तर कला} \times \text{पिण्डान्तर}}{६०} = \frac{८०० \times \text{पिण्डान्तर}}{६०} = \frac{४० \times \text{पिण्डान्तर}}{३}$$ कर्क मृगादि केन्द्रों

में क्रमशः चन्द्र मध्य गति को, न्यूनाधिक करने से चन्द्र स्पष्ट गति = ७९०'।३५" +

$\frac{\text{४० पिण्डा०}}{\text{३}}$ 'विधोर्भुक्ति वेदाद्रिभिरपहृता' से चन्द्रबिम्ब = १०।४१ ∓ $\frac{\text{४० पिण्डा०}}{\text{३} \times \text{७४}}$ तथा 'नृपाश्वोनाचान्द्रगतिरषहृतेति' स्पष्ट चन्द्रगति आधार से भूभा बिम्ब २६।४९ ∓ $\frac{\text{पिण्डन्तर} \times \text{४०}}{\text{३} \times \text{२२}}$ स्वल्पान्तर से सूर्यगति सप्तांश = $\frac{\text{६०}}{\text{७}}$ = ८।३४ चन्द्रभूभाविम्बयोगार्ध = मानैक्य खण्ड = $\frac{\text{३७।३०}}{\text{२}}$ ∓ $\frac{\text{४७} \times \text{पिण्डा०}}{\text{२} \times \text{३} \times \text{७४}}$ ∓ $\frac{\text{४०} \times \text{पिण्डा०}}{\text{२} \times \text{३} \times \text{१२}}$ = $\frac{\text{३७।३०}}{\text{२}}$ ± $\frac{\text{४८० पिण्डा०}}{\text{१२२१}}$

= १८।४५ ∓ $\frac{\text{१६० पिण्डा०}}{\text{४०७}}$ = अंगुलात्मक [९० अंगुल तुल्य चन्द्र परम शर में त्रिज्या तुल्य व्यगु भुजांश तो मानदलांगुल तुल्य शर में $\frac{\text{१२०}}{\text{९०}}$ $\left(\text{१८।४५} \mp \frac{\text{१६० पिण्डा०}}{\text{४०७}}\right)$ इसमें २ से भाग देने से मानदल तुल्य शर सम्बन्धी व्यगु भुजांश = $\left(\text{१८।४५} \mp \frac{\text{१६० पिण्डान्तर}}{\text{४०७}}\right)$

= $\frac{\text{३७।३०}}{\text{३}}$ ∓ $\frac{\text{१६०} \times \text{२ पिण्डा०}}{\text{१२२१}}$ = १२ ∓ $\frac{\text{पिण्डान्तर}}{\text{४}}$ (अर्धाल्पे त्याज्यमर्धाधिके ग्राह्यम् नियम से)। इसमें अभीष्ट भुजांश कम करने से अभीष्ट शर सम्बन्धी भुजांश = तेंऽशा निघ्ना शङ्कुरैः शैलभक्ता''''छन्न तुल्य शरांगुल मान = $\frac{\text{११}}{\text{७}}$ × छन्न भु० = $\left(\text{१} + \frac{\text{१}}{\text{२}}\right)$ × छ० भु० = छ० भु० × १ + $\frac{\text{छ०भु०}}{\text{२}}$ उपपन्न है ॥१२॥

पूर्व दर्शित चन्द्र बिम्ब व्यंगुलात्मक खण्ड को ६० से विभक्त करने पर अंगुलात्मक चन्द्र बिम्ब = १० + $\frac{\text{४१}}{\text{६०}}$ ∓ $\frac{\text{पिण्डान्तर} \times \text{४०}}{\text{३} \times \text{७४}}$ = १० $\frac{\text{२}}{\text{३}}$ ∓ $\frac{\text{पिण्डान्तर}}{\text{६}}$ ११ − $\frac{\text{१}}{\text{३}}$ ∓ $\frac{\text{पिण्डा०}}{\text{६}}$ स्वल्पान्तर से चन्द्र बिम्ब मान उपपन्न है। तथा भूभा बिम्ब २६।४९ + $\frac{\text{पिण्डान्तर} \times \text{४०}}{\text{३} \times \text{२२}}$

= २७ + $\frac{\text{पिण्डान्तर} \times \text{३}}{\text{५}}$ = उपपन्न है ॥१३॥

वारादिके भूः कुगुणाः खबाणाः १।३१।५०
पिण्डे द्वयं २ मे द्वयमीशनाड्य २।११
क्षेप्याः क्रमेण प्रतिमासमत्र
राहौ युगांकाः ९४ कलिका वियोज्याः ॥१४॥

मल्लारिः

अथ प्रतिमासवारादीनां चालनमाह। स्पष्टार्थमेतत्। अत्रोपपत्तिः सुगमा ॥१४॥

दैवज्ञवर्यस्य दिवाकरस्य सुतेन मल्लारिसमाह्वयेन
वृत्तौ कृतायां ग्रहलाघवस्य पञ्चाङ्गपर्वानयनं समाप्तम् ।

इति श्रीग्रहलाघवस्य टीकायां पञ्चाङ्ग चन्द्रग्रहणानयनाधिकारः पञ्चदशः ॥१५॥

विश्वनाथः

अथ प्रतिमासं वाराद्ये चालनमाह वारादिके भूरिति । कार्त्तिकशुक्लप्रतिपदि वाराद्यम् ४।३५।६ वारघटीपलेषु यथाक्रमं भूः १ कुगुणाः ३१ खबाणाः ५० । योजिता जातं मार्गशीर्षशुक्लप्रतिपदि वाराद्यम् ६।६।५६ मासादो पिण्डः १७।१८।४२ उपरि द्वय योजितं जातोऽग्रिममासादौ पिण्डः १९।१८।४१ मासादौ नक्षत्रध्रुवकः १४।३९।१६ उपरि द्वयं घटिकासु एकादश योजिता जातोऽग्रिममासादौ नक्षत्रध्रुवकः १६।५०।१६ राहौ १।५।२।० युगाङ्काः ९४ कलिका वियोजिता जातोऽग्रिममामि राहुः १।३।२८।० ॥१४॥

केदारदत्तः

वारादिक में १।३१।५० तथा पिण्ड में २।०।०, नक्षत्र में २।११।० प्रत्येक मास में जोड़ने से और प्रतिमास में राहु में ९४ कला घटाने से अग्रिम मासीय राहु आदिक होते हैं ॥१४॥

उपपत्तिः—एक चन्द्रमास सम्बन्धी सावन दिनादिक = २९।३१।५० सप्त तष्टित करने से वारादिक १।३१।५० उपपन्न होता है ।

चन्द्रमासीय पिण्डमान २।०।२८।३३ स्वल्पान्तर से आचार्य ने ०।२८।३३ त्याग कर २।०।०।० ही ग्रहण किया है ।

नक्षत्र क्षेप = २।११।० तथा राहु गति = ३।११ एक चान्द्र मास में स्वल्पान्तर से १'३४'' = ९४, राहु की विपरीत गति होने से वियोजित करना समुचित हैं ॥१४॥

कूर्माद्रि प्रसिद्ध अल्मोड़ा मण्डलान्तर्गत जुनायल ग्रामज श्री पूज्य १०८ पं० हरिदत्त ज्योतिर्विदात्मज श्री केदारदत्त जोशीकृत, (वर्तमान नलगाँव काशीस्थ), ग्रहलाघव ग्रन्थ के पचाङ्ग चन्द्रग्रहणानयनाधिकार में श्री केदारदत्तीय व्याख्यान व उपपत्ति सुसम्पन्न हुई ॥

अथोपसंहाराधिकारः

द्व्यब्धीन्द्राः शकरहितास्ततो भवाप्तं
चक्राख्यं रविहतशेषकं तु हीनम् ।
चैत्राद्यैः पृथगमुतः सदृग्घ्नचक्रात्
सिद्ध्याढ्यादमरफलाधिमासयुक्तम् ॥१॥
खत्रिघ्नं तिथिरहितं निरग्रचक्रा-
ङ्गांशाढ्यं पृथगमुतोऽब्धिषट्कलब्धैः
ऊनाहैर्वियुतमहर्गणो भवेद्वै
वारः प्राक् शरहतचक्रयुग्गणोऽब्जात् ॥२॥
चक्रनिघ्नध्रुवोपेताः सक्षेपा द्युगणोद्भवैः ।
खेटैरूनाः स्युरिष्टाहे द्व्यब्धीन्द्राल्पः शको यदा ॥३॥
पूर्वे प्रौढतराः क्वचित् किमपि यच्चाकुर्धनुर्ज्ये विना
ते तेनैव महातिगर्वकुभृदुच्चशृङ्गेऽधिरोहन्ति हि ।
सिद्धान्तोक्तमिहाखिलं लघु कृतं हित्वा धनुर्ज्ये मया
तद्गर्वो मयि मास्तु किं न यदहं तच्छास्त्रतो वृद्धधीः ॥४॥

मल्लारिः

अथ द्व्यब्धीन्द्राल्पेऽङ्के ग्रहज्ञानार्थमहर्गणसाधनं वदति । स्पष्टार्थमिदम् ।

अत्रोपपत्तिः । विलोमविधिना पूर्वाहर्गणवासनातः सिद्धाः ॥१-३॥

अथ ग्रन्थालङ्कारमाह । पूर्वे भास्कराद्याचार्याः प्रौढतराः किञ्चिच्छायासाधनं धनुर्ज्ये विना चक्रुः । ये तेनैव कर्मणा महान् अतिगर्वलक्षणो यः कुभृत् पर्वतस्तस्य उच्चशृङ्गे उच्चशिखरे अधिरोहन्ति । यतो भास्करेण ब्रह्मतुल्ये छायाधिकारे उक्तम् । 'इति कृतं लघुकार्मुकशिञ्जिनीग्रहणकर्म विना द्युतिसाधन' मिति । मया इहास्मिन् ग्रन्थे अखिलं गणितजातं कर्म सिद्धान्तोक्तं धनुर्ज्याविधिं हित्वाकृतं तद्गर्वस्तेषामपेक्षया गर्वो मयि किं मास्तु अपि तु न यतो मम बुद्धिवृद्धिस्तच्छास्त्रतो जातेत्यर्थः ॥४॥

विश्वनाथः

अथ द्व्यब्धीन्द्राल्पे शके ग्रहज्ञानार्थमहर्गणसाधनमाह । द्व्यब्धीन्द्राः १४४२ । शाकेन १४४१ रहिताः १ । अस्मादेकादश ११ भक्तं लब्धम् ० । शेषाङ्कं रविहतम्

१२। चैत्रतो गतमासाः ३ तैर्हीनम् ९। पृथक्स्थम् ९। सदृघ्नचक्रम्० युतम् ९। सिद्धाढ्यम् ३३। अमर ३३। फलाधिमास-१ युक्तपृथक्स्थ जातो मासगणः १०। खत्रिघ्नम् ३००। तिथि-१४। रहितम् २८६। निरग्रचक्राङ्गांशाढ्यम् २८६। पृथक्स्थ-२८६ मस्मादब्धिषट्क-६४ लब्धैः ४ ऊनाहैर्वियुतं जातोऽहर्गणः २८२। शरहतचक्र ०। युक् अहर्गणः २८२। सप्ततष्टो जातो बुधवासरः। अथ ग्रहसाधनमाह। ध्रुवः ०।१। ४९।११ चक्र-० निघ्नः ०।०।० अनेन रविक्षेपः ११।१९।४१।० युक्तः ११।१९।४१।० अहर्गणोत्पन्नसूर्येण ९।७।५६।२६ रहितो जातः सूर्यः २।११।४४।३४ ॥१-३॥

अथ पूर्वाचार्याणां सगर्वत्वमात्मनः सविनयत्वं चाह पूर्वेति। पूर्वे भास्करादयः प्रौढतराः क्वचित् स्थले त्रिप्रश्नादौ किमपि ग्रहकर्मच्छायादि धनुर्ज्ये विना चक्रुः। ते तेनैव कारणेन महा अतिगर्वलक्षणो यः कुभृत् पर्वतस्तस्य उत् ऊर्ध्वे शृङ्गे शिखरे अधिरोहन्ति। यतस्तैरुक्तम्। 'इति कृतं लघुकार्मुकशिञ्जिनीग्रहणकर्म विना द्युति-साधनम्' इत्यादि। इहास्मिन् ग्रन्थे मयाऽखिलं सर्वं सिद्धान्तोक्तं कर्म धनुर्ज्याविधि हित्वा लघु सुगमं कृत तत् तस्मात् तेषां गर्वो मयि किं मास्तु अपि तु न। तद्यस्मात् कारणात् अहं तच्छास्त्रतस्तेषां भास्करादीनां शास्त्रमवलोक्य वृद्धधीरस्मि तच्छास्त्रं विलोक्य बुद्धिर्विस्तता अतस्तद्गर्वो मयि नास्त्विवति ॥४॥

केदारदत्तः

१४४२ से शक वर्ष कम हो तो १४४२ में ही शक वर्ष कम कर शेष में १० का भाग देने से लब्धि तुला चक्र होता हैं। शेष को १२ से गुणित कर चैत्रादि चान्द्रमास घटा कर द्विजगह स्थापित करते हुए एक जगह उसमें द्विगुणित चक्र में २४ जोड़कर ३३ से भाग देकर लब्धि तुल्य अधिक मास को दूसरी जगह स्थापित उक्त अंक में जोड़ देना चाहिए। पुनः इसे ३० से गुणा कर उसमें गत तिथि घटाकर शेष षे चक्र का षष्ठांश जोड़ने से लब्ध अंक को दो जगह रखना चाहिए। एक जगह ६४ से भाग देकर लब्ध तुल्य क्षय दिन को दूसरी जगह रखे हुए अंक में घटाने से वह अहर्गण हो जाता हैं।

पञ्चगुणित चक्र को अहर्गण मे जोड़कर ७ से भाग देने से शेष शून्य तो सोमवार, १ शेष में रविवार···· २ में शनि०····, ३ में शुक्र० ४ में गुरु० ५ शेष में बुध और ६ शेष में मंगलवार समझना चाहिए।

अहर्गण से उत्पन्न ग्रह को क्षेपक में घटाकर उसमें ध्रुवक जोड़ने से इष्ट दिन सम्बन्धी अहर्गण से उत्पन्न मध्यम ग्रह हो जाते हैं ॥१–३॥

उपपत्तिः—विलोम विधि से पूर्वानीत अहर्गण साधन प्रक्रिया की उपपत्ति यहाँ भी सुस्पष्ट है। तथापि अनुलोम अहर्गण साधन में वर्त्तमान शक–१४४४ किन्तु ऋण अहर्गण में

$(१४४२–श) = \text{शेष} \; \frac{\text{शेष}}{११} = \text{चक्र} = \text{ऋण}$। चक्र × १२ + चैत्रादि चान्द्र। धनर्णयोरन्तर मेव योगः।

ऋणचान्द्र मासों से अहर्गण साधन में ऋण द्विगुणित चक्र को जोड़ना चाहिए दोनों ऋण होने से यहाँ − + − = योग हो जाता है। धन अहर्गण साधन के समय अधिमास शेष=$\frac{१०}{३३}$ इसे १ में घटाने से ग्रन्थारम्भ से अधिमास पूर्ति काल तक का अधिशेष = १ − $\frac{१०}{३३}$ $\frac{२३}{३३} = \frac{२३}{३३}$ स्वल्पान्तर से २४ ग्रहण किया है। चान्द्रमास × ३० = चान्द्र तिथियाँ ऋण हैं। धनात्मक इष्ट चान्द्रतिथियों में − गत तिथियाँ जोड़ने से अन्तर ही योग होता है। निरग्र चक्र का षष्ठांश जो ऋणात्मक है उससे वियुत करने से विपरीत अहर्गण हो जाता है। ५ गुणित ऋण चक्र को अहर्गण में जोड़कर उसमें ७ का भाग देने से सोमवार से त्रिलोम अभीष्ट वार होता है। तथा अहर्गण ऋण होने से अहर्गण से उत्पन्न ग्रह भी ऋण होता है। ऋण चक्र × ध्रुव = ऋणात्मक चक्र × ध्रु। 'संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति ऋणं स्वम्' ऋणात्मक होते हैं। ग्रन्थारम्भकालीन धनात्मक क्षेप को जोड़ने से इष्ट अहर्गण सम्बन्धी ग्रह = क्षे − (− चक्र × ध्रु) = क्षेप + चक्र × ध्रु − अहर्गणोत्पन्न ग्रह। उपपन्न है ॥१−३।

गम्भीर गोलज्ञ पूर्वाचार्यों ने कहीं पर भी जो विना जीवा चाप के गणित जो शोध कार्य किया है उसी से वे गर्वरूप पर्वत चोटी पर पहुँचने की स्वयं चर्चा करते रहे। किन्तु मैंने तो यहाँ पर समस्त सिद्धान्त ग्रन्थों के गणित साधन में चाप और जीवा के साधन विना ही सारा गणित कार्य लाघव से किया है। अर्थात् पूर्वाचार्यों की अपेक्षा मेरा ग्रहगणित शोध कार्य सविशेष होने पर भी मुझे गर्व नहीं करना चाहिए। क्योंकि प्राचीन सिद्धान्त ग्रह-गणित मर्मज्ञों से ही तो मुझे ज्योतिष ग्रहगणित ज्ञान की उपलब्धि हुई है। पूर्वाचार्यों से रचित शास्त्रों के सम्यगध्ययन से मेरी बुद्धि की विवृद्धि सुविकसित हुई है ॥१−४॥

नन्दिग्राम इहापरान्तविषये शिष्यादिगीतस्तुति-
र्योऽभूत्कौशिकवंशजः सकलसच्छास्त्रार्थवित्केशवः।
सूनुस्तस्य तदङ्घ्रिपद्मभजनाल्लब्ध्वावबोधांशकं
स्पष्टं वृत्तविचित्रमल्पकरणं चैतद्गणेशोऽकरोत् ॥५॥

मल्लारिः

अथ स्वस्थितिपुरस्वनामादि कथयति। केशवो नन्दिग्राम अपरान्तविषये समुद्रतटनिकटपश्चिमदेशे शिष्यादिभिर्गीता स्तुतिर्यस्येति स तथा कौशिकगोत्रे जातः। सकलानि यानि सन्ति समीचीनानि शास्त्राणि तेषां येऽर्थास्तान् वेत्ति जानाति स तथा एवं भूतोयस्तस्य सूनुर्गणेशः। तदङ्घ्रिपद्मभजनात् तच्चरणकमलेसवनात् किञ्चिदव-बोधांशकं ज्ञातलवं लब्ध्वा प्राप्य इदं करणं स्पष्टार्थं वृत्तैर्नानाछन्दोभिर्विचित्रम्। अर्थेन वहुलं च एतदकरोत् कृतवानित्यर्थः, इति पूर्वशकाद्ग्रहानयनप्रकारो ग्रन्थालङ्कारश्च कृतः।

इति श्रीमद्गणकचूडामणिदिवाकरदैवज्ञसुतमल्लारिदैवज्ञविरचितायां ग्रहलाघवस्य टीकायां ग्रन्थसमाप्त्यलङ्कारव्याख्यानं समाप्तम् ॥१६॥

देशे पार्थसमाह्वयेऽतिरुचिरे तीरे च गोदोत्तरे
गोलग्रामपुरे पुरारिचरणार्च्यभक्तविद्वद्युते ।
आसीत्तत्र दिवाकरेति चतुरो दैवज्ञसंघाग्रणी-
र्विश्वेशे सततं यदीयहृदयं यस्तस्य पुत्रोऽकरोत् ॥१॥
मल्लारिर्गणकाग्रणीर्गुरुपदद्वन्द्वाब्जभक्तौ रतो
लब्ध्वा बोधलवं ततो हि विवृतिं सार्थोपपत्तिं स्फुटाम् ।
वर्यस्य ग्रहलाघवस्य गणकश्रीमद्गणेशाभिध-
प्रोक्तस्याथ कृपालवो हि सुधियः पश्यन्तु तुष्यन्त्विमाम् ॥२॥

विश्वनाथः

अथाऽलंकारश्लोकमाह नन्दिग्राम इति। अपरान्तविषयेऽपरा पश्चिमदिक् तस्या अन्तः प्रान्तः। तस्मिन् विषयः स्थानं यस्य स तस्मिन् नन्दिग्रामे केशव आसीत्। किम्भूतः। शिष्यादिभिर्गीतः स्तुतः। कौशिकगोत्रजः कौशिकवंशोत्पन्नः। सकलसच्छास्त्रार्थवित् सर्वसमीचीनशास्त्रार्थवेत्ता। एवंविधः केशवस्तस्य सूनुर्गणेशः। तदंघ्रिपद्मभजनात् तच्चरणकमलसेवनात् किञ्चिदवबोधांशकं ज्ञानलवं लब्ध्वा प्राप्य इदं करणं स्पष्टं स्पष्टार्थं वृत्तैर्नानाछन्दोभिर्विचित्रम्। अर्थेन बहुलं च एतदकरोत् कृतवानित्यर्थः ॥५॥

इति श्रीदिवाकरदैवज्ञात्मजविश्वनाथदैवज्ञविरचितं
सिद्धान्तरहस्योदाहरणं समाप्तम् ।

केदारदत्तः

भारत भूमि के पश्चिम समुद्र तट के प्रसिद्ध 'नन्दिग्राम' के कौशिक गोत्रीय शिष्य प्रशिष्यों से प्रसंशित कीर्ति सम्पन्न समग्र शास्त्रज्ञ स्वनामधन्य पूज्य मेरे पितृचरण श्री केशव दैवज्ञ हुए हैं, उन्हीं के आत्मज श्री गणेश दैवज्ञ नामक मैंने उन्हीं पितृचरणों की सेवा से यथोचित बोधलव प्राप्त कर स्पष्ट सुन्दर छन्दों में ग्रहों की साधनिका की लाघव प्रकिया को अपना कर इस ग्रहलाघव नामक ग्रन्थ की रचना की है ॥५॥

गर्गगोत्रीय स्वनामधन्य कूर्माञ्चलीय ज्योतिर्विद्वर्य श्री पं० हरिदत्त जी के आत्मज-
अल्मोड़ा मण्डलीय जुनायल ग्रामज पर्वतीय श्री केदारदत्त जोशीकृत-
वर्त्तमान नलगाँव नगवा काशीवासी (ग्रहलाघव उपसंहाराधिकार)
की उपपत्ति सहित केदारदत्तः व्याख्यान सम्पूर्ण ।